(मूल संस्कृतका हिन्दी-अनुवाद)



गीताप्रेस, गोरखपुर

1362

॥ श्रीहरिः ॥

* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

श्रीमद्द्वैपायनमुनि वेदव्यासप्रणीत

अग्निपुराण

(मूल संस्कृतका हिंदी-अनुवाद)

गीताप्रेस, गोरखपुर

सं० २०७३ सोलहवाँ पुनर्मुद्रण ४,०००
कुल मुद्रण ६५,०००

❖ मूल्य—₹ २००
(दो सौ रुपये)

प्रकाशक एवं मुद्रक—
गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५
(गोबिन्दभवन-कार्यालय, कोलकाता का संस्थान)
फोन : (०५५१) २३३४७२१, २३३१२५०; फैक्स : (०५५१) २३३६९९७
web : **gitapress.org** e-mail : **booksales@gitapress.org**

॥ श्रीहरिः ॥

नम्र निवेदन

विभिन्न विषयोंके विवेचन एवं लोकोपयोगिताकी दृष्टिसे अठारह पुराणोंमें अग्निपुराणका सर्वाधिक महत्त्व है। इसमें अनेक विद्याओंका सुन्दर समावेश है। इस पुराणके सन्दर्भमें पुराणकारका कथन है—'आग्नेये हि पुराणेऽस्मिन सर्वा विद्याः प्रदर्शिताः' (अग्नि० ३८३। ५१)। अर्थात् 'इस आग्नेय (अग्नि) पुराणमें सभी विद्याओंका वर्णन है। भगवान् अग्निदेवने महर्षि वसिष्ठको यह पुराण सुनाया है। अतः इसे अग्निपुराण कहते हैं। पद्मपुराणमें पुराणोंको भगवान् विष्णुका ही विग्रह बतलाया गया है और उनके विभिन्न अङ्ग ही विभिन्न पुराण कहे गये हैं। इस दृष्टिसे अग्निपुराणको श्रीहरिका बायाँ चरण कहा गया है—'अङ्घ्रिर्वामो ह्याग्नेयमुच्यते' (स्वर्गखण्ड ६२। ४)।

अग्निपुराणमें ३८३ अध्याय हैं। इसमें परा-अपरा विद्याओंका वर्णन, मत्स्य, कूर्म आदि अवतारोंकी कथाएँ, रामायणके सातों काण्डोंकी संक्षिप्त कथा, हरिवंश नामसे भगवान् श्रीकृष्णके वंशका वर्णन, महाभारतके सभी पर्वोंकी संक्षिप्त कथा, सृष्टि-वर्णन, स्नान-संन्ध्या-पूजा-होम-विधि, दीक्षा-विधि, अभिषेक-विधि, दीक्षाके ४८ संस्कार, अधिवास-विधि, देवालय-निर्माण-फल, शिलान्यास-विधान, प्रासाद-लक्षण, प्रासाद-देवता-स्थापन विधि, विविध देव-प्रतिमाओंके लक्षण, प्राण-प्रतिष्ठा-विधि, देव-पूजा-विधि, तत्त्व-दीक्षा, देवोंके विभिन्न मन्त्र, वास्तु-पूजा और खगोल आदिका सुन्दर निरूपण किया गया है। इसके अतिरिक्त इसमें तीर्थ-माहात्म्य, श्राद्धकल्प, ज्योतिष्-शास्त्र, त्रैलोक्य-विजय-विद्या, संग्राम-विजय-विद्या, महामारी-विद्या, वशीकरण आदि षट्कर्म, मन्त्र, औषधि, लक्ष्यकोटि-होम-विधि, सूर्य और चन्द्रवंशका विस्तार, पुरुष-स्त्रीके शुभाशुभ लक्षण, वेदशाखा-वर्णन, सिद्धौषधि एवं रसादिका वर्णन, विभिन्न पशुओंकी चिकित्सा, बालतन्त्र, ग्रहमन्त्र, नरसिंहमन्त्र, त्रैलोक्य-मोहन-मन्त्र, लक्ष्मी एवं त्वरिता-पूजा और सिद्धि आदिका प्रतिपादन किया गया है। सारांश यह है कि इस पुराणमें लौकिक ज्ञान और ब्रह्मज्ञानके सभी विषयोंको बोधगम्य शैलीमें विस्तृत रूपमें समझाया गया है। यह पुराण अध्येताओं एवं गवेषकोंके लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सामग्री सँजोये हुए है।

'कल्याण' वर्ष ४४-४५ के (सन् १९७०-७१) में गर्ग-संहिता और नरसिंहपुराणके साथ संयुक्त रूपमें इस पुराणका गीताप्रेस द्वारा विशेषाङ्करूपमें प्रकाशन किया गया था। पाठकोंके आग्रहको स्वीकार करते हुए गर्ग-संहिता और नरसिंहपुराणका अलगसे पहले ही पुस्तकरूपमें पुनर्मुद्रण किया जा चुका है। तदनुसार अग्निपुराणका हिन्दी-अनुवाद भी पाठकोंकी सेवामें पुस्तकरूपमें प्रस्तुत किया जा रहा है। आशा है, पाठकगण इसे अपनाकर इसमें संगृहीत अगाध ज्ञानसे भरपूर लाभ उठायेंगे।

—प्रकाशक

॥ श्रीहरि: ॥

विषय-सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
	अग्निपुराणका संक्षिप्त परिचय	११—१६
१-	मङ्गलाचरण तथा अग्नि और वसिष्ठके संवादरूपसे अग्निपुराणका आरम्भ	१
२-	मत्स्यावतारकी कथा	२
३-	समुद्र-मन्थन, कूर्म तथा मोहिनी-अवतारकी कथा	३
४-	वराह, नृसिंह, वामन और परशुराम-अवतारकी कथा	५
५-	श्रीरामावतार-वर्णनके प्रसङ्गमें रामायण-बालकाण्डकी संक्षिप्त कथा	७
६-	अयोध्याकाण्डकी संक्षिप्त कथा	८
७-	अरण्यकाण्डकी संक्षिप्त कथा	११
८-	किष्किन्धाकाण्डकी संक्षिप्त कथा	१३
९-	सुन्दरकाण्डकी संक्षिप्त कथा	१४
१०-	युद्धकाण्डकी संक्षिप्त कथा	१६
११-	उत्तरकाण्डकी संक्षिप्त कथा	१८
१२-	हरिवंशका वर्णन एवं श्रीकृष्णावतारकी संक्षिप्त कथा	१९
१३-	महाभारतकी संक्षिप्त कथा	२३
१४-	कौरव और पाण्डवोंका युद्ध तथा उसका परिणाम	२५
१५-	यदुकुलका संहार और पाण्डवोंका स्वर्गगमन	२७
१६-	बुद्ध और कल्कि-अवतारोंकी कथा	२८
१७-	जगत्की सृष्टिका वर्णन	२८
१८-	स्वायम्भुव मनुके वंशका वर्णन	२९
१९-	कश्यप आदिके वंशका वर्णन	३२
२०-	सर्गका वर्णन	३३
२१-	विष्णु आदि देवताओंकी सामान्य पूजाका विधान	३५
२२-	पूजाके अधिकारकी सिद्धिके लिये सामान्यत: स्नान-विधि	३७
२३-	देवताओं तथा भगवान् विष्णुकी सामान्य पूजा-विधि	३८
२४-	कुण्ड-निर्माण एवं अग्नि-स्थापन-सम्बन्धी कर्म आदिका वर्णन	३९
२५-	वासुदेव, संकर्षण आदिके मन्त्रोंका निर्देश तथा एक व्यूहसे लेकर द्वादश व्यूहतकके व्यूहोंका एवं पञ्चविंश और षड्विंश व्यूहका वर्णन	४५
२६-	मुद्राओंके लक्षण	४८
२७-	शिष्योंको दीक्षा देनेकी विधिका वर्णन	४९
२८-	आचार्यके अभिषेकका विधान	५३
२९-	मन्त्र-साधन-विधि, सर्वतोभद्रादि मण्डलोंके लक्षण	५४
३०-	भद्रमण्डल आदिकी पूजन-विधिका वर्णन	५७
३१-	'अपामार्जन-विधान' एवं 'कुशापामार्जन' नामक स्तोत्रका वर्णन	५९
३२-	निर्वाणादि-दीक्षाकी सिद्धिके उद्देश्यसे सम्पादनीय संस्कारोंका वर्णन	६३
३३-	पवित्रारोपण, भूतशुद्धि, योगपीठस्थ देवताओं तथा प्रधान देवताके पार्षद—आवरणदेवोंकी पूजा	६४
३४-	पवित्रारोपणके लिये पूजा-होमादिकी विधि	७०
३५-	पवित्राधिवासन-विधि	७३
३६-	भगवान् विष्णुके लिये पवित्रारोपणकी विधि	७५
३७-	संक्षेपसे समस्त देवताओंके लिये साधारण पवित्रारोपणकी विधि	७६
३८-	देवालय-निर्माणसे प्राप्त होनेवाले फल आदिका वर्णन	७७
३९-	विष्णु आदि देवताओंकी स्थापनाके लिये भूपरिग्रहका विधान	८०
४०-	वास्तुमण्डलवर्ती देवताओंके स्थापन, पूजन, अर्घ्यदान तथा बलिदान आदिकी विधि	८१
४१-	शिलान्यासकी विधि	८३
४२-	प्रासाद-लक्षण-वर्णन	८६
४३-	मन्दिरके देवताकी स्थापना और भूतशान्ति आदिका कथन	८७
४४-	वासुदेव आदिकी प्रतिमाओंके लक्षण	८९
४५-	पिण्डिका आदिके लक्षण	९२

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
४६-	शालग्राम-मूर्तियोंके लक्षण	९३
४७-	शालग्राम-विग्रहोंकी पूजाका वर्णन	९४
४८-	चतुर्विंशति-मूर्तिस्तोत्र एवं द्वादशाक्षर स्तोत्र	९५
४९-	मत्स्यादि दशावतारोंकी प्रतिमाओंके लक्षणोंका वर्णन	९६
५०-	चण्डी आदि देवी-देवताओंकी प्रतिमाओंके लक्षण.	९८
५१-	सूर्यादि ग्रहों तथा दिक्पाल आदि देवताओंकी प्रतिमाओंके लक्षणोंका वर्णन	१०२
५२-	चौंसठ योगिनी आदिकी प्रतिमाओंके लक्षण	१०४
५३-	लिङ्ग आदिका लक्षण	१०५
५४-	लिङ्ग-मान एवं व्यक्ताव्यक्त लक्षण आदिका वर्णन	१०७
५५-	पिण्डिकाका लक्षण	१११
५६-	प्रतिष्ठाके अङ्गभूत मण्डपनिर्माण, तोरण-स्तम्भ, कलश एवं ध्वजके स्थापन तथा दस दिक्पाल-यागका वर्णन	११२
५७-	कलशाधिवासकी विधिका वर्णन	११४
५८-	भगवद्विग्रहको स्नान और शयन करानेकी विधि	११५
५९-	अधिवास-विधिका वर्णन	११९
६०-	वासुदेव आदि देवताओंके स्थापनकी साधारण विधि	१२२
६१-	अवभृथस्नान, द्वारप्रतिष्ठा और ध्वजारोपण आदिकी विधिका वर्णन	१२४
६२-	लक्ष्मी आदि देवियोंकी प्रतिष्ठाकी सामान्य विधि	१२७
६३-	विष्णु आदि देवताओंकी प्रतिष्ठाकी सामान्य विधि तथा पुस्तक-लेखन-विधि	१२८
६४-	कुआँ, बावड़ी और पोखरे आदिकी प्रतिष्ठाकी विधि	१३०
६५-	सभा-स्थापन और एकशालादि भवनके निर्माण आदिकी विधि, गृहप्रवेशका क्रम तथा गोमातासे अभ्युदयके लिये प्रार्थना	१३२
६६-	देवता-सामान्य-प्रतिष्ठा	१३४
६७-	जीर्णोद्धार-विधि	१३६
६८-	उत्सव-विधिका कथन	१३६
६९-	स्नपनोत्सवके विस्तारका वर्णन	१३७
७०-	वृक्षोंकी प्रतिष्ठाकी विधि	१३८
७१-	गणपतिपूजनकी विधि	१३९
७२-	स्नान, संध्या और तर्पणकी विधिका वर्णन	१३९
७३-	सूर्यदेवकी पूजा-विधिका वर्णन	१४४
७४-	शिवपूजाकी विधि	१४६
७५-	शिवपूजाके अङ्गभूत होमकी विधि	१५३
७६-	चण्डकी पूजाका वर्णन	१५७
७७-	घरकी कपिला गाय, चूल्हा, चक्की, ओखली, मूसल, झाड़ू और खंभे आदिका पूजन एवं प्राणाग्निहोत्रकी विधि	१५८
७८-	पवित्राधिवासनकी विधि	१६०
७९-	पवित्रारोपणकी विधि	१६५
८०-	दमनकारोपणकी विधि	१६७
८१-	समयाचार-दीक्षाकी विधि	१६८
८२-	समय-दीक्षाके अन्तर्गत संस्कार-दीक्षाकी विधिका वर्णन	१७७
८३-	निर्वाण-दीक्षाके अन्तर्गत अधिवासनकी विधि	१७९
८४-	निर्वाण-दीक्षाके अन्तर्गत निवृत्तिकला-शोधन-विधि	१८२
८५-	निर्वाण-दीक्षाके अन्तर्गत प्रतिष्ठाकलाके शोधनकी विधिका वर्णन	१८५
८६-	निर्वाण-दीक्षाके अन्तर्गत विद्याकलाका शोधन	१८७
८७-	निर्वाण-दीक्षाके अन्तर्गत शान्तिकलाका शोधन	१८९
८८-	निर्वाण-दीक्षाकी अवशिष्ट विधिका वर्णन	१९०
८९-	एकतत्त्व-दीक्षाकी विधि	१९३
९०-	अभिषेक आदिकी विधिका वर्णन	१९३
९१-	देवार्चनकी महिमा तथा विविध मन्त्र एवं मण्डलका कथन	१९४
९२-	प्रतिष्ठाके अङ्गभूत शिलान्यासकी विधिका वर्णन	१९६
९३-	वास्तुपूजा-विधि	२००
९४-	शिलान्यासकी विधि	२०२
९५-	प्रतिष्ठा-काल-सामग्री आदिकी विधिका कथन	२०३
९६-	प्रतिष्ठामें अधिवासकी विधि	२०७
९७-	शिव-प्रतिष्ठाकी विधि	२१४
९८-	गौरी-प्रतिष्ठा-विधि	२१९
९९-	सूर्यदेवकी स्थापनाकी विधि	२२०
१००-	द्वार-प्रतिष्ठा-विधि	२२०
१०१-	प्रासाद-प्रतिष्ठा	२२१
१०२-	ध्वजारोपण	२२२
१०३-	शिवलिङ्ग आदिके जीर्णोद्धारकी विधि	२२४
१०४-	प्रासादके लक्षण	२२५
१०५-	नगर, गृह आदिकी वास्तु-प्रतिष्ठा-विधि	२२७
१०६-	नगर आदिके वास्तुका वर्णन	२३१

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
१०७-	भुवनकोष (पृथ्वी-द्वीप आदि)-का तथा स्वायम्भुव सर्गका वर्णन	२३२
१०८-	भुवनकोश-वर्णनके प्रसंगमें भूमण्डलके द्वीप आदिका परिचय	२३३
१०९-	तीर्थ-माहात्म्य	२३५
११०-	गङ्गाजीकी महिमा	२३६
१११-	प्रयाग-माहात्म्य	२३६
११२-	वाराणसीका माहात्म्य	२३७
११३-	नर्मदा-माहात्म्य	२३८
११४-	गया-माहात्म्य	२३८
११५-	गया-यात्राकी विधि	२४२
११६-	गयामें श्राद्धकी विधि	२४६
११७-	श्राद्ध-कल्प	२४८
११८-	भारतवर्षका वर्णन	२५४
११९-	जम्बू आदि महाद्वीपों तथा समस्त भूमिके विस्तारका वर्णन	२५५
१२०-	भुवनकोश-वर्णन	२५६
१२१-	ज्योति:शास्त्रका कथन	२५९
१२२-	कालगणना—पञ्चाङ्गमान-साधन	२६३
१२३-	युद्धजयार्णव-सम्बन्धी विविध योगोंका वर्णन	२६६
१२४-	युद्धजयार्णवीय ज्यौतिषशास्त्रका सार	२७२
१२५-	युद्धजयार्णव-सम्बन्धी अनेक प्रकारके चक्रोंका वर्णन	२७३
१२६-	नक्षत्र-सम्बन्धी पिण्डका वर्णन	२७७
१२७-	विभिन्न बलोंका वर्णन	२७९
१२८-	कोटचक्रका वर्णन	२८०
१२९-	अर्घकाण्डका प्रतिपादन	२८२
१३०-	विविध मण्डलोंका वर्णन	२८२
१३१-	घातचक्र आदिका वर्णन	२८३
१३२-	सेवा-चक्र आदिका निरूपण	२८६
१३३-	नाना प्रकारके बलोंका विचार	२८८
१३४-	त्रैलोक्यविजया-विद्या	२९१
१३५-	संग्रामविजय-विद्या	२९२
१३६-	नक्षत्रोंके त्रिनाडी-चक्र या फणीश्वरचक्रका वर्णन	२९५
१३७-	महामारी-विद्याका वर्णन	२९५
१३८-	तन्त्रविषयक छ: कर्मोंका वर्णन	२९७
१३९-	साठ संवत्सरोंमें मुख्य-मुख्यके नाम एवं उनके फल-भेदका कथन	२९८
१४०-	वश्य आदि योगोंका वर्णन	२९९
१४१-	छत्तीस कोष्ठोंमें निर्दिष्ट ओषधियोंके वैज्ञानिक प्रभावका वर्णन	३०१
१४२-	चोर और जातकका निर्णय, शनि-दृष्टि, दिन-राहु, फणि-राहु, तिथि-राहु तथा विष्टि-राहुके फल और अपराजिता-मन्त्र एवं ओषधिका वर्णन	३०२
१४३-	कुब्जिका-सम्बन्धी न्यास एवं पूजनकी विधि	३०५
१४४-	कुब्जिकाकी पूजा-विधिका वर्णन	३०७
१४५-	मालिनी आदि नाना प्रकारके मन्त्र और उनके षोढा-न्यास	३०९
१४६-	त्रिखण्डी-मन्त्रका वर्णन; पीठस्थानपर पूजनीय शक्तियों तथा आठ अष्टक देवियोंका कथन	३११
१४७-	गुह्यकुब्जिका, नवा त्वरिता तथा दूतियोंके मन्त्र एवं न्यास-पूजन आदिका वर्णन	३१३
१४८-	संग्राम-विजयदायक सूर्य-पूजनका वर्णन	३१४
१४९-	होमके प्रकार-भेद एवं विविध फलोंका कथन	३१४
१५०-	मन्वन्तरोंका वर्णन	३१५
१५१-	वर्ण और आश्रमके सामान्य धर्म, वर्णों तथा विलोमज जातियोंके विशेष धर्म	३१७
१५२-	गृहस्थकी जीविका	३१८
१५३-	संस्कारोंका वर्णन और ब्रह्मचारीके धर्म	३१८
१५४-	विवाहविषयक बातें	३२०
१५५-	आचारका वर्णन	३२१
१५६-	द्रव्य-शुद्धि	३२३
१५७-	मरणाशौच तथा पिण्डदान एवं दाह-संस्कार-कालिक कर्तव्यका कथन	३२४
१५८-	गर्भस्राव आदि सम्बन्धी अशौच	३२६
१५९-	असंस्कृत आदिकी शुद्धि	३३२
१६०-	वानप्रस्थ-आश्रम	३३३
१६१-	संन्यासीके धर्म	३३४
१६२-	धर्मशास्त्रका उपदेश	३३६
१६३-	श्राद्धकल्पका वर्णन	३३७
१६४-	नवग्रह-सम्बन्धी हवनका वर्णन	३४१
१६५-	विभिन्न धर्मोंका वर्णन	३४२
१६६-	वर्णाश्रम-धर्म आदिका वर्णन	३४३
१६७-	ग्रहोंके अयुत-लक्ष-कोटि हवनोंका वर्णन	३४४
१६८-	महापातकोंका वर्णन	३४७
१६९-	ब्रह्महत्या आदि विविध पापोंके प्रायश्चित्त	३४८
१७०-	विभिन्न प्रायश्चित्तोंका वर्णन	३५०
१७१-	गुप्त पापोंके प्रायश्चित्तका वर्णन	३५३

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
१७२-	समस्त पापनाशक स्तोत्र	३५४
१७३-	अनेकविध प्रायश्चित्तोंका वर्णन	३५५
१७४-	प्रायश्चित्तोंका वर्णन	३५९
१७५-	व्रतके विषयमें अनेक ज्ञातव्य बातें	३६०
१७६-	प्रतिपदा तिथिके व्रत	३६४
१७७-	द्वितीया तिथिके व्रत	३६४
१७८-	तृतीया तिथिके व्रत	३६६
१७९-	चतुर्थी तिथिके व्रत	३६८
१८०-	पञ्चमी तिथिके व्रत	३६९
१८१-	षष्ठी तिथिके व्रत	३६९
१८२-	सप्तमी तिथिके व्रत	३६९
१८३-	अष्टमी तिथिके व्रत	३७०
१८४-	अष्टमी-सम्बन्धी विविध व्रत	३७१
१८५-	नवमी तिथिके व्रत	३७३
१८६-	दशमी तिथिके व्रत	३७४
१८७-	एकादशी तिथिके व्रत	३७४
१८८-	द्वादशी तिथिके व्रत	३७५
१८९-	श्रवणद्वादशी-व्रतका वर्णन	३७५
१९०-	अखण्ड-द्वादशी-व्रतका वर्णन	३७७
१९१-	त्रयोदशी तिथिके व्रत	३७७
१९२-	चतुर्दशी-सम्बन्धी व्रत	३७८
१९३-	शिवरात्रि-व्रत	३७९
१९४-	अशोकपूर्णिमा आदि व्रतोंका वर्णन	३७९
१९५-	वार-सम्बन्धी व्रतोंका वर्णन	३८०
१९६-	नक्षत्र-सम्बन्धी व्रत	३८०
१९७-	दिन-सम्बन्धी व्रत	३८२
१९८-	मास-सम्बन्धी व्रत	३८३
१९९-	ऋतु, वर्ष, मास, संक्रान्ति आदि विभिन्न व्रतोंका वर्णन	३८४
२००-	दीप-दान-व्रतकी महिमा एवं विदर्भराज-कुमारी ललिताका उपाख्यान	३८४
२०१-	नवव्यूहार्चन	३८६
२०२-	देवपूजाके योग्य और अयोग्य पुष्प	३८७
२०३-	नरकोंका वर्णन	३८८
२०४-	मासोपवास व्रत	३८९
२०५-	भीष्मपञ्चकव्रत	३९१
२०६-	अगस्त्यके उद्देश्यसे अर्घ्यदान एवं उनके पूजनका कथन	३९१
२०७-	कौमुद-व्रत	३९३
२०८-	व्रतदानसमुच्चय	३९४
२०९-	धनके प्रकार; देश-काल और पात्रका विचार; पात्रभेदसे दानके फल-भेद; द्रव्य-देवताओं तथा दान-विधिका कथन	३९४
२१०-	सोलह महादानोंके नाम; दस मेरुदान, दस धेनुदान और विविध गोदानोंका वर्णन	३९८
२११-	नाना प्रकारके दानोंका वर्णन	४००
२१२-	विविध काम्य-दान एवं मेरुदानोंका वर्णन	४०३
२१३-	पृथ्वीदान तथा गोदानकी महिमा	४०५
२१४-	नाड़ीचक्रका वर्णन	४०६
२१५-	संध्या-विधि	४०८
२१६-	गायत्री-मन्त्रके तात्पर्यार्थका वर्णन	४११
२१७-	गायत्रीसे निर्वाणकी प्राप्ति	४१३
२१८-	राजाके अभिषेककी विधि	४१३
२१९-	राजाके अभिषेकके समय पढ़नेयोग्य मन्त्र	४१५
२२०-	राजाके द्वारा अपने सहायकोंकी नियुक्ति और उनसे काम लेनेका ढंग	४१८
२२१-	अनुजीवियोंका राजाके प्रति कर्तव्यका वर्णन	४१९
२२२-	राजाके दुर्ग, कर्तव्य तथा साध्वी स्त्रीके धर्मका वर्णन	४२०
२२३-	राष्ट्रकी रक्षा तथा प्रजासे कर लेने आदिके विषयमें विचार	४२२
२२४-	अन्त:पुरके सम्बन्धमें राजाके कर्तव्य; स्त्रीकी विरक्ति और अनुरक्तिकी परीक्षा तथा सुगन्धित पदार्थोंके सेवनका प्रकार	४२४
२२५-	राज-धर्म—राजपुत्र-रक्षण आदि	४२७
२२६-	पुरुषार्थकी प्रशंसा; साम आदि उपायोंका प्रयोग तथा राजाकी विविध देवरूपताका प्रतिपादन	४२८
२२७-	अपराधोंके अनुसार दण्डके प्रयोग	४३०
२२८-	युद्ध-यात्राके सम्बन्धमें विचार	४३४
२२९-	अशुभ और शुभ स्वप्नोंका विचार	४३५
२३०-	अशुभ और शुभ शकुन	४३६
२३१-	शकुनके भेद तथा विभिन्न जीवोंके दर्शनसे होनेवाले शुभाशुभ फलका वर्णन	४३७
२३२-	कौए, कुत्ते, गौ, घोड़े और हाथी आदिके द्वारा होनेवाले शुभाशुभ शकुनोंका वर्णन	४३९
२३३-	यात्राके मुहूर्त और द्वादश राजमण्डलका विचार	४४१
२३४-	दण्ड, उपेक्षा, माया और साम आदि नीतियोंका उपयोग	४४३
२३५-	राजाकी नित्यचर्या	४४४

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
२३६-	संग्राम-दीक्षा—युद्धके समय पालन करनेयोग्य नियमोंका वर्णन	४४५
२३७-	लक्ष्मीस्तोत्र और उसका फल	४४९
२३८-	श्रीरामके द्वारा उपदिष्ट राजनीति	४५१
२३९-	श्रीरामकी राजनीति	४५३
२४०-	द्वादशराजमण्डल-चिन्तन	४५८
२४१-	मन्त्रविकल्प	४६३
२४२-	सेनाके छः भेद, इनका बलाबल तथा छः अङ्ग	४६८
२४३-	पुरुष-लक्षण वर्णन	४७५
२४४-	स्त्रीके लक्षण	४७६
२४५-	चामर, धनुष, बाण तथा खड्गके लक्षण	४७७
२४६-	रत्न-परीक्षण	४७८
२४७-	गृहके योग्य भूमि; चतु:षष्टिपद वास्तुमण्डल और वृक्षारोपणका वर्णन	४७९
२४८-	विष्णु आदिके पूजनमें उपयोगी पुष्पोंका कथन	४८०
२४९-	धनुर्वेदका वर्णन—युद्ध और अस्त्रके भेद, आठ प्रकारके स्थान, धनुष, बाणको ग्रहण करने और छोड़नेकी विधि आदिका कथन	४८१
२५०-	लक्ष्यवेधके लिये धनुष-बाण लेने और उनके समुचित प्रयोग करनेकी शिक्षा तथा वेध्यके विविध भेदोंका वर्णन	४८४
२५१-	पाशके निर्माण और प्रयोगकी विधि तथा तलवार और लाठीको अपने पास रखने एवं शत्रुपर चलानेकी उपयुक्त पद्धतिका निर्देश	४८६
२५२-	तलवारके बत्तीस हाथ, पाश, चक्र, शूल, तोमर, गदा, परशु, मुद्गर, भिन्दिपाल, वज्र, कृपाण, क्षेपणी, गदायुद्ध तथा मल्लयुद्धके दाँव और पैंतरोंका वर्णन	४८७
२५३-	व्यवहारशास्त्र तथा विविध व्यवहारोंका वर्णन	४८८
२५४-	ऋणादान तथा उपनिधि-सम्बन्धी विचार	४९४
२५५-	साक्षी, लेखा तथा दिव्यप्रमाणोंके विषयमें विवेचन	४९८
२५६-	पैतृक धनके अधिकारी; पत्नियोंका धनाधिकार; पितामहके धनके अधिकारी; विभाज्य और अविभाज्य धन; वर्णक्रमसे पुत्रोंके धनाधिकार; बारह प्रकारके पुत्र और उनके अधिकार; पत्नी-पुत्री आदिके, संसृष्टीके धनका विभाग; क्लीब आदिका अनधिकार; स्त्रीधन तथा उसका विभाग	५०२
२५७-	सीमा-विवाद, स्वामिपाल-विवाद, अस्वामि-विक्रय, दत्ताप्रदानिक, क्रीतानुशय, अभ्युपेत्या-शुश्रूषा, संविद्व्यतिक्रम, वेतनादान तथा द्यूत-समाह्वयका विचार	५०६
२५८-	व्यवहारके वाक्पारुष्य, दण्डपारुष्य, साहस, विक्रीयासम्प्रदान, सम्भूय-समुत्थान, स्तेय, स्त्री-संग्रहण तथा प्रकीर्णक—इन विवादास्पद विषयोंपर विचार	५१२
२५९-	ऋग्विधान—विविध कामनाओंकी सिद्धिके लिये प्रयुक्त होनेवाले ऋग्वेदीय मन्त्रोंका निर्देश	५२१
२६०-	यजुर्विधान—यजुर्वेदके विभिन्न मन्त्रोंका विभिन्न कार्योंके लिये प्रयोग	५२६
२६१-	सामविधान—सामवेदोक्त मन्त्रोंका भिन्न-भिन्न कार्योंके लिये प्रयोग	५३१
२६२-	अथर्वविधान—अथर्ववेदोक्त मन्त्रोंका विभिन्न कर्मोंमें विनियोग	५३२
२६३-	नाना प्रकारके उत्पात और उनकी शान्तिके उपाय	५३४
२६४-	देवपूजा तथा वैश्वदेव-बलि आदिका वर्णन	५३५
२६५-	दिक्पालस्नानकी विधिका वर्णन	५३८
२६६-	विनायक-स्नानविधि	५३९
२६७-	माहेश्वर-स्नान आदि विविध स्नानोंका वर्णन; भगवान् विष्णुके पूजनसे तथा गायत्रीमन्त्रद्वारा लक्ष-होमादिसे शान्तिकी प्राप्तिका कथन	५४१
२६८-	सांवत्सर-कर्म; इन्द्र-शचीकी पूजा एवं प्रार्थना; राजाके द्वारा भद्रकाली तथा अन्यान्य देवताओं-के पूजनकी विधि; वाहन आदिका पूजन तथा नीराजना	५४२
२६९-	छत्र, अश्व, ध्वजा, गज, पताका, खड्ग, कवच और दुन्दुभिकी प्रार्थनाके मन्त्र	५४४
२७०-	विष्णुपञ्जरस्तोत्रका कथन	५४६
२७१-	वेदोंके मन्त्र और शाखा आदिका वर्णन तथा वेदोंकी महिमा	५४७
२७२-	विभिन्न पुराणोंके दान तथा महाभारत-श्रवणमें दान-पूजन आदिका माहात्म्य	५४८
२७३-	सूर्यवंशका वर्णन	५५०
२७४-	सोमवंशका वर्णन	५५३
२७५-	यदुवंशका वर्णन	५५४
२७६-	श्रीकृष्णकी पत्नियों तथा पुत्रोंके संक्षेपसे नाम-निर्देश तथा द्वादश संग्रामोंका संक्षिप्त परिचय	५५६
२७७-	तुर्वसु आदि राजाओंके वंशका तथा अङ्ग-वंशका वर्णन	५५८

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
२७८-	पूरुवंशका वर्णन	५५९
२७९-	सिद्ध ओषधियोंका वर्णन	५६१
२८०-	सर्वरोगहर औषधोंका वर्णन	५६४
२८१-	रस आदिके लक्षण	५६७
२८२-	आयुर्वेदोक्त वृक्ष-विज्ञान	५६९
२८३-	नाना रोगनाशक ओषधियोंका वर्णन	५७०
२८४-	मन्त्ररूप औषधोंका कथन	५७३
२८५-	मृतसंजीवनकारक सिद्ध योगोंका कथन	५७४
२८६-	मृत्युंजय योगोंका वर्णन	५७८
२८७-	गज-चिकित्सा	५८०
२८८-	अश्ववाहन-सार	५८२
२८९-	अश्व-चिकित्सा	५८५
२९०-	अश्व-शान्ति	५८८
२९१-	गज-शान्ति	५८९
२९२-	गवायुर्वेद	५९०
२९३-	मन्त्र-विद्या	५९२
२९४-	नाग-लक्षण	५९९
२९५-	दष्ट-चिकित्सा	६०३
२९६-	पञ्चाङ्ग-रुद्रविधान	६०६
२९७-	विषहारी मन्त्र तथा औषध	६०७
२९८-	गोनसादि-चिकित्सा	६०८
२९९-	बालादिग्रहहर बालतन्त्र	६१०
३००-	ग्रहबाधा एवं रोगोंको हरनेवाले मन्त्र तथा औषध आदिका कथन	६१३
३०१-	सिद्धि-गणपति आदि मन्त्र तथा सूर्यदेवकी आराधना	६१६
३०२-	नाना प्रकारके मन्त्र और औषधोंका वर्णन	६१९
३०३-	अष्टाक्षर मन्त्र तथा उसकी न्यासादि-विधि	६२०
३०४-	पञ्चाक्षर-दीक्षा-विधान; पूजाके मन्त्र	६२२
३०५-	पचपन विष्णुनाम	६२६
३०६-	श्रीनरसिंह आदिके मन्त्र	६२७
३०७-	त्रैलोक्यमोहन आदि मन्त्र	६२९
३०८-	त्रैलोक्यमोहिनी लक्ष्मी एवं भगवती दुर्गाके मन्त्रोंका कथन	६३१
३०९-	त्वरिता-पूजा	६३४
३१०-	अपरत्वरिता-मन्त्र एवं मुद्रा आदिका वर्णन	६३६
३११-	त्वरिता-मन्त्रके दीक्षा-ग्रहणकी विधि	६३९
३१२-	त्वरिता-विद्यासे प्राप्त होनेवाली सिद्धियोंका वर्णन	६४१
३१३-	नाना मन्त्रोंका वर्णन	६४३
३१४-	त्वरिताके पूजन तथा प्रयोगका विज्ञान	६४६
३१५-	स्तम्भन आदिके मन्त्रोंका कथन	६४९
३१६-	त्वरिता आदि विविध मन्त्र एवं कुब्जिका-विद्याका कथन	६५१
३१७-	सकलादि मन्त्रोंके उद्धारका क्रम	६५१
३१८-	अन्त:स्थ, कण्ठोष्ठ तथा शिवस्वरूप मन्त्रका वर्णन; अघोरास्त्र-मन्त्रका उद्धार, 'विघ्नमर्द' नामक मण्डल तथा गणपति-पूजनकी विधि	६५४
३१९-	वागीश्वरीकी पूजा एवं मन्त्र आदि	६५६
३२०-	सर्वतोभद्र आदि मण्डलोंका वर्णन	६५७
३२१-	अघोरास्त्र आदि शान्ति-विधानका कथन	६५९
३२२-	पाशुपतास्त्र-मन्त्रद्वारा शान्तिका कथन	६६०
३२३-	गङ्गा-मन्त्र, शिवमन्त्रराज, चण्डकपालिनी-मन्त्र, क्षेत्रपाल-बीजमन्त्र, सिद्धविद्या, महामृत्युंजय, मृतसंजीवनी, ईशानादि मन्त्र तथा इनके छ: अङ्ग एवं अघोरास्त्रका कथन	६६२
३२४-	कल्पाघोर रुद्रशान्ति	६६४
३२५-	रुद्राक्ष-धारण, मन्त्रोंकी सिद्धादि संज्ञा तथा अंश आदिका विचार	६६६
३२६-	गौरी आदि देवियों तथा मृत्युंजयकी पूजाका विधान	६६८
३२७-	विभिन्न कर्मोंमें उपयुक्त माला, अनेकानेक मन्त्र, लिङ्ग-पूजा तथा देवालयकी महत्ताका विचार	६६९
३२८-	छन्दोंके गण और गुरु-लघुकी व्यवस्था	६७०
३२९-	गायत्री आदि छन्दोंका वर्णन	६७१
३३०-	'गायत्री'से लेकर 'जगती' तक छन्दोंके भेद तथा उनके देवता, स्वर, वर्ण और गोत्रका वर्णन	६७१
३३१-	उत्कृति आदि छन्द, गण-छन्द और मात्रा-छन्दोंका निरूपण	६७६
३३२-	विषमवृत्तका वर्णन	६८२
३३३-	अर्धसमवृत्तोंका वर्णन	६८५
३३४-	समवृत्तका वर्णन	६८६
३३५-	प्रस्तार-निरूपण	६९३
३३६-	शिक्षानिरूपण	६९७
३३७-	काव्य आदिके लक्षण	६९९
३३८-	नाटक-निरूपण	७०३
३३९-	शृंगारादि रस, भाव तथा नायक आदिका निरूपण	७०५
३४०-	रीति-निरूपण	७०८
३४१-	नृत्य आदिमें उपयोगी आङ्गिक कर्म	७०९

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
३४२-	अभिनय और अलंकारोंका निरूपण	७११
३४३-	शब्दालंकारोंका विवरण	७१४
३४४-	अर्थालंकारोंका निरूपण	७२०
३४५-	शब्दार्थोभयालंकार	७२५
३४६-	काव्यगुण-विवेक	७२७
३४७-	काव्यदोष-विवेक	७३०
३४८-	एकाक्षरकोष	७३२
३४९-	व्याकरण-सार	७३४
३५०-	संधिके सिद्ध रूप	७३५
३५१-	सुबन्त-सिद्ध रूप	७३९
३५२-	स्त्रीलिङ्ग शब्दोंके सिद्ध रूप	७५३
३५३-	नपुंसकलिङ्ग शब्दोंके सिद्ध रूप	७५५
३५४-	कारक-प्रकरण	७५६
३५५-	समास-निरूपण	७६१
३५६-	त्रिविध तद्धित-प्रत्यय	७६३
३५७-	उणादिसिद्ध शब्दरूपोंका दिग्दर्शन	७७१
३५८-	तिङ्विभक्त्यन्त-सिद्ध रूपोंका वर्णन	७७५
३५९-	कृदन्त शब्दोंके सिद्ध रूप	७७९
३६०-	स्वर्ग-पाताल आदि वर्ग	७८१
३६१-	अव्यय-वर्ग	७८८
३६२-	नानार्थ-वर्ग	७९१
३६३-	भूमि, वनौषधि आदि वर्ग	७९४
३६४-	मनुष्य-वर्ग	७९९
३६५-	ब्रह्म-वर्ग	८०२
३६६-	क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ग	८०३
३६७-	सामान्य नाम-लिङ्ग	८०७
३६८-	नित्य, नैमित्तिक और प्राकृत प्रलयका वर्णन	८१०
३६९-	आत्यन्तिक प्रलय एवं गर्भकी उत्पत्तिका वर्णन	८११
३७०-	शरीरके अवयव	८१४
३७१-	प्राणियोंकी मृत्यु, नरक तथा पापमूलक जन्मका वर्णन	८१६
३७२-	यम और नियमोंकी व्याख्या; प्रणवकी महिमा तथा भगवत्पूजनका माहात्म्य	८१९
३७३-	आसन, प्राणायाम और प्रत्याहारका वर्णन	८२१
३७४-	ध्यान	८२२
३७५-	धारणा	८२४
३७६-	समाधि	८२६
३७७-	श्रवण एवं मननरूप ज्ञान	८२८
३७८-	निदिध्यासनरूप ज्ञान	८३०
३७९-	भगवत्स्वरूपका वर्णन तथा ब्रह्मभावकी प्राप्तिका उपाय	८३१
३८०-	जडभरत और सौवीर-नरेशका संवाद—अद्वैत ब्रह्मविज्ञानका वर्णन	८३३
३८१-	गीता-सार	८३७
३८२-	यमगीता	८४१
३८३-	अग्निपुराणका माहात्म्य	८४३

चित्र-सूची

सादे

१-	वक्ता व्यास, श्रोता सूत	६
२-	वक्ता वसिष्ठ, श्रोता व्यास-शुकदेव	६
३-	वक्ता अग्निदेव, श्रोता वसिष्ठ	६
४-	वक्ता नारद, श्रोता वाल्मीकि	६
५-	हरि हर भगवान्	१०१
६-	स्कन्दस्वामी	१०१
७-	चण्डी—बीसभुजा	१०१
८-	दुर्गा—अठारहभुजा	१०१
९-	संध्यादेवी—प्रात:काल	१४०
१०-	संध्यादेवी—मध्याह्न	१४०
११-	संध्यादेवी—सायंकाल	१४०
१२-	भगवान् ब्रह्मा	२४०
१३-	अष्टभुज विष्णु	२४०
१४-	त्रैलोक्यमोहन श्रीहरि	२४०
१५-	विश्वरूप विष्णु	२४०
१६-	श्रीलक्ष्मीजी	३५७
१७-	श्रीसरस्वतीजी	३५७
१८-	श्रीगङ्गाजी	३५७
१९-	श्रीयमुनाजी	३५७

इनके अतिरिक्त पञ्चशलाका-वेध, राहुचक्र, सर्पाकार राहु, नरचक्र, रक्षायन्त्र—रेखाचित्र तथा कई चक्र-सम्बन्धी कोष्ठक लेखोंके बीच-बीचमें दिये गये हैं।

अग्निपुराणका संक्षिप्त परिचय

भारतीय जीवन-संस्कृतिके मूलाधार 'वेद' हैं। वेद भगवान्‌के स्वाभाविक उच्छ्वास हैं, अतः वे भगवत्स्वरूप ही हैं। श्रुत ब्रह्मवाणीका संरक्षण परम्परासे ऋषियोंद्वारा होता रहा, इसीलिये इसे 'श्रुति' कहते हैं। भगवदीय वाणी वेदोंके सत्यको समझनेके लिये षडङ्ग, अर्थात् शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्द, निरुक्त और ज्योतिषका अध्ययन आवश्यक था। परंतु जन-साधारणके लिये यह भी सहज सम्भव न होनेसे पुराणोंका कथोपकथन आरम्भ हुआ, जिससे वैदिक सत्य रोचक ऐतिहासिक आख्यायिकाओंद्वारा जन-जनतक पहुँच सके। इसीलिये कहा जाता है कि पुराणोंका कथोपकथन उतना ही प्राचीन है, जितना वैदिक ऋचाओंका संकलन और वंशानुवंश-संरक्षण। अध्ययनकी पाश्चात्त्य विश्लेषण-विवेचन-पद्धतिको सर्वोपरि मानकर पुराणोंको ईसा-जन्मके आस-पास अथवा उसके बादका ठहराना सर्वथा भ्रान्त तथा अनुचित है। भारतके आदिकालमें समाजका प्रतिभासम्पन्न समुदाय जिस प्रकार वेदोंके अध्ययन-अध्यापन-निर्वचनमें निमग्न रहा, उसी प्रकार उसी कालमें समाजके साधारण समुदायको धर्ममें लगाये रखनेके लिये पुराणोंका कथन-श्रवण-प्रवचन होता रहा। शतपथब्राह्मण (१४। २। ४। १०)-में आया है कि 'चारों वेद, इतिहास, पुराण—ये सब महान् परमात्माके ही निःश्वास हैं।' अथर्ववेद (११। ७। २४)-में आया है—'यज्ञसे यजुर्वेदके साथ ऋक्, साम, छन्द और पुराण उत्पन्न हुए।'

जो पुरातन आख्यान ऋषियोंकी स्मृतियोंमें सुरक्षित थे और जो वंशानुवंश ऋषि-कण्ठोंसे कीर्तित थे, उन्हींका संकलन और विभागीकरण भगवान् वेदव्यासद्वारा हुआ। उन आख्यायिकाओंको व्यवस्थित करके प्रकाशमें लानेका श्रेय भगवान् वेदव्यासको है, इसी कारण वे पुराणोंके प्रणेता कहलाये; अन्यथा पुराण भी वेदोंकी भाँति ही अनादि, अपौरुषेय एवं प्रामाणिक हैं।

भगवान् वेदव्यासद्वारा प्रणीत अठारह महापुराणोंमें अग्निपुराणका एक विशेष स्थान है। विष्णुस्वरूप भगवान् अग्निदेवद्वारा महर्षि वसिष्ठजीके प्रति उपदिष्ट यह अग्निपुराण ब्रह्मस्वरूप है, सर्वोत्कृष्ट है तथा वेदतुल्य है। देवताओंके लिये सुखद और विद्याओंका सार है। इस दिव्य पुराणके पठन-श्रवणसे भोग-मोक्षकी प्राप्ति होती है।

पुराणोंके पाँच लक्षण बताये गये हैं—१. सृष्टि-उत्पत्ति-वर्णन, २. सृष्टि-विलय-वर्णन, ३. वंश-परम्परा-वर्णन, ४. मन्वन्तर-वर्णन और ५. विशिष्ट-व्यक्ति-चरित्र-वर्णन। पुराणके पाँचों लक्षण तो अग्निपुराणमें घटित होते ही हैं, इनके अतिरिक्त वर्ण्य-विषय इतने विस्तृत हैं कि अग्निपुराणको 'विश्वकोष' कहा जाता है। मानवके लौकिक, पारलौकिक और पारमार्थिक हितके लगभग सभी विषयोंका वर्णन अग्निपुराणमें मिलता है। प्राचीनकालमें न तो मुद्रणकी प्रथा थी और न ग्रन्थ ही सहज सुलभ होते थे। ऐसी परिस्थितिमें विविध विषयोंके महत्त्वपूर्ण विवेचनका एक ही स्थानपर एक साथ मिल जाना, यह एक बहुत बड़ी बात थी। इसी कारण अग्निपुराण बहुत जनप्रिय और विद्वद्वर्ग-समादृत रहा।

सम्पूर्ण सृष्टिके कारण भगवान् विष्णु हैं, अतः अग्निपुराणमें भगवान्‌के विविध अवतारोंका संक्षिप्त वर्णन किया गया है। भगवान् विष्णु ही मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, श्रीराम, श्रीकृष्ण और बुद्धके रूपमें अवतरित हुए

तथा कल्किके रूपमें अवतरित होंगे। भगवान्के अवतारोंकी संख्या निश्चित नहीं है; परंतु सभी अवतारोंका हेतु यही है कि सभी वर्ण और आश्रमके लोग अपने-अपने धर्ममें दृढ़तापूर्वक लगे रहें। जगत्की सृष्टिके आदिकारण श्रीहरि अवतार लेकर धर्मकी व्यवस्था और अधर्मका निराकरण ही करते हैं।

भगवान् विष्णुसे ही जगत्की सृष्टि हुई। प्रकृतिमें भगवान् विष्णुने प्रवेश किया। क्षुब्ध प्रकृतिसे महत्तत्त्व, फिर अहंकार उत्पन्न हुआ। फिर अनेक लोकोंका प्रादुर्भाव हुआ, जहाँ स्वायम्भुव मनुके वंशज एवं कश्यप आदिके वंशज परिव्याप्त हो गये। भगवान् विष्णु आदिदेव हैं और सर्वपूज्य हैं। प्रत्येक साधकको आत्मकल्याणके लिये विधिपूर्वक भगवान् विष्णुका पूजन करना चाहिये। भगवान्की पूजाका विधान क्या है, पूजाके अधिकारकी प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है, यज्ञके लिये कुण्डका निर्माण एवं अग्निकी स्थापना किस तरह की जाय, शिष्यद्वारा आचार्यके अभिषेकका विधान क्या है तथा भगवान्का पूजन एवं हवन किस प्रकार सम्पन्न किया जाय, इसका विस्तृत वर्णन अग्निपुराणमें है। मन्त्र एवं विधिसहित पूजन-हवन करनेवाला अपने पितरोंका उद्धारक एवं मोक्षका अधिकारी होता है।

देव-पूजनके समान महत्त्व ही देवालय-निर्माणका है। देवालय-निर्माण अनेक जन्मके पापोंको नष्ट कर देता है। निर्माण-कार्यके अनुमोदनमात्रसे ही विष्णुधामकी प्राप्तिका अधिकार मिल जाता है। कनिष्ठ, मध्य और श्रेष्ठ—इन तीन श्रेणीके देवालयोंके पाँच भेद अग्निपुराणमें बताये गये हैं—१. एकायतन २. त्र्यायतन, ३. पञ्चायतन, ४. अष्टायतन तथा ५. षोडशायतन। मन्दिरोंका जीर्णोद्धार करनेवालेको देवालय-निर्माणसे दूना फल मिलता है। अग्निपुराणमें विस्तारसे बताया गया है कि श्रेष्ठ देव-प्रासादके लक्षण क्या हैं।

देवालयमें किस प्रकारकी देव-प्रतिमा स्थापित की जाय, इसका बड़ा सूक्ष्म, एवं अत्यन्त विस्तृत वर्णन इसमें है। शालग्रामशिला अनेक प्रकारकी होती है। द्विचक्र एवं श्वेतवर्ण शिला 'वासुदेव' कहलाती है, कृष्णकान्ति एवं दीर्घ छिद्रयुक्त 'नारायण' कहलाती है। इसी प्रकार इसमें संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, परमेष्ठी, विष्णु, नृसिंह, वाराह, कूर्म, श्रीधर आदि अनेक प्रकारकी शालग्राम-शिलाओंका विशद वर्णन है। देवालयमें प्रतिष्ठित करनेके लिये भगवान् वासुदेवकी, दशावतारोंकी, चण्डी, दुर्गा, गणेश, स्कन्द आदि देवी-देवताओंकी, सूर्यकी, ग्रहोंकी, दिक्पाल, योगिनी एवं शिवलिङ्ग आदिकी प्रतिमाओंके श्रेष्ठ लक्षणोंका वर्णन है। देवालयमें श्रेष्ठ लक्षणोंसे सम्पन्न श्रीविग्रहोंकी स्थापना सभी प्रकारके मङ्गलोंका विधान करती है। अग्निपुराणोक्त विधिके अनुसार देवालयमें देव-प्रतिमाकी स्थापना और प्राण-प्रतिष्ठा करानेसे परम पुण्य होता है। श्रेष्ठ साधकके लिये यही उचित है कि अत्यन्त जीर्ण, अङ्गहीन, भग्न तथा शिलामात्रावशिष्ट (विशेष चिह्नोंसे रहित) देव-प्रतिमाका उत्सवसहित विसर्जन करे और देवालयमें नवीन मूर्तिका न्यास करे। जो देवालयके साथ अथवा उससे अलग कूप, वापी, तड़ागका निर्माण करवाता या वृक्षारोपण करता है, वह भी बहुत पुण्यका लाभ करता है।

भारतवर्षमें पञ्चदेवोपासना अति प्राचीन है। गणेश, शिव, शक्ति, विष्णु और सूर्य—ये पाँचों देव आदिदेव भगवान्की ही पाँच अभिव्यक्तियाँ हैं; परंतु सब तत्त्वतः एक ही हैं। गणपति-पूजन, सूर्य-पूजन, शिव-पूजन, देवी-पूजन और विष्णु-

पूजनके महत्त्वका भी अग्निपुराणमें स्थान-स्थानपर प्रतिपादन हुआ है।

साधनाके क्षेत्रमें श्रेष्ठ गुरु, श्रेष्ठ मन्त्र, श्रेष्ठ शिष्य और सम्यक् दीक्षाका बड़ा महत्त्व है। जिससे शिष्यमें ज्ञानकी अभिव्यक्ति करायी जाय, उसीका नाम 'दीक्षा' है। पाशमुक्त होनेके लिये जीवको आचार्यसे मन्त्राराधनकी दीक्षा लेनी चाहिये। सविधि दीक्षित शिष्यको शिवत्वकी प्राप्ति शीघ्र होती है।

जहाँ भक्त-मन-वाञ्छा-कल्पतरु भगवान्‌के सिद्ध श्रीविग्रहोंके देवालय हैं, अथवा जहाँ सर्वलोकवन्दनीय श्रीहरिके प्रीत्यर्थ ऋषि-मुनियोंने कठिन साधना की है, वही भूमि 'तीर्थ' कहलाती है, जिसके सेवनसे भोग-मोक्षकी प्राप्ति होती है। तीर्थ-सेवनका फल सबको समान नहीं होता। जिसके हाथ, पैर और मन संयमित हैं तथा जो जितेन्द्रिय, लघ्वाहारी, अप्रतिग्रही, निष्पाप है, उसी तीर्थयात्रीको तीर्थ-सेवनका यथार्थ फल मिलता है। ऐसे तीर्थयात्रीको पुष्कर, कुरुक्षेत्र, काशी, प्रयाग, गया आदि तीर्थोंका सेवन करना चाहिये। गयातीर्थमें शास्त्रोक्त विधिसे श्राद्ध करनेपर नरकस्थ पितर स्वर्गके अधिकारी और स्वर्गस्थ पितर परमपदके अधिकारी होते हैं।

काम-क्रोधग्रस्त मानवद्वारा नहीं चाहते हुए भी अज्ञानवश बलात् पापाचरण हो जाता है। पातक तो अनेक प्रकारके हैं; पर कभी-कभी ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी और गुरुतल्पगमन-जैसे महापातक भी घटित हो जाते हैं। इन पातकोंसे विमुक्तिका उपाय प्रायश्चित्त है। पातक, उपपातक, महापातकके परिशमनार्थ अनेक प्रकारके प्रायश्चित्तका निर्देश किया गया है। यदि कुछ भी न हो सके तो भगवान् विष्णुकी स्तुति करे। भगवान् विष्णुके समस्त पापनाशक स्तोत्रके आश्रयसे समस्त पातक विनष्ट हो जाते हैं।

आत्मशुद्धि तथा शरीर-शुद्धिका एक महान् साधन 'व्रत' भी है। शास्त्रोक्त नियमको ही 'व्रत' कहते हैं। इन्द्रियसंयम और मनोनिग्रह आदि विशेष नियम व्रतके ही अङ्ग हैं। व्रत करनेवालेको किंचित् कष्ट सहन करना पड़ता है, अतः इसे 'तप' भी कहते हैं। क्षमा, सत्य, दया, दान, शौच, इन्द्रियसंयम, देवपूजा, अग्निहोत्र, संतोष तथा चोरीका अभाव—ये दस नियम सामान्यतः सम्पूर्ण व्रतोंमें आवश्यक माने गये हैं। भगवान् अग्निदेवने महर्षि वसिष्ठको तिथि, वार, नक्षत्र, दिवस, मास, ऋतु, वर्ष, संक्रान्ति आदिके अवसरपर होनेवाले स्त्री-पुरुष-सम्बन्धी व्रत बताये हैं, जिनसे आत्यन्तिक कल्याणका सम्पादन होता है।

ग्रहों और नक्षत्रोंकी स्थिति भी मानवकी सफलता-असफलताको प्रभावित करती तथा शुभ-अशुभका विधान करती है। इसी कारण ज्योतिषशास्त्रका संक्षेपमें भगवान् अग्निदेवने सुन्दर उपदेश दिया, जिससे शुभ-अशुभका निर्णय करनेवाले विवेककी प्राप्ति हो सके। वर-वधूके गुण, विवाहादि संस्कारोंके मुहूर्तका निर्णय, 'काल' को समझनेके लिये गणित, युद्धमें विजय-प्राप्तिके लिये विविध योग, शत्रुके वशीकरणके लिये शान्ति, वशीकरण आदि षट् तान्त्रिक कर्म, ग्रहण-दान और ग्रहोंकी महादशा आदिका सूक्ष्मतापूर्वक विचार किया गया है। इस विवेचनमें ज्योतिषशास्त्रकी प्रायः उपयोगी बातें समाविष्ट हो गयी हैं।

व्यष्टि और समष्टिके हितके लिये अपने-अपने वर्ण और आश्रमके अनुसार व्यक्तिमात्रके लिये स्वधर्म-पालन आवश्यक है। स्वधर्म-पालन ही सुख-शान्ति तथा मोक्षकी सीढ़ी है। यज्ञ करना-कराना, वेद पढ़ना-पढ़ाना और स्वाध्याय ब्राह्मणके कर्म हैं। दान देना, वेदाध्ययन

करना, यज्ञानुष्ठान करना क्षत्रिय-वैश्यके सामान्य धर्म हैं। प्रजा-पालन और दुष्टदमन क्षत्रियके तथा कृषि-गोरक्षा-व्यापार वैश्यके धर्म हैं। सेवा एवं शिल्परचना शूद्रका धर्म है। ब्रह्मचर्याश्रम मानवके पवित्र जीवन-प्रासादके लिये 'नींवका पत्थर' है। अन्तेवासीको आजके विद्यार्थियों-जैसा विलास-प्रमादपूर्ण जीवन नहीं, कठोर संयमित-नियमित-अनुशासित जीवन व्यतीत करनेकी आवश्यकता है, जिससे वह वैयक्तिक और सामाजिक धर्मोंके पालनकी क्षमता प्राप्त कर सके। विवाहके उपरान्त गृहस्थाश्रमकी सम्पूर्ण दिनचर्याका उल्लेख करते हुए यह बताया गया है कि गृही नित्य देवाराधन, द्रव्य-शुद्धि, शौचाशौच-विचार एवं शुद्ध आचरणद्वारा किस प्रकार आत्मकल्याण और समाजकल्याणका सम्पादन करे। सद्‌गृहस्थके लिये तो यहाँतक कहा गया है कि 'श्री और समृद्धिके लिये गाय, चूल्हा, चाकी, ओखली, मूसल, झाड़ू एवं खंभेका भी पूजन करे।' पौत्रके जन्मके बाद गृहस्थको वानप्रस्थ धारण करके पत्नीसहित तप:पूर्ण जीवन व्यतीत करना चाहिये। संन्यासीका जीवन तो त्यागका मूर्तिमान् स्वरूप है। संन्यासी शरीरके प्रति उपेक्षाभाव रखता हुआ एकाकी विचरता है और मननशील रहता है। कुटीचक, बहूदक, हंस और परमहंस—इन चार प्रकारके संन्यासियोंमें अन्तिम सर्वश्रेष्ठ है, जो नित्य ब्रह्ममें स्थित है।

वास्तु-विद्याका भी अग्निपुराणमें यत्र-तत्र प्रभूत वर्णन है। भूमिके विस्तारका दिग्दर्शन कराते हुए विभिन्न द्वीप तथा देशोंका वर्णन किया गया है। रहनेके लिये गृह-निर्माण कैसे हो, फिर नगर-निर्माणकी योजना कैसी हो—इसे भी युक्तिपूर्वक समझाया गया है। गृह-निर्माण और नगर-निर्माणके साथ देव-प्रतिमा और देवालय-निर्माणका भी विस्तृत विवरण है। नगर, ग्राम तथा दुर्गमें गृहों तथा प्रासादोंकी वृद्धि हो, इसकी सिद्धिके लिये ८१ पदोंका वास्तुमण्डल बनाकर वास्तु-देवताकी पूजा अवश्य करनी चाहिये।

पूजामें पुष्पोंका विशेष स्थान है। देव-पूजनमें मालती, तमाल, पाटल, पद्म आदि विभिन्न पुष्पोंके विभिन्न फल होते हैं; परंतु देवपूजनके लिये श्रेष्ठ पुष्प हैं—अहिंसा, इन्द्रियनिग्रह, दया, शम, तप, सत्य आदि। इन भाव-पुष्पोंसे अर्चित श्रीहरि शीघ्र संतुष्ट होते हैं। भाव-पुष्पोंसे अर्चना करनेवालेको नरक-यातना नहीं सहनी पड़ती; अन्यथा पापाचारीको अवीचि, ताम्र, रौरव, तामिस्त्र आदि नरकोंके कष्ट भोगने पड़ते हैं। पुण्यात्माको स्वर्गकी प्राप्ति होती है। विशेष पर्वपर, विशेष तीर्थमें, विशेष तिथिमें दानका अलग-अलग फल होता है। दानसे मोक्षतककी प्राप्ति हो सकती है; परंतु फलकी कामनासे दिया गया दान मोक्षकी प्राप्ति न करवाकर व्यर्थ चला जाता है। गायत्री-मन्त्रकी व्याख्या करते हुए भगवान् अग्निदेवने बताया है कि जो लोग भगवती गायत्रीका एवं गायत्री-मन्त्रका आश्रय लेते हैं, उनके शरीर और प्राण दोनोंकी रक्षा होती है।'

राज्यमें सुख-शान्ति बनाये रखनेके लिये राजाको अपने धर्मका भलीभाँति पालन करना चाहिये। शत्रुसूदन, प्रजापालक, सुदण्डधारी, संयमी, रण-कलाविद्, न्यायप्रिय, दुर्ग-रक्षित, नीतिकुशल राजा ही अपने धर्मका पालन कर सकता है। जो राजा धनुर्वेदके शिक्षण-प्रशिक्षणकी पूर्ण व्यवस्था रखता है और जो लोक-व्यवहारमें परम कुशल है, उसका पराभव नहीं होता।

स्वप्न और शकुनका भी जीवनपर शुभ और अशुभ प्रभाव पड़ता है। सभी स्वप्न और शकुन प्रभावशाली नहीं होते; पर जिनसे अशुभ होता है, उनके निवारणका उपाय भी बताया गया है। शुभ-लक्षणसम्पन्न स्त्री या पुरुषकी संगति सदा

कल्याणकारी होती है; अतः इनके लक्षणोंका भी विस्तृत वर्णन है। जीवन श्रीयुक्त रहे, अतः हीरा, मोती, प्रवाल, शङ्ख आदि रत्नोंको परीक्षाके उपरान्त ही धारण करना चाहिये, जिससे शुभका विधान हो।

भगवान् अग्निदेवने चारों वेदोंकी सभी शाखाओंका विस्तृत वर्णन करके चारों वेदोंकी विभिन्न ऋचाओं या सूक्तोंके सहित पाठ, जप-हवन करनेका विधान बताया, जिससे भुक्ति-मुक्तिकामी पुरुषको अभीष्टकी प्राप्ति तथा सभी उत्पातोंकी शान्ति होती है। जैसे ऋग्वेदके **'अग्निमीळे पुरोहितम्'**—इस सूक्तका सविधि जप करनेसे इष्टकामनाओंकी पूर्ति होती है। भगवान् अग्निदेवने सूर्य, चन्द्र, यदु, पूरु आदि अनेक वंशोंका वर्णन किया, जिनका चरित्र सुननेसे पापोंका क्षय होता है। यदुवंशमें भगवान् श्रीकृष्णका अवतार धर्म-संरक्षण, अधर्म-नाश, सुर-पालन और दैत्य-मर्दनके लिये ही हुआ था—

देवक्यां वसुदेवात्तु कृष्णोऽभूत्तपसान्वितः॥
धर्मसंरक्षणार्थाय ह्यधर्महरणाय च।
सुरादेः पालनार्थं च दैत्यादेर्मथनाय च॥

(अग्निपुराण २७६। १-२)

स्वास्थ्य-रक्षा-सम्बन्धी ज्ञान भी मनुष्यके लिये आवश्यक है। अतः स्वास्थ्यके सिद्धान्त, रोगके भेद एवं कारण, ओषधिका विवेचन, वैद्यका कर्तव्य, उपचारके उपाय, शरीरके अवयव, गज और अश्वकी चिकित्सा आदिका वर्णन करते हुए आयुर्वेदका ज्ञान कराया गया है, जो मृतको भी प्राण-प्रदाता है। अनिष्ट-निवारण मन्त्रोंके प्रयोगोंद्वारा भी होता है, अतः मन्त्र-तन्त्रकी परिभाषा और भेद-प्रभेद बताकर शिव, सूर्य, गणपति, लक्ष्मी, गौरी आदि देवी-देवताओंके अनेक मन्त्र और मण्डल बताये गये हैं, जिनको सिद्ध करके प्रयोग करनेसे विष-शमन, बालग्रह आदिका निवारण होता है।

समाजमें उसका बड़ा आदर होता है, जिसकी वाणीमें रस है, जिसमें अभिव्यक्तिकी कुशलता है और जिसमें प्रस्तुतीकरणकी क्षमता है। अतः अग्निपुराणमें काव्य-मीमांसाका अतिविस्तृत वर्णन है। काव्याङ्ग, नाटक-निरूपण, रस-भेद, शब्दालंकार, अर्थालंकार, शब्द-गुण आदि शास्त्रीय विषयोंकी सूक्ष्म विवेचना है। यह इसीलिये कि—

'अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः।'

(अग्नि० ३३९। १०)

लोक-परलोक और परमार्थके सर्वोपयोगी स्थूल-सूक्ष्म विषयोंके वर्णनका यही उद्देश्य है कि मानव सुखी, शान्त, समृद्ध एवं स्वस्थ-जीवन व्यतीत करते हुए परम तत्त्वको प्राप्त करे। जीवनमें अर्थ और काम दोनों हों, पर वे हों धर्मके द्वारा नियन्त्रित। जीवन धर्मनिष्ठ हो और अन्तमें मोक्षकी प्राप्ति हो। धर्मशास्त्रका उपदेश देते हुए बताया गया है कि 'धर्म वही है, जिससे भोग और मोक्ष, दोनों प्राप्त हो सकें। वैदिक कर्म दो प्रकारका है—एक 'प्रवृत्त' और दूसरा 'निवृत्त'। कामनायुक्त कर्मको 'प्रवृत्तकर्म' कहते हैं। ज्ञानपूर्वक निष्कामभावसे जो कर्म किया जाता है, उसका नाम 'निवृत्तकर्म' है। वेदाभ्यास, तप, ज्ञान, इन्द्रियसंयम, अहिंसा तथा गुरुसेवा—ये परम उत्तम कर्म निःश्रेयस (मोक्षरूप कल्याण)-के साधक हैं। इन सबमें भी सबसे उत्तम आत्मज्ञान है।' (अग्नि० १६२। ३—७)

'भुक्ति' से भी महत्त्वपूर्ण 'मुक्ति' है, जिससे जीवात्मा सभी प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त होकर परमात्मस्वरूप हो जाता है। 'ज्ञान' वही है, जो ब्रह्मको प्रकाशित करे और 'योग' वही है, जिससे चित्त ब्रह्मसे संयुक्त हो जाय। **'ब्रह्मप्रकाशकं ज्ञानं योगस्तत्रैकचित्तता।'**

(अग्नि० २७२। १)। अतः भगवान् अग्निदेवने यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि, अर्थात् अष्टाङ्गयोगका वर्णन किया, जिससे आत्मा परमात्मचैतन्यरूप हो जाय। परमात्म-चैतन्यकी प्राप्ति ही परम प्राप्तव्य है। इसीकी प्राप्तिके दो प्रधान मार्ग—ज्ञाननिष्ठा और कर्मनिष्ठाका प्रतिपादन करनेवाली श्रीमद्भगवद्गीताका संक्षेपमें कथन करनेके उपरान्त यमगीताका भी वर्णन किया गया है।

वस्तुतः शरीरसे आत्मा पृथक् है। नेत्र, मन, बुद्धि आदि आत्मा नहीं हैं। आत्मा इनका नहीं, ये आत्माके हैं। जीवात्मा परमात्माका सनातन अंश है। ब्रह्मत्वकी प्राप्तिमें ही जीवनकी परम सफलता है। इसके लिये ज्ञानयोग श्रेष्ठ साधन है। साधनाके द्वारा जीव जगत्के स्थूल-सूक्ष्म बन्धनोंसे मुक्त होकर ब्रह्मत्वकी प्राप्ति कर लेता है। साधकको 'शरीर-भाव' से अतीत होना आवश्यक है। अपवादकी बात दूसरी है। अन्यथा सभीको अभ्यास करना ही पड़ता है। इसीलिये पूजा, व्रत, तप, वैराग्य और देवाराधनका विधान है। आत्मोत्कर्षके लिये सभीको अपने-अपने स्तरके अनुकूल साधन-पथ चुनना चाहिये। सभीका स्तर एक नहीं, अतः सभीका अधिकार भी समान नहीं। देवोपासनासे भी परमतत्त्वकी प्राप्ति हो सकती है। देवोपासकोंका जो 'विष्णु' है, वही याज्ञिकोंका 'यज्ञपुरुष' है और वही ज्ञानियोंका 'मूर्तिमान् ज्ञान' है। जीवात्मा किसी पथका आश्रय ले, अन्तिम उद्देश्य यही है कि आत्मा और परमात्माका एकत्व प्रकाशित हो जाय। सच्चा श्रेय तो सदा परमार्थमें ही निहित रहता है। परमार्थकी दृष्टिसे तो आत्मा और परमात्माका नित्य अभिन्नत्व है। अग्निपुराणमें श्रीसूतजीने कहा है—'भगवान् विष्णु ही सारसे भी सार तत्त्व हैं। वे सृष्टि और पालन आदिके कर्ता और सर्वत्र व्यापक हैं।' 'वह विष्णुस्वरूप ब्रह्म मैं ही हूँ'—इस प्रकार उन्हें जान लेनेपर सर्वज्ञता प्राप्त हो जाती है।'

ऐसे वेदसम्मत, सर्वविद्यायुक्त और ब्रह्मस्वरूप अग्निपुराणका जो पठन, श्रवण, अध्ययन और मनन करता है उसे भोग और मोक्ष—दोनोंकी ही प्राप्ति होती है—

सारात्सारो हि भगवान् विष्णुः सर्गादिकृद्विभुः।
ब्रह्माहमस्मि तं ज्ञात्वा सर्वज्ञत्वं प्रजायते॥

(अग्नि० १। ४)

॥ श्रीहरि: ॥

* ॐ नमो भगवते वासुदेवाय *

अग्निपुराण

पहला अध्याय

मङ्गलाचरण तथा अग्नि और वसिष्ठके संवाद-रूपसे अग्निपुराणका आरम्भ

श्रियं सरस्वतीं गौरीं गणेशं स्कन्दमीश्वरम्।
ब्रह्माणं वह्निमिन्द्रादीन् वासुदेवं नमाम्यहम्॥

'लक्ष्मी, सरस्वती, पार्वती, गणेश, कार्तिकेय, महादेवजी, ब्रह्मा, अग्नि, इन्द्र आदि देवताओं तथा भगवान् वासुदेवको मैं नमस्कार करता हूँ'॥ १॥

नैमिषारण्यकी बात है। शौनक आदि ऋषि यज्ञोंद्वारा भगवान् विष्णुका यजन कर रहे थे। उस समय वहाँ तीर्थयात्राके प्रसङ्गसे सूतजी पधारे। महर्षियोंने उनका स्वागत-सत्कार करके कहा— ॥ २॥

ऋषि बोले—सूतजी! आप हमारी पूजा स्वीकार करके हमें वह सारसे भी सारभूत तत्त्व बतलानेकी कृपा करें, जिसके जान लेनेमात्रसे सर्वज्ञता प्राप्त होती है॥ ३॥

सूतजीने कहा—ऋषियो! भगवान् विष्णु ही सारसे भी सारतत्त्व हैं। वे सृष्टि और पालन आदिके कर्ता और सर्वत्र व्यापक हैं। 'वह विष्णुस्वरूप ब्रह्म मैं ही हूँ'—इस प्रकार उन्हें जान लेनेपर सर्वज्ञता प्राप्त हो जाती है। ब्रह्मके दो स्वरूप जाननेके योग्य हैं—शब्दब्रह्म और परब्रह्म। दो विद्याएँ भी जाननेके योग्य हैं—अपरा विद्या और परा विद्या। यह अथर्ववेदकी श्रुतिका कथन है। एक समयकी बात है, मैं, शुकदेवजी तथा पैल आदि ऋषि बदरिकाश्रमको गये और वहाँ व्यासजीको नमस्कार करके हमने प्रश्न किया। तब उन्होंने हमें सारतत्त्वका उपदेश देना आरम्भ किया॥ ४—६॥

व्यासजी बोले—सूत! तुम शुक आदिके साथ सुनो। एक समय मुनियोंके साथ मैंने महर्षि वसिष्ठजीसे सारभूत परात्पर ब्रह्मके विषयमें पूछा था। उस समय उन्होंने मुझे जैसा उपदेश दिया था, वही तुम्हें बतला रहा हूँ॥ ७॥

वसिष्ठजीने कहा—व्यास! सर्वान्तर्यामी ब्रह्मके दो स्वरूप हैं। मैं उन्हें बताता हूँ, सुनो! पूर्वकालमें ऋषि-मुनि तथा देवताओंसहित मुझसे अग्निदेवने इस विषयमें जैसा, जो कुछ भी कहा था, वही मैं तुम्हें बता रहा हूँ। अग्निपुराण सर्वोत्कृष्ट है। इसका एक-एक अक्षर ब्रह्मविद्या है, अतएव यह 'परब्रह्मरूप' है। ऋग्वेद आदि सम्पूर्ण वेद-शास्त्र 'अपरब्रह्म' हैं। परब्रह्मस्वरूप अग्निपुराण सम्पूर्ण देवताओंके लिये परम सुखद है। अग्निदेवद्वारा जिसका कथन हुआ है, वह आग्नेयपुराण वेदोंके तुल्य सर्वमान्य है। यह पवित्र पुराण अपने पाठकों और श्रोताजनोंको भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला है। भगवान् विष्णु ही कालाग्निरूपसे विराजमान हैं। वे ही

ज्योतिर्मय परात्पर परब्रह्म हैं। ज्ञानयोग तथा कर्मयोगद्वारा उन्हींका पूजन होता है। एक दिन उन विष्णुस्वरूप अग्निदेवसे मुनियोंसहित मैंने इस प्रकार प्रश्न किया॥ ८—११ ॥

वसिष्ठजीने पूछा— अग्निदेव! संसारसागरसे पार लगानेके लिये नौकारूप परमेश्वर ब्रह्मके स्वरूपका वर्णन कीजिये और सम्पूर्ण विद्याओंके सारभूत उस विद्याका उपदेश दीजिये, जिसे जानकर मनुष्य सर्वज्ञ हो जाता है॥ १२॥

अग्निदेव बोले— वसिष्ठ! मैं ही विष्णु हूँ, मैं ही कालाग्निरुद्र कहलाता हूँ। मैं तुम्हें सम्पूर्ण विद्याओंकी सारभूता विद्याका उपदेश देता हूँ, जिसे अग्निपुराण कहते हैं। वही सब विद्याओंका सार है, वह ब्रह्मस्वरूप है। सर्वमय एवं सर्वकारणभूत ब्रह्म उससे भिन्न नहीं है। उसमें सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर, वंशानुचरित आदिका तथा मत्स्य-कूर्म आदि रूप धारण करनेवाले भगवान्का वर्णन है। ब्रह्मन्! भगवान् विष्णुकी स्वरूपभूता दो विद्याएँ हैं—एक परा और दूसरी अपरा। ऋक्, यजुः, साम और अथर्वनामक वेद, वेदके छहों अङ्ग—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्यौतिष और छन्दःशास्त्र तथा मीमांसा, धर्मशास्त्र, पुराण, न्याय, वैद्यक (आयुर्वेद), गान्धर्व वेद (संगीत), धनुर्वेद और अर्थशास्त्र—यह सब अपरा विद्या है तथा परा विद्या वह है, जिससे उस अदृश्य, अग्राह्य, गोत्ररहित, चरणरहित, नित्य, अविनाशी ब्रह्मका बोध हो। इस अग्निपुराणको परा विद्या समझो। पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने मुझसे तथा ब्रह्माजीने देवताओंसे जिस प्रकार वर्णन किया था, उसी प्रकार मैं भी तुमसे मत्स्य आदि अवतार धारण करनेवाले जगत्कारणभूत परमेश्वरका प्रतिपादन करूँगा॥ १३—१९ ॥

इस प्रकार व्यासद्वारा सूतके प्रति कहे गये आदि आग्नेय महापुराणमें पहला अध्याय पूरा हुआ॥ १ ॥

दूसरा अध्याय
मत्स्यावतारकी कथा

वसिष्ठजीने कहा— अग्निदेव! आप सृष्टि आदिके कारणभूत भगवान् विष्णुके मत्स्य आदि अवतारोंका वर्णन कीजिये। साथ ही ब्रह्मस्वरूप अग्निपुराणको भी सुनाइये, जिसे पूर्वकालमें आपने श्रीविष्णुभगवान्के मुखसे सुना था॥ १ ॥

अग्निदेव बोले— वसिष्ठ! सुनो, मैं श्रीहरिके मत्स्यावतारका वर्णन करता हूँ। अवतार-धारणका कार्य दुष्टोंके विनाश और साधु-पुरुषोंकी रक्षाके लिये होता है। बीते हुए कल्पके अन्तमें 'ब्राह्म'नामक नैमित्तिक प्रलय हुआ था। मुने! उस समय 'भू' आदि लोक समुद्रके जलमें डूब गये थे। प्रलयके पहलेकी बात है। वैवस्वत मनु भोग और मोक्षकी सिद्धिके लिये तपस्या कर रहे थे। एक दिन जब वे कृतमाला नदीमें जलसे पितरोंका तर्पण कर रहे थे, उनकी अञ्जलिके जलमें एक बहुत छोटा-सा मत्स्य आ गया। राजाने उसे जलमें फेंक देनेका विचार किया। तब मत्स्यने कहा—'महाराज! मुझे जलमें न फेंको। यहाँ ग्राह आदि जल-जन्तुओंसे मुझे भय है।' यह सुनकर मनुने उसे अपने कलशके जलमें डाल दिया। मत्स्य उसमें पड़ते ही बड़ा हो गया और पुनः मनुसे बोला—'राजन्! मुझे इससे बड़ा स्थान दो।' उसकी यह बात सुनकर राजाने उसे एक बड़े जलपात्र (नाद या कूँडा आदि)-में डाल दिया। उसमें भी बड़ा होकर मत्स्य राजासे बोला—'मनो! मुझे कोई विस्तृत स्थान दो।'

तब उन्होंने पुनः उसे सरोवरके जलमें डाला; किंतु वहाँ भी बढ़कर वह सरोवरके बराबर हो गया और बोला—'मुझे इससे बड़ा स्थान दो।' तब मनुने उसे फिर समुद्रमें ही ले जाकर डाल दिया। वहाँ वह मत्स्य क्षणभरमें एक लाख योजन बड़ा हो गया। उस अद्भुत मत्स्यको देखकर मनुको बड़ा विस्मय हुआ। वे बोले—'आप कौन हैं? निश्चय ही आप भगवान् श्रीविष्णु जान पड़ते हैं। नारायण! आपको नमस्कार है। जनार्दन! आप किसलिये अपनी मायासे मुझे मोहित कर रहे हैं?'॥ २—१०॥

मनुके ऐसा कहनेपर सबके पालनमें संलग्न रहनेवाले मत्स्यरूपधारी भगवान् उनसे बोले—'राजन्! मैं दुष्टोंका नाश और जगत्की रक्षा करनेके लिये अवतीर्ण हुआ हूँ। आजसे सातवें दिन समुद्र सम्पूर्ण जगत्को डुबा देगा। उस समय तुम्हारे पास एक नौका उपस्थित होगी। तुम उसपर सब प्रकारके बीज आदि रखकर बैठ जाना। सप्तर्षि भी तुम्हारे साथ रहेंगे। जबतक ब्रह्माकी रात रहेगी, तबतक तुम उसी नावपर विचरते रहोगे। नाव आनेके बाद मैं भी इसी रूपमें उपस्थित होऊँगा। उस समय तुम मेरे सींगमें महासर्पमयी रस्सीसे उस नावको बाँध देना।' ऐसा कहकर भगवान् मत्स्य अन्तर्धान हो गये और वैवस्वत मनु उनके बताये हुए समयकी प्रतीक्षा करते हुए वहीं रहने लगे। जब नियत समयपर समुद्र अपनी सीमा लाँघकर बढ़ने लगा, तब वे पूर्वोक्त नौकापर बैठ गये। उसी समय एक सींग धारण करनेवाले सुवर्णमय मत्स्यभगवान्का प्रादुर्भाव हुआ। उनका विशाल शरीर दस लाख योजन लंबा था। उनके सींगमें नाव बाँधकर राजाने उनसे 'मत्स्य'नामक पुराणका श्रवण किया, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है। मनु भगवान् मत्स्यकी नाना प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा स्तुति भी करते थे। प्रलयके अन्तमें ब्रह्माजीसे वेदको हर लेनेवाले 'हयग्रीव' नामक दानवका वध करके भगवान्ने वेद-मन्त्र आदिकी रक्षा की। तत्पश्चात् वाराहकल्प आनेपर श्रीहरिने कच्छपरूप धारण किया॥ ११—१७॥

इस प्रकार अग्निदेवद्वारा कहे गये विद्यासार-स्वरूप आदि आग्नेय महापुराणमें 'मत्स्यावतार-वर्णन' नामक दूसरा अध्याय पूरा हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

समुद्र-मन्थन, कूर्म तथा मोहिनी-अवतारकी कथा

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं कूर्मावतारका वर्णन करूँगा। यह सुननेपर सब पापोंका नाश हो जाता है। पूर्वकालकी बात है, देवासुर-संग्राममें दैत्योंने देवताओंको परास्त कर दिया। वे दुर्वासाके शापसे भी लक्ष्मीसे रहित हो गये थे। तब सम्पूर्ण देवता क्षीरसागरमें शयन करनेवाले भगवान् विष्णुके पास जाकर बोले—'भगवन्! आप देवताओंकी रक्षा कीजिये।' यह सुनकर श्रीहरिने ब्रह्मा आदि देवताओंसे कहा—'देवगण! तुमलोग क्षीरसमुद्रको मथने, अमृत प्राप्त करने और लक्ष्मीको पानेके लिये असुरोंसे संधि कर लो। कोई बड़ा काम या भारी प्रयोजन आ पड़नेपर शत्रुओंसे भी संधि कर लेनी चाहिये। मैं तुम लोगोंको अमृतका भागी बनाऊँगा और दैत्योंको उससे वञ्चित रखूँगा। मन्दराचलको मथानी और वासुकि नागको नेती बनाकर आलस्यरहित हो मेरी सहायतासे तुमलोग क्षीरसागरका मन्थन करो।' भगवान् विष्णुके

ऐसा कहनेपर देवता दैत्योंके साथ संधि करके क्षीरसमुद्रपर आये। फिर तो उन्होंने एक साथ मिलकर समुद्र-मन्थन आरम्भ किया। जिस ओर वासुकि नागकी पूँछ थी, उसी ओर देवता खड़े थे। दानव वासुकि नागके निःश्वाससे क्षीण हो रहे थे और देवताओंको भगवान् अपनी कृपादृष्टिसे परिपुष्ट कर रहे थे। समुद्र-मन्थन आरम्भ होनेपर कोई आधार न मिलनेसे मन्दराचल पर्वत समुद्रमें डूब गया॥ १—७॥

तब भगवान् विष्णुने कूर्म (कछुए-)-का रूप धारण करके मन्दराचलको अपनी पीठपर रख लिया। फिर जब समुद्र मथा जाने लगा, तो उसके भीतरसे हलाहल विष प्रकट हुआ। उसे भगवान् शंकरने अपने कण्ठमें धारण कर लिया। इससे कण्ठमें काला दाग पड़ जानेके कारण वे 'नीलकण्ठ' नामसे प्रसिद्ध हुए। तत्पश्चात् समुद्रसे वारुणीदेवी, पारिजात वृक्ष, कौस्तुभमणि, गौएँ तथा दिव्य अप्सराएँ प्रकट हुईं। फिर लक्ष्मीदेवीका प्रादुर्भाव हुआ। वे भगवान् विष्णुको प्राप्त हुईं। सम्पूर्ण देवताओंने उनका दर्शन और स्तवन किया। इससे वे लक्ष्मीवान् हो गये। तदनन्तर भगवान् विष्णुके अंशभूत धन्वन्तरि, जो आयुर्वेदके प्रवर्तक हैं, हाथमें अमृतसे भरा हुआ कलश लिये प्रकट हुए। दैत्योंने उनके हाथसे अमृत छीन लिया और उसमेंसे आधा देवताओंको देकर वे सब चलते बने। उनमें जम्भ आदि दैत्य प्रधान थे। उन्हें जाते देख भगवान् विष्णुने स्त्रीका रूप धारण किया। उस रूपवती स्त्रीको देखकर दैत्य मोहित हो गये और बोले—'सुमुखि! तुम हमारी भार्या हो जाओ और यह अमृत लेकर हमें पिलाओ।' 'बहुत अच्छा' कहकर भगवान्ने उनके हाथसे अमृत ले लिया और उसे देवताओंको पिला दिया। उस समय राहु चन्द्रमाका रूप धारण करके अमृत पीने लगा। तब सूर्य और चन्द्रमाने उसके कपट-वेषको प्रकट कर दिया॥ ८—१४॥

यह देख भगवान् श्रीहरिने चक्रसे उसका मस्तक काट डाला। उसका सिर अलग हो गया और भुजाओंसहित धड़ अलग रह गया। फिर भगवान्को दया आयी और उन्होंने राहुको अमर बना दिया। तब ग्रहस्वरूप राहुने भगवान् श्रीहरिसे कहा—'इन सूर्य और चन्द्रमाको मेरे द्वारा अनेकों बार ग्रहण लगेगा। उस समय संसारके लोग जो कुछ दान करें, वह सब अक्षय हो।' भगवान् विष्णुने 'तथास्तु' कहकर सम्पूर्ण देवताओंके साथ राहुकी बातका अनुमोदन किया। इसके बाद भगवान्ने स्त्रीरूप त्याग दिया; किंतु महादेवजीको भगवान्के उस रूपका पुनर्दर्शन करनेकी इच्छा हुई। अतः उन्होंने अनुरोध किया—'भगवन्! आप अपने स्त्रीरूपका मुझे दर्शन करावें।' महादेवजीकी प्रार्थनासे भगवान् श्रीहरिने उन्हें अपने स्त्रीरूपका दर्शन कराया। वे भगवान्की मायासे ऐसे मोहित हो गये कि पार्वतीजीको त्यागकर उस स्त्रीके पीछे लग गये। उन्होंने नग्न और उन्मत्त होकर मोहिनीके केश पकड़ लिये। मोहिनी अपने केशोंको छुड़ाकर वहाँसे चल दी। उसे जाती देख महादेवजी भी उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगे। उस समय पृथ्वीपर जहाँ-जहाँ भगवान् शंकरका वीर्य गिरा, वहाँ-वहाँ शिवलिङ्गोंका क्षेत्र एवं सुवर्णकी खानें हो गयीं। तत्पश्चात् 'यह माया है'—ऐसा जानकर भगवान् शंकर अपने स्वरूपमें स्थित हुए। तब भगवान् श्रीहरिने प्रकट होकर शिवजीसे कहा—'रुद्र! तुमने मेरी मायाको जीत लिया। पृथ्वीपर तुम्हारे सिवा दूसरा कोई ऐसा पुरुष नहीं है, जो मेरी इस मायाको जीत सके।' भगवान्के प्रयत्नसे दैत्योंको अमृत नहीं मिलने पाया; अतः देवताओंने उन्हें

युद्धमें मार गिराया। फिर देवता स्वर्गमें विराजमान हुए और दैत्यलोग पातालमें रहने लगे। जो मनुष्य देवताओंकी इस विजयगाथाका पाठ करता है, वह स्वर्गलोकमें जाता है॥ १५—२३॥

इस प्रकार विद्याओंके सारभूत आदि आग्नेय महापुराणमें 'कूर्मावतार-वर्णन' नामक तीसरा अध्याय पूरा हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

वराह, नृसिंह, वामन और परशुराम-अवतारकी कथा

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं वराहावतारकी पापनाशिनी कथाका वर्णन करता हूँ। पूर्वकालमें 'हिरण्याक्ष' नामक दैत्य असुरोंका राजा था। वह देवताओंको जीतकर स्वर्गमें रहने लगा। देवताओंने भगवान् विष्णुके पास जाकर उनकी स्तुति की। तब उन्होंने यज्ञवाराहरूप धारण किया और देवताओंके लिये कण्टकरूप उस दानवको दैत्योंसहित मारकर धर्म एवं देवताओं आदिकी रक्षा की। इसके बाद वे भगवान् श्रीहरि अन्तर्धान हो गये। हिरण्याक्षके एक भाई था, जो 'हिरण्यकशिपु'के नामसे प्रसिद्ध था। उसने देवताओंके यज्ञभाग अपने अधीन कर लिये और उन सबके अधिकार छीनकर वह स्वयं ही उनका उपभोग करने लगा। भगवान्ने नृसिंहरूप धारण करके उसके सहायक असुरोंसहित उस दैत्यका वध किया। तत्पश्चात् सम्पूर्ण देवताओंको अपने-अपने पदपर प्रतिष्ठित कर दिया। उस समय देवताओंने उन नृसिंहका स्तवन किया।

पूर्वकालमें देवता और असुरोंमें युद्ध हुआ। उस युद्धमें बलि आदि दैत्योंने देवताओंको परास्त करके उन्हें स्वर्गसे निकाल दिया। तब वे श्रीहरिकी शरणमें गये। भगवान्ने उन्हें अभयदान दिया और कश्यप तथा अदितिकी स्तुतिसे प्रसन्न हो, वे अदितिके गर्भसे वामनरूपमें प्रकट हुए। उस समय दैत्यराज बलि गङ्गाद्वारमें यज्ञ कर रहे थे। भगवान् उनके यज्ञमें गये और वहाँ यजमानकी स्तुतिका गान करने लगे॥ १—७॥

वामनके मुखसे वेदोंका पाठ सुनकर राजा बलि उन्हें वर देनेको उद्यत हो गये और शुक्राचार्यके मना करनेपर भी बोले—'ब्रह्मन्! आपकी जो इच्छा हो, मुझसे माँगें। मैं आपको वह वस्तु अवश्य दूँगा।' वामनने बलिसे कहा—'मुझे अपने गुरुके लिये तीन पग भूमिकी आवश्यकता है; वही दीजिये।' बलिने कहा—'अवश्य दूँगा।' तब संकल्पका जल हाथमें पड़ते ही भगवान् वामन 'अवामन' हो गये। उन्होंने विराट् रूप धारण कर लिया और भूर्लोक, भुवर्लोक एवं स्वर्गलोकको अपने तीन पगोंसे नाप लिया। श्रीहरिने बलिको सुतललोकमें भेज दिया और त्रिलोकीका राज्य इन्द्रको दे डाला। इन्द्रने देवताओंके साथ श्रीहरिका स्तवन किया। वे तीनों लोकोंके स्वामी होकर सुखसे रहने लगे।

ब्रह्मन्! अब मैं परशुरामावतारका वर्णन करूँगा, सुनो। देवता और ब्राह्मण आदिका पालन करनेवाले श्रीहरिने जब देखा कि भूमण्डलके क्षत्रिय उद्धत स्वभावके हो गये हैं, तो वे उन्हें मारकर पृथ्वीका भार उतारने और सर्वत्र शान्ति स्थापित करनेके लिये जमदग्निके अंशद्वारा रेणुकाके गर्भसे अवतीर्ण हुए। भृगुनन्दन परशुराम शस्त्र-विद्याके



वक्ता व्यास, श्रोता सूत [अग्नि० अ० १]



वक्ता वसिष्ठ, श्रोता व्यास-शुकदेव [अग्नि० अ० १]



वक्ता अग्निदेव, श्रोता वसिष्ठ [अग्नि० अ० १]



वक्ता नारद, श्रोता वाल्मीकि [अग्नि० अ० ५]

पारंगत विद्वान् थे। उन दिनों कृतवीर्यका पुत्र राजा अर्जुन भगवान् दत्तात्रेयजीकी कृपासे हजार बाँहें पाकर समस्त भूमण्डलपर राज्य करता था। एक दिन वह वनमें शिकार खेलनेके लिये गया॥ ८—१४॥

वहाँ वह बहुत थक गया। उस समय जमदग्नि मुनिने उसे सेनासहित अपने आश्रमपर निमन्त्रित किया और कामधेनुके प्रभावसे सबको भोजन कराया। राजाने मुनिसे कामधेनुको अपने लिये माँगा; किंतु उन्होंने देनेसे इनकार कर दिया। तब उसने बलपूर्वक उस धेनुको छीन लिया। यह समाचार पाकर परशुरामजीने हैहयपुरीमें जा उसके साथ युद्ध किया और अपने फरसेसे उसका मस्तक काटकर रणभूमिमें उसे मार गिराया। फिर वे कामधेनुको साथ लेकर अपने आश्रमपर लौट आये। एक दिन परशुरामजी जब वनमें गये हुए थे, कृतवीर्यके पुत्रोंने आकर अपने पिताके वैरका बदला लेनेके लिये जमदग्नि मुनिको मार डाला। जब परशुरामजी लौटकर आये तो पिताको मारा गया देख उनके मनमें बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने इक्कीस बार समस्त भूमण्डलके क्षत्रियोंका संहार किया। फिर कुरुक्षेत्रमें पाँच कुण्ड बनाकर वहीं उन्होंने अपने पितरोंका तर्पण किया और सारी पृथ्वी कश्यप-मुनिको दान देकर वे महेन्द्र पर्वतपर रहने लगे। इस प्रकार कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन तथा परशुराम अवतारकी कथा सुनकर मनुष्य स्वर्गलोकमें जाता है॥ १५—२१॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'वराह, नृसिंह, वामन तथा परशुरामावतारकी कथाका वर्णन' नामक चौथा अध्याय पूरा हुआ॥ ४॥

पाँचवाँ अध्याय

श्रीरामावतार-वर्णनके प्रसङ्गमें रामायण-बालकाण्डकी संक्षिप्त कथा

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं ठीक उसी प्रकार रामायणका वर्णन करूँगा, जैसे पूर्वकालमें नारदजीने महर्षि वाल्मीकिजीको सुनाया था। इसका पाठ भोग और मोक्ष—दोनोंको देनेवाला है॥ १॥

देवर्षि नारद कहते हैं—वाल्मीकिजी! भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए हैं। ब्रह्माजीके पुत्र हैं मरीचि। मरीचिसे कश्यप, कश्यपसे सूर्य और सूर्यसे वैवस्वतमनुका जन्म हुआ। उसके बाद वैवस्वतमनुसे इक्ष्वाकुकी उत्पत्ति हुई। इक्ष्वाकुके वंशमें ककुत्स्थ नामक राजा हुए। ककुत्स्थके रघु, रघुके अज और अजके पुत्र दशरथ हुए। उन राजा दशरथसे रावण आदि राक्षसोंका वध करनेके लिये साक्षात् भगवान् विष्णु चार रूपोंमें प्रकट हुए। उनकी बड़ी रानी कौसल्याके गर्भसे श्रीरामचन्द्रजीका प्रादुर्भाव हुआ। कैकेयीसे भरत और सुमित्रासे लक्ष्मण एवं शत्रुघ्नका जन्म हुआ। महर्षि ऋष्यशृङ्गने उन तीनों रानियोंको यज्ञसिद्ध चरु दिये थे, जिन्हें खानेसे इन चारों कुमारोंका आविर्भाव हुआ। श्रीराम आदि सभी भाई अपने पिताके ही समान पराक्रमी थे। एक समय मुनिवर विश्वामित्रने अपने यज्ञमें विघ्न डालनेवाले निशाचरोंका नाश करनेके लिये राजा दशरथसे प्रार्थना की (कि आप अपने पुत्र श्रीरामको मेरे साथ भेज दें)। तब राजाने मुनिके साथ श्रीराम और लक्ष्मणको भेज दिया। श्रीरामचन्द्रजीने वहाँ

जाकर मुनिसे अस्त्र-शस्त्रोंकी शिक्षा पायी और ताड़का नामवाली निशाचरीका वध किया। फिर उन बलवान् वीरने मारीच नामक राक्षसको मानवास्त्रसे मोहित करके दूर फेंक दिया और यज्ञविघातक राक्षस सुबाहुको दल-बलसहित मार डाला। इसके बाद वे कुछ कालतक मुनिके सिद्धाश्रममें ही रहे। तत्पश्चात् विश्वामित्र आदि महर्षियोंके साथ लक्ष्मणसहित श्रीराम मिथिला-नरेशका धनुष-यज्ञ देखनेके लिये गये॥ २—९॥

[अपनी माता अहल्याके उद्धारकी वार्ता सुनकर संतुष्ट हुए] शतानन्दजीने निमित्त-कारण बनकर श्रीरामसे विश्वामित्र मुनिके प्रभावका[1] वर्णन किया। राजा जनकने अपने यज्ञमें मुनियोंसहित श्रीरामचन्द्रजीका पूजन किया। श्रीरामने धनुषको चढ़ा दिया और उसे अनायास ही तोड़ डाला। तदनन्तर महाराज जनकने अपनी अयोनिजा कन्या सीताको, जिसके विवाहके लिये पराक्रम ही शुल्क निश्चित किया गया था, श्रीरामचन्द्रजीको समर्पित किया। श्रीरामने भी अपने पिता राजा दशरथ आदि गुरुजनोंके मिथिलामें पधारनेपर सबके सामने सीताका विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया। उस समय लक्ष्मणने भी मिथिलेश-कन्या उर्मिलाको अपनी पत्नी बनाया। राजा जनकके छोटे भाई कुशध्वज थे। उनकी दो कन्याएँ थीं— श्रुतकीर्ति और माण्डवी। इनमें माण्डवीके साथ भरतने और श्रुतकीर्तिके साथ शत्रुघ्नने विवाह किया। तदनन्तर राजा जनकसे भलीभाँति पूजित हो श्रीरामचन्द्रजीने वसिष्ठ आदि महर्षियोंके साथ वहाँसे प्रस्थान किया। मार्गमें जमदग्निनन्दन परशुरामको जीतकर वे अयोध्या पहुँचे। वहाँ जानेपर भरत और शत्रुघ्न अपने मामा राजा युधाजित्की राजधानीको चले गये॥ १०—१५॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'श्रीरामायण-कथाके अन्तर्गत बालकाण्डमें आये हुए विषयका वर्णन' सम्बन्धी पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५॥

छठा अध्याय

अयोध्याकाण्डकी संक्षिप्त कथा

नारदजी कहते हैं—भरतके ननिहाल चले जानेपर [लक्ष्मणसहित] श्रीरामचन्द्रजी ही पिता-माता आदिके सेवा-सत्कारमें रहने लगे। एक दिन राजा दशरथने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा— 'रघुनन्दन! मेरी बात सुनो। तुम्हारे गुणोंपर अनुरक्त हो प्रजाजनोंने मन-ही-मन तुम्हें राज-सिंहासनपर अभिषिक्त कर दिया है—प्रजाकी यह हार्दिक इच्छा है कि तुम युवराज बनो; अतः कल प्रातःकाल मैं तुम्हें युवराजपद प्रदान कर दूँगा। आज रातमें तुम सीता-सहित उत्तम व्रतका पालन करते हुए संयमपूर्वक रहो।' राजाके आठ मन्त्रियों तथा वसिष्ठजीने भी उनकी इस बातका अनुमोदन किया। उन आठ मन्त्रियोंके नाम इस प्रकार हैं—दृष्टि, जयन्त, विजय, सिद्धार्थ, राज्यवर्धन, अशोक, धर्मपाल तथा सुमन्त्र[2]। इनके अतिरिक्त वसिष्ठजी भी मन्त्रणा देते थे। पिता और

---

१. यहाँ मूलमें, 'प्रभावतः' पद 'प्रभावः' के अर्थमें है। यहाँ 'तसि' प्रत्यय पञ्चम्यन्तका बोधक नहीं है। सार्वविभक्तिक 'तसि' के नियमानुसार प्रथमान्त पदसे यहाँ 'तसि' प्रत्यय हुआ है, ऐसा मानना चाहिये।

२. वाल्मीकीय रामायण, बालकाण्ड ७। ३ में इन मन्त्रियोंके नाम इस प्रकार आये हैं—धृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अकोप, धर्मपाल तथा सुमन्त्र।

मन्त्रियोंकी बातें सुनकर श्रीरघुनाथजीने 'तथास्तु' कहकर उनकी आज्ञा शिरोधार्य की और माता कौसल्याको यह शुभ समाचार बताकर देवताओंकी पूजा करके वे संयममें स्थित हो गये। उधर महाराज दशरथ वसिष्ठ आदि मन्त्रियोंको यह कहकर कि 'आपलोग श्रीरामचन्द्रके राज्याभिषेकको सामग्री जुटायें', कैकेयीके भवनमें चले गये। कैकेयीके मन्थरा नामक एक दासी थी, जो बड़ी दुष्टा थी। उसने अयोध्याकी सजावट होती देख, श्रीरामचन्द्रजीके राज्याभिषेकको बात जानकर रानी कैकेयीसे सारा हाल कह सुनाया। एक बार किसी अपराधके कारण श्रीरामचन्द्रजीने मन्थराको उसके पैर पकड़कर घसीटा था। उसी वैरके कारण वह सदा यही चाहती थी कि रामका वनवास हो जाय॥ १—८॥

मन्थरा बोली—कैकेयी! तुम उठो, रामका राज्याभिषेक होने जा रहा है। यह तुम्हारे पुत्रके लिये, मेरे लिये और तुम्हारे लिये भी मृत्युके समान भयंकर वृत्तान्त है—इसमें कोई संदेह नहीं है॥ ९॥

मन्थरा कुबड़ी थी। उसकी बात सुनकर रानी कैकेयीको प्रसन्नता हुई। उन्होंने कुब्जाको एक आभूषण उतारकर दिया और कहा—'मेरे लिये तो जैसे राम हैं, वैसे ही मेरे पुत्र भरत भी हैं। मुझे ऐसा कोई उपाय नहीं दिखायी देता, जिससे भरतको राज्य मिल सके।' मन्थराने उस हारको फेंक दिया और कुपित होकर कैकेयीसे कहा॥ १०-११॥

मन्थरा बोली—ओ नादान! तू भरतको, अपनेको और मुझे भी रामसे बचा। कल राम राजा होंगे। फिर रामके पुत्रोंको राज्य मिलेगा। कैकेयी! अब राजवंश भरतसे दूर हो जायगा। [मैं भरतको राज्य दिलानेका एक उपाय बताती हूँ।] पहलेकी बात है। देवासुर-संग्राममें शम्बरासुरने देवताओंको मार भगाया था। तेरे स्वामी भी उस युद्धमें गये थे। उस समय तूने अपनी विद्यासे रातमें स्वामीकी रक्षा की थी। इसके लिये महाराजने तुझे दो वर देनेकी प्रतिज्ञा की थी। इस समय उन्हीं दोनों वरोंको उनसे माँग। एक वरके द्वारा रामका चौदह वर्षोंके लिये वनवास और दूसरेके द्वारा भरतका युवराजपदपर अभिषेक माँग ले। राजा इस समय वे दोनों वर दे देंगे॥ १२—१५॥

इस प्रकार मन्थराके प्रोत्साहन देनेपर कैकेयी अनर्थमें ही अर्थकी सिद्धि देखने लगी और बोली—'कुब्जे! तूने बड़ा अच्छा उपाय बताया है। राजा मेरा मनोरथ अवश्य पूर्ण करेंगे।' ऐसा कहकर वह कोपभवनमें चली गयी और पृथ्वीपर अचेत-सी होकर पड़ रही। उधर महाराज दशरथ ब्राह्मण आदिका पूजन करके जब कैकेयीके भवनमें आये तो उसे रोषमें भरी हुई देखा। तब राजाने पूछा—'सुन्दरी! तुम्हारी ऐसी दशा क्यों हो रही है? तुम्हें कोई रोग तो नहीं सता रहा है? अथवा किसी भयसे व्याकुल तो नहीं हो? बताओ, क्या चाहती हो? मैं अभी तुम्हारी इच्छा पूर्ण करता हूँ। जिन श्रीरामके बिना मैं क्षणभर भी जीवित नहीं रह सकता, उन्हींकी शपथ खाकर कहता हूँ, तुम्हारा मनोरथ अवश्य पूर्ण करूँगा। सच-सच बताओ, क्या चाहती हो?' कैकेयी बोली—'राजन्! यदि आप मुझे कुछ देना चाहते हों, तो अपने सत्यकी रक्षाके लिये पहलेके दिये हुए दो वरदान देनेकी कृपा करें। मैं चाहती हूँ, राम चौदह वर्षोंतक संयमपूर्वक वनमें निवास करें और इन सामग्रियोंके द्वारा आज ही भरतका युवराजपदपर अभिषेक हो जाय। महाराज! यदि ये दोनों वरदान आप मुझे नहीं देंगे तो मैं विष पीकर मर जाऊँगी।' यह सुनकर राजा दशरथ वज्रसे आहत हुएकी भाँति मूर्च्छित होकर भूमिपर गिर पड़े। फिर थोड़ी देरमें चेत होनेपर उन्होंने कैकेयीसे कहा॥ १६—२३॥

दशरथ बोले—पापपूर्ण विचार रखनेवाली

कैकेयी! तू समस्त संसारका अप्रिय करनेवाली है। अरी! मैंने या रामने तेरा क्या बिगाड़ा है, जो तू मुझसे ऐसी बात कहती है? केवल तुझे प्रिय लगनेवाला यह कार्य करके मैं संसारमें भलीभाँति निन्दित हो जाऊँगा। तू मेरी स्त्री नहीं, कालरात्रि है। मेरा पुत्र भरत ऐसा नहीं है। पापिनी! मेरे पुत्रके चले जानेपर जब मैं मर जाऊँगा तो तू विधवा होकर राज्य करना॥ २४-२५ $\frac{१}{२}$ ॥

राजा दशरथ सत्यके बन्धनमें बँधे थे। उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीको बुलाकर कहा—'बेटा! कैकेयीने मुझे ठग लिया। तुम मुझे कैद करके राज्यको अपने अधिकारमें कर लो। अन्यथा तुम्हें वनमें निवास करना होगा और कैकेयीका पुत्र भरत राजा बनेगा।' श्रीरामचन्द्रजीने पिता और कैकेयीको प्रणाम करके उनकी प्रदक्षिणा की और कौसल्याके चरणोंमें मस्तक झुकाकर उन्हें सान्त्वना दी। फिर लक्ष्मण और पत्नी सीताको साथ ले, ब्राह्मणों, दीनों और अनाथोंको दान देकर, सुमन्त्रसहित रथपर बैठकर वे नगरसे बाहर निकले। उस समय माता-पिता आदि शोकसे आतुर हो रहे थे। उस रातमें श्रीरामचन्द्रजीने तमसा नदीके तटपर निवास किया। उनके साथ बहुत-से पुरवासी भी गये थे। उन सबको सोते छोड़कर वे आगे बढ़ गये। प्रात:काल होनेपर जब श्रीरामचन्द्रजी नहीं दिखायी दिये तो नगरनिवासी निराश होकर पुन: अयोध्या लौट आये। श्रीरामचन्द्रजीके चले जानेसे राजा दशरथ बहुत दु:खी हुए। वे रोते-रोते कैकेयीका महल छोड़कर कौसल्याके भवनमें चले आये। उस समय नगरके समस्त स्त्री-पुरुष और रनिवासकी स्त्रियाँ फूट-फूटकर रो रही थीं। श्रीरामचन्द्रजीने चीरवस्त्र धारण कर रखा था। वे रथपर बैठे-बैठे शृङ्गवेरपुर जा पहुँचे। वहाँ निषादराज गुहने उनका पूजन, स्वागत-सत्कार किया। श्रीरघुनाथजीने इङ्गुदी-वृक्षकी जड़के निकट विश्राम किया। लक्ष्मण और गुह दोनों रातभर जागकर पहरा देते रहे॥ २६—३३॥

प्रात:काल श्रीरामने रथसहित सुमन्त्रको विदा कर दिया तथा स्वयं लक्ष्मण और सीताके साथ नावसे गङ्गा-पार हो वे प्रयागमें गये। वहाँ उन्होंने महर्षि भरद्वाजको प्रणाम किया और उनकी आज्ञा ले वहाँसे चित्रकूट पर्वतको प्रस्थान किया। चित्रकूट पहुँचकर उन्होंने वास्तुपूजा करनेके अनन्तर (पर्णकुटी बनाकर) मन्दाकिनीके तटपर निवास किया। रघुनाथजीने सीताको चित्रकूट पर्वतका रमणीय दृश्य दिखलाया। इसी समय एक कौएने सीताजीके कोमल श्रीअङ्गमें नखोंसे प्रहार किया। यह देख श्रीरामने उसके ऊपर सींकके अस्त्रका प्रयोग किया। जब वह कौआ देवताओंका आश्रय छोड़कर श्रीरामचन्द्रजीकी शरणमें आया, तब उन्होंने उसकी केवल एक आँख नष्ट करके उसे जीवित छोड़ दिया। श्रीरामचन्द्रजीके वनगमनके पश्चात् छठे दिनकी रातमें राजा दशरथने कौसल्यासे पहलेकी एक घटना सुनायी, जिसमें उनके द्वारा कुमारावस्थामें सरयूके तटपर अनजानमें यज्ञदत्त-पुत्र श्रवणकुमारके मारे जानेका वृत्तान्त था। "श्रवणकुमार पानी लेनेके लिये आया था। उस समय उसके घड़ेके भरनेसे जो शब्द हो रहा था, उसकी आहट पाकर मैंने उसे कोई जंगली जन्तु समझा और शब्दवेधी बाणसे उसका वध कर डाला। यह समाचार पाकर उसके पिता और माताको बड़ा शोक हुआ। वे बारंबार विलाप करने लगे। उस समय श्रवणकुमारके पिताने मुझे शाप देते हुए कहा—'राजन्! हम दोनों पति-पत्नी पुत्रके बिना शोकातुर होकर प्राणत्याग कर रहे हैं; तुम भी हमारी ही तरह पुत्रवियोगके शोकसे मरोगे; [तुम्हारे पुत्र मरेंगे तो नहीं, किंतु] उस समय तुम्हारे पास कोई पुत्र मौजूद न होगा।' कौसल्ये! आज उस शापका मुझे स्मरण हो रहा है। जान पड़ता है, अब इसी शोकसे मेरी मृत्यु होगी।" इतनी कथा कहनेके पश्चात् राजाने 'हा राम!'

कहकर स्वर्गलोकको प्रयाण किया। कौसल्याने समझा, महाराज शोकसे आतुर हैं; इस समय नींद आ गयी होगी। ऐसा विचार करके वे सो गयीं। प्रातःकाल जगानेवाले सूत, मागध और बन्दीजन सोते हुए महाराजको जगाने लगे; किंतु वे न जगे॥ ३४—४२॥

तब उन्हें मरा हुआ जान रानी कौसल्या 'हाय! मैं मारी गयी' कहकर पृथ्वीपर गिर पड़ीं। फिर तो समस्त नर-नारी फूट-फूटकर रोने लगे। तत्पश्चात् महर्षि वसिष्ठने राजाके शवको तैलभरी नौकामें रखवाकर भरतको उनके ननिहालसे तत्काल बुलवाया। भरत और शत्रुघ्न अपने मामाके राजमहलसे निकलकर सुमन्त्र आदिके साथ शीघ्र ही अयोध्यापुरीमें आये। यहाँका समाचार जानकर भरतको बड़ा दुःख हुआ। कैकेयीको शोक करती देख उसकी कठोर शब्दोंमें निन्दा करते हुए बोले—'अरी! तूने मेरे माथे कलङ्कका टीका लगा दिया—मेरे सिरपर अपयशका भारी बोझ लाद दिया।' फिर उन्होंने कौसल्याकी प्रशंसा करके तैलपूर्ण नौकामें रखे हुए पिताके शवका सरयूतटपर अन्त्येष्टि-संस्कार किया। तदनन्तर वसिष्ठ आदि गुरुजनोंने कहा—'भरत! अब राज्य ग्रहण करो।' भरत बोले—'मैं तो श्रीरामचन्द्रजीको ही राजा मानता हूँ। अब उन्हें यहाँ लानेके लिये वनमें जाता हूँ।' ऐसा कहकर वे वहाँसे दल-बलसहित चल दिये और शृङ्गवेरपुर होते हुए प्रयाग पहुँचे। वहाँ महर्षि भरद्वाजने उन सबको भोजन कराया। फिर भरद्वाजको नमस्कार करके वे प्रयागसे चले और चित्रकूटमें श्रीराम एवं लक्ष्मणके समीप आ पहुँचे। वहाँ भरतने श्रीरामसे कहा—'रघुनाथजी! हमारे पिता महाराज दशरथ स्वर्गवासी हो गये। अब आप अयोध्यामें चलकर राज्य ग्रहण करें। मैं आपकी आज्ञाका पालन करते हुए वनमें जाऊँगा।' यह सुनकर श्रीरामने पिताका तर्पण किया और भरतसे कहा—'तुम मेरी चरणपादुका लेकर अयोध्या लौट जाओ। मैं राज्य करनेके लिये नहीं चलूँगा। पिताके सत्यकी रक्षाके लिये चीर एवं जटा धारण करके वनमें ही रहूँगा।' श्रीरामके ऐसा कहनेपर सदल-बल भरत लौट गये और अयोध्या छोड़कर नन्दिग्राममें रहने लगे। वहाँ भगवान्‌की चरण-पादुकाओंकी पूजा करते हुए वे राज्यका भली-भाँति पालन करने लगे॥ ४३—५१॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'रामायण-कथाके अन्तर्गत अयोध्याकाण्डकी कथाका वर्णन' नामक छठा अध्याय पूरा हुआ॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

अरण्यकाण्डकी संक्षिप्त कथा

नारदजी कहते हैं—मुने! श्रीरामचन्द्रजीने महर्षि वसिष्ठ तथा माताओंको प्रणाम करके उन सबको भरतके साथ विदा कर दिया। तत्पश्चात् महर्षि अत्रि तथा उनकी पत्नी अनसूयाको, शरभङ्गमुनिको, सुतीक्ष्णको तथा अगस्त्यजीके भ्राता अग्निजिह्व मुनिको प्रणाम करते हुए श्रीरामचन्द्रजीने अगस्त्यमुनिके आश्रमपर जा उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया और मुनिकी कृपासे दिव्य धनुष एवं दिव्य खड्ग प्राप्त करके वे दण्डकारण्यमें आये। वहाँ जनस्थानके भीतर पञ्चवटी नामक स्थानमें गोदावरीके तटपर रहने लगे। एक दिन शूर्पणखा नामवाली भयंकर राक्षसी राम, लक्ष्मण और सीताको खा जानेके लिये पञ्चवटीमें आयी; किंतु श्रीरामचन्द्रजीका अत्यन्त मनोहर रूप देखकर वह कामके अधीन हो गयी और बोली॥ १—४॥

शूर्पणखाने कहा—तुम कौन हो? कहाँसे आये हो? मेरी प्रार्थनासे अब तुम मेरे पति हो जाओ। यदि मेरे साथ तुम्हारा सम्बन्ध होनेमें ये दोनों सीता और लक्ष्मण बाधक हैं तो मैं इन दोनोंको अभी खाये लेती हूँ॥ ५॥

ऐसा कहकर वह उन्हें खा जानेको तैयार हो गयी। तब श्रीरामचन्द्रजीके कहनेसे लक्ष्मणने शूर्पणखाकी नाक और दोनों कान भी काट लिये। कटे हुए अङ्गोंसे रक्तकी धारा बहाती हुई शूर्पणखा अपने भाई खरके पास गयी और इस प्रकार बोली—'खर! मेरी नाक कट गयी। इस अपमानके बाद मैं जीवित नहीं रह सकती। अब तो मेरा जीवन तभी रह सकता है, जब कि तुम मुझे रामका, उनकी पत्नी सीताका तथा उनके छोटे भाई लक्ष्मणका गरम-गरम रक्त पिलाओ।' खरने उसको 'बहुत अच्छा' कहकर शान्त किया और दूषण तथा त्रिशिराके साथ चौदह हजार राक्षसोंकी सेना ले श्रीरामचन्द्रजीपर चढ़ाई की। श्रीरामने भी उन सबका सामना किया और अपने बाणोंसे राक्षसोंको बींधना आरम्भ किया। शत्रुओंकी हाथी, घोड़े, रथ और पैदलसहित समस्त चतुरङ्गिणी सेनाको उन्होंने यमलोक पहुँचा दिया तथा अपने साथ युद्ध करनेवाले भयंकर राक्षस खर, दूषण एवं त्रिशिराको भी मौतके घाट उतार दिया। अब शूर्पणखा लङ्कामें गयी और रावणके सामने जा पृथ्वीपर गिर पड़ी। उसने क्रोधमें भरकर रावणसे कहा—'अरे! तू राजा और रक्षक कहलानेयोग्य नहीं है। खर आदि समस्त राक्षसोंका संहार करनेवाले रामकी पत्नी सीताको हर ले। मैं राम और लक्ष्मणका रक्त पीकर ही जीवित रहूँगी; अन्यथा नहीं'॥ ६—१२॥

शूर्पणखाकी बात सुनकर रावणने कहा—'अच्छा, ऐसा ही होगा।' फिर उसने मारीचसे कहा—'तुम स्वर्णमय विचित्र मृगका रूप धारण करके सीताके सामने जाओ और राम तथा लक्ष्मणको अपने पीछे आश्रमसे दूर हटा ले जाओ। मैं सीताका हरण करूँगा। यदि मेरी बात न मानोगे, तो तुम्हारी मृत्यु निश्चित है।' मारीचने रावणसे कहा—'रावण! धनुर्धर राम साक्षात् मृत्यु हैं।' फिर उसने मन-ही-मन सोचा—'यदि नहीं जाऊँगा, तो रावणके हाथसे मरना होगा और जाऊँगा तो श्रीरामके हाथसे। इस प्रकार यदि मरना अनिवार्य है तो इसके लिये श्रीराम ही श्रेष्ठ हैं, रावण नहीं; [क्योंकि श्रीरामके हाथसे मृत्यु होनेपर मेरी मुक्ति हो जायगी।] ऐसा विचारकर वह मृगरूप धारण करके सीताके सामने बारंबार आने-जाने लगा। तब सीताजीकी प्रेरणासे श्रीरामने [दूरतक उसका पीछा करके] उसे अपने बाणसे मार डाला। मरते समय उस मृगने 'हा सीते! हा लक्ष्मण!' कहकर पुकार लगायी। उस समय सीताके कहनेसे लक्ष्मण अपनी इच्छाके विरुद्ध श्रीरामचन्द्रजीके पास गये। इसी बीचमें रावणने भी मौका पाकर सीताको हर लिया। मार्गमें जाते समय उसने गृध्रराज जटायुका वध किया। जटायुने भी उसके रथको नष्ट कर डाला था। रथ न रहनेपर रावणने सीताको कंधेपर बिठा लिया और उन्हें लङ्कामें ले जाकर अशोकवाटिकामें रखा। वहाँ सीतासे बोला—'तुम मेरी पटरानी बन जाओ।' फिर राक्षसियोंकी ओर देखकर कहा—'निशाचरियो! इसकी रखवाली करो'॥ १३—१९$\frac{1}{2}$॥

उधर श्रीरामचन्द्रजी जब मारीचको मारकर लौटे, तो लक्ष्मणको आते देख बोले—'सुमित्रानन्दन! वह मृग तो मायामय था—वास्तवमें वह एक राक्षस था; किंतु तुम जो इस समय यहाँ आ गये, इससे जान पड़ता है, निश्चय ही कोई सीताको हर ले गया।' श्रीरामचन्द्रजी

आश्रमपर गये; किंतु वहाँ सीता नहीं दिखायी दीं। उस समय वे आर्त होकर शोक और विलाप करने लगे—'हा प्रिये जानकी! तू मुझे छोड़कर कहाँ चली गयी?' लक्ष्मणने श्रीरामको सान्त्वना दी। तब वे वनमें घूम-घूम सीताकी खोज करने लगे। इसी समय इनकी जटायुसे भेंट हुई। जटायुने यह कहकर कि 'सीताको रावण हर ले गया है' प्राण त्याग दिया। तब श्रीरघुनाथजीने अपने हाथसे जटायुका दाह-संस्कार किया। इसके बाद इन्होंने कबन्धका वध किया। कबन्धने शापमुक्त होनेपर श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'आप सुग्रीवसे मिलिये'॥ २०—२४॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'रामायण-कथाके अन्तर्गत अरण्यकाण्डकी कथाका वर्णन'-विषयक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

किष्किन्धाकाण्डकी संक्षिप्त कथा

नारदजी कहते हैं—श्रीरामचन्द्रजी पम्पा-सरोवरपर जाकर सीताके लिये शोक करने लगे। वहाँ वे शबरीसे मिले। फिर हनुमान्‌जीसे उनकी भेंट हुई। हनुमान्‌जी उन्हें सुग्रीवके पास ले गये और सुग्रीवके साथ उनकी मित्रता करायी। श्रीरामचन्द्रजीने सबके देखते-देखते ताड़के सात वृक्षोंको एक ही बाणसे बींध डाला और दुन्दुभि नामक दानवके विशाल शरीरको पैरकी ठोकरसे दस योजन दूर फेंक दिया। इसके बाद सुग्रीवके शत्रु वालीको, जो भाई होते हुए भी उनके साथ वैर रखता था, मार डाला और किष्किन्धापुरी, वानरोंका साम्राज्य, रुमा एवं तारा—इन सबको ऋष्यमूक पर्वतपर वानरराज सुग्रीवके अधीन कर दिया। तदनन्तर किष्किन्धापुरीके स्वामी सुग्रीवने कहा—'श्रीराम! आपको सीताजीकी प्राप्ति जिस प्रकार भी हो सके, ऐसा उपाय मैं कर रहा हूँ।' यह सुननेके बाद श्रीरामचन्द्रजीने माल्यवान् पर्वतके शिखरपर वर्षाके चार महीने व्यतीत किये और सुग्रीव किष्किन्धामें रहने लगे। चौमासेके बाद भी जब सुग्रीव दिखायी नहीं दिये, तब श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे लक्ष्मणने किष्किन्धामें जाकर कहा—'सुग्रीव! तुम श्रीरामचन्द्रजीके पास चलो। अपनी प्रतिज्ञापर अटल रहो, नहीं तो वाली मरकर जिस मार्गसे गया है, वह मार्ग अभी बंद नहीं हुआ है। अतएव वालीके पथका अनुसरण न करो।' सुग्रीवने कहा—'सुमित्रानन्दन! विषयभोगमें आसक्त हो जानेके कारण मुझे बीते हुए समयका भान न रहा। [अतः मेरे अपराधको क्षमा कीजिये]'॥ १—७॥

ऐसा कहकर वानरराज सुग्रीव श्रीरामचन्द्रजीके पास गये और उन्हें नमस्कार करके बोले—'भगवन्! मैंने सब वानरोंको बुला लिया है। अब आपकी इच्छाके अनुसार सीताजीकी खोज करनेके लिये उन्हें भेजूँगा। वे पूर्वादि दिशाओंमें जाकर एक महीनेतक सीताजीकी खोज करें। जो एक महीनेके बाद लौटेगा, उसे मैं मार डालूँगा।' यह सुनकर बहुत-से वानर पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशाओंके मार्गपर चल पड़े तथा वहाँ जनककुमारी सीताको न पाकर नियत समयके भीतर श्रीराम और सुग्रीवके पास लौट आये। हनुमान्‌जी श्रीरामचन्द्रजीकी दी हुई अँगूठी लेकर अन्य वानरोंके साथ दक्षिण दिशामें जानकीजीकी खोज कर रहे थे। वे लोग सुप्रभाकी गुफाके निकट विन्ध्यपर्वतपर ही एक माससे अधिक कालतक ढूँढ़ते फिरे; किंतु उन्हें सीताजीका दर्शन नहीं हुआ। अन्तमें निराश होकर आपसमें कहने लगे—

'हमलोगोंको व्यर्थ ही प्राण देने पड़ेंगे। धन्य है वह जटायु, जिसने सीताके लिये रावणके द्वारा मारा जाकर युद्धमें प्राण त्याग दिया था'॥ ८—१३॥

उनकी ये बातें सम्पाति नामक गृध्रके कानोंमें पड़ीं। वह वानरोंके (प्राणत्यागकी चर्चासे उनके) खानेकी ताकमें लगा था। किंतु जटायुकी चर्चा सुनकर रुक गया और बोला—'वानरो! जटायु मेरा भाई था। वह मेरे ही साथ सूर्यमण्डलकी ओर उड़ा चला जा रहा था। मैंने अपनी पाँखोंकी ओटमें रखकर सूर्यकी प्रखर किरणोंके तापसे उसे बचाया। अतः वह तो सकुशल बच गया; किंतु मेरी पाँखें जल गयीं, इसलिये मैं यहीं गिर पड़ा। आज श्रीरामचन्द्रजीकी वार्ता सुननेसे फिर मेरे पंख निकल आये। अब मैं जानकीको देखता हूँ; वे लङ्कामें अशोक-वाटिकाके भीतर हैं। लवणसमुद्रके द्वीपमें त्रिकूट पर्वतपर लङ्का बसी हुई है। यहाँसे वहाँतकका समुद्र सौ योजन विस्तृत है। यह जानकर सब वानर श्रीराम और सुग्रीवके पास जायँ और उन्हें सब समाचार बता दें'॥ १४—१७॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'रामायण-कथाके अन्तर्गत किष्किन्धाकाण्डकी कथाका वर्णन' नामक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८॥

नवाँ अध्याय

सुन्दरकाण्डकी संक्षिप्त कथा

नारदजी कहते हैं—सम्पातिकी बात सुनकर हनुमान् और अङ्गद आदि वानरोंने समुद्रकी ओर देखा। फिर वे कहने लगे—'कौन समुद्रको लाँघकर समस्त वानरोंको जीवन-दान देगा?' वानरोंकी जीवन-रक्षा और श्रीरामचन्द्रजीके कार्यकी प्रकृष्ट सिद्धिके लिये पवनकुमार हनुमान्जी सौ योजन विस्तृत समुद्रको लाँघ गये। लाँघते समय अवलम्बन देनेके लिये समुद्रसे मैनाक पर्वत उठा। हनुमान्जीने दृष्टिमात्रसे उसका सत्कार किया। फिर [छायाग्राहिणी] सिंहिकाने सिर उठाया। [वह उन्हें अपना ग्रास बनाना चाहती थी, इसलिये] हनुमान्जीने उसे मार गिराया। समुद्रके पार जाकर उन्होंने लङ्कापुरी देखी। राक्षसोंके घरोंमें खोज की; रावणके अन्तःपुरमें तथा कुम्भ, कुम्भकर्ण, विभीषण, इन्द्रजित् तथा अन्य राक्षसोंके गृहोंमें जा-जाकर तलाश की; मद्यपानके स्थानों आदिमें भी चक्कर लगाया; किंतु कहीं भी सीता उनकी दृष्टिमें नहीं पड़ीं। अब वे बड़ी चिन्तामें पड़े। अन्तमें जब अशोकवाटिकाकी ओर गये तो वहाँ शिंशपा-वृक्षके नीचे सीताजी उन्हें बैठी दिखायी दीं। वहाँ राक्षसियाँ उनकी रखवाली कर रही थीं। हनुमान्जीने शिंशपा-वृक्षपर चढ़कर देखा। रावण सीताजीसे कह रहा था—'तू मेरी स्त्री हो जा'; किंतु वे स्पष्ट शब्दोंमें 'ना' कर रही थीं। वहाँ बैठी हुई राक्षसियाँ भी यही कहती थीं—'तू रावणकी स्त्री हो जा।' जब रावण चला गया तो हनुमान्जीने इस प्रकार कहना आरम्भ किया—'अयोध्यामें दशरथ नामवाले एक राजा थे। उनके दो पुत्र राम और लक्ष्मण वनवासके लिये गये। वे दोनों भाई श्रेष्ठ पुरुष हैं। उनमें श्रीरामचन्द्रजीकी पत्नी जनककुमारी सीता तुम्हीं हो। रावण तुम्हें बलपूर्वक हर ले आया है। श्रीरामचन्द्रजी इस समय वानरराज सुग्रीवके मित्र हो गये हैं। उन्होंने तुम्हारी खोज करनेके लिये ही मुझे भेजा है। पहचानके लिये गूढ़ संदेशके साथ श्रीरामचन्द्रजीने अँगूठी दी है। उनकी दी हुई

यह अँगूठी ले लो'॥ १—९॥

सीताजीने अँगूठी ले ली। उन्होंने वृक्षपर बैठे हुए हनुमान्‌जीको देखा। फिर हनुमान्‌जी वृक्षसे उतरकर उनके सामने आ बैठे, तब सीताने उनसे कहा—'यदि श्रीरघुनाथजी जीवित हैं तो वे मुझे यहाँसे ले क्यों नहीं जाते?' इस प्रकार शङ्का करती हुई सीताजीसे हनुमान्‌जीने इस प्रकार कहा—'देवि सीते! तुम यहाँ हो, यह बात श्रीरामचन्द्रजी नहीं जानते। मुझसे यह समाचार जान लेनेके पश्चात् सेनासहित राक्षस रावणको मारकर वे तुम्हें अवश्य ले जायँगे। तुम चिन्ता न करो। मुझे कोई अपनी पहचान दो।' तब सीताजीने हनुमान्‌जीको अपनी चूड़ामणि उतारकर दे दी और कहा—'भैया! अब ऐसा उपाय करो, जिससे श्रीरघुनाथजी शीघ्र आकर मुझे यहाँसे ले चलें। उन्हें कौएकी आँख नष्ट कर देनेवाली घटनाका स्मरण दिलाना; [आज यहीं रहो] कल सबेरे चले जाना; तुम मेरा शोक दूर करनेवाले हो। तुम्हारे आनेसे मेरा दुःख बहुत कम हो गया है।' चूड़ामणि और काकवाली कथाको पहचानके रूपमें लेकर हनुमान्‌जीने कहा—'कल्याणि! तुम्हारे पतिदेव अब तुम्हें शीघ्र ही ले जायँगे। अथवा यदि तुम्हें चलनेकी जल्दी हो, तो मेरी पीठपर बैठ जाओ। मैं आज ही तुम्हें श्रीराम और सुग्रीवके दर्शन कराऊँगा।' सीता बोलीं—'नहीं, श्रीरघुनाथजी ही आकर मुझे ले जायँ'॥ १०—१५ $\frac{1}{2}$॥

तदनन्तर हनुमान्‌जीने रावणसे मिलनेकी युक्ति सोच निकाली। उन्होंने रक्षकोंको मारकर उस वाटिकाको उजाड़ डाला। फिर दाँत और नख आदि आयुधोंसे वहाँ आये हुए रावणके समस्त सेवकोंको मारकर सात मन्त्रिकुमारों तथा रावणपुत्र अक्षयकुमारको भी यमलोक पहुँचा दिया। तत्पश्चात् इन्द्रजित्‌ने आकर उन्हें नागपाशसे बाँध लिया और उन वानरवीरको रावणके पास ले जाकर उससे मिलाया। उस समय रावणने पूछा—'तू कौन है?' तब हनुमान्‌जीने रावणको उत्तर दिया—'मैं श्रीरामचन्द्रजीका दूत हूँ। तुम श्रीसीताजीको श्रीरघुनाथजीकी सेवामें लौटा दो; अन्यथा लङ्कानिवासी समस्त राक्षसोंके साथ तुम्हें श्रीरामके बाणोंसे घायल होकर निश्चय ही मरना पड़ेगा।' यह सुनकर रावण हनुमान्‌जीको मारनेके लिये उद्यत हो गया; किंतु विभीषणने उसे रोक दिया। तब रावणने उनकी पूँछमें आग लगा दी। पूँछ जल उठी। यह देख पवनपुत्र हनुमान्‌जीने राक्षसोंकी पुरी लङ्काको जला डाला और सीताजीका पुनः दर्शन करके उन्हें प्रणाम किया। फिर समुद्रके पार आकर अङ्गद आदिसे कहा—'मैंने सीताजीका दर्शन कर लिया है।' तत्पश्चात् अङ्गद आदिके साथ सुग्रीवके मधुवनमें आकर, दधिमुख आदि रक्षकोंको परास्त करके, मधुपान करनेके अनन्तर वे सब लोग श्रीरामचन्द्रजीके पास आये और बोले—'सीताजीका दर्शन हो गया।' श्रीरामचन्द्रजीने भी अत्यन्त प्रसन्न होकर हनुमान्‌जीसे पूछा—॥ १६—२४॥

श्रीरामचन्द्रजी बोले— कपिवर! तुम्हें सीताका दर्शन कैसे हुआ? उसने मेरे लिये क्या संदेश दिया है? मैं विरहकी आगमें जल रहा हूँ। तुम सीताकी अमृतमयी कथा सुनाकर मेरा संताप शान्त करो॥ २५॥

नारदजी कहते हैं— यह सुनकर हनुमान्‌जीने रघुनाथजीसे कहा—'भगवन्! मैं समुद्र लाँघकर लङ्कामें गया था। वहाँ सीताजीका दर्शन करके, लङ्कापुरीको जलाकर यहाँ आ रहा हूँ। यह सीताजीकी दी हुई चूड़ामणि लीजिये। आप शोक न करें; रावणका वध करनेके पश्चात् निश्चय ही आपको सीताजीकी प्राप्ति होगी।' श्रीरामचन्द्रजी

उस मणिको हाथमें ले, विरहसे व्याकुल होकर रोने लगे और बोले—'इस मणिको देखकर ऐसा जान पड़ता है, मानो मैंने सीताको ही देख लिया। अब मुझे सीताके पास ले चलो; मैं उसके बिना जीवित नहीं रह सकता।' उस समय सुग्रीव आदिने श्रीरामचन्द्रजीको समझा-बुझाकर शान्त किया। तदनन्तर श्रीरघुनाथजी समुद्रके तटपर गये। वहाँ उनसे विभीषण आकर मिले। विभीषणके भाई दुरात्मा रावणने उनका तिरस्कार किया था। विभीषणने इतना ही कहा था कि 'भैया! आप सीताको श्रीरामचन्द्रजीकी सेवामें समर्पित कर दीजिये।' इसी अपराधके कारण उसने इन्हें ठुकरा दिया था। अब वे असहाय थे। श्रीरामचन्द्रजीने विभीषणको अपना मित्र बनाया और लङ्काके राजपदपर अभिषिक्त कर दिया। इसके बाद श्रीरामने समुद्रसे लङ्का जानेके लिये रास्ता माँगा। जब उसने मार्ग नहीं दिया तो उन्होंने बाणोंसे उसे बींध डाला। अब समुद्र भयभीत होकर श्रीरामचन्द्रजीके पास आकर बोला—'भगवन्! नलके द्वारा मेरे ऊपर पुल बँधाकर आप लङ्कामें जाइये। पूर्वकालमें आपहीने मुझे गहरा बनाया था।' यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने नलके द्वारा वृक्ष और शिलाखण्डोंसे एक पुल बँधवाया और उसीसे वे वानरोंसहित समुद्रके पार गये। वहाँ सुवेल पर्वतपर पड़ाव डालकर वहींसे उन्होंने लङ्कापुरीका निरीक्षण किया॥ २६—३३॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'रामायण-कथाके अन्तर्गत सुन्दरकाण्डकी कथाका वर्णन' नामक नवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९॥

दसवाँ अध्याय

युद्धकाण्डकी संक्षिप्त कथा

नारदजी कहते हैं— तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीके आदेशसे अङ्गद रावणके पास गये और बोले—'रावण! तुम जनककुमारी सीताको ले जाकर शीघ्र ही श्रीरामचन्द्रजीको सौंप दो। अन्यथा मारे जाओगे।' यह सुनकर रावण उन्हें मारनेको तैयार हो गया। अङ्गद राक्षसोंको मार-पीटकर लौट आये और श्रीरामचन्द्रजीसे बोले—'भगवन्! रावण केवल युद्ध करना चाहता है।' अङ्गदकी बात सुनकर श्रीरामने वानरोंकी सेना साथ ले युद्धके लिये लङ्कामें प्रवेश किया। हनुमान्, मैन्द, द्विविद, जाम्बवान्, नल, नील, तार, अङ्गद, धूम्र, सुषेण, केसरी, गज, पनस, विनत, रम्भ, शरभ, महाबली कम्पन, गवाक्ष, दधिमुख, गवय और गन्धमादन— ये सब तो वहाँ आये ही, अन्य भी बहुत-से वानर आ पहुँचे। इन असंख्य वानरोंसहित [कपिराज] सुग्रीव भी युद्धके लिये उपस्थित थे। फिर तो राक्षसों और वानरोंमें घमासान युद्ध छिड़ गया। राक्षस वानरोंको बाण, शक्ति और गदा आदिके द्वारा मारने लगे और वानर नख, दाँत एवं शिला आदिके द्वारा राक्षसोंका संहार करने लगे। राक्षसोंकी हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंसे युक्त चतुरङ्गिणी सेना नष्ट-भ्रष्ट हो गयी। हनुमान्ने पर्वतशिखरसे अपने वैरी धूम्राक्षका वध कर डाला। नीलने भी युद्धके लिये सामने आये हुए अकम्पन और प्रहस्तको मौतके घाट उतार दिया॥ १—८॥

श्रीराम और लक्ष्मण यद्यपि इन्द्रजित्के नागास्त्रसे बँध गये थे, तथापि गरुड़की दृष्टि पड़ते ही उससे मुक्त हो गये। तत्पश्चात् उन दोनों भाइयोंने बाणोंसे राक्षसी सेनाका संहार आरम्भ किया।

श्रीरामने रावणको युद्धमें अपने बाणोंकी मारसे जर्जरित कर डाला। इससे दुःखित होकर रावणने कुम्भकर्णको सोतेसे जगाया। जागनेपर कुम्भकर्णने हजार घड़े मदिरा पीकर कितने ही भैंस आदि पशुओंका भक्षण किया। फिर रावणसे कुम्भकर्ण बोला—'सीताका हरण करके तुमने पाप किया है। तुम मेरे बड़े भाई हो, इसीलिये तुम्हारे कहनेसे युद्ध करने जाता हूँ। मैं वानरोंसहित रामको मार डालूँगा'॥ ९—१२॥

ऐसा कहकर कुम्भकर्णने समस्त वानरोंको कुचलना आरम्भ किया। एक बार उसने सुग्रीवको पकड़ लिया, तब सुग्रीवने उसकी नाक और कान काट लिये। नाक और कानसे रहित होकर वह वानरोंका भक्षण करने लगा। यह देख श्रीरामचन्द्रजीने अपने बाणोंसे कुम्भकर्णकी दोनों भुजाएँ काट डालीं। इसके बाद उसके दोनों पैर तथा मस्तक काटकर उसे पृथ्वीपर गिरा दिया। तदनन्तर कुम्भ, निकुम्भ, राक्षस मकराक्ष, महोदर, महापार्श्व, मत्त, राक्षसश्रेष्ठ उन्मत्त, प्रघस, भासकर्ण, विरूपाक्ष, देवान्तक, नरान्तक, त्रिशिरा और अतिकाय युद्धमें कूद पड़े। तब इनको तथा और भी बहुत-से युद्धपरायण राक्षसोंको श्रीराम, लक्ष्मण, विभीषण एवं वानरोंने पृथ्वीपर सुला दिया। तत्पश्चात् इन्द्रजित् (मेघनाद)-ने मायासे युद्ध करते हुए वरदानमें प्राप्त हुए नागपाशद्वारा श्रीराम और लक्ष्मणको बाँध लिया। उस समय हनुमान्‌जीके द्वारा लाये हुए पर्वतपर उगी हुई 'विशल्या' नामकी ओषधिसे श्रीराम और लक्ष्मणके घाव अच्छे हुए। उनके शरीरसे बाण निकाल दिये गये। हनुमान्‌जी पर्वतको जहाँसे लाये थे, वहीं उसे पुनः रख आये। इधर मेघनाद निकुम्भिलादेवीके मन्दिरमें होम आदि करने लगा। उस समय लक्ष्मणने अपने बाणोंसे इन्द्रको भी परास्त कर देनेवाले उस वीरको युद्धमें मार गिराया। पुत्रकी मृत्युका समाचार पाकर रावण शोकसे संतप्त हो उठा और सीताको मार डालनेके लिये उद्यत हो उठा; किंतु अविन्ध्यके मना करनेसे वह मान गया और रथपर बैठकर सेनासहित युद्धभूमिमें गया। तब इन्द्रके आदेशसे मातलिने आकर श्रीरघुनाथजीको भी देवराज इन्द्रके रथपर बिठाया॥ १३—२२॥

श्रीराम और रावणका युद्ध श्रीराम और रावणके युद्धके ही समान था—उसकी कहीं भी दूसरी कोई उपमा नहीं थी। रावण वानरोंपर प्रहार करता था और हनुमान् आदि वानर रावणको चोट पहुँचाते थे। जैसे मेघ पानी बरसाता है, उसी प्रकार श्रीरघुनाथजीने रावणके ऊपर अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। उन्होंने रावणके रथ, ध्वज, अश्व, सारथि, धनुष, बाहु और मस्तक काट डाले। काटे हुए मस्तकोंके स्थानपर दूसरे नये मस्तक उत्पन्न हो जाते थे। यह देखकर श्रीरामचन्द्रजीने ब्रह्मास्त्रके द्वारा रावणका वक्षःस्थल विदीर्ण करके उसे रणभूमिमें गिरा दिया। उस समय [मरनेसे बचे हुए सब] राक्षसोंके साथ रावणकी अनाथा स्त्रियाँ विलाप करने लगीं। तब श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे विभीषणने उन सबको सान्त्वना दे, रावणके शवका दाह-संस्कार किया। तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने हनुमान्‌जीके द्वारा सीताजीको बुलवाया। यद्यपि वे स्वरूपसे ही नित्य शुद्ध थीं, तो भी उन्होंने अग्निमें प्रवेश करके अपनी विशुद्धताका परिचय दिया। तत्पश्चात् रघुनाथजीने उन्हें स्वीकार किया। इसके बाद इन्द्रादि देवताओंने उनका स्तवन किया। फिर ब्रह्माजी तथा स्वर्गवासी महाराज दशरथने आकर स्तुति करते हुए कहा—'श्रीराम! तुम राक्षसोंका संहार करनेवाले साक्षात् श्रीविष्णु हो।' फिर

श्रीरामके अनुरोधसे इन्द्रने अमृत बरसाकर मरे हुए वानरोंको जीवित कर दिया। समस्त देवता युद्ध देखकर, श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा पूजित हो, स्वर्गलोकमें चले गये। श्रीरामचन्द्रजीने लङ्काका राज्य विभीषणको दे दिया और वानरोंका विशेष सम्मान किया॥ २३—२९ ॥

फिर सबको साथ ले, सीतासहित पुष्पक विमानपर बैठकर श्रीराम जिस मार्गसे आये थे, उसीसे लौट चले। मार्गमें वे सीताको प्रसन्नचित्त होकर वनों और दुर्गम स्थानोंको दिखाते जा रहे थे। प्रयागमें महर्षि भरद्वाजको प्रणाम करके वे अयोध्याके पास नन्दिग्राममें आये। वहाँ भरतने उनके चरणोंमें प्रणाम किया। फिर वे अयोध्यामें आकर वहीं रहने लगे। सबसे पहले उन्होंने महर्षि वसिष्ठ आदिको नमस्कार करके क्रमशः कौसल्या, कैकेयी और सुमित्राके चरणोंमें मस्तक झुकाया। फिर राज्य-ग्रहण करके ब्राह्मणों आदिका पूजन किया। अश्वमेध-यज्ञ करके उन्होंने अपने आत्मस्वरूप श्रीवासुदेवका यजन किया, सब प्रकारके दान दिये और प्रजाजनोंका पुत्रवत् पालन करने लगे। उन्होंने धर्म और कामादिका भी सेवन किया तथा वे दुष्टोंको सदा दण्ड देते रहे। उनके राज्यमें सब लोग धर्मपरायण थे तथा पृथ्वीपर सब प्रकारकी खेती फली-फूली रहती थी। श्रीरघुनाथजीके शासनकालमें किसीकी अकालमृत्यु भी नहीं होती थी॥ ३०—३५ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'रामायण-कथाके अन्तर्गत युद्धकाण्डकी कथाका वर्णन' नामक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १० ॥

ग्यारहवाँ अध्याय

उत्तरकाण्डकी संक्षिप्त कथा

नारदजी कहते हैं— जब रघुनाथजी अयोध्याके राजसिंहासनपर आसीन हो गये, तब अगस्त्य आदि महर्षि उनका दर्शन करनेके लिये गये। वहाँ उनका भलीभाँति स्वागत-सत्कार हुआ। तदनन्तर उन ऋषियोंने कहा—'भगवन्! आप धन्य हैं, जो लङ्कामें विजयी हुए और इन्द्रजित्-जैसे राक्षसको मार गिराया। [अब हम उनकी उत्पत्ति-कथा बतलाते हैं, सुनिये—] ब्रह्माजीके पुत्र मुनिवर पुलस्त्य हुए और पुलस्त्यसे महर्षि विश्रवाका जन्म हुआ। उनकी दो पत्नियाँ थीं—पुण्योत्कटा और कैकसी। उनमें पुण्योत्कटा ज्येष्ठ थी। उसके गर्भसे धनाध्यक्ष कुबेरका जन्म हुआ। कैकसीके गर्भसे पहले रावणका जन्म हुआ, जिसके दस मुख और बीस भुजाएँ थीं। रावणने तपस्या की और ब्रह्माजीने उसे वरदान दिया, जिससे उसने समस्त देवताओंको जीत लिया। कैकसीके दूसरे पुत्रका नाम कुम्भकर्ण और तीसरेका विभीषण था। कुम्भकर्ण सदा नींदमें ही पड़ा रहता था; किंतु विभीषण बड़े धर्मात्मा हुए। इन तीनोंकी बहन शूर्पणखा हुई। रावणसे मेघनादका जन्म हुआ। उसने इन्द्रको जीत लिया था, इसलिये 'इन्द्रजित्'के नामसे उसकी प्रसिद्धि हुई। वह रावणसे भी अधिक बलवान् था। परंतु देवताओं आदिके कल्याणकी इच्छा रखनेवाले आपने लक्ष्मणके द्वारा उसका वध करा दिया।' ऐसा कहकर वे अगस्त्य आदि ब्रह्मर्षि श्रीरघुनाथजीके द्वारा अभिनन्दित हो अपने-अपने आश्रमको चले गये। तदनन्तर देवताओंकी प्रार्थनासे प्रभावित श्रीरामचन्द्रजीके आदेशसे शत्रुघ्नने लवणासुरको मारकर एक पुरी बसायी, जो 'मथुरा' नामसे

प्रसिद्ध हुई। तत्पश्चात् भरतने श्रीरामकी आज्ञा पाकर सिन्धु-तीर-निवासी शैलूष नामक बलोन्मत्त गन्धर्वका तथा उसके तीन करोड़ वंशजोंका अपने तीखे बाणोंसे संहार किया। फिर उस देशके [गान्धार और मद्र] दो विभाग करके, उनमें अपने पुत्र तक्ष और पुष्करको स्थापित कर दिया॥ १—९॥

इसके बाद भरत और शत्रुघ्न अयोध्यामें चले आये और वहाँ श्रीरघुनाथजीकी आराधना करते हुए रहने लगे। श्रीरामचन्द्रजीने दुष्ट पुरुषोंका युद्धमें संहार किया और शिष्ट पुरुषोंका दान आदिके द्वारा भलीभाँति पालन किया। उन्होंने लोकापवादके भयसे अपनी धर्मपत्नी सीताको वनमें छोड़ दिया था। वहाँ वाल्मीकि मुनिके आश्रममें उनके गर्भसे दो श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके नाम कुश और लव थे। उनके उत्तम चरित्रोंको सुनकर श्रीरामचन्द्रजीको भलीभाँति निश्चय हो गया कि ये मेरे ही पुत्र हैं। तत्पश्चात् उन दोनोंको कोसलके दो राज्योंपर अभिषिक्त करके, 'मैं ब्रह्म हूँ' इसकी भावनापूर्वक ध्यान-योगमें स्थित होकर उन्होंने देवताओंकी प्रार्थनासे भाइयों और पुरवासियोंसहित अपने परमधाममें प्रवेश किया। अयोध्यामें ग्यारह हजार वर्षोंतक राज्य करके वे अनेक यज्ञोंका अनुष्ठान कर चुके थे। उनके बाद सीताके पुत्र कोसल जनपदके राजा हुए॥ १०—१३॥

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठजी! देवर्षि नारदसे यह कथा सुनकर महर्षि वाल्मीकिने विस्तारपूर्वक रामायण नामक महाकाव्यकी रचना की। जो इस प्रसङ्गको सुनता है, वह स्वर्गलोकको जाता है॥ १४॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'रामायण-कथाके अन्तर्गत उत्तरकाण्डकी कथाका वर्णन' नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११॥

बारहवाँ अध्याय

हरिवंशका वर्णन एवं श्रीकृष्णावतारकी संक्षिप्त कथा

अग्निदेव कहते हैं—अब मैं हरिवंशका वर्णन करूँगा। श्रीविष्णुके नाभि-कमलसे ब्रह्माजीका प्रादुर्भाव हुआ। ब्रह्माजीसे अत्रि, अत्रिसे सोम, सोमसे [बुध एवं बुधसे] पुरूरवा उत्पन्न हुए। पुरूरवासे आयु, आयुसे नहुष तथा नहुषसे ययातिका जन्म हुआ। ययातिकी पहली पत्नी देवयानीने यदु और तुर्वसु नामक दो पुत्रोंको जन्म दिया। उनकी दूसरी पत्नी शर्मिष्ठाके गर्भसे, जो वृषपर्वाकी पुत्री थी, द्रुह्यु, अनु और पूरु—ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए। यदुके वंशमें 'यादव' नामसे प्रसिद्ध क्षत्रिय हुए। उन सबमें भगवान् वासुदेव सर्वश्रेष्ठ थे। परम पुरुष भगवान् विष्णु ही इस पृथ्वीका भार उतारनेके लिये वसुदेव और देवकीके पुत्ररूपमें प्रकट हुए थे। भगवान् विष्णुकी प्रेरणासे योग-निद्राने क्रमशः छः गर्भ, जो पूर्वजन्ममें हिरण्यकशिपुके पुत्र थे, देवकीके उदरमें स्थापित किये। देवकीके उदरसे सातवें गर्भके रूपमें बलभद्रजी प्रकट हुए थे। ये देवकीसे रोहिणीके गर्भमें खींचकर लाये गये थे, इसलिये [संकर्षण तथा] रौहिणेय कहलाये। तदनन्तर श्रावण मासके*

* शुक्ल पक्षकी प्रतिपदासे लेकर कृष्णपक्षकी अमावस्यातक एक मास होता है। इस मान्यताके अनुसार गणना करनेपर आजकी गणनाके अनुसार जो भाद्रपद कृष्ण अष्टमी है, वही श्रावण कृष्ण अष्टमी सिद्ध होती है। गुजरात, महाराष्ट्रमें अब भी ऐसा ही मानते हैं।

कृष्णपक्षकी अष्टमीको आधी रातके समय चार भुजाधारी भगवान् श्रीहरि प्रकट हुए। उस समय देवकी और वसुदेवने उनका स्तवन किया। फिर वे दो बाँहोंवाले नन्हें-से बालक बन गये। वसुदेवने कंसके भयसे अपने शिशुको यशोदाकी शय्यापर पहुँचा दिया और यशोदाकी नवजात बालिकाको देवकीकी शय्यापर लाकर सुला दिया। बच्चेके रोनेकी आवाज सुनकर कंस आ पहुँचा और देवकीके मना करनेपर भी उसने उस बालिकाको उठाकर शिलापर पटक दिया। उसने आकाशवाणीसे सुन रखा था कि देवकीके आठवें गर्भसे मेरी मृत्यु होगी। इसीलिये उसने देवकीके उत्पन्न हुए सभी शिशुओंको मार डाला था॥ १—९॥

कंसके द्वारा शिलापर पटकी हुई वह बालिका आकाशमें उड़ गयी और वहींसे इस प्रकार बोली—'कंस! मुझे पटकनेसे तुम्हारा क्या लाभ हुआ? जिनके हाथसे तुम्हारा वध होगा वे देवताओंके सर्वस्वभूत भगवान् तो इस पृथ्वीका भार उतारनेके लिये अवतार ले चुके'॥ १०-११॥

ऐसा कहकर वह चली गयी। उसीने देवताओंकी प्रार्थनासे शुम्भ आदि दैत्योंका वध किया। तब इन्द्रने इस प्रकार स्तुति की—'जो आर्या, दुर्गा, वेदगर्भा, अम्बिका, भद्रकाली, भद्रा, क्षेम्या, क्षेमकरी तथा नैकबाहु[1] आदि नामोंसे प्रसिद्ध हैं, उन जगदम्बाको मैं नमस्कार करता हूँ।' जो तीनों समय इन नामोंका पाठ करता है, उसकी सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं।[2] उधर कंसने भी (बालिकाकी बात सुनकर) नवजात शिशुओंका वध करनेके लिये पूतना आदिको सब ओर भेजा। कंस आदिसे डरे हुए वसुदेवने अपने दोनों पुत्रोंकी रक्षाके लिये उन्हें गोकुलमें यशोदापति नन्दजीको सौंप दिया था। वहाँ बलराम और श्रीकृष्ण—दोनों भाई गौओं तथा ग्वालबालोंके साथ विचरा करते थे। यद्यपि वे सम्पूर्ण जगत्के पालक थे, तो भी व्रजमें गोपालक बनकर रहे। एक बार श्रीकृष्णके ऊधमसे तंग आकर मैया यशोदाने उन्हें रस्सीसे ऊखलमें बाँध दिया। वे ऊखल घसीटते हुए दो अर्जुन-वृक्षोंके बीचसे निकले। इससे वे दोनों वृक्ष टूटकर गिर पड़े। एक दिन श्रीकृष्ण एक छकड़ेके नीचे सो रहे थे। वे माताका स्तनपान करनेकी इच्छासे अपने पैर फेंक-फेंककर रोने लगे। उनके पैरका हलका-सा आघात लगते ही छकड़ा उलट गया॥ १२—१७॥

पूतना अपना स्तन पिलाकर श्रीकृष्णको मारनेके लिये उद्यत थी; किंतु श्रीकृष्णने ही उसका काम तमाम कर दिया। उन्होंने वृन्दावनमें जानेके पश्चात् कालियनागको परास्त किया और उसे यमुनाके कुण्डसे निकालकर समुद्रमें भेज दिया। बलरामजीके साथ जा, गदहेका रूप धारण करनेवाले धेनुकासुरको मारकर, उन्होंने तालवनको क्षेमयुक्त स्थान बना दिया तथा वृषभरूपधारी अरिष्टासुर और अश्वरूपधारी केशीको मार डाला। फिर श्रीकृष्णने इन्द्रयागके उत्सवको बंद कराया और उसके स्थानमें गिरिराज गोवर्धनकी पूजा प्रचलित की। इससे कुपित हो इन्द्रने जो वर्षा आरम्भ की, उसका निवारण श्रीकृष्णने गोवर्धन पर्वतको धारण करके किया। अन्तमें महेन्द्रने आकर उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया और उन्हें 'गोविन्द'की पदवी दी। फिर अपने पुत्र अर्जुनको

१. नैकबाहुका अर्थ है—अनेक बाँहोंवाली। इससे द्विभुजा, चतुर्भुजा, अष्टभुजा तथा अष्टादशभुजा आदि सभी देवियोंका ग्रहण हो जाता है।

२. आर्या दुर्गा वेद गर्भा अम्बिका भद्रकाल्यपि। भद्रा क्षेम्या क्षेमकरी नैकबाहुर्नमामि ताम्॥
त्रिसंध्यं यः पठेन्नाम सर्वान् कामान् स चाप्नुयात्॥ (अग्नि० १२। १२-१३)

उन्हें सौंपा। इससे संतुष्ट होकर श्रीकृष्णने पुनः इन्द्रयागका भी उत्सव कराया। तदनन्तर एक दिन वे दोनों भाई कंसका संदेश लेकर आये हुए अक्रूरके साथ रथपर बैठकर मथुरा चले गये। जाते समय श्रीकृष्णमें अनुराग रखनेवाली गोपियाँ, जिनके साथ वे भाँति-भाँतिकी मधुर लीलाएँ कर चुके थे, उन्हें बहुत देरतक निहारती रहीं। मार्गमें अक्रूरने उनकी स्तुति की। मथुरामें एक रजक (धोबी) को, जो बहुत बढ़-बढ़कर बातें बना रहा था, मारकर श्रीकृष्णने उससे सारे वस्त्र ले लिये॥ १८—२३॥

एक मालीके द्वारपर उन्होंने बलरामजीके साथ फूलकी मालाएँ धारण कीं और मालीको उत्तम वर दिया। कंसकी दासी कुब्जाने उनके शरीरमें चन्दनका लेप कर दिया, इससे प्रसन्न होकर उन्होंने उसका कुबड़ापन दूर कर दिया—उसे सुडौल एवं सुन्दरी बना दिया। आगे जानेपर रङ्गशालाके द्वारपर खड़े हुए कुवलयापीड नामक मतवाले हाथीको मारा और रङ्गभूमिमें प्रवेश करके श्रीकृष्णने मञ्चपर बैठे हुए कंस आदि राजाओंके समक्ष चाणूर नामक मल्लके साथ [उसके ललकारनेपर] कुश्ती लड़ी और बलरामने मुष्टिक नामवाले पहलवानके साथ दंगल शुरू किया। उन दोनों भाइयोंने चाणूर, मुष्टिक तथा अन्य पहलवानोंको भी [बात-की-बातमें] मार गिराया। तत्पश्चात् श्रीहरिने मथुराधिपति कंसको मारकर उसके पिता उग्रसेनको यदुवंशियोंका राजा बनाया। कंसके दो रानियाँ थीं—अस्ति और प्राप्ति। वे दोनों जरासन्धकी पुत्रियाँ थीं। उनकी प्रेरणासे जरासन्धने मथुरापुरीपर घेरा डाल दिया और यदुवंशियोंके साथ बाणोंसे युद्ध करने लगा। बलराम और श्रीकृष्ण जरासन्धको परास्त करके मथुरा छोड़कर गोमन्त पर्वतपर चले आये और द्वारका नगरीका निर्माण करके वहीं यदुवंशियोंके साथ रहने लगे। उन्होंने युद्धमें वासुदेव नाम धारण करनेवाले पौण्ड्रकको भी मारा तथा भूमिपुत्र नरकासुरका वध करके उसके द्वारा हरकर लायी हुई देवता, गन्धर्व तथा यक्षोंकी कन्याओंके साथ विवाह किया। श्रीकृष्णके सोलह हजार आठ रानियाँ थीं, उनमें रुक्मिणी आदि प्रधान थीं॥ २४—३१॥

इसके बाद नरकासुरका दमन करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण सत्यभामाके साथ गरुडपर आरूढ़ हो स्वर्गलोकमें गये। वहाँसे इन्द्रको परास्त करके रत्नोंसहित मणिपर्वत तथा पारिजात वृक्ष उठा लाये और उन्हें सत्यभामाके भवनमें स्थापित कर दिया। श्रीकृष्णने सान्दीपनि मुनिसे अस्त्र-शस्त्रोंकी शिक्षा ग्रहण की थी। शिक्षा पानेके अनन्तर उन्होंने गुरुदक्षिणाके रूपमें गुरुके मरे हुए बालकको लाकर दिया था। इसके लिये उन्हें 'पञ्चजन' नामक दैत्यको परास्त करके यमराजके लोकमें भी जाना पड़ा था। वहाँ यमराजने उनकी बड़ी पूजा की थी। उन्होंने राजा मुचुकुन्दके द्वारा कालयवनका वध करवा दिया। उस समय मुचुकुन्दने भी भगवान्‌की पूजा की। भगवान् श्रीकृष्ण वसुदेव, देवकी तथा भगवद्भक्त ब्राह्मणोंका बड़ा आदर-सत्कार करते थे। बलभद्रजीके द्वारा रेवतीके गर्भसे निशठ और उल्मुक नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। श्रीकृष्णद्वारा जाम्बवतीके गर्भसे साम्बका जन्म हुआ। इसी प्रकार अन्य रानियोंसे अन्यान्य पुत्र उत्पन्न हुए। रुक्मिणीके गर्भसे प्रद्युम्नका जन्म हुआ था। वे अभी छः दिनके थे, तभी शम्बरासुर उन्हें मायाबलसे हर ले गया। उसने बालकको समुद्रमें फेंक दिया। समुद्रमें एक मत्स्य उसे निगल गया। उस मत्स्यको एक मल्लाहने पकड़ा और शम्बरासुरको भेंट किया।

फिर शम्बरासुरने उस मत्स्यको मायावतीके हवाले कर दिया। मायावतीने मत्स्यके पेटमें अपने पतिको देखकर बड़े आदरसे उसका पालन-पोषण किया। बड़े हो जानेपर मायावतीने प्रद्युम्नसे कहा—'नाथ! मैं आपकी पत्नी रति हूँ और आप मेरे पति कामदेव हैं। पूर्वकालमें भगवान् शङ्करने आपको अनङ्ग (शरीररहित) कर दिया था। आपके न रहनेसे शम्बरासुर मुझे हर लाया है। मैंने उसकी पत्नी होना स्वीकार नहीं किया है। आप मायाके ज्ञाता हैं, अतः शम्बरासुरको मार डालिये'॥ ३२—३९॥

यह सुनकर प्रद्युम्नने शम्बरासुरका वध किया और अपनी भार्या मायावतीके साथ वे श्रीकृष्णके पास चले गये। उनके आगमनसे श्रीकृष्ण और रुक्मिणीको बड़ी प्रसन्नता हुई। प्रद्युम्नसे उदारबुद्धि अनिरुद्धका जन्म हुआ। बड़े होनेपर वे उषाके स्वामी हुए। राजा बलिके बाण नामक पुत्र था। उषा उसीकी पुत्री थी। उसका निवासस्थान शोणितपुरमें था। बाणने बड़ी भारी तपस्या की, जिससे प्रसन्न होकर भगवान् शिवने उसको अपना पुत्र मान लिया था। एक दिन शिवजीने बलोन्मत्त बाणासुरकी युद्धविषयक इच्छासे संतुष्ट होकर उससे कहा—'बाण! जिस दिन तुम्हारे महलका मयूरध्वज अपने-आप टूटकर गिर जाय, उस दिन यह समझना कि तुम्हें युद्ध प्राप्त होगा।' एक दिन कैलास पर्वतपर भगवती पार्वती भगवान् शङ्करके साथ क्रीडा कर रही थीं। उन्हें देखकर उषाके मनमें भी पतिकी अभिलाषा जाग्रत् हुई। पार्वतीजीने उसके मनोभावको समझकर कहा—'वैशाख मासकी द्वादशी तिथिको रातके समय स्वप्नमें जिस पुरुषका तुम्हें दर्शन होगा, वही तुम्हारा पति होगा।' पार्वतीजीकी यह बात सुनकर उषा बहुत प्रसन्न हुई। उक्त तिथिको जब वह अपने घरमें सो गयी, तो उसे वैसा ही स्वप्न दिखायी दिया। उषाकी एक सखी चित्रलेखा थी। वह बाणासुरके मन्त्री कुम्भाण्डकी कन्या थी। उसके बनाये हुए चित्रपटसे उषाने अनिरुद्धको पहचाना कि वे ही स्वप्नमें उससे मिले थे। उसने चित्रलेखाके ही द्वारा श्रीकृष्ण-पौत्र अनिरुद्धको द्वारकासे अपने यहाँ बुला मँगाया। अनिरुद्ध आये और उषाके साथ विहार करते हुए रहने लगे। इसी समय मयूरध्वजके रक्षकोंने बाणासुरको ध्वजके गिरनेकी सूचना दी। फिर तो अनिरुद्ध और बाणासुरमें भयंकर युद्ध हुआ॥ ४०—४७॥

नारदजीके मुखसे अनिरुद्धके शोणितपुर पहुँचनेका समाचार सुनकर, भगवान् श्रीकृष्ण प्रद्युम्न और बलभद्रको साथ ले, गरुडपर बैठकर वहाँ गये और अग्नि एवं माहेश्वर ज्वरको जीतकर शङ्करजीके साथ युद्ध करने लगे। श्रीकृष्ण और शङ्करमें परस्पर बाणोंके आघात-प्रत्याघातसे युक्त भीषण युद्ध होने लगा। नन्दी, गणेश और कार्तिकेय आदि प्रमुख वीरोंको गरुड आदिने तत्काल परास्त कर दिया। श्रीकृष्णने जृम्भणास्त्रका प्रयोग किया, जिससे भगवान् शङ्कर जँभाई लेते हुए सो गये। इसी बीचमें श्रीकृष्णने बाणासुरकी हजार भुजाएँ काट डालीं। जृम्भणास्त्रका प्रभाव कम होनेपर शिवजीने बाणासुरके लिये अभयदान माँगा, तब श्रीकृष्णने दो भुजाओंके साथ बाणासुरको जीवित छोड़ दिया और शङ्करजीसे कहा—॥ ४८—५१॥

श्रीकृष्ण बोले—भगवन्! आपने जब बाणासुरको अभयदान दिया है, तो मैंने भी दे दिया। हम दोनोंमें कोई भेद नहीं है। जो भेद मानता है, वह नरकमें पड़ता है*॥ ५२॥

* श्रीकृष्ण उवाच—

त्वया यदभयं दत्तं बाणस्यास्य मयापि तत्। आवयोर्नास्ति भेदो वै भेदी नरकमाप्नुयात्॥ (अग्नि० १२।५२)

अग्निदेव कहते हैं— तदनन्तर शिव आदिने श्रीकृष्णका पूजन किया। वे अनिरुद्ध और उषा आदिके साथ द्वारकामें जाकर उग्रसेन आदि यादवोंके साथ आनन्दपूर्वक रहने लगे॥ ५३॥

अनिरुद्धके वज्र नामक पुत्र हुआ। उसने मार्कण्डेय मुनिसे सब विद्याओंका ज्ञान प्राप्त किया। बलभद्रजीने प्रलम्बासुरको मारा, यमुनाकी धाराको खींचकर फेर दिया, द्विविद नामक वानरका संहार किया तथा अपने हलके अग्रभागसे हस्तिनापुरको गङ्गामें झुकाकर कौरवोंके घमंडको चूर-चूर कर दिया। भगवान् श्रीकृष्ण अनेक रूप धारण करके अपनी रुक्मिणी आदि रानियोंके साथ विहार करते रहे। उन्होंने असंख्य पुत्रोंको जन्म दिया। [अन्तमें यादवोंका उपसंहार करके वे परमधामको पधारे।] जो इस हरिवंशका पाठ करता है, वह सम्पूर्ण कामनाएँ प्राप्त करके अन्तमें श्रीहरिके समीप जाता है॥ ५४—५६॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'हरिवंशका वर्णन' नामक बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२॥

तेरहवाँ अध्याय

महाभारतकी संक्षिप्त कथा

अग्निदेव कहते हैं— अब मैं श्रीकृष्णकी महिमाको लक्षित करानेवाला महाभारतका उपाख्यान सुनाता हूँ, जिसमें श्रीहरिने पाण्डवोंको निमित्त बनाकर इस पृथ्वीका भार उतारा था। भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए। ब्रह्माजीसे अत्रि, अत्रिसे चन्द्रमा, चन्द्रमासे बुध और बुधसे इलानन्दन पुरूरवाका जन्म हुआ। पुरूरवासे आयु, आयुसे राजा नहुष और नहुषसे ययाति उत्पन्न हुए। ययातिसे पूरु हुए। पूरुके वंशमें भरत और भरतके कुलमें राजा कुरु हुए। कुरुके वंशमें शान्तनुका जन्म हुआ। शान्तनुसे गङ्गानन्दन भीष्म उत्पन्न हुए। उनके दो छोटे भाई और थे— चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य। ये शान्तनुसे सत्यवतीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। शान्तनुके स्वर्गलोक चले जानेपर भीष्मने अविवाहित रहकर अपने भाई विचित्रवीर्यके राज्यका पालन किया। चित्राङ्गद बाल्यावस्थामें ही चित्राङ्गद नामवाले गन्धर्वके द्वारा मारे गये। फिर भीष्म संग्राममें विपक्षीको परास्त करके काशिराजकी दो कन्याओं—अम्बिका और अम्बालिकाको हर लाये। वे दोनों विचित्रवीर्यकी भार्याएँ हुईं। कुछ कालके बाद राजा विचित्रवीर्य राजयक्ष्मासे ग्रस्त हो स्वर्गवासी हो गये। तब सत्यवतीकी अनुमतिसे व्यासजीके द्वारा अम्बिकाके गर्भसे राजा धृतराष्ट्र और अम्बालिकाके गर्भसे पाण्डु उत्पन्न हुए। धृतराष्ट्रने गान्धारीके गर्भसे सौ पुत्रोंको जन्म दिया, जिनमें दुर्योधन सबसे बड़ा था॥ १—८॥

राजा पाण्डु वनमें रहते थे। वे एक ऋषिके शापवश शतशृङ्ग मुनिके आश्रमके पास स्त्री-समागमके कारण मृत्युको प्राप्त हुए। [पाण्डु शापके ही कारण स्त्री-सम्भोगसे दूर रहते थे,] इसलिये उनकी आज्ञाके अनुसार कुन्तीके गर्भसे धर्मके अंशसे युधिष्ठिरका जन्म हुआ। वायुसे भीम और इन्द्रसे अर्जुन उत्पन्न हुए। पाण्डुकी दूसरी पत्नी माद्रीके गर्भसे अश्विनीकुमारोंके अंशसे नकुल-सहदेवका जन्म हुआ। [शापवश] एक दिन माद्रीके साथ सम्भोग होनेसे पाण्डुकी मृत्यु हो गयी और माद्री भी उनके साथ सती हो गयी। जब कुन्तीका विवाह नहीं हुआ था, उसी समय [सूर्यके अंशसे] उनके गर्भसे कर्णका जन्म हुआ था। वह दुर्योधनके आश्रयमें रहता था। दैवयोगसे कौरवों और पाण्डवोंमें वैरकी आग

प्रज्वलित हो उठी। दुर्योधन बड़ी खोटी बुद्धिका मनुष्य था। उसने लाक्षाके बने हुए घरमें पाण्डवोंको रखकर आग लगाकर उन्हें जलानेका प्रयत्न किया; किंतु पाँचों पाण्डव अपनी माताके साथ उस जलते हुए घरसे बाहर निकल गये। वहाँसे एकचक्रा नगरीमें जाकर वे मुनिके वेषमें एक ब्राह्मणके घरमें निवास करने लगे। फिर बक नामक राक्षसका वध करके वे पाञ्चाल-राज्यमें, जहाँ द्रौपदीका स्वयंवर होनेवाला था, गये। वहाँ अर्जुनके बाहुबलसे मत्स्यभेद होनेपर पाँचों पाण्डवोंने द्रौपदीको पत्नीरूपमें प्राप्त किया। तत्पश्चात् दुर्योधन आदिको उनके जीवित होनेका पता चलनेपर उन्होंने कौरवोंसे अपना आधा राज्य भी प्राप्त कर लिया। अर्जुनने अग्निदेवसे दिव्य गाण्डीव धनुष और उत्तम रथ प्राप्त किया था। उन्हें युद्धमें भगवान् कृष्ण-जैसे सारथि मिले थे तथा उन्होंने आचार्य द्रोणसे ब्रह्मास्त्र आदि दिव्य आयुध और कभी नष्ट न होनेवाले बाण प्राप्त किये थे। सभी पाण्डव सब प्रकारकी विद्याओंमें प्रवीण थे॥ ९—१६॥

पाण्डुकुमार अर्जुनने श्रीकृष्णके साथ खाण्डव-वनमें इन्द्रके द्वारा की हुई वृष्टिका अपने बाणोंकी [छत्राकार] बाँधसे निवारण करते हुए अग्निको तृप्त किया था। पाण्डवोंने सम्पूर्ण दिशाओंपर विजय पायी। युधिष्ठिर राज्य करने लगे। उन्होंने प्रचुर सुवर्णराशिसे परिपूर्ण राजसूय यज्ञका अनुष्ठान किया। उनका यह वैभव दुर्योधनके लिये असह्य हो उठा। उसने अपने भाई दु:शासन और वैभवप्राप्त सुहृद् कर्णके कहनेसे शकुनिको साथ ले, द्यूत-सभामें जूएमें प्रवृत्त होकर, युधिष्ठिर और उनके राज्यको कपट-द्यूतके द्वारा हँसते-हँसते जीत लिया। जूएमें परास्त होकर युधिष्ठिर अपने भाइयोंके साथ वनमें चले गये। वहाँ उन्होंने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार बारह वर्ष व्यतीत किये। वे वनमें भी पहलेहीकी भाँति प्रतिदिन बहुसंख्यक ब्राह्मणोंको भोजन कराते थे। [एक दिन उन्होंने] अठासी हजार द्विजोंसहित दुर्वासाको [श्रीकृष्ण-कृपासे] परितृप्त किया। वहाँ उनके साथ उनकी पत्नी द्रौपदी तथा पुरोहित धौम्यजी भी थे। बारहवाँ वर्ष बीतनेपर वे विराटनगरमें गये। वहाँ युधिष्ठिर सबसे अपरिचित रहकर 'कङ्क' नामक ब्राह्मणके रूपमें रहने लगे। भीमसेन रसोइया बने थे। अर्जुनने अपना नाम 'बृहन्नला' रखा था। पाण्डवपत्नी द्रौपदी रनिवासमें सैरन्ध्रीके रूपमें रहने लगी। इसी प्रकार नकुल-सहदेवने भी अपने नाम बदल लिये थे। भीमसेनने रात्रिकालमें द्रौपदीका सतीत्व-हरण करनेकी इच्छा रखनेवाले कीचकको मार डाला। तत्पश्चात् कौरव विराटकी गौओंको हरकर ले जाने लगे, तब उन्हें अर्जुनने परास्त किया। उस समय कौरवोंने पाण्डवोंको पहचान लिया। श्रीकृष्णकी बहिन सुभद्राने अर्जुनसे अभिमन्यु नामक पुत्रको उत्पन्न किया था। उसे राजा विराटने अपनी कन्या उत्तरा ब्याह दी॥ १७—२५॥

धर्मराज युधिष्ठिर सात अक्षौहिणी सेनाके स्वामी होकर कौरवोंके साथ युद्ध करनेको तैयार हुए। पहले भगवान् श्रीकृष्ण परम क्रोधी दुर्योधनके पास दूत बनकर गये। उन्होंने ग्यारह अक्षौहिणी सेनाके स्वामी राजा दुर्योधनसे कहा—'राजन्! तुम युधिष्ठिरको आधा राज्य दे दो या उन्हें पाँच ही गाँव अर्पित कर दो; नहीं तो उनके साथ युद्ध करो।' श्रीकृष्णकी बात सुनकर दुर्योधनने कहा—'मैं उन्हें सुईकी नोकके बराबर भूमि भी नहीं दूँगा; हाँ, उनसे युद्ध अवश्य करूँगा।' ऐसा कहकर वह भगवान् श्रीकृष्णको बंदी बनानेके लिये उद्यत हो गया। उस समय राजसभामें भगवान् श्रीकृष्णने अपने परम दुर्धर्ष विश्वरूपका दर्शन कराकर दुर्योधनको भयभीत कर दिया।

फिर विदुरने अपने घर ले जाकर भगवान्का पूजन और सत्कार किया। तदनन्तर वे युधिष्ठिरके पास लौट गये और बोले—'महाराज! आप दुर्योधनके साथ युद्ध कीजिये'॥ २६—२९॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'आदिपर्वसे आरम्भ करके [उद्योगपर्व-पर्यन्त] महाभारतकथाका संक्षिप्त वर्णन' नामक तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १३॥

चौदहवाँ अध्याय

कौरव और पाण्डवोंका युद्ध तथा उसका परिणाम

अग्निदेव कहते हैं— युधिष्ठिर और दुर्योधनकी सेनाएँ कुरुक्षेत्रके मैदानमें जा डटीं। अपने विपक्षमें पितामह भीष्म तथा आचार्य द्रोण आदि गुरुजनोंको देखकर अर्जुन युद्धसे विरत हो गये, तब भगवान् श्रीकृष्णने उनसे कहा—"पार्थ! भीष्म आदि गुरुजन शोकके योग्य नहीं हैं। मनुष्यका शरीर विनाशशील है; किंतु आत्माका कभी नाश नहीं होता। यह आत्मा ही परब्रह्म है। 'मैं ब्रह्म हूँ'—इस प्रकार तुम उस आत्माको समझो। कार्यकी सिद्धि और असिद्धिमें समानभावसे रहकर कर्मयोगका आश्रय ले क्षात्रधर्मका पालन करो।" श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर अर्जुन रथारूढ़ हो युद्धमें प्रवृत्त हुए। उन्होंने शङ्खध्वनि की। दुर्योधनकी सेनामें सबसे पहले पितामह भीष्म सेनापति हुए। पाण्डवोंके सेनापति शिखण्डी थे। इन दोनोंमें भारी युद्ध छिड़ गया। भीष्मसहित कौरवपक्षके योद्धा उस युद्धमें पाण्डव-पक्षके सैनिकोंपर प्रहार करने लगे और शिखण्डी आदि पाण्डव-पक्षके वीर कौरव-सैनिकोंको अपने बाणोंका निशाना बनाने लगे। कौरव और पाण्डव-सेनाका वह युद्ध, देवासुर-संग्रामके समान जान पड़ता था। आकाशमें खड़े होकर देखनेवाले देवताओंको वह युद्ध बड़ा आनन्ददायक प्रतीत हो रहा था। भीष्मने दस दिनोंतक युद्ध करके पाण्डवोंकी अधिकांश सेनाको अपने बाणोंसे मार गिराया॥ १—७॥

दसवें दिन अर्जुनने वीरवर भीष्मपर बाणोंकी बड़ी भारी वृष्टि की। इधर द्रुपदकी प्रेरणासे शिखण्डीने भी पानी बरसानेवाले मेघकी भाँति भीष्मपर बाणोंकी झड़ी लगा दी। दोनों ओरके हाथीसवार, घुड़सवार, रथी और पैदल एक-दूसरेके बाणोंसे मारे गये। भीष्मकी मृत्यु उनकी इच्छाके अधीन थी। उन्होंने युद्धका मार्ग दिखाकर वसु-देवताके कहनेपर वसुलोकमें जानेकी तैयारी की और बाणशय्यापर सो रहे। वे उत्तरायणकी प्रतीक्षामें भगवान् विष्णुका ध्यान और स्तवन करते हुए समय व्यतीत करने लगे। भीष्मके बाण-शय्यापर गिर जानेके बाद जब दुर्योधन शोकसे व्याकुल हो उठा, तब आचार्य द्रोणने सेनापतित्वका भार ग्रहण किया। उधर हर्ष मनाती हुई पाण्डवोंकी सेनामें धृष्टद्युम्न सेनापति हुए। उन दोनोंमें बड़ा भयंकर युद्ध हुआ, जो यमलोककी आबादीको बढ़ानेवाला था। विराट और द्रुपद आदि राजा द्रोणरूपी समुद्रमें डूब गये। हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिकोंसे युक्त दुर्योधनकी विशाल वाहिनी धृष्टद्युम्नके हाथसे मारी जाने लगी। उस समय द्रोण कालके समान जान पड़ते थे। इतनेहीमें उनके कानोंमें यह आवाज आयी कि 'अश्वत्थामा मारा गया'। इतना सुनते ही आचार्य द्रोणने अस्त्र-शस्त्र त्याग दिये। ऐसे समयमें धृष्टद्युम्नके बाणोंसे आहत होकर वे पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ८—१४॥

द्रोण बड़े ही दुर्धर्ष थे। वे सम्पूर्ण क्षत्रियोंका

विनाश करके पाँचवें दिन मारे गये। दुर्योधन पुनः शोकसे आतुर हो उठा। उस समय कर्ण उसकी सेनाका कर्णधार हुआ। पाण्डव-सेनाका आधिपत्य अर्जुनको मिला। कर्ण और अर्जुनमें भाँति-भाँतिके अस्त्र-शस्त्रोंकी मार-काटसे युक्त महाभयानक युद्ध हुआ, जो देवासुर-संग्रामको भी मात करनेवाला था। कर्ण और अर्जुनके संग्राममें कर्णने अपने बाणोंसे शत्रु-पक्षके बहुत-से वीरोंका संहार कर डाला; किंतु दूसरे दिन अर्जुनने उसे मार गिराया॥ १५—१७॥

तदनन्तर राजा शल्य कौरव-सेनाके सेनापति हुए; किंतु वे युद्धमें आधे दिनतक ही टिक सके। दोपहर होते-होते राजा युधिष्ठिरने उन्हें मार गिराया। दुर्योधनकी प्रायः सारी सेना युद्धमें मारी गयी थी। अन्ततोगत्वा उसका भीमसेनके साथ युद्ध हुआ। उसने पाण्डव-पक्षके पैदल आदि बहुत-से सैनिकोंका वध करके भीमसेनपर धावा किया। उस समय गदासे प्रहार करते हुए दुर्योधनको भीमसेनने मौतके घाट उतार दिया। दुर्योधनके अन्य छोटे भाई भी भीमसेनके ही हाथसे मारे गये थे। महाभारत-संग्रामके उस अठारहवें दिन रात्रिकालमें महाबली अश्वत्थामाने पाण्डवोंकी सोयी हुई एक अक्षौहिणी सेनाको सदाके लिये सुला दिया। उसने द्रौपदीके पाँचों पुत्रों, उसके पाञ्चालदेशीय बन्धुओं तथा धृष्टद्युम्नको भी जीवित नहीं छोड़ा। द्रौपदी पुत्रहीन होकर रोने-बिलखने लगी। तब अर्जुनने सींकके अस्त्रसे अश्वत्थामाको परास्त करके उसके मस्तककी मणि निकाल ली। [उसे मारा जाता देख द्रौपदीने ही अनुनय-विनय करके उसके प्राण बचाये।] ॥ १८—२२॥

इतनेपर भी दुष्ट अश्वत्थामाने उत्तराके गर्भको नष्ट करनेके लिये उसपर अस्त्रका प्रयोग किया। वह गर्भ उसके अस्त्रसे प्रायः दग्ध हो गया था; किंतु भगवान् श्रीकृष्णने उसको पुनः जीवन-दान दिया। उत्तराका वही गर्भस्थ शिशु आगे चलकर राजा परीक्षित्के नामसे विख्यात हुआ। कृतवर्मा, कृपाचार्य तथा अश्वत्थामा—ये तीन कौरवपक्षीय वीर उस संग्रामसे जीवित बचे। दूसरी ओर पाँच पाण्डव, सात्यकि तथा भगवान् श्रीकृष्ण—ये सात ही जीवित रह सके; दूसरे कोई नहीं बचे। उस समय सब ओर अनाथा स्त्रियोंका आर्तनाद व्याप्त हो रहा था। भीमसेन आदि भाइयोंके साथ जाकर युधिष्ठिरने उन्हें सान्त्वना दी तथा रणभूमिमें मारे गये सभी वीरोंका दाह-संस्कार करके उनके लिये जलाञ्जलि दे धन आदिका दान किया। तत्पश्चात् कुरुक्षेत्रमें शरशय्यापर आसीन शान्तनुनन्दन भीष्मके पास जाकर युधिष्ठिरने उनसे समस्त शान्तिदायक धर्म, राजधर्म (आपद्धर्म), मोक्षधर्म तथा दानधर्मकी बातें सुनीं। फिर वे राजसिंहासनपर आसीन हुए। इसके बाद उन शत्रुमर्दन राजाने अश्वमेध-यज्ञ करके उसमें ब्राह्मणोंको बहुत धन दान किया। तदनन्तर द्वारकासे लौटे हुए अर्जुनके मुखसे मूसलकाण्डके कारण प्राप्त हुए शापसे पारस्परिक युद्धद्वारा यादवोंके संहारका समाचार सुनकर युधिष्ठिरने परीक्षित्को राजासनपर बिठाया और स्वयं भाइयोंके साथ महाप्रस्थान कर स्वर्गलोकको चले गये॥ २३—२७॥*

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'भीष्मपर्वसे लेकर अन्ततककी महाभारत-कथाका संक्षेपसे वर्णन' नामक चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १४॥

---

* यद्यपि इस अध्यायके अन्ततक महाभारतकी पूरी कथा समाप्त हुई-सी जान पड़ती है, तथापि आश्रमवासिक पर्वसे लेकर स्वर्गारोहण पर्वतकका वृत्तान्त कुछ विस्तारसे कहना शेष रह गया है; इसलिये अगले (पंद्रहवें) अध्यायमें उसे पूरा किया गया है।

पंद्रहवाँ अध्याय

यदुकुलका संहार और पाण्डवोंका स्वर्गगमन

अग्निदेव कहते हैं—ब्रह्मन्! जब युधिष्ठिर राजसिंहासनपर विराजमान हो गये, तब धृतराष्ट्र गृहस्थ-आश्रमसे वानप्रस्थ-आश्रममें प्रविष्ट हो वनमें चले गये। [अथवा ऋषियोंके एक आश्रमसे दूसरे आश्रमोंमें होते हुए वे वनको गये।] उनके साथ देवी गान्धारी और पृथा (कुन्ती) भी थीं। विदुरजी दावानलसे दग्ध हो स्वर्ग सिधारे। इस प्रकार भगवान् विष्णुने पृथ्वीका भार उतारा और धर्मकी स्थापना तथा अधर्मका नाश करनेके लिये पाण्डवोंको निमित्त बनाकर दानव-दैत्य आदिका संहार किया। तत्पश्चात् भूमिका भार बढ़ानेवाले यादवकुलका भी ब्राह्मणोंके शापके बहाने मूसलके द्वारा संहार कर डाला। अनिरुद्धके पुत्र वज्रको राजाके पदपर अभिषिक्त किया। तदनन्तर देवताओंके अनुरोधसे प्रभासक्षेत्रमें श्रीहरि स्वयं ही स्थूल शरीरकी लीलाका संवरण करके अपने धामको पधारे॥ १—४॥

वे इन्द्रलोक और ब्रह्मलोकमें स्वर्गवासी देवताओंद्वारा पूजित होते हैं। बलभद्रजी शेषनागके स्वरूप थे; अत: उन्होंने पातालरूपी स्वर्गका आश्रय लिया। अविनाशी भगवान् श्रीहरि ध्यानी पुरुषोंके ध्येय हैं। उनके अन्तर्धान हो जानेपर समुद्रने उनके निजी निवासस्थानको छोड़कर शेष द्वारकापुरीको अपने जलमें डुबा दिया। अर्जुनने मरे हुए यादवोंका दाह-संस्कार करके उनके लिये जलाञ्जलि दी और धन आदिका दान किया। भगवान् श्रीकृष्णकी रानियोंको, जो पहले अप्सराएँ थीं और अष्टावक्रके शापसे मानवीरूपमें प्रकट हुई थीं, लेकर हस्तिनापुरको चले। मार्गमें डंडे लिये हुए ग्वालोंने अर्जुनका तिरस्कार करके उन सबको छीन लिया। यह भी अष्टावक्रके शापसे ही सम्भव हुआ था। इससे अर्जुनके मनमें बड़ा शोक हुआ। फिर महर्षि व्यासके सान्त्वना देनेपर उन्हें यह निश्चय हुआ कि 'भगवान् श्रीकृष्णके समीप रहनेसे ही मुझमें बल था।' हस्तिनापुरमें आकर उन्होंने भाइयोंसहित राजा युधिष्ठिरसे, जो उस समय प्रजावर्गका पालन करते थे, यह सब समाचार निवेदन किया। वे बोले—'भैया! वही धनुष है, वे ही बाण हैं, वही रथ है और वे ही घोड़े हैं; किंतु भगवान् श्रीकृष्णके बिना सब कुछ उसी प्रकार नष्ट हो गया, जैसे अश्रोत्रियको दिया हुआ दान।' यह सुनकर धर्मराज युधिष्ठिरने राज्यपर परीक्षित्‌को स्थापित कर दिया॥ ५—११॥

इसके बाद बुद्धिमान् राजा संसारकी अनित्यताका विचार करके द्रौपदी तथा भाइयोंको साथ ले महाप्रस्थानके पथपर अग्रसर हुए। मार्गमें वे श्रीहरिके अष्टोत्तरशत नामोंका जप करते हुए यात्रा करते थे। उस महापथमें क्रमश: द्रौपदी, सहदेव, नकुल, अर्जुन और भीमसेन एक-एक करके गिर पड़े। इससे राजा शोकमग्न हो गये। तदनन्तर वे इन्द्रके द्वारा लाये हुए रथपर आरूढ़ हो [दिव्यरूपधारी] भाइयोंसहित स्वर्गको चले गये। वहाँ उन्होंने दुर्योधन आदि सभी धृतराष्ट्रपुत्रोंको देखा। तदनन्तर [उनपर कृपा करनेके लिये अपने धामसे पधारे हुए] भगवान् वासुदेवका भी दर्शन किया। इससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। यह मैंने तुम्हें महाभारतका प्रसङ्ग सुनाया है। जो इसका पाठ करेगा, वह स्वर्गलोकमें सम्मानित होगा॥ १२—१५॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'आश्रमवासिक पर्वसे लेकर स्वर्गारोहण-पर्यन्त महाभारत-कथाका संक्षिप्त वर्णन' नामक पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १५॥

सोलहवाँ अध्याय

बुद्ध और कल्कि-अवतारोंकी कथा

अग्निदेव कहते हैं— अब मैं बुद्धावतारका वर्णन करूँगा, जो पढ़ने और सुननेवालोंके मनोरथको सिद्ध करनेवाला है। पूर्वकालमें देवताओं और असुरोंमें घोर संग्राम हुआ। उसमें दैत्योंने देवताओंको परास्त कर दिया। तब देवतालोग 'त्राहि-त्राहि' पुकारते हुए भगवान्‌की शरणमें गये। भगवान् मायामोहमय रूपमें आकर राजा शुद्धोदनके पुत्र हुए। उन्होंने दैत्योंको मोहित किया और उनसे वैदिक धर्मका परित्याग करा दिया। वे बुद्धके अनुयायी दैत्य 'बौद्ध' कहलाये। फिर उन्होंने दूसरे लोगोंसे वेद-धर्मका त्याग करवाया। इसके बाद माया-मोह ही 'आर्हत' रूपसे प्रकट हुआ। उसने दूसरे लोगोंको भी 'आर्हत' बनाया। इस प्रकार उनके अनुयायी वेद-धर्मसे वञ्चित होकर पाखण्डी बन गये। उन्होंने नरकमें ले जानेवाले कर्म करना आरम्भ कर दिया। वे सब-के-सब कलियुगके अन्तमें वर्णसंकर होंगे और नीच पुरुषोंसे दान लेंगे। इतना ही नहीं, वे लोग डाकू और दुराचारी भी होंगे। वाजसनेय (बृहदारण्यक)-मात्र ही 'वेद' कहलायेगा। वेदकी दस-पाँच शाखाएँ ही प्रमाणभूत मानी जायँगी। धर्मका चोला पहने हुए सब लोग अधर्ममें ही रुचि रखनेवाले होंगे। राजारूपधारी म्लेच्छ मनुष्योंका ही भक्षण करेंगे॥ १—७॥

तदनन्तर भगवान् कल्कि प्रकट होंगे। वे श्रीविष्णुयशाके पुत्ररूपसे अवतीर्ण हो याज्ञवल्क्यको अपना पुरोहित बनायेंगे। उन्हें अस्त्र-शस्त्र-विद्याका पूर्ण परिज्ञान होगा। वे हाथमें अस्त्र-शस्त्र लेकर म्लेच्छोंका संहार कर डालेंगे तथा चारों वर्णों और समस्त आश्रमोंमें शास्त्रीय मर्यादा स्थापित करेंगे। समस्त प्रजाको धर्मके उत्तम मार्गमें लगायेंगे। उसके बाद श्रीहरि कल्किरूपका परित्याग करके अपने धाममें चले जायँगे। फिर तो पूर्ववत् सत्ययुगका साम्राज्य होगा। साधुश्रेष्ठ! सभी वर्ण और आश्रमके लोग अपने-अपने धर्ममें दृढ़तापूर्वक लग जायँगे। इस प्रकार सम्पूर्ण कल्पों तथा मन्वन्तरोंमें श्रीहरिके अवतार होते हैं। उनमेंसे कुछ हो चुके हैं, कुछ आगे होनेवाले हैं; उन सबकी कोई नियत संख्या नहीं है। जो मनुष्य श्रीविष्णुके अंशावतार तथा पूर्णावतारसहित दस अवतारोंके चरित्रोंका पाठ अथवा श्रवण करता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है तथा निर्मलहृदय होकर परिवारसहित स्वर्गको जाता है। इस प्रकार अवतार लेकर श्रीहरि धर्मकी व्यवस्था और अधर्मका निराकरण करते हैं। वे ही जगत्‌की सृष्टि आदिके कारण हैं॥ ८—१४॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'बुद्ध तथा कल्कि—इन दो अवतारोंका वर्णन' नामक सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १६॥

सत्रहवाँ अध्याय

जगत्‌की सृष्टिका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं— ब्रह्मन्! अब मैं जगत्‌की सृष्टि आदिका, जो श्रीहरिकी लीलामात्र है, वर्णन करूँगा; सुनो। श्रीहरि ही स्वर्ग आदिके रचयिता हैं। सृष्टि और प्रलय आदि उन्हींके स्वरूप हैं। सृष्टिके आदिकारण भी वे ही हैं। वे ही निर्गुण हैं और वे ही सगुण हैं। सबसे पहले सत्स्वरूप अव्यक्त ब्रह्म ही था; उस समय न तो आकाश था और न रात-दिन आदिका ही विभाग था।

तदनन्तर सृष्टिकालमें परमपुरुष श्रीविष्णुने प्रकृतिमें प्रवेश करके उसे क्षुब्ध (विकृत) कर दिया। फिर प्रकृतिसे महत्तत्त्व और उससे अहंकार प्रकट हुआ। अहंकार तीन प्रकारका है—वैकारिक (सात्त्विक), तैजस (राजस) और भूतादिरूप तामस। तामस अहंकारसे शब्द-तन्मात्रावाला आकाश उत्पन्न हुआ। आकाशसे स्पर्श-तन्मात्रावाले वायुका प्रादुर्भाव हुआ। वायुसे रूप-तन्मात्रावाला अग्नितत्त्व प्रकट हुआ। अग्निसे रस-तन्मात्रावाले जलकी उत्पत्ति हुई और जलसे गन्ध-तन्मात्रावाली भूमिका प्रादुर्भाव हुआ। यह सब तामस अहंकारसे होनेवाली सृष्टि है। इन्द्रियाँ तैजस अर्थात् राजस अहंकारसे प्रकट हुई हैं। दस इन्द्रियोंके अधिष्ठाता दस देवता और ग्यारहवीं इन्द्रिय मन(-के भी अधिष्ठाता देवता)—ये वैकारिक अर्थात् सात्त्विक अहंकारकी सृष्टि हैं। तत्पश्चात् नाना प्रकारकी प्रजाको उत्पन्न करनेकी इच्छावाले भगवान् स्वयम्भूने सबसे पहले जलकी ही सृष्टि की और उसमें अपनी शक्ति (वीर्य)-का आधान किया। जलको 'नार' कहा गया है; क्योंकि वह नरसे उत्पन्न हुआ है। 'नार' (जल) ही पूर्वकालमें भगवान्‌का 'अयन' (निवास-स्थान) था; इसलिये भगवान्‌को 'नारायण' कहा गया है॥ १—७ $\frac{1}{2}$ ॥

स्वयम्भू श्रीहरिने जो वीर्य स्थापित किया था, वह जलमें सुवर्णमय अण्डके रूपमें प्रकट हुआ। उसमें साक्षात् स्वयम्भू भगवान् ब्रह्माजी प्रकट हुए, ऐसा हमने सुना है। भगवान् हिरण्यगर्भने एक वर्षतक उस अण्डके भीतर निवास करके उसके दो भाग किये। एकका नाम 'द्युलोक' हुआ और दूसरेका 'भूलोक'। उन दोनों अण्ड-खण्डोंके बीचमें उन्होंने आकाशकी सृष्टि की। जलके ऊपर तैरती हुई पृथ्वीको रखा और दसों दिशाओंके विभाग किये। फिर सृष्टिकी इच्छावाले प्रजापतिने वहाँ काल, मन, वाणी, काम, क्रोध तथा रति आदिकी तत्तद्रूपसे सृष्टि की। उन्होंने आदिमें विद्युत्, वज्र, मेघ, रोहित इन्द्रधनुष, पक्षियों तथा पर्जन्यका निर्माण किया। तत्पश्चात् यज्ञकी सिद्धिके लिये मुखसे ऋक्, यजु और सामवेदको प्रकट किया। उनके द्वारा साध्यगणोंने देवताओंका यजन किया। फिर ब्रह्माजीने अपनी भुजासे ऊँचे-नीचे (या छोटे-बड़े) भूतोंको उत्पन्न किया, सनत्कुमारकी उत्पत्ति की तथा क्रोधसे प्रकट होनेवाले रुद्रको जन्म दिया। मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठ—इन सात ब्रह्मपुत्रोंको ब्रह्माजीने निश्चय ही अपने मनसे प्रकट किया। साधुश्रेष्ठ! ये तथा रुद्रगण प्रजावर्गकी सृष्टि करते हैं। ब्रह्माजीने अपने शरीरके दो भाग किये। आधे भागसे वे पुरुष हुए और आधेसे स्त्री बन गये; फिर उस नारीके गर्भसे उन्होंने प्रजाओंकी सृष्टि की। (ये ही स्वायम्भुव मनु तथा शतरूपाके नामसे प्रसिद्ध हुए। इनसे ही मानवीय सृष्टि हुई।) ॥ ८—१७ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'जगत्‌की सृष्टिका वर्णन' नामक सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १७॥

अठारहवाँ अध्याय

स्वायम्भुव मनुके वंशका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—मुने! स्वायम्भुव मनुसे उनकी तपस्विनी भार्या शतरूपाने प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्र और एक सुन्दरी कन्या उत्पन्न की। वह कमनीया कन्या (देवहूति) कर्दम ऋषिकी भार्या हुई। राजा प्रियव्रतसे सम्राट् कुक्षि और विराट नामक सामर्थ्यशाली पुत्र उत्पन्न हुए। उत्तानपादसे सुरुचिके गर्भसे उत्तमनामक पुत्र उत्पन्न हुआ और सुनीतिके गर्भसे ध्रुवका जन्म

हुआ। हे मुने! कुमार ध्रुवने सुन्दर कीर्ति बढ़ानेके लिये तीन* हजार दिव्य वर्षोंतक तप किया। उसपर प्रसन्न होकर भगवान् विष्णुने उसे सप्तर्षियोंके आगे स्थिर स्थान (ध्रुवपद) दिया। ध्रुवके इस अभ्युदयको देखकर शुक्राचार्यने उनके सुयशका सूचक यह श्लोक पढ़ा—'अहो! इस ध्रुवकी तपस्याका कितना प्रभाव है, इसका शास्त्र-ज्ञान कितना अद्भुत है, जिसे आज सप्तर्षि भी आगे करके स्थित हैं।' उस ध्रुवसे उनकी पत्नी शम्भुने श्लिष्टि और भव्य नामक पुत्र उत्पन्न किये। श्लिष्टिसे उसकी पत्नी सुच्छायाने क्रमशः रिपु, रिपुंजय, पुष्य, वृकल और वृकतेजा—इन पाँच निष्पाप पुत्रोंको अपने गर्भमें धारण किया। रिपुके वीर्यसे बृहतीने चाक्षुष और सर्वतेजाको अपने गर्भमें स्थान दिया॥ १—७॥

चाक्षुषने वीरण प्रजापतिकी कन्या पुष्करिणीके गर्भसे मनुको जन्म दिया। मनुसे नड्वलाके गर्भसे दस उत्तम पुत्र उत्पन्न हुए। [उनके नाम ये हैं—] ऊरु, पूरु, शतद्युम्न, तपस्वी, सत्यवाक्, कवि, अग्निष्टुत्, अतिरात्र, सुद्युम्न और अभिमन्यु। ऊरुके अंशसे आग्नेयीने अङ्ग, सुमना, स्वाति, क्रतु, अङ्गिरा और गय नामक महान् तेजस्वी छः पुत्र उत्पन्न किये। अङ्गसे सुनीथाने एक ही संतान वेनको जन्म दिया। वह प्रजाओंकी रक्षा न करके सदा पापमें ही लगा रहता था। उसे मुनियोंने कुशोंसे मार डाला। तदनन्तर ऋषियोंने संतानके लिये वेनके दायें हाथका मन्थन किया। हाथका मन्थन होनेपर राजा पृथु प्रकट हुए। उन्हें देखकर मुनियोंने कहा—'ये महान् तेजस्वी राजा अवश्य ही समस्त प्रजाको आनन्दित करेंगे तथा महान् यश प्राप्त करेंगे।' क्षत्रियवंशके पूर्वज वेन-कुमार राजा पृथु अपने तेजसे सबको दग्ध करते हुए-से धनुष और कवच धारण किये हुए ही प्रकट हुए थे; वे सम्पूर्ण प्रजाकी रक्षा करने लगे॥ ८—१४॥

राजसूय-यज्ञमें दीक्षित होनेवाले नरेशोंमें वे सबसे पहले भूपाल थे। उनसे दो पुत्र उत्पन्न हुए। स्तुतिकर्ममें निपुण अद्भुतकर्मा सूत और मागधोंने उनका स्तवन किया। वे प्रजाओंका रञ्जन करनेके कारण 'राजा' नामसे विख्यात हुए। उन्होंने प्रजाओंकी जीवन-रक्षाके निमित्त अन्नकी उपज बढ़ानेके लिये गोरूपधारिणी पृथ्वीका दोहन किया। उस समय एक साथ ही देवता, मुनिवृन्द, गन्धर्व, अप्सरागण, पितर, दानव, सर्प, लता, पर्वत और मनुष्यों आदिके द्वारा अपने-अपने विभिन्न पात्रोंमें दुही जानेवाली पृथिवीने सबको इच्छानुसार दूध दिया, जिससे सबने प्राण धारण किये। पृथुके जो दो धर्मज्ञ पुत्र उत्पन्न हुए, उनके नाम थे अन्तर्धि और पालित। अन्तर्धान (अन्तर्धि)-के अंशसे उनकी शिखण्डिनी नामवाली पत्नीने 'हविर्धान' को जन्म दिया। अग्निकुमारी धिषणाने हविर्धानके अंशसे छः पुत्रोंको उत्पन्न किया। उनके नाम ये हैं—प्राचीनबर्हिष्, शुक्र, गय, कृष्ण, व्रज और अजिन। राजा प्राचीनबर्हिष् प्रायः यज्ञमें ही लगे रहते थे, जिससे उस समय पृथिवीपर दूर-दूरतक पूर्वाग्र कुश फैल गये थे। इससे वे ऐश्वर्यशाली राजा 'प्राचीनबर्हिष्' नामसे विख्यात हुए। वे एक महान् प्रजापति थे॥ १५—२१॥

प्राचीनबर्हिष्से उनकी पत्नी समुद्र-कन्या सवर्णाने दस पुत्रोंको अपने गर्भमें धारण किया। वे सभी 'प्रचेता' नामसे प्रसिद्ध हुए और सब-के-सब धनुर्वेदमें पारंगत थे। वे एक समान धर्मका आचरण करते हुए समुद्रके जलमें रहकर दस

* श्रीमद्भागवतके वर्णनानुसार ध्रुव केवल छः मास तपस्या करके सिद्धिके भागी हुए थे। इस अग्निपुराणमें तपस्याकाल बहुत अधिक कहा गया है। कल्पभेदसे दोनों ही वर्णन संगत हो सकते हैं।

हजार वर्षोंतक महान् तपमें लगे रहे। अन्तमें भगवान् विष्णुसे प्रजापति होनेका वरदान पाकर वे संतुष्ट हो जलसे बाहर निकले। उस समय प्राय: समस्त भूमण्डल और आकाश बड़े-बड़े सघन वृक्षोंसे व्याप्त हो गया था। यह देख उन्होंने अपने मुखसे प्रकट अग्नि और वायुके द्वारा सब वृक्षोंको जला दिया। तब वृक्षोंका यह संहार देख राजा सोम इन प्रचेताओंके पास जाकर बोले—

"आपलोग अपना कोप शान्त करें; ये वृक्षगण आपको एक 'मारिषा' नामवाली सुन्दरी कन्या अर्पण करेंगे। यह कन्या तपस्वी मुनि कण्डुके अंशसे प्रम्लोचा अप्सराके गर्भसे [स्वेद-बिन्दुके रूपमें] प्रकट हुई है। मैंने ही भविष्यकी बातें जानकर इसे कन्यारूपमें उत्पन्न कर पाला-पोसा है। इसके गर्भसे दक्ष उत्पन्न होंगे, जो प्रजाकी वृद्धि करेंगे"॥ २२—२७॥

प्रचेताओंने उस कन्याको ग्रहण किया। तत्पश्चात् उसके गर्भसे दक्ष उत्पन्न हुए। दक्षने चर, अचर, द्विपद और चतुष्पद आदि प्राणियोंकी मानसिक सृष्टि करके अन्तमें बहुत-सी स्त्रियोंको उत्पन्न किया। उनमेंसे दसको तो उन्होंने धर्मराजके अर्पण किया और तेरह कन्याएँ कश्यपको दीं। सत्ताईस कन्याएँ चन्द्रमाको, चार अरिष्टनेमिको, दो बहुपुत्रको और दो कन्याएँ अङ्गिराको दीं। पूर्वकालमें मानसिक संकल्पसे सृष्टि होती थी। उसके बाद उन दक्ष-कन्याओंसे मैथुनद्वारा देवता और नाग आदि प्रकट हुए। अब मैं धर्मराजसे उनकी दस पत्नियोंके गर्भसे जो संतानें हुईं, उस धर्मसर्गका वर्णन करूँगा। विश्वा नामवाली पत्नीसे विश्वेदेव प्रकट हुए। साध्याने साध्योंको जन्म दिया। मरुत्वतीसे मरुत्वान् और वसुसे वसुगण प्रकट हुए। भानुसे भानु और मुहूर्तासे मुहूर्त नामक पुत्र उत्पन्न हुए। धर्मराजके द्वारा लम्बासे घोष नामक पुत्र हुआ और यामि नामक पत्नीसे नागवीथी नामवाली कन्या उत्पन्न हुई। पृथिवीका सम्पूर्ण विषय भी मरुत्वतीसे ही प्रकट हुआ। संकल्पाके गर्भसे संकल्पोंकी सृष्टि हुई। चन्द्रमासे उनकी नक्षत्ररूपिणी पत्नियोंके गर्भसे आठ पुत्र हुए॥ २८—३४॥

उनके नाम ये हैं—आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास—ये आठ वसु हैं। आपके वैतण्ड्य, श्रम, शान्त और मुनि नामक पुत्र हुए। ध्रुवका पुत्र लोकान्तकारी काल हुआ और सोमका पुत्र वर्चा हुआ। धरकी पत्नी मनोहराके गर्भसे द्रविण, हुतहव्यवह, शिशिर, प्राण और रमण उत्पन्न हुए। अनिलका पुत्र पुरोजव और अनल (अग्नि)-का अविज्ञात था। अग्निका पुत्र कुमार हुआ, जो सरकंडोंकी ढेरीपर उत्पन्न हुआ। उसके पीछे शाख, विशाख और नैगमेय नामक पुत्र हुए। कुमार कृत्तिकाके गर्भसे उत्पन्न होनेके कारण 'कार्तिकेय' कहलाये तथा कृत्तिकाके दूसरे पुत्र सनत्कुमार नामक यति हुए। प्रत्यूषसे देवलका जन्म हुआ और प्रभाससे विश्वकर्माका। ये विश्वकर्मा देवताओंके बढ़ई थे और हजारों प्रकारकी शिल्पकारीका काम करते थे। उनके ही निर्माण किये हुए शिल्प और भूषण आदिके सहारे आज भी मनुष्य अपनी जीविका चलाते हैं। सुरभीने कश्यपजीके अंशसे ग्यारह रुद्रोंको उत्पन्न किया तथा हे साधुश्रेष्ठ! सतीने अपनी तपस्या एवं महादेवजीके अनुग्रहसे सम्भावित होकर चार पुत्र उत्पन्न किये। उनके नाम हैं—अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, त्वष्टा और रुद्र। त्वष्टाके पुत्र महायशस्वी श्रीमान् विश्वरूप हुए। हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, अपराजित, वृषाकपि, शम्भु, कपर्दी, रैवत, मृगव्याध, सर्प और कपाली—ये ग्यारह रुद्र प्रधान हैं। यों तो सैकड़ों-लाखों रुद्र हैं, जिनसे यह चराचर जगत् व्याप्त है॥ ३५—४५॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'वैवस्वत मनुके वंशका वर्णन' नामक अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

कश्यप आदिके वंशका वर्णन

अग्निदेव बोले—हे मुने! अब मैं अदिति आदि दक्ष-कन्याओंसे उत्पन्न हुई कश्यपजीकी सृष्टिका वर्णन करता हूँ—चाक्षुष मन्वन्तरमें जो तुषित नामक बारह देवता थे, वे ही पुनः इस वैवस्वत मन्वन्तरमें कश्यपके अंशसे अदितिके गर्भमें आये थे। वे विष्णु, शक्र (इन्द्र), त्वष्टा, धाता, अर्यमा, पूषा, विवस्वान्, सविता, मित्र, वरुण, भग और अंशु नामक बारह आदित्य[१] हुए। अरिष्टनेमिकी चार पत्नियोंसे सोलह संतानें उत्पन्न हुईं। विद्वान् बहुपुत्रके [उनकी दो पत्नियोंसे कपिला, लोहिता आदिके भेदसे] चार प्रकारकी विद्युत्स्वरूपा कन्याएँ उत्पन्न हुईं। अङ्गिरा मुनिसे (उनकी दो पत्नियोंद्वारा) श्रेष्ठ ऋचाएँ हुईं तथा कृशाश्वके भी [उनकी दो पत्नियोंसे] देवताओंके दिव्य आयुध[२] उत्पन्न हुए॥ १—४॥

जैसे आकाशमें सूर्यके उदय और अस्तभाव बारंबार होते रहते हैं, उसी प्रकार देवतालोग युग-युगमें (कल्प-कल्पमें) उत्पन्न [एवं विनष्ट] होते रहते हैं।[३] कश्यपजीसे उनकी पत्नी दितिके गर्भसे हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष नामक पुत्र उत्पन्न हुए। फिर सिंहिका नामवाली एक कन्या भी हुई, जो विप्रचित्ति नामक दानवकी पत्नी हुई। उसके गर्भसे राहु आदिकी उत्पत्ति हुई, जो 'सैंहिकेय' नामसे विख्यात हुए। हिरण्यकशिपुके चार पुत्र हुए, जो अपने बल-पराक्रमके कारण विख्यात थे। इनमें पहला ह्राद, दूसरा अनुह्राद और तीसरे प्रह्राद हुए, जो महान् विष्णुभक्त थे और चौथा संह्राद था। ह्रादका पुत्र ह्रद हुआ। संह्रादके पुत्र आयुष्मान् शिवि और वाष्कल थे। प्रह्रादका पुत्र विरोचन हुआ और विरोचनसे बलिका जन्म हुआ। हे महामुने! बलिके सौ पुत्र हुए, जिनमें बाणासुर ज्येष्ठ था। पूर्वकल्पमें इस बाणासुरने भगवान् उमापतिको [भक्तिभावसे] प्रसन्न कर उन परमेश्वरसे यह वरदान प्राप्त किया था कि 'मैं आपके पास ही विचरता रहूँगा।' हिरण्याक्षके पाँच पुत्र थे—शम्बर, शकुनि, द्विमूर्धा, शङ्कु और आर्य। कश्यपजीकी दूसरी पत्नी दनुके गर्भसे सौ दानवपुत्र उत्पन्न हुए॥ ५—११॥

इनमें स्वर्भानुकी कन्या सुप्रभा थी और पुलोमा दानवकी पुत्री थी शची। उपदानवकी कन्या हयशिरा थी और वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठा। पुलोमा और कालका—ये दो वैश्वानरकी कन्याएँ थीं। ये दोनों कश्यपजीकी पत्नी हुईं। इन दोनोंके करोड़ों पुत्र थे। प्रह्रादके वंशमें चार करोड़ 'निवातकवच' नामक दैत्य हुए। कश्यपजीकी ताम्रा नामवाली पत्नीसे छः पुत्र हुए। इनके

१. यहाँ दी हुई आदित्योंकी नामावली हरिवंशके हरिवंशपर्वगत तीसरे अध्यायमें श्लोक संख्या ६०-६१ में कथित नामावलीसे ठीक-ठीक मिलती है।

२. 'प्रत्यङ्गिरसजाः श्रेष्ठाः कृशाश्वस्य सुरायुधाः।' इस अर्धालीमें पूरे एक श्लोकका भाव संनिविष्ट है। अतः उस सम्पूर्ण श्लोकपर दृष्टि न रखी जाय तो अर्थको समझनेमें भ्रम होता है। हरिवंशके निम्नाङ्कित (हरि० ३।६५) श्लोकसे उपर्युक्त पङ्क्तियोंका भाव पूर्णतः स्पष्ट होता है—

प्रत्यङ्गिरसजाः श्रेष्ठा ऋचो ब्रह्मर्षिसत्कृताः। कृशाश्वस्य तु राजर्षेर्देवप्रहरणानि च॥

सम्पूर्ण दिव्यास्त्र कृशाश्वके पुत्र हैं, इस विषयमें वा० रामायण बाल०, सर्ग २१के श्लोक १३-१४ तथा मत्स्यपुराण ६।६ द्रष्टव्य हैं।

३. इस अर्धालीके भावको समझनेके लिये भी हरिवंशके निम्नाङ्कित श्लोकपर दृष्टिपात करना आवश्यक है—

एते युगसहस्रान्ते जायन्ते पुनरेव हि। सर्वदेवगणास्तात त्रयस्त्रिंशत्तु कामजाः॥ (हरि०, हरि० ३।६६)

—यही भाव मत्स्यपुराण ६।७ में भी आया है।

अतिरिक्त काकी, श्येनी, भासी, गृध्रिका और शुचिग्रीवा आदि भी कश्यपजीकी भार्याएँ थीं, उनसे काक आदि पक्षी उत्पन्न हुए। ताम्राके पुत्र घोड़े और ऊँट थे। विनताके अरुण और गरुड़ नामक दो पुत्र हुए। सुरसासे हजारों साँप उत्पन्न हुए और कद्रूके गर्भसे भी शेष, वासुकि और तक्षक आदि सहस्रों नाग हुए। क्रोधवशाके गर्भसे दंशनशील दाँतवाले सर्प प्रकट हुए। धरासे जल-पक्षी उत्पन्न हुए। सुरभिसे गाय-भैंस आदि पशुओंकी उत्पत्ति हुई। इराके गर्भसे तृण आदि उत्पन्न हुए। खसासे यक्ष-राक्षस और मुनिके गर्भसे अप्सराएँ प्रकट हुईं। इसी प्रकार अरिष्टाके गर्भसे गन्धर्व उत्पन्न हुए। इस तरह कश्यपजीसे स्थावर-जङ्गम जगत्‌की उत्पत्ति हुई॥ १२—१८॥

इन सबके असंख्य पुत्र हुए। देवताओंने दैत्योंको युद्धमें जीत लिया। अपने पुत्रोंके मारे जानेपर दितिने कश्यपजीको सेवासे संतुष्ट किया। वह इन्द्रका संहार करनेवाले पुत्रको पाना चाहती थी; उसने कश्यपजीसे अपना वह अभिमत वर प्राप्त कर लिया। जब वह गर्भवती और व्रतपालनमें तत्पर थी, उस समय एक दिन भोजनके बाद बिना पैर धोये ही सो गयी। तब इन्द्रने यह छिद्र (त्रुटि या दोष) ढूँढ़कर उसके गर्भमें प्रविष्ट हो उस गर्भके टुकड़े-टुकड़े कर दिये; (किंतु व्रतके प्रभावसे उनकी मृत्यु नहीं हुई।) वे सभी अत्यन्त तेजस्वी और इन्द्रके सहायक उनचास मरुत् नामक देवता हुए। मुने! यह सारा वृत्तान्त मैंने सुना दिया। श्रीहरि-स्वरूप ब्रह्माजीने पृथुको नरलोकके राजपदपर अभिषिक्त करके क्रमशः दूसरोंको भी राज्य दिये—उन्हें विभिन्न समूहोंका राजा बनाया। अन्य सबके अधिपति (तथा परिगणित अधिपतियोंके भी अधिपति) साक्षात् श्रीहरि ही हैं॥ १९—२२॥

ब्राह्मणों और ओषधियोंके राजा चन्द्रमा हुए। जलके स्वामी वरुण हुए। राजाओंके राजा कुबेर हुए। द्वादश सूर्यों (आदित्यों)-के अधीश्वर भगवान् विष्णु थे। वसुओंके राजा पावक और मरुद्गणोंके स्वामी इन्द्र हुए। प्रजापतियोंके स्वामी दक्ष और दानवोंके अधिपति प्रह्लाद हुए। पितरोंके यमराज और भूत आदिके स्वामी सर्वसमर्थ भगवान् शिव हुए तथा शैलों (पर्वतों)-के राजा हिमवान् हुए और नदियोंका स्वामी सागर हुआ। गन्धर्वोंके चित्ररथ, नागोंके वासुकि, सर्पोंके तक्षक और पक्षियोंके गरुड राजा हुए। श्रेष्ठ हाथियोंका स्वामी ऐरावत हुआ और गौओंका अधिपति साँड़। वनचर जीवोंका स्वामी शेर हुआ और वनस्पतियोंका प्लक्ष (पकड़ी)। घोड़ोंका स्वामी उच्चैःश्रवा हुआ। सुधन्वा पूर्व दिशाका रक्षक हुआ। दक्षिण दिशामें शङ्खपद और पश्चिममें केतुमान् रक्षक नियुक्त हुए। इसी प्रकार उत्तर दिशामें हिरण्यरोमक राजा हुआ। यह प्रतिसर्गका वर्णन किया गया॥ २३—२९॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'प्रतिसर्गविषयक कश्यपवंशका वर्णन' नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १९॥

बीसवाँ अध्याय

सर्गका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—मुने! (प्रकृतिसे) पहले महत्तत्त्वकी सृष्टि हुई, इसे ब्राह्मसर्ग समझना चाहिये। दूसरी तन्मात्राओंकी सृष्टि हुई, इसे भूतसर्ग कहा गया है। तीसरी वैकारिक सृष्टि है, इसे ऐन्द्रियकसर्ग कहते हैं। इस प्रकार यह बुद्धिपूर्वक प्रकट हुआ प्राकृतसर्ग तीन प्रकारका है। चौथे प्रकारकी सृष्टिको 'मुख्यसर्ग' कहते हैं। 'मुख्य' नाम है—स्थावरों (वृक्ष-पर्वत आदि)-

का। जो 'तिर्यक्स्रोता' कहा गया है, अर्थात् जिससे पशु-पक्षियोंकी उत्पत्ति हुई है, वह तैर्यग्योन्य-सर्ग पाँचवाँ है। ऊर्ध्व स्रोताओंकी सृष्टिको देव-सर्ग कहते हैं, यह छठा सर्ग है। इसके पश्चात् अर्वाक्स्रोताओंकी सृष्टि हुई—यही सातवाँ मानव-सर्ग है। आठवाँ अनुग्रह-सर्ग है, जो सात्त्विक और तामस भी है। ये अन्तवाले पाँच 'वैकृतसर्ग' हैं और आरम्भके तीन 'प्राकृतसर्ग' कहे गये हैं। प्राकृत और वैकृत सर्ग तथा नवें प्रकारका कौमार-सर्ग—ये कुल नौ सर्ग ब्रह्माजीसे प्रकट हुए, जो इस जगत्के मूल कारण हैं। ख्याति आदि दक्ष-कन्याओंसे भृगु आदि महर्षियोंने ब्याह किया। कुछ लोग नित्य, नैमित्तिक और प्राकृत—इस भेदसे तीन प्रकारकी सृष्टि मानते हैं। जो प्रतिदिन होनेवाले अवान्तर-प्रलयसे प्रतिदिन जन्म लेते रहते हैं, वह 'नित्यसर्ग' कहा गया है॥ १—८॥

भृगुसे उनकी पत्नी ख्यातिने धाता-विधाता नामक दो देवताओंको जन्म दिया तथा लक्ष्मी नामकी कन्या भी उत्पन्न की, जो भगवान् विष्णुकी पत्नी हुईं। इन्द्रने अपने अभ्युदयके लिये इन्हींका स्तवन किया था। धाता और विधाताके क्रमशः प्राण और मृकण्डु नामक दो पुत्र हुए। मृकण्डुसे मार्कण्डेयका जन्म हुआ। उनसे वेदशिरा उत्पन्न हुए। मरीचिके सम्भूतिके गर्भसे पौर्णमास नामक पुत्र हुआ और अङ्गिराके स्मृतिके गर्भसे अनेक पुत्र तथा सिनीवाली, कुहू, राका और अनुमति नामक चार कन्याएँ हुईं। अत्रिके अंशसे अनसूयाने सोम, दुर्वासा और दत्तात्रेय नामक पुत्रोंको जन्म दिया। इनमें दत्तात्रेय महान् योगी थे। पुलस्त्य मुनिकी पत्नी प्रीतिके गर्भसे दत्तोलि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। पुलहसे क्षमाके गर्भसे सहिष्णु एवं सर्वपादिकका* जन्म हुआ। क्रतुके सन्नतिसे बालखिल्य नामक साठ हजार पुत्र उत्पन्न हुए, जो अँगूठेके पोरुओंके बराबर और महान् तेजस्वी थे। वसिष्ठसे ऊर्जाके गर्भसे राजा, गात्र, ऊर्ध्वबाहु, सवन, अनघ, शुक्र और सुतपा—ये सात ऋषि प्रकट हुए॥ ९—१५॥

स्वाहा एवं अग्निसे पावक, पवमान और शुचि नामक पुत्र हुए। इसी प्रकार अजसे अग्निष्वात्त, बर्हिषद्, अनग्नि एवं साग्नि पितर हुए। पितरोंसे स्वधाके गर्भसे मेना और वैधारिणी नामक दो कन्याएँ हुईं। अधर्मकी पत्नी हिंसा हुई; उन दोनोंसे अमृत नामक पुत्र और निकृति नामवाली कन्याकी उत्पत्ति हुई। (इन दोनोंने परस्पर विवाह किया और) इनसे भय तथा नरकका जन्म हुआ। क्रमशः माया और वेदना इनकी पत्नियाँ हुईं। इनमेंसे मायाने (भयके सम्पर्कसे) समस्त प्राणियोंके प्राण लेनेवाले मृत्युको जन्म दिया और वेदनाने नरकके संयोगसे दुःख नामक पुत्र उत्पन्न किया। इसके पश्चात् मृत्युसे व्याधि, जरा, शोक, तृष्णा और क्रोधकी उत्पत्ति हुई। ब्रह्माजीसे एक रोता हुआ पुत्र हुआ, जो रुदन करनेके कारण 'रुद्र' नामसे प्रसिद्ध हुआ। तथा हे द्विज! उन पितामह (ब्रह्माजी)-ने उसे भव, शर्व, ईशान, पशुपति, भीम, उग्र और महादेव आदि नामोंसे पुकारा। रुद्रकी पत्नी सतीने अपने पिता दक्षपर कोप करनेके कारण देहत्याग किया और हिमवान्की कन्या-रूपमें प्रकट होकर पुनः वे शंकरजीकी ही धर्मपत्नी हुईं। किसी समय नारदजीने ऋषियोंके प्रति विष्णु आदि देवताओंकी पूजाका विधान बतलाया था। स्नानादिपूर्वक की जानेवाली उन पूजाओंका विधिवत् अनुष्ठान करके स्वायम्भुव मनु आदिने भोग और मोक्ष—दोनों प्राप्त किये थे॥ १६—२३॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'जगत्-सृष्टिका वर्णन' नामक बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २०॥

---

* कहीं-कहीं कर्मपादिक नाम मिलता है।

इक्कीसवाँ अध्याय

विष्णु आदि देवताओंकी सामान्य पूजाका विधान

नारदजी बोले—अब मैं विष्णु आदि देवताओंकी सामान्य पूजाका वर्णन करता हूँ तथा समस्त कामनाओंको देनेवाले पूजा-सम्बन्धी मन्त्रोंको भी बतलाता हूँ। भगवान् विष्णुके पूजनमें सर्वप्रथम परिवारसहित भगवान् अच्युतको नमस्कार करके पूजन आरम्भ करे, इसी प्रकार पूजा-मण्डपके द्वारदेशमें क्रमशः दक्षिण-वाम भागमें धाता और विधाताका तथा गङ्गा और यमुनाका भी पूजन करे। फिर शङ्खनिधि और पद्मनिधि—इन दो निधियोंकी, द्वारलक्ष्मीकी, वास्तु-पुरुषकी तथा आधारशक्ति, कूर्म, अनन्त, पृथिवी, धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्यकी पूजा करे। तदनन्तर अधर्म आदिका (अर्थात् अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्यका) पूजन करे तथा एक कमलकी भावना करके उसके मूल, नाल, पद्म, केसर और कर्णिकाओंकी पूजा करे।

फिर ऋग्वेद आदि चारों वेदोंकी, सत्ययुग आदि युगोंकी, सत्त्व आदि गुणोंकी और सूर्य आदिके मण्डलकी पूजा करे। इसी प्रकार विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा आदि जो शक्तियाँ हैं, उनकी पूजा करे तथा प्रह्वी, सत्या, ईशा, अनुग्रहा, निर्मलमूर्ति दुर्गा, सरस्वती, गण (गणेश), क्षेत्रपाल और वासुदेव (संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध) आदिका पूजन करे। इनके बाद हृदय, सिर, चूडा (शिखा), वर्म (कवच), नेत्र आदि अङ्गोंकी, फिर शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म नामक अस्त्रोंकी, श्रीवत्स, कौस्तुभ एवं वनमालाकी तथा लक्ष्मी, पुष्टि, गरुड़ और गुरुदेवकी पूजा करे। तत्पश्चात् इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, जल (वरुण), वायु, कुबेर, ईशान, ब्रह्मा और अनन्त—इन दिक्पालोंकी, इनके अस्त्रोंकी, कुमुद आदि विष्णुपार्षदों या द्वारपालोंकी और विष्वक्सेनकी आवरण-मण्डल आदिमें पूजा आदि करनेसे सिद्धि प्राप्त होती है॥ १—८॥

अब भगवान् शिवकी सामान्य पूजा बतायी जाती है—इसमें पहले नन्दीका पूजन करना चाहिये, फिर महाकालका। तदनन्तर क्रमशः दुर्गा, यमुना, गण आदिका, वाणी, श्री, गुरु, वास्तुदेव, आधारशक्ति आदि और धर्म आदिका अर्चन करे। फिर वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, काली, कलविकरिणी, बलविकरिणी, बलप्रमथिनी, सर्वभूतदमनी तथा कल्याणमयी मनोन्मनी—इन नौ शक्तियोंका क्रमसे पूजन करे। '**हां हं हां शिवमूर्तये नमः।**'—इस मन्त्रसे हृदयादि अङ्ग और ईशान आदि मुखसहित शिवकी पूजा करे। '**हौं शिवाय हौं।**' इत्यादिसे केवल शिवकी अर्चना करे और '**हां**' इत्यादिसे ईशानादि* पाँच मुखोंकी आराधना करे। '**ह्रीं गौर्यै नमः।**' इससे गौरीका और '**गं गणपतये नमः।**' इस मन्त्रसे गणपतिकी, नाम-मन्त्रोंसे इन्द्र आदि दिक्पालोंकी, चण्डकी और हृदय, सिर आदिकी भी पूजा करे॥ ९—१२ $\frac{1}{2}$ ॥

अब क्रमशः सूर्यकी पूजाके मन्त्र बताये जाते हैं। इसमें नन्दी सर्वप्रथम पूजनीय हैं। फिर क्रमशः पिङ्गल, उच्चैःश्रवा और अरुणकी पूजा करे। तत्पश्चात् प्रभूत, विमल, सोम, दोनों संध्याकाल, परसुख और स्कन्द आदिकी मध्यमें पूजा करे। इसके बाद दीप्ता, सूक्ष्मा, जया, भद्रा,

---

* ईशान, वामदेव, सद्योजात, अघोर और तत्पुरुष—ये शिवके पाँच मुख हैं। हां ईशानाय नमः। हीं वामदेवाय नमः। हूं सद्योजाताय नमः। हैं अघोराय नमः। हौं तत्पुरुषाय नमः।—इन मन्त्रोंसे इन मुखोंकी पूजा करनी चाहिये।

विभूति, विमला, अमोघा, विद्युता तथा सर्वतोमुखी—इन नौ शक्तियोंकी पूजा होनी चाहिये। तत्पश्चात् '**ॐ ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाय सौराय पीठाय नमः।**' इस मन्त्रसे सूर्यके आसनका स्पर्श और पूजन करे। फिर '**ॐ खं खखोल्काय नमः।**' इस मन्त्रसे सूर्यदेवकी मूर्तिकी उद्भावना करके उसका अर्चन करे। तत्पश्चात् '**ॐ ह्रां ह्रीं सः सूर्याय नमः।**' इस मन्त्रसे सूर्यदेवकी पूजा करे। इसके बाद हृदयादिका पूजन करे—'**ॐ आं नमः।**' इससे हृदयकी '**ॐ अर्काय नमः।**' इससे सिरकी पूजा करे। इसी प्रकार अग्नि, ईश और वायुमें अधिष्ठित सूर्यदेवका भी पूजन करे। फिर '**ॐ भूर्भुवः स्वः ज्वालिन्यै शिखायै नमः।**' इससे शिखाकी, '**ॐ हुं कवचाय नमः।**' इससे कवचकी, '**ॐ भां नेत्राभ्यां नमः।**' इससे नेत्रकी और '**ॐ रम् अर्कास्त्राय नमः।**' इससे अस्त्रकी पूजा करे। इसके बाद सूर्यकी शक्ति रानी संज्ञाकी तथा उनसे प्रकट हुई छायादेवीकी पूजा करे। फिर चन्द्रमा, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु—क्रमशः इन ग्रहोंका और सूर्यके प्रचण्ड तेजका पूजन करे। अब संक्षेपसे पूजन बतलाते हैं—देवताके आसन, मूर्ति, मूल, हृदय आदि अङ्ग और परिचारक इनकी ही पूजा होती है॥ १३—१९॥

भगवान् विष्णुके आसनका पूजन '**ॐ श्रीं श्रीं श्रीधरो हरिः ह्रीं।**' इस मन्त्रसे करना चाहिये। इसी मन्त्रसे भगवान् विष्णुकी मूर्तिका भी पूजन करे। यह सर्वमूर्तिमन्त्र है। इसीको त्रैलोक्यमोहन मन्त्र भी कहते हैं। भगवान्‌के पूजनमें '**ॐ क्लीं हृषीकेशाय नमः।**' '**ॐ हुं विष्णवे नमः।**'—इन मन्त्रोंका उपयोग करे। सम्पूर्ण दीर्घ स्वरोंके द्वारा हृदय आदिकी पूजा करे; जैसे—'**ॐ आं हृदयाय नमः।**' इससे हृदयकी, '**ॐ ईं शिरसे नमः।**' इससे सिरकी, '**ॐ ऊं शिखायै नमः।**' इससे शिखाकी, '**ॐ एं कवचाय नमः।**' इससे कवचकी, '**ॐ ऐं नेत्राभ्यां नमः।**' इससे नेत्रोंकी और '**ॐ औं अस्त्राय नमः।**' इससे अस्त्रकी पूजा करे। पाँचवीं अर्थात् परिचारकोंकी पूजा संग्राम आदिमें विजय आदि देनेवाली है। परिचारकोंमें चक्र, गदा, शङ्ख, मुसल, खड्ग, शार्ङ्गधनुष, पाश, अंकुश, श्रीवत्स, कौस्तुभ, वनमाला, 'श्रीं' इस बीजसे युक्त श्री—महालक्ष्मी, गरुड, गुरुदेव और इन्द्रादि देवताओंका पूजन किया जाता है। (इनके पूजनमें प्रणवसहित नामके आदि अक्षरमें अनुस्वार लगाकर चतुर्थी विभक्तियुक्त नामके अन्तमें '**नमः**' जोड़ना चाहिये। जैसे '**ॐ चं चक्राय नमः।**' '**ॐ गं गदायै नमः।**' इत्यादि) सरस्वतीके आसनकी पूजामें '**ॐ ऐं देव्यै सरस्वत्यै नमः।**' इस मन्त्रका उपयोग करे और उनकी मूर्तिके पूजनमें '**ॐ ह्रीं देव्यै सरस्वत्यै नमः।**' इस मन्त्रसे काम ले। हृदय आदिके लिये पूर्ववत् मन्त्र हैं। सरस्वतीके परिचारकोंमें लक्ष्मी, मेधा, कला, तुष्टि, पुष्टि, गौरी, प्रभा, मति, दुर्गा, गण, गुरु और क्षेत्रपालकी पूजा करे॥ २०—२४॥

तथा '**ॐ गं गणपतये नमः।**'—इस मन्त्रसे गणेशकी, '**ॐ ह्रीं गौर्यै नमः।**' इस मन्त्रसे गौरीकी, '**ॐ श्रीं श्रियै नमः।**' इससे श्रीकी, '**ॐ ह्रीं त्वरितायै नमः।**' इस मन्त्रसे त्वरिताकी, '**ॐ ऐं क्लीं सौं त्रिपुरायै नमः।**' इस मन्त्रसे त्रिपुराकी पूजा करे। इस प्रकार 'त्रिपुरा' शब्द भी चतुर्थी विभक्त्यन्त हो और अन्तमें '**नमः**' शब्दका प्रयोग हो। जिन देवताओंके लिये कोई विशेष मन्त्र नहीं बतलाया गया है, उनके नामके आदिमें प्रणव लगावे। नामके आदि अक्षरमें अनुस्वार लगाकर उसे बीजके रूपमें रखे तथा पूर्ववत् नामके अन्तमें चतुर्थी विभक्ति और '**नमः**' शब्द जोड़ ले। पूजन और जपमें प्रायः सभी मन्त्र

'ॐ'कारयुक्त बताये गये हैं। अन्तमें तिल और घी आदिसे होम करे। इस प्रकार ये देवता और मन्त्र धर्म, काम, अर्थ और मोक्ष—चारों पुरुषार्थ देनेवाले हैं। जो पूजाके इन मन्त्रोंका पाठ करेगा, वह समस्त भोगोंका उपभोग कर अन्तमें देवलोकको प्राप्त होगा॥ २५—२७॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'विष्णु आदि देवताओंकी सामान्य पूजाके विधानका वर्णन' नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २१॥

बाईसवाँ अध्याय

पूजाके अधिकारकी सिद्धिके लिये सामान्यतः स्नान-विधि

नारदजी बोले—विप्रवरो! पूजन आदि क्रियाओंके लिये पहले स्नान-विधिका वर्णन करता हूँ। पहले नृसिंह-सम्बन्धी बीज या मन्त्रसे[१] मृत्तिका हाथमें ले। उसे दो भागोंमें विभक्त कर एक भागके द्वारा (नाभिसे लेकर पैरोंतक लेपन करे, फिर दूसरे भागके द्वारा) अपने अन्य सब अङ्गोंमें लेपन कर मल-स्नान सम्पन्न करे। तदनन्तर शुद्ध स्नानके लिये जलमें डुबकी लगाकर आचमन करे। 'नृसिंह'-मन्त्रसे न्यास करके आत्मरक्षा करे। इसके बाद (तन्त्रोक्त रीतिसे) विधि-स्नान करे[२] और प्राणायामादिपूर्वक हृदयमें भगवान् विष्णुका ध्यान करते हुए '**ॐ नमो नारायणाय**' इस अष्टाक्षर-मन्त्रसे हाथमें मिट्टी लेकर उसके तीन भाग करे। फिर नृसिंह-मन्त्रके जपपूर्वक (उन तीनों भागोंसे तीन बार) दिग्बन्ध[३] करे। इसके बाद '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।**' इस वासुदेव-मन्त्रका जप करके संकल्पपूर्वक तीर्थ-जलका स्पर्श करे। फिर वेद आदिके मन्त्रोंसे अपने शरीरका और आराध्यदेवकी प्रतिमा या ध्यानकल्पित विग्रहका मार्जन करे। इसके बाद अघमर्षण-मन्त्रका जपकर वस्त्र पहनकर आगेका कार्य करे। पहले अङ्गन्यास कर मार्जन-मन्त्रोंसे मार्जन करे। इसके बाद हाथमें जल लेकर नारायण-मन्त्रसे प्राण-संयम करके जलको नासिकासे लगाकर सूँघे। फिर भगवान्का ध्यान करते हुए जलका परित्याग कर दे। इसके बाद अर्घ्य देकर ('**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।**' इस) द्वादशाक्षर-मन्त्रका जप करे। फिर अन्य देवता आदिका भक्तिपूर्वक तर्पण करे। योगपीठ आदिके क्रमसे दिक्पालतकके मन्त्रों और देवताओंका, ऋषियोंका, पितरोंका, मनुष्योंका तथा स्थावरपर्यन्त सम्पूर्ण भूतोंका तर्पण करके आचमन करे। फिर अङ्गन्यास करके अपने हृदयमें मन्त्रोंका उपसंहार कर पूजन-मन्दिरमें प्रवेश करे। इसी प्रकार अन्य पूजाओंमें भी मूल आदि मन्त्रोंसे स्नान-कार्य सम्पन्न करे॥ १—९॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'पूजाके लिये सामान्यतः स्नान-विधिका वर्णन' नामक बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २२॥

---

१. नृसिंह-बीज 'क्ष्रौं' है। मन्त्र इस प्रकार है—

ॐ उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम्। नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम्॥

२. सोमशम्भुकी कर्मकाण्डक्रमावलीके अनुसार मिट्टीके एक भागको नाभिसे लेकर पैरोंतक लगावे और दूसरे भागको शेष सारे शरीरमें। इसके बाद दोनों हाथोंसे आँख, कान, नाक बंद करके जलमें डुबकी लगावे। फिर मन-ही-मन कालाग्निके समान तेजस्वी अस्त्रका स्मरण करते हुए जलसे बाहर निकले। इस तरह मलस्नान एवं संध्योपासन सम्पन्न करके (तन्त्रोक्त रीतिसे) विधि-स्नान करना चाहिये (द्रष्टव्य श्लोक ९, १० तथा ११)।

३. प्रत्येक दिशामें वहाँके विघ्नकारक भूतोंको भगानेकी भावनासे उक्त मृत्तिकाको बिखेरना 'दिग्बन्ध' कहलाता है।

तेईसवाँ अध्याय

देवताओं तथा भगवान् विष्णुकी सामान्य पूजा-विधि

नारदजी बोले— ब्रह्मर्षियो! अब मैं पूजाकी विधिका वर्णन करूँगा, जिसका अनुष्ठान करके मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। हाथ-पैर धोकर, आसनपर बैठकर आचमन करे। फिर मौनभावसे रहकर सब ओरसे अपनी रक्षा करे।* पूर्व दिशाकी ओर मुँह करके स्वस्तिकासन या पद्मासन आदि कोई-सा आसन बाँधकर स्थिर बैठे और नाभिके मध्यभागमें स्थित धूएँके समान वर्णवाले, प्रचण्ड वायुरूप '**यं**' बीजका चिन्तन करते हुए अपने शरीरसे सम्पूर्ण पापोंको भावनाद्वारा पृथक् करे। फिर हृदय-कमलके मध्यमें स्थित तेजकी राशिभूत '**क्ष्रौं**' बीजका ध्यान करते हुए ऊपर, नीचे तथा अगल-बगलमें फैली हुई अग्निकी प्रचण्ड ज्वालाओंसे उस पापको जला डाले। इसके बाद बुद्धिमान् पुरुष आकाशमें स्थित चन्द्रमाकी आकृतिके समान किसी शान्त ज्योतिका ध्यान करे और उससे प्रवाहित होकर हृदय-कमलमें व्याप्त होनेवाली सुधामय सलिलकी धाराओंसे, जो सुषुम्ना-योनिके मार्गसे शरीरकी सब नाडियोंमें फैल रही हैं, अपने निष्पाप शरीरको आप्लावित करे। इस प्रकार शरीरकी शुद्धि करके तत्त्वोंका नाश करे। फिर हस्तशुद्धि करे। इसके लिये पहले दोनों हाथोंमें अस्त्र एवं व्यापकमुद्रा करे और दाहिने अँगूठेसे आरम्भ करके करतल और करपृष्ठतक न्यास करे॥ १—६॥

इसके बाद एक-एक अक्षरके क्रमसे बारह अङ्गोंवाले द्वादशाक्षर मूल-मन्त्रका अपने देहमें बारह मन्त्र-वाक्योंद्वारा न्यास करे। हृदय, सिर, शिखा, कवच, अस्त्र, नेत्र, उदर, पीठ, बाहु, ऊरु, घुटना, पैर—ये शरीरके बारह स्थान हैं, इनमें ही द्वादशाक्षरके एक-एक वर्णका न्यास करे। (यथा— **ॐ ॐ नमः हृदये। ॐ नं नमः शिरसि। ॐ मों नमः शिखायाम्।** इत्यादि)। फिर मुद्रा समर्पणकर भगवान् विष्णुका स्मरण करे और अष्टोत्तरशत (१०८) मन्त्रका जप करके पूजन करे॥ ७-८॥

बायें भागमें जलपात्र और दाहिने भागमें पूजाका सामान रखकर '**अस्त्राय फट्।**' मन्त्रसे उसको धो दे; इसके पश्चात् गन्ध और पुष्प आदिसे युक्त दो अर्घ्यपात्र रखे। फिर हाथमें जल लेकर '**अस्त्राय फट्।**' इस मन्त्रसे अभिमन्त्रित कर योगपीठको सींच दे। उसके मध्य भागमें सर्वव्यापी चेतन ज्योतिर्मय परमेश्वर श्रीहरिका ध्यान करके उस योगपीठपर पूर्व आदि दिशाओंके क्रमसे धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अग्नि आदि दिक्पाल तथा अधर्म आदिके विग्रहकी स्थापना करे। उस पीठपर कच्छप, अनन्त, पद्म, सूर्य आदि मण्डल और विमला आदि शक्तियोंकी कमलके केसरके रूपमें और ग्रहोंकी कर्णिकामें स्थापना करे। पहले अपने हृदयमें ध्यान करे। फिर मण्डलमें आवाहन करके पूजन करे। (आवाहनके अनन्तर) क्रमशः अर्घ्य, पाद्य, आचमन, मधुपर्क, स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत, आभूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य आदिको पुण्डरीकाक्ष-विद्या (**'ॐ नमो भगवते पुण्डरीकाक्षाय।'**— इस मन्त्र)-से अर्पण करे॥ ९—१४॥

मण्डलके पूर्व आदि द्वारोंपर भगवान्‌के विग्रहकी

---

* अपक्रामन्तु भूतानि पिशाचाः सर्वतोदिशम्। सर्वेषामविरोधेन पूजाकर्म समारभे॥'— इत्यादि मन्त्रोंद्वारा अथवा कवच आदिके मन्त्रोंसे रक्षा करे। दाहिने हाथमें रक्षा-सूत्र बाँधकर भी रक्षा की जाती है। इसका मन्त्र है—

येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबलः। तेन त्वां प्रतिबध्नामि रक्षे मा चल मा चल॥

सेवामें रहनेवाले पार्षदोंकी पूजा करे। पूर्वके दरवाजेपर गरुडकी, दक्षिणद्वारपर चक्रकी, उत्तरवाले द्वारपर गदाकी और ईशान तथा अग्निकोणमें शङ्ख एवं धनुषकी स्थापना करे। भगवान्‌के बायें-दायें दो तूणीर, बायें भागमें तलवार और चर्म (ढाल), दाहिने भागमें लक्ष्मी और वाम भागमें पुष्टि देवीकी स्थापना करे। भगवान्‌के सामने वनमाला, श्रीवत्स और कौस्तुभको स्थापित करे। मण्डलके बाहर दिक्पालोंकी स्थापना करे। मण्डलके भीतर और बाहर स्थापित किये हुए सभी देवताओंकी उनके नाम-मन्त्रोंसे पूजा करे। सबके अन्तमें भगवान् विष्णुका पूजन करना चाहिये॥ १५—१७॥

अङ्गोंसहित पृथक्-पृथक् बीज-मन्त्रोंसे और सभी बीज-मन्त्रोंको एक साथ पढ़कर भी भगवान्‌का अर्चन करे। मन्त्र-जप करके भगवान्‌की परिक्रमा करे और स्तुतिके पश्चात् अर्घ्य-समर्पण कर हृदयमें भगवान्‌की स्थापना कर ले। फिर यह ध्यान करे कि 'परब्रह्म भगवान् विष्णु मैं ही हूँ' (—इस प्रकार अभेदभावसे चिन्तन करके पूजन करना चाहिये)। भगवान्‌का आवाहन करते समय '**आगच्छ**' (भगवन्! आइये।) इस प्रकार पढ़ना चाहिये और विसर्जनके समय '**क्षमस्व**' (हमारी त्रुटियोंको क्षमा कीजियेगा।)—ऐसी योजना करनी चाहिये॥ १८-१९॥

इस प्रकार अष्टाक्षर आदि मन्त्रोंसे पूजा करके मनुष्य मोक्षका भागी होता है। यह भगवान्‌के एक विग्रहका पूजन बताया गया। अब नौ व्यूहोंके पूजनकी विधि सुनो॥ २०॥

दोनों अँगूठों और तर्जनी आदिमें वासुदेव, बलभद्र आदिका न्यास करे। इसके बाद शरीरमें अर्थात् सिर, ललाट, मुख, हृदय, नाभि, गुह्य अङ्ग, जानु और चरण आदि अङ्गोंमें न्यास करे। फिर मध्यमें एवं पूर्व आदि दिशाओंमें पूजन करे। इस प्रकार एक पीठपर एक व्यूहके क्रमसे पूर्ववत् नौ व्यूहोंके लिये नौ पीठोंकी स्थापना करे। नौ कमलोंमें नौ मूर्तियोंके द्वारा पूर्ववत् नौ व्यूहोंका पूजन करे। कमलके मध्यभागमें जो भगवान्‌का स्थान है, उसमें वासुदेवकी पूजा करे॥ २१—२३॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'सामान्य पूजा-विषयक वर्णन' नामक तेईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २३॥

चौबीसवाँ अध्याय

कुण्ड-निर्माण एवं अग्नि-स्थापन-सम्बन्धी कार्य आदिका वर्णन

नारदजी कहते हैं— महर्षियो! अब मैं अग्नि-सम्बन्धी कार्यका वर्णन करूँगा, जिससे मनुष्य सम्पूर्ण मनोवाञ्छित वस्तुओंका भागी होता है। चौबीस अङ्गुलकी चौकोर भूमिको सूतसे नापकर चिह्न बना दे। फिर उस क्षेत्रको सब ओरसे बराबर खोदे। दो अङ्गुल भूमि चारों ओर छोड़कर खोदे हुए कुण्डकी मेखला बनावे। मेखलाएँ तीन होती हैं, जो 'सत्त्व, रज और तम' नामसे कही गयी हैं। उनका मुख पूर्व, अर्थात् बाह्य दिशाकी ओर रहना चाहिये। मेखलाओंकी अधिकतम ऊँचाई बारह अङ्गुलकी रखे, अर्थात् भीतरकी ओरसे पहली मेखलाकी ऊँचाई बारह अङ्गुल रहनी चाहिये। (उसके बाह्यभागमें दूसरी मेखलाकी ऊँचाई आठ अङ्गुलकी और उसके भी बाह्यभागमें तीसरी मेखलाकी ऊँचाई चार अङ्गुलकी रहनी चाहिये।) इसकी चौड़ाई क्रमशः आठ, दो और चार अङ्गुलकी होती है॥ १—३॥*

योनि सुन्दर बनायी जाय। उसकी लंबाई दस

* शारदातिलकमें उद्धृत वसिष्ठसंहिताके वचनानुसार पहली मेखला बारह अङ्गुल चौड़ी होनी चाहिये और चार अङ्गुल ऊँची, दूसरी आठ अङ्गुल चौड़ी और चार अङ्गुल ऊँची, फिर तीसरी चार-चार अङ्गुल चौड़ी तथा ऊँची रहनी चाहिये। यथा—

अङ्गुलकी हो। वह आगे-आगेकी ओर क्रमशः छः, चार और दो अङ्गुल ऊँची रहे अर्थात् उसका पिछला भाग छः अङ्गुल, उससे आगेका भाग चार अङ्गुल और उससे भी आगेका भाग दो अङ्गुल ऊँचा होना चाहिये। योनिका स्थान कुण्डकी पश्चिम दिशाका मध्यभाग है। उसे आगेकी ओर क्रमशः नीची बनाना चाहिये। उसकी आकृति पीपलके पत्तेकी-सी होनी चाहिये। उसका कुछ भाग कुण्डमें प्रविष्ट रहना चाहिये। योनिका आयाम चार अङ्गुलका रहे और नाल पंद्रह अङ्गुल बड़ा हो। योनिका मूलभाग तीन अङ्गुल और उससे आगेका भाग छः अङ्गुल विस्तृत हो। यह एक हाथ लंबे-चौड़े कुण्डका लक्षण कहा गया है। दो हाथ या तीन हाथके कुण्डमें नियमानुसार सब वस्तुएँ तदनुरूप द्विगुण या त्रिगुण बढ़ जायँगी॥ ४—६॥[1]

अब मैं एक या तीन मेखलावाले गोल और अर्धचन्द्राकार आदि कुण्डोंका वर्णन करता हूँ। चौकोर कुण्डके आधे भाग, अर्थात् ठीक बीचो-बीचमें सूत रखकर उसे किसी कोणकी सीमातक ले जाय; मध्यभागसे कोणतक ले जानेमें सामान्य दिशाओंकी अपेक्षा वह सूत जितना बढ़ जाय, उसके आधे भागको प्रत्येक दिशामें बढ़ाकर स्थापित करे और मध्यस्थानसे उन्हीं बिन्दुओंपर सूतको सब ओर घुमावे तो गोल आकार बन जायगा।[2] कुण्डार्धसे बढ़ा हुआ जो कोणभागार्ध है, उसे उत्तर दिशामें बढ़ाये तथा उसी सीधमें पूर्व और पश्चिम दिशामें भी बाहरकी ओर यत्नपूर्वक बढ़ाकर चिह्न कर दे। फिर मध्यस्थानमें सूतका एक सिरा रखकर दूसरा छोर पूर्व दिशावाले चिह्नपर रखे और उसे दक्षिणकी ओरसे घुमाते हुए पश्चिम दिशाके चिह्नतक ले जाय। इससे अर्धचन्द्राकार चिह्न बन जायगा। फिर उस क्षेत्रको खोदनेपर सुन्दर अर्धचन्द्र-कुण्ड तैयार हो जायगा॥ ७—९॥[3]

कमलकी आकृतिवाले गोल कुण्डकी मेखलापर दलाकार चिह्न बनाये जायँ। होमके लिये एक सुन्दर स्रुक् तैयार करे, जो अपने बाहुदण्डके

प्रथमा मेखला तत्र द्वादशाङ्गुलविस्तृता। चतुर्भिरङ्गुलैस्तस्याश्चोन्नतिश्च समन्ततः॥
तस्याश्चोपरि वप्रः स्याच्चतुरङ्गुलमुन्नतः। अष्टाभिरङ्गुलैः सम्यग् विस्तीर्णस्तु समन्ततः॥
तस्योपरि पुनः कार्यो भद्रः सोऽपि तृतीयकः। चतुरङ्गुलविस्तीर्णश्चोन्नतश्च तथाविधः॥

इस क्रमसे बाहरकी ओरसे पहली मेखलाकी ऊँचाई चार अङ्गुलकी होगी, फिर बादवाली उससे भी चार अङ्गुल ऊँची होनेके कारण मूलतः आठ अङ्गुल ऊँची होगी तथा तीसरी उससे भी चार अङ्गुल ऊँची होनेसे मूलतः बारह अङ्गुल ऊँची होगी। अग्निपुराणमें इसी दृष्टिसे भीतरकी ओरसे पहली मेखलाको बारह अङ्गुल ऊँची कहा गया है। चौड़ाई तो भीतरकी ओरसे बाहरकी ओर देखनेपर पहली बारह अङ्गुल चौड़ी, दूसरी आठ अङ्गुल चौड़ी तथा तीसरी चार अङ्गुल चौड़ी होगी। यहाँ मूलमें जो आठ, दो और चार अङ्गुलका विस्तार बताया गया है, इसका आधार अन्वेषणीय है।

१. अर्थात् एक हाथके कुण्डकी लंबाई-चौड़ाई २४ अङ्गुलकी होती है, दो हाथके कुण्डकी चौंतीस अङ्गुल और तीन हाथके कुण्डकी एकतालीस अङ्गुल होती है। इसी तरह अधिक हाथोंके विषयमें भी समझना चाहिये।

२. एक हाथ या २४ अङ्गुलके चौकोर क्षेत्रमें कुण्डार्ध होता है—१२ अङ्गुल और कोणभागार्ध है—१८ अङ्गुल। अतिरिक्त हुआ ६ अङ्गुल। उसका आधा भाग है—३ अङ्गुल। इसीको सब ओर बढ़ाकर सूत घुमानेसे गोल कुण्ड बनेगा।

३. कुण्ड-निर्माणके लिये निम्नाङ्कित परिभाषाको ध्यानमें रखना चाहिये—८ परमाणुओंका एक त्रसरेणु, ८ त्रसरेणुओंका १ रेणु, ८ रेणुओंका १ बालाग्र, ८ बालाग्रोंकी १ लिख्या, ८ लिख्याओंकी १ यूका, ८ यूकाओंका १ यव, ८ यवोंका १ अङ्गुल, २१ अङ्गुलिपर्वकी १ रत्नि तथा २४ अङ्गुलका १ हाथ होता है। एक-एक हाथ लंबे-चौड़े कुण्डको 'चतुरस्र' कहते हैं। चारों दिशाओंकी ओर एक-एक हाथ भूमिको मापकर जो कुण्ड तैयार किया जाता है, उसकी 'चतुरस्र' या 'चतुष्कोण' संज्ञा है।

इसकी रचनाका प्रकार यों है—पहले पूर्व-पश्चिम आदि दिशाओंका सम्यक् परिज्ञान कर ले। फिर जितना बड़ा क्षेत्र अभीष्ट हो, उतनेहीमें पूर्व और पश्चिम दोनों दिशाओंमें कील गाड़ दे। यदि २४ अङ्गुलका क्षेत्र अभीष्ट हो तो ४८ अङ्गुलका सूत लेकर उसमें

बराबर हो। उसके दण्डका मूलभाग चतुरस्र हो। उसका माप सात या पाँच अङ्गुलका बताया गया है। उस चतुरस्रके तिहाई भागको खुदवाकर गर्त बनावे। उसके मध्यभागमें उत्तम शोभायमान वृत्त हो। उक्त गर्तको नीचेसे ऊपरतक तथा अगल-बगलमें बराबर खुदावे। बाहरका अर्धभाग छीलकर साफ करा दे (उसपर रंदा करा दे)। चारों ओर चौथाई अङ्गुल, जो शेषके आधेका आधा भाग है, भीतरसे भी छीलकर साफ (चिकना) करा दे। शेषार्धभागद्वारा उक्त खातकी सुन्दर मेखला बनवावे। मेखलाके भीतरी भागमें उस खातका कण्ठ तैयार करावे, जिसका सारा विस्तार मेखलाकी तीन चौथाईके बराबर हो। कण्ठकी चौड़ाई एक या डेढ़ अङ्गुलके मापकी हो। उक्त स्रुक्के अग्रभागमें उसका मुख रहे, जिसका विस्तार चार या पाँच अङ्गुलका हो॥ १०—१४॥

मुखका मध्य भाग तीन या दो अङ्गुलका हो। उसे सुन्दर एवं शोभायमान बनाया जाय। उसकी लंबाई भी चौड़ाईके ही बराबर हो। उस मुखका मध्य भाग नीचा और परम सुन्दर होना चाहिये। स्रुक्के कण्ठदेशमें एक ऐसा छेद रहे, जिसमें कनिष्ठिका अङ्गुलि प्रविष्ट हो जाय। कुण्ड (अर्थात् स्रुक्के मुख)-का शेष भाग अपनी रुचिके अनुसार विचित्र शोभासे सम्पन्न किया जाय। स्रुक्के अतिरिक्त एक स्रुवा भी आवश्यक है, जिसकी लंबाई दण्डसहित एक हाथकी हो। उसके डंडेको गोल बनाया जाय। उस गोल डंडेकी मोटाई दो अङ्गुलकी हो। उसे खूब सुन्दर बनाना चाहिये। स्रुवाका मुख-भाग कैसा हो? यह बताया जाता है। थोड़ी-सी कीचड़में गाय अथवा बछड़ेका पैर पड़नेपर जैसा पदचिह्न उभर आता है, ठीक वैसा ही स्रुवाका मुख बनाया जाय, अर्थात् उस मुखका मध्य भाग दो भागोंमें विभक्त रहे। उपर्युक्त अग्निकुण्डको गोबरसे लीपकर उसके भीतरकी भूमिपर बीचमें एक अङ्गुल मोटी एक रेखा खींचे, जो दक्षिणसे उत्तरकी ओर गयी हो। उस रेखाको 'वज्र' की संज्ञा दी गयी है। उस प्रथम उत्तराग्र रेखापर उसके दक्षिण और उत्तर पार्श्वमें दो पूर्वाग्र रेखाएँ खींचे। इन दोनों रेखाओंके बीचमें पुनः तीन पूर्वाग्र रेखाएँ खींचे। इनमें पहली रेखा दक्षिण भागमें हो और शेष दो क्रमशः उसके उत्तरोत्तर भागमें खींची जायँ। मन्त्रज्ञ पुरुष इस प्रकार उल्लेखन (रेखाकरण) करके उस भूमिका अभ्युक्षण (सेचन) करे। फिर प्रणवके उच्चारणपूर्वक भावनाद्वारा एक विष्टर (आसन)-की कल्पना करके उसके ऊपर वैष्णवी

बारह-बारह अङ्गुलपर चिह्न लगा दे। फिर सूतको दोनों कीलोंमें बाँध दे। फिर उस सूतके चतुर्थांश चिह्नको कोणकी दिशाकी ओर खींचकर कोणका निश्चय करे। इससे चारों कोण शुद्ध होते हैं। इस प्रकार समान चतुरस्र क्षेत्र शुद्ध होता है। क्षेत्रशुद्धिके अनन्तर कुण्डका खनन करे। चतुर्भुज क्षेत्रमें भुज और कोटिके अङ्कोंमें गुणा करनेपर जो गुणनफल आता है, वही क्षेत्रफल होता है। इस प्रकार २४ अङ्गुलके क्षेत्रमें २४ अङ्गुल भुज और २४ अङ्गुल कोटि परस्पर गुणित हों तो ५७६ अङ्गुल क्षेत्रफल होगा।

चतुरस्र क्षेत्रको चौबीस भागोंमें विभक्त करे। फिर उसमेंसे तेरह भागको व्यासार्ध माने और उतने ही विस्तारके परकालसे क्षेत्रके मध्यभागसे आरम्भ करके मण्डलाकार रेखा खींचनेपर उत्तम वृत्त कुण्ड बन जायगा।

चतुरस्र क्षेत्रके शतांश और पञ्चमांशको जोड़कर उतना अंश क्षेत्रमानमेंसे घटा दे। फिर जो क्षेत्रमान शेष रह जाय, उतने ही विस्तारका परकाल लेकर क्षेत्रके मध्यभागमें लगा दे और अर्धवृत्ताकार रेखा खींचे। फिर अर्धचन्द्रके एक अग्रभागसे दूसरे अर्धभागतक पड़ी रेखा खींचे। इससे अर्धचन्द्रकुण्ड समीचीन होगा। उदाहरणार्थ—२४ अङ्गुलके क्षेत्रका पञ्चमांश ४ अङ्गुल, ६ यवा, ३ यूका, १ लिख्या (या लिक्षा) और ५ बालाग्र होगा। उस क्षेत्रका शतांश ० अङ्गुल, ० यवा, ३ यूका, ० लिक्षा और ४ बालाग्र होगा। इन दोनोंका योग ४ अङ्गुल ६ यवा, ६ यूका, २ लिक्षा और १ बालाग्र होगा। यह मान २४ अङ्गुलमें घटा दिया जाय तो शेष रहेगा १९ अङ्गुल, १ यवा, १ यूका, ५ लिक्षा और ७ बालाग्र। इतने विस्तारके परकालसे अर्धचन्द्र बनाना चाहिये। अग्निपुराणमें इन कुण्डोंके निर्माणकी विधि अत्यन्त संक्षेपसे लिखी गयी है; अतः अन्य ग्रन्थोंका मत भी यहाँ दे दिया गया है।

शक्तिका आवाहन एवं स्थापन करे॥ १५—२०॥

देवीके स्वरूपका इस प्रकार ध्यान करे—'वे दिव्य रूपवाली हैं और दिव्य वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हैं।' तत्पश्चात् यह चिन्तन करे कि 'देवीको संतुष्ट करनेके लिये अग्निदेवके रूपमें साक्षात् श्रीहरि पधारे हैं।' साधक (उन दोनोंका पूजन करके शुद्ध कांस्यादि-पात्रमें रखी और ऊपरसे शुद्ध कांस्यादि पात्रद्वारा ढकी हुई अग्निको लाकर, क्रव्याद-अंशको अलग करके, ईक्षणादिसे शोधित उस*) अग्निको कुण्डके भीतर स्थापित करे। तत्पश्चात् उस अग्निमें प्रादेशमात्र (अँगूठेसे लेकर तर्जनीके अग्रभागके बराबरकी) समिधाएँ देकर कुशोंद्वारा तीन बार परिसमूहन करे। फिर पूर्वादि सभी दिशाओंमें कुशास्तरण करके अग्निकी उत्तर दिशामें पश्चिमसे आरम्भ करके क्रमशः पूर्वादि दिशामें पात्रासादन करे—समिधा, कुशा, स्रुक्, स्रुवा, आज्यस्थाली, चरुस्थाली तथा कुशाच्छादित घी, (प्रणीतापात्र, प्रोक्षणीपात्र) आदि वस्तुएँ रखे। इसके बाद प्रणीताको सामने रखकर उसे जलसे भर दे और कुशासे प्रणीताका जल लेकर प्रोक्षणीपात्रका प्रोक्षण करे। तदनन्तर उसे बायें हाथमें लेकर दाहिने हाथमें गृहीत प्रणीताके जलसे भर दे। प्रणीता और हाथके बीचमें पवित्रीका अन्तर रहना चाहिये। प्रोक्षणीमें गिराते समय प्रणीताके जलको भूमिपर नहीं गिरने देना चाहिये। प्रोक्षणीमें अग्निदेवका ध्यान करके उसे कुण्डकी योनिके समीप अपने सामने रखे। फिर उस प्रोक्षणीके जलसे आसादित वस्तुओंको तीन बार सींचकर समिधाओंके बोझको खोलकर उसके बन्धनको सरकाकर सामने रखे। प्रणीतापात्रमें पुष्प छोड़कर उसमें भगवान् विष्णुका ध्यान करके उसे अग्निसे उत्तर दिशामें कुशके ऊपर स्थापित कर दे (और अग्नि तथा प्रणीताके मध्य भागमें प्रोक्षणीपात्रको कुशापर रख दे)॥ २१—२५॥

तदनन्तर आज्यस्थालीको घीसे भरकर अपने आगे रखे। फिर उसे आगपर चढ़ाकर सम्प्लवन एवं उत्पवनकी क्रियाद्वारा घीका संस्कार करे। (उसकी विधि इस प्रकार है—) प्रादेशमात्र लंबे दो कुश हाथमें ले। उनके अग्रभाग खण्डित न हुए हों तथा उनके गर्भमें दूसरा कुश अङ्कुरित न हुआ हो। दोनों हाथोंको उत्तान रखे और उनके अङ्गुष्ठ एवं कनिष्ठिका अङ्गुलिसे उन कुशोंको पकड़े रहे। इस तरह उन कुशोंद्वारा घीको थोड़ा-थोड़ा उठाकर ऊपरकी ओर तीन बार उछाले। प्रज्वलित तृण आदि लेकर घीको देखे और उसमें कोई अपद्रव्य (खराब वस्तु) हो तो उसे निकाल दे। इसके बाद तृण अग्निमें फेंककर उस घीको आगपरसे उतार ले और सामने रखे। फिर स्रुक् और स्रुवाको लेकर उनके द्वारा होम-सम्बन्धी कार्य करे। पहले जलसे उनको धो ले। फिर अग्निसे तपाकर सम्मार्जन कुशोंद्वारा उनका मार्जन करे (उन कुशोंके अग्रभागोंद्वारा स्रुक्-स्रुवाके भीतरी भागका तथा मूल भागसे उनके बाह्य भागका मार्जन करना चाहिये)। तत्पश्चात् पुनः उन्हें जलसे धोकर आगसे तपावे और अपने दाहिने भागमें स्थापित कर दे। उसके बाद साधक प्रणवसे ही अथवा देवताके नामके आदिमें 'प्रणव' तथा अन्तमें 'नमः' पद लगाकर उसके उच्चारणपूर्वक होम करे॥ २६—२९ $\frac{1}{2}$ ॥

हवनसे पहले अग्निके गर्भाधानसे लेकर सम्पूर्ण संस्कार अङ्ग-व्यवस्थाके अनुसार सम्पन्न

* वह्निं शुद्धाश्रयानीतं शुद्धपात्रोपरिस्थितम्। क्रव्यादांशं परित्यज्य ईक्षणादिविशोधितम्॥ (इति सोमशम्भुः)

करने चाहिये। मतान्तरके अनुसार नामान्तव्रत, व्रतबन्धान्तव्रत (यज्ञोपवीतान्त), समावर्तनान्त अथवा यज्ञाधिकारान्त संस्कार अङ्गानुसार करने चाहिये। साधक सर्वत्र प्रणवका उच्चारण करते हुए पूजनोपचार अर्पित करे और अपने वैभवके अनुसार प्रत्येक संस्कारके लिये अङ्ग-सम्बन्धी मन्त्रोंद्वारा होम करे। पहला गर्भाधान-संस्कार है, दूसरा पुंसवन, तीसरा सीमन्तोन्नयन, चौथा जातकर्म, पाँचवाँ नामकरण, छठा चूडाकरण, सातवाँ व्रतबन्ध (यज्ञोपवीत), आठवाँ वेदारम्भ, नवाँ समावर्तन तथा दसवाँ पत्नीसंयोग (विवाह-) संस्कार है, जो यज्ञके लिये अधिकार प्रदान करनेवाला है। क्रमशः एक-एक संस्कार-कर्मका चिन्तन और तदनुरूप पूजन करते हुए हृदय आदि अङ्ग-मन्त्रोंद्वारा प्रति कर्मके लिये आठ-आठ आहुतियाँ अर्पित करे*॥ ३०—३५॥

तदनन्तर साधक मूलमन्त्रद्वारा स्रुवासे पूर्णाहुति दे। उस समय मन्त्रके अन्तमें 'वौषट्' पद लगाकर प्लुतस्वरसे सुस्पष्ट मन्त्रोच्चारण करना चाहिये। इस तरह वैष्णव-अग्निका संस्कार करके उसपर विष्णु-देवताके निमित्त चरु पकावे। वेदीपर भगवान् विष्णुकी स्थापना एवं आराधना करके मन्त्रोंका स्मरण करते हुए उनका पूजन करे। अङ्ग और आवरण-देवताओंसहित इष्टदेव श्रीहरिको आसन आदि उपचार अर्पित करते हुए उत्तम रीतिसे उनकी पूजा करनी चाहिये। फिर गन्ध-पुष्पोंद्वारा अर्चना करके सुरश्रेष्ठ नारायणदेवका ध्यान करनेके अनन्तर अग्निमें समिधाका आधान करे और अग्नीश्वर श्रीहरिके समीप 'आघार' संज्ञक दो घृताहुतियाँ दे। इनमेंसे एकको तो वायव्यकोणमें दे और दूसरीको नैर्ऋत्यकोणमें। यही इनके लिये क्रम है। तत्पश्चात् 'आज्यभाग' नामक दो आहुतियाँ क्रमशः दक्षिण और उत्तर दिशामें दे और उनमें अग्निदेवके दायें-बायें नेत्रकी भावना करे। शेष सब आहुतियोंको इन्हींके बीचमें मन्त्रोच्चारणपूर्वक देना चाहिये। जिस क्रमसे देवताओंकी पूजा की गयी हो, उसी क्रमसे उनके लिये आहुति देनेका विधान है। घीसे इष्टदेवकी मूर्तिको तृप्त करे। इष्टदेव-सम्बन्धी हवन-संख्याकी अपेक्षा दशांशसे अङ्ग-देवताओंके लिये होम करे। घृत आदिसे, समिधाओंसे अथवा घृताक्त तिलोंसे सदा यजनीय देवताओंके लिये एक-एक सहस्र या एक-एक शत आहुतियाँ देनी चाहिये। इस प्रकार होमान्त-पूजन समाप्त करके स्नानादिसे शुद्ध हुए शिष्योंको गुरु बुलाकर अपने आगे बिठावे। वे सभी शिष्य उपवासव्रत किये हों। उनमें पाश-बद्ध पशुकी भावना करके उनका प्रोक्षण करे॥ ३६—४२॥

तदनन्तर उन सब शिष्योंको भावनाद्वारा अपने आत्मासे संयुक्त करके अविद्या और कर्मके बन्धनोंसे आबद्ध हो लिङ्गशरीरका अनुवर्तन करनेवाले चैतन्य (जीव)-का, जो लिङ्गशरीरके साथ बँधा हुआ है, ध्यानमार्गसे साक्षात्कार करके उसका सम्यक् प्रोक्षण करनेके पश्चात्

* आचार्य सोमशम्भुने संस्कारोंके चिन्तनका क्रम इस प्रकार बताया है—अग्निस्थापन ही श्रीहरिके द्वारा वैष्णवी देवीके गर्भमें बीजका आधान है। शैव होम-कर्ममें वागीश शिवके द्वारा वागीश्वरी शिवाके गर्भमें बीजाधान होता है। तत्पश्चात् देवीके परिधान-संवरण, शौचाचमन आदिका चिन्तन करके हृदय-मन्त्र (नमः)-के द्वारा गर्भाग्निका पूजन करे, यथा—'ॐ गर्भाग्नये नमः।' पूजनके पश्चात् उस गर्भकी रक्षाके लिये भावनाद्वारा देवीके पाणिपल्लवमें 'अस्त्राय फट्' बोलकर कुशाका कङ्कण बाँध दे। फिर पूर्वोक्त मन्त्रसे अथवा सद्योजात-मन्त्रसे अग्निकी पूजा कर गर्भाधान-संस्कारके निमित्त हृदय-मन्त्र (हृदयाय नमः)-से ही आहुतियाँ दे। तृतीय मासमें पुंसवनकी भावना करके, वामदेव-मन्त्रसे पूजन करके शिरोमन्त्र (शिरसे स्वाहा)-द्वारा आहुति देनेका विधान है। षष्ठ मासमें सीमन्तोन्नयनकी भावना और पूजा करके 'शिखायै वषट्' इस मन्त्रसे आहुतियाँ देनी चाहिये। इसी तरह नामकरणादि संस्कारोंका भी पूजन-हवनादिके द्वारा सम्पादन कर लेना चाहिये।

वायुबीज (यं)-के द्वारा उसके शरीरका शोषण करे। इसके बाद अग्निबीज (रं)-के चिन्तनसे अग्नि प्रकट करके यह भावना करे कि 'ब्रह्माण्ड' संज्ञक सारी सृष्टि दग्ध होकर भस्मकी पर्वताकार राशिके समान स्थित है। तत्पश्चात् भावनाद्वारा ही जलबीज (वं)-के चिन्तनसे अपार जलराशि प्रकट करके उस भस्मराशिको बहा दे और संसार अब वाणीमात्रमें ही शेष रह गया है—ऐसा स्मरण करे। तदनन्तर वहाँ (लं) बीजस्वरूपा भगवान्‌की पार्थिवी शक्तिका न्यास करे। फिर ध्यानद्वारा देखे कि समस्त तन्मात्राओंसे आवृत शुभ पार्थिव-तत्त्व विराजमान है। उससे एक अण्ड प्रकट हुआ है, जो उसीके आधारपर स्थित है और वही उसका उपादान भी है। उस अण्डके भीतर प्रणवस्वरूपा मूर्तिका चिन्तन करे॥ ४३—४७॥

तदनन्तर अपने आत्मामें स्थित पूर्वसंस्कृत लिङ्गशरीरका उस पुरुषमें संक्रमण करावे, अर्थात् यह भावना करे कि वह पुरुष लिङ्गशरीरसे युक्त है। उसके उस शरीरमें सभी इन्द्रियोंके आकार पृथक्-पृथक् अभिव्यक्त हैं तथा वह पुरुष क्रमशः बढ़ता और पुष्ट होता जा रहा है। फिर ध्यानमें देखे कि वह अण्ड एक वर्षतक बढ़कर और पुष्ट होकर फूट गया है। उसके दो टुकड़े हो गये हैं। उसमें ऊपरवाला टुकड़ा द्युलोक है और नीचेवाला भूलोक। इन दोनोंके बीचमें प्रजापति पुरुषका प्रादुर्भाव हुआ है। इस प्रकार वहाँ उत्पन्न हुए प्रजापतिका ध्यान करके पुनः प्रणवसे उन शिशुरूप प्रजापतिका प्रोक्षण करे। फिर यथास्थान पूर्वोक्त न्यास करके उनके शरीरको मन्त्रमय बना दे। उनके ऊपर विष्णुहस्त रखे और उन्हें वैष्णव माने। इस तरह एक अथवा बहुत-से लोगोंके जन्मका ध्यानद्वारा प्रत्यक्ष करे (शिष्योंके भी नूतन दिव्य जन्मकी भावना करे)। तदनन्तर मूलमन्त्रसे शिष्योंके दोनों हाथ पकड़कर मन्त्रोपदेष्टा गुरु नेत्रमन्त्र (वौषट्)-के उच्चारणपूर्वक नूतन एवं छिद्ररहित वस्त्रसे उनके नेत्रोंको बाँध दे। फिर देवाधिदेव भगवान्‌की यथोचित पूजा सम्पन्न करके तत्त्वज्ञ आचार्य हाथमें पुष्पाञ्जलि धारण करनेवाले उन शिष्योंको अपने पास पूर्वाभिमुख बैठावे॥ ४८—५३॥

इस प्रकार गुरुद्वारा दिव्य नूतन जन्म पाकर वे शिष्य भी श्रीहरिको पुष्पाञ्जलि अर्पित करके पुष्प आदि उपचारोंसे उनका पूजन करें। तदनन्तर पुनः वासुदेवकी अर्चना करके वे गुरुके चरणोंका पूजन करें। दक्षिणारूपमें उन्हें अपना सर्वस्व अथवा आधी सम्पत्ति समर्पित कर दें। इसके बाद गुरु शिष्योंको आवश्यक शिक्षा दें और वे (शिष्य) नाम-मन्त्रोंद्वारा श्रीहरिका पूजन करें। फिर मण्डलमें विराजमान शङ्ख, चक्र, गदा धारण करनेवाले भगवान् विष्वक्सेनका यजन करें, जो द्वारपालके रूपमें अपनी तर्जनी अङ्गुलिसे लोगोंको तर्जना देते हुए अनुचित क्रियासे रोक रहे हैं। इसके बाद श्रीहरिकी प्रतिमाका विसर्जन करे। भगवान् विष्णुका सारा निर्माल्य विष्वक्सेनको अर्पित कर दे।

तदनन्तर प्रणीताके जलसे अपना और अग्निकुण्डका अभिषेक करके वहाँके अग्निदेवको अपने आत्मामें लीन कर ले। इसके पश्चात् विष्वक्सेनका विसर्जन करे। ऐसा करनेसे भोगकी इच्छा रखनेवाला साधक सम्पूर्ण मनोवाञ्छित वस्तुको पा लेता है और मुमुक्षु पुरुष श्रीहरिमें विलीन होता—सायुज्य मोक्ष प्राप्त करता है॥ ५४—५८॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'कुण्डनिर्माण और अग्नि-स्थापनसम्बन्धी कार्य आदिका वर्णन' विषयक चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २४॥

पचीसवाँ अध्याय

वासुदेव, संकर्षण आदिके मन्त्रोंका निर्देश तथा एक व्यूहसे लेकर द्वादश व्यूहतकके व्यूहोंका एवं पञ्चविंश और षड्विंश व्यूहका वर्णन

नारदजी कहते हैं—ऋषियो! अब मैं वासुदेव आदिके आराधनीय मन्त्रोंका लक्षण बता रहा हूँ। वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इन चार व्यूह-मूर्तियोंके नामके आदिमें ॐ, फिर क्रमशः 'अ आ अं अः' ये चार बीज तथा '**नमो भगवते**' पद जोड़ने चाहिये और अन्तमें '**नमः**' पदको जोड़ देना चाहिये। ऐसा करनेसे इनके पृथक्-पृथक् चार मन्त्र बन जाते हैं।* इसके बाद नारायण-मन्त्र है, जिसका स्वरूप है—'**ॐ नमो नारायणाय।**', '**ॐ तत्सद् ब्रह्मणे ॐ नमः।**'—यह ब्रह्ममन्त्र है। '**ॐ विष्णवे नमः।**'—यह विष्णुमन्त्र है। '**ॐ क्ष्रौं ॐ नमो भगवते नरसिंहाय नमः।**'—यह नरसिंहमन्त्र है। '**ॐ भूर्नमो भगवते वराहाय।**'—यह भगवान् वराहका मन्त्र है। ये सभी मन्त्रराज हैं। उपर्युक्त नौ मन्त्रोंके वासुदेव आदि नौ नायक हैं, जो उपासकोंके वल्लभ (इष्टदेवता) हैं। इनकी अङ्ग-कान्ति क्रमशः जवाकुसुमके सदृश अरुण, हल्दीके समान पीली, नीली, श्यामल, लोहित, मेघ-सदृश, अग्नितुल्य तथा मधुके समान पिङ्गल है। तन्त्रवेत्ता पुरुषोंको स्वरके बीजोंद्वारा क्रमशः पृथक्-पृथक् 'हृदय' आदि अङ्गोंकी कल्पना करनी चाहिये। उन बीजोंके अन्तमें अङ्गोंके नाम रहने चाहिये—(यथा—'**ॐ आं हृदयाय नमः। ॐ ईं शिरसे स्वाहा। ॐ ऊं शिखायै वषट्।**' इत्यादि) ॥ १—५½ ॥

जिनके आदिमें व्यञ्जन अक्षर होते हैं, उनके लक्षण अन्य प्रकारके हैं। दीर्घ स्वरोंके संयोगसे उनके भिन्न-भिन्न रूप होते हैं। उनके अन्तमें अङ्गोंके नाम होते हैं और उन अङ्ग-नामोंके अन्तमें '**नमः**' आदि पद जुड़े होते हैं। (यथा—'**क्लां हृदयाय नमः। क्लीं शिरसे स्वाहा।**' इत्यादि।) ह्रस्व स्वरोंसे युक्त बीजवाले अङ्ग 'उपाङ्ग' कहलाते हैं। देवताके नाम-सम्बन्धी अक्षरोंको पृथक्-पृथक् करके, उनमेंसे प्रत्येकके अन्तमें बिन्द्वात्मक बीजका योग करके उनसे अङ्गन्यास करना भी उत्तम माना गया है। अथवा नामके आदि अक्षरको दीर्घ स्वरों एवं ह्रस्व स्वरोंसे युक्त करके अङ्ग-उपाङ्गकी कल्पना करे और उनके द्वारा क्रमशः न्यास करे। हृदय आदि अङ्गोंकी कल्पनाके लिये व्यञ्जनोंका यही क्रम है। देवताके मन्त्रका जो अपना स्वर-बीज है, उसके अन्तमें उसका अपना नाम देकर अङ्ग-सम्बन्धी नामोंद्वारा पृथक्-पृथक् वाक्यरचना करके उससे युक्त हृदयादि द्वादश अङ्गोंकी कल्पना करे। पाँचसे लेकर बारह अङ्गोंतकके न्यास-वाक्यकी कल्पना करके सिद्धिके अनुरूप उनका जप करे। हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्र और अस्त्र—ये छः अङ्ग हैं। मूलमन्त्रके बीजोंका इन अङ्गोंमें न्यास करना चाहिये। बारह अङ्ग ये हैं—हृदय, सिर, शिखा, हाथ, नेत्र, उदर, पीठ, बाहु, ऊरु, जानु, जङ्घा और पैर। इनमें क्रमशः न्यास करना चाहिये। '**कं टं पं शं वैनतेयाय नमः।**'—यह गरुडसम्बन्धी बीजमन्त्र है। '**खं ठं फं षं गदायै नमः।**'—यह गदा-मन्त्र है। '**गं डं वं सं पुष्ट्यै नमः।**'—यह पुष्टिदेवी-सम्बन्धी मन्त्र है। '**घं टं भं हं श्रियै नमः।**'—यह श्रीमन्त्र है। '**चं णं मं क्षं**'—यह पाञ्चजन्य (शङ्ख)-का मन्त्र है। '**छं तं पं कौस्तुभाय नमः।**'—यह कौस्तुभ-मन्त्र

* ॐ अं नमो भगवते वासुदेवाय नमः। ॐ आं नमो भगवते संकर्षणाय नमः। ॐ अं नमो भगवते प्रद्युम्नाय नमः। ॐ अः नमो भगवते अनिरुद्धाय नमः।

है। **'जं खं वं सुदर्शनाय नमः।'**—यह सुदर्शनचक्रका मन्त्र है। **'सं वं दं लं श्रीवत्साय नमः।'**—यह श्रीवत्स-मन्त्र है॥ ६—१४॥

'ॐ वं वनमालायै नमः।'—यह वनमालाका और **'ॐ पं० पद्मनाभाय नमः।'**—यह पद्म या पद्मनाभका मन्त्र है। बीजरहित पदवाले मन्त्रोंका अङ्गन्यास उनके पदोंद्वारा ही करना चाहिये। नामसंयुक्त जात्यन्त* पदोंद्वारा हृदय आदि पाँच अङ्गोंमें पृथक्-पृथक् न्यास करे। पहले प्रणवका उच्चारण, फिर हृदय आदि पूर्वोक्त पाँचों अङ्गोंके नाम; क्रम यह है। (उदाहरणके लिये यों समझना चाहिये—**'ॐ हृदयाय नमः।'** इत्यादि।) पहले प्रणव तथा हृदय-मन्त्रका उच्चारण करे। (अर्थात्—**'ॐ हृदयाय नमः'** कहकर हृदयका स्पर्श करे।) फिर **'पराय शिरसे स्वाहा'** बोलकर मस्तकका स्पर्श करे। तत्पश्चात् इष्टदेवका नाम लेकर शिखाको छूये। अर्थात् **'वासुदेवाय शिखायै वषट्।'**—बोलकर शिखाका स्पर्श करे। इसके बाद **'आत्मने कवचाय हुम्।'**—बोलकर कवच-न्यास करे। पुनः देवताका नाम लेकर, अर्थात् **'वासुदेवाय अस्त्राय फट्।'**—बोलकर अस्त्र-न्यासकी क्रिया पूरी करे। आदिमें **'ॐकारादि'** जो नामात्मक पद है, उसके अन्तमें **'नमः'** पद जोड़ दे और उस नामात्मक पदको चतुर्थ्यन्त करके बोले। एक व्यूहसे लेकर षड्विंश व्यूहतकके लिये यह समान मन्त्र है। कनिष्ठासे लेकर सभी अङ्गुलियोंमें हाथके अग्रभागमें प्रकृतिका अपने शरीरमें ही पूजन करे। **'पराय'** पदसे एकमात्र परम पुरुष परमात्माका बोध होता है। वही एकसे दो हो जाता है, अर्थात् प्रकृति और पुरुष—दो व्यूहोंमें अभिव्यक्त होता है। **'ॐ परायाग्न्यात्मने नमः।'**—यह व्यापक-मन्त्र है। वसु, अर्क (सूर्य) और अग्नि—ये त्रिव्यूहात्मक मूर्तियाँ हैं—इन तीनोंमें अग्निका न्यास करके हाथ और सम्पूर्ण शरीरमें व्यापक-न्यास करे॥ १५—२०॥

वायु और अर्कका क्रमशः दायें और बायें दोनों हाथोंकी अँगुलियोंमें न्यास करे तथा हृदयमें मूर्तिमान् अग्निका चिन्तन करे। त्रिव्यूह-चिन्तनका यही क्रम है। चतुर्व्यूहमें चारों वेदोंका न्यास होता है। ऋग्वेदका सम्पूर्ण देह तथा हाथमें व्यापक-न्यास करना चाहिये। अङ्गुलियोंमें यजुर्वेदका, हथेलियोंमें अथर्ववेदका तथा हृदय और चरणोंमें शीर्षस्थानीय सामवेदका न्यास करे। पञ्चव्यूहमें पहले आकाशका पूर्ववत् शरीर और हाथमें व्यापक-न्यास करे। फिर अँगुलियोंमें भी आकाशका न्यास करके वायु, ज्योति, जल और पृथ्वीका क्रमशः मस्तक, हृदय, गुह्य और चरण—इन अङ्गोंमें न्यास करे। आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी—इन पाँच तत्त्वोंको 'पञ्चव्यूह' कहा गया है। मन, श्रवण, त्वचा, नेत्र, रसना और नासिका—इन छः इन्द्रियोंको षड्व्यूहकी संज्ञा दी गयी है। मनका व्यापक-न्यास करके शेष पाँचका अङ्गुष्ठ आदिके क्रमसे पाँचों अँगुलियोंमें तथा सिर, मुख, हृदय, गुह्य और चरण—इन पाँच अङ्गोंमें भी न्यास करे। यह 'करणात्मक व्यूहका न्यास' कहा गया है। आदिमूर्ति जीव सर्वत्र व्यापक है। भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक—ये सात लोक 'सप्तव्यूह' कहे गये हैं। इनमेंसे प्रथम भूर्लोकका हाथ एवं सम्पूर्ण शरीरमें न्यास करे। भुवर्लोक आदि पाँच लोकोंका अङ्गुष्ठ आदिके क्रमसे पाँचों अङ्गुलियोंमें तथा सातवें सत्यलोकका हथेलीमें न्यास करे। इस प्रकार यह लोकात्मक सप्त व्यूह है, जिसका पूर्वोक्त क्रमसे शरीरमें

* हृदयकी 'नमः', सिरकी 'स्वाहा', शिखाकी 'वषट्', कवचकी 'हुम्', नेत्रकी 'वौषट्' तथा अस्त्रकी 'फट्' जाति है।

न्यास किया जाता है। अब यज्ञात्मक सप्तव्यूहका परिचय दिया जाता है। सप्तयज्ञस्वरूप यज्ञपुरुष परमात्मदेव श्रीहरि सम्पूर्ण शरीर एवं सिर, ललाट, मुख, हृदय, गुह्य और चरणमें स्थित हैं, अर्थात् उन अङ्गोंमें उनका न्यास करना चाहिये। वे यज्ञ इस प्रकार हैं—अग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और आप्तोर्याम—ये छः यज्ञ तथा सातवें यज्ञात्मा—इन सात रूपोंको 'यज्ञमय सप्तव्यूह' कहा गया है॥ २१—२८ $\frac{१}{२}$ ॥

बुद्धि, अहंकार, मन, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये आठ तत्त्व अष्टव्यूहरूप हैं। इनमेंसे बुद्धितत्त्वका हाथ और शरीरमें व्यापक-न्यास करे। फिर उपर्युक्त आठों तत्त्वोंका क्रमशः चरणोंके तलवों, मस्तक, ललाट, मुख, हृदय, नाभि, गुह्य देश और पैर—इन आठ अङ्गोंमें न्यास करना चाहिये। इन सबको 'अष्टव्यूहात्मक पुरुष' कहा गया है। जीव, बुद्धि, अहंकार, मन, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध-गुण—इनका समुदाय 'नवव्यूह' है। इनमेंसे जीवका दोनों हाथोंके अँगूठोंमें न्यास करे और शेष आठ तत्त्वोंका क्रमशः दाहिने हाथकी तर्जनीसे लेकर बायें हाथकी तर्जनीतक आठ अंगुलियोंमें न्यास करे। सम्पूर्ण देह, सिर, ललाट, मुख, हृदय, नाभि, गुह्य, जानु और पाद—इन नौ स्थानोंमें उपर्युक्त नौ तत्त्वोंका न्यास करके इन्द्रका पूर्ववत् व्यापक-न्यास किया जाय तो यही 'दशव्यूहात्मक न्यास' हो जाता है॥ २९—३३॥

दोनों अङ्गुष्ठोंमें, तलद्वयमें, तर्जनी आदि आठ अँगुलियोंमें तथा सिर, ललाट, मुख, हृदय, नाभि, गुह्य (उपस्थ और गुदा), जानुद्वय और पादद्वय—इन ग्यारह अङ्गोंमें ग्यारह इन्द्रियात्मक तत्त्वोंका जो न्यास किया जाता है, उसे 'एकादशव्यूह-न्यास' कहा गया है। वे ग्यारह तत्त्व इस प्रकार हैं—मन, श्रवण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका, वाक्, हाथ, पैर, गुदा और उपस्थ। मनका व्यापक-न्यास करे। अङ्गुष्ठद्वयमें श्रवणेन्द्रियका न्यास करके शेष त्वचा आदि आठ तत्त्वोंका तर्जनी आदि आठ अँगुलियोंमें न्यास करना चाहिये। शेष जो ग्यारहवाँ तत्त्व (उपस्थ) है, उसका तलद्वयमें न्यास करे। मस्तक, ललाट, मुख, हृदय, नाभि, चरण, गुह्य, ऊरुद्वय, जङ्घा, गुल्फ और पैर—इन ग्यारह अङ्गोंमें भी पूर्वोक्त ग्यारह तत्त्वोंका क्रमशः न्यास करे। विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ, दामोदर, केशव, नारायण, माधव और गोविन्द—यह 'द्वादशात्मक व्यूह' है। इनमेंसे विष्णुका तो व्यापक-न्यास करे और शेष भगवन्नामोंका अङ्गुष्ठ आदि दस अँगुलियों एवं करतलमें न्यास करके, फिर पादतल, दक्षिण पाद, दक्षिण जानु, दक्षिण कटि, सिर, शिखा, वक्ष, वाम कटि, मुख, वाम जानु और वाम पादादिमें भी न्यास करना चाहिये॥ ३४—३९॥

यह द्वादशव्यूह हुआ। अब पञ्चविंश एवं षड्विंश व्यूहका परिचय दिया जाता है। पुरुष, बुद्धि, अहंकार, मन, चित्त, शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध, श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका, वाक्, हाथ, पैर, गुदा, उपस्थ, भूमि, जल, तेज, वायु और आकाश—ये पचीस तत्त्व हैं। इनमेंसे पुरुषका सर्वाङ्गमें व्यापक-न्यास करके, दसका अङ्गुष्ठ आदिमें न्यास करे। शेषका करतल, सिर, ललाट, मुख, हृदय, नाभि, गुह्य, ऊरु, जानु, पैर, उपस्थ, हृदय और मूर्धामें क्रमशः न्यास करे। इन्हींमें सर्वप्रथम परमपुरुष परमात्माको सम्मिलित करके उनका पूर्ववत् व्यापक-न्यास कर दिया जाय तो षड्विंश व्यूहका न्यास सम्पन्न हो जाता है। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि अष्टदल-

कमलचक्रमें प्रकृतिका चिन्तन करके उसका पूजन करे। उस कमलके पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दलोंमें हृदय आदि चार अङ्गोंका न्यास करे। अग्निकोण आदिके दलोंमें अस्त्र एवं वैनतेय (गरुड) आदिको पूर्ववत् स्थापित करे। इसी तरह पूर्वादि दिशाओंमें इन्द्रादि दिक्पालोंका चिन्तन करे। इन सबके ध्यान-पूजनकी विधि एक-सी है। (सूर्य, सोम और अग्निरूप) त्रिव्यूहमें अग्निका स्थान मध्यमें है। पूर्वादि दिशाओंके दलोंमें जिनका आवास है, उन देवताओंके साथ कमलकी कर्णिकामें नाभस (आकाशकी भाँति व्यापक आत्मा) तथा मानस (अन्तरात्मा) विराजमान हैं॥ ४०—४८॥

साधकको चाहिये कि वह सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धिके लिये तथा राज्यपर विजय पानेके लिये विश्वरूप (परमात्मा)-का यजन करे। सम्पूर्ण व्यूहों, हृदय आदि पाँचों अङ्गों, गरुड आदि तथा इन्द्र आदि दिक्पालोंके साथ ही उन श्रीहरिकी पूजाका विधान है। ऐसा करनेवाला उपासक सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर सकता है। अन्तमें विष्वक्सेनकी नाम-मन्त्रसे पूजा करे। नामके साथ 'रौं' बीज लगा ले, अर्थात् **'रौं विष्वक्सेनाय नमः।'** बोलकर उनके लिये पूजनोपचार अर्पित करे॥ ४९-५०॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'वासुदेवादि मन्त्रोंके लक्षण [तथा न्यास]-का वर्णन' नामक पचीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २५॥

छब्बीसवाँ अध्याय

मुद्राओंके लक्षण

नारदजी कहते हैं— मुनिगण! अब मैं मुद्राओंका लक्षण बताऊँगा। सांनिध्य[१] (संनिधापिनी) आदि[२] मुद्राके प्रकार-भेद हैं। पहली मुद्रा अञ्जलि[३] है, दूसरी वन्दनी[४] है और तीसरी हृदयानुगा है। बायें हाथकी मुट्ठीसे दाहिने हाथके अँगूठेको बाँध ले और बायें अङ्गुष्ठको ऊपर उठाये रखे। सारांश यह है कि बायें और दाहिने—दोनों हाथोंके अँगूठे ऊपरकी ओर ही उठे रहें। यही 'हृदयानुगा' मुद्रा है। (इसीको कोई 'संरोधिनी'[५] और कोई 'निष्ठुरा'[६] कहते हैं)। व्यूहार्चनमें ये तीन मुद्राएँ साधारण हैं।

---

१. दोनों हाथोंके अँगूठोंको ऊपर करके मुट्ठी बाँधकर दोनों मुट्ठियोंको परस्पर सटानेसे 'संनिधापिनी मुद्रा' होती है।

२. 'आदि' पदसे 'आवाहनी' आदि मुद्राओंको ग्रहण करना चाहिये। उनके लक्षण ग्रन्थान्तरसे जानने चाहिये।

३. यहाँ अञ्जलिको प्रथम मुद्रा कहा गया है। 'अञ्जलि' और 'वन्दनी'—दोनों मुद्राएँ प्रसिद्ध हैं; अतः उनका विशेष लक्षण यहाँ नहीं दिया गया है। तथापि मन्त्रमहार्णवमें अञ्जलिको ही 'अञ्जलिमुद्रा' कहते हैं, यह परिभाषा दी गयी है—'अञ्जल्यञ्जलिमुद्रा स्यात्।'

४. हाथ जोड़कर नमस्कार करना ही 'वन्दनी' मुद्रा है। ईशान शिवगुरुदेव-पद्धतिमें इसका लक्षण इस प्रकार दिया गया है—

'बद्ध्वाञ्जलिं पङ्कजकोशकल्पं यद्दक्षिणज्येष्ठिकया तु वामाम्। ज्येष्ठां समाक्रम्य तु वन्दनीयं मुद्रा नमस्कारविधौ प्रयोज्या॥'

अर्थात् कमल-मुकुलके समान अञ्जलि बाँधकर, जब दाहिने अँगूठेसे बायें अँगूठेको दबा दिया जाय तो 'वन्दिनी मुद्रा' होती है। इसका प्रयोग नमस्कारके लिये होना चाहिये (उत्तरार्ध क्रियापाद, सप्तम पटल ९)।

५. यहाँ मूलमें 'हृदयानुगा' मुद्राका जो लक्षण दिया गया है, वही अन्यत्र 'संरोधिनी मुद्रा'का लक्षण है। मन्त्रमहार्णवमें 'संनिधापिनी मुद्रा'का लक्षण देकर कहा है—'अन्तःप्रवेशिताङ्गुष्ठा सैव संरोधिनी मता।' अर्थात् संनिधापिनीको ही यदि उसकी मुट्ठियोंके भीतर अङ्गुष्ठका प्रवेश हो तो 'संरोधिनी' कहते हैं। हृदयानुगामें बायीं मुट्ठीके भीतर दाहिनी मुट्ठीका अँगूठा रहता है और बायाँ अँगूठा खुला रहता है, परंतु संरोधिनीमें दोनों ही अँगूठे मुट्ठीके भीतर रहते हैं, यही अन्तर है।

६. ईशानशिवगुरुदेव मिश्रने शब्दान्तरसे यही बात कही है। उन्होंने संनिरोधिनीको निष्ठुराकी संज्ञा दी है—

'संलग्नमुष्ट्योः करयोः स्थितोर्ध्वज्येष्ठायुगं यत्र समुन्नताग्रम्। सा संनिधापिन्यथ सैव गर्भाङ्गुष्ठा भवेच्चेदिह निष्ठुराख्या॥'

अब आगे ये असाधारण (विशेष) मुद्राएँ बतायी जाती हैं। दोनों हाथोंमें अँगूठेसे कनिष्ठातककी तीन अँगुलियोंको नवाकर कनिष्ठा आदिको क्रमशः मुक्त करनेसे आठ मुद्राएँ बनती हैं। 'अ क च ट त प य श'—ये जो आठ वर्ग हैं, उनके जो पूर्व बीज (अं कं चं टं इत्यादि) हैं, उनको ही सूचित करनेवाली उक्त आठ मुद्राएँ हैं—ऐसा निश्चय करे। फिर पाँचों अँगुलियोंको ऊपर करके हाथको सम्मुख करनेसे जो नवीं मुद्रा बनती है, वह नवम बीज (क्षं)-के लिये है॥ १—४ $\frac{१}{२}$ ॥

दाहिने हाथके ऊपर बायें हाथको उतान रखकर उसे धीरे-धीरे नीचेको झुकाये। यह वराहकी मुद्रा मानी गयी है। ये क्रमशः अङ्गोंकी मुद्राएँ हैं। बायीं मुट्ठीमें बँधी हुई एक-एक अँगुलीको क्रमशः मुक्त करे और पहलेकी मुक्त हुई अँगुलीको फिर सिकोड़ ले। बायें हाथमें ऐसा करनेके बाद दाहिने हाथमें भी यही क्रिया करे। बायीं मुट्ठीके अँगूठेको ऊपर उठाये रखे। ऐसा करनेसे मुद्राएँ सिद्ध होती हैं॥ ५—७॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'मुद्रालक्षण-वर्णन' नामक छब्बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २६॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

शिष्योंको दीक्षा देनेकी विधिका वर्णन

नारदजी कहते हैं— महर्षिगण! अब मैं सब कुछ देनेवाली दीक्षाका वर्णन करूँगा। कमलाकार मण्डलमें श्रीहरिका पूजन करे। दशमी तिथिको समस्त यज्ञ-सम्बन्धी द्रव्यका संग्रह एवं संस्कार (शुद्धि) करके रख ले। नरसिंह-बीज-मन्त्र (क्ष्रौं)- से सौ बार उसे अभिमन्त्रित करके, उस मन्त्रके अन्तमें 'फट्' लगाकर बोले तथा राक्षसोंका विनाश करनेके उद्देश्यसे सब ओर सरसों छींटे। फिर वहाँ सर्वस्वरूपा प्रासादरूपिणी शक्तिका न्यास करे। सर्वौषधियोंका संग्रह करके बिखेरनेके उपयोगमें आनेवाली सरसों आदि वस्तुओंको शुभ पात्रमें रखकर साधक वासुदेव-मन्त्रसे उनका सौ बार अभिमन्त्रण करे। तदनन्तर वासुदेवसे लेकर नारायणपर्यन्त पूर्वोक्त पाँच मूर्तियों (वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध तथा नारायण)-के मूल-मन्त्रोंद्वारा पञ्चगव्य तैयार करे और कुशाग्रसे पञ्चगव्य छिड़ककर उस भूमिका प्रोक्षण करे। फिर वासुदेव-मन्त्रसे उत्तान हाथके द्वारा समस्त विकिर वस्तुओंको सब ओर बिखेरे। उस समय पूर्वाभिमुख खड़ा हो, मन-ही-मन भगवान् विष्णुका चिन्तन करते हुए तीन बार उन विकिर वस्तुओंको सब ओर छींटे। तत्पश्चात् वर्धनीसहित कलशपर स्थापित भगवान् विष्णुका अङ्गसहित पूजन करे। अस्त्र-मन्त्रसे वर्धनीको सौ बार अभिमन्त्रित करके अविच्छिन्न जलधारासे सींचते हुए उसे ईशानकोणकी ओर ले जाय। कलशको पीछे ले जाकर विकिरपर स्थापित करे। विकिर-द्रव्योंको कुशद्वारा एकत्र करके कुम्भेश और कर्करीका यजन करे॥ १—८॥

पञ्चरत्नयुक्त सवस्त्र वेदीपर श्रीहरिकी पूजा करे। अग्निमें भी उनकी अर्चना करके पूर्ववत् मन्त्रोंद्वारा उनका संतर्पण करे। तत्पश्चात् पुण्डरीक*-मन्त्रसे उखा (पात्रविशेष)-का प्रक्षालन करके उसके भीतर सुगन्धयुक्त घी पोत दे। इसके बाद

* पुण्डरीक-मन्त्र—

'ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा। यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥'

साधक उसमें गायका दूध भरकर वासुदेव-मन्त्रसे उसका अवेक्षण करे और संकर्षण-मन्त्रसे सुसंस्कृत किये गये दूधमें घृताक्त चावल छोड़ दे। इसके बाद प्रद्युम्न-मन्त्रसे करछुलद्वारा उस दूध और चावलका आलोडन करके धीरे-धीरे उसे उलाटे-पलाटे। जब खीर या चरु पक जाय, तब आचार्य अनिरुद्ध-मन्त्र पढ़कर उसे आगसे नीचे उतार दे। तदनन्तर उसपर जल छिड़के और घृतालेपन करके हाथमें भस्म लेकर उसके द्वारा नारायण-मन्त्रसे ललाट एवं पार्श्व-भागोंमें ऊर्ध्व-पुण्ड्र करे। इस प्रकार सुन्दर संस्कारयुक्त चरुके चार भाग करके एक भाग इष्टदेवको अर्पित करे, दूसरा भाग कलशको चढ़ावे, तीसरे भागसे अग्निमें तीन बार आहुति दे और चौथे भागको गुरु शिष्योंके साथ बैठकर खाय; इससे आत्मशुद्धि होती है। (दूसरे दिन एकादशीको) प्रात:काल ऐसे वृक्षसे दाँतन ले, जो दूधवाला हो। उस दाँतनको नारायण-मन्त्रसे सात बार अभिमन्त्रित कर ले। उसका दन्तशुद्धिके लिये उपयोग करके फिर उसे त्याग दे। अपने पातकका स्मरण करके पूर्व, अग्निकोण, उत्तर अथवा ईशानकोणकी ओर मुँह करके अच्छी तरह स्नान करे। फिर 'शुभ' एवं 'सिद्ध' की भावना करके, अर्थात् 'मैं निष्पाप एवं शुद्ध होकर शुभ सिद्धिकी ओर अग्रसर हुआ हूँ'—ऐसा अनुभव करके आचमन-प्राणायामके पश्चात् मन्त्रोपदेष्टा गुरु भगवान् विष्णुसे प्रार्थना करके उनकी परिक्रमाके पश्चात् पूजागृहमें प्रवेश करे॥ ९—१७॥

प्रार्थना इस प्रकार करे—'देव! संसार-सागरमें मग्न पशुओंको पाशसे छुटकारा दिलानेके लिये आप ही शरणदाता हैं। आप सदा अपने भक्तोंपर वात्सल्यभाव रखते हैं। देवदेव! आज्ञा दीजिये, प्राकृत पाश-बन्धनोंसे बँधे हुए इन पशुओंको आज आपकी कृपासे मैं मुक्त करूँगा।' देवेश्वर श्रीहरिसे इस प्रकार प्रार्थना करके पूजागृहमें प्रविष्ट हो, गुरु पूर्ववत् अग्नि आदिकी धारणाओंद्वारा शिष्यभूत समस्त पशुओंका शोधन करके संस्कार करनेके पश्चात्, उनका वासुदेवादि मूर्तियोंसे संयोग करे। शिष्योंके नेत्र बाँधकर उन्हें मूर्तियोंकी ओर देखनेका आदेश दे। शिष्य उन मूर्तियोंकी ओर पुष्पाञ्जलि फेंकें, तदनुसार गुरु उनका नाम-निर्देश करें। पूर्ववत् शिष्योंसे क्रमशः मूर्तियोंका मन्त्ररहित पूजन करावे। जिस शिष्यके हाथका फूल जिस मूर्तिपर गिरे, गुरु उस शिष्यका वही नाम रखे। कुमारी कन्याके हाथसे काता हुआ लाल रंगका सूत लेकर उसे छः गुना करके बट दे। उस छः गुने सूतकी लंबाई पैरके अँगूठेसे लेकर शिखातककी होनी चाहिये। फिर उसे भी मोड़कर तिगुना कर ले। उक्त त्रिगुणित सूतमें प्रक्रिया-भेदसे स्थित उस प्रकृति देवीका चिन्तन करे, जिसमें सम्पूर्ण विश्वका लय होता है और जिससे ही समस्त जगत्का प्रादुर्भाव हुआ करता है। उस सूत्रमें प्राकृतिक पाशोंको तत्त्वकी संख्याके अनुसार ग्रथित करे, अर्थात् २४ गाँठें लगाकर उनको प्राकृतिक पाशोंके प्रतीक समझे। फिर उस ग्रन्थियुक्त सूतको प्यालेमें रखकर कुण्डके पास स्थापित कर दे। तदनन्तर सभी तत्त्वोंका चिन्तन करके गुरु उनका शिष्यके शरीरमें न्यास करे। तत्त्वोंका वह न्यास सृष्टि-क्रमके अनुसार प्रकृतिसे लेकर पृथिवीपर्यन्त होना चाहिये॥ १८—२६॥

तीन, पाँच, दस अथवा बारह जितने भी सूत्र-भेद सम्भव हों, उन सब सूत्र-भेदोंके द्वारा बटे हुए उस सूत्रको ग्रथित करके देना चाहिये। तत्त्वचिन्तक पुरुषोंके लिये यही उचित है। हृदयसे लेकर अस्त्रपर्यन्त पाँच अङ्ग-सम्बन्धी मन्त्र पढ़कर सम्पूर्ण भूतोंको प्रकृतिक्रमसे (अर्थात्

कार्य-तत्त्वका कारण-तत्त्वमें लयके क्रमसे) तन्मात्रास्वरूपमें लीन करके उस मायामय सूत्रमें और पशु (जीव-)-के शरीरमें भी प्रकृति, लिङ्गशक्ति, कर्ता, बुद्धि तथा मनका उपसंहार करे। तदनन्तर पञ्चतन्मात्र, बुद्धि, कर्म और पञ्चमहाभूत—इन बारह रूपोंमें अभिव्यक्त द्वादशात्माका सूत्र और शिष्यके शरीरमें चिन्तन करे। तत्पश्चात् इच्छानुसार सृष्टिकी सम्पात-विधिसे हवन करके, सृष्टि-क्रमसे एक-एकके लिये सौ-सौ आहुतियाँ देकर पूर्णाहुति करे। प्यालेमें रखे हुए ग्रथित सूत्रको ऊपरसे ढककर उसे कुम्भेशको अर्पित करे। फिर यथोचित रीतिसे अधिवासन करके भक्त शिष्यको दीक्षा दे। करनी, कैंची, धूल या बालू, खड़िया मिट्टी और अन्य उपयोगी वस्तुओंका भी संग्रह करके उन सबको उसके वामभागमें स्थापित कर दे। फिर मूल-मन्त्रसे उनका स्पर्श करके अधिवासित करे। तत्पश्चात् श्रीहरिके स्मरणपूर्वक कुशोंपर भूतोंके लिये बलि दे और कहे—'**नमो भूतेभ्यः।**' इसके बाद चँदोवों, कलशों और लड्डुओंसे मण्डपको सुसज्जित करके मण्डलके भीतर भगवान् विष्णुका पूजन करे। फिर अग्निको घीसे तृप्त करके, शिष्योंको पास बुलाकर बद्धपद्मासनसे बिठावे और दीक्षा दे। बारी-बारीसे उन सबका प्रोक्षण करके विष्णुहस्तसे उनके मस्तकका स्पर्श करे। प्रकृतिसे विकृतिपर्यन्त, अधिभूत और अधिदैवतसहित सम्पूर्ण सृष्टिको आध्यात्मिक करके अर्थात् सबको अपने आत्मामें स्थित मानकर, हृदयमें ही क्रमशः उसका संहार करे॥ २७—३६ $\frac{1}{2}$ ॥

इससे तन्मात्रस्वरूप हुई सारी सृष्टि जीवके समान हो जाती है। इसके बाद कुम्भेश्वरसे प्रार्थना करके गुरु पूर्वोक्त सूत्रका संस्कार करनेके अनन्तर, अग्निके समीप आ उसको अपने पास ही रख ले। फिर मूल मन्त्रसे सृष्टीशके लिये सौ आहुतियाँ दे। इसके बाद उदासीनभावसे स्थित सृष्टीशको पूर्णाहुति अर्पित करके गुरु श्वेत रज (बालू) हाथमें लेकर उसे मूल-मन्त्रसे सौ बार अभिमन्त्रित करे। फिर उससे शिष्यके हृदयपर ताडन करे। उस समय वियोगवाची क्रियापदसे युक्त बीज-मन्त्रों एवं क्रमशः पादादि इन्द्रियोंसे घटित वाक्यकी योजना करके अन्तमें '**हुं फट्**' का उच्चारण करे*। इस प्रकार पृथिवी आदि तत्त्वोंका वियोग कराकर आचार्य भावनाद्वारा उन्हें अग्निमें होम दे। इस तरह कार्य-तत्त्वोंका कारण-तत्त्वोंमें होम अथवा लय करते हुए क्रमशः अखिल तत्त्वोंके आश्रयभूत श्रीहरिमें सबका लय कर दे। विद्वान् पुरुष इसी क्रमसे सब तत्त्वोंको श्रीहरितक पहुँचाकर, उन सम्पूर्ण तत्त्वोंके अधिष्ठानका स्मरण करे। उक्त रीतिसे ताडनद्वारा भूतों और इन्द्रियोंसे वियोग कराकर शुद्ध हुए शिष्यको अपनावे और प्रकृतिसे उसकी समताका सम्पादन करके पूर्वोक्त अग्निमें उसके उस प्राकृतभावका भी हवन कर दे। फिर गर्भाधान, जातकर्म, भोग और लयका अनुष्ठान करके उस-उस कर्मके निमित्त वहाँ आठ-आठ बार शुद्ध्यर्थ होम करे। तदनन्तर आचार्य पूर्णाहुतिद्वारा शुद्ध तत्त्वका उद्धार करके अव्याकृत प्रकृतिपर्यन्त सम्पूर्ण जगत्का क्रमानुसार परम तत्त्वमें लय कर दे। उस परम तत्त्वको भी ज्ञानयोगसे परमात्मामें विलीन करके बन्धनमुक्त हुए जीवको अविनाशी परमात्मपदमें प्रतिष्ठित करे। तत्पश्चात् विद्वान् पुरुष यह अनुभव करे कि 'शिष्य शुद्ध, बुद्ध, परमानन्द-संदोहमें निमग्न एवं कृतकृत्य हो चुका है।' ऐसा चिन्तन करनेके पश्चात् गुरु पूर्णाहुति दे। इस प्रकार दीक्षा-कर्मकी समाप्ति होती है॥ ३७—४७॥

* यथा—'ॐ रां (नमः) कर्मेन्द्रियाणि वियुङ्क्ष्व हुं फट्; ॐ यं (नमः) भूतानि वियुङ्क्ष्व हुं फट्।' इत्यादि।

अब मैं उन प्रयोग-सम्बन्धी मन्त्रोंका वर्णन करता हूँ, जिनसे दीक्षा, होम और लय सम्पादित होते हैं। '**ॐ यं भूतानि वियुङ्क्ष्व हुं फट्।**' (अर्थात् भूतोंको मुझसे अलग करो।)—इस मन्त्रसे ताडन करनेका विधान है। इसके द्वारा भूतोंसे वियोजन (बिलगाव) होता है। यहाँ वियोजनके दो मन्त्र हैं। एक तो वही है, जिसका ऊपर वर्णन हुआ है और दूसरा इस प्रकार है— '**ॐ यं भूतान्यापातयेऽहम्।**' (मैं भूतोंको अपनेसे दूर गिराता हूँ)। इस मन्त्रसे 'आपातन' (वियोजन) करके पुनः दिव्य प्रकृतिसे यों संयोजन किया जाता है। उसके लिये मन्त्र सुनो—'**ॐ यं भूतानि युङ्क्ष्व।**' अब होम-मन्त्रका वर्णन करता हूँ। उसके बाद पूर्णाहुतिका मन्त्र बताऊँगा। '**ॐ भूतानि संहर स्वाहा।**'—यह होम-मन्त्र है और '**ॐ अं ॐ नमो भगवते वासुदेवाय अं वौषट्।**'—यह पूर्णाहुति-मन्त्र है। पूर्णाहुतिके पश्चात् तत्त्वमें शिष्यको संयुक्त करे। विद्वान् पुरुष इसी तरह समस्त तत्त्वोंका क्रमशः शोधन करे। तत्त्वोंके अपने-अपने बीजके अन्तमें '**नमः**' पद जोड़कर ताडनादिपूर्वक तत्त्व-शुद्धिका सम्पादन करे॥ ४८—५३॥

'**ॐ रां (नमः) कर्मेन्द्रियाणि।**', '**ॐ दें (नमः) बुद्धीन्द्रियाणि।**'—इन पदोंके अन्तमें '**वियुङ्क्ष्व हुं फट्।**' की संयोजना करे। पूर्वोक्त '**यं**' बीजके समान ही इन उपर्युक्त बीजोंसे भी ताडन आदिका प्रयोग होता है। '**ॐ सुं गन्धतन्मात्रे बिम्बं युङ्क्ष्व हुं फट्।**', '**ॐ सं पाहि हां ॐ स्वं स्वं युङ्क्ष्व प्रकृत्या अं जं हुं गन्धतन्मात्रे संहर स्वाहा।**'—ये क्रमशः संयोजन और होमके मन्त्र हैं। तदनन्तर पूर्णाहुतिका विधान है। इसी प्रकार उत्तरवर्ती कर्मोंमें भी प्रयोग किया जाता है। '**ॐ रां रसतन्मात्रे। ॐ तें रूपतन्मात्रे। ॐ वं स्पर्शतन्मात्रे। ॐ यं शब्दतन्मात्रे। ॐ मं नमः। ॐ सों अहंकारे। ॐ नं बुद्धौ। ॐ ॐ प्रकृतौ।**' यह दीक्षायोग एकव्यूहात्मक मूर्तिके लिये संक्षेपसे बताया गया है। नवव्यूहादिक मूर्तियोंके विषयमें भी ऐसा ही प्रयोग है। मनुष्य प्रकृतिको दग्ध करके उसे निर्वाणस्वरूप परमात्मामें लीन कर दे। फिर भूतोंकी शुद्धि करके कर्मेन्द्रियोंका शोधन करे॥ ५४—५९॥

तत्पश्चात् ज्ञानेन्द्रियोंका, तन्मात्राओंका, मन, बुद्धि एवं अहंकारका तथा लिङ्गात्माका शोधन करके सबके अन्तमें पुनः प्रकृतिकी शुद्धि करे। 'शुद्ध हुआ प्राकृत पुरुष ईश्वरीय धाममें प्रतिष्ठित है। उसने सम्पूर्ण भोगोंका अनुभव कर लिया है और अब वह मुक्तिपदमें स्थित है।'—इस प्रकार ध्यान करे और पूर्णाहुति दे। यह अधिकार-प्रदान करनेवाली दीक्षा है। पूर्वोक्त मन्त्रके अङ्गोंद्वारा आराधना करके, तत्त्वसमूहको समभाव (प्रकृत्यवस्था)-में पहुँचाकर, क्रमशः इसी रीतिसे शोधन करके, अन्तमें साधक अपनेको सम्पूर्ण सिद्धियोंसे युक्त परमात्मरूपसे स्थित अनुभव करते हुए पूर्णाहुति दे—यह साधकविषयक दीक्षा कही गयी है। यदि यज्ञोपयोगी द्रव्यका सम्पादन (संग्रह) न हो सके, अथवा अपनेमें असमर्थता हो तो समस्त उपकरणोंसहित श्रेष्ठ गुरु पूर्ववत् इष्टदेवका पूजन करके, तत्काल उन्हें अधिवासित करके, द्वादशी तिथिमें शिष्यको दीक्षा दे दे। जो गुरुभक्त, विनयशील एवं समस्त शारीरिक सद्गुणोंसे सम्पन्न हो, ऐसा शिष्य यदि अधिक धनवान् न हो तो वेदीपर इष्टदेवका पूजनमात्र करके दीक्षा ग्रहण करे। आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक, सम्पूर्ण अध्वाका सृष्टिक्रमसे शिष्यके शरीरमें चिन्तन करके, गुरु पहले बारी-बारीसे आठ आहुतियोंद्वारा एक-एककी तृप्ति करनेके पश्चात्, सृष्टिमान् हो, वासुदेव आदि विग्रहोंका उनके निज-निज मन्त्रोंद्वारा पूजन

एवं हवन करे और हवन-पूजनके पश्चात् अग्नि आदिका विसर्जन कर दे। तत्पश्चात् पूर्वोक्त होमद्वारा संहारक्रमसे तत्त्वोंका शोधन करे॥ ६०—६८॥

दीक्षाकर्ममें पहले जिन सूत्रोंमें गाँठें बाँधी गयी थीं, उनकी वे गाँठें खोल, गुरु उन्हें शिष्यके शरीरसे लेकर, क्रमशः उन तत्त्वोंका शोधन करे। प्राकृतिक अग्नि एवं आधिदैविक विष्णुमें अशुद्ध-मिश्रित शुद्ध-तत्त्वको लीन करके पूर्णाहुतिद्वारा शिष्यको उस तत्त्वसे संयुक्त करे। इस प्रकार शिष्य प्रकृतिभावको प्राप्त होता है। तत्पश्चात् गुरु उसके प्राकृतिक गुणोंको भावनाद्वारा दग्ध करके उसे उनसे छुटकारा दिलावे। ऐसा करके वे शिशुस्वरूप उन शिष्योंको अधिकारमें नियुक्त करें। तदनन्तर भावमें स्थित हुआ आचार्य भक्तिभावसे शरणमें आये हुए यतियों तथा निर्धन शिष्यको 'शक्ति' नामवाली दूसरी दीक्षा दे। वेदीपर भगवान् विष्णुकी पूजा करके पुत्र (शिष्यविशेष)-को अपने पास बिठा ले। फिर शिष्य देवताके सम्मुख हो तिर्यग्-दिशाकी ओर मुँह करके स्वयं बैठे। गुरु शिष्यके शरीरमें अपने ही पर्वोंसे कल्पित सम्पूर्ण अध्वाका ध्यान करके आधिदैविक यजनके लिये प्रेरित करनेवाले इष्टदेवका भी ध्यानयोगके द्वारा चिन्तन करे। फिर पूर्ववत् ताडन आदिके द्वारा क्रमशः सम्पूर्ण तत्त्वोंका वेदीगत श्रीहरिमें शोधन करे। ताडनद्वारा तत्त्वोंका वियोजन करके उन्हें आत्मामें गृहीत करे और पुनः इष्टदेवके साथ उनका संयोजन एवं शोधन करके, स्वभावतः ग्रहण करनेके अनन्तर ले आकर क्रमशः शुद्ध तत्त्वके साथ संयुक्त करे। सर्वत्र ध्यानयोग एवं उत्तान मुद्राद्वारा शोधन करे॥ ६९—७७॥

सम्पूर्ण तत्त्वोंकी शुद्धि हो जानेपर जब प्रधान (प्रकृति) तथा परमेश्वर स्थित रह जायँ, तब पूर्वोक्त रीतिसे प्रकृतिको दग्ध करके शुद्ध हुए शिष्योंको परमेश्वरपदमें प्रतिष्ठित करे। श्रेष्ठ गुरु साधकको इस तरह सिद्धिमार्गसे ले चले। अधिकारारूढ़ गृहस्थ भी इसी प्रकार आलस्य छोड़कर समस्त कर्मोंका अनुष्ठान करे। जबतक राग (आसक्ति) का सर्वथा नाश न हो जाय, तबतक आत्म-शुद्धिका सम्पादन करता रहे। जब यह अनुभव हो जाय कि 'मेरे हृदयका राग सर्वथा क्षीण हो गया है', तब पापसे शुद्ध हुआ संयमशील पुरुष अपने पुत्र या शिष्यको अधिकार सौंपकर मायामय पाशको दग्ध करके संन्यास ले, आत्मनिष्ठ हो, देहपातकी प्रतीक्षा करता रहे। अपनी सिद्धिसम्बन्धी किसी चिह्नको दूसरोंपर व्यक्त न होने दे॥ ७८—८१॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'सर्वदीक्षा-विधि-कथन' नामक सत्ताईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २७॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय

आचार्यके अभिषेकका विधान

नारदजी कहते हैं—महर्षियो! अब मैं आचार्यके अभिषेकका वर्णन करूँगा, जिसे पुत्र अथवा पुत्रोपम श्रद्धालु शिष्य सम्पादित कर सकता है। इस अभिषेकसे साधक सिद्धिका भागी होता है और रोगी रोगसे मुक्त हो जाता है। राजाको राज्य और स्त्रीको पुत्रकी प्राप्ति होती है। इससे अन्तःकरणके मलका नाश होता है। मिट्टीके बहुत-से घड़ोंमें उत्तम रत्न रखकर एक स्थानपर स्थापित करे। पहले एक घड़ा बीचमें रखे; फिर उसके चारों ओर घट स्थापित करे। इस तरह एक सहस्र या एक सौ आवृत्तिमें उन सबकी स्थापना करे। फिर मण्डपके भीतर कमलाकार

मण्डलमें पूर्व और ईशानकोणके मध्यभागमें पीठ या सिंहासनपर भगवान् विष्णुको स्थापित करके पुत्र एवं साधक आदिका सकलीकरण करे। तदनन्तर शिष्य या पुत्र भगवत्पूजनपूर्वक गुरुकी अर्चना करके उन कलशोंके जलसे उनका अभिषेक करे। उस समय गीत-वाद्यका उत्सव होता रहे। फिर योगपीठ आदि गुरुको अर्पित कर दे और प्रार्थना करे—'गुरुदेव! आप हम सब मनुष्योंको कृपापूर्वक अनुगृहीत करें।' गुरु भी उनको समय-दीक्षाके अनुकूल आचारका उपदेश दे। इससे गुरु और साधक भी सम्पूर्ण मनोरथोंके भागी होते हैं॥ १—५॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'आचार्यके अभिषेकको विधिका वर्णन' नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २८॥

उन्तीसवाँ अध्याय

मन्त्र-साधन-विधि, सर्वतोभद्रादि मण्डलोंके लक्षण

नारदजी कहते हैं— मुनिवरो! साधकको चाहिये कि वह देव-मन्दिर आदिमें मन्त्रकी साधना करे। घरके भीतर शुद्ध भूमिपर मण्डलमें परमेश्वर श्रीहरिका विशेष पूजन करके चौकोर क्षेत्रमें मण्डल आदिकी रचना करे। दो सौ छप्पन कोष्ठोंमें 'सर्वतोभद्र मण्डल' लिखे। (क्रम यह है कि पूर्वसे पश्चिमकी ओर तथा उत्तरसे दक्षिणकी ओर बराबर सत्रह रेखाएँ खींचे। ऐसा करनेसे दो सौ छप्पन कोष्ठ हो जायँगे। उनमेंसे बीचके छत्तीस कोष्ठोंको एक करके उनके द्वारा कमल बनावे, अथवा उसे कमलका क्षेत्र निश्चित करे। इस कमलक्षेत्रके बाहर चारों ओरकी एक-एक पंक्तिको मिटाकर उसके द्वारा पीठकी कल्पना करे, अथवा उसे पीठ समझे। फिर पीठसे भी बाहरकी दो-दो पंक्तियोंका मार्जन करके, उनके द्वारा 'वीथी'की कल्पना करे। फिर चारों दिशाओंमें द्वार-निर्माण करे। पूर्वोक्त पद्मक्षेत्रमें सब ओर बाहरके बारहवें भागको छोड़ दे और सर्व-मध्य-स्थानपर सूत्र रखकर, पद्म-निर्माणके लिये विभागपूर्वक समान अन्तर रखते हुए, सूत घुमाकर, तीन वृत्त बनावे। इस तरह उस चौकोर क्षेत्रको वर्तुल (गोल) बना दे। इन तीनोंमेंसे प्रथम तो कर्णिकाका क्षेत्र है, दूसरा केसरका क्षेत्र है और तीसरा दल-संधियोंका क्षेत्र है। शेष चौथा अंश दलाग्रभागका स्थान है। कोणसूत्रोंको फैलाकर कोणसे दिशाके मध्यभागतक ले जाय तथा केसरके अग्रभागमें सूत रखकर दल-संधियोंको चिह्नित करे॥ १—६ $\frac{1}{2}$ ॥

फिर सूत गिराकर अष्टदलोंका निर्माण करे। दलोंके मध्यगत अन्तरालका जो मान है, उसे मध्यमें रखकर उससे दलाग्रको घुमावे। तदनन्तर उसके भी अग्रभागको घुमावे। उनके अन्तराल-मानको उनके पार्श्वभागमें रखकर बाह्यक्रमसे एक-एक दलमें दो-दो केसरोंका उल्लेख करे। यह सामान्यतः कमलका चिह्न है। अब द्वादशदल कमलका वर्णन किया जाता है। कर्णिकार्धमानसे पूर्व दिशाकी ओर सूत रखकर क्रमशः सब ओर घुमावे। उसके पार्श्वभागमें भ्रमणयोगसे छः कुण्डलियाँ होंगी और बारह मत्स्यचिह्न बनेंगे। उनके द्वारा द्वादशदल कमल सम्पन्न होगा। पञ्चदल आदिकी सिद्धिके लिये भी इसी प्रकार मत्स्यचिह्नोंसे कमल बनाकर, आकाशरेखासे बाहर जो पीठभाग है, वहाँके कोष्ठोंको मिटा दे। पीठभागके चारों कोणोंमें तीन-तीन कोष्ठकोंको उस पीठके पायोंके

रूपमें कल्पित करे। अवशिष्ट जो चारों दिशाओंमें दो-दो जोड़े, अर्थात् चार-चार कोष्ठक हैं, उन सबको मिटा दे। वे पीठके पाटे हैं। पीठके बाहर चारों दिशाओंकी दो-दो पंक्तियोंको वीथी (मार्ग)-के लिये सर्वथा लुप्त कर दे (मिटा दे); तदनन्तर चारों दिशाओंमें चार द्वारोंकी कल्पना करे। (वीथीके बाहर जो दो पंक्तियाँ शेष हैं, उनमेंसे भीतरवाली पंक्तिके मध्यवर्ती दो-दो कोष्ठ और बाहरवाली पंक्तिके मध्यवर्ती चार-चार कोष्ठोंको एक करके द्वार बनाने चाहिये।) ॥ ७—१४ ॥

द्वारोंके पार्श्वभागोंमें विद्वान् पुरुष आठ शोभा-स्थानोंकी कल्पना करे और शोभाके पार्श्वभागमें उपशोभा-स्थान बनाये। उपशोभाओंकी संख्या भी उतनी ही बतायी गयी है, जितनी कि शोभाओंकी। उपशोभाओंके समीपके स्थान 'कोण' कहे गये हैं। तदनन्तर चारों दिशाओंमें दो-दो मध्यवर्ती कोष्ठकोंका और उससे बाह्य पंक्तिके चार-चार मध्यवर्ती कोष्ठकोंका द्वारके लिये चिन्तन करे। उन सबको एकत्र करके मिटा दे—इस तरह चार द्वार बन जाते हैं। द्वारके दोनों पार्श्वोंमें क्षेत्रकी बाह्य-पंक्तिके एक-एक और भीतरी पंक्तिके तीन-तीन कोष्ठोंको 'शोभा' बनानेके लिये मिटा दे। शोभाके पार्श्वभागमें उसके विपरीत करनेसे, अर्थात् क्षेत्रकी बाह्य-पंक्तिके तीन-तीन और भीतरी पंक्तिके एक-एक कोष्ठको मिटानेसे उपशोभाका निर्माण होता है। तत्पश्चात् कोणके भीतर और बाहरके तीन-तीन कोष्ठोंका भेद मिटाकर—एक करके चिन्तन करे* ॥ १५—१८ ॥

इस प्रकार सोलह-सोलह कोष्ठोंसे बननेवाले दो सौ छप्पन कोष्ठवाले मण्डलका वर्णन हुआ। इसी तरह दूसरे मण्डल भी बन सकते हैं। बारह-बारह कोष्ठोंसे (एक सौ चौवालीस) कोष्ठकोंका जो मण्डल बनता है, उसमें भी मध्यवर्ती छत्तीस पदों (कोष्ठों)-का कमल होता है। इसमें वीथी

* श्रीविद्यार्णव-तन्त्र, बारहवें श्वासमें इस सर्वतोभद्रमण्डलका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया गया है—चौकोर क्षेत्रमें पूर्वसे पश्चिमकी सत्रह रेखाएँ खींचकर, उनके ऊपर उत्तरसे दक्षिणकी ओर उतनी ही रेखाएँ खींचे। इस तरह दो सौ छप्पन कोष्ठोंका चतुरस्र मण्डल तैयार होगा। उनमें बीचके छत्तीस कोष्ठोंको एक करके, उनके बाहरकी एक-एक पंक्तिको चारों दिशाओंमें मिटाकर, पीठकी कल्पना करे। पीठके बाहर चारों दिशाओंकी दो-दो पंक्तियोंको एक करके सम्मार्जनपूर्वक वीथीकी कल्पना करे। बीचके छत्तीस कोष्ठोंको जो एक किया गया है, वह कमलका क्षेत्र है; उस क्षेत्रमें ही बाहरकी ओरसे बारहवाँ भाग खाली छोड़ दे। अर्थात् यदि वह क्षेत्र बारह अङ्गुल लम्बा-चौड़ा है तो चारों ओरसे एक-एक अङ्गुलको खाली छोड़ दे। शेष भागमें सबसे बीचके केन्द्रमें सूत रखकर क्रमश: तीन गोल रेखाएँ खींचे। । ये तीनों एक-दूसरीसे समान अन्तरपर हों। इनमें सबसे भीतरी या बीचके वृत्तको कमलकी कर्णिका माने। उससे बाहरकी वीथीको केसरका स्थान मानकर उस केसरस्थानको सोलह भागोंमें विभक्त करे और उसके चिह्नका अवलम्बन करते हुए दूसरे और तीसरे वृत्तोंमें अन्तराल-मानसूत्रके मानसे गुरुकी बतायी हुई युक्तिद्वारा सोलह अर्धचन्द्रोंकी कल्पना करे। उनके द्वारा आठ दलोंका निर्माण करके तृतीय वृत्तसे बाहर छोड़े हुए एक अंशके खाली स्थानसे बीचके चिह्नका अवलम्बन करते हुए एक और वृत्त बनावे। वहाँ गुरुकी बतायी युक्तिसे दलाग्रोंका निर्माण करे। एक-एक दलके मूलमें जिस तरह दो-दो केसर दीख पड़ें, उस तरहकी रचना करके कमलको साङ्गोपाङ्ग सम्पन्न करके पद्मक्षेत्रसे बाहर जो एक पंक्तिरूप चतुरस्र पीठ है, उसके चारों कोणोंमें तीन-तीन कोष्ठोंको पीठके पाये माने और एकीकृत शेष कोष्ठोंको पीठके अन्य अङ्ग होनेकी कल्पना करे। पीठके बाहरकी वीथीरूप दो-दो पंक्तियोंका भलीभाँति मार्जन करके वीथीके बाहरकी एक पंक्तिमें चारों दिशाओंके जो मध्यवर्ती दो-दो कोष्ठ हैं, उनको एक करके सबसे बाहरी पंक्तिमें भी चारों दिशाओंके मध्यवर्ती चार-चार कोष्ठोंको मिटाकर चार द्वार निर्माण करे। इन द्वारोंके उभयपार्श्वमें दोनों पंक्तियोंके कोष्ठोंमेंसे भीतरी पंक्तिके तीन और बाहरी पंक्तिके एक—इन चार कोष्ठोंको एक करके 'शोभा' बनावे। शोभाके पार्श्वभागोंमें भीतरी पंक्तिका एक और बाहरी पंक्तिके तीन—इन चार कोष्ठोंको एक करके 'उपशोभा' बनावे। अवशिष्ट जो छ:-छ: कोष्ठ हैं, उनके द्वारा चारों कोणोंकी कल्पना करे। इस प्रकार सर्वतोभद्रमण्डलका निर्माण करके, कमलकी कर्णिका, केसर, दलाग्रपीठ, वीथी, द्वार, शोभा, उपशोभा और कोण-स्थानोंको पाँच प्रकारके रंगसे रञ्जित करके उक्त मण्डलकी शोभा बढ़ावे।

नहीं होती[१]। एक पंक्ति पीठके लिये होती है। शेष दो पंक्तियोंद्वारा पूर्ववत् द्वार और शोभाकी कल्पना होती है। (इसमें उपशोभा नहीं देखी जाती। अवशिष्ट छः पदोंद्वारा कोणोंकी कल्पना करनी चाहिये।)[२] एक हाथके मण्डलमें बारह अङ्गुलका कमल-क्षेत्र होता है। दो हाथके मण्डलमें कमलका स्थान एक हाथ लंबा-चौड़ा होता है। तदनुसार वृद्धि करके द्वार आदिके साथ मण्डलकी रचना करे। दो हाथका पीठ-रहित चतुरस्रमण्डल हो तो उसमें चक्राकार कमल (चक्राब्ज)-का निर्माण करे। नौ अङ्गुलोंका 'पद्मार्ध' कहा गया है। तीन अङ्गुलोंकी 'नाभि' मानी गयी है। आठ अङ्गुलोंके 'अरे' बनावे और चार अङ्गुलोंकी 'नेमि'। क्षेत्रके तीन भाग करके, फिर भीतरसे प्रत्येकके दो भाग करे। भीतरके जो पाँच कोष्ठक हैं, उनको अरे या आरे बनानेके लिये आस्फालित (मार्जित) करके उनके ऊपर 'अरे' अङ्कित करे। वे अरे इन्दीवरके दलोंकी-सी आकृतिवाले हों, अथवा मातुलिङ्ग (बिजौरा नीबू)-के आकारके हों या कमलदलके समान विस्तृत हों, अथवा अपनी इच्छाके अनुसार उनकी आकृति अङ्कित करे। अरोंकी संधियोंके बीचमें सूत रखकर उसे बाहरकी नेमितक ले जाय और चारों ओर घुमावे। अरेके मूलभागको उसके संधि-स्थानमें सूत रखकर घुमावे तथा अरेके मध्यमें सूत्र-स्थापन करके उस मध्यभागके सब ओर समभावसे सूतको घुमावे। इस तरह घुमानेसे मातुलिङ्गके समान 'अरे' बन जायँगे॥ १९—२६॥

चौदह पदोंके क्षेत्रको सात भागोंमें बाँटकर पुनः दो-दो भागोंमें बाँटे अथवा पूर्वसे पश्चिम तथा उत्तरसे दक्षिणकी ओर पंद्रह-पंद्रह समान रेखाएँ खींचे। ऐसा करनेसे एक सौ छियानबे कोष्ठक सिद्ध होंगे। वे जो कोष्ठक हैं, उनमेंसे बीचके चार कोष्ठोंद्वारा 'भद्रमण्डल' लिखे। उसके चारों ओर वीथीके लिये स्थान छोड़ दे। फिर सम्पूर्ण दिशाओंमें कमल लिखे। उन कमलोंके चारों ओर वीथीके लिये एक-एक कोष्ठका मार्जन कर दे। तत्पश्चात् मध्यके दो-दो कोष्ठ ग्रीवाभागके लिये विलुप्त कर दे। फिर बाहरके जो चार कोष्ठ हैं, उनमेंसे तीन-तीनको सब ओर मिटा दे। बाहरका एक-एक कोष्ठ ग्रीवाके पार्श्वभागमें शेष रहने दे। उसे द्वार-शोभाकी संज्ञा दी गयी है।

बाह्य कोणोंमें सातको छोड़कर भीतर-भीतरके तीन-तीन कोष्ठोंका मार्जन कर दे। इसे 'नवनाल' या 'नवनाभ-मण्डल' कहते हैं। उसकी नौ नाभियोंमें नवव्यूहस्वरूप श्रीहरिका पूजन करे। पचीस व्यूहोंका जो मण्डल है, वह विश्वव्यापी है, अथवा सम्पूर्ण रूपोंमें व्याप्त है। बत्तीस हाथ अथवा कोष्ठवाले क्षेत्रको बत्तीससे ही बराबर-बराबर विभक्त कर दे; अर्थात् ऊपरसे नीचेको तैंतीस रेखाएँ खींचकर उनपर तैंतीस आड़ी रेखाएँ खींचे। इससे एक हजार चौबीस कोष्ठक बनेंगे। उनमेंसे बीचके सोलह कोष्ठोंद्वारा 'भद्रमण्डल' की रचना करे। फिर चारों ओरकी एक-एक पंक्ति छोड़ दे। तत्पश्चात् आठों दिशाओंमें सोलह कोष्ठकोंद्वारा आठ भद्रमण्डल लिखे। इसे 'भद्राष्टक' की संज्ञा दी गयी है॥ २७—३४॥

उसके बादकी भी एक पंक्ति मिटाकर पुनः पूर्ववत् सोलह भद्रमण्डल लिखे। तदनन्तर सब ओरकी एक-एक पंक्ति मिटाकर प्रत्येक दिशामें तीन-तीनके क्रमसे बारह द्वारोंकी रचना करे।

---

१. 'नैवात्र वीथिका।' (शारदातिलक, तृतीय पटल १३२)

२. द्वारशोभे यथा पूर्वमुपशोभा न दृश्यते॥ अवशिष्टैः पदैः कुर्यात् षड्भिः कोणानि तन्त्रवित्। (शारदा० ३। १३२-१३३)

बाहरके छः कोष्ठ मिटाकर बीचके पार्श्वभागोंके चार मिटा दे। फिर भीतरके चार और बाहरके दो कोष्ठ 'शोभा'के लिये मिटावे। इसके बाद उपद्वारकी सिद्धिके लिये भीतरके तीन और बाहरके पाँच कोष्ठोंका मार्जन करे। तत्पश्चात् पूर्ववत् 'शोभा'की कल्पना करे। कोणोंमें बाहरके सात और भीतरके तीन कोष्ठ मिटा दे। इस प्रकार जो पञ्चविंशतिका व्यूहमण्डल तैयार होता है, उसके भीतरकी कमलकर्णिकामें परब्रह्म परमात्माका यजन करे। फिर पूर्वादि दिशाओंके कमलोंमें क्रमशः वासुदेव आदिका पूजन करे। तत्पश्चात् पूर्ववर्ती कमलपर भगवान् वराहका पूजन करके क्रमशः सम्पूर्ण (अर्थात् पचीस) व्यूहोंकी पूजा करे। यह क्रम तबतक चलता रहे, जबतक छब्बीसवें तत्त्व—परमात्माका पूजन न सम्पन्न हो जाय। इस विषयमें प्रचेताका मत यह है कि एक ही मण्डलमें इन सम्पूर्ण कथित व्यूहोंका क्रमशः पूजन-यज्ञ सम्पन्न होना चाहिये। परंतु 'सत्य'का कथन है कि मूर्तिभेदसे भगवान्‌के व्यक्तित्वमें भेद हो जाता है; अतः सबका पृथक्-पृथक् पूजन करना उचित है। बयालीस कोष्ठवाले मण्डलको आड़ी रेखाद्वारा क्रमशः विभक्त करे। पहले एक-एकके सात भाग करे; फिर प्रत्येकके तीन-तीन भाग और उसके भी दो-दो भाग करे। इस प्रकार एक हजार सात सौ चौंसठ कोष्ठक बनेंगे। बीचके सोलह कोष्ठोंसे कमल बनावे। पार्श्वभागमें वीथीकी रचना करे। फिर आठ भद्र और वीथी बनावे। तदनन्तर सोलह दलके कमल और वीथीका निर्माण करे। तत्पश्चात् क्रमशः चौबीस दलके कमल, वीथी, बत्तीस दलके कमल, वीथी, चालीस दलके कमल और वीथी बनावे। तदनन्तर शेष तीन पंक्तियोंसे द्वार, शोभा और उपशोभाएँ बनेंगी। सम्पूर्ण दिशाओंके मध्यभागमें द्वारसिद्धिके लिये दो, चार और छः कोष्ठकोंको मिटावे। उसके बाह्यभागमें शोभा तथा उपद्वारकी सिद्धिके लिये पाँच, तीन और एक कोष्ठ मिटावे। द्वारोंके पार्श्वभागोंमें भीतरकी ओर क्रमशः छः तथा चार कोष्ठ मिटावे और बीचके दो-दो कोष्ठ लुप्त कर दे। इस तरह छः उपशोभाएँ बन जायँगी। एक-एक दिशामें चार-चार शोभाएँ और तीन-तीन द्वार होंगे। कोणोंमें प्रत्येक पंक्तिके पाँच-पाँच कोष्ठ छोड़ दे। वे कोण होंगे। इस तरह रचना करनेपर सुन्दर अभीष्ट मण्डलका निर्माण होता है॥ ३५—५०॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'सर्वतोभद्र आदि मण्डलके लक्षणका वर्णन' नामक उन्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २९॥

तीसवाँ अध्याय

भद्रमण्डल आदिकी पूजन-विधिका वर्णन

नारदजी कहते हैं—मुनिवरो! पूर्वोक्त भद्रमण्डलके मध्यवर्ती कमलमें अङ्गोंसहित ब्रह्मका पूजन करना चाहिये। पूर्ववर्ती कमलमें भगवान् पद्मनाभका, अग्निकोणवाले कमलमें प्रकृतिदेवीका तथा दक्षिण दिशाके कमलमें पुरुषकी पूजा करनी चाहिये। पुरुषके दक्षिण भागमें अग्निदेवताकी, नैर्ऋत्यकोणमें निर्ऋतिकी, पश्चिम दिशावाले कमलमें वरुणकी, वायव्यकोणमें वायुकी, उत्तर दिशाके कमलमें आदित्यकी तथा ईशानकोणवाले कमलमें ऋग्वेद एवं यजुर्वेदका पूजन करे। द्वितीय आवरणमें इन्द्र आदि दिक्पालोंका और षोडशदलवाले कमलमें क्रमशः सामवेद, अथर्ववेद, आकाश,

वायु, तेज, जल, पृथिवी, मन, श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना, घ्राणेन्द्रिय, भूर्लोक, भुवर्लोक तथा सोलहवेंमें स्वर्लोकका पूजन करना चाहिये॥ १—४॥

तदनन्तर तृतीय आवरणमें चौबीस दलवाले कमलमें क्रमशः महर्लोक, जनलोक, तपोलोक, सत्यलोक, अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र, आप्तोर्याम, व्यष्टि मन, व्यष्टि बुद्धि, व्यष्टि अहंकार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, जीव, समष्टि मन, समष्टि बुद्धि (महत्तत्त्व), समष्टि अहंकार तथा प्रकृति—इन चौबीसकी अर्चना करे। इन सबका स्वरूप शब्दमात्र है—अर्थात् केवल इनका नाम लेकर इनके प्रति मस्तक झुका लेना चाहिये। इनकी पूजामें इनके स्वरूपका चिन्तन अनावश्यक है। पचीसवें अध्यायमें कथित वासुदेवादि नौ मूर्ति, दशविध प्राण, मन, बुद्धि, अहंकार, पायु और उपस्थ, श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना, घ्राण, वाक्, पाणि और पाद—इन बत्तीस वस्तुओंकी बत्तीस दलवाले कमलमें अर्चना करनी चाहिये। ये चौथे आवरणके देवता हैं। उक्त आवरणमें इनका साङ्ग एवं सपरिवार पूजन होना चाहिये॥ ५—९॥

तदनन्तर बाह्य आवरणमें पायु और उपस्थकी पूजा करके बारह मासोंके बारह अधिपतियोंका तथा पुरुषोत्तम आदि छब्बीस तत्त्वोंका यजन करे। उनमेंसे जो मासाधिपति हैं, उनका चक्राब्जमें क्रमशः पूजन करना चाहिये। आठ, छः, पाँच या चार प्रकृतियोंका भी पूजन वहीं करना चाहिये। तदनन्तर लिखित मण्डलमें विभिन्न रंगोंके चूर्ण डालनेका विधान है। कहाँ, किस रंगके चूर्णका उपयोग है, यह सुनो। कमलकी कर्णिका पीले रंगकी होनी चाहिये। समस्त रेखाएँ बराबर और श्वेत रंगकी रहें। दो हाथके मण्डलमें रेखाएँ अँगूठेके बराबर मोटी होनी चाहिये। एक हाथके मण्डलमें उनकी मोटाई आधे अँगूठेके समान रखनी चाहिये। रेखाएँ श्वेत बनायी जायँ। कमलको श्वेत रंगसे और संधियोंको काले या श्याम (नीले) रंगसे रँगना चाहिये। केसर लाल-पीले रंगके हों। कोणगत कोष्ठोंको लाल रंगके चूर्णसे भरना चाहिये। इस प्रकार योगपीठको सभी तरहके रंगोंसे यथेष्ट विभूषित करना चाहिये। लता-वल्लरियों और पत्तों आदिसे वीथीकी शोभा बढ़ावे। पीठके द्वारको श्वेत रंगसे सजावे और शोभास्थानोंको लाल रंगके चूर्णसे भरे। उपशोभाओंको नीले रंगसे विभूषित करे। कोणोंके शङ्खोंको श्वेत चित्रित करे। यह भद्र-मण्डलमें रंग भरनेकी बात बतायी गयी है। अन्य मण्डलोंमें भी इसी तरह विविध रंगोंके चूर्ण भरने चाहिये। त्रिकोण मण्डलको श्वेत, रक्त और कृष्ण रंगसे अलंकृत करे। द्विकोणको लाल और पीलेसे रँगे। चक्राब्जमें जो नाभिस्थान है, उसे कृष्ण रंगके चूर्णसे विभूषित करे॥ १०—१७॥

चक्राब्जके अरोंको पीले और लालसे रँगे। नेमिको नीले तथा लाल रंगसे सजावे और बाहरकी रेखाओंको श्वेत, श्याम, अरुण, काले एवं पीले रंगोंसे रँगे। अगहनी चावलका पीसा हुआ चूर्ण आदि श्वेत रंगका काम करता है। कुसुम्भ आदिका चूर्ण लाल रंगकी पूर्ति करता है। पीला रंग हल्दीके चूर्णसे तैयार होता है। जले हुए चावलके चूर्णसे काले रंगकी आवश्यकता पूर्ण होती है। शमी-पत्र आदिसे श्याम रंगका काम लिया जाता है। बीज-मन्त्रोंका एक लाख जप करनेसे, अन्य मन्त्रोंका उनके अक्षरोंके बराबर लाख बार जप करनेसे, विद्याओंको एक लक्ष जपनेसे, बुद्ध-विद्याओंको दस हजार बार

जपनेसे, स्तोत्रोंका एक सहस्र बार पाठ करनेसे अथवा सभी मन्त्रोंको पहली बार एक लाख जप करनेसे उन मन्त्रोंकी तथा अपनी भी शुद्धि होती है। दूसरी बार एक लाख जपनेसे मन्त्र क्षेत्रीकृत होता है। बीज-मन्त्रोंका पहले जितना जप किया गया हो, उतना ही उनके लिये होमका भी विधान है। अन्य मन्त्रादिके होमकी संख्या पूर्वजपके दशांशके तुल्य बतायी गयी है। मन्त्रसे पुरश्चरण करना हो तो एक-एक मासका व्रत ले। पृथ्वीपर पहले बायाँ पैर रखे। किसीसे दान न ले। इस प्रकार दुगुना और तिगुना जप करनेसे ही मध्यम और उत्तम श्रेणीकी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। अब मैं मन्त्रका ध्यान बताता हूँ, जिससे मन्त्र-जपजनित फलकी प्राप्ति होती है। मन्त्रका स्थूलरूप शब्दमय है; इसे उसका बाह्य विग्रह माना गया है। मन्त्रका सूक्ष्मरूप ज्योतिर्मय है। यही उसका आन्तरिक रूप है। यह केवल चिन्तनमय है। जो चिन्तनसे भी रहित है, उसे 'पर' कहा गया है। वाराह, नरसिंह तथा शक्तिके स्थूल रूपकी ही प्रधानता है। वासुदेवका रूप चिन्तनरहित (अचिन्त्य) कहा गया है॥ १८—२७॥

अन्य देवताओंका चिन्तामय आन्तरिक रूप ही सदा 'मुख्य' माना गया है। 'वैराज' अर्थात् विराट्का स्वरूप 'स्थूल' कहा गया है। लिङ्गमय स्वरूपको 'सूक्ष्म' जानना चाहिये। ईश्वरका जो स्वरूप बताया गया है, वह चिन्तारहित है। बीज-मन्त्र हृदयकमलमें निवास करनेवाला, अविनाशी, चिन्मय, ज्योतिःस्वरूप और जीवात्मक है। उसकी आकृति कदम्ब-पुष्पके समान है—इस तरह ध्यान करना चाहिये। जैसे घड़ेके भीतर रखे हुए दीपककी प्रभाका प्रसार अवरुद्ध हो जाता है; वह संहतभावसे अकेला ही स्थित रहता है; उसी प्रकार मन्त्रेश्वर हृदयमें विराजमान हैं। जैसे अनेक छिद्रवाले कलशमें जितने छेद होते हैं, उतनी ही दीपककी प्रभाकी किरणें बाहरकी ओर फैलती हैं, उसी तरह नाडियोंद्वारा ज्योतिर्मय बीजमन्त्रकी रश्मियाँ आँतोंको प्रकाशित करती हुई दैव-देहको अपनाकर स्थित हैं। नाडियाँ हृदयसे प्रस्थित हो नेत्रेन्द्रियोंतक चली गयी हैं। उनमेंसे दो नाडियाँ अग्नीषोमात्मक हैं, जो नासिकाओंके अग्रभागमें स्थित हैं। मन्त्रका साधक सम्यक् उद्घात-योगसे शरीरव्यापी प्राणवायुको जीतकर जप और ध्यानमें तत्पर रहे तो वह मन्त्रजनित फलका भागी होता है। पञ्चभूततन्मात्राओंकी शुद्धि करके योगाभ्यास करनेवाला साधक यदि सकाम हो तो अणिमा आदि सिद्धियोंको पाता है और यदि विरक्त हो तो उन सिद्धियोंको लाँघकर, चिन्मय स्वरूपसे स्थित हो, भूतमात्रसे तथा इन्द्रियरूपी ग्रहसे सर्वथा मुक्त हो जाता है॥ २८—३६॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'भद्र-मण्डलादिविधि-कथन' नामक तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३०॥

इकतीसवाँ अध्याय

'अपामार्जन-विधान' एवं 'कुशापामार्जन' नामक स्तोत्रका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—मुने! अब मैं अपनी तथा दूसरोंकी रक्षाका उपाय बताऊँगा। उसका नाम है—मार्जन (या अपामार्जन)। यह वह रक्षा है, जिसके द्वारा मानव दुःखसे छूट जाता है और सुखको प्राप्त कर लेता है। उन सच्चिदानन्दमय, परमार्थस्वरूप, सर्वान्तर्यामी, महात्मा, निराकार

तथा सहस्रों आकारधारी व्यापक परमात्माको मेरा नमस्कार है। जो समस्त कल्मषोंसे रहित, परम शुद्ध तथा नित्य ध्यानयोगरत है, उसे नमस्कार करके मैं प्रस्तुत रक्षाके विषयमें कहूँगा, जिससे मेरी वाणी सत्य हो।[१] महामुने! मैं भगवान् वाराह, नृसिंह तथा वामनको भी नमस्कार करके रक्षाके विषयमें जो कुछ कहूँगा, मेरा वह कथन सिद्ध (सफल) हो।[२] मैं भगवान् त्रिविक्रम (त्रिलोकीको तीन पगोंसे नापनेवाले विराट्स्वरूप), श्रीराम, वैकुण्ठ (नारायण) तथा नरको भी नमस्कार करके जो कहूँगा, वह मेरा वचन सत्य सिद्ध हो[३] ॥ १—५ ॥

अपामार्जनविधानम्

वराह नरसिंहेश वामनेश त्रिविक्रम।
हयग्रीवेश सर्वेश हृषीकेश हराशुभम्॥ ६॥
अपराजित चक्राद्यैश्चतुर्भिः परमायुधैः।
अखण्डितानुभावैस्त्वं सर्वदुष्टहरो भव॥ ७॥
हरामुकस्य दुरितं सर्वं च कुशलं कुरु।
मृत्युबन्धार्तिभयदं दुरिष्टस्य च यत्फलम्॥ ८॥

भगवन् वराह! नृसिंहेश्वर! वामनेश्वर! त्रिविक्रम! हयग्रीवेश, सर्वेश तथा हृषीकेश! मेरा सारा अशुभ हर लीजिये। किसीसे भी पराजित न होनेवाले परमेश्वर! अपने अखण्डित प्रभावशाली चक्र आदि चारों आयुधोंसे समस्त दुष्टोंका संहार कर डालिये। प्रभो! आप अमुक (रोगी या प्रार्थी)-के सम्पूर्ण पापोंको हर लीजिये और उसके लिये पूर्णतया कुशल-क्षेमका सम्पादन कीजिये। दोषयुक्त यज्ञ या पापके फलस्वरूप जो मृत्यु, बन्धन, रोग, पीडा या भय आदि प्राप्त होते हैं, उन सबको मिटा दीजिये॥ ६—८॥

पराभिध्यानसहितैः प्रयुक्तं चाभिचारिकम्।
गरस्पर्शमहारोगप्रयोगं जरया जर॥ ९॥
ॐ नमो वासुदेवाय नमः कृष्णाय खड्गिने।
नमः पुष्करनेत्राय केशवायादिचक्रिणे॥ १०॥
नमः कमलकिञ्जल्कपीतनिर्मलवाससे।
महाहवरिपुस्कन्धघृष्टचक्राय चक्रिणे॥ ११॥
दंष्ट्रोद्धृतक्षितिभृते त्रयीमूर्तिमते नमः।
महायज्ञवराहाय शेषभोगाङ्कशायिने॥ १२॥
तप्तहाटककेशान्तज्वलत्पावकलोचन।
वज्राधिकनखस्पर्श दिव्यसिंह नमोऽस्तु ते॥ १३॥
काश्यपायातिह्रस्वाय ऋग्यजुःसामभूषिणे।
तुभ्यं वामनरूपायाक्रमते गां नमो नमः॥ १४॥

दूसरोंके अनिष्ट-चिन्तनमें संलग्न लोगोंद्वारा जो आभिचारिक कर्मका, विषमिश्रित अन्न-पानका या महारोगका प्रयोग किया गया है, उन सबको जरा-जीर्ण कर डालिये—नष्ट कर दीजिये। ॐ भगवान् वासुदेवको नमस्कार है। खड्गधारी श्रीकृष्णको नमस्कार है। आदिचक्रधारी कमल-नयन केशवको नमस्कार है। कमलपुष्पके केसरोंकी भाँति पीत-निर्मल वस्त्र धारण करनेवाले भगवान् पीताम्बरको प्रणाम है। जो महासमरमें शत्रुओंके कंधोंसे घृष्ट होता है, ऐसे चक्रके चालक भगवान् चक्रपाणिको नमस्कार है। अपनी दंष्ट्रापर उठायी हुई पृथ्वीको धारण करनेवाले वेद-विग्रह एवं शेषशय्याशायी महान् यज्ञवराहको नमस्कार है। दिव्यसिंह! आपके केशान्त प्रतप्त-सुवर्णके समान कान्तिमान् हैं, नेत्र प्रज्वलित पावकके समान तेजस्वी हैं तथा आपके नखोंका स्पर्श वज्रसे भी अधिक तीक्ष्ण है; आपको नमस्कार है। अत्यन्त लघुकाय तथा ऋग्, यजु और

---

१. ॐ नमः परमार्थाय पुरुषाय महात्मने। अरूपबहुरूपाय व्यापिने परमात्मने॥
निष्कल्मषाय शुद्धाय ध्यानयोगरताय च। नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि यत् तत् सिध्यतु मे वचः॥
२. वराहाय नृसिंहाय वामनाय महात्मने। नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि यत् तत् सिध्यतु मे वचः॥
३. त्रिविक्रमाय रामाय वैकुण्ठाय नराय च। नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि यत् तत् सिध्यतु मे वचः॥ (३१। २—५)

साम तीनों वेदोंसे विभूषित आप कश्यपकुमार वामनको नमस्कार है। फिर विराट्-रूपसे पृथ्वीको लाँघ जानेवाले आप त्रिविक्रमको नमस्कार है॥ ९—१४॥

वराहाशेषदुष्टानि सर्वपापफलानि वै।
मर्द मर्द महादंष्ट्र मर्द मर्द च तत्फलम्॥ १५॥
नारसिंह करालास्य दन्तप्रान्तानलोज्ज्वल।
भञ्ज भञ्ज निनादेन दुष्टान् पश्यार्तिनाशन॥ १६॥
ऋग्यजुःसामगर्भाभिर्वाग्भिर्वामनरूपधृक्।
प्रशमं सर्वदुःखानि नयत्वस्य जनार्दन॥ १७॥
ऐकाहिकं द्व्याहिकं च तथा त्रिदिवसं ज्वरम्।
चातुर्थिकं तथात्युग्रं तथैव सततं ज्वरम्॥ १८॥
दोषोत्थं संनिपातोत्थं तथैवागन्तुकं ज्वरम्।
शमं नयाशु गोविन्द च्छिन्धि च्छिन्ध्यस्य वेदनाम्॥ १९॥

वराहरूपधारी नारायण! समस्त पापोंके फलरूपसे प्राप्त सम्पूर्ण दुष्ट रोगोंको कुचल दीजिये, कुचल दीजिये। बड़े-बड़े दाढ़ोंवाले महावराह! पापजनित फलको मसल डालिये, नष्ट कर दीजिये। विकटानन नृसिंह! आपका दन्त-प्रान्त अग्निके समान जाज्वल्यमान है। आर्तिनाशन! आक्रमणकारी दुष्टोंको देखिये और अपनी दहाड़से इन सबका नाश कीजिये, नाश कीजिये। वामनरूपधारी जनार्दन! ऋक्, यजुः एवं सामवेदके गूढ़ तत्त्वोंसे भरी वाणीद्वारा इस आर्तजनके समस्त दुःखोंका शमन कीजिये। गोविन्द! इसके त्रिदोषज, संनिपातज, आगन्तुक, ऐकाहिक, द्व्याहिक, त्र्याहिक तथा अत्यन्त उग्र चातुर्थिक ज्वरको एवं सतत बने रहनेवाले ज्वरको भी शीघ्र शान्त कीजिये। इसकी वेदनाको मिटा दीजिये, मिटा दीजिये॥ १५—१९॥

नेत्रदुःखं शिरोदुःखं दुःखं चोदरसम्भवम्।
अनिश्वासमतिश्वासं परितापं सवेपथुम्॥ २०॥
गुदघ्राणाङ्घ्रिरोगांश्च कुष्ठरोगांस्तथा क्षयम्।
कामलादींस्तथा रोगान् प्रमेहांश्चातिदारुणान्॥ २१॥
भगन्दरातिसारांश्च मुखरोगांश्च वल्गुलीम्।
अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रांश्च रोगानन्यांश्च दारुणान्॥ २२॥
ये वातप्रभवा रोगा ये च पित्तसमुद्भवाः।
कफोद्भवाश्च ये केचिद् ये चान्ये सांनिपातिकाः॥ २३॥
आगन्तुकाश्च ये रोगा लूताविस्फोटकादयः।
ते सर्वे प्रशमं यान्तु वासुदेवस्य कीर्तनात्॥ २४॥
विलयं यान्तु ते सर्वे विष्णोरुच्चारणेन च।
क्षयं गच्छन्तु चाशेषास्ते चक्राभिहता हरेः॥ २५॥
अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात्।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥ २६॥

इस दुखियाके नेत्ररोग, शिरोरोग, उदररोग, श्वासावरोध, अतिश्वास (दमा), परिताप, कम्पन, गुदरोग, नासिका-रोग, पादरोग, कुष्ठरोग, क्षयरोग, कामला आदि रोग, अत्यन्त दारुण प्रमेह, भगंदर, अतिसार, मुखरोग, वल्गुली, अश्मरी (पथरी), मूत्रकृच्छ्र तथा अन्य महाभयंकर रोगोंको भी दूर कीजिये। भगवान् वासुदेवके संकीर्तनमात्रसे जो भी वातज, पित्तज, कफज, संनिपातज, आगन्तुक तथा लूता (मकरी), विस्फोट (फोड़े) आदि रोग हैं, वे सभी अपमार्जित होकर शान्त हो जायँ। वे सभी भगवान् विष्णुके नामोच्चारणके प्रभावसे विलुप्त हो जायँ। वे समस्त रोग श्रीहरिके चक्रसे प्रतिहत होकर क्षयको प्राप्त हों। 'अच्युत', 'अनन्त' एवं 'गोविन्द'—इन नामोंके उच्चारणरूप औषधसे सम्पूर्ण रोग नष्ट हो जाते हैं, यह मैं सत्य-सत्य कहता हूँ॥ २०—२६॥

स्थावरं जङ्गमं वापि कृत्रिमं चापि यद्विषम्।
दन्तोद्भवं नखभवमाकाशप्रभवं विषम्॥ २७॥
लूतादिप्रभवं यच्च विषमन्यत्तु दुःखदम्।
शमं नयतु तत्सर्वं वासुदेवस्य कीर्तनम्॥ २८॥
ग्रहान् प्रेतग्रहांश्चापि तथा वै डाकिनीग्रहान्।
वेतालांश्च पिशाचांश्च गन्धर्वान् यक्षराक्षसान्॥ २९॥

शकुनीपूतनाद्यांश्च तथा वैनायकान् ग्रहान्।
मुखमण्डीं तथा क्रूरां रेवतीं वृद्धरेवतीम्॥ ३०॥
वृद्धिकाख्यान्ग्रहांश्चोग्रांस्तथा मातृग्रहानपि।
बालस्य विष्णोश्चरितं हन्तु बालग्रहानिमान्॥ ३१॥
वृद्धाश्च ये ग्रहाः केचिद् ये च बालग्रहाः क्वचित्।
नरसिंहस्य ते दृष्ट्या दग्धा ये चापि यौवने॥ ३२॥
सटाकरालवदनो नारसिंहो महाबलः।
ग्रहानशेषान्निःशेषान् करोतु जगतो हितः॥ ३३॥
नरसिंह महासिंह ज्वालामालोज्ज्वलानन।
ग्रहानशेषान् सर्वेश खाद खादाग्निलोचन॥ ३४॥

स्थावर, जङ्गम, कृत्रिम, दन्तोद्भूत, नखोद्भूत, आकाशोद्भूत तथा लूतादिसे उत्पन्न एवं अन्य जो भी दुःखप्रद विष हों—भगवान् वासुदेवका संकीर्तन उनका प्रशमन करे। बालरूपधारी श्रीहरि (श्रीकृष्ण)-के चरित्रका कीर्तन ग्रह, प्रेतग्रह, डाकिनीग्रह, वेताल, पिशाच, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, शकुनी-पूतना आदि ग्रह, विनायकग्रह, मुख-मण्डिका, क्रूर रेवती, वृद्धरेवती, वृद्धिका नामसे प्रसिद्ध उग्र ग्रह एवं मातृग्रह—इन सभी बालग्रहोंका नाश करे। भगवन्! आप नरसिंहके दृष्टिपातसे जो भी वृद्ध, बाल तथा युवा ग्रह हों, वे दग्ध हो जायँ। जिनका मुख सटा-समूहसे विकराल प्रतीत होता है, वे लोकहितैषी महाबलवान् भगवान् नृसिंह समस्त बालग्रहोंको निःशेष कर दें। महासिंह नरसिंह! ज्वालामालाओंसे आपका मुखमण्डल उज्ज्वल हो रहा है। अग्निलोचन! सर्वेश्वर! समस्त ग्रहोंका भक्षण कीजिये, भक्षण कीजिये॥ २७—३४॥

ये रोगा ये महोत्पाता यद्विषं ये महाग्रहाः।
यानि च क्रूरभूतानि ग्रहपीडाश्च दारुणाः॥ ३५॥
शस्त्रक्षतेषु ये दोषा ज्वालागर्दभकादयः।
तानि सर्वाणि सर्वात्मा परमात्मा जनार्दनः॥ ३६॥
किंचिद्रूपं समास्थाय वासुदेवास्य नाशय।
क्षिप्त्वा सुदर्शनं चक्रं ज्वालामालातिभीषणम्॥ ३७॥
सर्वदुष्टोपशमनं कुरु देववराच्युत।
सुदर्शन महाज्वाल च्छिन्धि च्छिन्धि महारव॥ ३८॥
सर्वदुष्टानि रक्षांसि क्षयं यान्तु विभीषण।
प्राच्यां प्रतीच्यां च दिशि दक्षिणोत्तरतस्तथा॥ ३९॥
रक्षां करोतु सर्वात्मा नरसिंहः स्वगर्जितैः।
दिवि भुव्यन्तरिक्षे च पृष्ठतः पार्श्वतोऽग्रतः॥ ४०॥
रक्षां करोतु भगवान् बहुरूपी जनार्दनः।
यथा विष्णुर्जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम्॥ ४१॥
तेन सत्येन दुष्टानि शममस्य व्रजन्तु वै।

वासुदेव! आप सर्वात्मा परमेश्वर जनार्दन हैं। इस व्यक्तिके जो भी रोग, महान् उत्पात, विष, महाग्रह, क्रूर भूत, दारुण ग्रहपीडा तथा ज्वालागर्दभक आदि शस्त्र-क्षत-जनित दोष हों, उन सबका कोई भी रूप धारण करके नाश करें। देवश्रेष्ठ अच्युत! ज्वालामालाओंसे अत्यन्त भीषण सुदर्शन-चक्रको प्रेरित करके समस्त दुष्ट रोगोंका शमन कीजिये। महाभयंकर सुदर्शन! तुम प्रचण्ड ज्वालाओंसे सुशोभित और महान् शब्द करनेवाले हो; अतः सम्पूर्ण दुष्ट राक्षसोंका संहार करो, संहार करो। वे तुम्हारे प्रभावसे क्षयको प्राप्त हों। पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशामें सर्वात्मा नृसिंह अपनी गर्जनासे रक्षा करें। स्वर्गलोकमें, भूलोकमें, अन्तरिक्षमें तथा आगे-पीछे अनेक रूपधारी भगवान् जनार्दन रक्षा करें। देवता, असुर और मनुष्योंसहित यह सम्पूर्ण जगत् भगवान् विष्णुका ही स्वरूप है; इस सत्यके प्रभावसे इसके दुष्ट रोग शान्त हों॥ ३५— ४१ $\frac{१}{२}$॥

यथा विष्णौ स्मृते सद्यः संक्षयं यान्ति पातकाः॥ ४२॥
सत्येन तेन सकलं दुष्टमस्य प्रशाम्यतु।
यथा यज्ञेश्वरो विष्णुर्देवेष्वपि हि गीयते॥ ४३॥
सत्येन तेन सकलं यन्मयोक्तं तथास्तु तत्।
शान्तिरस्तु शिवं चास्तु दुष्टमस्य प्रशाम्यतु॥ ४४॥

वासुदेवशरीरोत्थैः कुशैर्निर्णाशितं मया।
अपामार्जतु गोविन्दो नरो नारायणस्तथा॥ ४५॥
तथास्तु सर्वदुःखानां प्रशमो वचनाद्धरेः।
अपामार्जनकं शस्तं सर्वरोगादिवारणम्॥ ४६॥
अहं हरिः कुशा विष्णुर्हता रोगा मया तव॥ ४७॥

श्रीविष्णुके स्मरणमात्रसे पापसमूह तत्काल नष्ट हो जाते हैं, इस सत्यके प्रभावसे इसके समस्त दूषित रोग शान्त हो जायँ। यज्ञेश्वर विष्णु देवताओंद्वारा प्रशंसित होते हैं; इस सत्यके प्रभावसे मेरा कथन सत्य हो। शान्ति हो, मंगल हो। इसका दुष्ट रोग शान्त हो। मैंने भगवान् वासुदेवके शरीरसे प्रादुर्भूत कुशोंसे इसके रोगोंको नष्ट किया है। नर-नारायण और गोविन्द—इसका अपामार्जन करें। श्रीहरिके वचनसे इसके सम्पूर्ण दुःखोंका शमन हो जाय। समस्त रोगादिके निवारणके लिये 'अपामार्जन-स्तोत्र' प्रशस्त है। मैं श्रीहरि हूँ, कुशा विष्णु हैं। मैंने तुम्हारे रोगोंका नाश कर दिया है॥ ४२—४७॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'कुशापामार्जन-स्तोत्रका वर्णन' नामक इकतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३१॥

बत्तीसवाँ अध्याय

निर्वाणादि-दीक्षाकी सिद्धिके उद्देश्यसे सम्पादनीय संस्कारोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं— ब्रह्मन्! बुद्धिमान् पुरुष निर्वाणादि दीक्षाओंमें अड़तालीस संस्कार करावे। उन संस्कारोंका वर्णन सुनिये, जिनसे मनुष्य देवतुल्य हो जाता है। सर्वप्रथम योनिमें गर्भाधान, तदनन्तर पुंसवन-संस्कार करे। फिर सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चूडाकर्म, चार ब्रह्मचर्यव्रत—वैष्णवी, पार्थी, भौतिकी और श्रौतिकी, गोदान, समावर्तन, सात पाकयज्ञ—अष्टका, अन्वष्टका पार्वणश्राद्ध, श्रावणी, आग्रहायणी, चैत्री एवं आश्वयुजी, सात हविर्यज्ञ—आधान, अग्निहोत्र, दर्श, पौर्णमास, चातुर्मास्य, पशुबन्ध तथा सौत्रामणी, सात सोमसंस्थाएँ—यज्ञश्रेष्ठ अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र एवं आप्तोर्याम; सहस्रेश यज्ञ—हिरण्याङ्घ्रि, हिरण्याक्ष, हिरण्यमित्र, हिरण्यपाणि, हेमाक्ष, हेमाङ्ग, हेमसूत्र, हिरण्यास्य, हिरण्याङ्ग, हेमजिह्व, हिरण्यवान् और सब यज्ञोंका स्वामी अश्वमेधयज्ञ तथा आठ गुण—सर्वभूतदया, क्षमा, आर्जव, शौच, अनायास, मङ्गल, अकृपणता और अस्पृहा—ये संस्कार करे। इष्टदेवके मूल-मन्त्रसे सौ आहुतियाँ दे। सौर, शाक्त, वैष्णव तथा शैव—सभी दीक्षाओंमें ये समान माने गये हैं। इन संस्कारोंसे संस्कृत होकर मनुष्य भोग-मोक्षको प्राप्त करता है। वह सम्पूर्ण रोगादिसे मुक्त होकर देववत् हो जाता है। मनुष्य अपने इष्टदेवताके जप, होम, पूजन तथा ध्यानसे इच्छित वस्तुको प्राप्त करता है॥ १—१३॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'निर्वाणादि-दीक्षाकी सिद्धिके उद्देश्यसे सम्पादनीय संस्कारोंका वर्णन' नामक बत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३२॥

तैंतीसवाँ अध्याय

पवित्रारोपण, भूतशुद्धि, योगपीठस्थ देवताओं तथा प्रधान देवताके पार्षद—आवरणदेवोंकी पूजा

अग्निदेव कहते हैं—मुने! अब मैं पवित्रारोपणकी[1] विधि बताऊँगा। वर्षमें एक बार किया गया पवित्रारोपण सम्पूर्ण वर्षभर की हुई श्रीहरिकी पूजाका फल देनेवाला है। आषाढ़ (-की शुक्ला एकादशी)-से लेकर कार्तिक (-की शुक्ला एकादशी)-तकके बीचके कालमें ही 'पवित्रारोपण' किया जाता है। प्रतिपदा धनद-तिथि है। द्वितीया आदि तिथियाँ क्रमशः लक्ष्मी आदि देवताओंकी हैं। यथा—लक्ष्मीकी द्वितीया[2], गौरीकी तृतीया, गणेशकी चतुर्थी, सरस्वती (तथा नाग देवताओं)-की पञ्चमी, स्वामी कार्तिकेयकी षष्ठी, सूर्यकी सप्तमी, मातृकाओंकी अष्टमी, दुर्गाकी नवमी, नागों (या यमराज)-की दशमी, ऋषियों तथा भगवान् विष्णुकी एकादशी, श्रीहरिकी द्वादशी, कामदेवकी त्रयोदशी, शिवकी चतुर्दशी तथा ब्रह्माकी पौर्णमासी एवं अमावस्या तिथि है। जो मनुष्य जिस देवताका भक्त है, उसके लिये वही तिथि पवित्र है॥ १—३॥

पवित्रारोपणकी विधि सब देवताओंके लिये समान है; केवल मन्त्र आदि प्रत्येक देवताके लिये पृथक्-पृथक् बोले। पवित्रक बनानेके लिये सोने-चाँदी और ताँबेके तार तथा कपास आदिके सूत होने चाहिये[3]॥ ४॥

ब्राह्मणीके हाथका काता हुआ सूत सर्वोत्तम है। वह न मिले तो किसी भी सूतको उसका संस्कार करके उपयोगमें लेना चाहिये। सूतको तिगुना करके, उसे पुनः तिगुना करे और उसीसे, अर्थात् नौ तन्तुओंद्वारा पवित्रक बनाये। एक सौ आठसे लेकर अधिक तन्तुओंद्वारा निर्मित पवित्रक उत्तम आदिकी श्रेणीमें गिना जाता है।

---

१. वर्षभरके पूजा-विधानकी सम्पूर्ण त्रुटियोंका दोष दूर करके उस कर्मकी साङ्गोपाङ्ग सम्पन्नता एवं उससे समस्त इष्ट फलोंकी प्राप्तिके लिये 'पवित्रारोपण' अत्यन्त आवश्यक कर्म है। इसे न करनेपर मन्त्र-साधक या उपासकको सिद्धिसे वञ्चित होना पड़ता है। जैसा कि आचार्य सोमशम्भुने कहा है—

सर्वपूजाविधिच्छिद्रपूरणाय पवित्रकम्। कर्तव्यमन्यथा मन्त्री सिद्धिभ्रंशमवाप्नुयात्॥ (क० क्र० ३६४)

अतएव ब्र० विष्णु-रहस्यमें भी कहा गया है—

तस्माद् भक्तिसमायुक्तैर्नरैर्विष्णुपरायणैः। वर्षे वर्षे प्रकर्तव्यं पवित्रारोपणं हरेः॥ (वाचस्पत्ये हेमाद्रौ)

पवित्रारोपण सभी देवताओंके लिये उनके उपासकोंद्वारा कर्तव्य है। इसके न करनेसे वर्षभरके देवपूजनके फलसे हाथ धोना पड़ता है। यह कर्म अत्यन्त पुण्यदायक माना गया है।

सबसे पहले शास्त्रोंमें इसके लिये उत्तम कालका विचार किया गया है, जिसका दिग्दर्शन मूलके दूसरे तथा तीसरे श्लोकोंमें कराया गया है। सोमशम्भुके मतसे इसके लिये आषाढ़ मास उत्तम, श्रावण मध्यम तथा भाद्रपद कनिष्ठ है। वे इससे आगे बढ़नेकी आज्ञा नहीं देते। परंतु 'विष्णुरहस्य'के अनुसार भगवान् विष्णुके लिये पवित्रारोपणका मुख्यकाल श्रावण-शुक्ला द्वादशी है। वैसे तो यह सिंहगत सूर्य और कन्यागत सूर्यमें, अर्थात् भादों और आश्विनकी शुक्ला द्वादशीको भी किया जा सकता है। कार्तिकमें इसके करनेका सर्वथा निषेध है—

'तुलास्थे न कदाचन।'

२. कोई-कोई विद्वान् प्रतिपदाको अग्निकी और द्वितीयाको ब्रह्माजीकी तिथि मानते हैं।

३. पवित्रक बनानेके लिये सोने, चाँदी या ताँबेके तार गृहीत हैं और रेशम तथा कपासके सूतोंसे भी इसका निर्माण होता है। सोमशम्भुके विचारसे सोने, चाँदी तथा ताँबेके तारोंसे पवित्रक बनानेका विधान क्रमशः सत्ययुग, त्रेतायुग तथा द्वापरयुगके लिये रहा है। कलियुगमें रूईके सूतोंसे भी काम लिया जा सकता है। शक्ति हो तो रेशमी सूतोंके पवित्रक अर्पित करने चाहिये। विष्णुरहस्यमें दर्भसूत्र, पद्मसूत्र, क्षौमसूत्र, पटट-सूत्र तथा शुद्ध कपासका सूत्र—इन सबके द्वारा पवित्रक बनानेका विधान है।

(पवित्रारोपणके पूर्व) इष्ट देवतासे इस प्रकार प्रार्थना करे—'प्रभो! क्रियालोपजनित दोषको दूर करनेके लिये आपने जो साधन बताया है, देव! वही मैं कर रहा हूँ। जहाँ जैसा पवित्रक आवश्यक है, वहाँके लिये वैसा ही पवित्रक अर्पित होगा। नाथ! आपकी कृपासे इस कार्यमें कोई विघ्न-बाधा न आवे। अविनाशी परमेश्वर! आपकी जय हो'॥ ५—७॥

इस प्रकार प्रार्थना करके मनुष्य पहले इष्टदेवके मण्डलके लिये गायत्री-मन्त्रसे पवित्रक बाँधे। इष्टदेव नारायणके लिये गायत्री मन्त्र इस प्रकार है—'**ॐ नमो नारायणाय विद्महे, वासुदेवाय धीमहि, तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्।**'* इष्टदेवताके नामके अनुरूप ही यह गायत्री है। देव-प्रतिमाओंपर अर्पित करनेके लिये अनेक प्रकारका पवित्रक होता है। एक तो विग्रहकी नाभितक पहुँचता है, दूसरा जाँघोंतक और तीसरा घुटनोंतक पहुँचता है। (ये क्रमशः कनिष्ठ, मध्यम तथा उत्तम श्रेणीमें परिगणित हैं।) एक चौथा प्रकार भी है, जो पैरोंतक लटकता है। यह पैरोंतक लटकनेवाला पवित्रक 'वनमाला' कहा जाता है। वह एक हजार आठ तन्तुओंसे तैयार किया जाता है। (इसका माहात्म्य सबसे अधिक है।) साधारण माला अपनी शक्तिके अनुसार बनायी जाती है। अथवा वह सोलह अङ्गुलसे दुगुनी बड़ी होनी चाहिये। कर्णिका, केसर और दल आदिसे युक्त जो यन्त्र या चक्र आदि मण्डल है, उस मण्डलको जो नीचेसे ऊपरतक ढक ले, ऐसा पवित्रक उसके ऊपर चढ़ाना चाहिये। एकचक्र और एकाब्ज आदि मण्डल (चक्र)-में, उस मण्डलका मान जितने अङ्गुलका हो, उतने अङ्गुल मानवाला पवित्रक अर्पित करना चाहिये। वेदीपर अपने सत्ताईस अङ्गुलके मापका पवित्रक अर्पित करे॥ ८—१२॥

आचार्योंके लिये, पिता-माता आदिके लिये तथा पुस्तकपर चढ़ानेके लिये (या स्वयं धारण करनेके लिये) जो पवित्रक बनावे, वह नाभितक ही लंबा होना चाहिये। उसमें बारह गाँठें लगी

कपासका सूत ब्राह्मणीका काता हुआ हो, ऐसा अग्निपुराणका विचार है। उसके अभावमें किसी भी सूतको उसका संस्कार करके उपयोगमें लाया जा सकता है। सोमशम्भुके मतमें ब्राह्मणकन्याओंद्वारा काता हुआ सूत ग्राह्य है। 'विष्णुरहस्य'के अनुसार ब्राह्मणकी कन्या, पतिव्रता ब्राह्मणी तथा सुशीला ब्राह्मणजातीया विधवा भी पवित्रकके लिये सूत तैयार कर सकती है।

सूतमें केश न लगा हो, वह टूटा या जला न हो, मदिरा तथा रक्त आदिके स्पर्शसे दूषित न हुआ हो, मैला या नीलका रँगा न हो—इस तरहके सूत्र वर्जित हैं। उपर्युक्त रूपसे शुद्ध सूत लेकर, उसे एक बार तिगुना करके पुनः तिगुना करे और उन नौ तन्तुओंके सूतसे पवित्रक बनाये। पवित्रककी चार श्रेणियाँ हैं—कनिष्ठ, मध्यम, उत्तम और वनमाला। 'कनिष्ठ' पवित्रकका निर्माण सत्ताईस तन्तुओंसे होता है। वह शुभ होता है तथा उसके अर्पणसे सुख, आयु, धन और पुत्रकी प्राप्ति बतायी गयी है। चौवन तन्तुओंसे बनाये गये पवित्रकको 'मध्यम'की संज्ञा दी गयी है। यह और भी उत्तम है। इसके अर्पणसे पुण्य दिव्य भोग तथा दिव्य धाममें निवासका सुख प्राप्त होना बताया गया है। 'उत्तम' संज्ञक पवित्रक एक सौ आठ तन्तुओंसे बनता है। ऐसा पवित्रक जो भगवान् विष्णुको अर्पित करता है, वह विष्णुधाममें जाता है। एक हजार आठ तन्तुओंसे निर्मित पवित्रकको 'वनमाला' कहते हैं। वह भगवद्भक्ति प्रदान करनेवाली मानी गयी है। 'कनिष्ठ पवित्रक'की लंबाई नाभितककी होती है, 'मध्यम पवित्रक' जाँघतक लटकता है और 'उत्तम' घुटनोंतकका लंबा होता है। कालिकापुराण अध्याय ५८ में भी यही बात कही गयी है। यथा—

कनिष्ठं नाभिमात्रं स्यादूरुमात्रं तु मध्यमम्। पवित्रं चोत्तमं प्रोक्तं जानुमात्रं प्रमाणतः॥

'वनमाला' भगवत्प्रतिमाके बराबर बनायी जाती है। वह पैरोंतक लंबी होती है। उसके अर्पणसे उपासकके जन्म-मृत्युमय संसार-बन्धनका उच्छेद हो जाता है।

विष्णुरहस्यमें तन्तु-देवताओंका भी वर्णन है तथा पवित्रकके आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक स्वरूपका भी विस्तृत विवेचन उपलब्ध होता है।

* श्रीनारायणकी प्राप्तिके लिये हम ज्ञानार्जन करें। वासुदेवके लिये ध्यान लगावें। वे भगवान् विष्णु हमें अपने भजन-ध्यानकी ओर प्रेरित करें।

हों तथा उस पवित्रकपर गन्ध (चन्दन, रोली या केसर) लगाया गया हो। (वह उसीमें रँगा गया हो[१]।) ब्रह्मन्! वनमालामें दो-दो अङ्गुलकी दूरीपर[२] क्रमशः एक सौ आठ गाँठें रहनी चाहिये।[३] अथवा कनिष्ठ, मध्यम तथा उत्तम पवित्रकमें क्रमशः बारह, चौबीस तथा छत्तीस गाँठें रखनी चाहिये। मन्द, मध्यम और उत्तम मालार्थी पुरुषोंको अनामिका, मध्यमा और अङ्गुष्ठसे ही पवित्रक-माला ग्रहण करनी चाहिये। अथवा कनिष्ठ आदि नामवाले पवित्रकमें समानरूपसे बारह-बारह ही गाँठें रहनी चाहिये। (केवल तन्तुओंकी संख्यामें और लंबाईमें भेद होनेसे उनकी भिन्न संज्ञाएँ मानी जाती हैं।) सूर्य, कलश तथा अग्नि आदिके लिये भी यथासम्भव विष्णु-भगवान्‌के तुल्य ही पवित्रक अर्पित करना उत्तम माना गया है। पीठके लिये पीठकी लंबाईके अनुसार तथा कुण्डके लिये भी मेखलापर्यन्त लंबा पवित्रक होना चाहिये। विष्णु-पार्षदोंके लिये यथाशक्ति सूत्र-ग्रन्थि देनी चाहिये। अथवा बिना ग्रन्थिके ही सत्रह सूत्र चढ़ावे और भद्र नामक पार्षदको त्रिसूत्र (तिरसुत) अर्पित करे॥ १३—१७॥

पवित्रकको रोचना, अगुरु-कर्पूर-मिश्रित हल्दी एवं कुङ्कुमके रंगसे रँग देना चाहिये। भक्त पुरुष एकादशीको स्नान, संध्या आदि करके पूजागृहमें जाकर भगवान् श्रीहरिका यजन करे। उनके समस्त परिवारको बलि देकर उसकी अर्चना करे। द्वारके अन्तमें '**क्षं क्षेत्रपालाय नमः।**'—बोलकर क्षेत्रपालकी पूजा करे। द्वारके ऊपर '**श्रियै नमः।**' कहकर श्रीदेवीकी पूजा करे। द्वारके दक्षिण देशमें '**धात्रे नमः।**', '**गङ्गायै नमः।**'—इन मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए 'धाता' तथा 'गङ्गा'जीकी अर्चना करे और वाम देशमें '**विधात्रे नमः।**', '**यमुनायै नमः।**'—बोलकर विधाता एवं यमुनाजीकी पूजा करे। इसी तरह द्वारके दक्षिण-वाम देशमें क्रमशः '**शङ्खनिधये नमः।**' '**पद्मनिधये नमः।**' बोलकर शङ्खनिधि एवं पद्मनिधिकी पूजा करे। (फिर मण्डपके भीतर दाहिने पैरके पार्ष्णिभागको तीन बार पटककर विघ्नोंका अपसारण करे।)[४] तदनन्तर '**सारङ्गाय नमः**' बोलकर विघ्नकारी भूतोंको दूर भगावे। (इसके बाद '**ॐ हां वास्त्वधिपतये ब्रह्मणे नमः।**' इस मन्त्रका उच्चारण करके ब्रह्माके स्थानमें पुष्प चढ़ावे।) फिर आसनपर बैठकर भूतशुद्धि[५] करे॥ १८—२१॥

---

१. सोमशम्भुका कथन है कि पवित्रक लालचन्दन या केसर आदि किसी एक रंगसे रँगा रहे। यथा—

रक्तचन्दनकाश्मीरकस्तूरीचन्द्ररोचनाः। हरिद्रा गैरिकं चैषां रञ्जेदेकतमेन तत्॥ (३८२-३८३)

२. सोमशम्भुका भी यही मत है—

द्व्यङ्गुला द्व्यङ्गुलास्तत्र..............ग्रन्थयः॥ ३९०-९१॥

३. विष्णुरहस्यमें भी यही कहा गया है—

शतमष्टोत्तरं कार्यं ग्रन्थीनां तु विधानतः । मुनीन्द्र वनमालायाम्······················॥

४. दक्षपार्ष्णेस्त्रिभिर्घातैर्भूमिस्थांस्त्रिविधानिति। विघ्नानुत्सारयेन्मन्त्री यागमन्दिरमध्यगः॥ (सोमशम्भुरचित कर्मकाण्ड-क्रमावली ११८)

५. अग्निपुराणमें भूतशुद्धिके लिये केवल उद्धात-मन्त्र दिये गये हैं। सामान्य पाठकको भूतशुद्धिका सम्यक् परिचय करानेके लिये यहाँ 'मन्त्र-महार्णव' में दिया हुआ प्रकार प्रस्तुत किया जाता है।

भूतशुद्धि

पहले— ॐ सूर्यः सोमो यमः कालः संध्या भूतानि पञ्च च। एते शुभाशुभस्येह कर्मणो मम साक्षिणः॥

भो देव प्राकृतं चित्तं पापाक्रान्तमभून्मम । तन्निःसारय चित्तान्मे पापं तेऽस्तु नमो नमः॥

—ये दोनों मन्त्र पढ़कर प्रार्थना करे। तदनन्तर अपने दक्षिण भागमें—'श्रीगुरुभ्यो नमः।' बोलकर श्रीगुरुजनोंको तथा वामभागमें 'ॐ गणेशाय नमः।'—बोलकर श्रीगणेशजीको प्रणाम करे। तत्पश्चात् कुम्भक प्राणायाम करते हुए मूलाधार चक्रसे कमलनाल-सी प्रतीत होनेवाली परम-देवता कुण्डलिनीको उठाकर यह भावना करे कि यह कुण्डलिनी वहाँसे ऊपरकी ओर उठती हुई ब्रह्मरन्ध्रतक जा पहुँची है। प्रदीप-कलिकाके आकारवाले हृदयस्थ जीवको साथ ले, सुषुम्नानाडीके पथसे ब्रह्मरन्ध्रमें जाकर स्थित हो गयी है।

उसकी विधि यों है—

ॐ हूं हः फट् हूं गन्धतन्मात्रं संहरामि नमः।
ॐ हूं हः फट् हूं रसतन्मात्रं संहरामि नमः।
ॐ हूं हः फट् हूं रूपतन्मात्रं संहरामि नमः।
ॐ हूं हः फट् हूं स्पर्शतन्मात्रं संहरामि नमः।
ॐ हूं हः फट् हूं शब्दतन्मात्रं संहरामि नमः।

—इस प्रकार पाँच उद्घात-वाक्योंका उच्चारण करके गन्धतन्मात्रस्वरूप भूमिमण्डलको, वज्रचिह्नित

उस अवस्थामें 'हं सः सोऽहम्।' इस मन्त्रसे जीवको परब्रह्म परमात्मासे संयुक्त कर दे। तदनन्तर अपने शरीरके पैरोंसे लेकर घुटनोंतकके भागमें चौकोर आकृतिवाले वज्रलाञ्छित भूमण्डलका चिन्तन करे, उसकी कान्ति सुवर्णके समान है तथा वह 'ॐ लम्' इस भू-बीजसे युक्त है। फिर घुटनोंसे लेकर नाभितकके भागमें अर्धचन्द्राकार, जलके स्थानभूत सोममण्डलकी भावना करे। वह दो कमलोंसे अङ्कित, श्वेत वर्णवाला तथा 'ॐ वम्' इस वरुण-बीजसे विभूषित है। इसके बाद नाभिसे लेकर हृदयतकके भागमें त्रिकोणाकार, स्वस्तिक-चिह्नसे अङ्कित, रक्तवर्ण अग्निमण्डलका चिन्तन करे, जो 'ॐ रम्'—इस अग्निबीजसे युक्त है।

तत्पश्चात् हृदयसे लेकर भ्रूमध्यतकके भागमें गोलाकार, षड्बिन्दु-विलसित, धूम्रवर्ण वायुमण्डलकी भावना करे, जो 'ॐ यम्' इस वायुबीजसे युक्त है। तदनन्तर भ्रूमध्यसे लेकर ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त भागमें गोलाकार, स्वच्छ, मनोहर आकाशमण्डलका चिन्तन करे, जो 'ॐ हम्'—इस आकाशबीजसे युक्त है। इस प्रकार भूतगणकी भावना करके पूर्वोक्त भूमण्डलमें पादेन्द्रिय, गमन, घ्राण, गन्ध, ब्रह्मा, निवृत्तिकला, समान वायु तथा गन्तव्य देश—इन आठ पदार्थोंका चिन्तन करे। (सोम या) जल-मण्डलमें हस्तेन्द्रिय, ग्रहण, ग्राह्य, रसना, रस, विष्णु, प्रतिष्ठाकला तथा उदानवायुका ध्यान करे। तेजोमण्डलमें पायु-इन्द्रिय, विसर्ग, विसर्जनीय, नेत्र, रूप, शिव, विद्याकला तथा व्यानवायु—ध्येय हैं। वायुमण्डलमें उपस्थ, आनन्द, स्त्री, स्पर्शन, स्पर्श, ईशान, शान्तिकला तथा अपानवायु—ये आठ पदार्थ चिन्तनीय हैं। इसी तरह आकाशमण्डलमें वाग्, वक्तव्य, वदन, श्रोत्र, शब्द, सदाशिव, शान्त्यतीता कला तथा प्राणवायु—इन आठ वस्तुओंका चिन्तन करना चाहिये।

इस तरह भूतोंका चिन्तन करके पूर्व-पूर्व कार्यका उत्तरोत्तर कारणमें ब्रह्मपर्यन्त विलीन करे। उसका क्रम इस प्रकार है—'ॐ लं फट्।' बोलकर 'पाँच गुणवाली पृथिवीका जलमें उपसंहार करता हूँ।'—इस भावनाके साथ भूमिका जलमें लय करे। फिर 'ॐ वं हुं फट्।'—यह बोलकर 'चार गुणवाले जल-तत्त्वका अग्निमें उपसंहार करता हूँ'—इस भावनाके साथ जलका अग्निमें लय करे। तदनन्तर 'ॐ रं हुं फट्।' बोलकर 'तीन गुणोंसे युक्त तेजका वायुतत्त्वमें उपसंहार करता हूँ'—इस भावनाके साथ अग्निका वायुमें लय करे। फिर 'ॐ यं हुं फट्।' यह बोलकर 'दो गुणवाले वायुतत्त्वका आकाशतत्त्वमें उपसंहार करता हूँ'—इस भावनाके साथ वायुका आकाशमें लय करे। इसके बाद 'ॐ हं हुं फट्।' ऐसा बोलकर 'एक गुणवाले आकाशका अहंकारमें उपसंहार करता हूँ'—इस संकल्पके साथ आकाशका अहंकारमें लय करे। इसी क्रमसे अहंकारका महत्तत्त्वमें, महत्तत्त्वका प्रकृतिमें और प्रकृति या मायाका आत्मामें लय करे।

इस प्रकार शुद्ध सच्चिन्मय होकर पापपुरुषका चिन्तन करे—'वासनामय पाप बायीं कुक्षिमें स्थित है। उसका रंग काला है। वह अँगूठेके बराबर है। ब्रह्महत्या उसका सिर, सुवर्णकी चोरी बाँह, मदिरापान हृदय, गुरुतल्पगमन कटिप्रदेश तथा इन सबके साथ संसर्ग ही उसके दोनों पैर हैं। उपपातक-राशि उसका मस्तक है। उसके हाथमें ढाल और तलवार है। उस दुष्ट पापपुरुषका मुँह नीचेकी ओर है। वह अत्यन्त दुःसह है।' ऐसे पापपुरुषका चिन्तन करके पूरक प्राणायाममें 'ॐ यं'—इस वायुबीजका बत्तीस या सोलह बार जप करके उत्पादित वायुद्वारा उसका शोषण करे। तत्पश्चात् कुम्भक प्राणायाममें चौंसठ बार जपे गये 'ॐ रम्'—इस अग्निबीजद्वारा उत्थापित आगकी ज्वालामें अपने शरीरसहित उस पापपुरुषको जलाकर भस्म कर दे। तदनन्तर रेचक प्राणायाममें 'ॐ यम्'—इस वायुबीजका सोलह या बत्तीस बार जप करके उत्थापित वायुद्वारा दक्षिणनाडीके मार्गसे उस भस्मको बाहर निकाले। इसके बाद देहगत भस्मको 'ॐ वम्'—इस प्रकार उच्चारित अमृतबीजके द्वारा आप्लावित करके 'ॐ लम्'—इस भूबीजके द्वारा उस भस्मको घनीभूत पिण्डके आकारमें परिणत कर दे और भावनामें ही देखे कि वह सोनेके अण्डेके समान जान पड़ता है। तदनन्तर 'ॐ हम्'—इस आकाशबीजका जप करते हुए, उस पिण्डके दर्पणकी भाँति स्वच्छ होनेकी भावना करे और उसके द्वारा मस्तकसे लेकर चरण-नखपर्यन्त अवयवोंकी मनके द्वारा रचना करे।

इसके बाद पुनः सृष्टिमार्गका आश्रय ले, ब्रह्मसे प्रकृति, प्रकृतिसे महत्तत्त्व, महत्तत्त्वसे अहंकार, अहंकारसे आकाश, आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल, जलसे पृथ्वी, पृथ्वीसे ओषधि, ओषधिसे अन्न, अन्नसे वीर्य और वीर्यसे पुरुष-शरीरकी उत्पत्ति करके 'ॐ हं सः सोऽहम्।'—इस मन्त्रद्वारा ब्रह्मके साथ संयुक्त हो, एकीभूत हुए जीवको अपने हृदय-कमलमें स्थापित करे। तदनन्तर कुण्डलिनीको पुनः मूलाधारगत हुई देखे। फिर इस प्रकार प्राणशक्तिका ध्यान करे—

रक्ताम्भोधिस्थपोतोल्लसदरुणसरोजाधिरूढा कराब्जैः पाशं कोदण्डमिक्षूद्भवगुणमथ चाप्यङ्कुशं पञ्च बाणान्।
बिभ्राणा सृक्कपालं त्रिनयनलसिता पीनवक्षोरुहाढ्या देवी बालार्कवर्णा भवतु सुखकरी प्राणशक्तिः परा नः॥

'जो लालसागरमें स्थित एक पोतपर प्रफुल्ल अरुण कमलके आसनपर विराजमान हैं, अपने कर-कमलोंमें पाश, इक्षुमयी प्रत्यञ्चासे युक्त कोदण्ड, अङ्कुश तथा पाँच बाण लिये रहती हैं, जिन्होंने खूनसे भरा खप्पर भी ले रखा है, तीन नेत्र जिनके मुखमण्डलकी शोभा बढ़ाते हैं, जो उभरे हुए पीन उरोजोंसे सुशोभित हैं तथा बाल-रविके समान जिनकी अरुण-पीत कान्ति है, वे प्राणशक्तिस्वरूपा परा देवी हमारे लिये सुखकी सृष्टि करनेवाली हों।'

सुवर्णमय चतुरस्र पीठको तथा इन्द्रादि देवताओंको अपने युगल चरणोंमें स्थित देखते हुए उनका चिन्तन करे। इस प्रकार शुद्ध हुए गन्धतन्मात्रको रसतन्मात्रमें लीन करके उपासक इसी क्रमसे रसतन्मात्रका रूपतन्मात्रमें संहार करे। '**ॐ हूं हः फट् हूं रसतन्मात्रं संहरामि नमः।**', '**ॐ हूं हः फट् हूं रूपतन्मात्रं संहरामि नमः।**', '**ॐ हूं हः फट् हूं स्पर्शतन्मात्रं संहरामि नमः।**', '**ॐ हूं हः फट् हूं शब्दतन्मात्रं संहरामि नमः।**'—इन चार उद्घात-वाक्योंका उच्चारण करके जानुसे लेकर नाभितकके भागको श्वेत कमलसे चिह्नित, शुक्लवर्ण एवं अर्धचन्द्राकार देखे। ध्यानद्वारा यह चिन्तन करे कि 'इस जलीय भागके देवता वरुण हैं।' उक्त चार उद्घातोंके उच्चारणसे रसतन्मात्राकी शुद्धि होती है। इसके बाद इस रसतन्मात्राका रूपतन्मात्रामें लय कर दे॥ २२—३०॥

'ॐ हूं हः फट् हूं रूपतन्मात्रं संहरामि नमः।'
'ॐ हूं हः फट् हूं स्पर्शतन्मात्रं संहरामि नमः।'
'ॐ हूं हः फट् हूं शब्दतन्मात्रं संहरामि नमः।'

—इन तीन उद्घातवाक्योंका उच्चारण करके नाभिसे लेकर कण्ठतकके भागमें त्रिकोणाकार अग्निमण्डलका चिन्तन करे। 'उसका रंग लाल है; वह स्वस्तिकाकार चिह्नसे चिह्नित है। उसके अधिदेवता अग्नि हैं।' इस प्रकार ध्यान करके शुद्ध किये हुए रूपतन्मात्रको स्पर्शतन्मात्रमें लीन करे। तत्पश्चात् '**ॐ हूं हः फट् हूं स्पर्शतन्मात्रं संहरामि नमः।**', '**ॐ हूं हः फट् हूं शब्दतन्मात्रं संहरामि नमः।**'—इन दो उद्घातवाक्योंके उच्चारणपूर्वक कण्ठसे लेकर नासिकाके बीचके भागमें गोलाकार वायुमण्डलका चिन्तन करे—'उसका रंग धूमके समान है। वह निष्कलङ्क चन्द्रमासे चिह्नित है।' इस तरह शुद्ध हुए स्पर्श-तन्मात्रका ध्यानद्वारा ही शब्दतन्मात्रमें लय कर दे। इसके बाद '**ॐ हूं हः फट् हूं शब्दतन्मात्रं संहरामि नमः।**'—इस एक उद्घातवाक्यसे शुद्ध स्फटिकके समान आकाशका नासिकासे लेकर शिखातकके भागमें चिन्तन करे। फिर उस शुद्ध हुए आकाशका (अहंकारमें) उपसंहार करे॥ ३१—३७॥

तत्पश्चात् क्रमशः शोषण आदिके द्वारा देहकी शुद्धि करे। ध्यानमें यह देखे कि 'यं' बीजरूप वायुके द्वारा पैरोंसे लेकर शिखातकका सम्पूर्ण शरीर सूख गया है। फिर 'रं' बीज द्वारा अग्निको प्रकट करके देखे कि सारा शरीर अग्निकी ज्वालाओंमें आ गया और जलकर भस्म हो गया। इसके बाद 'वं' बीजका उच्चारण करके भावना करे कि ब्रह्मरन्ध्रसे अमृतका बिन्दु प्रकट हुआ है। उससे जो अमृतकी धारा प्रकट हुई है, उसने शरीरके उस भस्मको आप्लावित कर दिया है। तदनन्तर 'लं' बीजका उच्चारण करते हुए यह चिन्तन करे कि उस भस्मसे दिव्य देहका प्रादुर्भाव हो गया है। इस प्रकार दिव्य देहकी उद्भावना करके करन्यास और अङ्गन्यास करे। इसके बाद मानस-यागका अनुष्ठान करे। हृदय-कमलमें मानसिक पुष्प आदि उपचारोंद्वारा मूल-मन्त्रसे अङ्गोंसहित देवेश्वर भगवान् विष्णुका पूजन करे। वे भगवान् भोग और मोक्ष देनेवाले हैं। भगवान्‌से मानसिक पूजा स्वीकार करनेके लिये इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—'देव! देवेश्वर केशव! आपका स्वागत है। मेरे निकट पधारिये और यथार्थरूपसे भावनाद्वारा प्रस्तुत इस मानसिक पूजाको ग्रहण कीजिये।' योगपीठको धारण करनेवाली आधारशक्ति कूर्म, अनन्त (शेषनाग) तथा पृथ्वीका पीठके मध्यभागमें पूजन करना चाहिये। तदनन्तर अग्निकोण आदि चारों कोणोंमें क्रमशः धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा

ऐश्वर्यका पूजन करे। पूर्व आदि मुख्य दिशाओंमें अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य तथा अनैश्वर्यकी अर्चना करे।* पीठके मध्य भागमें सत्त्वादि गुणोंका, कमलका, माया और अविद्या नामक तत्त्वोंका, कालतत्त्वका, सूर्यादि-मण्डलका तथा पक्षिराज गरुडका पूजन करे। पीठके वायव्यकोणसे ईशान-कोणतक गुरुपंक्तिकी पूजा करे॥ ३८—४५॥

गण, सरस्वती, नारद, नलकूबर, गुरु, गुरुपादुका, परम गुरु और उनकी पादुकाकी पूजा ही गुरुपंक्तिकी पूजा है। पूर्वसिद्ध और परसिद्ध शक्तियोंकी केसरोंमें पूजा करनी चाहिये। पूर्वसिद्ध शक्तियाँ ये हैं—लक्ष्मी, सरस्वती, प्रीति, कीर्ति, शान्ति, कान्ति, पुष्टि तथा तुष्टि। इनकी क्रमशः पूर्व आदि दिशाओंमें पूजा की जानी चाहिये। इसी तरह इन्द्र आदि दस दिक्पालोंका भी उनकी दिशाओंमें पूजन आवश्यक है। इन सबके बीचमें श्रीहरि विराजमान हैं। परसिद्धा शक्तियाँ—धृति, श्री, रति तथा कान्ति आदि हैं। मूल-मन्त्रसे भगवान् अच्युतकी स्थापना की जाती है। पूजाके प्रारम्भमें भगवान्‌से यों प्रार्थना करे—'हे भगवन्! आप मेरे सम्मुख हों। **(ॐ अभिमुखो भव।)** पूर्व दिशामें मेरे समीप स्थित हों।' इस तरह प्रार्थना करके स्थापनाके पश्चात् अर्घ्य-पाद्य आदि निवेदन कर गन्ध आदि उपचारोंद्वारा मूल-मन्त्रसे भगवान् अच्युतकी अर्चना करे। **ॐ भीषय भीषय हृदयाय नमः। ॐ त्रासय त्रासय शिरसे नमः। ॐ मर्दय मर्दय शिखायै नमः। ॐ रक्ष रक्ष नेत्रत्रयाय नमः। ॐ प्रध्वंसय प्रध्वंसय कवचाय नमः। ॐ हूं फट् अस्त्राय नमः।** इस प्रकार अग्निकोण आदि दिशाओंमें क्रमसे मूलबीजद्वारा अङ्गोंका पूजन करे॥ ४६—५१॥

पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशामें

---

* आधारशक्ति कूर्मरूपा शिलापर विराजमान है। गोदुग्धके समान धवल उसका गौर कलेवर है और बीजाङ्कुरमयी आकृति है। उसके पूजनका मन्त्र है—'ॐ हां आधारशक्तये नमः।' भगवान् अनन्त श्रीहरिके आसन हैं। उनकी अङ्ग-कान्ति कुन्द, इन्दु (चन्द्रमा)-के समान धवल है; ऊपर उठे नाल-दण्डवाले कमल-मुकुलके सदृश उनकी आकृति है तथा वे ब्रह्मशिलापर आरूढ़ हैं। पूजनका मन्त्र है —'ॐ हां अनन्तासनाय नमः।' धर्म आदिके पूजनके मन्त्र यों हैं —'ॐ हां धर्माय नमः—आग्नेये।', 'ॐ हां ज्ञानाय नमः—नैर्ऋते।', 'ॐ हां वैराग्याय नमः —वायव्ये।', 'ॐ हां ऐश्वर्याय नमः—ऐशाने।' (सोमशम्भु-रचित कर्मकाण्ड-क्रमावली १६१-१६४ के आधारपर)। इसी तरह 'ॐ हां अधर्माय नमः।' इत्यादि रूपसे मन्त्रोंकी ऊहा करके अज्ञानादिकी भी अर्चना करे। शारदातिलकमें आधारशक्तिका ध्यान एक देवीके रूपमें बताया गया है। वह कूर्मशिलापर आरूढ़ है। उसका मनोहर मुख शरत्कालके चन्द्रमाको लज्जित कर रहा है तथा उसने अपने हाथोंमें दो कमल धारण किये हैं। उक्त आधारशक्तिके मस्तकपर भगवान् कूर्म विराजमान हैं। उनकी कान्ति नीली है। 'ॐ हां कूर्माय नमः।'—इस मन्त्रसे उनका भी पूजन करे। कूर्मके ऊपर ब्रह्मशिला (इष्टदेवकी प्रतिमाके नीचेकी आधारभूता शिला) है, उसपर कुन्द-सदृश गौर अनन्तदेव विराज रहे हैं। उनके हाथमें चक्र है। (नाभिसे नीचे उनकी आकृति सर्पवत् है और नाभिसे ऊपर मनुष्यवत्।) वे मस्तकपर पृथ्वीको धारण करते हैं। इस झाँकीमें पूर्वोक्त मन्त्रद्वारा उनकी पूजा करके उनके सिरपर विराजमान भूदेवीका ध्यान और पूजन करे। 'वे तमालके समान श्यामवर्णा हैं। हाथोंमें नील कमल धारण करती हैं। उनके कटिप्रदेशमें सागरमयी मेखला स्फुरित हो रही है।' ('ॐ हां वसुधायै नमः।', 'ॐ हां सागराय नमः।'—इससे पृथ्वी तथा समुद्रकी पूजा करके) उसके ऊपर रत्नमय द्वीपका, उस द्वीपमें मणिमय मण्डपका तथा वहाँ शोभा पानेवाले वाञ्छापूरक कल्पवृक्षोंका चिन्तन और पूजन करना चाहिये। उन कल्पवृक्षोंके नीचे मणिमयी वेदिकाका ध्यान करे। उक्त वेदीपर योगपीठ स्थापित है। उस पीठके जो पाये हैं, वे ही धर्म आदि रूप हैं। इनमें धर्म लाल, ज्ञान श्याम, वैराग्य हरिद्रातुल्य पीत तथा ऐश्वर्य नील है। धर्मकी आकृति वृषभके समान है। ज्ञान सिंहके, वैराग्य भूतके तथा ऐश्वर्य हाथीके रूपमें विराजमान है। कोणोंमें धर्मादिका और दिशाओंमें अधर्मादिका पूजन करनेके अनन्तर पीठस्थित कमलका ध्यान करे। वह तीन प्रकारका है—पहला आनन्दकन्द, दूसरा संविन्नाल और तीसरा सर्वतत्त्वात्मक है। इस त्रिविध कमलका पूजन करके साधक प्रकृतिमय दलोंका, विकृतिमय केसरोंका तथा पचास अक्षरोंसे युक्त कर्णिकाका पूजन करे। तत्पश्चात् कलाओंसहित सूर्य, चन्द्रमा और अग्निमण्डलका पूजन करे। कमलादिके पूजनका मन्त्र यों समझना चाहिये—'आनन्दकन्दाय संविन्नालाय सर्वतत्त्वात्मकाय कमलाय नमः।', 'प्रकृतिमयदलेभ्यो नमः।', 'विकृतिमयकेसरेभ्यो नमः।', 'द्वादशकलात्मकसूर्यमण्डलाय नमः।', 'षोडशकलात्मकचन्द्रमण्डलाय नमः।', 'दशकलात्मकवह्निमण्डलाय नमः।' (शारदातिलक, चतुर्थ पटल ५६—६६)

मूर्त्यात्मक आवरणकी अर्चना करे। वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—ये चार मूर्तियाँ हैं। अग्निकोण आदि कोणोंमें क्रमशः श्री, रति, धृति और कान्तिकी पूजा करे। ये भी श्रीहरिकी मूर्तियाँ हैं। अग्नि आदि कोणोंमें क्रमशः शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मकी परिचर्या करे। पूर्वादि दिशाओंमें शार्ङ्ग, मुशल, खड्ग तथा वनमालाकी अर्चना करे। उसके बाह्यभागमें पूर्वादि दिशाओंमें क्रमशः इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर तथा ईशानकी पूजा करके नैर्ऋत्य और पश्चिमके बीचमें अनन्तकी तथा पूर्व और ईशानके बीचमें ब्रह्माजीकी अर्चना करे। इनके बाह्यभागमें वज्र आदि अस्त्रमय आवरणोंका पूजन करे। इनके भी बाह्यभागमें दिक्पालोंके वाहनरूप आवरण पूजनीय होते हैं। पूर्वादिके क्रमसे ऐरावत, छाग, भैंसा, वानर, मत्स्य, मृग, शश (खरगोश), वृषभ, कूर्म और हंस—इनकी पूजा करनी चाहिये। इनके भी बाह्यभागमें पृश्निगर्भ और कुमुद आदि द्वारपालोंकी पूजाकी विधि कही गयी है। पूर्वसे लेकर उत्तरतक प्रत्येक द्वारपर दो-दो द्वारपालोंकी पूजा आवश्यक है। तदनन्तर श्रीहरिको नमस्कार करके बाह्यभागमें बलि अर्पण करे। '**ॐ विष्णुपार्षदेभ्यो नमः।**' बोलकर बलिपीठपर उनके लिये बलि समर्पित करे॥ ५२—५७॥

ईशानकोणमें '**ॐ विश्वाय विष्वक्सेनात्मने नमः।**'—इस मन्त्रसे विष्वक्सेनकी अर्चना करे। इसके बाद भगवान्‌के दाहिने हाथमें रक्षासूत्र बाँधे। उस समय भगवान्‌से इस प्रकार कहे—'प्रभो! जो एक वर्षतक निरन्तर की हुई आपकी पूजाके सम्पूर्ण फलकी प्राप्तिमें हेतु है, वह पवित्रारोहण (या पवित्रारोपण) कर्म होनेवाला है; उसके लिये यह कौतुक (मङ्गल-सूत्र) धारण कीजिये।' '**ॐ नमः।**' इसके बाद भगवान्‌के समीप उपवास आदिका नियम ग्रहण करे और इस प्रकार कहे—'मैं उपवासके साथ नियमपूर्वक रहकर इष्टदेवको संतुष्ट करूँगा। देवेश्वर! आजसे लेकर जबतक वैशेषिक (विशेष उत्सव)-का दिन न आ जाय, तबतक काम, क्रोध आदि सारे दोष मेरे पास किसी तरह भी न फटकने पावें।' व्रती यजमान यदि उपवास करनेमें असमर्थ हो तो नक्त-व्रत (रातमें भोजन) किया करे। हवन करके भगवान्‌की स्तुतिके बाद उनका विसर्जन करे। भगवान्‌का नित्य-पूजन लक्ष्मीकी प्राप्ति करानेवाला है। '**ॐ ह्रीं श्रीं श्रीधराय त्रैलोक्यमोहनाय नमः।**'—यह भगवान्‌की पूजाके लिये मन्त्र है॥ ५८—६३॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'सर्वदेवसाधारणपवित्रारोपण-विधि-कथन' नामक तैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३३॥

चौंतीसवाँ अध्याय

पवित्रारोपणके लिये पूजा-होमादिकी विधि

अग्निदेव कहते हैं— मुनीश्वर! निम्नाङ्कित मन्त्रका उच्चारण करते हुए साधक यागमण्डपमें प्रवेश करे और सजावटसे यज्ञके स्थानकी शोभा बढ़ावे (तथा निम्नाङ्कित श्लोक पढ़कर भगवान्‌को नमस्कार करे)—'वेदों तथा ब्राह्मणोंके हितकारी देवता अव्ययात्मा भगवान् श्रीधरको नमस्कार है।' ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद आपके स्वरूप हैं; शब्दमात्र आपके शरीर हैं; आप भगवान् विष्णुको नमस्कार है।* सायंकाल सर्वतोभद्रादि-मण्डलकी रचना करके यजन-पूजन-सम्बन्धी

* नमो ब्रह्मण्यदेवाय श्रीधरायाव्ययात्मने। ऋग्यजुःसामरूपाय शब्ददेहाय विष्णवे॥ १ १/२॥

द्रव्योंका संग्रह करे। हाथ-पैर धो ले। सब सामग्रीको यथास्थान जँचाकर हाथमें अर्घ्य लेकर मनुष्य उसके जलसे अपने मस्तकको सींचे। फिर द्वारदेश आदिमें भी जल छिड़के। तदनन्तर द्वारयाग (द्वारस्थ देवताओंका पूजन) आरम्भ करे। पहले तोरणेश्वरोंकी भलीभाँति पूजा करे। पूर्वादि दिशाओंके क्रमसे अश्वत्थ, उदुम्बर, वट तथा पाकर—ये वृक्ष पूजनीय हैं। इनके सिवा पूर्व दिशामें ऋग्वेद, इन्द्र तथा शोभनकी, दक्षिणमें यजुर्वेद, यम तथा सुभद्रकी, पश्चिममें सामवेद, वरुण तथा सुधन्वाकी और उत्तरमें अथर्ववेद, सोम एवं सुहोत्रकी अर्चना करे॥ १—५॥

तोरण (फाटक)-के भीतर पताकाएँ फहरायी जायँ, दो-दो कलश स्थापित हों और कुमुद आदि दिग्गजोंका पूजन हो। प्रत्येक दरवाजेपर दो-दो द्वारपालोंकी उनके नाम-मन्त्रसे ही पूजा की जाय। पूर्व दिशामें पूर्ण और पुष्करका, दक्षिण दिशामें आनन्द और नन्दनका, पश्चिममें वीरसेन और सुषेणका तथा उत्तर दिशामें सम्भव और प्रभव नामक द्वारपालोंका पूजन करना चाहिये। अस्त्र-मन्त्र (फट्)-के उच्चारणपूर्वक फूल बिखेरकर विघ्नोंका अपसारण करनेके पश्चात् मण्डपके भीतर प्रवेश करे। भूतशुद्धि, न्यास और मुद्रा करके शिखा (वषट्)-के अन्तमें 'फट्' जोड़कर उसका जप करते हुए सम्पूर्ण दिशाओंमें सरसों छींटे। इसके बाद वासुदेव-मन्त्रसे गोमूत्र, संकर्षण-मन्त्रसे गोमय, प्रद्युम्न-मन्त्रसे गोदुग्ध, अनिरुद्ध-मन्त्रसे दही और नारायण-मन्त्रसे घृत लेकर सबको घृतपात्रमें एकत्र करे; अन्य वस्तुओंका भाग घीसे अधिक होना चाहिये। इन सबके मिलनेसे जो वस्तु तैयार होती है, उसे 'पञ्चगव्य' कहा गया है। पञ्चगव्य एक, दो या तीन बार अलग-अलग बनावे। इनमेंसे एक तो मण्डप (तथा वहाँकी वस्तुओं)-का प्रोक्षण करनेके लिये है, दूसरा प्राशनके लिये और तीसरा स्नानके उपयोगमें आता है। दस कलशोंकी स्थापना करके उनमें इन्द्रादि लोकपालोंकी पूजा करे। पूजन करके उन्हें श्रीहरिकी आज्ञा सुनावे—'लोकपालगण! आपको इस यज्ञकी रक्षाके लिये श्रीहरिकी आज्ञासे यहाँ सदा स्थित रहना चाहिये'॥ ६—१२॥

याग-द्रव्य आदिकी रक्षाकी व्यवस्था करके विकिर[1] (विघ्न-निवारणके लिये सब ओर छींटे जानेवाले सर्षप आदि) द्रव्योंको बिखेरे। सात[2] बार अस्त्र-सम्बन्धी मूल-मन्त्र (अस्त्राय फट्)-का जप करते हुए ही उक्त वस्तुओंको सब ओर बिखेरना चाहिये। फिर उसी तरह अस्त्र-मन्त्रका जप करके कुश[3]-कूर्च ले आवे। उन्हें ईशान कोणमें रखकर उन्हींके ऊपर कलश और वर्धनीको स्थापित करे। कलशमें श्रीहरिका साङ्ग पूजन करके वर्धनीमें अस्त्रकी अर्चना करे। वर्धनीकी छिन्न धारासे यागमण्डपको प्रदक्षिणाक्रमसे सींचते

१. शारदातिलक (पटल ४ श्लोक १४-१५)-में लाजा, चन्दन, सरसों, भस्म, दूर्वाङ्कुर तथा अक्षतको 'विकिर' कहा है; ये समस्त विघ्नसमूहका नाश करनेवाले हैं—

लाजाश्चन्दनसिद्धार्थभस्मदूर्वाङ्कुराक्षताः। विकिरा इति संदिष्टाः सर्वविघ्नौघनाशनाः॥

२. शारदातिलकमें भी सात बार अस्त्र-मन्त्र-जपपूर्वक विकिर-विकिरणका विधान है। यथा—

विकिरान् विकिरेत्तत्र सप्तजप्ताञ्छराणुना॥

३. पचीस कुशोंसे बँधा हुआ कूर्च 'ज्ञानखड्ग' कहा गया है। दो दर्भोंका सामान्य कूर्च तथा पाँच-पाँच कुशोंका विशेष कूर्च होता है। सत्रह कुशोंका 'ब्रह्मकूर्च' होता है। कूर्चोंका दण्ड एक बित्तेका, उनकी ब्रह्मग्रन्थि एक अङ्गुलकी और उसके अग्रभागकी लंबाई तीन अङ्गुलकी होनी चाहिये। (ईशानशिव गुरुदेवपद्धति, सप्तम पटल १४-१५)

हुए कलशको उसके उपयुक्त स्थानपर ले जाय और स्थिर आसनपर स्थापित करके उसकी पूजा करे। कलशके भीतर पञ्चरत्न डाले। उसके ऊपर वस्त्र लपेटे। फिर उसपर गन्ध आदि उपचारोंद्वारा श्रीहरिका पूजन करे। वर्धनीमें भी सोनेका टुकड़ा डाले। उसके बाद उसपर अस्त्रकी पूजा करके, उसके वाम-भागमें पास ही, वास्तु-लक्ष्मी तथा 'भूविनायक'की अर्चना करे। संक्रान्ति आदिके समय इसी प्रकार श्रीविष्णुके स्नान-अभिषेककी व्यवस्था करे। मण्डपके कोणों और दिशाओंमें कुल मिलाकर आठ और मध्यमें एक—इस प्रकार नौ पूर्ण कलशोंको, जिनमें छिद्र न हों, स्थापित करके उनमें पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय तथा पञ्चगव्य डाले। पूर्व आदिके कलशोंमें उक्त वस्तुएँ डालनी चाहिये। अग्निकोण आदिके कलशोंमें उक्त वस्तुओंके अतिरिक्त पञ्चामृतयुक्त जल अधिक डालनेका विधान है। पाद्यकी अङ्गभूता चार वस्तुएँ हैं—दही, दूध, मधु और गरम जल॥ १३—१९॥

किन्हींके मतमें कमल, श्यामाक (तिन्नीका चावल), दूर्वादल और विष्णुक्रान्ता ओषधि—इन चार वस्तुओंसे युक्त जल 'पाद्य' कहलाता है[1]। इसी तरह अर्घ्यके भी आठ अङ्ग कहे गये हैं। जौ, गन्ध, फल, अक्षत, कुश, सरसों, फूल और तिल—इन आठ द्रव्योंका अर्घ्यके लिये संग्रह करना चाहिये[2]। जाती (जायफल), लवङ्ग और कङ्कोलयुक्त जलका आचमन[3] देना चाहिये। इष्टदेवको मूलमन्त्रसे पञ्चामृतद्वारा स्नान करावे। बीचवाले कलशसे भगवान्‌के मस्तकपर शुद्ध जलका छींटा दे। कलशसे निकले हुए जल एवं कूर्चाग्रका स्पर्श करे। फिर शुद्ध जलसे पाद्य, अर्घ्य और आचमनीय निवेदन करे। तत्पश्चात् वस्त्रसे भगवान्‌के श्रीविग्रहको पोंछकर वस्त्र धारण करावे और वस्त्रके सहित उन्हें मण्डलमें ले जाय। वहाँ भलीभाँति पूजा करके प्राणायामपूर्वक कुण्ड आदिमें होम करे। (हवनकी विधि—) दोनों हाथ धोकर कुण्डमें या वेदीपर तीन पूर्वाग्र रेखाएँ खींचे। ये रेखाएँ दक्षिणकी ओरसे आरम्भ करके क्रमशः उत्तरकी ओर खींची जायँ। फिर इन्हींके ऊपर तीन उत्तराग्र रेखाएँ खींचे। (ये भी दाहिनेसे आरम्भ करके क्रमशः बायें खींची जायँ)॥ २०—२५॥

तत्पश्चात् अर्घ्यके जलसे इन रेखाओंका प्रोक्षण करे और योनिमुद्रा[4] दिखावे। अग्निका आत्मरूपसे चिन्तन करके मनुष्य योनियुक्त कुण्डमें उसकी स्थापना करे। इसके बाद दर्भ, स्रुक्, स्रुवा आदिके साथ पात्रासादन करे। बाहुमात्रकी परिधियाँ, इध्मव्रश्चन, प्रणीतापात्र, प्रोक्षणीपात्र, आज्यस्थाली, घी, दो-दो सेर चावल तथा अधोमुख स्रुक् और स्रुवाकी जोड़ी। प्रणीता एवं प्रोक्षणीमें पूर्वाग्र कुश रखे। प्रणीताको जलसे भरकर भगवान्‌का ध्यान-पूजन करके उसको अग्निके पश्चिम अपने आगे और आसादित द्रव्योंके मध्यमें रखे। प्रोक्षणीको जलसे भरकर पूजनके पश्चात् दाहिने रखे। आगपर चरुको चढ़ाकर पकावे और अग्निसे दक्षिण दिशामें ब्रह्माजीकी स्थापना करे। कुण्ड या वेदीके चारों ओर पूर्वादि दिशामें कुश (बर्हिष्) बिछाकर परिधियोंको स्थापित करे। तदनन्तर

---

१. शारदातिलकमें भी यही बात कही गयी है—

पाद्यं पादाम्बुजे दद्याद् देवस्य हृदयाणुना। एतच्छ्यामाकदूर्वाब्जविष्णुक्रान्ताभिरीरितम्॥ (पटल ४। ९३)

२. गन्धपुष्पाक्षतयवकुशाग्रतिलसर्षपैः । सदूर्वैः सर्वदेवानामेतदर्घ्यमुदीरितम्॥ (शा०ति० ४। ९५-९६)

३. सुधामन्त्रेण वदने दद्यादाचमनीयकम्। जातीलवङ्गकङ्कोलैस्तदुक्तं तन्त्रवेदिभिः॥ (शा०ति० ४। ९४)

४. मन्त्र-महार्णवमें योनिमुद्राका लक्षण इस प्रकार कहा गया है—

मिथः कनिष्ठिके बद्ध्वा तर्जनीभ्यामनामिके। अनामिकोर्ध्वसंश्लिष्टे दीर्घमध्यमयोरपि॥ (पू० ख० १ तरं० २)

गर्भाधानादि संस्कारके द्वारा अग्निका वैष्णवीकरण करे। गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म एवं नामकरणादि-समावर्तनान्त संस्कार करके प्रत्येक कर्मके लिये आठ-आठ आहुतियाँ दे तथा स्रुवायुक्त स्रुक्के द्वारा पूर्णाहुति प्रदान करे॥ २६—३३॥

कुण्डके भीतर ऋतुस्नाता लक्ष्मीका ध्यान करके हवन करे। कुण्डके भीतर जो लक्ष्मी हैं, उन्हें 'कुण्डलक्ष्मी' कहा गया है। वे ही त्रिगुणात्मिका प्रकृति हैं। 'वे सम्पूर्ण भूतोंकी तथा विद्या एवं मन्त्र-समुदायकी योनि हैं। परमात्मस्वरूप अग्निदेव मोक्षके कारण एवं मुक्तिदाता हैं। पूर्व दिशाकी ओर कुण्डलक्ष्मीका सिर है, ईशान और अग्निकोणकी ओर उसकी भुजाएँ हैं, वायव्य तथा नैर्ऋत्यकोणमें जंघाएँ हैं, उदरको 'कुण्ड' कहा है तथा योनिके स्थानमें कुण्ड-योनिका विधान है। सत्त्व, रज और तम—ये तीन गुण ही तीन मेखलाएँ हैं।' इस प्रकार ध्यान करके प्रणवमन्त्रसे मुष्टिमुद्राद्वारा पंद्रह समिधाओंका होम करे। फिर वायुसे लेकर अग्निकोणतक 'आघार' नामक दो आहुतियाँ दे। इसी तरह आग्नेयसे ईशानान्ततक 'आज्य-भाग' नामक आहुतियोंका हवन करे। आज्यस्थालीमेंसे उत्तर, दक्षिण और मध्यभागसे घृत लेकर द्वादशान्तसे, अर्थात् मूलको बारह बार जप कर अग्निमें भी उन्हीं दिशाओंमें उसकी आहुति दे और वहीं उसका त्याग करे*। इसके बाद **'भूः स्वाहा'** इत्यादि रूपसे व्याहृति-होम करे। कमलके मध्यभागमें संस्कारसम्पन्न अग्निदेवका 'विष्णु' रूपमें ध्यान करे। 'वे सात जिह्वाओंसे युक्त हैं, करोड़ों सूर्योंके समान उनकी प्रभा है, चन्द्रोपम मुख है और सूर्य-सदृश देदीप्यमान नेत्र हैं।' इस तरह ध्यान करके उनके लिये एक सौ आठ आहुतियाँ दे। अथवा मूल-मन्त्रसे उसकी आधी एवं आठ आहुतियाँ दे। अङ्गोंके लिये भी दस-दस आहुतियाँ दे॥ ३४—४१॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'पवित्रारोपण-सम्बन्धी पूजा-होम-विधिका वर्णन' विषयक चौंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३४॥

पैंतीसवाँ अध्याय

पवित्राधिवासन-विधि

अग्निदेव कहते हैं— मुनीश्वर! सम्पाताहुतिसे पवित्राओंका सेचन करके उनका अधिवासन करना चाहिये। नृसिंह-मन्त्रका जप करके उन्हें अभिमन्त्रित करे और अस्त्रमन्त्र (अस्त्राय फट्।)-से उन्हें सुरक्षित रखे। पवित्राओंमें वस्त्र लपेटे हुए ही उन्हें पात्रमें रखकर अभिमन्त्रित करना चाहिये। बिल्व आदिके सम्पर्कसे युक्त जलद्वारा मन्त्रोच्चारणपूर्वक उन सबका एक या दो बार

* प्रादेशमात्र ग्रन्थियुक्त दो कुशा लेकर, घीके बीचमें डालकर, उसके दो भाग करके, उसे शुक्ल और कृष्ण—दो पक्षोंके रूपमें स्मरण करे। तदनन्तर वामभागमें इडानाडी, दक्षिणभागमें पिङ्गलानाडी और मध्यभागमें सुषुम्ना नाडीका ध्यान करके हवन करे। 'ॐ नमः।'—इस मन्त्रद्वारा स्रुवसे दक्षिण भागकी ओरसे घी लेकर दाहिने नेत्रमें 'ॐ अग्नये स्वाहा इदमग्नये।' कहकर एक आहुति दे। फिर उत्तर भागसे घी लेकर 'ॐ सोमाय स्वाहा इदं सोमाय।' बोलकर एक आहुति अग्निके वामनेत्रमें दे। इसके बाद बीचसे घी लेकर 'अग्नीषोमाभ्यां नमः।' इस मन्त्रसे एक आहुति अग्निके भालस्थ नेत्रमें दे। फिर स्रुवद्वारा दक्षिण भागसे घी लेकर अग्निके मुखमें 'अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' बोलकर एक आहुति दे। इसके बाद व्याहृति-होम करना चाहिये (मन्त्रमहार्णवसे)। जिस भागसे आज्याहुति ली जाय, अग्निके उसी भागमें उसका सम्पात या त्याग करे। जैसा कि कहा है—

'स्वाहान्तहोमं विधाय 'स्वाहा' इत्यस्यान्ते यस्माद् भागादाज्याहुतिर्गृहीता तस्मिन्नेव भागे तस्य सम्पातं कुर्यात्।'

(शा० ति० ५ पटल, श्लोक ५८ की टीका)

प्रोक्षण करना चाहिये। गुरुको चाहिये कि कुम्भपात्रमें पवित्राओंको रखकर उनकी रक्षाके उद्देश्यसे उस पात्रसे पूर्व-दिशामें संकर्षण-मन्त्रद्वारा दन्तकाष्ठ और आँवला, दक्षिण-दिशामें प्रद्युम्न-मन्त्रद्वारा भस्म और तिल, पश्चिम-दिशामें अनिरुद्ध-मन्त्रद्वारा गोबर और मिट्टी तथा उत्तर-दिशामें नारायण-मन्त्रद्वारा कुशोदक डाले। तदनन्तर अग्निकोणमें हृदय-मन्त्रसे कुङ्कुम तथा रोचना, ईशानकोणमें शिरोमन्त्रद्वारा धूप, नैर्ऋत्यकोणमें शिखामन्त्रद्वारा दिव्य मूलपुष्प तथा वायव्यकोणमें कवच-मन्त्रद्वारा चन्दन, जल, अक्षत, दही और दूर्वाको दोनेमें रखकर छीटे। मण्डपको त्रिसूत्रसे आवेष्टित करके पुनः सब ओर सरसों बिखेरे॥ १—६॥

देवताओंकी जिस क्रमसे पूजा की गयी हो, उसी क्रमसे, उनके लिये उनके अपने-अपने नाम-मन्त्रोंसे गन्धपवित्रक[1] देना चाहिये। द्वारपाल आदिको नाम-मन्त्रोंसे ही गन्धपवित्रक अर्पित करे। इसी क्रमसे कुम्भमें भगवान् विष्णुको सम्बोधित करके पवित्रक दे—'हे देव! यह आप भगवान् विष्णुके ही तेजसे उत्पन्न रमणीय तथा सर्वपातकनाशन पवित्रक है। यह सम्पूर्ण मनोरथोंको देनेवाला है, इसे मैं आपके अङ्गमें धारण कराता हूँ।' धूप-दीप आदिके द्वारा सम्यक् पूजन करके मण्डपके द्वारके समीप जाय तथा गन्ध, पुष्प और अक्षतसे युक्त वह पवित्रक स्वयंको भी अर्पित करे। अपनेको अर्पण करते समय इस प्रकार कहे—'यह पवित्रक भगवान् विष्णुका तेज है और बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है; मैं धर्म, अर्थ और कामकी सिद्धिके लिये इसे अपने अङ्गमें धारण करता हूँ।' आसनपर भगवान् श्रीहरिके परिवार आदिको एवं गुरुको पवित्रक दे। गन्ध, पुष्प और अक्षत आदिसे भगवान् श्रीहरिकी पूजा करके गन्ध-पुष्पादिसे पूजित पवित्रक श्रीहरिको अर्पित करे। उस समय 'विष्णुतेजोभवम्' इत्यादि मूलमन्त्रका उच्चारण करे॥ ७—१२॥

तदनन्तर अग्निमें अधिष्ठातारूपसे स्थित भगवान् विष्णुको पवित्रक अर्पित करके उन परमेश्वरसे यों प्रार्थना करे—'केशव! आपका श्रीविग्रह क्षीरसागरमें महानाग (अनन्त)-की शय्यापर शयन करनेवाला है। मैं प्रातःकाल आपकी पूजा करूँगा; आप मेरे समीप पधारिये।' इसके बाद इन्द्र आदि दिक्पालोंको बलि अर्पित करके श्रीविष्णु-पार्षदोंको भी बलि भेंट करे। इसके बाद भगवान्‌के सम्मुख युगलवस्त्र-भूषित तथा रोचना, कर्पूर, केसर और गन्ध आदिके जलसे पूरित कलशको गन्ध-पुष्प आदिसे विभूषित करके मूलमन्त्रसे उसकी पूजा करे। फिर मण्डपसे बाहर आकर पूर्व दिशामें लिये हुए मण्डलत्रयमें पञ्चगव्य, चरु और दन्तकाष्ठका क्रमशः सेवन करे।[2] रातमें पुराणश्रवण तथा स्तोत्रपाठ करते हुए जागरण करे। पर प्रेषक बालकों, स्त्रियों तथा भोगीजनोंके उपयोगमें आनेवाले गन्धपवित्रकको छोड़कर शेषका तत्काल अधिवासन करे॥ १३—१८॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'पवित्राधिवासन-विधिका वर्णन' नामक पैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३५॥

---

१. सूत्रको केवल त्रिगुणित करके पवित्रा बनायी जाय तो उसे 'गन्धपवित्रक' कहते हैं। इसमें एक गाँठ होती है और थोड़ेसे तन्तु। कोई-कोई इसे 'कनिष्ठसंख्य' भी कहते हैं। जैसा कि वचन है—

'त्रिसूत्री गन्धसूत्रे स्यात्।'

तत्र गन्धपवित्रं स्यादेकग्रन्थ्यल्पतन्तुकम्। कनिष्ठसंख्यमित्येके त्रिसूत्रेण विनिर्मितम्॥

(ईशानशिव गुरुदेवपद्धति, क्रियापाद २१ पटल १२, ३६)

२. बहिर्निर्गत्य प्राचीनेषु त्रिषु मण्डलेषु दीक्षोक्तमार्गेण पञ्चगव्यं चरुं दन्तधावनं च भजेत्।

(ईशानशिव गुरुदेवपद्धति, उत्तरार्ध, क्रियापाद २१वाँ पटल)

छत्तीसवाँ अध्याय

भगवान् विष्णुके लिये पवित्रारोपणकी विधि

अग्निदेव कहते हैं—मुने! प्रातःकाल स्नान आदि करके, द्वारपालोंका पूजन करनेके पश्चात् गुप्त स्थानमें प्रवेश करके, पूर्वाधिवासित पवित्रकमेंसे एक लेकर प्रसादरूपसे धारण कर ले। शेष द्रव्य-वस्त्र, आभूषण, गन्ध एवं सम्पूर्ण निर्माल्यको हटाकर भगवान्को स्नान करानेके पश्चात् उनकी पूजा करे। पञ्चामृत, कषाय एवं शुद्ध गन्धोदकसे नहलाकर भगवान्के निमित्त पहलेसे रखे हुए वस्त्र, गन्ध और पुष्पको उनकी सेवामें प्रस्तुत करे। अग्निमें नित्यहोमकी भाँति हवन करके भगवान्की स्तुति-प्रार्थना करनेके अनन्तर उनके चरणोंमें मस्तक नवावे। फिर अपने समस्त कर्म भगवान्को अर्पित करके उनकी नैमित्तिकी पूजा करे। द्वारपाल, विष्णु, कुम्भ और वर्धनीकी प्रार्थना करे। '**अतो देवाः**' इत्यादि मन्त्रसे, अथवा मूल-मन्त्रसे कलशपर श्रीहरिकी स्तुति-प्रार्थना करे—'हे कृष्ण! हे कृष्ण! आपको नमस्कार है। इस पवित्रकको ग्रहण कीजिये। यह उपासकको पवित्र करनेके लिये है और वर्षभर की हुई पूजाके सम्पूर्ण फलको देनेवाला है। नाथ! पहले मुझसे जो दुष्कृत (पाप) बन गया हो, उसे नष्ट करके आप मुझे परम पवित्र बना दीजिये। देव! सुरेश्वर! आपकी कृपासे मैं शुद्ध हो जाऊँगा।'* हृदय, सिर आदि मन्त्रोंद्वारा पवित्रकका तथा अपना भी अभिषेक करके विष्णुकलशका भी प्रोक्षण करनेके बाद भगवान्के समीप जाय। उनके रक्षाबन्धनको हटाकर उन्हें पवित्रक अर्पण करे और कहे—'प्रभो! मैंने जो ब्रह्मसूत्र तैयार किया है, इसे आप ग्रहण करें। यह कर्मकी पूर्तिका साधक है; अतः इस पवित्रारोपण कर्मको आप इस तरह सम्पन्न करें, जिससे मुझे दोषका भागी न होना पड़े'॥ १—९ $\frac{१}{२}$ ॥

द्वारपाल, योगपीठासन तथा मुख्य गुरुओंको पवित्रक चढ़ावे। इनमें कनिष्ठ श्रेणीका (नाभितकका) पवित्रक द्वारपालोंको, मध्यम श्रेणीका (जाँघतक लटकनेवाला) पवित्रक योगपीठासनको और उत्तम (घुटनेतकका) पवित्रक गुरुजनोंको दे। साक्षात् भगवान्को मूल-मन्त्रसे वनमाला (पैरोंतक लटकनेवाला पवित्रक) अर्पित करे। '**नमो विष्वक्सेनाय**' मन्त्र बोलकर विष्वक्सेनको भी पवित्रक चढ़ावे। अग्निमें होम करके अग्निस्थ विश्वादि देवताओंको पवित्रक अर्पित करे। तदनन्तर पूजनके पश्चात् मूल-मन्त्रसे प्रायश्चित्तके उद्देश्यसे पूर्णाहुति दे। अष्टोत्तरशत अथवा पाँच औपनिषद-मन्त्रोंसे पूर्णाहुति देनी चाहिये। मणि या मूँगोंकी मालाओंसे अथवा मन्दार-पुष्प आदिसे अष्टोत्तरशतकी गणना करनी चाहिये। अन्तमें भगवान्से इस प्रकार प्रार्थना करे—'गरुडध्वज! यह आपकी वार्षिक पूजा सफल हो। देव! जैसे वनमाला आपके वक्षःस्थलमें सदा शोभा पाती है, उसी तरह पवित्रकके इन तन्तुओंको और इनके द्वारा की गयी पूजाको भी आप अपने हृदयमें धारण करें। मैंने इच्छासे या अनिच्छासे नियमपूर्वक की जानेवाली पूजामें जो त्रुटियाँ की हैं, विघ्नवश विधिके पालनमें जो न्यूनता हुई है, अथवा कर्मलोपका प्रसङ्ग आया है, वह सब

---

* कृष्ण कृष्ण नमस्तुभ्यं गृह्णीष्वेदं पवित्रकम्। पवित्रीकरणार्थाय वर्षपूजाफलप्रदम्॥
पवित्रकं कुरुष्वाद्य यन्मया दुष्कृतं कृतम्। शुद्धो भवाम्यहं देव त्वत्प्रसादात् सुरेश्वर॥
(अग्नि० ३६। ६, ७)

आपकी कृपासे पूर्ण हो जाय। मेरे द्वारा की हुई आपकी पूजा पूर्णतः सफल हो'॥ १०—१५ $\frac{1}{2}$ ॥

इस प्रकार प्रार्थना और नमस्कार करके अपराधोंके लिये क्षमा माँगकर पवित्रकको मस्तकपर चढ़ावे। फिर यथायोग्य बलि अर्पित करके दक्षिणाद्वारा वैष्णव गुरुको संतुष्ट करे। यथाशक्ति एक दिन या एक पक्षतक ब्राह्मणोंको भोजन-वस्त्र आदिसे संतोष प्रदान करे। स्नानकालमें पवित्रकको उतारकर पूजा करे। उत्सवके दिन किसीको आनेसे न रोके और सबको अनिवार्यरूपसे अन्न देकर अन्तमें स्वयं भी भोजन करे। विसर्जनके दिन पूजन करके पवित्रकोंका विसर्जन करे और इस प्रकार प्रार्थना करे—'हे पवित्रक! मेरी इस वार्षिक पूजाको विधिवत् सम्पादित करके अब तुम मेरे द्वारा विसर्जित हो विष्णुलोकको पधारो।' उत्तर और ईशानकोणके बीचमें विष्वक्सेनकी पूजा करके उनके भी पवित्रकोंकी अर्चना करनेके पश्चात् उन्हें ब्राह्मणको दे दे। उस पवित्रकमें जितने तन्तु कल्पित हुए हैं, उतने सहस्र युगोंतक उपासक विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। साधक पवित्रारोपणसे अपनी सौ पूर्व पीढ़ियोंका उद्धार करके दस पहले और दस बादकी पीढ़ियोंको विष्णुलोकमें स्थापित करता और स्वयं भी मुक्ति प्राप्त कर लेता है॥ १६—२३॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'विष्णु-पवित्रारोपणविधि-निरूपण' नामक छत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३६॥

सैंतीसवाँ अध्याय

संक्षेपसे समस्त देवताओंके लिये साधारण पवित्रारोपणकी विधि

अग्निदेव कहते हैं—मुने! अब संक्षेपसे समस्त देवताओंके लिये पवित्रारोपणकी विधि सुनो। पहले जो चिह्न कहे गये हैं, उन्हीं लक्षणोंसे युक्त पवित्रक देवताको अर्पित किया जाता है। उसके दो भेद होते हैं 'स्वरस' और 'अनलग'। पहले निम्नाङ्कित रूपसे इष्टदेवताको निमन्त्रण देना चाहिये—'जगत्‌के कारणभूत ब्रह्मदेव! आप परिवार-सहित यहाँ पधारें। मैं आपको निमन्त्रित करता हूँ। कल प्रातःकाल आपकी सेवामें पवित्रक अर्पित करूँगा।' फिर दूसरे दिन पूजनके पश्चात् निम्नाङ्कित प्रार्थना करके पवित्रक भेंट करे—'संसारकी सृष्टि करनेवाले आप विधाताको नमस्कार है। यह पवित्रक ग्रहण कीजिये। इसे अपनेको पवित्र करनेके लिये आपकी सेवामें प्रस्तुत किया गया है। यह वर्षभरकी पूजाका फल देनेवाला है।' 'शिवदेव! वेदवेत्ताओंके पालक प्रभो! आपको नमस्कार है। यह पवित्रक स्वीकार कीजिये। इसके द्वारा आपके लिये मणि, मूँगे और मन्दार-कुसुम आदिसे प्रतिदिन एक वर्षतक की जानेवाली पूजा सम्पादित हो।' 'पवित्रक! मेरी इस वार्षिक-पूजाका विधिवत् सम्पादन करके मुझसे विदा लेकर अब तुम स्वर्गलोकको पधारो।' 'सूर्यदेव! आपको नमस्कार है; यह पवित्रक लीजिये। इसे पवित्रीकरणके उद्देश्यसे आपकी सेवामें अर्पित किया गया है। यह एक वर्षकी पूजाका फल देनेवाला है।' 'गणेशजी! आपको नमस्कार है; यह पवित्रक स्वीकार कीजिये। इसे पवित्रीकरणके उद्देश्यसे दिया गया है। यह वर्षभरकी पूजाका फल देनेवाला है।' 'शक्ति देवि! आपको नमस्कार है; यह पवित्रक लीजिये। इसे पवित्रीकरणके उद्देश्यसे आपकी सेवामें भेंट किया गया है। यह वर्षभरकी पूजाका फल देनेवाला है'॥ १—९ $\frac{1}{2}$ ॥

'पवित्रकका यह उत्तम सूत नारायणमय और अनिरुद्धमय है। धन-धान्य, आयु तथा आरोग्यको देनेवाला है, इसे मैं आपकी सेवामें दे रहा हूँ। यह श्रेष्ठ सूत प्रद्युम्नमय और संकर्षणमय है, विद्या, संतति तथा सौभाग्यको देनेवाला है। इसे मैं आपकी सेवामें अर्पित करता हूँ। यह वासुदेवमय सूत्र धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षको देनेवाला है। संसारसागरसे पार लगानेका यह उत्तम साधन है, इसे आपके चरणोंमें चढ़ा रहा हूँ। यह विश्वरूपमय सूत्र सब कुछ देनेवाला और समस्त पापोंका नाश करनेवाला है; भूतकालके पूर्वजों और भविष्यकी भावी संतानोंका उद्धार करनेवाला है, इसे आपकी सेवामें प्रस्तुत करता हूँ। कनिष्ठ, मध्यम, उत्तम एवं परमोत्तम—इन चार प्रकारके पवित्रकोंका मन्त्रोच्चारणपूर्वक क्रमशः दान करता हूँ'॥ १०—१४॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'संक्षेपतः सर्वदेवसाधारण पवित्रारोपण' नामक सैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३७॥

अड़तीसवाँ अध्याय

देवालय-निर्माणसे प्राप्त होनेवाले फल आदिका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं— मुनिवर वसिष्ठ! भगवान् वासुदेव आदि विभिन्न देवताओंके निमित्त मन्दिरका निर्माण करानेसे जिस फल आदिकी प्राप्ति होती है, अब मैं उसीका वर्णन करूँगा। जो देवताके लिये मन्दिर-जलाशय आदिके निर्माण करानेकी इच्छा करता है, उसका वह शुभ संकल्प ही उसके हजारों जन्मोंके पापोंका नाश कर देता है। जो मनसे भावनाद्वारा भी मन्दिरका निर्माण करते हैं, उनके सैकड़ों जन्मोंके पापोंका नाश हो जाता है। जो लोग भगवान् श्रीकृष्णके लिये किसी दूसरेके द्वारा बनवाये जाते हुए मन्दिरके निर्माण-कार्यका अनुमोदन मात्र कर देते हैं, वे भी समस्त पापोंसे मुक्त हो उन अच्युतदेवके लोक (वैकुण्ठ अथवा गोलोकधामको) प्राप्त होते हैं। भगवान् विष्णुके निमित्त मन्दिरका निर्माण करके मनुष्य अपने भूतपूर्व तथा भविष्यमें होनेवाले दस हजार कुलोंको तत्काल विष्णुलोकमें जानेका अधिकारी बना देता है। श्रीकृष्ण-मन्दिरका निर्माण करनेवाले मनुष्यके पितर नरकके क्लेशोंसे तत्काल छुटकारा पा जाते हैं और दिव्य वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत हो बड़े हर्षके साथ विष्णुधाममें निवास करते हैं। देवालयका निर्माण ब्रह्महत्या आदि पापोंके पुञ्जका नाश करनेवाला है॥ १—५॥

यज्ञोंसे जिस फलकी प्राप्ति नहीं होती है, वह भी देवालयका निर्माण करानेमात्रसे प्राप्त हो जाता है। देवालयका निर्माण करा देनेपर समस्त तीर्थोंमें स्नान करनेका फल प्राप्त हो जाता है। देवता-ब्राह्मण आदिके लिये रणभूमिमें मारे जानेवाले धर्मात्मा शूरवीरोंको जिस फल आदिकी प्राप्ति होती है, वही देवालयके निर्माणसे भी सुलभ होता है। कोई शठता (कंजूसी)-के कारण धूल-मिट्टीसे भी देवालय बनवा दे तो वह उसे स्वर्ग या दिव्यलोक प्रदान करनेवाला होता है। एकायतन (एक ही देवविग्रहके लिये एक कमरेका) मन्दिर बनवानेवाले पुरुषको स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है। त्र्यायतन-मन्दिरका निर्माता ब्रह्मलोकमें निवास पाता है। पञ्चायतन-मन्दिरका निर्माण करनेवालेको शिवलोककी प्राप्ति होती है और अष्टायतन-मन्दिरके निर्माणसे श्रीहरिकी संनिधिमें रहनेका सौभाग्य प्राप्त होता है। जो षोडशायतन-

मन्दिरका निर्माण कराता है, वह भोग और मोक्ष, दोनों पाता है। श्रीहरिके मन्दिरकी तीन श्रेणियाँ हैं—कनिष्ठ, मध्यम और श्रेष्ठ। इनका निर्माण करानेसे क्रमशः स्वर्गलोक, विष्णुलोक तथा मोक्षकी प्राप्ति होती है। धनी मनुष्य भगवान् विष्णुका उत्तम श्रेणीका मन्दिर बनवाकर जिस फलको प्राप्त करता है, उसे ही निर्धन मनुष्य निम्नश्रेणीका मन्दिर बनवाकर भी प्राप्त कर लेता है। धन-उपार्जनकर उसमेंसे थोड़ा-सा ही खर्च करके यदि मनुष्य देव-मन्दिर बनवा ले तो बहुत अधिक पुण्य एवं भगवान्‌का वरदान प्राप्त करता है। एक लाख या एक हजार या एक सौ अथवा उसका आधा (५०) मुद्रा ही खर्च करके भगवान् विष्णुका मन्दिर बनवानेवाला मनुष्य उस नित्य धामको प्राप्त होता है, जहाँ साक्षात् गरुडकी ध्वजा फहरानेवाले भगवान् विष्णु विराजमान होते हैं॥ ६—१२ $\frac{१}{२}$ ॥

जो लोग बचपनमें खेलते समय धूलिसे भगवान् विष्णुका मन्दिर बनाते हैं, वे भी उनके धामको प्राप्त होते हैं। तीर्थमें, पवित्र स्थानमें, सिद्धक्षेत्रमें तथा किसी आश्रमपर जो भगवान् विष्णुका मन्दिर बनवाते हैं, उन्हें अन्यत्र मन्दिर बनानेका जो फल बताया गया है, उससे तीन गुना अधिक फल मिलता है। जो लोग भगवान् विष्णुके मन्दिरको चूनेसे लिपाते और उसपर बन्धूकके फूलका चित्र बनाते हैं, वे अन्तमें भगवान्‌के धाममें पहुँच जाते हैं। भगवान्‌का जो मन्दिर गिर गया हो, गिर रहा हो, अथवा आधा गिर चुका हो, उसका जो मनुष्य जीर्णोद्धार करता है, वह नवीन मन्दिर बनवानेकी अपेक्षा दूना पुण्यफल प्राप्त करता है। जो गिरे हुए विष्णु-मन्दिरको पुनः बनवाता और गिरे हुएकी रक्षा करता है, वह मनुष्य साक्षात् भगवान् विष्णुका स्वरूप प्राप्त करता है। भगवान्‌के मन्दिरकी ईंटें जबतक रहती हैं, तबतक उसका बनवानेवाला विष्णुलोकमें कुलसहित प्रतिष्ठित होता है। इस संसारमें और परलोकमें वही पुण्यवान् और पूजनीय है॥ १३—२०॥

जो भगवान् श्रीकृष्णका मन्दिर बनवाता है, वही पुण्यवान् उत्पन्न हुआ है, उसीने अपने कुलकी रक्षा की है। जो भगवान् विष्णु, शिव, सूर्य और देवी आदिका मन्दिर बनवाता है, वही इस लोकमें कीर्तिका भागी होता है। सदा धनकी रक्षामें लगे रहनेवाले मूर्ख मनुष्यको बड़े कष्टसे कमाये हुए अधिक धनसे क्या लाभ हुआ, यदि वह उससे श्रीकृष्णका मन्दिर ही नहीं बनवाता। जिसका धन पितरों, ब्राह्मणों और देवताओंके उपयोगमें नहीं आता तथा बन्धु-बान्धवोंके भी उपयोगमें नहीं आ सका, उसके धनकी प्राप्ति व्यर्थ हुई। जैसे प्राणियोंकी मृत्यु निश्चित है, उसी प्रकार कमाये हुए धनका नाश भी निश्चित है। मूर्ख मनुष्य ही क्षणभङ्गुर जीवन और चञ्चल धनके मोहमें बँधा रहता है। जब धन दानके लिये, प्राणियोंके उपभोगके लिये, कीर्तिके लिये और धर्मके लिये काममें नहीं लाया जा सके तो उस धनका मालिक बननेमें क्या लाभ है? इसलिये प्रारब्धसे मिले अथवा पुरुषार्थसे, किसी भी उपायसे धनको प्राप्तकर उसे उत्तम ब्राह्मणोंको दान दे, अथवा कोई स्थिर कीर्ति बनवावे। चूँकि दान और कीर्तिसे भी बढ़कर मन्दिर बनवाना है, इसलिये बुद्धिमान् मनुष्य विष्णु आदि देवताओंका मन्दिर आदि बनवावे। भक्तिमान् श्रेष्ठ पुरुषोंके द्वारा यदि भगवान्‌के मन्दिरका निर्माण और उसमें भगवान्‌का प्रवेश (स्थापन आदि) हुआ तो यह समझना चाहिये कि उसने समस्त चराचर त्रिभुवनको रहनेके लिये भवन बनवा दिया। ब्रह्मासे लेकर

अब आगे ये असाधारण (विशेष) मुद्राएँ बतायी जाती हैं। दोनों हाथोंमें अँगूठेसे कनिष्ठातककी तीन अँगुलियोंको नवाकर कनिष्ठा आदिको क्रमशः मुक्त करनेसे आठ मुद्राएँ बनती हैं। 'अ क च ट त प य श'—ये जो आठ वर्ग हैं, उनके जो पूर्व बीज (अं कं चं टं इत्यादि) हैं, उनको ही सूचित करनेवाली उक्त आठ मुद्राएँ हैं—ऐसा निश्चय करे। फिर पाँचों अँगुलियोंको ऊपर करके हाथको सम्मुख करनेसे जो नवीं मुद्रा बनती है, वह नवम बीज (क्षं)-के लिये है॥ १—४ $\frac{1}{2}$ ॥

दाहिने हाथके ऊपर बायें हाथको उतान रखकर उसे धीरे-धीरे नीचेको झुकाये। यह वराहकी मुद्रा मानी गयी है। ये क्रमशः अङ्गोंकी मुद्राएँ हैं। बायीं मुट्ठीमें बँधी हुई एक-एक अँगुलीको क्रमशः मुक्त करे और पहलेकी मुक्त हुई अँगुलीको फिर सिकोड़ ले। बायें हाथमें ऐसा करनेके बाद दाहिने हाथमें भी यही क्रिया करे। बायीं मुट्ठीके अँगूठेको ऊपर उठाये रखे। ऐसा करनेसे मुद्राएँ सिद्ध होती हैं॥ ५—७॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'मुद्रालक्षण-वर्णन' नामक छब्बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २६॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

शिष्योंको दीक्षा देनेकी विधिका वर्णन

नारदजी कहते हैं— महर्षिगण! अब मैं सब कुछ देनेवाली दीक्षाका वर्णन करूँगा। कमलाकार मण्डलमें श्रीहरिका पूजन करे। दशमी तिथिको समस्त यज्ञ-सम्बन्धी द्रव्यका संग्रह एवं संस्कार (शुद्धि) करके रख ले। नरसिंह-बीज-मन्त्र (क्ष्रौं)- से सौ बार उसे अभिमन्त्रित करके, उस मन्त्रके अन्तमें 'फट्' लगाकर बोले तथा राक्षसोंका विनाश करनेके उद्देश्यसे सब ओर सरसों छींटे। फिर वहाँ सर्वस्वरूपा प्रासादरूपिणी शक्तिका न्यास करे। सर्वौषधियोंका संग्रह करके बिखेरनेके उपयोगमें आनेवाली सरसों आदि वस्तुओंको शुभ पात्रमें रखकर साधक वासुदेव-मन्त्रसे उनका सौ बार अभिमन्त्रण करे। तदनन्तर वासुदेवसे लेकर नारायणपर्यन्त पूर्वोक्त पाँच मूर्तियों (वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध तथा नारायण)-के मूल-मन्त्रोंद्वारा पञ्चगव्य तैयार करे और कुशाग्रसे पञ्चगव्य छिड़ककर उस भूमिका प्रोक्षण करे। फिर वासुदेव-मन्त्रसे उत्तान हाथके द्वारा समस्त विकिर वस्तुओंको सब ओर बिखेरे। उस समय पूर्वाभिमुख खड़ा हो, मन-ही-मन भगवान् विष्णुका चिन्तन करते हुए तीन बार उन विकिर वस्तुओंको सब ओर छींटे। तत्पश्चात् वर्धनीसहित कलशपर स्थापित भगवान् विष्णुका अङ्गसहित पूजन करे। अस्त्र-मन्त्रसे वर्धनीको सौ बार अभिमन्त्रित करके अविच्छिन्न जलधारासे सींचते हुए उसे ईशानकोणकी ओर ले जाय। कलशको पीछे ले जाकर विकिरपर स्थापित करे। विकिर-द्रव्योंको कुशद्वारा एकत्र करके कुम्भेश और कर्करीका यजन करे॥ १—८॥

पञ्चरत्नयुक्त सवस्त्र वेदीपर श्रीहरिकी पूजा करे। अग्निमें भी उनकी अर्चना करके पूर्ववत् मन्त्रोंद्वारा उनका संतर्पण करे। तत्पश्चात् पुण्डरीक*-मन्त्रसे उखा (पात्रविशेष)-का प्रक्षालन करके उसके भीतर सुगन्धयुक्त घी पोत दे। इसके बाद

* पुण्डरीक-मन्त्र—

'ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा। यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥'

साधक उसमें गायका दूध भरकर वासुदेव-मन्त्रसे उसका अवेक्षण करे और संकर्षण-मन्त्रसे सुसंस्कृत किये गये दूधमें घृताक्त चावल छोड़ दे। इसके बाद प्रद्युम्न-मन्त्रसे करछुलद्वारा उस दूध और चावलका आलोडन करके धीरे-धीरे उसे उलाटे-पलाटे। जब खीर या चरु पक जाय, तब आचार्य अनिरुद्ध-मन्त्र पढ़कर उसे आगसे नीचे उतार दे। तदनन्तर उसपर जल छिड़के और घृतालेपन करके हाथमें भस्म लेकर उसके द्वारा नारायण-मन्त्रसे ललाट एवं पार्श्व-भागोंमें ऊर्ध्व-पुण्ड्र करे। इस प्रकार सुन्दर संस्कारयुक्त चरुके चार भाग करके एक भाग इष्टदेवको अर्पित करे, दूसरा भाग कलशको चढ़ावे, तीसरे भागसे अग्निमें तीन बार आहुति दे और चौथे भागको गुरु शिष्योंके साथ बैठकर खाय; इससे आत्मशुद्धि होती है। (दूसरे दिन एकादशीको) प्रातःकाल ऐसे वृक्षसे दाँतन ले, जो दूधवाला हो। उस दाँतनको नारायण-मन्त्रसे सात बार अभिमन्त्रित कर ले। उसका दन्तशुद्धिके लिये उपयोग करके फिर उसे त्याग दे। अपने पातकका स्मरण करके पूर्व, अग्निकोण, उत्तर अथवा ईशानकोणकी ओर मुँह करके अच्छी तरह स्नान करे। फिर 'शुभ' एवं 'सिद्ध' की भावना करके, अर्थात् 'मैं निष्पाप एवं शुद्ध होकर शुभ सिद्धिकी ओर अग्रसर हुआ हूँ'—ऐसा अनुभव करके आचमन-प्राणायामके पश्चात् मन्त्रोपदेष्टा गुरु भगवान् विष्णुसे प्रार्थना करके उनकी परिक्रमाके पश्चात् पूजागृहमें प्रवेश करे॥ ९—१७॥

प्रार्थना इस प्रकार करे—'देव! संसार-सागरमें मग्न पशुओंको पाशसे छुटकारा दिलानेके लिये आप ही शरणदाता हैं। आप सदा अपने भक्तोंपर वात्सल्यभाव रखते हैं। देवदेव! आज्ञा दीजिये, प्राकृत पाश-बन्धनोंसे बँधे हुए इन पशुओंको आज आपकी कृपासे मैं मुक्त करूँगा।' देवेश्वर श्रीहरिसे इस प्रकार प्रार्थना करके पूजागृहमें प्रविष्ट हो, गुरु पूर्ववत् अग्नि आदिकी धारणाओंद्वारा शिष्यभूत समस्त पशुओंका शोधन करके संस्कार करनेके पश्चात्, उनका वासुदेवादि मूर्तियोंसे संयोग करे। शिष्योंके नेत्र बाँधकर उन्हें मूर्तियोंकी ओर देखनेका आदेश दे। शिष्य उन मूर्तियोंकी ओर पुष्पाञ्जलि फेंकें, तदनुसार गुरु उनका नाम-निर्देश करें। पूर्ववत् शिष्योंसे क्रमशः मूर्तियोंका मन्त्ररहित पूजन करावे। जिस शिष्यके हाथका फूल जिस मूर्तिपर गिरे, गुरु उस शिष्यका वही नाम रखे। कुमारी कन्याके हाथसे काता हुआ लाल रंगका सूत लेकर उसे छः गुना करके बट दे। उस छः गुने सूतकी लंबाई पैरके अँगूठेसे लेकर शिखातककी होनी चाहिये। फिर उसे भी मोड़कर तिगुना कर ले। उक्त त्रिगुणित सूतमें प्रक्रिया-भेदसे स्थित उस प्रकृति देवीका चिन्तन करे, जिसमें सम्पूर्ण विश्वका लय होता है और जिससे ही समस्त जगत्का प्रादुर्भाव हुआ करता है। उस सूत्रमें प्राकृतिक पाशोंको तत्त्वकी संख्याके अनुसार ग्रथित करे, अर्थात् २४ गाँठें लगाकर उनको प्राकृतिक पाशोंके प्रतीक समझे। फिर उस ग्रन्थियुक्त सूतको प्यालेमें रखकर कुण्डके पास स्थापित कर दे। तदनन्तर सभी तत्त्वोंका चिन्तन करके गुरु उनका शिष्यके शरीरमें न्यास करे। तत्त्वोंका वह न्यास सृष्टि-क्रमके अनुसार प्रकृतिसे लेकर पृथिवीपर्यन्त होना चाहिये॥ १८—२६॥

तीन, पाँच, दस अथवा बारह जितने भी सूत्र-भेद सम्भव हों, उन सब सूत्र-भेदोंके द्वारा बटे हुए उस सूत्रको ग्रथित करके देना चाहिये। तत्त्वचिन्तक पुरुषोंके लिये यही उचित है। हृदयसे लेकर अस्त्रपर्यन्त पाँच अङ्ग-सम्बन्धी मन्त्र पढ़कर सम्पूर्ण भूतोंको प्रकृतिक्रमसे (अर्थात्

ये पञ्चमहाभूत पञ्चरात्र हैं। जो चेतनाशून्य एवं अज्ञानान्धकारसे आच्छन्न हैं, वे पञ्चरात्रसे रहित हैं। जो मनुष्य यह धारणा करता है कि 'मैं पापमुक्त परब्रह्म विष्णु हूँ'—वह देशिक होता है। वह समस्त बाह्य लक्षणों (वेष आदि)-से हीन होनेपर भी तन्त्रवेत्ता आचार्य माना गया है॥ ६—८ $\frac{1}{2}$ ॥

देवताओंकी नगराभिमुख स्थापना करनी चाहिये। नगरकी ओर उनका पृष्ठभाग नहीं होना चाहिये। कुरुक्षेत्र, गया आदि तीर्थस्थानोंमें अथवा नदीके समीप देवालयका निर्माण कराना चाहिये। ब्रह्माका मन्दिर नगरके मध्यमें तथा इन्द्रका पूर्व दिशामें उत्तम माना गया है। अग्निदेव तथा मातृकाओंका आग्नेयकोणमें, भूतगण और यमराजका दक्षिणमें, चण्डिका, पितृगण एवं दैत्यादिका मन्दिर नैर्ऋत्य-कोणमें बनवाना चाहिये। वरुणका पश्चिममें, वायुदेव और नागका वायव्यकोणमें, यक्ष या कुबेरका उत्तर दिशामें, चण्डीश-महेशका ईशानकोणमें और विष्णुका मन्दिर सभी ओर बनवाना श्रेष्ठ है। ज्ञानवान् मनुष्यको पूर्ववर्ती देव-मन्दिरको संकुचित करके अल्प, समान या विशाल मन्दिर नहीं बनवाना चाहिये॥ ९—१३ $\frac{1}{2}$ ॥

(किसी देव-मन्दिरके समीप मन्दिर बनवानेपर) दोनों मन्दिरोंकी ऊँचाईके बराबर दुगुनी सीमा छोड़कर नवीन देव-प्रासादका निर्माण करावे। विद्वान् व्यक्ति दोनों मन्दिरोंको पीडित न करे। भूमिका शोधन करनेके बाद भूमि-परिग्रह करे। तदनन्तर प्राकारकी सीमातक माष, हरिद्राचूर्ण, खील, दधि और सक्तुसे भूतबलि प्रदान करे। फिर अष्टाक्षरमन्त्र पढ़कर आठों दिशाओंमें सक्तु बिखेरते हुए कहे—'इस भूमिखण्डपर जो राक्षस एवं पिशाच आदि निवास करते हों, वे सब यहाँसे चले जायँ। मैं यहाँपर श्रीहरिके लिये मन्दिरका निर्माण करूँगा।[1]' फिर भूमिको हलसे जुतवाकर गोचारण करावे। आठ परमाणुका 'रथरेणु' माना गया है। आठ रथरेणुका 'त्रसरेणु' माना जाता है। आठ त्रसरेणुका 'बालाग्र' तथा आठ बालाग्रकी 'लिक्षा' कही जाती है। आठ लिक्षाकी 'यूका,' आठ यूकाका 'यवमध्यम', आठ यवका 'अङ्गुल,' चौबीस अङ्गुलका 'कर' और अट्ठाईस अङ्गुलका 'पद्महस्त' होता है[2]॥ १४—२१ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें विष्णु आदि देवताओंकी स्थापनाके लिये 'भूपरिग्रहका वर्णन' नामक उन्तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३९॥

चालीसवाँ अध्याय

वास्तुमण्डलवर्ती देवताओंके स्थापन, पूजन, अर्घ्यदान तथा बलिदान आदिकी विधि

भगवान् हयग्रीव कहते हैं— ब्रह्मन्! पूर्वकालमें सम्पूर्ण भूत-प्राणियोंके लिये भयंकर एक महाभूत था। देवताओंने उसे भूमिमें निहित कर दिया। उसीको 'वास्तुपुरुष' माना गया है। चतुःषष्टि पदोंसे युक्त क्षेत्रमें अर्धकोणमें स्थित ईश (या शिखी)-को घृत एवं अक्षतोंसे तृप्त करे। फिर एक पदमें स्थित पर्जन्यको कमल तथा जलसे, दो पदोंमें स्थित जयन्तको पताकासे, दो कोष्ठोंमें

---

१. राक्षसाश्च पिशाचाश्च येऽस्मिंस्तिष्ठन्ति भूतले। सर्वे ते व्यपगच्छन्तु स्थानं कुर्यामहं हरेः॥

२. श्रीविद्यार्णवतन्त्रमें यह मान इस प्रकार दिया गया है—

वातायनपथं प्राप्य ये भान्ति रविरश्मयः। तेषु सूक्ष्मा विसर्पन्ते रेणवस्त्रसरेणवः॥
परमाणोरष्टगुणस्त्रसरेणुरुदाहृतः। तेऽष्टौ केशाह्वयास्तेऽष्टौ लिक्षा यूकास्तदष्टकम्॥
तदष्टकं यवस्तेऽष्टावङ्गुलिः समुदाहृता। सा तूत्तमाङ्गुलिः सप्तयवा सैव तु मध्यमा॥
षड्यवा साधमा प्रोक्ता मानाङ्गुलमितीरितम्॥ (१२। १—४)

स्थित महेन्द्रको भी उसीसे, द्विपदस्थ रविको सभी लाल रंगकी वस्तुओंसे संतुष्ट करे। दो पदोंमें स्थित सत्यको वितान (चँदोवों)-से एवं एकपदस्थ भृशको घृतसे, अग्निकोणवर्ती अर्धपदमें स्थित व्योम (आकाश)-को शाकुननामक औषधके गूदेसे, उसी कोणके दूसरे अर्धपदमें स्थित अग्निदेवको स्त्रुक्से, एकपदस्थ पूषाको लाजा (खील)-से, द्विपदस्थ वितथको स्वर्णसे, एकपदस्थ गृहक्षतको माखनसे, एक पदमें स्थित यमराजको उड़दमिश्रित भातसे, द्विपदस्थ गन्धर्वको गन्धसे, एकपदस्थ भृङ्गको शाकुनजिह्वा नामक ओषधिसे, अर्धपदमें स्थित मृगको नीले वस्त्रसे, अर्धकोष्ठके निम्नभागमें विद्यमान पितृगणको कृशर (खिचड़ी)-से, एकपदस्थ दौवारिकको दन्तकाष्ठसे एवं दो पदोंमें स्थित सुग्रीवको यव-निर्मित पदार्थ (हलुवा आदि)-से परितृप्त करे॥ १—७ $\frac{१}{२}$ ॥

द्विपदस्थ पुष्पदन्तको कुश-समूहोंसे, दो पदोंमें स्थित वरुणको पद्मसे, द्विपदस्थ असुरको सुरासे, एक पदमें स्थित शेषको घृतमिश्रित जलसे, अर्धपदस्थित पाप (या पापयक्ष्मा)-को यवान्नसे, अर्धपदस्थ रोगको माँड़से, एकपदस्थित नाग (सर्प)-को नागपुष्पसे, द्विपदगत मुख्यको भक्ष्य-पदार्थोंसे, एकपदस्थ भल्लाटको मूँग-भातसे, एकपद-संस्थित सोमको मधुयुक्त खीरसे, दो पदोंमें अधिष्ठित ऋषिको शालूकसे, एक पदमें विद्यमान अदितिको लोपिकासे एवं अर्धपदस्थ दितिको पूरियोंद्वारा संतुष्ट करे। फिर ईशानस्थित ईशके निम्न भागमें अर्धपदस्थित 'आप'को दुग्धसे एवं उसके नीचे अर्धपदमें अधिष्ठित आप-वत्सको दहीसे संतुष्ट करे। साथ ही पूर्ववर्ती कोष्ठ-चतुष्टयमें मरीचिको लड्डू देकर तृप्त करे। ब्रह्माके ऊर्ध्वभागके कोणस्थित कोष्ठमें अर्धपदस्थ सावित्रको रक्तपुष्प निवेदन करे। उसके निम्नवर्ती अर्ध कोष्ठकमें स्थित सविताको कुशोदक प्रदान करे। चार पदोंमें स्थित विवस्वान्को रक्तचन्दन, नैर्ऋत्यकोणवर्ती अर्धकोष्ठमें स्थित सुराधिप इन्द्रको हरिद्रामिश्रित जलका अर्घ्य दे। उसीके अर्धभागमें कोणवर्ती कोष्ठकमें स्थित इन्द्रजय (अथवा जय)-को घृतका अर्घ्य दे। चतुष्पदमें मित्रको गुड़युक्त पायस दे। वायव्यकोणके आधे कोष्ठकमें प्रतिष्ठित रुद्रको पकायी हुई उड़द (या उसका बड़ा) एवं उसके अधोवर्ती अर्धकोष्ठमें स्थित यक्ष (या रुद्रदास)-को आर्द्रफल (अंगूर, सेव आदि) समर्पित करे। चतुष्पदवर्ती महीधर (या पृथ्वीधर)-को उड़दमिश्रित अन्न एवं माष (उड़द)-की बलि दे। मध्यवर्ती कोष्ठ-चतुष्टयमें भगवान् ब्रह्माके निमित्त तिल-तण्डुल स्थापित करे। चरकीको उड़द और घृतसे, स्कन्दको खिचड़ी तथा पुष्पमालासे, विदारीको लाल कमलसे, कन्दर्पको एक पलके तोलवाले भातसे, पूतनाको पलपित्तसे, जम्भकको उड़द एवं पुष्पमालासे, पापा या पापराक्षसीको पित्त, पुष्पमाला एवं अस्थियोंसे तथा पिलिपित्सको भाँति-भाँतिकी मालाके द्वारा संतुष्ट करे। तदनन्तर ईशान आदि दिक्पालोंको लाल उड़दकी बलि दे। इन सबके अभावमें अक्षतोंसे सबकी पूजा करनी चाहिये*। राक्षस, मातृका, गण, पिशाच, पितर एवं क्षेत्रपालको भी इच्छानुसार (दही-अक्षत या दही-उड़दकी) बलि प्रदान करनी चाहिये॥ ८—२१ ॥

वास्तु-होम एवं बलि-प्रदानसे इनकी तृप्ति किये बिना प्रासाद आदिका निर्माण नहीं करना चाहिये। ब्रह्माके स्थानमें श्रीहरि, श्रीलक्ष्मीजी तथा गणदेवताकी पूजा करें। फिर भूमि, वास्तुपुरुष एवं वर्धनीयुक्त कलशका पूजन करे। कलशके

* वर्तमान समयमें अक्षतसे ही सबका पूजन करना चाहिये। इससे शास्त्रीय आज्ञाका भी परिपालन होता है तथा हिंसा आदि दोषकी भी प्राप्ति नहीं होती है।

मध्यमें ब्रह्मा तथा दिक्पालोंका यजन करे। फिर स्वस्तिवाचन एवं प्रणाम करके पूर्णाहुति दे। ब्रह्मन्! तदनन्तर गृहपति हाथमें छिद्रयुक्त जलपात्र लेकर विधिपूर्वक दक्षिणावर्त मण्डल बनाते हुए सूत्रमार्गसे जलधाराको घुमावे। फिर पूर्ववत् उसी मार्गसे सात बीजोंका वपन करे। उसी मार्गसे खात (गड्ढे)-का आरम्भ करे। तदनन्तर मध्यमें हाथभर चौड़ा एवं चार अङ्गुल नीचा गर्त खोद ले। उसको लीप-पोतकर पूजन प्रारम्भ करे। सर्वप्रथम चार भुजाधारी श्रीविष्णु भगवान्का ध्यान करके उन्हें कलशसे अर्घ्य-प्रदान करे। फिर छिद्रयुक्त जलपात्र (झारी)-से गर्तको भरकर उसमें श्वेत पुष्प डाले। उस श्रेष्ठ दक्षिणावर्त गर्तको बीज एवं मृत्तिकासे भर दे। इस प्रकार अर्घ्यदानका कार्य निष्पन्न करके आचार्यको गो-वस्त्रादिका दान करे। ज्यौतिषी और स्थपति (राजमिस्त्री)-का यथोचित सत्कार करके विष्णुभक्त और सूर्यका पूजन करे। फिर भूमिको यत्नपूर्वक जलपर्यन्त खुदवावे। मनुष्यके बराबरकी गहराईसे नीचे यदि शल्य (हड्डी आदि) हो तो वह गृहके लिये दोषकारक नहीं होता है। अस्थि (शल्य) होनेपर घरकी दीवार टूट जाती है और गृहपतिको सुख नहीं प्राप्त होता है। खुदाईके समय जिस जीव-जन्तुका नाम सुनायी दे जाय, वह शल्य उसी जीवके शरीरसे उद्भूत जानना चाहिये॥ २२—३१॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'वास्तु-देवताओंके अर्घ्य-दान-विधान आदिका वर्णन' नामक चालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४०॥

इकतालीसवाँ अध्याय

शिलान्यासकी विधि

भगवान् हयग्रीव बोले—अब मैं शिलान्यासस्वरूपा पाद-प्रतिष्ठाका वर्णन करूँगा। पहले मण्डप बनाना चाहिये; फिर उसमें चार कुण्ड बनावे। वे कुण्ड क्रमशः कुम्भन्यास[१], इष्टकान्यास[२], द्वार और खम्भेके शुभ आश्रय होंगे। कुण्डका तीन चौथाई हिस्सा कंकड़ आदिसे भर दे और बराबर करके उसपर वास्तुदेवताका पूजन करे। नींवमें डाली जानेवाली ईंटें खूब पकी हों; बारह-बारह अङ्गुलकी लंबी हों तथा विस्तारके तिहाई भागके बराबर, अर्थात् चार अङ्गुल उनकी मोटाई होनी चाहिये। अगर पत्थरका मन्दिर बनवाना हो तो ईंटकी जगह पत्थर ही नींवमें डाला जायगा। एक-एक पत्थर एक-एक हाथका लंबा होना चाहिये। (यदि सामर्थ्य हो तो) ताँबेके नौ कलशोंकी, अन्यथा मिट्टीके बने नौ कलशोंकी स्थापना करे। जल, पञ्चकषाय[३], सर्वौषधि और चन्दनमिश्रित जलसे उन कलशोंको पूर्ण करना चाहिये। इसी प्रकार सोना, धान आदिसे युक्त तथा गन्ध-चन्दन आदिसे भलीभाँति पूजित करके उन जलपूर्ण कलशोंद्वारा 'आपो[४] हि ष्ठा'

१. कलशकी स्थापना। २. ईंट या पत्थरकी स्थापना।

३. तन्त्रके अनुसार निम्नाङ्कित पाँच वृक्षोंका कषाय—जामुन, सेमर, खिरैंटी, मौलसिरी और बेर। यह कषाय वृक्षकी छालको पानीमें भिगोकर निकाला जाता है और कलशमें डालने एवं दुर्गापूजन आदिके काम आता है।

४. ॐ आपो हि ष्ठा मयोभुवः। ॐ ता न ऊर्जे दधातन। ॐ महे रणाय चक्षसे। ॐ यो वः शिवतमो रसः। ॐ तस्य भाजयतेह नः। ॐ उशतीरिव मातरः। ॐ तस्मा अरं गमाम वः। ॐ यस्य क्षयाय जिन्वथ। ॐ आपो जनयथा च नः। (यजु०, अ० ११, मन्त्र ५०, ५१, ५२)

इत्यादि तीन ऋचाओं, 'शं नो[1] देवीरभिष्टय' आदि मन्त्रों 'तरत्स[2] मन्दी:' इत्यादि मन्त्र एवं पावमानी[3] ऋचाओंके तथा 'उदुत्तमं वरुण[4]' 'कया[5] न:' और 'वरुणस्योत्तम्भनमसि[6]' इत्यादि मन्त्रोंके पाठपूर्वक 'हंस: शुचिषद्[7]' इत्यादि मन्त्र तथा श्रीसूक्तका भी उच्चारण करते हुए बहुत-सी शिलाओं अथवा ईंटोंका अभिषेक करे। फिर उन्हें नींवमें स्थापित करके मण्डपके भीतर एक शय्यापर पूर्वमण्डलमें भगवान् श्रीविष्णुका पूजन करे। अरणी-मन्थनद्वारा अग्नि प्रकट करके द्वादशाक्षर-मन्त्रसे उसमें समिधाओंका हवन करना चाहिये॥ १—९॥

'आधार' और 'आज्यभाग' नामक आहुतियाँ प्रणवमन्त्रसे ही करावे। फिर अष्टाक्षर-मन्त्रसे आठ आहुति देकर **ॐ भू: स्वाहा, ॐ भुव: स्वाहा, ॐ स्व: स्वाहा**—इस प्रकार तीन व्याहृतियोंसे क्रमश: लोकेश्वर अग्नि, सोमग्रह और भगवान् पुरुषोत्तमके निमित्त हवन करे। इसके बाद प्रायश्चित्तसंज्ञक हवन करके प्रणवयुक्त द्वादशाक्षर मन्त्रसे उड़द, घी और तिलको एक साथ लेकर पूर्णाहुति-हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् आचार्य पूर्वाभिमुख होकर आठ दिशाओंमें स्थापित कलशोंपर पृथक्-पृथक् पद्म आदि देवताओंका स्थापन-पूजन करे। बीचमें भी धरती लीपकर पत्थरकी एक शिला और कलश स्थापित करे। इन नौ कलशोंपर क्रमश: नीचे लिखे देवताओंकी स्थापना करनी चाहिये॥ १०—१३॥

पद्म, महापद्म, मकर, कच्छप, कुमुद, आनन्द, पद्म और शङ्ख—इनको आठ कलशोंमें और पद्मिनीको मध्यवर्ती कलशपर स्थापित करे॥ १४॥

इन कलशोंको हिलावे-डुलावे नहीं; उनके निकट पूर्व आदिके क्रमसे ईशानकोणतक एक-एक ईंट रख दे। फिर उनपर उनकी देवता विमला आदि शक्तियोंका न्यास (स्थापन) करना चाहिये[8]। बीचमें 'अनुग्रहा'की स्थापना करे। इसके बाद इस प्रकार प्रार्थना करे—'मुनिवर अङ्गिराकी सुपुत्री इष्टका देवी, तुम्हारा कोई अङ्ग टूटा-फूटा या खराब नहीं हुआ है; तुम अपने सभी अङ्गोंसे पूर्ण हो। मेरा अभीष्ट पूर्ण करो। अब मैं प्रतिष्ठा करा रहा हूँ'॥ १५—१७॥

उत्तम आचार्य इस मन्त्रसे इष्टकाओंकी स्थापना करनेके पश्चात् एकाग्रचित्त होकर मध्यवाले स्थानमें गर्भाधान करे। (उसकी विधि यों है—) एक कलशके ऊपर देवेश्वर भगवान् नारायण तथा

---

१. शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शं योरभिस्त्रवन्तु न:॥ (अथर्व०, १।६।१)

२. तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धस:। तरत्स मन्दी धावति॥
उस्रा वेद वसूनां मर्तस्य देव्यवस:। तरत्स मन्दी धावति॥
ध्वस्रयो: पुरुषन्त्योरा सहस्राणि दद्महे। तरत्स मन्दी धावति॥
आ ययोस्त्रिंशतं तना सहस्राणि च दद्महे। तरत्स मन्दी धावति॥ (ऋ०, मं० ९, सू० ५८।१—४)

३. ऋग्वेद, नवम मण्डल, अध्याय १, २, ३के सूक्तोंको 'पावमानसूक्त' तथा ऋचाओंको 'पावमानी ऋचाएँ' कहते हैं।

४. उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय। अथावयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम॥ (यजु०, १२।१२)

५. कया नश्चित्र आभुवदूती सदावृध: सखा। कया शचिष्ठया वृता॥ (यजु०, ३६।४)

६. वरुणस्योत्तम्भनमसि वरुणस्य स्कम्भसर्जनी स्थो वरुणस्य ऋतसदन्यसि वरुणस्य ऋतसदनमसि वरुणस्य ऋतसदनमासीद॥ (यजु०, ४।३६)

७. हंस: शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्। नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्॥ (यजु० १०।२४; कठ० २।२।२)

८. विमला आदि शक्तियोंके नाम इस प्रकार हैं—
विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्वी, सत्या, ईशाना तथा अनुग्रहा।

पद्मिनी (लक्ष्मी) देवीको स्थापित करके उनके पास मिट्टी, फूल, धातु और रत्नोंको रखे। इसके बाद लोहे आदिके बने हुए गर्भपात्रमें, जिसका विस्तार बारह अङ्गुल और ऊँचाई चार अङ्गुल हो, अस्त्रकी पूजा करे। फिर ताँबेके बने हुए कमलके आकारवाले एक पात्रमें पृथ्वीका पूजन करे और इस प्रकार प्रार्थना करे—'सम्पूर्ण भूतोंकी ईश्वरी पृथ्वीदेवी! तुम पर्वतोंके आसनसे सुशोभित हो; चारों ओर समुद्रोंसे घिरी हुई हो; एकान्तमें गर्भ धारण करो। वसिष्ठकन्या नन्दा! वसुओं और प्रजाओंके सहित तुम मुझे आनन्दित करो। भार्गवपुत्री जया! तुम प्रजाओंको विजय दिलानेवाली हो। (मुझे भी विजय दो।) अङ्गिराकी पुत्री पूर्णा! तुम मेरी कामनाएँ पूर्ण करो। महर्षि कश्यपकी कन्या भद्रा! तुम मेरी बुद्धि कल्याणमयी कर दो। सम्पूर्ण बीजोंसे युक्त और समस्त रत्नों एवं औषधोंसे सम्पन्न सुन्दरी जया देवी तथा वसिष्ठपुत्री नन्दा देवी! यहाँ आनन्दपूर्वक रम जाओ। हे कश्यपकी कन्या भद्रा! तुम प्रजापतिकी पुत्री हो, चारों ओर फैली हुई हो, परम महान् हो; साथ ही सुन्दरी और सुकान्त हो, इस गृहमें रमण करो। हे भार्गवी देवी! तुम परम आश्चर्यमयी हो; गन्ध और माल्य आदिसे सुशोभित एवं पूजित हो; लोकोंको ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली देवि! तुम इस गृहमें रमण करो। इस देशके सम्राट्, इस नगरके राजा और इस घरके मालिकके बाल-बच्चोंको तथा मनुष्य आदि प्राणियोंको आनन्द देनेके लिये पशु आदि सम्पदाकी वृद्धि करो।' इस प्रकार प्रार्थना करके वास्तु-कुण्डको गोमूत्रसे सींचना चाहिये॥ १८—२८॥

यह सब विधि पूर्ण करके कुण्डमें गर्भको स्थापित करे। यह गर्भाधान रातमें होना चाहिये। उस समय आचार्यको गौ-वस्त्र आदि दान करे तथा अन्य लोगोंको भोजन दे। इस प्रकार गर्भपात्र रखकर और ईंटोंको भी रखकर उस कुण्डको भर दे। तत्पश्चात् मन्दिरकी ऊँचाईके अनुसार प्रधानदेवताके पीठका निर्माण करे। 'उत्तम पीठ' वह है, जो ऊँचाईमें मन्दिरके आधे विस्तारके बराबर हो। उत्तम पीठकी अपेक्षा एक चौथाई कम ऊँचाई होनेपर मध्यम पीठ कहलाता है और उत्तम पीठकी आधी ऊँचाई होनेपर 'कनिष्ठ पीठ' होता है। पीठ-बन्धके ऊपर पुनः वास्तु-याग (वास्तुदेवताका पूजन) करना चाहिये। केवल पाद-प्रतिष्ठा करनेवाला मनुष्य भी सब पापोंसे रहित होकर देवलोकमें आनन्द-भोग करता है॥ २९—३२॥

मैं देवमन्दिर बनवा रहा हूँ, ऐसा जो मनसे चिन्तन भी करता है, उसका शारीरिक पाप उसी दिन नष्ट हो जाता है। फिर जो विधिपूर्वक मन्दिर बनवाता है, उसके लिये तो कहना ही क्या है? जो आठ ईंटोंका भी देवमन्दिर बनवाता है, उसके फलकी सम्पत्तिका भी कोई वर्णन नहीं कर सकता। इसीसे विशाल मन्दिर बनवानेसे मिलनेवाले महान् फलका अनुमान कर लेना चाहिये॥ ३३—३५॥

गाँवके बीचमें अथवा गाँवसे पूर्वदिशामें यदि मन्दिर बनवाया जाय तो उसका दरवाजा पश्चिमकी ओर रखना चाहिये और सब कोणोंमेंसे किसी ओर बनवाना हो तो गाँवकी ओर दरवाजा रखे। गाँवसे दक्षिण, उत्तर या पश्चिमदिशामें मन्दिर बने, तो उसका दरवाजा पूर्वदिशाकी ओर रखना चाहिये॥ ३६-३७॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'सर्वशिलाविन्यासविधान आदिका कथन' नामक इकतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४१॥

बयालीसवाँ अध्याय
प्रासाद-लक्षण-वर्णन

भगवान् हयग्रीव कहते हैं— ब्रह्मन्! अब मैं सर्वसाधारण प्रासाद (देवालय)-का वर्णन करता हूँ, सुनो। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि जहाँ मन्दिरका निर्माण कराना हो, वहाँके चौकोर क्षेत्रके सोलह भाग करे। उसमें मध्यके चार भागोंद्वारा आयसहित गर्भ (मन्दिरके भीतरी भागकी रिक्त भूमि) निश्चित करे तथा शेष बारह भागोंको दीवार उठानेके लिये नियत करे। उक्त बारह भागोंमेंसे चार भागकी जितनी लंबाई है, उतनी ही ऊँचाई प्रासादकी दीवारोंकी होनी चाहिये। विद्वान् पुरुष दीवारोंकी ऊँचाईसे दुगुनी शिखरकी ऊँचाई रखे। शिखरके चौथे भागकी ऊँचाईके अनुसार मन्दिरकी परिक्रमाकी ऊँचाई रखे। उसी मानके अनुसार दोनों पार्श्व भागोंमें निकलनेका मार्ग (द्वार) बनाना चाहिये। वे द्वार एक-दूसरेके समान होने चाहिये। मन्दिरके सामनेके भूभागका विस्तार भी शिखरके समान ही करना चाहिये। जिस तरह उसकी शोभा हो सके, उसके अनुरूप उसका विस्तार शिखरसे दूना भी किया जा सकता है। मन्दिरके आगेका सभामण्डप विस्तारमें मन्दिरके गर्भसूत्रसे दूना होना चाहिये। मन्दिरके पादस्तम्भ आदि भित्तिके बराबर ही लंबे बनाये जायँ। वे मध्यवर्ती स्तम्भोंसे विभूषित हों। अथवा मन्दिरके गर्भका जो मान है, वही उसके मुख-मण्डप (सभामण्डप या जगमोहन)-का भी रखे। तत्पश्चात् इक्यासी पदों (स्थानों)-से युक्त वास्तु-मण्डपका आरम्भ करे॥ १—७॥

इनमें पहले द्वारन्यासके समीपवर्ती पदोंके भीतर स्थित होनेवाले देवताओंका पूजन करे। फिर परकोटेके निकटवर्ती एवं सबसे अन्तके पदोंमें स्थापित होनेवाले बत्तीस देवताओंकी पूजा करे[१]॥ ८॥

यह प्रासादका सर्वसाधारण लक्षण है। अब प्रतिमाके मानके अनुसार दूसरे प्रासादका वर्णन सुनो॥ ९॥

जितनी बड़ी प्रतिमा हो, उतनी ही बड़ी सुन्दर पिण्डी बनावे। पिण्डीके आधे मानसे गर्भका निर्माण करे और गर्भके ही मानके अनुसार भित्तियाँ उठावे। भीतोंकी लंबाईके अनुसार ही उनकी ऊँचाई रखे। विद्वान् पुरुष भीतरकी ऊँचाईसे दुगुनी शिखरकी ऊँचाई करावे। शिखरकी अपेक्षा चौथाई ऊँचाईमें मन्दिरकी परिक्रमा बनवावे तथा इसी ऊँचाईमें मन्दिरके आगेके मुख-मण्डपका भी निर्माण करावे॥ १०—१२॥

गर्भके आठवें अंशके मापका रथकोंके निकलनेका मार्ग (द्वार) बनावे। अथवा परिधिके तृतीय भागके अनुसार वहाँ रथकों (छोटे-छोटे रथों)-की रचना करावे तथा उनके भी तृतीय भागके मापका उन रथोंके निकलनेके मार्ग (द्वार)-का निर्माण करावे। तीन रथकोंपर सदा तीन वामोंकी स्थापना करे॥ १३-१४॥

शिखरके लिये चार सूत्रोंका निपातन करे। शुकनासो[२]के ऊपरसे सूतको तिरछा गिरावे।

---

१. नारदपुराण, पूर्वभाग, द्वितीय पाद, ५६वें अध्यायके ६०० से लेकर ६०३ तकके श्लोकोंमें भी यही बात कही गयी है।

२. शिखरके चार भाग करके नीचेके दो भागोंको 'शुकनासा' कहते हैं। उसके ऊपरके तीसरे भागमें वेदी होती है, जिसपर उसका कण्ठमात्र स्थित होता है। सबसे ऊपरके चतुर्थ भागमें 'आमलसार' संज्ञक कण्ठका निर्माण कराया जाना चाहिये। जैसा कि मत्स्यपुराणमें कहा है—

चतुर्धा शिखरं भज्य अर्धभागद्वयस्य तु। शुकनासं प्रकुर्वीत तृतीये वेदिका मता॥
कण्ठमामलसारं तु चतुर्थे परिकल्पयेत्। (२६९। १८-१९)

शिखरके आधे भागमें सिंहकी प्रतिमाका निर्माण करावे। शुकनासापर सूतको स्थिर करके उसे मध्य संधितक ले जाय॥ १५-१६॥

इसी प्रकार दूसरे पार्श्वमें भी सूत्रपात करे। शुकनासाके ऊपर वेदी हो और वेदीके ऊपर आमलसार नामक कण्ठसहित कलशका निर्माण कराया जाय। उसे विकराल न बनाया जाय। जहाँतक वेदीका मान है, उससे ऊपर ही कलशकी कल्पना होनी चाहिये। मन्दिरके द्वारकी जितनी चौड़ाई हो, उससे दूनी उसकी ऊँचाई रखनी चाहिये। द्वारको बहुत ही सुन्दर और शोभासम्पन्न बनाना चाहिये। द्वारके ऊपरी भागमें सुंदर मङ्गलमय वस्तुओंके साथ गूलरकी दो शाखाएँ स्थापित करे (खुदवावे)॥ १७—१९॥

द्वारके चतुर्थांशमें चण्ड, प्रचण्ड, विष्वक्सेन और वत्सदण्ड—इन चार द्वारपालोंकी मूर्तियोंका निर्माण करावे। गूलरकी शाखाओंके अर्ध भागमें सुंदर रूपवाली लक्ष्मीदेवीके श्रीविग्रहको अङ्कित करे। उनके हाथमें कमल हो और दिग्गज कलशोंके जलद्वारा उन्हें नहला रहे हों। मन्दिरके परकोटेकी ऊँचाई उसके चतुर्थांशके बराबर हो। प्रासादके गोपुरकी ऊँचाई प्रासादसे एक चौथाई कम हो। यदि देवताका विग्रह पाँच हाथका हो तो उसके लिये एक हाथकी पीठिका होनी चाहिये॥ २०—२२॥

विष्णु-मन्दिरके सामने एक गरुडमण्डप तथा भौमादि धामका निर्माण करावे। भगवान्‌के श्रीविग्रहके सब ओर आठों दिशाओंके ऊपरी भागमें भगवत्प्रतिमासे दुगुनी बड़ी अवतारोंकी मूर्तियाँ बनावे। पूर्व दिशामें वराह, दक्षिणमें नृसिंह, पश्चिममें श्रीधर, उत्तरमें हयग्रीव, अग्निकोणमें परशुराम, नैर्ऋत्यकोणमें श्रीराम, वायव्यकोणमें वामन तथा ईशानकोणमें वासुदेवकी मूर्तिका निर्माण करे। प्रासाद-रचना आठ, बारह आदि समसंख्यावाले स्तम्भोंद्वारा करनी चाहिये। द्वारके अष्टम आदि अंशको छोड़कर जो वेध होता है, वह दोषकारक नहीं होता है॥ २३—२६॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'प्रासाद आदिके लक्षणका वर्णन' नामक बयालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४२॥

तैंतालीसवाँ अध्याय

मन्दिरके देवताकी स्थापना और भूतशान्ति आदिका कथन

हयग्रीवजी कहते हैं— ब्रह्मन्! अब मैं मन्दिरमें स्थापित करनेयोग्य देवताओंका वर्णन करूँगा, आप सुनें। पञ्चायतन मन्दिरमें जो बीचका प्रधान मन्दिर हो, उसमें भगवान् वासुदेवको स्थापित करे। शेष चार मन्दिरोंमेंसे अग्निकोणवाले मन्दिरमें भगवान् वामनकी, नैर्ऋत्यकोणमें नरसिंहकी, वायव्यकोणमें हयग्रीवकी और ईशानकोणमें वराहभगवान्‌की स्थापना करे। अथवा यदि बीचमें भगवान् नारायणकी स्थापना करे तो अग्निकोणमें दुर्गाकी, नैर्ऋत्यकोणमें सूर्यकी, वायव्यकोणमें ब्रह्माकी और ईशानकोणमें लिङ्गमय शिवकी स्थापना करे। अथवा ईशानमें रुद्ररूपकी स्थापना करे। अथवा एक-एक आठ दिशाओंमें और एक बीचमें—इस प्रकार कुल नौ मन्दिर बनवावे। उनमेंसे बीचमें वासुदेवकी स्थापना करे और पूर्वादि दिशाओंमें परशुराम-राम आदि मुख्य-मुख्य नौ अवतारोंकी तथा इन्द्र आदि लोकपालोंकी स्थापना करनी चाहिये। अथवा कुल नौ धामोंमें पाँच मन्दिर मुख्य बनवावे। इनके मध्यमें भगवान् पुरुषोत्तमकी स्थापना करे॥ १—५॥

पूर्व दिशामें लक्ष्मी और कुबेरकी, दक्षिणमें मातृकागण, स्कन्द, गणेश और शिवकी, पश्चिममें सूर्य आदि नौ ग्रहोंकी तथा उत्तरमें मत्स्य आदि दस अवतारोंकी स्थापना करे। इसी प्रकार अग्निकोणमें चण्डीकी, नैर्ऋत्यकोणमें अम्बिकाकी, वायव्यकोणमें सरस्वतीकी और ईशानकोणमें लक्ष्मीजीकी स्थापना करनी चाहिये। मध्यभागमें वासुदेव अथवा नारायणकी स्थापना करे। अथवा तेरह कमरोंवाले देवालयके मध्यभागमें विश्वरूप भगवान् विष्णुकी स्थापना करे॥ ६—८॥

पूर्व आदि दिशाओंमें केशव आदि द्वादश विग्रहोंको स्थापित करे तथा इनसे अतिरिक्त गृहोंमें साक्षात् ये श्रीहरि ही विराजमान होते हैं। भगवान्‌की प्रतिमा मिट्टी, लकड़ी, लोहा, रत्न, पत्थर, चन्दन और फूल—इन सात वस्तुओंकी बनी हुई सात प्रकारकी मानी जाती है। फूल, मिट्टी तथा चन्दनकी बनी हुई प्रतिमाएँ बननेके बाद तुरंत पूजी जाती हैं। (अधिक कालके लिये नहीं होतीं।) पूजन करनेपर ये समस्त कामनाओंको पूर्ण करती हैं। अब मैं शैलमयी प्रतिमाका वर्णन करता हूँ, जहाँ प्रतिमा बनानेमें शिला (पत्थर)-का उपयोग किया जाता है॥ ९—११॥

उत्तम तो यह है कि किसी पर्वतका पत्थर लाकर प्रतिमा बनवावे। पर्वतोंके अभावमें जमीनसे निकले हुए पत्थरका उपयोग करे। ब्राह्मण आदि चारों वर्णवालोंके लिये क्रमशः सफेद, लाल, पीला और काला पत्थर उत्तम माना गया है। यदि ब्राह्मण आदि वर्णवालोंको उनके वर्णके अनुकूल उत्तम शिला न मिले तो उसमें आवश्यक वर्णकी कमीकी पूर्ति करनेके लिये नरसिंह-मन्त्रसे हवन करना चाहिये। यदि शिलामें सफेद रेखा हो तो वह बहुत ही उत्तम है, अगर काली रेखा हो तो वह नरसिंह-मन्त्रसे हवन करनेपर उत्तम होती है। यदि शिलासे काँसेके बने हुए घण्टेकी-सी आवाज निकलती हो और काटनेपर उससे चिनगारियाँ निकलती हों तो वह 'पुँल्लिङ्ग' है, ऐसा समझना चाहिये। यदि उपर्युक्त चिह्न उसमें कम दिखायी दें, तो उसे 'स्त्रीलिङ्ग' समझना चाहिये और पुँल्लिङ्ग-स्त्रीलिङ्ग-बोधक कोई रूप न होनेपर उसे 'नपुंसक' मानना चाहिये। तथा जिस शिलामें कोई मण्डलका चिह्न दिखायी दे, उसे सगर्भा समझकर त्याग देना चाहिये॥ १२—१५॥

प्रतिमा बनानेके लिये वनमें जाकर वनयाग आरम्भ करना चाहिये। वहाँ कुण्ड खोदकर और उसे लीपकर मण्डपमें भगवान् विष्णुका पूजन करना चाहिये तथा उन्हें बलि समर्पणकर कर्ममें उपयोगी टंक आदि शस्त्रोंकी भी पूजा करनी चाहिये। फिर हवन करनेके पश्चात् अगहनीके चावलके जलसे अस्त्र-मन्त्र (अस्त्राय फट्)-के उच्चारणपूर्वक उस शिलाको सींचना चाहिये। नरसिंह-मन्त्रसे उसकी रक्षा करके मूल-मन्त्र (**ॐ नमो नारायणाय**)-से पूजन करे। फिर पूर्णाहुति-होम करके आचार्य भूतोंके लिये बलि समर्पित करें। वहाँ जो भी अव्यक्तरूपसे रहनेवाले जन्तु, यातुधान (राक्षस), गुह्यक और सिद्ध आदि हों अथवा और भी जो हों, उन सबका पूजन करके इस प्रकार क्षमा-प्रार्थना करनी चाहिये॥ १६—१९॥

'भगवान् केशवकी आज्ञासे प्रतिमाके लिये हमलोगोंकी यह यात्रा हुई है। भगवान् विष्णुके लिये जो कार्य हो, वह आपलोगोंका भी कार्य है। अतः हमारे दिये हुए इस बलिदानसे आपलोग सर्वथा तृप्त हों और शीघ्र ही यह स्थान छोड़कर कुशलपूर्वक अन्यत्र चले जायँ'॥ २०-२१॥

इस प्रकार सावधान करनेपर वे जीव बड़े प्रसन्न होते हैं और सुखपूर्वक उस स्थानको छोड़कर अन्यत्र चले जाते हैं। इसके बाद

कारीगरोंके साथ यज्ञका चरु भक्षण करके रातमें सोते समय स्वप्न-मन्त्रका जप करे। 'जो समस्त प्राणियोंके निवास-स्थान हैं, व्यापक हैं, सबको उत्पन्न करनेवाले हैं, स्वयं विश्वरूप हैं और सम्पूर्ण विश्व जिनका स्वरूप है, उन स्वप्नके अधिपति भगवान् श्रीहरिको नमस्कार है। देव! देवेश्वर! मैं आपके निकट सो रहा हूँ। मेरे मनमें जिन कार्योंका संकल्प है, उन सबके सम्बन्धमें मुझसे कुछ कहिये'॥ २२—२४॥

'**ॐ ॐ हूं फट् विष्णवे स्वाहा।**' इस प्रकार मन्त्र-जप करके सो जानेपर यदि अच्छा स्वप्न हो तो सब शुभ होता है और यदि बुरा स्वप्न हुआ तो नरसिंह-मन्त्रसे हवन करनेपर शुभ होता है। सबेरे उठकर अस्त्र-मन्त्रसे शिलापर अर्घ्य दे। फिर अस्त्रकी भी पूजा करे। कुदाल (फावड़े), टंक और शस्त्र आदिके मुखपर मधु और घी लगाकर पूजन करना चाहिये। अपने-आपका विष्णुरूपसे चिन्तन करे। कारीगरको विश्वकर्मा माने और शस्त्रके भी विष्णुरूप होनेकी ही भावना करे। फिर शस्त्र कारीगरको दे और उसका मुख-पृष्ठ आदि उसे दिखा दे॥ २५—२७॥

कारीगर अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखे और हाथमें टंक लेकर उससे उस शिलाको चौकोर बनावे। फिर पिण्डी बनानेके लिये उसे कुछ छोटी करे। इसके बाद शिलाको वस्त्रमें लपेटकर रथपर रखे और शिल्पशालामें लाकर पुनः उस शिलाका पूजन करे। इसके बाद कारीगर प्रतिमा बनावे॥ २८-२९॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'मन्दिरके देवताकी स्थापना, भूतशान्ति, शिला-लक्षण और प्रतिमा-निर्माण आदिका निरूपण' नामक तैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४३॥

चौवालीसवाँ अध्याय

वासुदेव आदिकी प्रतिमाओंके लक्षण

भगवान् हयग्रीव बोले—ब्रह्मन्! अब मैं तुम्हें वासुदेव आदिकी प्रतिमाके लक्षण बताता हूँ, सुनो। मन्दिरके उत्तर भागमें शिलाको पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख रखकर उसकी पूजा करे और उसे बलि अर्पित करके कारीगर शिलाके बीचमें सूत लगाकर उसका नौ भाग करे। नवें भागको भी १२ भागोंमें विभाजित करनेपर एक-एक भाग अपने अङ्गुलसे एक अङ्गुलका होता है। दो अङ्गुलका एक गोलक होता है, जिसे 'कालनेत्र' भी कहते हैं॥ १—३॥

उक्त नौ भागोंमेंसे एक भागके तीन हिस्से करके उसमें पार्ष्णि-भागकी कल्पना करे। एक भाग घुटनेके लिये तथा एक भाग कण्ठके लिये निश्चित रखे। मुकुटको एक बित्ता रखे। मुँहका भाग भी एक बित्तेका ही होना चाहिये। इसी प्रकार एक बित्तेका कण्ठ और एक ही बित्तेका हृदय भी रहे। नाभि और लिङ्गके बीचमें एक बित्तेका अन्तर होना चाहिये। दोनों ऊरु दो बित्तेके हों। जंघा भी दो बित्तेकी हो। अब सूत्रोंका माप सुनो—॥ ४—६॥

दो सूत पैरमें और दो सूत जङ्घामें लगावे। घुटनोंमें दो सूत तथा दोनों ऊरुओंमें भी दो सूतका उपयोग करे। लिङ्गमें दूसरे दो सूत तथा कटिमें भी कमरबन्ध (करधन) बनानेके लिये दूसरे दो सूतोंका योग करे। नाभिमें भी दो सूत काममें लावे। इसी प्रकार हृदय और कण्ठमें दो सूतका उपयोग करे। ललाटमें दूसरे और मस्तकमें दूसरे दो सूतोंका उपयोग करे। बुद्धिमान् कारीगरोंको

मुकुटके ऊपर एक सूत करना चाहिये। ब्रह्मन्! ऊपर सात ही सूत देने चाहिये। तीन कक्षाओंके अन्तरसे ही छः सूत्र दिलावे। फिर मध्य-सूत्रको त्याग दे और केवल सूत्रोंको ही निवेदित करे॥ ७—११॥

ललाट, नासिका और मुखका विस्तार चार अङ्गुलका होना चाहिये। गला और कानका भी चार-चार अङ्गुल विस्तार करना चाहिये। दोनों ओरकी हनु (ठोढ़ी) दो-दो अङ्गुल चौड़ी हो और चिबुक (ठोढ़ीके बीचका भाग) भी दो अङ्गुलका हो। पूरा विस्तार छः अङ्गुलका होना चाहिये। इसी प्रकार ललाट भी विस्तारमें आठ अङ्गुलका बताया गया है। दोनों ओरके शङ्ख दो-दो अङ्गुलके बनाये जायँ और उनपर बाल भी हों। कान और नेत्रके बीचमें चार अङ्गुलका अन्तर रहना चाहिये। दो-दो अङ्गुलके कान एवं पृथुक बनावे। भौंहोंके समान सूत्रके मापका कानका स्रोत कहा गया है। बिंधा हुआ कान छः अङ्गुलका हो और बिना बिंधा हुआ चार अङ्गुलका। अथवा बिंधा हो या बिना बिंधा, सब चिबुकके समान छः अङ्गुलका होना चाहिये॥ १२—१६॥

गन्धपात्र, आवर्त तथा शष्कुली (कानका पूरा घेरा) भी बनावे। एक अङ्गुलमें नीचेका ओठ और आधे अङ्गुलका ऊपरका ओठ बनावे। नेत्रका विस्तार आधा अङ्गुल हो और मुखका विस्तार चार अङ्गुल हो। मुखकी चौड़ाई डेढ़ अङ्गुलकी होनी चाहिये। नाककी ऊँचाई एक अङ्गुल हो और ऊँचाईसे आगे केवल लंबाई दो अङ्गुलकी रहे। करवीर-कुसुमके समान उसकी आकृति होनी चाहिये। दोनों नेत्रोंके बीच चार अङ्गुलका अन्तर हो। दो अङ्गुल तो आँखके घेरेमें आ जाता है, सिर्फ दो अङ्गुल अन्तर रह जाता है। पूरे नेत्रका तीन भाग करके एक भागके बराबर तारा (काली पुतली) बनावे और पाँच भाग करके, एक भागके बराबर दृक्तारा (छोटी पुतली) बनावे। नेत्रका विस्तार दो अङ्गुलका हो और द्रोणी आधे अङ्गुलकी। उतना ही प्रमाण भौंहोंकी रेखाका हो। दोनों ओरकी भौंहें बराबर रहनी चाहिये। भौंहोंका मध्य दो अङ्गुलका और विस्तार चार अङ्गुलका होना चाहिये॥ १७—२२॥

भगवान् केशव आदिकी मूर्तियोंके मस्तकका पूरा घेरा छब्बीस अङ्गुलका होवे अथवा बत्तीस अङ्गुलका। नीचे ग्रीवा (गला) पाँच नेत्र (अर्थात् दस अङ्गुल)-की हो और इसके तीन गुना अर्थात् तीस अङ्गुल उसका वेष्टन (चारों ओरका घेरा) हो। नीचेसे ऊपरकी ओर ग्रीवाका विस्तार आठ अङ्गुलका हो। ग्रीवा और छातीके बीचका अन्तर ग्रीवाके तीन गुने विस्तारवाला होना चाहिये। दोनों ओरके कंधे आठ-आठ अङ्गुलके और सुन्दर अंस तीन-तीन अङ्गुलके हों। सात नेत्र (यानी चौदह अङ्गुल)-की दोनों बाहें और सोलह अङ्गुलकी दोनों प्रबाहुएँ हों (बाहु और प्रबाहु मिलकर पूरी बाँह समझी जाती है)। बाहुओंकी चौड़ाई छः अङ्गुलकी हो। प्रबाहुओंकी भी इनके समान ही होनी चाहिये। बाहुदण्डका चारों ओरका घेरा कुछ ऊपरसे लेकर नौ कला अथवा सत्रह अङ्गुल समझना चाहिये। आधेपर बीचमें कूर्पर (कोहनी) है। कूर्परका घेरा सोलह अङ्गुलका होता है। ब्रह्माजी! प्रबाहुके मध्यमें उसका विस्तार सोलह अङ्गुलका हो। हाथके अग्रभागका विस्तार बारह अङ्गुल हो और उसके बीच करतलका विस्तार छः अङ्गुल कहा गया है। हाथकी चौड़ाई सात अङ्गुलकी करे। हाथके मध्यमा अङ्गुलीकी लंबाई पाँच अङ्गुलकी हो और तर्जनी तथा अनामिकाकी लंबाई उससे आधा अङ्गुल कम अर्थात् ४॥ अङ्गुलकी करे।

कनिष्ठिका और अँगूठेकी लंबाई चार अङ्गुलकी करे। अँगूठेमें दो पोरु बनावे और बाकी सभी अँगुलियोंमें तीन-तीन पोरु रखे। सभी अँगुलियोंके एक-एक पोरुके आधे भागके बराबर प्रत्येक अँगुलीके नखकी नाप समझनी चाहिये। छातीकी जितनी माप हो, पेटकी उतनी ही रखे। एक अङ्गुलके छेदवाली नाभि हो। नाभिसे लिङ्गके बीचका अन्तर एक बित्ता होना चाहिये॥ २३—३३॥

नाभि—मध्याङ्ग (उदर)-का घेरा बयालीस अङ्गुलका हो। दोनों स्तनोंके बीचका अन्तर एक बित्ता होना चाहिये। स्तनोंका अग्रभाग—चुचुक यवके बराबर बनावे। दोनों स्तनोंका घेरा दो पदोंके बराबर हो। छातीका घेरा चौंसठ अङ्गुलका बनावे। उसके नीचे और चारों ओरका घेरा 'वेष्टन' कहा गया है। इसी प्रकार कमरका घेरा चौवन अङ्गुलका होना चाहिये। ऊरुओंके मूलका विस्तार बारह-बारह अङ्गुलका हो। इसके ऊपर मध्यभागका विस्तार अधिक रखना चाहिये। मध्यभागसे नीचेके अङ्गोंका विस्तार क्रमशः कम होना चाहिये। घुटनोंका विस्तार आठ अङ्गुलका करे और उसके नीचे जंघाका घेरा तीन गुना, अर्थात् चौबीस अङ्गुलका हो; जंघाके मध्यका विस्तार सात अङ्गुलका होना चाहिये और उसका घेरा तीन गुना, अर्थात् इक्कीस अङ्गुलका हो। जंघाके अग्रभागका विस्तार पाँच अङ्गुल और उसका घेरा तीन गुना—पंद्रह अङ्गुलका हो। चरण एक-एक बित्ते लंबे होने चाहिये। विस्तारसे उठे हुए पैर अर्थात् पैरोंकी ऊँचाई चार अङ्गुलकी हो। गुल्फ (घुट्ठी)-से पहलेका हिस्सा भी चार अङ्गुलका ही हो॥ ३४—४०॥

दोनों पैरोंकी चौड़ाई छः अङ्गुलकी, गुह्यभाग तीन अङ्गुलका और उसका पंजा पाँच अङ्गुलका होना चाहिये। पैरोंमें प्रदेशिनी, अर्थात् अँगूठा चौड़ा होना उचित है। शेष अँगुलियोंके मध्यभागका विस्तार क्रमशः पहली अँगुलीके आठवें-आठवें भागके बराबर कम होना चाहिये। अँगूठेकी ऊँचाई सवा अङ्गुल बतायी गयी है। इसी प्रकार अँगूठेके नखका प्रमाण और अँगुलियोंसे दूना रखना चाहिये। दूसरी अँगुलीके नखका विस्तार आधा अङ्गुल तथा अन्य अँगुलियोंके नखोंका विस्तार क्रमशः जरा-जरा-सा कम कर देना चाहिये॥ ४१—४३॥

दोनों अण्डकोष तीन-तीन अङ्गुल लंबे बनावे और लिङ्ग चार अङ्गुल लंबा करे। इसके ऊपरका भाग चार अङ्गुल रखे। अण्डकोषोंका पूरा घेरा छः-छः अङ्गुलका होना चाहिये। इसके सिवा भगवान्‌की प्रतिमा सब प्रकारके भूषणोंसे भूषित करनी चाहिये। यह लक्षण उद्देश्यमात्र (संक्षेपसे) बताया गया है॥ ४४-४५॥

इसी प्रकार लोकमें देखे जानेवाले अन्य लक्षणोंको भी दृष्टिमें रखकर प्रतिमामें उसका निर्माण करना चाहिये। दाहिने हाथोंमेंसे ऊपरवाले हाथमें चक्र और नीचेवाले हाथमें पद्म धारण करावे। बायें हाथोंमेंसे ऊपरवाले हाथमें शङ्ख और नीचेवाले हाथमें गदा बनावे। यह वासुदेव श्रीकृष्णका चिह्न है, अतः उन्हींकी प्रतिमामें रहना चाहिये। भगवान्‌के निकट हाथमें कमल लिये हुए लक्ष्मी तथा वीणा धारण किये पुष्टि देवीकी भी प्रतिमा बनावे। इनकी ऊँचाई (भगवद्विग्रहके) ऊरुओंके बराबर होनी चाहिये। इनके अलावा प्रभामण्डलमें स्थित मालाधर और विद्याधरका विग्रह बनावे। प्रभा हस्ती आदिसे भूषित होती है। भगवान्‌के चरणोंके नीचेका भाग अर्थात् पादपीठ कमलके आकारका बनावे। इस प्रकार देव-प्रतिमाओंमें उक्त लक्षणोंका समावेश करना चाहिये॥ ४६—४९॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'वासुदेव आदिकी प्रतिमाओंके लक्षणका वर्णन' नामक चौवालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४४॥

पैंतालीसवाँ अध्याय

पिण्डिका आदिके लक्षण

भगवान् हयग्रीव कहते हैं— ब्रह्मन्! अब मैं पिण्डिकाका लक्षण बता रहा हूँ। पिण्डिका लंबाईमें प्रतिमाके समान ही होती है, परंतु उसकी ऊँचाई प्रतिमासे आधी होती है। पिण्डिकाको चौंसठ कुटों (पदों या कोष्ठकों)-से युक्त करके नीचेकी दो पङ्क्ति छोड़ दे और उसके ऊपरका जो कोष्ठ है, उसे चारों ओर दोनों पार्श्वोंमें भीतरकी ओरसे मिटा दे। इसी तरह ऊपरकी दो पङ्क्तियोंको त्यागकर उसके नीचेका जो एक कोष्ठ (या एक पङ्क्ति) है, उसे भीतरकी ओरसे यत्नपूर्वक मिटा दे। दोनों पार्श्वोंमें समान रूपसे यह क्रिया करे॥ १—३॥

दोनों पार्श्वोंके मध्यगत जो दो चौक हैं, उनका भी मार्जन कर दे। तदनन्तर उसे चार भागोंमें बाँटकर विद्वान् पुरुष ऊपरकी दो पङ्क्तियोंको मेखला माने। मेखलाभागकी जो मात्रा है, उसके आधे मानके अनुसार उसमें खात खुदावे। फिर दोनों पार्श्वभागोंमें समानरूपसे एक-एक भागको त्यागकर बाहरकी ओरका एक पद नाली बनानेके लिये दे दे। विद्वान् पुरुष उसमें नाली बनवाये। फिर तीन भागमें जो एक भाग है, उसके आगे जल निकलनेका मार्ग रहे॥ ४—६॥

नाना प्रकारके भेदसे यह शुभ पिण्डिका 'भद्रा' कही गयी है। लक्ष्मी देवीकी प्रतिमा ताल (हथेली)-के मापसे आठ तालकी बनायी जानी चाहिये। अन्य देवियोंकी प्रतिमा भी ऐसी ही हो। दोनों भौंहोंको नासिकाकी अपेक्षा एक-एक जौ अधिक बनावे और नासिकाको उनकी अपेक्षा एक जौ कम। मुखकी गोलाई नेत्रगोलकसे बड़ी होनी चाहिये। वह ऊँचा और टेढ़ा-मेढ़ा न हो। आँखें बड़ी-बड़ी बनानी चाहिये। उनका माप सवा तीन जौके बराबर हो। नेत्रोंकी चौड़ाई उनकी लंबाईकी अपेक्षा आधी करे। मुखके एक कोनेसे लेकर दूसरे कोनेतककी जितनी लंबाई है, उसके बराबरके सूतसे नापकर कर्णपाश (कानका पूरा घेरा) बनावे। उसकी लंबाई उक्त सूतसे कुछ अधिक ही रखे। दोनों कंधोंको कुछ झुका हुआ और एक कलासे रहित बनावे। ग्रीवाकी लंबाई डेढ़ कला रखनी चाहिये। वह उतनी ही चौड़ाईसे भी सुशोभित हो। दोनों ऊरुओंका विस्तार ग्रीवाकी अपेक्षा एक नेत्र[1] कम होगा। जानु (घुटने), पिण्डली, पैर, पीठ, नितम्ब तथा कटिभाग—इन सबकी यथायोग्य कल्पना करे॥ ७—११$\frac{1}{2}$॥

हाथकी अँगुलियाँ बड़ी हों। वे परस्पर अवरुद्ध न हों। बड़ी अँगुलीकी अपेक्षा छोटी अँगुलियाँ सातवें अंशसे रहित हों। जंघा, ऊरु और कटि—इनकी लंबाई क्रमशः एक-एक नेत्र कम हो। शरीरके मध्यभागके आस-पासका अङ्ग गोल हो। दोनों कुच घने (परस्पर सटे हुए) और पीन (उभड़े हुए) हों। स्तनोंका माप हथेलीके बराबर हो। कटि उनकी अपेक्षा डेढ़ कला अधिक बड़ी हो। शेष चिह्न पूर्ववत् रहें। लक्ष्मीजीके दाहिने हाथमें कमल और बायें हाथमें बिल्वफल हो।[2] उनके पार्श्वभागमें हाथमें चँवर लिये दो सुन्दरी स्त्रियाँ खड़ी हों[3]। सामने बड़ी नाकवाले गरुडकी स्थापना करे। अब मैं चक्राङ्कित (शालग्राम) मूर्ति आदिका वर्णन करता हूँ॥ १२—१५॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'पिण्डिका आदिके लक्षणका वर्णन' नामक पैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४५॥

---

१. नेत्रकी जो लंबाई और चौड़ाई है, उतने मापको 'एक नेत्र' कहते हैं।

२. मत्स्यपुराणमें दाहिने हाथमें श्रीफल और बायें हाथमें कमलका उल्लेख है—
'पद्मं हस्ते प्रदातव्यं श्रीफलं दक्षिणे करे।' (२६१।४३)

३. मत्स्यपुराणमें अनेक चामरधारिणी स्त्रियोंका वर्णन है—'पार्श्वे तस्याः स्त्रियः कार्याश्चामरव्यग्रपाणयः।' (२६१।४५)

छियालीसवाँ अध्याय

शालग्राम-मूर्तियोंके लक्षण

भगवान् हयग्रीव कहते हैं— ब्रह्मन्! अब मैं शालग्रामगत भगवन्मूर्तियोंका वर्णन आरम्भ करता हूँ, जो भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली हैं। जिस शालग्राम-शिलाके द्वारमें दो चक्रके चिह्न हों और जिसका वर्ण श्वेत हो, उसकी 'वासुदेव' संज्ञा है। जिस उत्तम शिलाका रंग लाल हो और जिसमें दो चक्रके चिह्न संलग्न हों, उसे भगवान् 'संकर्षण'का श्रीविग्रह जानना चाहिये। जिसमें चक्रका सूक्ष्म चिह्न हो, अनेक छिद्र हों, नील वर्ण हो और आकृति बड़ी दिखायी देती हो, वह 'प्रद्युम्न'की मूर्ति है।[१] जहाँ कमलका चिह्न हो, जिसकी आकृति गोल और रंग पीला[२] हो तथा जिसमें दो-तीन रेखाएँ शोभा पा रही हों, यह 'अनिरुद्ध'का श्रीअङ्ग है। जिसकी कान्ति काली, नाभि उन्नत और जिसमें बड़े-बड़े छिद्र हों, उसे 'नारायण'का स्वरूप समझना चाहिये। जिसमें कमल और चक्रका चिह्न हो, पृष्ठभागमें छिद्र हो और जो बिन्दुसे युक्त हो, वह शालग्राम 'परमेष्ठी' नामसे प्रसिद्ध है। जिसमें चक्रका स्थूल चिह्न हो, जिसकी कान्ति श्याम हो और मध्यमें गदा-जैसी रेखा हो, उस शालग्रामकी 'विष्णु' संज्ञा है॥ १—४॥

नृसिंह-विग्रहमें चक्रका स्थूल चिह्न होता है। उसकी कान्ति कपिल वर्णकी होती है और उसमें पाँच बिन्दु सुशोभित होते हैं।[३] वाराह-विग्रहमें शक्ति नामक अस्त्रका चिह्न होता है। उसमें दो चक्र होते हैं, जो परस्पर विषम (समानतासे रहित) हैं। उसकी कान्ति इन्द्रनील मणिके समान नीली होती है। वह तीन स्थूल रेखाओंसे चिह्नित एवं शुभ होता है।[४] जिसका पृष्ठभाग ऊँचा हो, जो गोलाकार आवर्तचिह्नसे युक्त एवं श्याम हो, उस शालग्रामकी 'कूर्म' (कच्छप) संज्ञा है[५]॥ ५-६॥

जो अंकुशकी-सी रेखासे सुशोभित, नीलवर्ण एवं बिन्दुयुक्त हो, उस शालग्राम-शिलाको 'हयग्रीव' कहते हैं। जिसमें एक चक्र और कमलका चिह्न हो, जो मणिके समान प्रकाशमान तथा पुच्छाकार रेखासे शोभित हो, उस शालग्रामको 'वैकुण्ठ' समझना चाहिये।[६] जिसकी आकृति बड़ी हो, जिसमें तीन बिन्दु शोभा पाते हों, जो काँचके समान श्वेत तथा भरा-पूरा हो, वह शालग्राम-शिला मत्स्यावतारधारी भगवान्‌की मूर्ति मानी जाती है।[७] जिसमें वनमालाका चिह्न और पाँच रेखाएँ हों, उस गोलाकार शालग्राम-शिलाको 'श्रीधर' कहते हैं[८]॥ ७-८॥

गोलाकार, अत्यन्त छोटी, नीली एवं बिन्दुयुक्त शालग्राम-शिलाकी 'वामन' संज्ञा है।[९] जिसकी कान्ति श्याम हो, दक्षिण भागमें हारकी रेखा और बायें भागमें बिन्दुका चिह्न हो, उस शालग्राम-

१. वाचस्पत्कोषमें संकलित गरुड़पुराण (४५वें अध्याय)-के निम्नाङ्कित वचनसे 'प्रद्युम्न-शिलाका पीतवर्ण सूचित होता है।' यथा—'अथ प्रद्युम्नः सूक्ष्मचक्रस्तु पीतकः।'

२. उक्त ग्रन्थके अनुसार ही अनिरुद्धका नीलवर्ण सूचित होता है। यथा—'अनिरुद्धस्तु वर्तुलो नीलो द्वारि त्रिरेखश्च।'

३. पृथुचक्रो नृसिंहोऽथ कपिलोऽव्यात्त्रिबिन्दुकः। अथवा पञ्चबिन्दुस्तत्पूजनं ब्रह्मचारिणाम्॥ (इति गरुडपुराणेऽपि)

४. वराहः शुभलिङ्गोऽव्याद् विषमस्थद्विचक्रकः। नीलस्त्रिरेखः स्थूलः। (ग०पु०)

५. अथ कूर्ममूर्तिः स बिन्दुमान्। कृष्णः स वर्तुलावर्तः पातु चोन्नतपृष्ठकः। (ग०पु०)

६. हयग्रीवोऽङ्कुशाकारः पञ्चरेखः सकौस्तुभः। वैकुण्ठो मणिरत्नाभ एकचक्राम्बुजोऽसितः॥ (ग०पु०)

७. मत्स्यो दीर्घाम्बुजाकारो हाररेखश्च पातु वः। (ग०पु०)

८. श्रीधरः पञ्चरेखोऽव्याद् वनमाली गदान्वितः। (ग०पु०) (वाचस्पत्यकोषसे संकलित)

९. वामनो वर्तुलो ह्रस्वः वामचक्रः सुरेश्वरः। (ग० पु०)

शिलाको 'त्रिविक्रम' कहते हैं[1] ॥ ९ ॥

जिसमें सर्पके शरीरका चिह्न हो, अनेक प्रकारकी आभाएँ दीखती हों तथा जो अनेक मूर्तियोंसे मण्डित हो, वह शालग्राम-शिला 'अनन्त' (शेषनाग) कही गयी है।[2] जो स्थूल हो, जिसके मध्यभागमें चक्रका चिह्न हो तथा अधोभागमें सूक्ष्म बिन्दु शोभा पा रहा हो, उस शालग्रामकी 'दामोदर' संज्ञा है।[3] एक चक्रवाले शालग्रामको सुदर्शन कहते हैं, दो चक्र होनेसे उसकी 'लक्ष्मीनारायण' संज्ञा होती है। जिसमें तीन चक्र हों, वह शिला भगवान् 'अच्युत' अथवा 'त्रिविक्रम' है। चार चक्रोंसे युक्त शालग्रामको 'जनार्दन', पाँच चक्रवालेको 'वासुदेव', छः चक्रवालेको 'प्रद्युम्न' तथा सात चक्रवालेको 'संकर्षण' कहते हैं। आठ चक्रवाले शालग्रामकी 'पुरुषोत्तम' संज्ञा है। नौ चक्रवालेको 'नवव्यूह' कहते हैं। दस चक्रोंसे युक्त शिलाकी 'दशावतार' संज्ञा है। ग्यारह चक्रोंसे युक्त होनेपर उसे 'अनिरुद्ध', द्वादश चक्रोंसे चिह्नित होनेपर 'द्वादशात्मा' तथा इससे अधिक चक्रोंसे युक्त होनेपर उसे 'अनन्त' कहते हैं ॥ १०—१३ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'शालग्रामगत मूर्तियोंके लक्षणका वर्णन' नामक छियालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४६ ॥

सैंतालीसवाँ अध्याय

शालग्राम-विग्रहोंकी पूजाका वर्णन

भगवान् हयग्रीव कहते हैं— ब्रह्मन्! अब मैं तुम्हारे सम्मुख पूर्वोक्त चक्राङ्कित शालग्राम-विग्रहोंकी पूजाका वर्णन करता हूँ, जो सिद्धि प्रदान करनेवाली है। श्रीहरिकी पूजा तीन प्रकारकी होती है—काम्या, अकाम्या और उभयात्मिका। मत्स्य आदि पाँच विग्रहोंकी पूजा काम्या अथवा उभयात्मिका हो सकती है। पूर्वोक्त चक्रादिसे सुशोभित वराह, नृसिंह और वामन—इन तीनोंकी पूजा मुक्तिके लिये करनी चाहिये। अब शालग्राम-पूजनके विषयमें सुनो, जो तीन प्रकारकी होती है। इनमें निष्कला पूजा उत्तम, सकला पूजा कनिष्ठ और मूर्तिपूजाको मध्यम माना गया है। चौकोर मण्डलमें स्थित कमलपर पूजाकी विधि इस प्रकार है—हृदयमें प्रणवका न्यास करते हुए षडङ्गन्यास करे। फिर करन्यास और व्यापक न्यास करके तीन मुद्राओंका प्रदर्शन करे। तत्पश्चात् चक्रके बाह्यभागमें पूर्व दिशाकी ओर गुरुदेवका पूजन करे। पश्चिम दिशामें गणका, वायव्यकोणमें धाताका एवं नैर्ऋत्यकोणमें विधाताका पूजन करे। दक्षिण और उत्तर दिशामें क्रमशः कर्ता और हर्ताकी पूजा करे। इसी प्रकार ईशानकोणमें विष्वक्सेन और अग्निकोणमें क्षेत्रपालकी पूजा करे। फिर पूर्वादि दिशाओंमें ऋग्वेद आदि चारों वेदोंकी पूजा करके आधारशक्ति, अनन्त, पृथिवी, योगपीठ, पद्म तथा सूर्य, चन्द्र और ब्रह्मात्मक अग्नि—इन तीनोंके मण्डलोंका यजन करे। तदनन्तर द्वादशाक्षर मन्त्रसे आसनपर शिलाकी स्थापना करके पूजन करे। फिर मूल मन्त्रके विभाग करके एवं सम्पूर्ण मन्त्रसे क्रमपूर्वक पूजन करे। फिर प्रणवसे पूजन करनेके पश्चात् तीन मुद्राओंका

१. वामचक्रो हाररेखः श्यामो वोऽव्यात् त्रिविक्रमः। (ग० पु०)
२. नानावर्णोऽनेकमूर्तिर्नागभोगी त्वनन्तकः। (ग० पु०)
३. स्थूलो दामोदरो नीलो मध्येचक्रः सनीलकः। (ग० पु०)

प्रदर्शन करे॥ १—९॥

इस प्रकार यह शालग्रामकी प्रथम पूजा निष्कला कही जाती है। पूर्ववत् षोडशदलकमलसे युक्त मण्डलको अङ्कित करे। उसमें शङ्ख, चक्र, गदा और खड्ग—इन आयुधोंकी तथा गुरु आदिकी पहलेकी भाँति पूजा करे। पूर्व और उत्तर दिशाओंमें क्रमशः धनुष और बाणकी पूजा करे। प्रणवमन्त्रसे आसन समर्पण करे और द्वादशाक्षर मन्त्रसे शिलाका न्यास करना चाहिये। अब तीसरे प्रकारकी कनिष्ठ पूजाका वर्णन करता हूँ, सुनो। अष्टदलकमल अङ्कित करके उसपर पहलेके समान गुरु आदिकी पूजा करे। फिर अष्टाक्षर मन्त्रसे आसन देकर उसीसे शिलाका न्यास करे॥ १०—१३ $\frac{1}{2}$॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'शालग्राम आदिकी पूजाका वर्णन' विषयक सैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४७॥

अड़तालीसवाँ अध्याय

चतुर्विंशति-मूर्तिस्तोत्र एवं द्वादशाक्षर स्तोत्र

श्रीभगवान् हयग्रीव कहते हैं—ब्रह्मन्! ओंकारस्वरूप केशव अपने हाथोंमें पद्म, शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले हैं*। नारायण शङ्ख, पद्म, गदा और चक्र धारण करते हैं, मैं प्रदक्षिणापूर्वक उनके चरणोंमें नतमस्तक होता हूँ। माधव गदा, चक्र, शङ्ख और पद्म धारण करनेवाले हैं, मैं उनको नमस्कार करता हूँ। गोविन्द अपने हाथोंमें क्रमशः चक्र, गदा, पद्म और शङ्ख धारण करनेवाले तथा बलशाली हैं। श्रीविष्णु गदा, पद्म, शङ्ख एवं चक्र धारण करते हैं, वे मोक्ष देनेवाले हैं। मधुसूदन शङ्ख, चक्र, पद्म और गदा धारण करते हैं। मैं उनके सामने भक्तिभावसे नतमस्तक होता हूँ। त्रिविक्रम क्रमशः पद्म, गदा, चक्र एवं शङ्ख धारण करते हैं। भगवान् वामनके हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा एवं पद्म शोभा पाते हैं, वे सदा मेरी रक्षा करें॥ १—४॥

श्रीधर कमल, चक्र, शार्ङ्ग धनुष एवं शङ्ख धारण करते हैं। वे सबको सद्गति प्रदान करनेवाले हैं। हृषीकेश गदा, चक्र, पद्म एवं शङ्ख धारण करते हैं, वे हम सबकी रक्षा करें। वरदायक भगवान् पद्मनाभ शङ्ख, पद्म, चक्र और गदा धारण करते हैं। दामोदरके हाथोंमें पद्म, शङ्ख, गदा और चक्र शोभा पाते हैं, मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ। गदा, शङ्ख, चक्र और पद्म धारण करनेवाले वासुदेवने ही सम्पूर्ण जगत्का विस्तार किया है। गदा, शङ्ख, पद्म और चक्र धारण करनेवाले संकर्षण आपलोगोंकी रक्षा करें॥ ५—७॥

वाद (युद्ध)-कुशल भगवान् प्रद्युम्न चक्र, शङ्ख, गदा और पद्म धारण करते हैं। अनिरुद्ध चक्र, गदा, शङ्ख और पद्म धारण करनेवाले हैं, वे हमलोगोंकी रक्षा करें। सुरेश्वर पुरुषोत्तम चक्र, कमल, शङ्ख और गदा धारण करते हैं, भगवान् अधोक्षज पद्म, गदा, शङ्ख और चक्र धारण करनेवाले हैं। वे आपलोगोंकी रक्षा करें। नृसिंहदेव चक्र, कमल, गदा और शङ्ख धारण करनेवाले हैं, मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ। श्रीगदा, पद्म, चक्र

* अस्त्र-धारणका यह क्रम दाहिने भागके नीचेवाले हाथसे आरम्भ होकर बायें भागके नीचेवाले हाथतक जाता है। अर्थात् केशव दायें भागके निचले हाथमें पद्म, ऊपरवाले हाथमें शङ्ख, बायें भागके ऊपरवाले हाथमें चक्र और नीचेवाले हाथमें गदा धारण करते हैं। ऐसा ही सर्वत्र समझना चाहिये। मतान्तरके अनुसार दाहिने हाथके ऊपरवाले हाथसे भी यह क्रम आरम्भ होता है।

और शङ्ख धारण करनेवाले अच्युत आपलोगोंकी रक्षा करें। शङ्ख, गदा, चक्र और पद्म धारण करनेवाले बालवटुरूपधारी वामन, पद्म, चक्र, शङ्ख और गदा धारण करनेवाले जनार्दन, शङ्ख, पद्म, चक्र और गदाधारी यज्ञस्वरूप श्रीहरि तथा शङ्ख, गदा, पद्म एवं चक्र धारण करनेवाले श्रीकृष्ण मुझे भोग और मोक्ष देनेवाले हों॥ ८—१२॥

आदिमूर्ति भगवान् वासुदेव हैं। उनसे संकर्षण प्रकट हुए। संकर्षणसे प्रद्युम्न और प्रद्युम्नसे अनिरुद्धका प्रादुर्भाव हुआ। इनमेंसे एक-एक क्रमशः केशव आदि मूर्तियोंके भेदसे तीन-तीन रूपोंमें अभिव्यक्त हुआ। (अतः कुल मिलाकर बारह स्वरूप हुए)[१]। चौबीस-मूर्तियोंकी स्तुतिसे युक्त इस द्वादशाक्षर स्तोत्रका जो पाठ अथवा श्रवण करता है, वह निर्मल होकर सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है[२]॥ १३—१५॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'श्रीहरिकी चौबीस मूर्तियोंके स्तोत्रका वर्णन' नामक अड़तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४८॥

उनचासवाँ अध्याय

मत्स्यादि दशावतारोंकी प्रतिमाओंके लक्षणोंका वर्णन

भगवान् हयग्रीव कहते हैं— ब्रह्मन्! अब मैं तुम्हें मत्स्य आदि दस अवतार-विग्रहोंका लक्षण बताता हूँ। मत्स्यभगवान्की आकृति मत्स्यके समान और कूर्म भगवान्की प्रतिमा कूर्म (कच्छप)-के आकारकी होनी चाहिये। पृथ्वीके उद्धारक भगवान् वराहको मनुष्याकार बनाना चाहिये, वे दाहिने हाथमें गदा और चक्र धारण करते हैं। उनके बायें हाथमें शङ्ख और पद्म शोभा पाते हैं।

---

१. तात्पर्य यह है कि वासुदेवसे केशव, नारायण और माधवकी, संकर्षणसे गोविन्द, विष्णु और मधुसूदनकी, प्रद्युम्नसे त्रिविक्रम, वामन और श्रीधरकी तथा अनिरुद्धसे हृषीकेश, पद्मनाभ एवं दामोदरकी अभिव्यक्ति हुई।

२. इस अध्यायमें बारह श्लोक स्तुतिके हैं। प्रत्येक श्लोकमें भगवान्की दो-दो मूर्तियोंका स्तवन हुआ तथा इन बारहों श्लोकोंके आदिका एक-एक अक्षर जोड़नेसे 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' यह द्वादशाक्षर मन्त्र बनता है। इसीलिये इसे द्वादशाक्षर-स्तोत्र एवं चौबीस मूर्तियोंका स्तोत्र कहते हैं।

श्रीभगवानुवाच—

ॐरूपः केशवः पद्मशङ्खचक्रगदाधरः। नारायणः शङ्खपद्मगदाचक्री प्रदक्षिणम्॥ १॥
नतो गदी माधवोऽरिशङ्खपद्मी नमामि तम्। चक्रकौमोदकीपद्मशङ्खी गोविन्द ऊर्जितः॥ २॥
मोक्षदः श्रीगदी पद्मी शङ्खी विष्णुश्च चक्रधृक्। शङ्खचक्राब्जगदिनं मधुसूदनमानमे॥ ३॥
भक्त्या त्रिविक्रमः पद्मगदी चक्री च शङ्ख्यपि। शङ्खचक्रगदापद्मी वामनः पातु मां सदा॥ ४॥
गतिदः श्रीधरः पद्मी चक्रशार्ङ्गी च शङ्ख्यपि। हृषीकेशो गदी चक्री पद्मी शङ्खी च पातु नः॥ ५॥
वरदः पद्मनाभस्तु शङ्खाब्जारिगदाधरः। दामोदरः पद्मशङ्खगदाचक्री नमामि तम्॥ ६॥
तेने गदी शङ्खचक्री वासुदेवोऽब्जभृज्जगत्। संकर्षणो गदी शङ्खी पद्मी चक्री च पातु वः॥ ७॥
वादी चक्री शङ्खगदी प्रद्युम्नः पद्मभृत्प्रभुः। अनिरुद्धश्चक्रगदी शङ्खी पद्मी च पातु नः॥ ८॥
सुरेशोऽर्यब्जशङ्खाढ्यः श्रीगदी पुरुषोत्तमः। अधोक्षजः पद्मगदी शङ्खचक्री च पातु वः॥ ९॥
देवो नृसिंहश्चक्राब्जगदी शङ्खी नमामि तम्। अच्युतः श्रीगदी पद्मी चक्री शङ्खी च पातु वः॥ १०॥
बालरूपी शङ्खगदी उपेन्द्रश्चक्रपद्म्यपि। जनार्दनः पद्मचक्री शङ्खधारी गदाधरः॥ ११॥
यज्ञः शङ्खी पद्मचक्री हरिः कौमोदकीधरः। कृष्णः शङ्खी गदी पद्मी चक्री मे भुक्तिमुक्तिदः॥ १२॥
आदिमूर्तिर्वासुदेवस्तस्मात्संकर्षणोऽभवत्। संकर्षणाच्च प्रद्युम्नः प्रद्युम्नादनिरुद्धकः॥ १३॥
केशवादिप्रभेदेन एकैकः स्यात्त्रिधा क्रमात्॥ १४॥
द्वादशाक्षरकं स्तोत्रं चतुर्विंशतिमूर्तिमत्। यः पठेच्छृणुयाद्वाऽपि निर्मलः सर्वमाप्नुयात्॥ १५॥

अथवा पद्मके स्थानपर वाम भागमें पद्मा देवी सुशोभित होती हैं। लक्ष्मी उनके बायें कूर्पर (कोहनी)-का सहारा लिये रहती हैं। पृथ्वी तथा अनन्त चरणोंके अनुगत होते हैं। भगवान् वराहकी स्थापनासे राज्यकी प्राप्ति होती है और मनुष्य भवसागरसे पार हो जाता है। नरसिंहका मुँह खुला हुआ है। उन्होंने अपनी बायीं जाँघपर दानव हिरण्यकशिपुको दबा रखा है और उस दैत्यके वक्षको विदीर्ण करते दिखायी देते हैं। उनके गलेमें माला है और हाथोंमें चक्र एवं गदा प्रकाशित हो रहे हैं॥ १—४॥

वामनका विग्रह छत्र एवं दण्डसे सुशोभित होता है अथवा उनका विग्रह चतुर्भुज बनाया जाय। परशुरामके हाथोंमें धनुष और बाण होना चाहिये। वे खड्ग और फरसेसे भी शोभित होते हैं। श्रीरामचन्द्रजीके श्रीविग्रहको धनुष, बाण, खड्ग और शङ्खसे सुशोभित करना चाहिये। अथवा वे द्विभुज माने गये हैं। बलरामजी गदा एवं हल धारण करनेवाले हैं, अथवा उन्हें भी चतुर्भुज बनाना चाहिये। उनके बायें भागके ऊपरवाले हाथमें हल धारण करावे और नीचेवालेमें सुन्दर शोभावाली शङ्ख, दायें भागके ऊपरवाले हाथमें मुसल धारण करावे और नीचेवाले हाथमें शोभायमान सुदर्शन चक्र॥ ५—७॥

बुद्धदेवकी प्रतिमाका लक्षण यों है। बुद्ध ऊँचे पद्ममय आसनपर बैठे हैं। उनके एक हाथमें वरद और दूसरेमें अभयकी मुद्रा है। वे शान्तस्वरूप हैं। उनके शरीरका रंग गोरा और कान लम्बे हैं। वे सुन्दर पीत वस्त्रसे आवृत हैं। कल्की भगवान् धनुष और तूणीरसे सुशोभित हैं। म्लेच्छोंके संहारमें लगे हैं। वे ब्राह्मण हैं। अथवा उनकी आकृति इस प्रकार बनावे—वे घोड़ेकी पीठपर बैठे हैं और अपने चार हाथोंमें खड्ग, शङ्ख, चक्र एवं गदा धारण करते हैं॥ ८-९॥

ब्रह्मन्! अब मैं तुम्हें वासुदेव आदि नौ मूर्तियोंके लक्षण बताता हूँ। दाहिने भागके ऊपरवाले हाथमें उत्तम चक्र—यह वासुदेवकी मुख्य पहचान है। उनके एक पार्श्वमें ब्रह्मा और दूसरे भागमें महादेवजी सदा विराजमान रहते हैं। वासुदेवकी शेष बातें पूर्ववत् हैं। वे शङ्ख अथवा वरदकी मुद्रा धारण करते हैं। उनका स्वरूप द्विभुज अथवा चतुर्भुज होता है। बलरामके चार भुजाएँ हैं। वे दायें हाथमें हल और मुसल तथा बायें हाथमें गदा और पद्म धारण करते हैं। प्रद्युम्न दायें हाथमें चक्र और शङ्ख तथा बायें हाथमें धनुष-बाण धारण करते हैं। अथवा द्विभुज प्रद्युम्नके एक हाथमें गदा और दूसरेमें धनुष है। वे प्रसन्नतापूर्वक इन अस्त्रोंको धारण करते हैं। या उनके एक हाथमें धनुष और दूसरेमें बाण है। अनिरुद्ध और भगवान् नारायणका विग्रह चतुर्भुज होता है॥ १०—१३॥

ब्रह्माजी हंसपर आरूढ होते हैं। उनके चार मुख और चार भुजाएँ हैं। उदर-मण्डल विशाल है। लंबी दाढ़ी और सिरपर जटा—यही उनकी प्रतिमाका लक्षण है। वे दाहिने हाथोंमें अक्षसूत्र और स्रुवा एवं बायें हाथोंमें कुण्डिका और आज्यस्थाली धारण करते हैं। उनके वाम भागमें सरस्वती और दक्षिण भागमें सावित्री हैं। विष्णुके आठ भुजाएँ हैं। वे गरुड़पर आरूढ़ हैं। उनके दाहिने हाथोंमें खड्ग, गदा, बाण और वरदकी मुद्रा है। बायें हाथोंमें धनुष, खेट, चक्र और शङ्ख हैं। अथवा उनका विग्रह चतुर्भुज भी है। नृसिंहके चार भुजाएँ हैं। उनकी दो भुजाओंमें शङ्ख और चक्र हैं तथा दो भुजाओंसे वे महान् असुर हिरण्यकशिपुका वक्ष विदीर्ण कर रहे हैं॥ १४—१७॥

वराहके चार भुजाएँ हैं। उन्होंने शेषनागको अपने करतलमें धारण कर रखा है। वे बायें

हाथसे पृथ्वीको और वाम भागमें लक्ष्मीको धारण करते हैं। जब लक्ष्मी उनके साथ हों, तब पृथ्वीको उनके चरणोंमें संलग्न बनाना चाहिये। त्रैलोक्यमोहनमूर्ति श्रीहरि गरुड़पर आरूढ़ हैं। उनके आठ भुजाएँ हैं। वे दाहिने हाथोंमें चक्र, शङ्ख, मुसल और अंकुश धारण करते हैं। उनके बायें हाथोंमें शङ्ख, शार्ङ्गधनुष, गदा और पाश शोभा पाते हैं। वाम भागमें कमलधारिणी कमला और दक्षिण भागमें वीणाधारिणी सरस्वतीकी प्रतिमाएँ बनानी चाहिये। भगवान् विश्वरूपका विग्रह बीस भुजाओंसे सुशोभित है। वे दाहिने हाथोंमें क्रमशः चक्र, खड्ग, मुसल, अंकुश, पट्टिश, मुद्गर, पाश, शक्ति, शूल तथा बाण धारण करते हैं। बायें हाथोंमें शङ्ख, शार्ङ्गधनुष, गदा, पाश, तोमर, हल, फरसा, दण्ड, छुरी और उत्तम ढाल लिये रहते हैं। उनके दाहिने भागमें चतुर्भुज ब्रह्मा तथा बायें भागमें त्रिनेत्रधारी महादेव विराजमान हैं। जलशायी जलमें शयन करते हैं। इनकी मूर्ति शेषशय्यापर सोयी हुई बनानी चाहिये। भगवती लक्ष्मी उनकी एक चरणकी सेवामें लगी हैं। विमला आदि शक्तियाँ उनकी स्तुति करती हैं। उन श्रीहरिके नाभिकमलपर चतुर्भुज ब्रह्मा विराज रहे हैं॥ १८—२४ $\frac{१}{२}$ ॥

हरिहर-मूर्ति इस प्रकार बनानी चाहिये—वह दाहिने हाथमें शूल तथा ऋष्टि धारण करती है और बायें हाथमें गदा एवं चक्र। शरीरके दाहिने भागमें रुद्रके चिह्न हैं और वाम भागमें केशवके। दाहिने पार्श्वमें गौरी तथा वाम पार्श्वमें लक्ष्मी विराज रही हैं। भगवान् हयग्रीवके चार हाथोंमें क्रमशः शङ्ख, चक्र, गदा और वेद शोभा पाते हैं। उन्होंने अपना बायाँ पैर शेषनागपर और दाहिना पैर कच्छपकी पीठपर रख छोड़ा है। दत्तात्रेयके दो बाँहें हैं। उनके वामाङ्कमें लक्ष्मी शोभा पाती है। भगवान्‌के पार्षद विष्वक्सेन अपने चार हाथोंमें क्रमशः चक्र, गदा, हल और शङ्ख धारण करते हैं॥ २५—२८॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'मत्स्यादि दशावतारोंकी प्रतिमाओंके लक्षणोंका वर्णन' नामक उनचासवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४९॥

पचासवाँ अध्याय

चण्डी आदि देवी-देवताओंकी प्रतिमाओंके लक्षण

श्रीभगवान् बोले—चण्डी बीस भुजाओंसे विभूषित होती है। वह अपने दाहिने हाथोंमें शूल, खड्ग, शक्ति, चक्र, पाश, खेट, आयुध, अभय, डमरू और शक्ति धारण करती है। बायें हाथोंमें नागपाश, खेटक, कुठार, अंकुश, पाश, घण्टा, आयुध, गदा, दर्पण और मुद्गर लिये रहती है। अथवा चण्डीकी प्रतिमा दस भुजाओंसे युक्त होनी चाहिये। उसके चरणोंके नीचे कटे हुए मस्तकवाला महिष हो। उसका मस्तक अलग गिरा हुआ हो। वह हाथोंमें शस्त्र उठाये हो। उसकी ग्रीवासे एक पुरुष प्रकट हुआ हो, जो अत्यन्त कुपित हो। उसके हाथमें शूल हो, वह मुँहसे रक्त उगल रहा हो। उसके गलेकी माला, सिरके बाल और दोनों नेत्र लाल दिखायी देते हों। देवीका वाहन सिंह उसके रक्तका आस्वादन कर रहा हो। उस महिषासुरके गलेमें खूब कसकर पाश बाँधा गया हो। देवीका दाहिना पैर सिंहपर और बायाँ पैर नीचे महिषासुरके शरीरपर हो॥ १—५॥

ये चण्डीदेवी त्रिनेत्रधारिणी हैं तथा शस्त्रोंसे

सम्पन्न रहकर शत्रुओंका मर्दन करनेवाली हैं। नवकमलात्मक पीठपर दुर्गाकी प्रतिमामें उनकी पूजा करनी चाहिये। पहले कमलके नौ दलोंमें तथा मध्यवर्तिनी कर्णिकामें इन्द्र आदि दिक्पालोंकी तथा नौ तत्त्वात्मिका शक्तियोंके[1] साथ दुर्गाकी पूजा करे॥ ६ १/२ ॥

दुर्गाजीकी एक प्रतिमा अठारह भुजाओंकी होती है। वह दाहिने भागके हाथोंमें मुण्ड, खेटक, दर्पण, तर्जनी, धनुष, ध्वज, डमरू, ढाल और पाश धारण करती है; तथा वाम भागकी भुजाओंमें शक्ति, मुद्गर, शूल, वज्र, खड्ग, अंकुश, बाण, चक्र और शलाका लिये रहती है। सोलह बाँहवाली दुर्गाकी प्रतिमा भी इन्हीं आयुधोंसे युक्त होती है। अठारहमेंसे दो भुजाओं तथा डमरू और तर्जनी—इन दो आयुधोंको छोड़कर शेष सोलह हाथ उन पूर्वोक्त आयुधोंसे ही सम्पन्न होते हैं। रुद्रचण्डा आदि नौ दुर्गाएँ इस प्रकार हैं—रुद्रचण्डा, प्रचण्डा, चण्डोग्रा, चण्डनायिका, चण्डा, चण्डवती, चण्डरूपा और अतिचण्डिका। ये पूर्वादि आठ दिशाओंमें पूजित होती हैं तथा नवीं उग्रचण्डा मध्यभागमें स्थापित एवं पूजित होती हैं। रुद्रचण्डा आदि आठ देवियोंकी अङ्गकान्ति क्रमशः गोरोचनाके सदृश पीली, अरुणवर्णा, काली, नीली, शुक्लवर्णा, धूम्रवर्णा, पीतवर्णा और श्वेतवर्णा है। ये सब-की-सब सिंहवाहिनी हैं। महिषासुरके कण्ठसे प्रकट हुआ जो पुरुष है, वह शस्त्रधारी है और ये पूर्वोक्त देवियाँ अपनी मुट्ठीमें उसका केश पकड़े रहती हैं॥ ७—१२॥

ये नौ दुर्गाएँ 'आलीढा'[2] आकृतिकी होनी चाहिये। पुत्र-पौत्र आदिकी वृद्धिके लिये इनकी स्थापना (एवं पूजा) करनी उचित है। गौरी ही चण्डिका आदि देवियोंके रूपमें पूजित होती हैं। वे ही हाथोंमें कुण्डी, अक्षमाला, गदा और अग्नि धारण करके 'रम्भा' कहलाती हैं। वे ही वनमें 'सिद्धा' कही गयी हैं। सिद्धावस्थामें वे अग्निसे रहित होती हैं। 'ललिता' भी वे ही हैं। उनका परिचय इस प्रकार है—उनके एक बायें हाथमें गर्दनसहित मुण्ड है और दूसरेमें दर्पण। दाहिने हाथमें फलाञ्जलि है और उससे ऊपरके हाथमें सौभाग्यकी मुद्रा॥ १३-१४ १/२ ॥

लक्ष्मीके दायें हाथमें कमल और बायें हाथमें श्रीफल होता है। सरस्वतीके दो हाथोंमें पुस्तक और अक्षमाला शोभा पाती है और शेष दो हाथोंमें वे वीणा धारण करती हैं। गङ्गाजीकी अङ्गकान्ति श्वेत है। वे मकरपर आरूढ हैं। उनके एक हाथमें कलश है और दूसरेमें कमल। यमुना देवी कछुएपर आरूढ हैं। उनके दोनों हाथोंमें कलश है और वे श्यामवर्णा हैं। इसी रूपमें इनकी पूजा होती है। तुम्बुरुकी प्रतिमा वीणासहित होनी चाहिये। उनकी अङ्गकान्ति श्वेत है। शूलपाणि शंकर वृषभपर आरूढ हो मातृकाओंके आगे-आगे चलते हैं। ब्रह्माजीकी प्रिया सावित्री गौरवर्णा एवं चतुर्मुखी हैं। उनके दाहिने हाथोंमें अक्षमाला और स्रुक् शोभा पाते हैं और बायें हाथोंमें वे

---

१. इन नौ तत्त्वात्मिका शक्तियोंकी नामावली इस प्रकार समझनी चाहिये—अग्निपुराण अध्याय २१ में—लक्ष्मी, मेधा, कला, तुष्टि, पुष्टि, गौरी, प्रभा, मति और दुर्गा—ये नाम आये हैं। तथा तन्त्रसमुच्चय और मन्त्रमहार्णवके अनुसार इन शक्तियोंके ये नाम हैं—प्रभा, माया, जया, सूक्ष्मा, विशुद्धा, नन्दिनी, सुप्रभा, विजया तथा सर्वसिद्धिदा।

२. वाचस्पत्यकोषमें आलीढका लक्षण इस प्रकार दिया गया है—

भुग्नवामपदं पश्चात्स्तब्धजानूरुदक्षिणम्। वितस्त्यः पञ्च विस्तारे तदालीढं प्रकीर्तितम्॥

जिसमें मुड़ा हुआ बायाँ पैर तो पीछे हो और तने हुए घुटने तथा ऊरुवाला दाहिना पैर आगेकी ओर हो, दोनोंके बीचका विस्तार पाँच बित्ता हो तो इस प्रकारके आसन या अवस्थानको 'आलीढ' कहा गया है।

कुण्ड एवं अक्षपात्र लिये रहती हैं। उनका वाहन हंस है। शंकरप्रिया पार्वती वृषभपर आरूढ होती है। उनके दाहिने हाथोंमें धनुष-बाण और बायें हाथोंमें चक्र-धनुष शोभित होते हैं। कौमारी शक्ति मोरपर आरूढ होती है। उसकी अङ्गकान्ति लाल है। उसके दो हाथ हैं और वह अपने हाथोंमें शक्ति धारण करती है॥ १५—१९॥

लक्ष्मी (वैष्णवी शक्ति) अपने दायें हाथोंमें चक्र और शङ्ख धारण करती हैं तथा बायें हाथोंमें गदा एवं कमल लिये रहती हैं। वाराही शक्ति भैंसेपर आरूढ होती है। उसके हाथ दण्ड, शङ्ख, चक्र और गदासे सुशोभित होते हैं। ऐन्द्री शक्ति ऐरावत हाथीपर आरूढ होती है। उसके सहस्र नेत्र हैं तथा उसके हाथोंमें वज्र शोभा पाता है। ऐन्द्री देवी पूजित होनेपर सिद्धि प्रदान करनेवाली हैं। चामुण्डाकी आँखें वृक्षके खोखलेकी भाँति गहरी होती हैं। उनका शरीर मांसरहित—कंकाल दिखायी देता है। उनके तीन नेत्र हैं। मांसहीन शरीरमें अस्थिमात्र ही सार है। केश ऊपरकी ओर उठे हुए हैं। पेट सटा हुआ है। वे हाथीका चमड़ा पहनती हैं। उनके बायें हाथोंमें कपाल और पट्टिश है तथा दायें हाथोंमें शूल और कटार। वे शवपर आरूढ होती और हड्डियोंके गहनोंसे अपने शरीरको विभूषित करती हैं॥ २०—२२ $\frac{1}{2}$॥

विनायक (गणेश)-की आकृति मनुष्यके समान है; किंतु उनका पेट बहुत बड़ा है। मुख हाथीके समान है और सूँड़ लंबी है। वे यज्ञोपवीत धारण करते हैं। उनके मुखकी चौड़ाई सात कला है और सूँड़की लंबाई छत्तीस अङ्गुल। उनकी नाड़ी (गर्दनके ऊपरकी हड्डी) बारह कला विस्तृत और गर्दन डेढ़ कला ऊँची होती है। उनके कण्ठभागकी लंबाई छत्तीस अङ्गुल है और गुह्यभागका घेरा डेढ़ अङ्गुल। नाभि और ऊरुका विस्तार बारह अङ्गुल है। जाँघों और पैरोंका भी यही माप है। वे दाहिने हाथोंमें गजदन्त और फरसा धारण करते हैं तथा बायें हाथोंमें लड्डू एवं उत्पल लिये रहते हैं॥ २३—२६॥

स्कन्द स्वामी मयूरपर आरूढ हैं। उनके उभय पार्श्वमें सुमुखी और विडालाक्षी मातृका तथा शाख और विशाख अनुज खड़े हैं। उनके दो भुजाएँ हैं। वे बालरूपधारी हैं। उनके दाहिने हाथमें शक्ति शोभा पाती है और बायें हाथमें कुक्कुट। उनके एक या छः मुख बनाने चाहिये। गाँवमें उनके अर्चाविग्रहको छः अथवा बारह भुजाओंसे युक्त बनाना चाहिये, परंतु वनमें यदि उनकी मूर्ति स्थापित करनी हो तो उसके दो ही भुजाएँ बनानी चाहिये। कौमारी-शक्तिकी छहों दाहिनी भुजाओंमें शक्ति, बाण, पाश, खड्ग, गदा और तर्जनी (मुद्रा)—ये अस्त्र रहने चाहिये और छः बायें हाथोंमें मोरपंख, धनुष, खेट, पताका, अभयमुद्रा तथा कुक्कुट होने चाहिये। रुद्रचर्चिका देवी हाथीके चर्म धारण करती हैं। उनके मुख और एक पैर ऊपरकी ओर उठे हैं। वे बायें-दायें हाथोंमें क्रमशः कपाल, कर्तरी, शूल और पाश धारण करती हैं। वे ही देवी—'अष्टभुजा'के रूपमें भी पूजित होती हैं॥ २७—३१॥

मुण्डमाला और डमरूसे युक्त होनेपर वे ही 'रुद्रचामुण्डा' कही गयी हैं। वे नृत्य करती हैं, इसलिये 'नाट्येश्वरी' कहलाती हैं। ये ही आसनपर बैठी हुई चतुर्मुखी 'महालक्ष्मी' (की तामसी मूर्ति) कही गयी हैं, जो अपने हाथोंमें पड़े हुए मनुष्यों, घोड़ों, भैंसों और हाथियोंको खा रही हैं। 'सिद्धचामुण्डा' देवीके दस भुजाएँ और तीन नेत्र हैं। ये दाहिने भागके पाँच हाथोंमें शस्त्र, खड्ग तथा तीन डमरू धारण करती हैं और बायें भागके हाथोंमें घण्टा, खेटक, खट्वाङ्ग, त्रिशूल (और ढाल) लिये रहती हैं। 'सिद्धयोगेश्वरी' देवी सम्पूर्ण सिद्धि प्रदान करनेवाली हैं। इन्हीं



हरिहर भगवान्	[अग्नि० अ० ४९]



स्कन्द स्वामी	[अग्नि० अ० ५०]



चण्डी—बीस भुजा	[अग्नि० अ० ५०]



दुर्गा—अठारह भुजा	[अग्नि० अ० ५०]

देवीकी स्वरूपभूता एक दूसरी शक्ति हैं, जिनकी अङ्गकान्ति अरुण है। ये अपने दो हाथोंमें पाश और अंकुश धारण करती हैं तथा 'भैरवी' नामसे विख्यात हैं। 'रूपविद्या देवी' बारह भुजाओंसे युक्त कही गयी हैं। ये सब-की-सब श्मशानभूमिमें प्रकट होनेवाली तथा भयंकर हैं। इन आठों देवियोंको 'अम्बाष्टक'[१] कहते हैं॥ ३२—३६॥

'क्षमादेवी'—शिवाओं (शृगालियों)-से आवृत हैं। वे एक बूढ़ी स्त्रीके रूपमें स्थित हैं। उनके दो भुजाएँ हैं। मुँह खुला हुआ है। दाँत निकले हुए हैं तथा ये धरतीपर घुटनों और हाथका सहारा लेकर बैठी हैं। उनके द्वारा उपासकोंका कल्याण होता है। यक्षिणियोंकी आँखें स्तब्ध (एकटक देखनेवाली) और बड़ी होती हैं। शाकिनियाँ वक्रदृष्टिसे देखनेवाली होती हैं। अप्सराएँ सदा ही अत्यन्त रमणीय एवं सुन्दर रूपवाली हुआ करती हैं। इनकी आँखें भूरी होती हैं॥ ३७-३८॥

भगवान् शंकरके द्वारपाल नन्दीश्वर एक हाथमें अक्षमाला और दूसरेमें त्रिशूल लिये रहते हैं। महाकालके एक हाथमें तलवार, दूसरेमें कटा हुआ सिर, तीसरेमें शूल और चौथेमें खेट होना चाहिये। भृङ्गीका शरीर कृश होता है। वे नृत्यकी मुद्रामें देखे जाते हैं। उनका मस्तक कूष्माण्डके समान स्थूल और गंजा होता है। वीरभद्र आदि गण हाथी और गायके समान कान और मुखवाले होते हैं। घण्टाकर्णके अठारह भुजाएँ होती हैं। वे पाप और रोगका विनाश करनेवाले हैं। वे बायें भागके आठ हाथोंमें वज्र, खड्ग, दण्ड, चक्र, बाण, मुसल, अंकुश और मुद्गर तथा दायें भागके आठ हाथोंमें तर्जनी, खेट, शक्ति, मुण्ड, पाश, धनुष, घण्टा और कुठार धारण करते हैं। शेष दो हाथोंमें त्रिशूल लिये रहते हैं। घण्टाकी मालासे अलंकृत देव घण्टाकर्ण विस्फोटक (फोड़े, फुंसी एवं चेचक आदि)-का निवारण करनेवाले हैं॥ ३९—४३॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'चण्डी आदि देवी-देवताओंकी प्रतिमाओंके लक्षणोंका निरूपण' नामक पचासवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५०॥

इक्यावनवाँ अध्याय

सूर्यादि ग्रहों तथा दिक्पाल आदि देवताओंकी प्रतिमाओंके लक्षणोंका वर्णन

श्रीभगवान् हयग्रीव कहते हैं—ब्रह्मन्! सात अश्वोंसे जुते हुए एक पहियेवाले रथपर विराजमान सूर्यदेवकी प्रतिमाको स्थापित करना चाहिये। भगवान् सूर्य अपने दोनों हाथोंमें दो कमल धारण करते हैं। उनके दाहिने भागमें दावात और कलम लिये दण्डी खड़े हैं और वाम भागमें पिङ्गल हाथमें दण्ड लिये द्वारपर विद्यमान हैं। ये दोनों सूर्यदेवके पार्षद हैं। भगवान् सूर्यदेवके उभय पार्श्वमें बालव्यजन (चँवर) लिये 'राज्ञी' तथा 'निष्प्रभा' खड़ी हैं।[२] अथवा घोड़ेपर चढ़े हुए

---

१. रुद्रचण्डा, अष्टभुजा (या रुद्रचामुण्डा), नाट्येश्वरी, चतुर्मुखी महालक्ष्मी, सिद्धचामुण्डा, सिद्धयोगेश्वरी, भैरवी तथा रूपविद्या—इन आठ देवियोंको ही 'अम्बाष्टक' कहा गया है।

२. 'राज्ञी' और 'निष्प्रभा'—ये चँवर डुलानेवाली स्त्रियोंके नाम हैं। अथवा इन नामोंद्वारा सूर्यदेवकी दोनों पत्नियोंकी ओर संकेत किया गया है। 'राज्ञी' शब्दसे उनकी रानी 'संज्ञा' गृहीत होती हैं और 'निष्प्रभा' शब्दसे 'छाया'। ये दोनों देवियाँ चँवर डुलाकर पतिकी सेवा कर रही हैं।

एकमात्र सूर्यकी ही प्रतिमा बनानी चाहिये। समस्त दिक्पाल हाथोंमें वरद मुद्रा, दो-दो कमल तथा शस्त्र लिये क्रमशः पूर्वादि दिशाओंमें स्थित दिखाये जाने चाहिये॥ १—३॥

बारह दलोंका एक कमल-चक्र बनावे। उसमें सूर्य, अर्यमा* आदि नामवाले बारह आदित्योंका क्रमशः बारह दलोंमें स्थापन करे। यह स्थापना वरुण-दिशा एवं वायव्यकोणसे आरम्भ करके नैर्ऋत्यकोणके अन्ततकके दलोंमें होनी चाहिये। उक्त आदित्यगण चार-चार हाथवाले हों और उन हाथोंमें मुद्गर, शूल, चक्र एवं कमल धारण किये हों। अग्निकोणसे लेकर नैर्ऋत्यतक, नैर्ऋत्यसे वायव्यतक, वायव्यसे ईशानतक और वहाँसे अग्निकोणतकके दलोंमें उक्त आदित्योंकी स्थिति जाननी चाहिये॥ ४॥

बारह आदित्योंके नाम इस प्रकार हैं—वरुण, सूर्य, सहस्रांशु, धाता, तपन, सविता, गभस्तिक, रवि, पर्जन्य, त्वष्टा, मित्र और विष्णु। ये मेष आदि बारह राशियोंमें स्थित होकर जगत्को ताप एवं प्रकाश देते हैं। ये वरुण आदि आदित्य क्रमशः मार्गशीर्ष मास (या वृश्चिक राशि)-से लेकर कार्तिक मास (या तुलाराशि)-तकके मासों (एवं राशियों)-में स्थित होकर अपना कार्य सम्पन्न करते हैं। इनकी अङ्गकान्ति क्रमशः काली, लाल, कुछ-कुछ लाल, पीली, पाण्डुवर्ण, श्वेत, कपिलवर्ण, पीतवर्ण, तोतेके समान हरी, धवलवर्ण, धूम्रवर्ण और नीली है। इनकी शक्तियाँ द्वादशदल कमलके केसरोंके अग्रभागमें स्थित होती हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—इडा, सुषुम्रा, विश्वार्चि, इन्दु, प्रमर्दिनी (प्रवर्द्धिनी), प्रहर्षिणी, महाकाली, कपिला, प्रबोधिनी, नीलाम्बरा, वनान्तस्था (घनान्तस्था) और अमृताख्या। वरुण आदिकी जो अङ्गकान्ति है, वही इन शक्तियोंकी भी है। केसरोंके अग्रभागोंमें इनकी स्थापना करे। सूर्यदेवका तेज प्रचण्ड और मुख विशाल है। उनके दो भुजाएँ हैं। वे अपने हाथोंमें कमल और खड्ग धारण करते हैं॥ ५—१०॥

चन्द्रमा कुण्डिका तथा जपमाला धारण करते हैं। मङ्गलके हाथोंमें शक्ति और अक्षमाला शोभित होती हैं। बुधके हाथोंमें धनुष और अक्षमाला शोभा पाते हैं। बृहस्पति कुण्डिका और अक्षमालाधारी हैं। शुक्रका भी ऐसा ही स्वरूप है। अर्थात् उनके हाथोंमें भी कुण्डिका और अक्षमाला शोभित होती हैं। शनि किङ्किणी-सूत्र धारण करते हैं। राहु अर्द्धचन्द्रधारी हैं तथा केतुके हाथोंमें खड्ग और दीपक शोभा पाते हैं। अनन्त, तक्षक, कर्कोटक, पद्म, महापद्म, शङ्ख और कुलिक आदि सभी मुख्य नागगण सूत्रधारी होते हैं। फन ही इनके मुख हैं। ये सब-के-सब महान् प्रभापुञ्जसे उद्भासित होते हैं। इन्द्र वज्रधारी हैं। ये हाथीपर आरूढ होते हैं। अग्निका वाहन बकरा है। अग्निदेव शक्ति धारण करते हैं। यम दण्डधारी हैं और भैंसेपर आरूढ होते हैं। निर्ऋति खड्गधारी हैं और मनुष्य उनका वाहन है। वरुण मकरपर आरूढ हैं और पाश धारण करते हैं। वायुदेव वज्रधारी हैं और मृग उनका वाहन है। कुबेर भेड़पर चढ़ते और गदा धारण करते हैं। ईशान जटाधारी हैं और वृषभ उनका वाहन है॥ ११—१५॥

समस्त लोकपाल द्विभुज हैं। विश्वकर्मा अक्षसूत्र

* सूर्य आदि द्वादश आदित्योंके नाम नीचे गिनाये गये हैं और अर्यमा आदि द्वादश आदित्योंके नाम १९वें अध्यायके दूसरे और तीसरे श्लोकोंमें देखने चाहिये। वे नाम वैवस्वत मन्वन्तरके आदित्योंके हैं। चाक्षुष मन्वन्तरमें वे ही 'तुषित' नामसे विख्यात थे। अन्य पुराणोंमें भी आदित्योंकी नामावली तथा उनके मासक्रममें यहाँकी अपेक्षा कुछ अन्तर मिलता है। इसकी संगति कल्पभेदके अनुसार माननी चाहिये।

धारण करते हैं। हनुमान्‌जीके हाथमें वज्र है। उन्होंने अपने दोनों पैरोंसे एक असुरको दबा रखा है। किंनर-मूर्तियाँ हाथमें वीणा लिये हों और विद्याधर माला धारण किये आकाशमें स्थित दिखाये जायँ। पिशाचोंके शरीर दुर्बल-कङ्कालमात्र हों। वेतालोंके मुख विकराल हों। क्षेत्रपाल शूलधारी बनाये जायँ। प्रेतोंके पेट लंबे और शरीर कृश हों॥ १६—१८॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'सूर्यादि ग्रहों तथा दिक्पालादि देवताओंकी प्रतिमाओंके लक्षणोंका वर्णन' नामक इक्यावनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५१॥

बावनवाँ अध्याय

चौंसठ योगिनी आदिकी प्रतिमाओंके लक्षण

श्रीभगवान् बोले—ब्रह्मन्! अब मैं चौंसठ योगिनियोंका वर्णन करूँगा। इनका स्थान क्रमशः पूर्वदिशासे लेकर ईशानपर्यन्त है। इनके नाम इस प्रकार हैं—१. अक्षोभ्या, २. रूक्षकर्णी, ३. राक्षसी, ४. क्षपणा, ५. क्षमा, ६. पिङ्गाक्षी, ७. अक्षया, ८. क्षेमा, ९. इला, १०. नीलालया, ११. लोला, १२. रक्ता (या लक्ता), १३. बलाकेशी, १४. लालसा, १५. विमला, १६. दुर्गा (अथवा हुताशा), १७. विशालाक्षी, १८. ह्रींकारा (या हुंकारा), १९. वडवामुखी, २०. महाक्रूरा, २१. क्रोधना, २२. भयंकरी, २३. महानना, २४. सर्वज्ञा, २५. तरला, २६. तारा, २७. ऋग्वेदा, २८. हयानना, २९. सारा, ३०. रससंग्राही (अथवा सुसंग्राही या रुद्रसंग्राही), ३१. शबरा (या शम्बरा), ३२. तालजङ्घिका, ३३. रक्ताक्षी, ३४. सुप्रसिद्धा, ३५. विद्युज्जिह्वा, ३६. करङ्किणी, ३७. मेघनादा, ३८. प्रचण्डा, ३९. उग्रा, ४०. कालकर्णी, ४१. वरप्रदा, ४२. चण्डा (अथवा चन्द्रा), ४३. चण्डवती (या चन्द्रावली), ४४. प्रपञ्चा, ४५. प्रलयान्तिका, ४६. शिशुवक्त्रा, ४७. पिशाची, ४८. पिशितासवलोलुपा, ४९. धमनी, ५०. तपनी, ५१. रागिणी (अथवा वामनी), ५२. विकृतानना, ५३. वायुवेगा, ५४. बृहत्कुक्षि, ५५. विकृता, ५६. विश्वरूपिका, ५७. यमजिह्वा, ५८. जयन्ती, ५९. दुर्जया, ६०. जयन्तिका (अथवा यमान्तिका), ६१. विडाली, ६२. रेवती, ६३. पूतना तथा ६४. विजयान्तिका॥ १—८॥

योगिनियाँ आठ अथवा चार हाथोंसे युक्त होती हैं। इच्छानुसार शस्त्र धारण करती हैं तथा उपासकोंको सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्रदान करनेवाली हैं। भैरवके बारह हाथ हैं। उनके मुखमें ऊँचे दाँत हैं तथा वे सिरपर जटा एवं चन्द्रमा धारण करते हैं। उन्होंने एक ओरके पाँच हाथोंमें क्रमशः खड्ग, अंकुश, कुठार, बाण तथा जगत्‌को अभय प्रदान करनेवाली मुद्रा धारण कर रखी है। उनके दूसरी ओरके पाँच हाथ धनुष, त्रिशूल, खट्वाङ्ग, पाशकार्द्ध एवं वरकी मुद्रासे सुशोभित हैं। शेष दो हाथोंमें उन्होंने गजचर्म ले रखा है। हाथीका चमड़ा ही उनका वस्त्र है और वे सर्पमय आभूषणोंसे विभूषित हैं। प्रेतपर आसन लगाये मातृकाओंके मध्यभागमें विराजमान हैं। इस रूपमें उनकी प्रतिमा बनाकर उसकी पूजा करनी चाहिये। भैरवके एक या पाँच मुख बनाने चाहिये॥ ९—११॥

पूर्व दिशासे लेकर अग्निकोणतक विलोम-क्रमसे प्रत्येक दिशामें भैरवको स्थापित करके क्रमशः उनका पूजन करे। बीज-मन्त्रको आठ दीर्घ स्वरोंमेंसे एक-एकके द्वारा भेदित एवं अनुस्वारयुक्त करके उस-उस दिशाके भैरवके साथ संयुक्त करे और उन सबके अन्तमें **'नमः'** पदको जोड़े। यथा—**ॐ ह्रां भैरवाय नमः—प्राच्याम्। ॐ ह्रीं भैरवाय नमः—ऐशान्याम्।**

ॐ ह्रूं भैरवाय नमः—उदीच्याम्। ॐ ह्रें भैरवाय नमः—वायव्ये। ॐ ह्रैं भैरवाय नमः—प्रतीच्याम्। ॐ ह्रों भैरवाय नमः—नैर्ऋत्याम्। ॐ ह्रौं भैरवाय नमः—अवाच्याम्। ॐ ह्रः भैरवाय नमः—आग्नेय्याम्। इस प्रकार इन मन्त्रोंद्वारा क्रमशः उन दिशाओंमें भैरवका पूजन करे। इन्हींमेंसे छः बीजमन्त्रोंद्वारा षडङ्गन्यास एवं उन अङ्गोंका पूजन भी करना चाहिये[1]॥ १२॥

उनका ध्यान इस प्रकार है—भैरवजी मन्दिर अथवा मण्डलके आग्नेयदल (अग्निकोणस्थ दल)-में विराजमान सुवर्णमयी रसनासे युक्त, नाद, बिन्दु एवं इन्दुसे सुशोभित तथा मातृकाधिपतिके अङ्गसे प्रकाशित हैं। (ऐसे भगवान् भैरवका मैं भजन करता हूँ।) वीरभद्र वृषभपर आरूढ हैं। वे मातृकाओंके मण्डलमें विराजमान और चार भुजाधारी हैं। गौरी दो भुजाओंसे युक्त और त्रिनेत्रधारिणी हैं। उनके एक हाथमें शूल और दूसरेमें दर्पण है। ललितादेवी कमलपर विराजमान हैं। उनके चार भुजाएँ हैं। वे अपने हाथोंमें त्रिशूल, कमण्डलु, कुण्डी और वरदानकी मुद्रा धारण करती हैं। स्कन्दकी अनुचरी मातृकागणोंके हाथोंमें दर्पण और शलाका होनी चाहिये॥ १३—१५॥

चण्डिका देवीके दस हाथ हैं। वे अपने दाहिने हाथोंमें बाण, खड्ग, शूल, चक्र और शक्ति धारण करती हैं और बायें हाथोंमें नागपाश, ढाल, अंकुश, कुठार तथा धनुष लिये रहती हैं। वे सिंहपर सवार हैं और उनके सामने शूलसे मारे गये महिषासुरका शव है॥ १६-१७॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'चौंसठ योगिनी आदिकी प्रतिमाओंके लक्षणोंका वर्णन' नामक बावनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५२॥

तिरपनवाँ अध्याय

लिङ्ग[2] आदिका लक्षण

श्रीभगवान् हयग्रीव कहते हैं— कमलोद्भव! अब मैं लिङ्ग आदिका लक्षण बताता हूँ, सुनो। लंबाईके आधेमें आठसे भाग देकर आठ भागोंमेंसे तीन भागको त्याग दे और शेष पाँच भागोंसे चौकोर विष्कम्भका निर्माण कराये। फिर लंबाईके छः भाग करके उन सबको एक, दो और तीनके

---

१. यथा—ॐ ह्रां हृदयाय नमः। ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा। ॐ ह्रूं शिखायै वषट्। ॐ ह्रैं कवचाय हुम्। ॐ ह्रौं, नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ ह्रः अस्त्राय फट्।

२. श्रीविद्यार्णवतन्त्रके ११वें श्वासमें लिङ्ग-निर्माणकी साधारण विधि इस प्रकार दी गयी है—

अपनी रुचिके अनुसार लिङ्ग कल्पित करके उसके मस्तकका विस्तार उतना ही रखे, जितनी पूजित लिङ्गभागकी ऊँचाई हो। जैसा कि शैवागमका वचन है—'लिङ्गमस्तकविस्तारो लिङ्गोच्छ्रायसमो भवेत्।' लिङ्गके मस्तकका विस्तार जितना हो, उससे तिगुने सूत्रसे वेष्टित होने योग्य लिङ्गकी स्थूलता (मोटाई) रखे। शिवलिङ्गकी जो स्थूलता या मोटाई है, उसके सूत्रके बराबर पीठका विस्तार रखे। तत्पश्चात् पूज्य लिङ्गका जो उच्च अंश है, उससे दुगुनी ऊँचाईसे युक्त वृत्ताकार या चतुरस्र पीठ बनावे। पीठके मध्यभागमें लिङ्गके स्थूलतामात्रसूचक नाहसूत्रके द्विगुण सूत्रसे वेष्टित होने योग्य स्थूल कण्ठका निर्माण करे। कण्ठके ऊपर और नीचे समभागसे तीन या दो मेखलाओंकी रचना करे। तदनन्तर लिङ्गके मस्तकका जो विस्तार है, उसको छः भागोंमें विभक्त करे। उनमेंसे एक अंशके मानके अनुसार पीठके ऊपरी भागमें सबसे बाहरी अंशके द्वारा मेखला बनावे। उसके भीतर उसी मानके अनुसार उससे संलग्न अंशके द्वारा खात (गर्त)-की रचना करे। पीठसे बाह्यभागमें लिङ्गके समान ही बड़ी अथवा पीठमानके आधे मानके बराबर बड़ी, मूलदेशमें दीर्घांश मानके समान विस्तारवाली और अग्रभागमें उसके आधे मानके तुल्य विस्तारवाली नाली बनावे। इसीको 'प्रणाल' कहते हैं। प्रणालके मध्यमें मूलसे अग्रभागपर्यन्त जलमार्ग बनावे। प्रणालका जो विस्तार है, उसके एक तिहाई विस्तारवाले खातरूप जलमार्गसे युक्त पीठ-सदृश मेखलायुक्त प्रणाल बनाना चाहिये। यह स्फटिक आदि रत्नविशेषों अथवा पाषाण आदिके द्वारा शिवलिङ्ग-निर्माणकी साधारण विधि है। यथा—

लिङ्गमस्तकविस्तारं पूज्यभागसमं नयेत्। ························लक्षणमाचरेत्॥ १—८॥

क्रमसे अलग-अलग रखे। इनमें पहला भाग ब्रह्माका, दूसरा विष्णुका और तीसरा शिवका है। उन भागोंमें यह 'वर्द्धमान' भाग कहा जाता है। चौकोर मण्डलमें कोणसूत्रके आधे मापको लेकर उसे सभी कोणोंमें चिह्नित करे। ऐसा करनेसे आठ कोणोंका 'वैष्णवभाग' सिद्ध होता है, इसमें संशय नहीं है। तदनन्तर उसे षोडश कोण और फिर बत्तीस कोणोंसे युक्त करे॥ १—४॥

तत्पश्चात् चौंसठ कोणोंसे युक्त करके वहाँ गोल रेखा बनावे। तदनन्तर श्रेष्ठ आचार्य लिङ्गके शिरोभागका कर्तन करे। इसके बाद लिङ्गके विस्तारको आठ भागोंमें विभाजित करे। फिर उनमेंसे एक भागके चौथे अंशको छोड़ देनेपर छत्राकार सिरका निर्माण होता है। जिसकी लंबाई-चौड़ाई तीन भागोंमें समान हो, वह समभागवाला लिङ्ग सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाला है। देवपूजित लिङ्गमें लंबाईके चौथे भागसे विष्कम्भ बनता है। अब तुम सभी लिङ्गोंके लक्षण सुनो॥ ५—८॥

विद्वान् पुरुष सोलह अङ्गुलवाले लिङ्गके मध्यवर्ती सूत्रको, जो ब्रह्म और रुद्रभागके निकटस्थ है, लेकर उसे छः भागोंमें विभाजित करे। वैयमन-सूत्रोंद्वारा निश्चित जो वह माप है, उसे 'अन्तर' कहते हैं। जो सबसे उत्तरवर्ती लिङ्ग है, उसे आठ जौ बड़ा बनाना चाहिये; शेष लिङ्गोंको एक-एक जौ छोटा कर देना चाहिये। उपर्युक्त लिङ्गके निचले भागको तीन हिस्सोंमें विभक्त करके ऊपरके एक भागको छोड़ दे। शेष दो भागोंको आठ हिस्सोंमें विभक्त करके ऊपरके तीन भागोंको त्याग दे। पाँचवें भागके ऊपरसे घूमती हुई एक लंबी रेखा बनावे और एक भागको छोड़कर बीचमें उन दो रेखाओंका संगम करावे। यह लिङ्गोंका साधारण लक्षण बताया गया; अब पिण्डिकाका सर्वसाधारण लक्षण बताता हूँ, मुझसे सुनो॥ ९—१३॥

ब्रह्मभागमें प्रवेश तथा लिङ्गकी ऊँचाई जानकर विद्वान् पुरुष ब्रह्मशिलाकी स्थापना करे और उस शिलाके ऊपर ही उत्तम रीतिसे कर्मका सम्पादन करे। पिण्डिकाकी ऊँचाईको जानकर उसका विभाजन करे। दो भागकी ऊँचाईको पीठ समझे। चौड़ाईमें वह लिङ्गके समान ही हो। पीठके मध्यभागमें खात (गड्ढा) करके उसे तीन भागोंमें विभाजित करे। अपने मानके आधे त्रिभागसे 'बाहुल्य'की कल्पना करे। बाहुल्यके तृतीय भागसे मेखला बनावे और मेखलाके ही तुल्य खात (गड्ढा) तैयार करे। उसे क्रमशः निम्न (नीचे झुका हुआ) रखे। मेखलाके सोलहवें अंशसे खात निर्माण करे और उसीके मापके अनुसार उस पीठकी ऊँचाई, जिसे 'विकाराङ्ग' कहते हैं, करावे। प्रस्तरका एक भाग भूमिमें प्रविष्ट हो, एक भागसे पिण्डिका बने, तीन भागोंसे कण्ठका निर्माण कराया जाय और एक भागसे पट्टिका बनायी जाय॥ १४—१९॥

दो भागसे ऊपरका पट्ट बने; एक भागसे शेष-पट्टिका तैयार करायी जाय। कण्ठपर्यन्त एक-एक भाग प्रविष्ट हो। तत्पश्चात् पुनः एक भागसे निर्गम (जल निकलनेका मार्ग) बनाया जाय। यह शेष-पट्टिकातक रहे। प्रणाल (नाली)-के तृतीय भागसे निर्गम बनना चाहिये। तृतीय भागके मूलमें अङ्गुलिके अग्रभागके बराबर विस्तृत खात बनावे, जो तृतीय भागसे आधे विस्तारका हो। वह खात उत्तरकी ओर जाय। यह पिण्डिकासहित साधारण लिङ्गका वर्णन किया गया॥ २०—२३॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'लिङ्ग आदिके लक्षणका वर्णन' नामक तिरपनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५३॥

चौवनवाँ अध्याय

लिङ्ग-मान एवं व्यक्ताव्यक्त लक्षण आदिका वर्णन

श्रीभगवान् हयग्रीव कहते हैं— ब्रह्मन्! अब मैं दूसरे प्रकारसे लिङ्ग आदिका वर्णन करता हूँ, सुनो, लवण तथा घृतसे निर्मित शिवलिङ्ग बुद्धिको बढ़ानेवाला होता है। वस्त्रमय लिङ्ग ऐश्वर्यदायक होता है। उसे तात्कालिक (केवल एक बार ही पूजाके उपयोगमें आनेवाला) लिङ्ग माना गया है। मृत्तिकासे बनाया हुआ शिवलिङ्ग दो प्रकारका होता है—पक्क तथा अपक्क। अपक्कसे पक्क श्रेष्ठ माना गया है। उसकी अपेक्षा काष्ठका बना हुआ शिवलिङ्ग अधिक पवित्र एवं पुण्यदायक है। काष्ठमय लिङ्गसे प्रस्तरका लिङ्ग श्रेष्ठ है। प्रस्तरसे मोतीका और मोतीसे सुवर्णका बना हुआ 'लौह लिङ्ग' उत्तम माना गया है। चाँदी, ताँबे, पीतल, रत्न तथा रस (पारद)-का बना हुआ शिवलिङ्ग भोग-मोक्ष देनेवाला एवं श्रेष्ठ है। रस (पारद आदि)-के लिङ्गको राँगा, लोहा (सुवर्ण, ताँबा) आदि तथा रत्नके भीतर आबद्ध करके स्थापित करे। सिद्ध आदिके द्वारा स्थापित स्वयम्भूलिङ्ग आदिके लिये माप आदि करना अभीष्ट नहीं है॥ १—५॥

बाणलिङ्ग (नर्मदेश्वर)-के लिये भी यही बात है। (अर्थात् उसके लिये भी 'वह इतने अङ्गुलका हो'—इस तरहका मान आदि आवश्यक नहीं है।) वैसे शिवलिङ्गोंके लिये अपनी इच्छाके अनुसार पीठ और प्रासादका निर्माण करा लेना चाहिये। सूर्यमण्डलस्थ शिवलिङ्गको दर्पणमें प्रतिबिम्बित करके उसका पूजन करना चाहिये। वैसे तो भगवान् शंकर सर्वत्र ही पूजनीय हैं, किंतु शिवलिङ्गमें उनके अर्चनकी पूर्णता होती है। प्रस्तरका शिवलिङ्ग एक हाथसे अधिक ऊँचा होना चाहिये। काष्ठमय लिङ्गका मान भी ऐसा ही है। चल शिवलिङ्गका स्वरूप अङ्गुल-मानके अनुसार निश्चित करना चाहिये तथा स्थिर लिङ्गका द्वारमान, गर्भमान एवं हस्तमानके अनुसार। गृहमें पूजित होनेवाला चललिङ्ग एक अङ्गुलसे लेकर पंद्रह अङ्गुलतकका हो सकता है॥ ६—८॥

द्वारमानसे लिङ्गके तीन भेद हैं। इनमेंसे प्रत्येकके गर्भमानके अनुसार नौ-नौ भेद होते हैं। (इस तरह कुल सत्ताईस हुए। इनके अतिरिक्त) करमानसे नौ लिङ्ग और हैं। इनकी देवालयमें पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार सबको एकमें जोड़नेसे छत्तीस लिङ्ग जानने चाहिये। ये ज्येष्ठमानके अनुसार हैं। मध्यममानसे और अधम (कनिष्ठ)-मानसे भी छत्तीस-छत्तीस शिवलिङ्ग हैं—ऐसा जानना चाहिये। इस प्रकार समस्त लिङ्गोंको एकत्र करनेसे एक सौ आठ शिवलिङ्ग हो सकते हैं। एकसे लेकर पाँच अङ्गुलतकका चल शिवलिङ्ग 'कनिष्ठ' कहलाता है, छः से लेकर दस अङ्गुलतकका चल लिङ्ग 'मध्यम' कहा गया है तथा ग्यारहसे लेकर पंद्रह अङ्गुलतकका चल शिवलिङ्ग 'ज्येष्ठ' जानने योग्य है। महामूल्यवान् रत्नोंका बना हुआ शिवलिङ्ग छः अङ्गुलका, अन्य रत्नोंसे निर्मित शिवलिङ्ग नौ अङ्गुलका, सुवर्णभारका बना हुआ बारह अङ्गुलका तथा शेष वस्तुओंसे निर्मित शिवलिङ्ग पंद्रह अङ्गुलका होना चाहिये॥ ९—१३॥

लिङ्ग-शिलाके सोलह अंश करके उसके ऊपरी चार अंशोंमेंसे पार्श्ववर्ती दो भाग निकाल दे। फिर बत्तीस अंश करके उसके दोनों कोणवर्ती सोलह अंशोंको लुप्त कर दे। फिर उसमें चार अंश मिलानेसे 'कण्ठ' होता है। तात्पर्य यह कि बीस अंशका कण्ठ होता है और उभय पार्श्ववर्ती ३×४=१२ अंशोंको मिटानेसे ज्येष्ठ चल लिङ्ग

बनता है। प्रासादकी ऊँचाईके मानको सोलह अंशोंमें विभक्त करके उसमेंसे चार, छः और आठ अंशोंद्वारा क्रमशः हीन, मध्यम और ज्येष्ठ द्वार निर्मित होता है। द्वारकी ऊँचाईमेंसे एक चौथाई कम कर दिया जाय तो वह लिङ्गकी ऊँचाईका मान है। लिङ्गशिलाके गर्भके आधे भागतककी ऊँचाईका शिवलिङ्ग 'अधम' (कनिष्ठ) होता है और तीन भूतांश (३×५=) पंद्रह अंशोंके बराबरकी ऊँचाईका शिवलिङ्ग 'ज्येष्ठ' कहा गया है। इन दोनोंके बीचमें बराबरकी ऊँचाईपर सात जगह सूत्रपात (सूतद्वारा रेखा) करे। इस तरह नौ सूत (सूत्रनिर्मित रेखाचिह्न) होंगे। इन नौ सूतोंमेंसे पाँच सूतोंकी ऊँचाईके मापका शिवलिङ्ग 'मध्यम' होगा। लिङ्गोंकी लंबाई (या ऊँचाई) उत्तरोत्तर दो-दो अंशके अन्तरसे होगी। इस तरह लिङ्गोंकी दीर्घता बढ़ती जायगी और नौ लिङ्ग निर्मित होंगे[१] ॥ १४—१८ ॥

यदि हाथके मापसे नौ लिङ्ग बनाये जायँ तो पहला लिङ्ग एक हाथका होगा, फिर दूसरेके मापमें पहलेसे एक हाथ बढ़ जायगा; इस प्रकार जबतक नौ हाथकी लंबाई पूरी न हो जाय तबतक शिला या काष्ठकी मापमें एक-एक हाथ बढ़ाते रहेंगे। ऊपर जो हीन, मध्यम और उत्तम—तीन प्रकारके लिङ्ग बताये गये हैं, उनमेंसे प्रत्येकके तीन-तीन भेद हैं। बुद्धिमान् पुरुष एक-एक लिङ्गमें विभागपूर्वक तीन-तीन लिङ्गका निर्माण करावें। छः अङ्गुल और नौ अङ्गुलके शिवलिङ्गोंमें भी तीन-तीन लिङ्ग-निर्माण करावे। स्थिर लिङ्ग द्वारमान, गर्भमान तथा हस्तमान—इन तीन दीर्घ प्रमाणों (मापों)-के अनुसार बनाना चाहिये। उक्त तीन मापोंके अनुसार ही उसकी तीन संज्ञाएँ हैं—भगेश, जलेश तथा देवेश। विष्कम्भ (विस्तार)-के अनुसार लिङ्गके चार रूप लक्षित करे। दीर्घप्रमाणके अनुसार सम्पादित होनेवाले तीन रूपोंमें निर्दिष्ट लिङ्गको शुभ आय आदिसे युक्त करके निर्मित करावे। उन त्रिविध लिङ्गोंकी लंबाई चार या आठ-आठ हाथकी हो—यह अभीष्ट है। वे क्रमशः त्रितत्त्वरूप अथवा त्रिगुणरूप हैं। जो लिङ्ग जितने हाथका हो, उसका अङ्गुल बनाकर आय-संख्या (८), स्वर-संख्या (७), भूत-संख्या (५) तथा अग्नि-संख्या (३)-से पृथक्-पृथक् भाग दे। जो शेष बचे उसके अनुसार शुभाशुभ फलको जाने॥ १९—२४ ॥

ध्वजादि आयोंमेंसे ध्वज, सिंह, हस्ती और वृषभ—ये श्रेष्ठ हैं[२]। अन्य चार आय अशुभ हैं। (सात संख्यासे भाग देनेपर जो शेष बचे, उसके अनुसार स्वरका निश्चय करे।) स्वरोंमें षड्ज, गान्धार तथा पञ्चम शुभदायक हैं। [पाँचसे भाग देनेपर जो शेष बचे, उसके अनुसार पृथ्वी आदि भूतोंका निश्चय करे।] भूतोंमें पृथ्वी ही शुभ है। [तीनसे भाग देनेपर जो शेष रहे, तदनुसार अग्नि जाने।] अग्नियोंमें आहवनीय अग्नि ही शुभ है।

---

१. 'समराङ्गणसूत्रधार' में कहा है कि दो-दो अंशकी वृद्धि करते हुए तीन हाथकी लंबाई-तक पहुँचते-पहुँचते नौ लिङ्ग निर्मित हो सकते हैं—'द्व्यंशवृद्धा नवैवं स्युराहस्तत्रितयावधेः।'

२. 'अपराजितपृच्छा' के 'आयाधिकार' नामक चौंसठवें सूत्रमें आयोंके नाम इस प्रकार दिये गये हैं—ध्वज, धूम्र, सिंह, श्वान, वृष, गर्दभ, गज और ध्वांक्ष (काक)। इनकी स्थिति पूर्वादि दिशाओंमें प्रदक्षिण-क्रमसे है। देवालयके लिये ध्वज, सिंह, वृष और गज—ये आय श्रेष्ठ कहे गये हैं। अधमोंके लिये शेष आय सुखावह हैं। सत्ययुगमें ध्वज, त्रेतामें सिंह, द्वापरमें वृषभ और कलियुगमें गजी नामक आयका प्राधान्य है। सिंह नामक आय मुख्यतः राजाओंके लिये कल्याणकारक है; ब्राह्मणके लिये ध्वज प्रशस्त है तथा वैश्यके लिये वृष। ध्वज आयमें अर्थलाभ होता है और धूम्रमें संताप। सिंह आयमें विपुल भोग उपस्थित होते हैं। श्वान नामक आयमें कलह होता है। वृषभमें धन-धान्यकी वृद्धि होती है। गर्दभमें स्त्रियोंका चरित्र दूषित होता है। हाथी नामक आयमें सब लोग शुभ देखते हैं और काक नामक आय होनेपर निश्चय ही मृत्यु होती है। (श्लोक ९—१६)

उक्त लिङ्गकी लंबाईको आधा करके उसमें आठसे भाग देनेपर यदि शेष सातसे अधिक हो तो वह लिङ्ग 'आढ्य' कहा जाता है। यदि पाँचसे अधिक शेष रहे तो वह 'अनाढ्य' है। यदि छः अंशसे अधिक शेष हो तो वह लिङ्ग 'देवेज्य' है और यदि तीन अंशसे अधिक शेष हो तो उस लिङ्गको 'अर्कतुल्य' माना जाता है। ये चारों ही प्रकारके लिङ्ग चतुष्कोण होते हैं। पाँचवाँ 'वर्धमान' संज्ञक लिङ्ग है, उसमें व्याससे नाह बढ़ा हुआ होता है। व्यासके समान नाह एवं व्याससे बढ़ा हुआ नाह—इस प्रकार इन लिङ्गोंके दो भेद हो जाते हैं। विश्वकर्म-शास्त्रके अनुसार इन सबके बहुत-से भेद बताये जायँगे। आढ्य आदि लिङ्गोंकी स्थूलता आदिके कारण तीन भेद और होते हैं। उनमें एक-एक यवकी वृद्धि करनेसे वे सब आठ प्रकारके लिङ्ग होते हैं। फिर हस्तमानसे 'जिन' संज्ञक लिङ्गके भी तीन भेद होंगे। उसको सर्वसम लिङ्गमें जोड़ लिया जायगा॥ २५—२९॥

अनाढ्य, देवार्चित तथा अर्कतुल्यमें भी पाँच-पाँच भेद होनेसे ये पच्चीस होंगे। ये सब एक, जिन और भक्त—भेदोंसे पचहत्तर हो जायँगे। सबका आकलन करनेसे पंद्रह हजार चार सौ शिवलिङ्ग हो सकते हैं।* इसी तरह आठ अङ्गुलके विस्तारवाला लिङ्ग भी एकाङ्गुल मान, हस्तमान एवं गर्भमानके अनुसार नौ भेदोंसे युक्त है। इन सबके कोण तथा अर्द्धकोणस्थ सूत्रोंद्वारा कोणोंका छेदन (विभाजन) करे। लिङ्गके मध्यभागके

---

* अग्निपुराण अध्याय ५४ के २८वें श्लोकमें विश्वकर्माके कथनानुसार लिङ्ग-भेदोंकी परिगणना की गयी है और सब मिलाकर चौदह हजार चौदह सौ भेद कहे गये हैं। इस प्रकरणका मूल पाठ अपने शुद्धरूपमें उपलब्ध नहीं हो रहा है; अतएव यहाँ दी हुई गणना बैठ नहीं रही है। परंतु विश्वकर्माके शास्त्र 'अपराजितपृच्छा' के अवलोकनसे इन भेदोंपर विशेष प्रकाश पड़ता है। उसके अनुसार समस्त लिङ्ग-भेद १४४२० होते हैं। किस प्रकार, सो बताया जाता है—प्रस्तरमय लिङ्ग कम-से-कम एक हाथका होता है, उससे कम नहीं। उसका अन्तिम आयाम नौ हाथका बताया गया है। इस प्रकार एक हाथसे लेकर नौ हाथतकके लिङ्ग बनाये जायँ तो उनकी संख्या नौ होती है। इनका प्रस्तार यों समझना चाहिये।

एक हाथसे तीन हाथतकके शिवलिङ्ग 'कनिष्ठ' कहे गये हैं। चारसे छः हाथतकके 'मध्यम' माने गये हैं और सातसे नौतकके 'उत्तम' या 'ज्येष्ठ' कहे गये हैं। इन तीनोंके प्रमाणमें पादवृद्धि करनेसे कुल ३३ शिवलिङ्ग होते हैं। यथा—

एक हाथ[१], सवा हाथ[२], डेढ़ हाथ[३], पौने दो हाथ[४], दो हाथ[५], सवा दो हाथ[६], ढाई हाथ[७], पौने तीन हाथ[८], तीन हाथ[९], सवा तीन हाथ[१०], साढ़े तीन हाथ[११], पौने चार हाथ[१२], चार हाथ[१३], सवा चार हाथ[१४], साढ़े चार हाथ[१५], पौने पाँच हाथ[१६], पाँच हाथ[१७], सवा पाँच हाथ[१८], साढ़े पाँच हाथ[१९], पौने छः हाथ[२०], छः हाथ[२१], सवा छः हाथ[२२], साढ़े छः हाथ[२३], पौने सात हाथ[२४], सात हाथ[२५], सवा सात हाथ[२६], साढ़े सात हाथ[२७], पौने आठ हाथ[२८], आठ हाथ[२९], सवा आठ हाथ[३०], साढ़े आठ हाथ[३१], पौने नौ हाथ[३२], नौ हाथ[३३]।

इन तैंतीसोंके नाम विश्वकर्माने क्रमशः इस प्रकार बताये हैं—१. भव, २. भवोद्भव, ३. भाव, ४. संसारभयनाशन, ५. पाशयुक्त, ६. महातेज, ७. महादेव, ८. परात्पर, ९. ईश्वर, १०. शेखर, ११. शिव, १२. शान्त, १३. मनोह्लादक, १४. रुद्रतेज, १५. सदात्मक (सद्योजात), १६. वामदेव, १७. अघोर, १८. तत्पुरुष, १९. ईशान, २०. मृत्युंजय, २१. विजय, २२. किरणाक्ष, २३. अघोरास्त्र, २४. श्रीकण्ठ, २५. पुण्यवर्धन, २६. पुण्डरीक, २७. सुवक्त्र, २८. उमातेजः, २९. विश्वेश्वर, ३०. त्रिनेत्र, ३१. त्र्यम्बक, ३२. घोर, ३३. महाकाल।

पूर्वोक्त	क्रमसे	पादार्धवृद्धि करनेपर	६५ तक	संख्या पहुँचेगी।
,,	,,	दो अङ्गुल वृद्धि करनेपर	९७ तक	,, ,,
,,	,,	एक अङ्गुल वृद्धि करनेपर	१९३ तक	,, ,,
,,	,,	अर्द्धाङ्गुल वृद्धि करनेपर	३८५ तक	,, ,,
,,	,,	अङ्गुलका चतुर्थांश बढ़ानेपर	७६९ तक	,, ,,
,,	,,	एक-एक मूँगके मानकी वृद्धि करनेपर	१४४२ तक	,, ,,
,,	,,	मुद्ग-प्रमाण लिङ्गोंमें प्रत्येकके दस भेद करनेपर	१४४२० तक	,, ,,

विस्तारको ही प्रत्येक विभागका विस्तार मानकर, तदनुसार मध्य, ऊर्ध्व और अधः—इन विभागोंकी स्थापना करे। मध्यम विभागसे ऊपरका अष्टकोण या षोडश कोणवाला विभाग शिवका अंश है। पाद या मूलभागसे जानुपर्यन्त लिङ्गका अधोभाग है, यह ब्रह्माका अंश है तथा जानुसे नाभिपर्यन्त लिङ्गका मध्यम भाग है, जो भगवान् विष्णुका अंश है॥ ३०—३३॥

मूर्धान्तभाग भूतभागेश्वरका है। व्यक्त-अव्यक्त सभी लिङ्गोंके लिये ऐसी ही बात है। जिस शिवलिङ्गमें पाँच लिङ्गकी व्यवस्था है, वहाँ शिरोभाग गोलाकार होना चाहिये—ऐसा बताया जाता है। वह गोलाई छत्राकार हो, मुर्गीके अंडेके समान हो; नवोदित चन्द्रके सदृश हो या पुरुषके आकारकी हो। ['पुरुषाकृति'के स्थानमें 'त्रपुषाकृति' पाठ हो तो गोलाई त्रपुषके समान आकारवाली हो—ऐसा अर्थ लेना चाहिये।] इस प्रकार एक-एकके चार भेद होते हैं। कामनाओंके भेदसे इनके फलमें भी भेद होता है, यह बताऊँगा। लिङ्गके मस्तक-भागका विस्तार जितने अङ्गुलका हो, उतनी संख्यामें आठसे भाग दे। इस प्रकार मस्तकको आठ भागोंमें विभक्त करके आदिके जो चार भाग हैं, उनका विस्तार और ऊँचाईके अनुसार ग्रहण करे। एक भागको छाँट देनेसे 'पुण्डरीक' नामक लिङ्ग होता है, दो भागोंको लुप्त कर देनेसे 'विशाल' संज्ञक लिङ्ग होता है, तीन भागोंका उच्छेद कर देनेपर उसकी 'श्रीवत्स' संज्ञा होती है तथा चार भागोंके लोपसे उस लिङ्गको 'शत्रुकारक' कहा गया है। शिरोभाग सब ओरसे सम हो तो श्रेष्ठ माना गया है। देवपूज्य लिङ्गमें मस्तक-भाग कुक्कुटके अण्डकी भाँति गोल होना चाहिये॥ ३४—३८॥

चतुर्भागात्मक लिङ्गमेंसे ऊपरका दो भाग मिटा देनेसे 'त्रपुष' नामक लिङ्ग होता है। यह (त्रपुष) अनाढ्यसंज्ञक शिवलिङ्गका सिर माना गया है। अब अर्द्ध-चन्द्राकार सिरके विषयमें सुनो—शिवलिङ्गके प्रान्तभागमें एक अंशके चार अंश करके एक अंशको त्याग दिया जाय तो वह 'अमृताक्ष' नाम धारण करता है। दूसरे, तीसरे और चौथे अंशका लोप करनेपर क्रमशः उन शिवलिङ्गोंकी 'पूर्णेन्दु', 'बालेन्दु' तथा 'कुमुद' संज्ञा होती है। ये क्रमशः चतुर्मुख, त्रिमुख और एकमुख होते हैं। इन तीनोंको 'मुखलिङ्ग' भी कहते हैं। अब मुखलिङ्गके विषयमें सुनो—पूजाभागकी त्रिविध कल्पना करनी चाहिये—मूर्तिपूजा, अग्निपूजा तथा पदपूजा। पूर्ववत् द्वादशांशका त्याग करके छः भागोंद्वारा छः स्थानोंकी अभिव्यक्ति करे। सिरको ऊँचा करना चाहिये तथा ललाट, नासिका, मुख, चिबुक तथा ग्रीवाभागको भी स्पष्टतया व्यक्त करे। चार भागों (या अंशों)-द्वारा दोनों भुजाओं तथा नेत्रोंको प्रकट करे। प्रतिमाके प्रमाणके अनुसार मुकुलाकार हाथ बनाकर विस्तारके अष्टमांशसे चारों मुखोंका निर्माण करे। प्रत्येक मुख सब ओरसे सम होना चाहिये। यह मैंने चतुर्मुखलिङ्गके विषयमें बताया है; अब त्रिमुखलिङ्गके विषयमें बताया जाता है, सुनो—॥ ३९—४४॥

त्रिमुखलिङ्गमें चतुर्मुखकी अपेक्षा कान और पैर अधिक रहेंगे। ललाट आदि अङ्गोंका पूर्ववत् ही निर्देश करे। चार अंशोंसे दो भुजाओंका निर्माण करे, जिनका पिछला भाग सुदृढ़ एवं सुपुष्ट हो। विस्तारके अष्टमांशसे तीनों मुखोंका विनिर्गम (प्राकट्य) हो। [अब एकमुखलिङ्गके विषयमें सुनो—] एकमुख पूर्व दिशामें बनाना चाहिये; उसके नेत्रोंमें सौम्यभाव रहे। (उग्रता न हो।) उसके ललाट, नासिका, मुख और ग्रीवामें विवर्तन (विशेष उभाड़) हो। बाहु-विस्तारके पञ्चमांशसे पूर्वोक्त

अङ्गोंका निर्माण होना चाहिये। एकमुखलिङ्गको बाहुरहित बनाना चाहिये। एकमुखलिङ्गमें विस्तारके छठे अंशसे मुखका निर्गमन हितकर कहा गया है। मुखयुक्त जितने भी लिङ्ग हैं, उन सबका शिरोभाग त्रपुषाकार या कुक्कुटाण्डके समान गोलाकार होना चाहिये॥ ४५—४८॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'लिङ्गमान एवं व्यक्ताव्यक्त लक्षण आदिका वर्णन' नामक चौवनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५४॥

पचपनवाँ अध्याय

पिण्डिकाका लक्षण

श्रीभगवान् हयग्रीव कहते हैं— ब्रह्मन्! अब मैं प्रतिमाओंकी पिण्डिकाका लक्षण बता रहा हूँ। पिण्डिका लंबाईमें तो प्रतिमाके बराबर होनी चाहिये और चौड़ाईमें उससे आधी। उसकी ऊँचाई भी प्रतिमाकी लंबाईसे आधी हो और उस अर्द्धभागके बराबर ही वह सुविस्तृत हो। अथवा उसका विस्तार लंबाईके तृतीयांशके तुल्य हो। उसके एक तिहाई भागको लेकर मेखला बनावे। पानी बहनेके लिये जो खात या गर्त हो, उसका माप भी मेखलाके ही तुल्य रहे। वह खात उत्तर दिशाकी ओर कुछ नीचा होना चाहिये। पिण्डिकाके विस्तारके एक चौथाई भागसे जलके निकलनेका मार्ग (प्रणाल) बनाना चाहिये। मूल भागमें उसका विस्तार मूलके ही बराबर हो, परंतु आगे जाकर वह आधा हो जाय। पिण्डिकाके विस्तारके एक तिहाई भागके अथवा पिण्डिकाके आधे भागके बराबर वह जलमार्ग हो। उसकी लंबाई प्रतिमाकी लंबाईके तुल्य ही बतायी गयी है। अथवा प्रतिमा ही उसकी लंबाईके तुल्य हो। इस बातको अच्छी तरह समझकर उसका सूत्रपात करे॥ १—५॥

प्रतिमाकी ऊँचाई पूर्ववत् सोलह भागकी संख्याके अनुसार करे। छः और दो अर्थात् आठ भागोंको नीचेके आधे अङ्गमें गतार्थ करे। इससे ऊपरके तीन भागको लेकर कण्ठका निर्माण करे। शेष भागोंको एक-एक करके प्रतिष्ठा, निर्गम तथा पट्टिका आदिमें विभाजित करे। यह सामान्य प्रतिमाओंमें पिण्डिकाका लक्षण बताया गया है। प्रासादके द्वारके दैर्घ्य-विस्तारके अनुसार प्रतिमा-गृहका भी द्वार कहा गया है। प्रतिमाओंमें हाथी और व्याल (सर्प या व्याघ्र आदि)-की मूर्तियोंसे युक्त तत्तत्-देवताविषयक शोभाकी रचना करे॥ ६—८॥

श्रीहरिकी पिण्डिका भी सदा यथोचित शोभासे सम्पन्न बनायी जानी चाहिये। सभी देवताओंकी प्रतिमाओंके लिये वही मान बताया जाता है, जो विष्णु-प्रतिमाके लिये कहा गया है तथा सम्पूर्ण देवियोंके लिये भी वही मान बताया जाता है, जो लक्ष्मीजीकी प्रतिमाके लिये कहा गया है॥ ९-१०॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'पिण्डिकाके लक्षणका वर्णन' नामक पचपनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५५॥

छप्पनवाँ अध्याय

प्रतिष्ठाके अङ्गभूत मण्डपनिर्माण, तोरण-स्तम्भ, कलश एवं ध्वजके स्थापन तथा दस दिक्पाल-यागका वर्णन

श्रीभगवान् हयग्रीव कहते हैं— ब्रह्मन्! मैं प्रतिष्ठाके पाँच अङ्गोंका वर्णन करूँगा। प्रतिमा पुरुषका प्रतीक है तो पिण्डिका प्रकृतिका, अथवा प्रतिमा नारायणका स्वरूप है तो पिण्डिका लक्ष्मीका। उन दोनोंके योगको 'प्रतिष्ठा' कहते हैं। इसलिये इच्छानुरूप फल चाहनेवाले मनुष्योंद्वारा इष्टदेवताकी प्रतिष्ठा (स्थापना)-की जाती है। आचार्यको चाहिये कि वह मन्दिरके सामने गर्भसूत्रको निकालकर आठ, सोलह अथवा बीस हाथका मण्डप तैयार करे। इनमें आठ हाथका मण्डप 'निम्न', सोलह हाथका 'मध्यम' और बीस हाथका 'उत्तम' माना गया है। मण्डपमें देवताके स्नानके लिये, कलश-स्थापनके लिये तथा याग-सम्बन्धी द्रव्योंको रखनेके लिये आधा स्थान सुरक्षित कर ले। फिर मण्डपके आधे या तिहाई भागमें सुन्दर वेदी बनावे। उसे बड़े-बड़े कलशों, छोटे-छोटे घड़ों और चँदोवे आदिसे विभूषित करे। पञ्चगव्यसे मण्डपके भीतरके स्थानोंका प्रोक्षण करके वहाँ सब सामग्री रखे। तत्पश्चात् गुरु वस्त्र एवं माला आदिसे अलंकृत हो, भगवान् विष्णुका ध्यान करके उनका पूजन करे॥ १—५॥

अँगूठी आदि भूषणों तथा प्रार्थना आदिसे मूर्तिपालक विद्वानोंका सत्कार करके कुण्ड-कुण्डपर उन्हें बिठावे। वे वेदोंके पारंगत हों। चौकोर, अर्धचन्द्र, गोलाकार अथवा कमल-सदृश आकारवाले कुण्डोंपर उन विद्वानोंको विराजमान करना चाहिये। पूर्व आदि दिशाओंमें तोरण (द्वार)-के लिये पीपल, गूलर, वट और प्लक्षके वृक्षके काष्ठका उपयोग करना चाहिये। पूर्व दिशाका द्वार 'सुशोभन' नामसे प्रसिद्ध है। दक्षिण दिशाका द्वार 'सुभद्र' कहा गया है, पश्चिमका द्वार 'सुकर्मा' और उत्तरका 'सुहोत्र' नामसे प्रसिद्ध है। ये सभी तोरण-स्तम्भ पाँच हाथ ऊँचे होने चाहिये। इनकी स्थापना करके **'स्योना* पृथिवि नो—'** (शु० यजु० ३६। १३) इस मन्त्रसे पूजन करे। तोरण-स्तम्भके मूलभागमें मङ्गल अङ्कुर (आम्र-पल्लव, यवाङ्कुर आदि)-से युक्त कलश स्थापित करे॥ ६—९॥

तोरणस्तम्भके ऊपरी भागमें सुदर्शनचक्रकी स्थापना करे। इसके अतिरिक्त विद्वान् पुरुषोंको वहाँ पाँच हाथका ध्वज स्थापित करना चाहिये। उस ध्वजकी चौड़ाई सोलह अङ्गुलकी हो। सुरश्रेष्ठ! उस ध्वजका दण्ड सात हाथ ऊँचा होना चाहिये। अरुणवर्ण, अग्निवर्ण (धूम्रवर्ण), कृष्ण, शुक्ल, पीत, रक्त तथा श्वेत—ये वर्ण क्रमशः पूर्वादि दिशाओंमें ध्वजमें होने चाहिये। कुमुद, कुमुदाक्ष, पुण्डरीक, वामन, शङ्कुकर्ण, सर्वनेत्र, सुमुख और सुप्रतिष्ठित—ये क्रमशः पूर्व आदि ध्वजोंके पूजनीय देवता हैं। इनमें करोड़ों दिव्य गुण विद्यमान हैं। कलश ऐसे पके हुए हों कि सुपक्व बिम्बफलके समान लाल दिखायी देते हों। वे एक-एक आढक जलसे पूर्णतः भरे हों। उनकी संख्या एक सौ अट्ठाईस हो। उनकी स्थापना ऐसे समय करनी चाहिये, जब कि 'कालदण्ड' नामक योग न हो। उन सभी कलशोंमें सुवर्ण डाला गया हो। उनके कण्ठभागमें वस्त्र लपेटे गये हों। वे जलपूर्ण कलश तोरणसे

* पूरा मन्त्र इस प्रकार है—ॐ स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी। यच्छा नः शर्म सप्रथाः॥ (शु० यजु० ३६। १३)

बाहर स्थापित किये जायँ॥ १०—१५॥

वेदीके पूर्व आदि दिशाओं तथा कोणोंमें भी कलश स्थापित करने चाहिये। पहले पूर्वादि चारों दिशाओंमें चार कलश स्थापित करे। उस समय **'आजिघ्र[1] कलशम्'** आदि मन्त्रका पाठ करना चाहिये। उन कलशोंमें पूर्वादि दिशाओंके क्रमसे इन्द्र आदि दिक्पालोंका आवाहनपूर्वक पूजन करे। इन्द्रका आवाहन करते समय इस प्रकार कहे—'ऐरावत हाथीपर बैठे और हाथमें वज्र धारण किये देवराज इन्द्र! यहाँ आइये और अन्य देवताओंके साथ मेरे पूर्व द्वारकी रक्षा कीजिये। देवताओंसहित आपको नमस्कार है।' इस तरह आवाहन करके विद्वान् पुरुष **'त्रातारमिन्द्रम्०[2]'**— इत्यादि मन्त्रसे उनकी अर्चना एवं आराधना करे॥ १६—१८॥

इसके बाद निम्नाङ्कितरूपसे अग्निदेवका आवाहन करे—'बकरेपर आरूढ शक्तिधारी एवं बलशाली अग्निदेव! आइये और देवताओंके साथ अग्निकोणकी रक्षा कीजिये। यह पूजा ग्रहण कीजिये। आपको नमस्कार है।' तदनन्तर **'अग्निर्मूर्द्धा०[3]'** इत्यादिसे अथवा **'अग्नये नमः।'**—इस मन्त्रसे अग्निकी पूजा करे। यमराजका आवाहन—'महिषपर आरूढ, दण्डधारी, महाबली सूर्यपुत्र यम! आप यहाँ पधारिये और दक्षिण द्वारकी रक्षा कीजिये। आपको नमस्कार है।' इस प्रकार आवाहन करके **'वैवस्वतं सङ्गमनम्०'** इत्यादि मन्त्रसे यमराजकी पूजा करे। निर्ऋतिका आवाहन—'बल और वाहनसे सम्पन्न खड्गधारी निर्ऋति! आइये। आपके लिये यह अर्घ्य है, यह पाद्य है। आप नैर्ऋत्य दिशाकी रक्षा कीजिये।' इस तरह आवाहन करके **'एष[4] ते निर्ऋते०'** इत्यादिसे मनुष्य अर्घ्य आदि उपचारोंद्वारा निर्ऋतिकी पूजा करे॥ १९—२२ $\frac{1}{2}$ ॥

वरुणका आवाहन—'मकरपर आरूढ पाशधारी महाबली वरुणदेव! आइये और पश्चिम द्वारकी रक्षा कीजिये। आपको नमस्कार है।' इस प्रकार आवाहन करके, **'उरुं[5] हि राजा वरुणः०'** इत्यादि मन्त्रोंद्वारा आचार्य वरुणदेवताका अर्घ्य आदिसे पूजन करे। वायुदेवताका आवाहन—'अपने वाहनपर आरूढ ध्वजधारी महाबली वायुदेव! आइये और देवताओं तथा मरुद्गणोंके साथ वायव्यकोणकी रक्षा कीजिये। आपको नमस्कार है।' **'वात[6] आवातु०'** इत्यादि वैदिक मन्त्रसे अथवा **'ॐ नमो वायवे०।'** इस मन्त्रसे वायुकी पूजा करे॥ २३—२५ $\frac{1}{2}$ ॥

सोमका आवाहन—'बल और वाहनसे सम्पन्न गदाधारी सोम! आप यहाँ पधारिये और उत्तर द्वारकी रक्षा कीजिये। कुबेरसहित आपको नमस्कार है।' इस प्रकार आवाहन करके, **'सोमं[7] राजानम्०'** इत्यादिसे अथवा **'सोमाय नमः।'** इस मन्त्रसे सोमकी पूजा करे। ईशानका आवाहन—'वृषभपर आरूढ़ महाबलशाली शूलधारी ईशान! पधारिये और यज्ञ-मण्डपकी ईशान-दिशाका संरक्षण कीजिये। आपको नमस्कार है।' इस प्रकार आवाहन

१-आजिघ्र कलशं मह्या त्वा विशन्त्विन्दवः। पुनरूर्जा निवर्तस्व सा नः सहस्रं धुक्ष्वोरुधारा पयस्वती पुनर्माविशताद्रयिः॥ (यजु० ८।४२)

२-त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रꣳ हवे हवे सुहवꣳशूरमिन्द्रम्। ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रꣳ स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः॥ (यजु २०।५०)

३-अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्। अपाꣳ रेताꣳसि जिन्वति॥ (यजु० ३।१२)

४-एष ते निर्ऋते भागस्तं जुषस्व स्वाहा। (यजु० ९।३५)

५-उरुꣳ हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा उ। अपदे पादा प्रतिधातवेऽकरुतापवक्ता हृदयाविधश्चित्। (ऋ० मं० १ सू०२४।८)

६-वात आवातु भेषजं शम्भुमयो भु नो हृदे। प्र ण आयूंषि तारिषत्॥ (ऋ० मं० १० सू० १८६।१)

७-सोमꣳ राजानमवसेऽग्निं गीर्भिर्हवामहे। आदित्यान् विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम्। (ऋ० मं० १० सू० १४१।३ तथा यजु० ९।२६)

करके '**ईशानमस्य०**' इत्यादिसे अथवा '**ईशानाय नमः।**' इस मन्त्रसे ईशानदेवताका पूजन करे। ब्रह्माका आवाहन—'हाथके अग्रभागमें स्रुक् और स्रुवा लेकर हंसपर आरूढ हुए अजन्मा ब्रह्माजी! आइये और लोकसहित यज्ञमण्डपकी ऊर्ध्व-दिशाकी रक्षा कीजिये। आपको नमस्कार है।' इस प्रकार आवाहन करके '**हिरण्यगर्भः०**[१]' इत्यादिसे अथवा '**नमस्ते ब्रह्मणे**' इस मन्त्रसे ब्रह्माजीकी पूजा करे॥ २६—३०॥

अनन्तका आवाहन—'कच्छपकी पीठपर विराजमान, नागगणोंके अधिपति, चक्रधारी अनन्त! आइये और नीचेकी दिशाकी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। अनन्तेश्वर! आपको नमस्कार है।' इस प्रकार आवाहन करके '**नमोऽस्तु**[२] **सर्पेभ्यः०**' इत्यादिसे अथवा '**अनन्ताय नमः।**' इस मन्त्रसे भगवान् अनन्तकी पूजा करे॥ ३१-३२॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'दस दिक्पालोंके पूजनका वर्णन' नामक छप्पनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५६॥

सत्तावनवाँ अध्याय

कलशाधिवासकी विधिका वर्णन

श्रीभगवान् हयग्रीव कहते हैं— ब्रह्मन्! प्रतिष्ठाके लिये अथवा देवपूजनके लिये जिस भूमिको ग्रहण करे, वहाँ नारसिंह-मन्त्रका पाठ करते हुए राक्षसोंका अपसारण करनेवाले अक्षत और सरसों छींटे तथा पञ्चगव्यसे उस भूमिका प्रोक्षण करे। रत्नयुक्त कलशपर अङ्ग-देवताओंसहित श्रीहरिका पूजन करके, वहाँ अस्त्र-मन्त्रसे एक सौ आठ करकों (कमण्डलुओं)-का पूजन करे। अविच्छिन्न धारासे वेदीका सेचन करके वहाँ व्रीहि (धान, जौ आदि)-को संस्कारपूर्वक बिखेरे तथा कलशको प्रदक्षिणाक्रमसे घुमाकर उस बिखेरे हुए अन्नके ऊपर स्थापित करे। वस्त्रवेष्टित कलशपर पुनः भगवान् विष्णु और लक्ष्मीकी पूजा करे। तत्पश्चात् '**योगे योगे०**[३]' इत्यादि मन्त्रसे मण्डलमें शय्या स्थापित करे। स्नान-मण्डपमें कुशके ऊपर शय्या और शय्याके ऊपर तूलिका (रूईभरा गद्दा) बिछाकर, दिशाओं और विदिशाओंमें विद्याधिपतियों (भगवान् विष्णुके ही विभिन्न विग्रहों)-का पूजन करे। पूर्वादि दिशाओंमें क्रमशः विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम और वामनका तथा अग्नि आदि कोणोंमें क्रमशः श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ एवं दामोदरका पूजन करे। दामोदरका पूजन ईशानकोणमें होना चाहिये॥ १—६॥

इस तरह पूजन करनेके पश्चात् स्नानमण्डपके भीतर ईशानकोणमें स्थित तथा वेदीसे विभूषित चार कलशोंमें स्नानोपयोगी सब द्रव्योंको लाकर डाले। उन कलशोंको चारों दिशाओंमें विराजमान कर दे। भगवान्के अभिषेकके लिये संचित किये गये वे कलश बड़े आदरके साथ रखने योग्य हैं। पूर्व दिशाके कलशमें बड़, गूलर, पीपल, चम्पा, अशोक, श्रीद्रुम (बिल्व), पलाश, अर्जुन, पाकड़, कदम्ब, मौलसिरी और आमके पल्लवोंको लाकर डाले। दक्षिणके कलशमें कमल, रोचना, दूर्वा, कुशकी मुट्ठी, जातीपुष्प, कुन्द, श्वेतचन्दन,

१-हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ (यजु० १३।४)

२-नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु। ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः॥ (यजु० १३।६)

३-योगे योगे तवस्तरं बाजे बाजे हवामहे। सखाय इन्द्रमूतये॥ (यजु० ११।१४)

रक्तचन्दन, सरसों, तगर और अक्षत डाले। पश्चिमके कलशमें सोना, चाँदी, समुद्रगामिनी नदीके दोनों तटोंकी मिट्टी, विशेषतः गङ्गाकी मृत्तिका, गोबर, जौ, अगहनी धानका चावल और तिल छोड़े॥ ७—१२ $\frac{1}{2}$ ॥

उत्तरके कलशमें विष्णुपर्णी (भुई आँवला), शालपर्णी (सरिवन), भृङ्गराज (भँगरैया), शतावरी, सहदेवी (सहदेइया), बच, सिंही (कटेरी या अड़ूसा), बला (खरेटी), व्याघ्री (कटेहरी) और लक्ष्मणा—इन ओषधियोंको छोड़े। ईशानकोणवर्ती अन्य कलशमें माङ्गलिक वस्तुएँ छोड़े। अग्निकोणस्थ दूसरे कलशमें बाँबी आदि सात स्थानोंकी मिट्टी छोड़े। नैर्ऋत्यकोणवर्ती अन्य कलशमें गङ्गाजीकी बालू और जल डाले तथा वायव्यकोणवर्ती अन्य कलशमें सूकर, वृषभ और गजराजके दाँत एवं सींगोंद्वारा कोड़ी हुई मिट्टी, कमलकी जड़के पासकी मिट्टी तथा इतर कलशमें कुशके मूल भागकी मृत्तिका डाले। इसी तरह किसी कलशमें तीर्थ और पर्वतोंकी मृत्तिकाओंसे युक्त जल डाले, किसीमें नागकेसरके फूल और केसर छोड़े, किसी कलशमें चन्दन, अगुरु और कपूरसे पूरित जल भरे और उसमें वैदूर्य, विद्रुम, मुक्ता, स्फटिक तथा वज्र (हीरा)—ये पाँच रत्न डाले॥ १३—१८॥

इन सबको एक कलशमें डालकर उसीके ऊपर इष्ट-देवताकी स्थापना करे। अन्य कलशमें नदी, नद और तालाबोंके जलसे युक्त जल छोड़े। इक्यासी पदवाले वास्तुमण्डलमें अन्यान्य कलशोंकी स्थापना करे। वे कलश गन्धोदक आदिसे पूर्ण हों। उन सबको श्रीसूक्तसे अभिमन्त्रित करे। जौ, सरसों, गन्ध, कुशाग्र, अक्षत, तिल, फल और पुष्प—इन सबको अर्घ्यके लिये पात्रविशेषमें संचित करके पूर्व दिशाकी ओर रख दे। कमल, श्यामलता, दूर्वादल, विष्णुक्रान्ता और कुश—इन सबको पाद्य-निवेदनके लिये दक्षिण भागमें स्थापित करे। मधुपर्क पश्चिम दिशामें रखे। कङ्कोल, लवङ्ग और सुन्दर जायफल—इन सबको आचमनके उपयोगके लिये उत्तर दिशामें रखे। अग्निकोणमें दूर्वा और अक्षतसे युक्त एक पात्र नीराजना (आरती उतारने)-के लिये रखे। वायव्यकोणमें उद्वर्तनपात्र तथा ईशानकोणमें गन्धपिष्टसे युक्त पात्र रखे। कलशमें सुरमांसी (जटामांसी), आँवला, सहदेइया तथा हल्दी आदि छोड़े। नीराजनाके लिये अड़सठ दीपोंकी स्थापना करे। शङ्ख तथा धातुनिर्मित चक्र, श्रीवत्स, वज्र एवं कमलपुष्प आदि रंग-बिरंगे पुष्प सुवर्ण आदिके पात्रमें सज्जित करके रखे॥ १९—२६॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'कलशाधिवासकी विधिका वर्णन' नामक सत्तावनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५७॥

अट्ठावनवाँ अध्याय

भगवद्विग्रहको स्नान और शयन करानेकी विधि

श्रीभगवान् हयग्रीव कहते हैं—ब्रह्मन्! आचार्य ईशानकोणमें एक होमकुण्ड तैयार करे और उसमें वैष्णव-अग्निकी स्थापना करे। तदनन्तर गायत्री-मन्त्रसे एक सौ आठ आहुतियाँ देकर सम्पात-विधिसे कलशोंका प्रोक्षण करे। तदनन्तर मूर्तिपालक विद्वानों तथा शिल्पियोंसहित यजमान बाजे-गाजेके साथ कारुशाला (कारीगरकी कर्मशाला)-में जाय। वहाँ प्रतिमावर्ती इष्टदेवताके दाहिने हाथमें कौतुक-सूत्र (कङ्कण आदि) बाँधे। उसे बाँधते समय '**विष्णवे शिपिविष्टाय नमः।**'—

इस मन्त्रका पाठ करे। उस समय आचार्यके हाथमें भी ऊनी सूत, सरसों और रेशमी वस्त्रसे कौतुक बाँध देना चाहिये। मण्डलमें सवस्त्र प्रतिमाकी स्थापना और पूजा करके उसकी स्तुति करते हुए कहे—'विश्वकर्माकी बनायी हुई देवेश्वरि प्रतिमे! तुम्हें नमस्कार है। सम्पूर्ण जगत्को प्रभावित करनेवाली जगदम्ब! तुम्हें मेरा बारंबार प्रणाम है। ईश्वरि! मैं तुममें निरामय नारायणदेवका पूजन करता हूँ। तुम शिल्प-सम्बन्धी दोषोंसे रहित हो; अतः मेरे लिये सदा समृद्धिशालिनी बनी रहो'॥ १—५ $\frac{1}{2}$ ॥

इस तरह प्रार्थना करके प्रतिमाको स्नान-मण्डपमें ले जाय। शिल्पीको यथेष्ट द्रव्य देकर संतुष्ट करे। गुरुको गोदान दे। '**चित्रं देवाना०**'[१] इत्यादि मन्त्रसे प्रतिमाका नेत्रोन्मीलन करे। '**अग्निर्ज्योतिः०**'[२] इत्यादि मन्त्रसे दृष्टिसंचार करे। फिर भद्रपीठपर प्रतिमाको स्थापित करे। तत्पश्चात् आचार्य श्वेत पुष्प, घी, सरसों, दूर्वादल तथा कुशाग्र इष्टदेवके सिरपर चढ़ावे॥ ६—८॥

इसके बाद '**मधु**[३] **वाता०**' इत्यादि मन्त्रसे गुरु प्रतिमाके नेत्रोंमें अञ्जन करे। उस समय '**हिरण्यगर्भः०**[४]' इत्यादि तथा '**इमं मे वरुण०**' (यजु० २१।१) इत्यादि मन्त्रोंका कीर्तन करे। तत्पश्चात् पुनः '**घृतवती०**[५]' ऋचाका पाठ करते हुए घृतका अभ्यङ्ग लगावे। इसके बाद मसूरके बेसनसे उबटनका काम लेकर '**अतो देवाः०**[६]' इत्यादि मन्त्रका कीर्तन करे। फिर '**सप्त**[७] **ते अग्ने०**' इत्यादि मन्त्र बोलकर गुरु गर्म जलसे प्रतिमाका प्रक्षालन करे। तदनन्तर '**द्रुपदादिव०**[८]' इत्यादि मन्त्रसे अनुलेपन और '**आपो**[९] **हि ष्ठा०**' इत्यादिसे अभिषेक करे। अभिषेकके पश्चात् नदी एवं तीर्थके जलसे स्नान कराकर '**पावमानी**' ऋचा (शु० यजु० ३९—४३)-का पाठ करते हुए, रत्न-स्पर्शसे युक्त जलद्वारा स्नान करावे। '**समुद्रं**[१०] **गच्छ स्वाहा०**' इत्यादि मन्त्र पढ़कर तीर्थकी मृत्तिका और कलशके जलसे स्नान करावे। '**शं नो**[११] **देवीः०**' इत्यादि तथा गायत्री-मन्त्रसे गरम जलके द्वारा इष्टदेवकी प्रतिमाको नहलावे॥ ९—१३॥

---

१. चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आ प्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा॥ (यजु० ७।४२ तथा १३।४६)

२. अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा। अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा। ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा॥ (यजु० ३।९)

३. मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः॥ मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवꣳरजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता॥ मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँऽअस्तु सूर्यः॥ माध्वीर्गावो भवन्तु नः॥ (यजु० १३।२७, २८, २९)

४. (यजु० १३।४) यह मन्त्र अध्याय ५६ की टिप्पणीमें दिया जा चुका है।

५. घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा। द्यावा पृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा॥ (यजु० ३४।४५)

६. अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे पृथिव्याः सप्तधामभिः॥ (ऋ० म० १, सू० २२।१६)

७. सप्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वाः सप्त ऋषयः सप्त धाम प्रियाणि। सप्त होत्राः सप्तधा त्वा यजन्ति सप्त योनीरापृणस्वा घृतेन स्वाहा। (यजु० १७।७९)

८. द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव। पूतं पवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः॥ (यजु० २०।२०)

९. आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे॥ यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः॥ तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः॥ (यजु० ११। ५०, ५१, ५२)

१०. समुद्रं गच्छ स्वाहान्तरिक्षं गच्छ स्वाहा देवꣳ सवितारं गच्छ स्वाहा मित्रावरुणौ गच्छ स्वाहाहोरात्रे गच्छ स्वाहा छन्दाꣳसि गच्छ स्वाहा द्यावापृथिवी गच्छ स्वाहा यज्ञं गच्छ स्वाहा सोमं गच्छ स्वाहा दिव्यं नभो गच्छ स्वाहाग्निं वैश्वानरं गच्छ स्वाहा। मनो मे हार्दि यच्छ दिवं ते धूमो गच्छतु स्वर्ज्योतिः पृथिवीं भस्मनापृण स्वाहा॥ (यजु० ६।२१)

११. शं नो देवीरभीष्टय आपो भवन्तु पीतये शं योरभि स्रवन्तु नः। (अथर्ववेद १।६।१)

'**हिरण्यगर्भः०**' इत्यादि मन्त्रसे पाँच प्रकारकी मृत्तिकाओंद्वारा परमेश्वरको स्नान करावे। इसके बाद '**इमं मे गङ्गे यमुने०**' इत्यादि मन्त्रसे बालुकामिश्रित जलके द्वारा तथा '**तद्**[१] **विष्णोः०**' इत्यादि मन्त्रसे बाँबीकी मिट्टी मिले हुए जलसे पूर्ण घटके द्वारा भगवान्‌को स्नान करावे। '**या ओषधीः०**[२]' इत्यादि मन्त्रसे ओषधिमिश्रित जलके द्वारा, '**यज्ञा**[३] **यज्ञा०**' इत्यादि मन्त्रसे आँवले आदि कसैले पदार्थोंसे मिश्रित जलके द्वारा, '**पयः**[४] **पृथिव्याम्०**' इत्यादि मन्त्रसे पञ्चगव्योंद्वारा तथा '**याः फलिनीः०**[५]' इत्यादि मन्त्रसे फलमिश्रित जलके द्वारा भगवान्‌को नहलावे। '**विश्वतश्चक्षुः०**[६]' इत्यादि मन्त्रसे उत्तरवर्ती कलशद्वारा, '**सोमं**[७] **राजानम्०**' इस मन्त्रसे पूर्ववर्ती कलशद्वारा, '**विष्णो**[८] **रराटमसि०**' इत्यादि मन्त्रसे दक्षिणवर्ती कलशद्वारा तथा '**हꣳसः**[९] **शुचिषद्०**' इत्यादि मन्त्रसे पश्चिमवर्ती कलशद्वारा भगवान्‌को उद्वर्तन-स्नान करावे॥ १४—१७॥

'**मूर्द्धानं**[१०] **दिवो०**' इत्यादि मन्त्रसे आँवले मिले हुए जलके द्वारा, '**मा नस्तोके०**[११]' इत्यादि मन्त्रसे जटामांसीमिश्रित जलके द्वारा, '**गन्धद्वाराम्०**[१२]' इत्यादि मन्त्रसे गन्धमिश्रित जलके द्वारा तथा '**इदमापः०**[१३]' इत्यादि मन्त्रसे इक्यासी पदोंवाले वास्तुमण्डलमें रखे गये कलशोंद्वारा भगवान्‌को नहलावे। इस प्रकार स्नानके पश्चात् भगवान्‌को सम्बोधित करके कहे—'भगवन्! समस्त लोकोंपर अनुग्रह करनेवाले सर्वव्यापी वासुदेव! आइये, आइये, इस यज्ञभागको ग्रहण कीजिये। आपको नमस्कार है।' इस प्रकार देवेश्वरका आवाहन करके उनके हाथमें बँधा हुआ मङ्गलसूत्र खोल दे। उसे खोलते समय '**मुञ्चामि**[१४] **त्वा०**' इस मन्त्रका पाठ करे। इसी मन्त्रसे आचार्यका भी कौतुकसूत्र खोल दे। तदनन्तर '**हिरण्मयेन०**[१५]' इत्यादि मन्त्रसे पाद्य और '**अतो देवाः०**' (ऋक्० १।१३।६) इत्यादि मन्त्रसे अर्घ्य दे। फिर '**मधु वाताः०**' इत्यादि मन्त्रसे मधुपर्क देकर '**मयि गृह्णामि०**[१६]' इत्यादि मन्त्रसे आचमन करावे। तत्पश्चात् विद्वान् पुरुष '**अक्षन्नमीमदन्त०**[१७]'

---

१. तद् विष्णोः परमं पदꣳ सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्॥ (यजु० ६।५)
२. या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा। मनैनु बभ्रूणामहꣳ शतं धामानि सप्त च॥ (यजु० १२।७५)
३. यज्ञा यज्ञा वो अग्नये गिरा गिरा च दक्षसे। प्र प्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शꣳ सिषम्॥ (यजु० २७।४२)
४. पयः पृथिव्यां पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो धाः। पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम्॥ (यजु० १८।३६)
५. याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः। बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वꣳहसः॥ (यजु० १२।८९)
६. विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्। सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः॥ (यजु० १७।१९)
७. सोमꣳ राजानमवसेऽग्निमन्वारभामहे। आदित्यान्विष्णुꣳ सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिꣳ स्वाहा॥ (यजु ९।२६)
८. विष्णो रराटमसि विष्णोः श्नप्त्रे स्थो विष्णोः स्यूरसि विष्णोर्ध्रुवोऽसि वैष्णवमसि विष्णवे त्वा॥ (यजु० ५।२१)
९. हꣳ सः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्। नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्॥ (यजु०१०।२४)
१०. मूर्द्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम्। कविꣳ सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः॥ (यजु० ७।२४)
११. मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः। मा नो वीरान् रुद्र भामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमि त्वा हवामहे॥ (यजु० १६।१६)
१२. गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्। ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम्॥ (श्रीसूक्त)
१३. इदमापः प्रवहतावद्यं च मलं य यत्। यच्चाभिदुद्रोहानृतं यच्च शेपे अभीरुणम्। आपो मा तस्मादेनसः पवमानश्च मुञ्चतु॥ (यजु० ६।१७)
१४. मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्। ग्राहिर्जग्राह यदि वैतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम्॥ (ऋ० मं० १०, सू० १६१।१)
१५. हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्। योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्। (यजु० ४०।१७)
१६. मयि गृह्णाम्यग्रे अग्निꣳ रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय। मामु देवताः सचन्ताम्॥ (यजु० १३।१)
१७. अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत। अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी॥ (यजु० ३।५१)

इत्यादि मन्त्र पढ़कर भगवान्के श्रीअङ्गोंपर दूर्वा एवं अक्षत बिखेरे॥ १८—२२॥

'**काण्डात्०**[1]' इत्यादि मन्त्रसे निर्मञ्छन करे। '**गन्धवती०**[2]' इत्यादिसे गन्ध अर्पित करे। '**उन्नयामि०**' इस मन्त्रसे फूल-माला और '**इदं विष्णुः०**[3]' इत्यादि मन्त्रसे पवित्रक अर्पित करे। '**बृहस्पते०**[4]' इत्यादि मन्त्रसे एक जोड़ा वस्त्र चढ़ावे। '**वेदाहमेतम्**[5]**०**' इत्यादिसे उत्तरीय अर्पित करे। '**महाव्रतेन०**' इस मन्त्रसे फूल और औषध—इन सबको चढ़ावे। तदनन्तर '**धूरसि०**[6]' इस मन्त्रसे धूप दे। '**विभ्राट्०**[7]' सूक्तसे अञ्जन अर्पित करे। '**युञ्जन्ति०**[8]' इत्यादि मन्त्रसे तिलक लगावे तथा '**दीर्घात्वाय०**' (अथर्व० २।४।१) इस मन्त्रसे फूलमाला चढ़ावे। '**इन्द्र क्षत्रमभि०**' (अथर्व० ७।४।२) इत्यादि मन्त्रसे छत्र, '**विराट्०**[9]' मन्त्रसे दर्पण, '**विकर्ण०**' मन्त्रसे चँवर तथा '**रथन्तर०**' साम-मन्त्रसे आभूषण निवेदित करे॥ २३—२६॥

वायुदेवता-सम्बन्धी मन्त्रोंद्वारा व्यजन, '**मुञ्चामि त्वा०**' (ऋक् १०।१६१।१) इस मन्त्रसे फूल तथा वेदादि (प्रणव)-युक्त पुरुषसूक्तके मन्त्रोंद्वारा श्रीहरिकी स्तुति करे। ये सारी वस्तुएँ पिण्डिका आदिपर तथा शिव आदि देवताओंपर इसी प्रकार चढ़ावे। भगवान्को उठाते समय 'सौपर्ण' सूक्तका पाठ करे। 'प्रभो! उठिये' ऐसा कहकर भगवान्को उठावे और मण्डपमें शय्यापर ले जाय। उस समय 'शकुनि' सूक्तका पाठ करे। ब्रह्मरथ एवं पालकी आदिके द्वारा भगवान्को शय्यापर ले जाना चाहिये। '**अतो देवाः**' (ऋक्० १।२२।१६) इस सूक्तसे तथा '**श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च०**' (यजु० ३१।२२)-से प्रतिमा एवं पिण्डिकाको शय्यापर पधरावे। तदनन्तर भगवान् विष्णुके लिये निष्कली-करणकी क्रिया सम्पादित करे॥ २७—३०॥

सिंह, वृषभ, हाथी, व्यजन, कलश, वैजयन्ती (पताका), भेरी तथा दीपक—ये आठ मङ्गलसूचक वस्तुएँ हैं। इन सब वस्तुओंको अश्वसूक्तका पाठ करते हुए भगवान्को दिखावे। '**त्रिपात्०**[10]' इत्यादि मन्त्रसे भगवान्के चरण-प्रान्तमें उखा (पात्रविशेष), उसका ढक्कन, अम्बिका (कड़ाही), दर्विका (करछुल), पात्र, ओखली, मूसल, सिल, झाड़ू, भोजन-पात्र तथा घरके अन्य सामान रखे। उनके सिरकी ओर वस्त्र और रत्नसे युक्त एक कलश स्थापित करे, जो खाँड और खाद्य-पदार्थसे भरा हुआ हो। उस घटकी 'निद्रा' संज्ञा होती है। इस प्रकार भगवान्के शयनकी विधि बतायी गयी है॥ ३१—३४॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'स्नपनकी विधि आदिका वर्णन' नामक अट्ठावनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५८॥

---

१. काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती पुरुषः पुरुषस्परि। एवा नो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च॥ (यजु० १३।२०)

२. 'गन्धद्वारां०' इत्यादि मन्त्र ही यहाँ गन्धवती नामसे गृहीत होते हैं।

३. इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूढमस्य पाꣳ सुरे स्वाहा॥ (यजु० ५।१५)

४. बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु। यद्दीदयच्छवस ऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम्। उपयामगृहीतोऽसि बृहस्पतये त्वैष ते योनिर्बृहस्पतये त्वा॥ (यजु० २६।३)

५. वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्। तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥ (यजु० ३१।१८)

६. धूरसि धूर्व धूर्वन्तं धूर्व तं योऽस्मान्धूर्वति तं धूर्वयं वयं धूर्वामः। देवानामसि वह्नितमꣳ सस्नितमं पप्रितमं जुष्टतमं देवहूतमम्॥ (यजु० १।८)

७. विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्य मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविह्रुतम्। वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पुपोष पुरुधा वि राजति॥ (यजु० ३३।३०)

८. युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः। रोचन्ते रोचना दिवि॥ (यजु० २३।५)

९. विराड् ज्योतिरधारयत्स्वराड् ज्योतिरधारयत्। प्रजापतिष्ट्वा सादयतु पृष्ठे पृथिव्या ज्योतिष्मतीम्। विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ। अग्निष्टेऽधिपतिस्तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवासीद॥ (यजु० १३।२४)

१०. त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः। ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि॥ (यजु० १३।४)

उनसठवाँ अध्याय
अधिवास-विधिका वर्णन

श्रीभगवान् हयग्रीव कहते हैं— ब्रह्मन्! श्रीहरिका सांनिध्यकरण 'अधिवासन' कहलाता है। साधक यह चिन्तन करे कि 'मैं अथवा मेरा आत्मा सर्वज्ञ सर्वव्यापी पुरुषोत्तमरूप है।' इस प्रकार भावना करके आत्माकी '**ॐ**' इस नामके द्वारा प्रतिपादित होनेवाले परमात्माके साथ एकता करे। तदनन्तर चैतन्याभिमानिनी जीव-शक्तिको पृथक् करके आत्माके साथ उसकी एकता करे। ऐसा करके स्वात्मरूप सर्वव्यापी परमेश्वरमें उसे जोड़ दे। तत्पश्चात् प्राणवायुद्वारा ('लं' बीजात्मक) पृथ्वीको अग्निबीज (रं)-के चिन्तनद्वारा प्रकट हुई अग्निमें जला दे, अर्थात् यह भावना करे कि पृथ्वीका अग्निमें लय हो गया। फिर वायुमें अग्निको विलीन करे और आकाशमें वायुका लय कर दे। अधिभूत, अधिदैव तथा अध्यात्म-वैभवके साथ समस्त भूतोंको तन्मात्राओंमें विलीन करके विद्वान् पुरुष आकाशमें उन सबका क्रमशः संहार करे। इसके बाद आकाशका मनमें, मनका अहंकारमें, अहंकारका महतत्त्वमें और महतत्त्वका अव्याकृत प्रकृतिमें लय करे॥ १—५॥

अव्याकृत प्रकृति (अथवा माया)-को ज्ञानस्वरूप परमात्मामें विलीन करे। उन्हीं परमात्माको 'वासुदेव' कहा गया है। उन शब्दस्वरूप भगवान् वासुदेवने सृष्टिकी इच्छासे उस अव्याकृत मायाका आश्रय ले स्पर्शसंज्ञक संकर्षणको प्रकट किया। संकर्षणने मायाको क्षुब्ध करके तेजोरूप प्रद्युम्नकी सृष्टि की। प्रद्युम्नने रसस्वरूप अनिरुद्धको और अनिरुद्धने गन्धस्वरूप ब्रह्माको जन्म दिया। ब्रह्माने सबसे पहले जलकी सृष्टि की। उस जलमें उन्होंने पाँच भूतोंसे युक्त हिरण्मय अण्डको उत्पन्न किया। उस अण्डमें जीव-शक्तिका संचार हुआ। यह वही जीव-शक्ति है, जिसका आत्मामें पहले उपसंहार बताया गया है। जीवके साथ प्राणका संयोग होनेपर वह 'वृत्तिमान्' कहलाता है। व्याहृतिसंज्ञक जीव प्राणोंमें स्थित होकर 'आध्यात्मिक पुरुष' कहा गया है। उससे प्राणयुक्त बुद्धि उत्पन्न हुई, जो आठ वृत्तिवाली बतायी गयी है। उस बुद्धिसे अहंकारका और अहंकारसे मनका प्रादुर्भाव हुआ। मनसे संकल्पादियुक्त पाँच विषय प्रकट हुए, जिनके नाम इस प्रकार हैं—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध॥ ६—१२॥

इन सबने ज्ञानशक्तिसे सम्पन्न पाँच इन्द्रियोंको प्रकट किया, जिनके नाम हैं—त्वक्, श्रोत्र, घ्राण, नेत्र और जिह्वा। इन सबको 'ज्ञानेन्द्रिय' कहा गया है। दो पैर, गुदा, दो हाथ, वाक् और उपस्थ—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। अब पञ्चभूतोंके नाम सुनो। आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी—ये पाँच भूत हैं। इनके ही द्वारा सबका आधारभूत स्थूल शरीर उत्पन्न होता है। इन तत्वोंके वाचक जो उत्तम बीज-मन्त्र हैं, उनका न्यासके लिये यहाँ वर्णन किया जाता है। 'मं' यह बीज जीवस्वरूप (अथवा जीवतत्त्वका वाचक) है। वह सम्पूर्ण शरीरमें व्यापक है—इस भावनाके साथ उक्त बीजका सम्पूर्ण देहमें व्यापक-न्यास करना चाहिये। 'भं' यह प्राणतत्त्वका प्रतीक है। यह जीवकी उपाधिमें स्थित है, अतः इसका वहीं न्यास करना चाहिये। विद्वान् पुरुष बुद्धितत्त्वके बोधक बकार अथवा 'बं' बीजका हृदयमें न्यास करे। फकार (फं) अहंकारका स्वरूप है, अतः उसका भी हृदयमें ही न्यास करे। संकल्पके कारणभूत मनस्तत्त्वरूप पकार (पं)-का भी वहीं न्यास करे॥ १३—१८॥

शब्दतन्मात्रतत्त्वके बोधक नकार (नं)-का मस्तकमें और स्पर्शरूप धकार (धं)-का मुखप्रदेशमें न्यास करे। रूपतत्त्वके वाचक दकार (दं)-का नेत्रप्रान्तमें और रसतन्मात्राके बोधक थकार (थं)-का वस्तिदेश (मूत्राशय)-में न्यास करे। गन्धतन्मात्रस्वरूप तकार (तं)-का पिण्डलियोंमें न्यास करे। णकार (णं)-का दोनों कानोंमें न्यास करके ढकार (ढं)-का त्वचामें न्यास करे। डकार (डं)-का दोनों नेत्रोंमें, ठकार (ठं)-का रसनामें, टकार (टं)-का नासिकामें और ञकार (ञं)-का वागिन्द्रियमें न्यास करे। विद्वान् पुरुष पाणितत्त्वरूप झकार (झं)-का दोनों हाथोंमें न्यास करके, जकार (जं)-का दोनों पैरोंमें, 'छं' का पायुमें और 'चं' का उपस्थमें न्यास करे। ङकार (ङं) पृथ्वीतत्त्वका प्रतीक है। उसका युगल चरणोंमें न्यास करे। घकार (घं)-का वस्तिमें और तेजस्तत्त्वरूप (गं)-का हृदयमें न्यास करे। खकार (खं) वायुतत्त्वका प्रतीक है। उसका नासिकामें न्यास करे। ककार (कं) आकाशतत्त्वरूप है। विद्वान् पुरुष उसका सदा ही मस्तकमें न्यास करे॥ १९—२५ ॥

हृदय-कमलमें सूर्य-देवता-सम्बन्धी 'यं' बीजका न्यास करके, हृदयसे निकली हुई जो बहत्तर हजार नाड़ियाँ हैं, उनमें षोडश कलाओंसे युक्त सकार (सं)-का न्यास करे। उसके मध्यभागमें मन्त्रज्ञ पुरुष बिन्दुस्वरूप वह्निमण्डलका चिन्तन करे। सुरश्रेष्ठ! उसमें प्रणवसहित हकार (हं)-का न्यास करे। **१. ॐ आं नमः परमेष्ठ्यात्मने। २.ॐ आं नमः पुरुषात्मने। ३.ॐ वां नमो नित्यात्मने। ४.ॐ नां नमो विश्वात्मने। ५. ॐ वं नमः सर्वात्मने।** ये पाँच शक्तियाँ बतायी गयी हैं। 'स्नानकर्म' में प्रथमा शक्तिकी योजना करनी चाहिये। 'आसनकर्म' में द्वितीया, 'शयन' में तृतीया, 'यानकर्म' में चतुर्थी और 'अर्चनाकाल' में पञ्चमी शक्तिका प्रयोग करना चाहिये—ये पाँच उपनिषद् हैं। इनके मध्यमें मन्त्रमय श्रीहरिका ध्यान करके क्षकार (क्षं)-का न्यास करे॥ २६—३१ ॥

तदनन्तर जिस मूर्तिकी स्थापना की जाती है, उसके मूल-मन्त्रका न्यास करना चाहिये। (भगवान् विष्णुकी स्थापनामें) '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**'—यह मूल-मन्त्र है। मस्तक, नासिका, ललाट, मुख, कण्ठ, हृदय, दो भुजा, दो पिण्डली और दो चरणोंमें क्रमशः उक्त मूल-मन्त्रके एक-एक अक्षरका न्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् केशवका मस्तकमें न्यास करे। नारायणका मुखमें, माधवका ग्रीवामें और गोविन्दका दोनों भुजाओंमें न्यास करके विष्णुका हृदयमें न्यास करे। पृष्ठभागमें मधुसूदनका, जठरमें वामनका और कटिमें त्रिविक्रमका न्यास करके जंघा (पिण्डली)-में श्रीधरका न्यास करे। दक्षिण भागमें हृषीकेशका, गुल्फमें पद्मनाभका और दोनों चरणोंमें दामोदरका न्यास करनेके पश्चात् हृदयादि षडङ्गन्यास करे॥ ३२—३६ ॥

सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ ब्रह्माजी! यह आदिमूर्तिके लिये न्यासका साधारण क्रम बताया गया है। अथवा जिस देवताकी स्थापनाका आरम्भ हो, उसीके मूल-मन्त्रसे मूर्तिके सजीवकरणकी क्रिया होनी चाहिये। जिस मूर्तिका जो नाम हो, उसके आदि अक्षरका बारह स्वरोंसे भेदन करके अङ्गोंकी कल्पना करनी चाहिये। देवेश्वर! हृदय आदि अङ्गोंका तथा द्वादश अक्षरवाले मूल-मन्त्रका एवं तत्त्वोंका जैसे देवताके विग्रहमें न्यास करे, वैसे ही अपने शरीरमें भी करे। तत्पश्चात् चक्राकार पद्ममण्डलमें भगवान् विष्णुका गन्ध आदिसे पूजन करे। पूर्ववत् शरीर और वस्त्राभूषणोंसहित भगवान्‌के आसनका ध्यान करे। ऊपरी भागमें बारह अरोंसे युक्त सुदर्शनचक्रका चिन्तन करे। वह चक्र तीन नाभि और दो

नेमियोंसे युक्त है। साथ ही बारह स्वरोंसे सम्पन्न है। इस प्रकार चक्रका चिन्तन करनेके पश्चात् विद्वान् पुरुष पृष्ठदेशमें प्रकृति आदिका निवेश करे। फिर अरोंके अग्रभागमें बारह सूर्योंका पूजन करे। तदनन्तर वहाँ सोलह कलाओंसे युक्त सोमका ध्यान करे। चक्रकी नाभिमें तीन वसन (वस्त्र या वासस्थान)-का चिन्तन करे। तत्पश्चात् श्रेष्ठ आचार्य पद्मके भीतर द्वादशदल-पद्मका चिन्तन करे॥ ३७—४४॥

उस पद्ममें पुरुष-शक्तिका ध्यान करके उसकी पूजा करे। फिर प्रतिमामें श्रीहरिका न्यास करके गुरु वहाँ श्रीहरि तथा अन्य देवताओंका पूजन करे। गन्ध, पुष्प आदि उपचारोंसे अङ्ग और आवरणोंसहित इष्टदेवका भलीभाँति पूजन करना चाहिये। द्वादशाक्षर-मन्त्रके एक-एक अक्षरको बीजरूपमें परिवर्तित करके उनके द्वारा केशव आदि भगवद्विग्रहोंकी क्रमशः पूजा करे। द्वादश अरोंसे युक्त मण्डलमें लोकपाल आदिकी भी क्रमसे अर्चना करे। तदनन्तर द्विज गन्ध, पुष्प आदि उपचारोंद्वारा पुरुषसूक्तसे प्रतिमाकी पूजा करे और श्रीसूक्तसे पिण्डिकाकी। इसके बाद जनन आदिके क्रमसे वैष्णव-अग्निको प्रकट करे। तदनन्तर विष्णुदेवता-सम्बन्धी मन्त्रोंद्वारा अग्निमें आहुति देकर विद्वान् पुरुष शान्ति-जल तैयार करे और उसे प्रतिमाके मस्तकपर छिड़ककर अग्निका प्रणयन करे। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि **'अग्निं दूतम्०'**[1] इत्यादि मन्त्रसे दक्षिण-कुण्डमें अग्नि-प्रणयन करे। पूर्वकुण्डमें **'अग्निमग्निम्०'**[2] इत्यादि मन्त्रसे और उत्तर-कुण्डमें **'अग्निमग्निं[3] हवीमभिः०'** इत्यादि मन्त्रसे अग्निका प्रणयन करे। अग्निप्रणयन-कालमें **'त्वमग्ने[4] द्युभिः०'** इत्यादि मन्त्रका पाठ किया जाता है॥ ४५—५१॥

प्रत्येक कुण्डमें प्रणवके उच्चारणपूर्वक पलाशकी एक हजार आठ समिधाओंका तथा जौ आदिका भी होम करे। व्याहृति-मन्त्रसे घृतमिश्रित तिलोंका और मूलमन्त्रसे घीका हवन करे। तत्पश्चात् मधुरत्रय (घी, शहद और चीनी)-से शान्ति-होम करे। द्वादशाक्षर-मन्त्रसे दोनों पैर, नाभि, हृदय और मस्तकका स्पर्श करे। घी, दही और दूधकी आहुति देकर मस्तकका स्पर्श करे। तत्पश्चात् मस्तक, नाभि और चरणोंका स्पर्श करके क्रमशः गङ्गा, यमुना, गोदावरी और सरस्वती—इन चार नदियोंकी स्थापना करे। विष्णु-गायत्रीसे[5] अग्निको प्रज्वलित करे और गायत्री-मन्त्रसे उस अग्निमें चरु पकावे। गायत्रीसे ही होम और बलि दे। तदनन्तर ब्राह्मणोंको भोजन करावे॥ ५२—५६॥

मासाधिपति बारह आदित्योंकी तुष्टिके लिये आचार्यको सुवर्ण और गौकी दक्षिणा दे। दिक्पालोंको बलि देकर रातमें जागरण करे। उस समय वेदपाठ और गीत, कीर्तन आदि करता रहे। इस प्रकार अधिवासन-कर्मका सम्पादन करनेपर मनुष्य सम्पूर्ण फलोंका भागी होता है॥ ५७—५९॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'देवाधिवास-विधिका वर्णन' नामक उनसठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५९॥

---

१. अग्निं दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुप ब्रुवे॥ देवाँ २॥ आसादयादिह॥ (यजु० २२। १७)

२. अग्निमग्निं वः समिधा दुवस्यत प्रियं प्रियं वो अतिथिं गृणीषणि। उप वो गीर्भिरमृतं विवासत देवो देवेषु वनते हि वार्यं देवो देवेषु वनते हि नो दुवः॥ (ऋ० मं० ६। १५। ६)

३. अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम्। हव्यवाहं पुरुप्रियम्॥ (ऋ० मं० १, सू० १२। २)

४. त्वमग्ने द्युभिस्त्वमाशुशुक्षणिस्त्वमद्भ्यस्त्वमश्मनस्परि। त्वं वनेभ्यस्त्वमोषधीभ्यस्त्वं नृणां नृपते जायसे शुचिः॥ (यजु० ११। २७)

५. नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि। तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्।

साठवाँ अध्याय

वासुदेव आदि देवताओंके स्थापनकी साधारण विधि

श्रीभगवान् हयग्रीव कहते हैं— ब्रह्मन्! पिण्डिकाकी स्थापनाके लिये विद्वान् पुरुष मन्दिरके गर्भगृहको सात भागोंमें विभक्त करे और ब्रह्मभागमें प्रतिमाको स्थापित करे। देव, मनुष्य और पिशाच-भागोंमें कदापि उसकी स्थापना नहीं करनी चाहिये। ब्रह्मन्! ब्रह्मभागका कुछ अंश छोड़कर तथा देवभाग और मनुष्य-भागोंमेंसे कुछ अंश लेकर, उस भूमिमें यत्नपूर्वक पिण्डिका स्थापित करनी चाहिये। नपुंसक शिलामें रत्नन्यास करे। नृसिंह-मन्त्रसे हवन करके उसीसे रत्नन्यास भी करे। व्रीहि, रत्न, लोह आदि धातु और चन्दन आदि पदार्थोंको पूर्वादि दिशाओं तथा मध्यमें बने हुए नौ कुण्डोंमें अपनी रुचिके अनुसार छोड़े। तदनन्तर इन्द्र आदिके मन्त्रोंसे पूर्वादि दिशाओंके गर्तको गुग्गुलसे आवृत करके, रत्नन्यासकी विधि सम्पन्न करनेके पश्चात्, गुरु शलाकासहित कुश-समूहों और 'सहदेव' नामक औषधके द्वारा प्रतिमाको अच्छी तरह मले और झाड़-पोंछ करे। बाहर-भीतरसे संस्कार (सफाई) करके पञ्चगव्यद्वारा उसकी शुद्धि करे। इसके बाद कुशोदक, नदीके जल एवं तीर्थ-जलसे उस प्रतिमाका प्रोक्षण करे॥ १—७॥

होमके लिये बालूद्वारा एक वेदी बनावे, जो सब ओरसे डेढ़ हाथकी लंबी-चौड़ी हो। वह वेदी चौकोर एवं सुन्दर शोभासे सम्पन्न हो। आठ दिशाओंमें यथास्थान कलशोंको भी स्थापित करे। उन पूर्वादि कलशोंको आठ प्रकारके रंगोंसे सुसज्जित करे। तत्पश्चात् अग्नि ले आकर वेदीपर उसकी स्थापना करे और कुशकण्डिकाद्वारा संस्कार करके उस अग्निमें '**त्वमग्ने द्युभि:०**' (यजु० ११। २७) इत्यादिसे तथा गायत्री-मन्त्रसे समिधाओंका हवन करे। अष्टाक्षर-मन्त्रसे अष्टोत्तरशत घीकी आहुति दे, पूर्णाहुति प्रदान करे। तत्पश्चात् मूल-मन्त्रसे सौ बार अभिमन्त्रित किये गये शान्तिजलको आम्रपल्लवोंद्वारा लेकर इष्टदेवताके मस्तकपर अभिषेक करे। अभिषेक-कालमें '**श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च०**[1]' इत्यादि ऋचाका पाठ करता रहे। '**उत्तिष्ठ**[2] **ब्रह्मणस्पते०**' इस मन्त्रसे प्रतिमाको उठाकर ब्रह्मरथपर रखे और '**तद्**[3] **विष्णो:०**' इत्यादि मन्त्रसे उक्त रथद्वारा उसे मन्दिरकी ओर ले जाय। वहाँ श्रीहरिकी उस प्रतिमाको शिविका (पालकी)-में पधराकर नगर आदिमें घुमावे और गीत, वाद्य एवं वेदमन्त्रोंकी ध्वनिके साथ उसे पुन: लाकर मन्दिरके द्वारपर विराजमान करे॥ ८—१३॥

इसके बाद गुरु सुवासिनी स्त्रियों और ब्राह्मणोंद्वारा आठ मङ्गल-कलशोंके जलसे श्रीहरिको स्नान करावे तथा गन्ध आदि उपचारोंसे मूल-मन्त्रद्वारा पूजन करनेके पश्चात् '**अतो देवा:०**' (ऋक्० १। २२। १६) इत्यादि मन्त्रसे वस्त्र आदि अष्टाङ्ग अर्घ्य निवेदन करे। फिर स्थिर लग्नमें पिण्डिकापर '**देवस्य त्वा०**[4]' इत्यादि मन्त्रसे इष्टदेवताके उस अर्चा-विग्रहको स्थापित कर दे। स्थापनाके पश्चात् इस प्रकार कहे— 'सच्चिदानन्दस्वरूप त्रिविक्रम! आपने तीन पगोंद्वारा समूची त्रिलोकीको आक्रान्त कर लिया था।

---

१. श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्। इष्णन्निषाणामुं म इषाण सर्वलोकं म इषाण॥ (यजु० ३१। २२)

२. उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे। उप प्रयन्तु मरुत: सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा॥ (यजु० ३४। ५६)

३. तद् विष्णो: परमं पद॰ सदा पश्यन्ति सूरय:। दिवीव चक्षुराततम्॥ (यजु० ६। ५)

४. देवस्य त्वा सवितु: प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। अग्नये जुष्टं गृह्णाम्यग्नीषोमाभ्यां जुष्टं गृह्णामि॥ (यजु० १। १०)

आपको नमस्कार है।' इस तरह पिण्डिकापर प्रतिमाको स्थापित करके विद्वान् पुरुष उसे स्थिर करे। प्रतिमा-स्थिरीकरणके समय '**ध्रुवाद्यौः**[१]**०**' इत्यादि तथा '**विश्वतश्चक्षुः०**' (यजु० १७।१९) इत्यादि मन्त्रोंका पाठ करे। पञ्चगव्यसे स्नान कराकर गन्धोदकसे प्रतिमाका प्रक्षालन करे और सकलीकरण[२] करनेके पश्चात् श्रीहरिका साङ्गोपाङ्ग साधारण पूजन करे॥ १४—१७ १/२ ॥

उस समय इस प्रकार ध्यान करे—'आकाश भगवान् विष्णुका विग्रह है और पृथिवी उसकी पीठिका (सिंहासन) है।' तदनन्तर तैजस परमाणुओंसे भगवान्‌के श्रीविग्रहकी कल्पना करे और कहे—'मैं पच्चीस तत्त्वोंमें व्यापक जीवका आवाहन करूँगा।'॥ १८-१९ ॥

'वह जीव चैतन्यमय, परमानन्दस्वरूप तथा जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति—इन तीनों अवस्थाओंसे रहित है; देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण तथा अहंकारसे शून्य है। वह ब्रह्मा आदिसे लेकर कीटपर्यन्त समस्त जगत्‌में व्याप्त और सबके हृदयोंमें विराजमान है। परमेश्वर! आप ही जीव चैतन्य हैं; आप हृदयसे प्रतिमा-बिम्बमें आकर स्थिर होइये। आप इस प्रतिमा-बिम्बको इसके बाहर और भीतर स्थित होकर सजीव कीजिये। अङ्गुष्ठमात्र पुरुष (परमात्मा जीवरूपसे) सम्पूर्ण देहोपाधियोंमें स्थित हैं। वे ही ज्योतिःस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, एकमात्र अद्वितीय परब्रह्म हैं।' इस प्रकार सजीवीकरण करके प्रणवद्वारा भगवान्‌को जगावे। फिर भगवान्‌के हृदयका स्पर्श करके पुरुषसूक्तका जप करे। इसे 'सांनिध्यकरण' नामक कर्म कहा गया है। इसके लिये भगवान्‌का ध्यान करते हुए निम्नाङ्कित गुह्य-मन्त्रका जप करे—॥ २०—२४॥

'प्रभो! आप देवताओंके स्वामी हैं, संतोष-वैभव-रूप हैं। आपको नमस्कार है। ज्ञान और विज्ञान आपके रूप हैं, ब्रह्मतेज आपका अनुगामी है। आपका स्वरूप गुणातीत है। आप अन्तर्यामी पुरुष एवं परमात्मा हैं; अक्षय पुराणपुरुष हैं; आपको नमस्कार है। विष्णो! आप यहाँ संनिहित होइये। आपका जो परमतत्त्व है, जो ज्ञानमय शरीर है, वह सब एकत्र हो, इस अर्चाविग्रहमें जाग उठे।' इस प्रकार परमात्मा श्रीहरिका सांनिध्यकरण करके ब्रह्मा आदि परिवारोंकी उनके नामसे स्थापना करे। उनके जो आयुध आदि हैं, उनकी भी मुद्रासहित स्थापना करे।

---

१. ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवासः पर्वता इमे। ध्रुवं विश्वमिदं जगद् ध्रुवो राजा विशामयम्॥ (ऋक् १०।१७३।४)

२. श्रीविद्यारण्य मुनिने नृसिंहोत्तरतापनीयोपनिषद्‌की टीकामें सकलीकरण नामक न्यासकी विधि यों बतायी है—पहले आत्माकी 'ॐ' इस नामके द्वारा प्रतिपादित होनेवाले ब्रह्मके साथ एकता करके, तथा ब्रह्मकी आत्माके साथ ओंकारके वाच्यार्थरूपसे एकता करके वह एकमात्र जरारहित, मृत्युरहित, अमृतस्वरूप, निर्भय, चिन्मय तत्त्व 'ॐ' है—इस प्रकार अनुभव करे। तत्पश्चात् उस परमात्मस्वरूप ओंकारमें स्थूल, सूक्ष्म और कारण—इन तीन शरीरोंवाले सम्पूर्ण दृश्य-प्रपञ्चका आरोप करके, अर्थात् एक परमात्मा ही सत्य है, उन्हींमें इस स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण-जगत्‌की कल्पना हुई है—ऐसा विवेकद्वारा अनुभव करके यह निश्चय करे कि 'यह जगत् सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा ही है; क्योंकि तन्मय (परमात्ममय) होनेके कारण अवश्य यह तत्स्वरूप (परमात्मस्वरूप) ही है' और इस दृढ़ निश्चयके द्वारा इस जगत्‌को 'ॐ'के वाच्यार्थभूत परमात्मामें विलीन कर डाले। इसके बाद चतुर्विध शरीरकी सृष्टिके लिये निम्नाङ्कित प्रकारसे सकलीकरण करे। 'ॐ'का उच्चारण अनेक प्रकारसे होता है—एक तो केवल मकार-पर्यन्त उच्चारण होता है, दूसरा बिन्दु-पर्यन्त, तीसरा नाद-पर्यन्त और चौथा शक्ति-पर्यन्त होता है। फिर उच्चारण बंद हो जानेपर उसकी 'शान्त' संज्ञा होती है। सकलीकरणकी क्रिया आरम्भ करते समय पहले 'ॐ'का उपर्युक्त रीतिसे शान्त-पर्यन्त उच्चारण करके 'शान्त्यतीतकलात्मने साक्षिणे नमः।' इस मन्त्रसे व्यापक-न्यास करते हुए 'साक्षी'का चिन्तन करे। फिर शक्तिपर्यन्त प्रणवका उच्चारण करके 'शान्तिकलाशक्तिपरावागात्मने सामान्यदेहाय नमः।' इस मन्त्रसे व्यापक करते हुए अन्तर्मुख, सत्स्वरूप, ब्रह्मज्ञानरूप सामान्य देहका चिन्तन करे। फिर प्रणवका नादपर्यन्त उच्चारण करके 'विद्याकलानादपश्यन्तीवागात्मने कारणदेहाय नमः।' इस मन्त्रसे व्यापक-न्यास करते हुए प्रलय, सषुप्ति एवं ईक्षणावस्थामें स्थित किंचित् बहिर्मुख सत्स्वरूप कारणदेहका चिन्तन करे। फिर प्रणवका बिन्दुपर्यन्त उच्चारण करके 'प्रतिष्ठाकलाबिन्दु मध्यमावागात्मने सूक्ष्मदेहाय नमः।' इस मन्त्रसे व्यापक हुए सूक्ष्मभूत, अन्तःकरण, प्राण तथा इन्द्रियोंके संघातरूप सूक्ष्म शरीरका चिन्तन करे। फिर प्रणवका मकार-पर्यन्त उच्चारण करके 'निवृत्तिकलाबीजवैखरीवागात्मने स्थूलशरीराय नमः।' इस मन्त्रसे व्यापक करते हुए पञ्चीकृत भूत एवं उसके कार्यरूप स्थूलशरीरका चिन्तन करे।

यात्रा-सम्बन्धी उत्सव तथा वार्षिक आदि उत्सवकी भी योजना करके और उन उत्सवोंका दर्शनकर श्रीहरिको अपने संनिहित जानना चाहिये। भगवान्‌को नमस्कार, स्तोत्र आदिके द्वारा उनकी स्तुति तथा उनके अष्टाक्षर आदि मन्त्रका जप करते समय भी भगवान्‌को अपने निकट उपस्थित जानना चाहिये॥ २५—२९॥

तदनन्तर आचार्य मन्दिरसे निकलकर द्वारवर्ती द्वारपाल चण्ड और प्रचण्डका पूजन करे। फिर मण्डपमें आकर गरुडकी स्थापना एवं पूजा करे। प्रत्येक दिशामें दिक्पालों तथा अन्य देवताओंका स्थापन-पूजन करके गुरु विष्वक्सेनकी स्थापना तथा शङ्ख, चक्र आदिकी पूजा करे। सम्पूर्ण पार्षदों और भूतोंको बलि अर्पित करे। आचार्यको दक्षिणारूपसे ग्राम, वस्त्र एवं सुवर्ण आदिका दान दे। यज्ञोपयोगी द्रव्य आदि आचार्यको अर्पित करे। आचार्यसे आधी दक्षिणा ऋत्विजोंको दे। इसके बाद अन्य ब्राह्मणोंको भी दक्षिणा दे और भोजन करावे। वहाँ आनेवाले किसी भी ब्राह्मणको रोके नहीं, सबका सत्कार करे। तदनन्तर गुरु यजमानको फल दे॥ ३०—३४॥

भगवद्विग्रहकी स्थापना करनेवाला पुरुष अपने साथ सम्पूर्ण कुलको भगवान् विष्णुके समीप ले जाता है। सभी देवताओंके लिये यह साधारण विधि है; किंतु उनके मूल-मन्त्र पृथक्-पृथक् होते हैं। शेष सब कार्य समान हैं॥ ३५-३६॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'वासुदेव आदि देवताओंकी स्थापनाके सामान्य विधानका वर्णन' नामक साठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ६०॥

इकसठवाँ अध्याय

अवभृथस्नान, द्वारप्रतिष्ठा और ध्वजारोपण आदिकी विधिका वर्णन

श्रीभगवान् हयग्रीव कहते हैं— ब्रह्मन्! अब मैं अवभृथस्नानका वर्णन करता हूँ। **'विष्णोर्नु कं * वीर्याणि०'** इत्यादि मन्त्रसे हवन करे। इक्यासी पदवाले वास्तुमण्डलमें कलश स्थापित करके उनके जलसे श्रीहरिको स्नान करावे। स्नानके पश्चात् गन्ध, पुष्प आदिसे भगवान्‌की पूजा करे और बलि अर्पित करके गुरुका पूजन करे। अब मैं द्वारप्रतिष्ठाका वर्णन करूँगा। गुरु द्वारके निम्नभागमें सुवर्ण रखे और आठ कलशोंके साथ वहाँ दो गूलरकी शाखाओंको स्थापित करे। फिर गन्ध आदि उपचारों और वैदिक आदि मन्त्रोंसे सम्यक् पूजन करके कुण्डोंमें स्थापित अग्निमें समिधा, घी और तिल आदिकी आहुति दे। तत्पश्चात् शय्या आदिका दान देकर नीचे आधारशक्तिकी स्थापना करे॥ १—४॥

दोनों शाखाओंके मूलभागमें चण्ड और प्रचण्ड नामक देवताओंकी स्थापना करे। उदुम्बर-शाखाओंके ऊपरी भागमें देववृन्दपूजित लक्ष्मीदेवीकी स्थापना करके श्रीसूक्तसे उनका यथोचित पूजन करे। तत्पश्चात् ब्रह्माजीका पूजन करके आचार्य आदिको श्रीफल (नारियल) आदिकी दक्षिणा दे। प्रतिष्ठा-द्वारा सिद्ध द्वारपर आचार्य श्रीहरिकी स्थापना करे। मन्दिरकी प्रतिष्ठा **'हृत्प्रतिष्ठा०'** इत्यादि मन्त्रसे की जाती है। उसका वर्णन सुनो। वेदीके पहले गर्भगृहके शिरोभागमें, जहाँ शुकनासाकी समाप्ति होती है, उस स्थानपर सोने अथवा चाँदीके बने हुए श्वेत निर्मल कलशकी स्थापना करे। उसमें आठ प्रकारके रत्न, ओषधि, धातु, बीज और लोह (सुवर्ण) छोड़ दे। उस सुन्दर कलशके कण्ठभागमें वस्त्र लपेटकर उसमें जल

* विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजाꣳसि। यो अस्कभायदुत्तरꣳ सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायो विष्णवे त्वा॥ (यजु० ५।१८)

भर दे और मण्डलमें उसका अधिवासन करे। उसमें पल्लव डाल दे। तत्पश्चात् नृसिंह-मन्त्रसे अग्निमें घीकी धारा गिराते हुए होम करे। नारायणतत्त्वसे प्राणन्यास करे॥ ५—१०॥

सुरेश्वर! प्रासादके उस कलशका वैराजरूपमें चिन्तन करे। तत्पश्चात् विद्वान् पुरुष सम्पूर्ण प्रासादका ही पुरुषकी भाँति चिन्तन करे। तदनन्तर नीचे सुवर्ण देकर तत्त्वभूत कलशकी स्थापना करे। गुरु आदिको दक्षिणा दे और ब्राह्मण आदिको भोजन करावे। तत्पश्चात् वेदीके चारों ओर सूत या माला लपेटे। उसके ऊपर कण्ठभागमें सब ओर सूत अथवा बन्दनवार बाँधे और उसके भी ऊपर 'विमलामलसार' नामक पुष्पहार या बन्दनवार मन्दिरके चारों ओर बाँधे। उसके ऊपर 'वृकल' तथा उसके भी ऊपर आदि सुदर्शनचक्र बनावे। वहीं भगवान् वासुदेवकी ग्रहगुप्त मूर्ति निवेदित करे। अथवा पहले कलश और उसके ऊपर उत्तम सुदर्शनचक्रकी योजना करे। ब्रह्मन्! वेदीके चारों ओर आठ विघ्नेश्वरोंकी स्थापना करनी चाहिये। अथवा चार दिशाओंमें चार ही विघ्नेश्वर स्थापित किये जाने चाहिये। अब गरुडध्वजारोपणकी विधि बताता हूँ, जिसके होनेसे भूत आदि नष्ट हो जाते हैं॥ ११—१६॥

प्रासाद-बिम्बके द्रव्योंमें जितने परमाणु होते हैं, उतने सहस्र वर्षोंतक मन्दिर-निर्माता पुरुष विष्णुलोकमें निवास करता है। निष्पाप ब्रह्माजी! जब वायुसे ध्वज फहराता है और कलश, वेदी तथा प्रासादबिम्बके कण्ठको आवेष्टित कर लेता है, तब प्रासादकर्ताको ध्वजारोपणकी अपेक्षा भी कोटिगुना अधिक फल प्राप्त होता है, ऐसा समझना चाहिये। पताकाको प्रकृति जानो और दण्डको पुरुष। साथ ही मुझसे यह भी समझ लो कि प्रासाद (मन्दिर) भगवान् वासुदेवकी मूर्ति है। मन्दिर भगवान्‌को धारण करता है, यही उसमें धरणीतत्त्व है, ऐसा जानो। मन्दिरके भीतर जो शून्य अवकाश है, वही उसमें आकाशतत्त्व है। उसमें जो तेज या प्रकाश है, वही अग्नितत्त्व है और उसके भीतर जो हवाका स्पर्श होता है, वही उसमें वायुतत्त्व है॥ १७—२०॥

पाषाण आदिमें ही जो जल है, वह पार्थिव जल है। उसमें पृथ्वीका गुण गन्ध विद्यमान है। प्रतिध्वनिसे जो शब्द प्रकट होता है, वही वहाँका शब्द है। छूनेमें कठोरता आदिका जो अनुभव होता है, वही वहाँका स्पर्श है। शुक्ल आदि वर्ण रूप है। आह्लादका अनुभव करानेवाला रस ही वहाँ रस है। धूप आदिकी गन्ध ही वहाँकी गन्ध है। भेरी आदिमें जो नाद प्रकट होता है, वही मानो वागिन्द्रियका कार्य है। इसलिये वहीं वागिन्द्रियकी स्थिति है। शुकनासामें नासिकाकी स्थिति है। दो भद्रात्मक भुजाएँ कही गयी हैं। शिखरपर जो अण्ड-सा बना रहता है, वही मस्तक कहा गया है और कलशको केश बताया गया है। प्रासादका कण्ठभाग ही उसका कण्ठ जानना चाहिये। वेदीको कंधा कहा गया है। दो नालियाँ गुदा और उपस्थ बतायी गयी हैं। मन्दिरपर जो चूना फेरा गया है, उसीको त्वचा नाम दिया गया है। द्वार उसका मुँह है और प्रतिमाको मन्दिरका जीवात्मा कहा गया है। पिण्डिकाको जीवकी शक्ति समझो और उसकी आकृतिको प्रकृति॥ २१—२५॥

निश्चलता उसका गर्भ है और भगवान् केशव उसके अधिष्ठाता। इस प्रकार ये भगवान् विष्णु ही साक्षात् मन्दिररूपसे खड़े हैं। भगवान् शिव उसकी जंघा हैं, ब्रह्मा स्कन्धभागमें स्थित हैं और ऊर्ध्वभागमें स्वयं विष्णु विराजमान हैं। इस प्रकार स्थित हुए प्रासादकी ध्वजरूपसे जो प्रतिष्ठा की गयी है, उसको मुझसे सुनो। शस्त्रादिचिह्नित ध्वजका आरोपण करके देवताओंने दैत्योंको जीता है। अण्डके ऊपर कलश रखकर उसके ऊपर ध्वजकी स्थापना करे। ध्वजका मान बिम्बके मानका आधा भाग है। ध्वजदण्डकी लंबाईके एक तिहाई भागसे चक्रका निर्माण कराना चाहिये। वह चक्र आठ या बारह अरोंका

हो और उसके मध्यभागमें भगवान् नृसिंह अथवा गरुडकी मूर्ति हो। ध्वज-दण्ड टूटा-फूटा या छेदवाला न हो। प्रासादकी जो चौड़ाई है, उसीको दण्डकी लंबाईका मान कहा गया है। अथवा शिखरके आधे या एक तिहाई भागसे उसकी लंबाईका अनुमान करना चाहिये। अथवा द्वारकी लंबाईसे दुगुना बड़ा दण्ड बनाना चाहिये। उस ध्वज-दण्डको देवमन्दिरपर ईशान या वायव्यकोणकी ओर स्थापित करना चाहिये॥ २६—३२॥

उसकी पताका रेशमी आदि वस्त्रोंसे विचित्र शोभायुक्त बनावे। अथवा उसे एक रंगकी ही बनावे। यदि उसे घण्टा, चँवर अथवा छोटी-छोटी घंटियोंसे विभूषित करे तो वह पापोंका नाश करनेवाली होती है। दण्डके अग्रभागसे लेकर भूमितक लंबा जो एक वस्त्र है, उसे 'महाध्वज' कहा गया है। वह सम्पूर्ण मनोरथोंको देनेवाला है। जो उससे एक चौथाई छोटा हो, वह ध्वज पूजित होनेपर सर्वमनोरथोंका पूरक होता है। ध्वजके आधे मानवाले वस्त्रसे बने हुए झंडेको 'पताका' कहते हैं अथवा पताकाका कोई माप नहीं होता। ध्वजका विस्तार बीस अङ्गुलके बराबर होना चाहिये। चक्र, दण्ड और ध्वज—इन सबका अधिवासनकी विधिसे देवताकी ही भाँति सकलीकरण करके मण्डप-स्नान (मण्डपमें नहलानेकी क्रिया) आदि सब कार्य करे। 'नेत्रोन्मीलन'को छोड़कर पूर्वोक्त सब कर्मोंका अनुष्ठान करे। आचार्यको चाहिये कि वह इन सबको विधिवत् शय्यापर स्थापित करके इनका अधिवासन करे॥ ३३—३७॥

तदनन्तर विद्वान् पुरुष **'सहस्रशीर्षा०'** (यजु० अ० ३१) इत्यादि सूक्तका ध्वजाङ्कित चक्रमें न्यास करे तथा सुदर्शन-मन्त्र एवं 'मनस्तत्त्व'का न्यास करे। यह 'मन' रूपसे उस चक्रका ही 'सजीवीकरण' कहा गया है। सुरश्रेष्ठ! बारह अरोंमें क्रमशः केशव आदि मूर्तियोंका न्यास करना चाहिये। गुरु चक्रकी नाभि, कमल एवं प्रतिनेमियोंमें तत्त्वोंका न्यास करे। कमलमें नृसिंह अथवा विश्वरूपका निवेश करे। दण्डमें जीवसहित सम्पूर्ण सूत्रात्माका न्यास करे। ध्वजमें श्रीहरिका ध्यान करते हुए निष्कल परमात्माका निवेश करे। उनकी बलाबलारूपा व्यापिनी शक्तिका ध्वजके रूपमें ध्यान करे। मण्डपमें उसकी स्थापना और पूजा करके कुण्डोंमें हवन करे। कलशमें सोनेका टुकड़ा और पञ्चरत्न डालकर अस्त्र-मन्त्रसे चक्रकी स्थापना करे। तदनन्तर स्वर्णचक्रको नीचेसे पारेद्वारा सम्प्लावित करके नेत्रपटसे आच्छादित करे। तदनन्तर चक्रका निवेश करे और उसके भीतर श्रीहरिका स्मरण करे॥ ३८—४४॥

'ॐ क्ष्रौं नृसिंहाय नमः।'—इस मन्त्रसे श्रीहरिकी स्थापना और पूजा करे। तदनन्तर बन्धु-बान्धवोंसहित यजमान ध्वज लेकर दही-भातसे युक्त पात्रमें ध्वजका अग्रभाग डाले। आदिमें (ॐ) और अन्तमें 'फट्' लगाकर **'ॐ फट्'** इस मन्त्रसे ध्वजका पूजन करे। तत्पश्चात् उस पात्रको सिरपर रखकर नारायणका बारंबार स्मरण करते हुए वाद्योंकी ध्वनि और मङ्गलपाठके साथ परिक्रमा करे। तदनन्तर अष्टाक्षर-मन्त्रसे ध्वजदण्डकी स्थापना करे। विद्वान् पुरुष **'मुञ्चामि त्वा'** (ऋक्० १८। १६१। १) इस सूक्तके द्वारा ध्वजको फहरावे। द्विजको चाहिये कि वह आचार्यको पात्र, ध्वज और हाथी आदि दान करे। यह ध्वजारोपणकी साधारण विधि बतायी गयी है॥ ४५—४९॥

जिस देवताका जो चिह्न है, उससे युक्त ध्वजको उसी देवताके मन्त्रसे स्थिरतापूर्वक स्थापित करे। मनुष्य ध्वज-दानके पुण्यसे स्वर्गलोकमें जाता है तथा वह पृथ्वीपर बलवान् राजा होता है॥ ५०॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'अवभृथस्नान, द्वारप्रतिष्ठा और ध्वजारोपण आदिकी विधिका वर्णन' नामक इकसठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ६१॥

बासठवाँ अध्याय

लक्ष्मी आदि देवियोंकी प्रतिष्ठाकी सामान्य विधि

श्रीभगवान् कहते हैं— अब मैं सामूहिक रूपसे देवता आदिकी प्रतिष्ठाका तुमसे वर्णन करता हूँ। पहले लक्ष्मीकी, फिर अन्य देवियोंके समुदायकी स्थापनाका वर्णन करूँगा। पूर्ववर्ती अध्यायोंमें जैसा बताया गया है, उसके अनुसार मण्डप-अभिषेक आदि सारा कार्य करे। तत्पश्चात् भद्रपीठपर लक्ष्मीकी स्थापना करके आठ दिशाओंमें आठ कलश स्थापित करे। देवीकी प्रतिमाका घीसे अभ्यञ्जन करके मूल-मन्त्रद्वारा पञ्चगव्यसे उसको स्नान करावे। फिर '**हिरण्यवर्णां हरिणीम्०**[१]' इत्यादि मन्त्रसे लक्ष्मीजीके दोनों नेत्रोंका उन्मीलन करे। '**तां म आ वह०**[२]' इत्यादि मन्त्र पढ़कर देवीके लिये मधु, घी और चीनी अर्पित करे। तत्पश्चात् '**अश्वपूर्वाम्०**[३]' इत्यादि मन्त्रसे पूर्ववर्ती कलशके जलद्वारा श्रीदेवीका अभिषेक करे। '**कां सोऽस्मिताम्०**[४]' इस मन्त्रको पढ़कर दक्षिण कलशसे '**चन्द्रां प्रभासाम्०**[५]' इत्यादि मन्त्रका उच्चारण करके पश्चिम कलशसे तथा '**आदित्यवर्णे०**[६]' इत्यादि मन्त्र बोलकर उत्तरवर्ती कलशसे देवीका अभिषेक करे॥ १—५॥

'**उपैतु माम्०**[७]' इत्यादि मन्त्रका उच्चारण करके आग्नेय कोणके कलशसे, '**क्षुत्पिपासामलाम्—**[८]' इत्यादि मन्त्र बोलकर नैर्ऋत्यकोणके कलशसे '**गन्धद्वारां दुराधर्षाम्०**[९]' इत्यादि मन्त्रको पढ़कर वायव्यकोणके कलशसे तथा '**मनसः काममाकूतिम्—**[१०]' इत्यादि मन्त्र कहकर ईशानकोणवर्ती कलशसे लक्ष्मीदेवीका अभिषेक करे। '**कर्दमेन प्रजा भूता०**[११]' इत्यादि मन्त्रसे सुवर्णमय कलशके जलसे देवीके मस्तकका अभिषेक करे। तदनन्तर '**आपः सृजन्तु०**[१२]' इत्यादि मन्त्रसे इक्यासी कलशोंद्वारा श्रीदेवीकी प्रतिमाको स्नान करावे॥ ६-७॥

तत्पश्चात् (श्री-प्रतिमाको शुद्ध वस्त्रसे पोंछकर सिंहासनपर विराजमान करे और वस्त्र आदि समर्पित करनेके बाद) '**आर्द्रां पुष्करिणीम्०**[१३]' इस मन्त्रसे गन्ध अर्पित करे। '**आर्द्रां यः करिणीम्०**[१४]' आदिसे पुष्प और माला चढ़ाकर पूजा करे। इसके बाद '**तां म आ वह जातवेदो०**[१५]' इत्यादि मन्त्रसे और '**आनन्द०**[१६]' इत्यादि श्लोकसे अखिल उपचार अर्पित करे॥ ८॥

---

१. हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम्। चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह॥
२. तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्। यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम्॥
३. अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रबोधिनीम्। श्रियं देवीमुपह्वये श्रीर्मा देवी जुषताम्॥
४. कां सोऽस्मितां हिरण्यप्राकारामार्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम्। पद्मेस्थितां पद्मवर्णां तामिहोपह्वये श्रियम्॥
५. चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम्। तां पद्मिनीमीं शरणं प्रपद्येऽलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणे॥
६. आदित्यवर्णे तपसोऽधि जातो वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः। तस्य फलानि तपसा नुदन्तु या अन्तरा याश्च बाह्या अलक्ष्मीः॥
७. उपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च मणिना सह। प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रेस्मिन् कीर्तिमृद्धिं ददातु मे॥
८. क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम्। अभूतिमसमृद्धिं च सर्वां निर्णुद मे गृहात्।
९. गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्। ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम्॥
१०. मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि। पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः॥
११. कर्दमेन प्रजा भूता मयि सम्भव कर्दम। श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम्॥
१२. आपः सृजन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वस मे गृहे। नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले॥
१३. आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिङ्गलां पद्ममालिनीम्। चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह॥
१४. आर्द्रां यः करिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम्। सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह॥
१५. तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्। यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावो दास्योऽश्वान् विन्देयं पुरुषानहम्॥
१६. आनन्दमन्थरपुरन्दरमुक्तमाल्यं मौलौ बलेन निहितं महिषासुरस्य। पादाम्बुजं भवतु मे विजयाय मञ्जुमञ्जीरशिञ्जितमनोहरमम्बिकायाः॥

'**श्रायन्ती०**' आदि मन्त्रसे श्री-प्रतिमाको शय्यापर शयन करावे। फिर श्रीसूक्तसे संनिधीकरण करे और लक्ष्मी (श्री) बीज (श्रीं)-से चित्-शक्तिका विन्यास करके पुनः अर्चना करे। इसके बाद श्रीसूक्तसे मण्डपस्थ कुण्डोंमें कमलों अथवा करवीर-पुष्पोंका हवन करे। होमसंख्या एक हजार या एक सौ होनी चाहिये। गृहोपकरण आदि समस्त पूजन-सामग्री आदितः श्रीसूक्तके मन्त्रोंसे ही समर्पित करे। फिर पूर्ववत् पूर्णरूपसे प्रासाद-संस्कार सम्पन्न करके माता लक्ष्मीके लिये पिण्डिका-निर्माण करे। तदनन्तर उस पिण्डिकापर लक्ष्मीकी प्रतिष्ठा करके श्रीसूक्तसे संनिधीकरण करते हुए, पूर्ववत् उसकी प्रत्येक ऋचाका जप करे॥ ९—१२॥

मूल-मन्त्रसे चित्-शक्तिको जाग्रत् करके पुनः संनिधीकरण करे। तदनन्तर आचार्य और ब्रह्मा तथा अन्य ऋत्विज् ब्राह्मणोंको भूमि, सुवर्ण, वस्त्र, गौ एवं अन्नादिका दान करे। इस प्रकार सभी देवियोंकी स्थापना करके मनुष्य राज्य और स्वर्ग आदिका भागी होता है॥ १३-१४॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'लक्ष्मी आदि देवियोंकी प्रतिष्ठाके सामान्य विधानका वर्णन' नामक बासठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ६२॥

तिरसठवाँ अध्याय

विष्णु आदि देवताओंकी प्रतिष्ठाकी सामान्य विधि तथा पुस्तक-लेखन-विधि

श्रीभगवान् कहते हैं—इस प्रकार विनतानन्दन गरुड, सुदर्शनचक्र, ब्रह्मा और भगवान् नृसिंहकी प्रतिष्ठा भी उनके अपने-अपने मन्त्रसे श्रीविष्णुकी ही भाँति करनी चाहिये; इसका श्रवण करो॥ १॥

'**ॐ सुदर्शन महाचक्र शान्त दुष्टभयंकर, छिन्धिच्छिन्धि भिन्धि भिन्धि विदारय विदारय परमन्त्रान् ग्रस ग्रस भक्षय भक्षय भूतांस्त्रासय त्रासय हुं फट् सुदर्शनाय नमः।**'

इस मन्त्रसे चक्रका पूजन करके वीर पुरुष युद्धक्षेत्रमें शत्रुओंको विदीर्ण कर डालता है॥ २-३॥

'**ॐ क्ष्रौं नरसिंह उग्ररूप ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल स्वाहा।**'

यह नरसिंहभगवान्‌का मन्त्र है। अब मैं तुमको पाताल-नृसिंह-मन्त्रका उपदेश करता हूँ— ॥ ४-५॥

'**ॐ क्ष्रौं नमो भगवते नरसिंहाय प्रदीप्तसूर्य-कोटिसहस्रसमतेजसे वज्रनखदंष्ट्रायुधाय स्फुटविकट-विकीर्णकेसरसटाप्रक्षुभितमहार्णवाम्भोदुन्दुभिनिर्घोषाय सर्वमन्त्रोत्तारणाय एह्येहि भगवन्नरसिंह पुरुष परापर ब्रह्म सत्येन स्फुर स्फुर विजृम्भ विजृम्भ आक्रम आक्रम गर्ज गर्ज मुञ्च मुञ्च सिंहनादं विदारय विदारय विद्रावय विद्रावयाऽऽविशाऽऽविश सर्वमन्त्ररूपाणि मन्त्रजातींश्च हन हन च्छिन्दच्छिन्द संक्षिप संक्षिप दर दर दारय दारय स्फुट स्फुट स्फोटय स्फोटय ज्वालामालासंघातमय सर्वतोऽनन्तज्वालावज्राशनि-चक्रेण सर्वपातालानुत्सादयोत्सादय सर्वतोऽनन्तज्वालावज्रशरपञ्जरेण सर्व-पातालान्परिवारय परिवारय सर्वपातालासुरवासिनां हृदयान्याकर्षयाऽऽकर्षय शीघ्रं दह दह पच पच मथ मथ शोषय शोषय निकृन्तय निकृन्तय तावद्यावन्मे वशमागताः पातालेभ्यः (फट्सुरेभ्यः फणमन्त्ररूपेभ्यः फणमन्त्रजातिभ्यः फट् संशयान्मां भगवन्नरसिंहरूप विष्णो सर्वापद्भ्यः) सर्वमन्त्ररूपेभ्यो रक्ष रक्ष हुं फणनमो नमस्ते॥ ६॥**

यह श्रीहरिस्वरूपिणी नृसिंह-विद्या है, जो अर्थसिद्धि प्रदान करनेवाली है। त्रैलोक्यमोहन श्रीविष्णुकी त्रैलोक्यमोहन मन्त्रसमूहसे प्रतिष्ठा करे। उनके द्विभुज विग्रहके वाम हस्तमें गदा और दक्षिण हस्तमें अभयमुद्रा होनी चाहिये। यदि चतुर्भुज रूपकी प्रतिष्ठा की जाय, तो दक्षिणोर्ध्व हस्तमें चक्र और वामोर्ध्वमें पाञ्चजन्य शङ्ख होना चाहिये। उनके साथ श्री एवं पुष्टि, अथवा बलराम, सुभद्राकी भी स्थापना करनी चाहिये। श्रीविष्णु, वामन, वैकुण्ठ, हयग्रीव और अनिरुद्धकी प्रासादमें, घरमें अथवा मण्डपमें स्थापना करनी चाहिये। मत्स्यादि अवतारोंको जल-शय्यापर स्थापित करके शयन करावे। संकर्षण, विश्वरूप, रुद्रमूर्तिलिङ्ग, अर्धनारीश्वर, हरिहर, मातृकागण, भैरव, सूर्य, ग्रह, विनायक तथा इन्द्र आदिके द्वारा सेवनीया गौरी, चित्रजा एवं 'बलाबला' विद्याकी भी उसी प्रकार स्थापना करनी चाहिये॥ ७—१२॥

अब मैं ग्रन्थकी प्रतिष्ठा और उसकी लेखन-विधिका वर्णन करता हूँ। आचार्य स्वस्तिक-मण्डलमें शरयन्त्रके आसनपर स्थित लेख्य, लिखित पुस्तक, विद्या एवं श्रीहरिका यजन करे। फिर यजमान, गुरु, विद्या एवं भगवान् विष्णु और लिपिक (लेखक) पुरुषकी अर्चना करे। तदनन्तर पूर्वाभिमुख होकर पद्मिनीका ध्यान करे और चाँदीकी दावातमें रखी हुई स्याही तथा सोनेकी कलमसे देवनागरी अक्षरोंमें पाँच श्लोक लिखे। फिर ब्राह्मणोंको यथाशक्ति भोजन करावे और अपनी सामर्थ्यके अनुसार दक्षिणा दे। आचार्य, विद्या और श्रीविष्णुका पूजन करके लेखक पुराण आदिका लेखन प्रारम्भ करे। पूर्ववत् मण्डल आदिके द्वारा ईशानकोणमें भद्रपीठपर दर्पणके ऊपर पुस्तक रखकर पहलेकी ही भाँति कलशोंसे सेचन करे। फिर यजमान नेत्रोन्मीलन करके शय्यापर उस पुस्तकका स्थापन करे। तत्पश्चात् पुस्तकपर पुरुषसूक्त तथा वेद आदिका न्यास करे॥ १३—१८॥

तदनन्तर प्राण-प्रतिष्ठा, पूजन एवं चरुहोम करके, पूजनके पश्चात् दक्षिणासे आचार्य आदिका सत्कार करके ब्राह्मण-भोजन करावे। उस ग्रन्थको रथ या हाथीपर रखकर जनसमाजके साथ नगरमें घुमावे। अन्तमें गृह या देवालयमें उसे स्थापित करके उसकी पूजा करे। ग्रन्थको वस्त्रसे आवेष्टित करके पाठके आदि-अन्तमें उसका पूजन करे। पुस्तकवाचक विश्वशान्तिका संकल्प करके एक अध्यायका पाठ करे। फिर गुरु कुम्भजलसे यजमान आदिका अभिषेक करे। ब्राह्मणको पुस्तक-दान करनेसे अनन्त फलकी प्राप्ति होती है। गोदान, भूमि-दान और विद्यादान—ये तीन अतिदान कहे गये हैं। ये क्रमशः दोहन, वपन और पाठमात्र करनेपर नरकसे उद्धार कर देते हैं। मसीलिखित पत्र-संचयका दान विद्यादानका फल देता है और उन पत्रोंकी एवं अक्षरोंकी जितनी संख्या होती है, दाता पुरुष उतने ही हजार वर्षोंतक विष्णुलोकमें पूजित होता है। पञ्चरात्र, पुराण और महाभारतका दान करनेवाला मनुष्य अपनी इक्कीस पीढ़ियोंका उद्धार करके परमतत्त्वमें विलीन हो जाता है॥ १९—२६॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'विष्णु आदि देवताओंकी प्रतिष्ठाकी सामान्य विधिका वर्णन' नामक तिरसठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ६३॥

चौंसठवाँ अध्याय

कुआँ, बावड़ी और पोखरे आदिकी प्रतिष्ठाकी विधि

श्रीभगवान् कहते हैं— ब्रह्मन्! अब मैं कूप, वापी और तड़ागकी प्रतिष्ठाकी विधिका वर्णन करता हूँ, उसे सुनो। भगवान् श्रीहरि ही जलरूपसे देवश्रेष्ठ सोम और वरुण हुए हैं। सम्पूर्ण विश्व अग्नीषोममय है। जलरूप नारायण उसके कारण हैं। मनुष्य वरुणकी स्वर्ण, रौप्य या रत्नमयी प्रतिमाका निर्माण करावे। वरुणदेव द्विभुज, हंसारूढ और नदी एवं नालोंसे युक्त हैं। उनके दक्षिण-हस्तमें अभयमुद्रा और वाम-हस्तमें नागपाश सुशोभित होता है। यज्ञमण्डपके मध्यभागमें कुण्डसे सुशोभित वेदिका होनी चाहिये तथा उसके तोरण (पूर्व-द्वार)-पर कमण्डलुसहित वरुण-कलशकी स्थापना करनी चाहिये। इसी तरह भद्रक (दक्षिण-द्वार), अर्द्धचन्द्र (पश्चिम-द्वार) तथा स्वस्तिक (उत्तर-द्वार)-पर भी वरुणकलशोंकी स्थापना आवश्यक है। कुण्डमें अग्निका आधान करके पूर्णाहुति प्रदान करे॥ १—५॥

'ये ते शतं वरुण०' आदि मन्त्रसे स्नानपीठपर वरुणकी स्थापना करे। तत्पश्चात् आचार्य मूल-मन्त्रका उच्चारण करके, वरुण देवताकी प्रतिमाको वहीं पधराकर, उसमें घृतका अभ्यङ्ग करे। फिर **'शं नो देवी०'** (अथर्व० १।६।१; शु० यजु० ३६।१२) इत्यादि मन्त्रसे उसका प्रक्षालन करके **'शुद्धबालः सर्वशुद्धवालो०'** (शु० यजु० २४।३) आदिसे पवित्र जलद्वारा उसे स्नान करावे। तदनन्तर स्नानपीठकी पूर्वादि दिशाओंमें आठ कलशोंका अधिवासन (स्थापन) करे। इनमेंसे पूर्ववर्ती कलशमें समुद्रके जल, आग्नेयकोणवर्ती कुम्भमें गङ्गाजल, दक्षिणके कलशमें वर्षाके जल, नैर्ऋत्यकोणवाले कुम्भमें झरनेके जल, पश्चिमवाले कलशमें नदीके जल, वायव्यकोणमें नदके जल, उत्तर-कुम्भमें औद्भिज्ज (सोते)-के जल एवं ईशानवर्ती कलशमें तीर्थके जलको भरे। उपर्युक्त विविध जल न मिलनेपर सब कलशोंमें नदीके ही जलको डाले। उक्त सभी कलशोंको **'यासां राजा०'** (अथर्व० १।३३।२) आदि मन्त्रसे अभिमन्त्रित करे। विद्वान् पुरोहित वरुणदेवका **'सुमित्रिया०'** (शु० यजु० ३५।१२) आदि मन्त्रसे मार्जन और निर्मञ्छन करके, **'चित्रं देवानां०'** (शु० यजु० १३।४६) तथा **'तच्चक्षुर्देवहितं०'** (शु० यजु० ३६।२४)—इन मन्त्रोंसे मधुरत्रय (शहद, घी और चीनी) द्वारा वरुणदेवके नेत्रोंका उन्मीलन करे। फिर वरुणकी उस सुवर्णमयी प्रतिमामें ज्योतिका पूजन करे एवं आचार्यको गोदान दे॥ ६—१० $\frac{1}{2}$॥

तदनन्तर **'समुद्रज्येष्ठाः०'** (ऋक्० ७।४९।१) आदि मन्त्रके द्वारा वरुणदेवताका पूर्व-कलशके जलसे अभिषेक करे। **'समुद्रं गच्छ०'** (यजु० ६।२१) इत्यादि मन्त्रके द्वारा अग्निकोणवर्ती कलशके गङ्गाजलसे, **'सोमो धेनुं०'** (शु० यजु० ३४।२१) इत्यादि मन्त्रके द्वारा दक्षिण-कलशके वर्षाजलसे, **'देवीरापो०'** (शु० यजु० ६।२७) इत्यादि मन्त्रके द्वारा नैर्ऋत्यकोणवर्ती कलशके निर्झर-जलसे, **'पञ्च नद्यः०'** (शु० यजु० ३४।११) आदि मन्त्रके द्वारा पश्चिम-कलशके नदी-जलसे, **'उद्भिद्भ्यः०'** इत्यादि मन्त्रके द्वारा उत्तरवर्ती कलशके उद्भिज्ज-जलसे और पावमानी ऋचाके द्वारा ईशानकोणवाले कलशके तीर्थ-जलसे वरुणका अभिषेक करे। फिर यजमान मौन रहकर **'आपो हि ष्ठा०'** (शु० यजु० ११।५०) मन्त्रके द्वारा पञ्चगव्यसे, **'हिरण्यवर्णां०'** (श्रीसूक्त)-के द्वारा स्वर्ण-जलसे, **'आपो अस्मान्०'** (शु० यजु० ४।२)

मन्त्रके द्वारा वर्षाजलसे, व्याहृतियोंका उच्चारण करके कूप-जलसे तथा **'आपो देवी:०'** (शु० यजु० १२। ३५) मन्त्रके द्वारा तड़ाग-जल एवं तोरणवर्ती वरुण-कलशके जलसे वरुणदेवको स्नान करावे। **'वरुणस्योत्तम्भनमसि०'** (शु० यजु० ४। ३६) मन्त्रके द्वारा पर्वतीय जल (अर्थात् झरनेके पानी)-से भरे हुए इक्यासी कलशोंद्वारा उसको स्नान करावे। फिर **'त्वं नो अग्ने वरुणस्य०'** (शु० यजु० २१। ३) इत्यादि मन्त्रसे अर्घ्य प्रदान करे। व्याहृतियोंका उच्चारण करके मधुपर्क, **'बृहस्पते अति यदर्यो०'** (शु० यजु० २६। ३) मन्त्रसे वस्त्र, **'इमं मे वरुण:०'** (शु० यजु० २१। १) इस मन्त्रसे पवित्रक और प्रणवसे उत्तरीय समर्पित करे॥ ११—१६॥

वारुणसूक्तसे वरुणदेवताको पुष्प, चँवर, दर्पण, छत्र और पताका निवेदन करे। मूल-मन्त्रसे 'उत्तिष्ठ' ऐसा कहकर उत्थापन करे। उस रात्रिको अधिवासन करे। **'वरुणं वा०'** इस मन्त्रसे संनिधीकरण करके वरुणसूक्तसे उनका पूजन करे। फिर मूल-मन्त्रसे सजीवीकरण करके चन्दन आदिद्वारा पूजन करे। मण्डलमें पूर्ववत् अर्चना कर ले। अग्निकुण्डमें समिधाओंका हवन करे। वैदिक मन्त्रोंसे गङ्गा आदि चारों गौओंका दोहन करे। तदनन्तर सम्पूर्ण दिशाओंमें यवनिर्मित चरुकी स्थापना करके होम करे। चरुको व्याहृति, गायत्री या मूल-मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके, सूर्य, प्रजापति, दिव्, अन्तक-निग्रह, पृथ्वी, देहधृति, स्वधृति, रति, रमती, उग्र, भीम, रौद्र, विष्णु, वरुण, धाता, रायस्पोष, महेन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईश, अनन्त, ब्रह्मा, राजा जलेश्वर (वरुण)—इन नामोंका चतुर्थ्यन्तरूप बोलकर, अन्तमें स्वाहा लगाकर बलि समर्पित करे। **'इदं विष्णु:०'** (शु० यजु०५। १५)और **'तद् विप्रासो०'** (शु० यजु० ३४। ४४)—इन मन्त्रोंसे आहुति दे। **'सोमो धेनुम्०'** (शु० यजु० ३४। २१) मन्त्रसे छः आहुतियाँ देकर **'इमं मे वरुण:०'** (शु० यजु० २१। १) मन्त्रसे एक आहुति दे। **'आपो हि ष्ठा०'** (शुक्ल यजु० ११। ५०—५२) आदि तीन ऋचाओंसे तथा **'इमा रुद्र०'** इत्यादि मन्त्रसे भी आहुतियाँ दे॥ १७—२५॥

फिर दसों दिशाओंमें बलि समर्पित करे और गन्ध-पुष्प आदिसे पूजन करे। तत्पश्चात् विद्वान् पुरुष प्रतिमाको उठाकर मण्डलमें स्थापित करे तथा गन्ध-पुष्प आदि एवं स्वर्ण-पुष्प आदिके द्वारा क्रमशः उसका पूजन करे। तदनन्तर श्रेष्ठ आचार्य आठों दिशाओंमें दो बित्ते प्रमाणके जलाशय और आठ बालुकामयी सुरम्य वेदियोंका निर्माण करे। **'वरुणस्य०'** (यजु० ४। ३६) इस मन्त्रसे घृत एवं यवनिर्मित चरुकी पृथक्-पृथक् एक सौ आठ आहुतियाँ देकर शान्ति-जल ले आवे और उस जलसे वरुणदेवके सिरपर अभिषेक करके सजीवीकरण करे। वरुणदेव अपनी धर्मपत्नी गौरीदेवीके साथ विराजमान नदी-नदोंसे घिरे हुए हैं—इस प्रकार उनका ध्यान करे। **'ॐ वरुणाय नमः।'** मन्त्रसे पूजन करके सांनिध्यकरण करे। तत्पश्चात् वरुणदेवको उठाकर गजराजके पृष्ठदेश आदि सवारियोंपर मङ्गल-द्रव्योंसहित स्थापित करके नगरमें भ्रमण करावे। इसके बाद उस वरुणमूर्तिको **'आपो हि ष्ठा०'** आदि मन्त्रका उच्चारण करके त्रिमधुयुक्त कलश-जलमें रखे और कलशसहित वरुणको जलाशयके मध्यभागमें सुरक्षितरूपसे स्थापित कर दे॥ २६—३१॥

इसके बाद यजमान स्नान करके वरुणका ध्यान करे। फिर ब्रह्माण्ड-संज्ञिका सृष्टिको अग्निबीज (रं)-से दग्ध करके उसकी भस्मराशिको जलसे प्लावित करनेकी भावना करे। 'समस्त लोक जलमय हो गया है'—ऐसी भावना करके

उस जलमें जलेश्वर वरुणका ध्यान करे। इस प्रकार जलके मध्यभागमें वरुणदेवताका चिन्तन करके वहाँ यूपकी स्थापना करे। यूप चतुष्कोण, अष्टकोण या गोलाकार हो तो उत्तम माना गया है। उसकी लंबाई दस हाथकी होनी चाहिये। उसमें उपास्यदेवताका परिचायक चिह्न हो। उसका निर्माण किसी यज्ञ-सम्बन्धी वृक्षके काष्ठसे हुआ हो। ऐसा ही यूप कूपके लिये उपयोगी होता है। उसके मूलभागमें हेममय फलका न्यास करे। वापीमें पंद्रह हाथका, पुष्करिणीमें बीस हाथका और पोखरेमें पचीस हाथका यूपकाष्ठ जलके भीतर निवेशित करे। यज्ञमण्डपके प्राङ्गणमें **'यूप ब्रह्म०'** आदि मन्त्रसे यूपकी स्थापना करके उसको वस्त्रोंसे आवेष्टित करे तथा यूपके ऊपर पताका लगावे। उसका गन्ध आदिसे पूजन करके जगत्के लिये शान्तिकर्म करे। आचार्यको भूमि, गौ, सुवर्ण तथा जलपात्र आदि दक्षिणामें दे। अन्य ब्राह्मणोंको भी दक्षिणा दे और समागत जनोंको भोजन कराये।

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं ये केचित्सलिलार्थिनः।
ते तृप्तिमुपगच्छन्तु तडागस्थेन वारिणा॥

'ब्रह्मासे लेकर तृण-पर्यन्त जो भी जलपिपासु हैं, वे इस तडागमें स्थित जलके द्वारा तृप्तिको प्राप्त हों।'—ऐसा कहकर जलका उत्सर्ग करे और जलाशयमें पञ्चगव्य डाले॥ ३२—४०॥

तदनन्तर **'आपो हि ष्ठा०'** इत्यादि तीन ऋचाओंसे ब्राह्मणोंद्वारा सम्पादित शान्ति-जल तथा पवित्र तीर्थ-जलका निक्षेप करे एवं ब्राह्मणोंको गोवंशका दान करे। सर्वसाधारणके लिये बेरोक-टोक अन्न-वितरणका प्रबन्ध करावे। जो मनुष्य एक लाख अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान करता है तथा जो एक बार भी जलाशयकी प्रतिष्ठा करता है, उसका पुण्य उन यज्ञोंकी अपेक्षा हजारों गुना अधिक है। वह स्वर्गलोकको प्राप्त होकर विमानमें प्रमुदित होता है और नरकको कभी नहीं प्राप्त होता है॥ ४१—४३॥

जलाशयसे गौ आदि पशु जल पीते हैं, इससे कर्ता पापमुक्त हो जाता है, मनुष्य जलदानसे सम्पूर्ण दानोंका फल प्राप्त करके स्वर्गलोकको जाता है॥ ४४॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'कुआँ, बावड़ी तथा पोखरे आदिकी प्रतिष्ठाका वर्णन' नामक चौंसठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ६४॥

पैंसठवाँ अध्याय

सभा-स्थापन और एकशालादि भवनके निर्माण आदिकी विधि, गृहप्रवेशका क्रम तथा गोमातासे अभ्युदयके लिये प्रार्थना

श्रीभगवान् बोले— अब मैं सभा (देवमन्दिर) आदिकी स्थापनाका विषय बताऊँगा तथा इन सबकी प्रवृत्तिके विषयमें भी कुछ कहूँगा। भूमिकी परीक्षा करके वहाँ वास्तुदेवताका पूजन करे। अपनी इच्छाके अनुसार देव-सभा (मन्दिर)-का निर्माण करके अपनी ही रुचिके अनुकूल देवताओंकी स्थापना करे। नगरके चौराहेपर अथवा ग्राम आदिमें सभाका निर्माण करावे; सूने स्थानमें नहीं। देव-सभाका निर्माण एवं स्थापना करनेवाला पुरुष निर्मल (पापरहित) होकर, अपने समस्त कुलका उद्धार करके स्वर्गलोकमें आनन्दका अनुभव करता है। इस विधिसे भगवान् श्रीहरिके सतमहले मन्दिरका निर्माण करना चाहिये। ठीक उसी तरह, जैसे राजाओंके प्रासाद बनाये जाते हैं। अन्य देवताओंके लिये भी यही बात है। पूर्वादि दिशाओंके क्रमसे जो ध्वज आदि आय

होते हैं, उनमेंसे कोण-दिशाओंमें स्थित आयोंको त्याग देना चाहिये। चार, तीन, दो अथवा एकशालाका गृह बनावे। जहाँ व्यय (ऋण) अधिक हो, ऐसे 'पद[१]' पर घर न बनावे; क्योंकि वह व्ययरूपी दोषको उत्पन्न करनेवाला होता है। अधिक 'आय' होनेपर भी पीड़ाकी सम्भावना रहती है; अत: आय-व्ययको समभावसे संतुलित करके रखे॥ १—५ $\frac{१}{२}$ ॥

घरकी लंबाई और चौड़ाई जितने हाथकी हों, उन्हें परस्पर गुणित करनेसे जो संख्या होती है, उसे 'करराशि' कहा गया है; उसे गर्गाचार्यकी बतायी हुई ज्योतिष-विद्यामें प्रवीण गुरु (पुरोहित) आठगुना करे। फिर सातसे भाग देनेपर शेषके अनुसार 'वार'का निश्चय होता है और आठसे भाग देनेपर जो शेष होता है, वह 'व्यय' माना गया है। अथवा विद्वान् पुरुष करराशिमें सातसे गुणा करे। फिर उस गुणनफलमें आठसे भाग देकर शेषके अनुसार ध्वजादि आयोंकी कल्पना करे।

१. ध्वज, २. धूम्र, ३. सिंह, ४. श्वान, ५. वृषभ, ६. खर (गधा), ७. गज (हाथी) और ८. ध्वाङ्क्ष (काक)—ये क्रमश: आठ आय कहे गये हैं, जो पूर्वादि दिशाओंमें प्रकट होते हैं—इस प्रकार इनकी कल्पना करनी चाहिये॥ ६—९ ॥

तीन शालाओंसे युक्त गृहके अनेक भेदोंमेंसे तीन प्रारम्भिक भेद उत्तम माने गये हैं।[२] उत्तर-पूर्व दिशामें इसका निर्माण वर्जित है। दक्षिण दिशामें अन्यगृहसे युक्त दो शालाओंवाला भवन सदा श्रेष्ठ माना जाता है। दक्षिण दिशामें अनेक या एक शालावाला गृह भी उत्तम है। दक्षिण-पश्चिममें भी एक शालावाला गृह श्रेष्ठ होता है। एक शालावाले गृहके जो प्रथम (ध्रुव और धान्य नामक) दो भेद हैं, वे उत्तम हैं। इस प्रकार गृहके सोलह[३] भेदोंमेंसे अधिकांश (अर्थात् १०) उत्तम हैं और शेष (छ:, अर्थात् पाँचवाँ, नवाँ, दसवाँ, ग्यारहवाँ, तेरहवाँ और चौदहवाँ भेद) भयावह हैं। चार शाला (या द्वार)-वाला गृह सदा उत्तम है; वह सभी दोषोंसे रहित है। देवताके लिये एक मंजिलसे लेकर सात मंजिलतकका मन्दिर बनावे, जो द्वार-वेधादि दोष तथा पुराने सामानसे रहित हो। उसे सदा मानव-समुदायके लिये कथित कर्म एवं प्रतिष्ठा-विधिके अनुसार स्थापित करे॥ १०—१३ $\frac{१}{२}$ ॥

गृहप्रवेश करनेवाले गृहस्थ पुरुषको चाहिये कि वह आलस्य छोड़कर प्रात:काल सर्वौषधि-मिश्रित जलसे स्नान करके, पवित्र हो, दैवज्ञ ब्राह्मणोंकी पूजा करके उन्हें मधुर अन्न (मीठे पकवान) भोजन करावे। फिर उन ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर गायके पीठपर हाथ रखे हुए, पूर्ण कलश आदिसे सुशोभित तोरणयुक्त गृहमें प्रवेश करे। घरमें जाकर एकाग्रचित्त हो, गौके सम्मुख हाथ जोड़ यह पुष्टिकारक मन्त्र पढ़े—'ॐ श्रीवसिष्ठजीके द्वारा लालित-पालित नन्दे! धन और संतान देकर मेरा आनन्द बढ़ाओ। प्रजाको विजय दिलानेवाली भार्गवनन्दिनि जये! तुम मुझे धन और सम्पत्तिसे आनन्दित करो।

---

१. भूमिकी लंबाई-चौड़ाईको परस्पर गुणित करनेसे जो संख्या आती है, उसे 'पद' कहते हैं।

२-३. नारदपुराण, पूर्वभाग, द्वितीयपाद, अध्याय ५६के श्लोक ५८० से ५८२ में कहा गया है कि 'घरके छ: भेद हैं—एकशाला, द्विशाला, त्रिशाला, चतु:शाला, सप्तशाला और दशशाला'। इनमेंसे प्रत्येकके सोलह-सोलह भेद होते हैं। उन सबके नाम क्रमश: इस प्रकार हैं—१. ध्रुव, २. धान्य, ३. जय, ४. नन्द, ५. खर, ६. कान्त, ७. मनोरम, ८. सुमुख, ९. दुर्मुख, १०. क्रूर, ११. शत्रुद, १२. स्वर्णद, १३. क्षय, १४. आक्रन्द, १५. विपुल, १६. विजय। पूर्वादि दिशाओंमें इनका निर्माण होता है। इनका जैसा नाम, वैसा ही गुण है।

अङ्गिराकी पुत्री पूर्णे! तुम मेरे मनोरथको पूर्ण करो—मुझे पूर्णकाम बना दो। काश्यपकुमारी भद्रे! तुम मेरी बुद्धिको कल्याणमयी बना दो। सबको आनन्द प्रदान करनेवाली वसिष्ठनन्दिनी नन्दे! तुम समस्त बीजों और ओषधियोंसे युक्त तथा सम्पूर्ण रत्नौषधियोंसे सम्पन्न होकर इस सुन्दर घरमें सदा आनन्दपूर्वक रहो'॥ १४—१९॥

'कश्यप प्रजापतिकी पुत्री देवि भद्रे! तुम सर्वथा सुन्दर हो, महती महत्तासे युक्त हो, सौभाग्यशालिनी एवं उत्तम व्रतका पालन करनेवाली हो; मेरे घरमें आनन्दपूर्वक निवास करो। देवि भार्गवि जये! सर्वश्रेष्ठ आचार्य-चरणोंने तुम्हारा पूजन किया है, तुम चन्दन और पुष्पमालासे अलंकृत हो तथा संसारके समस्त ऐश्वर्योंको देनेवाली हो। तुम मेरे घरमें आनन्दपूर्वक विहरो। अङ्गिरामुनिकी पुत्री पूर्णे! तुम अव्यक्त एवं अव्याकृत हो; इष्टके देवि! तुम मुझे अभीष्ट वस्तु प्रदान करो। मैं तुम्हारी इस घरमें प्रतिष्ठा चाहता हूँ। देवि! तुम देशके स्वामी (राजा), ग्राम या नगरके स्वामी तथा गृहस्वामीपर भी अनुग्रह करनेवाली हो। मेरे घरमें जन, धन, हाथी, घोड़े तथा गाय-भैंस आदि पशुओंकी वृद्धि करनेवाली बनो'॥ २०—२३॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'सभा आदिकी स्थापनाके विधानका वर्णन' नामक पैंसठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ६५॥

छाछठवाँ अध्याय

देवता-सामान्य-प्रतिष्ठा

श्रीभगवान् कहते हैं— अब मैं देव-समुदायकी प्रतिष्ठाका वर्णन करूँगा। यह भगवान् वासुदेवकी प्रतिष्ठाकी भाँति ही होती है। आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, विश्वेदेव, अश्विनीकुमार, ऋषि तथा अन्य देवगण—ये देवसमुदाय हैं। इनकी स्थापनाके विषयमें जो विशेषता है, वह बतलाता हूँ। जिस देवताका जो नाम है, उसका आदि अक्षर ग्रहण करके उसे मात्राओंद्वारा भेदन करे, अर्थात् उसमें स्वरमात्रा लगावे। फिर दीर्घ स्वरोंसे युक्त उन बीजोंद्वारा अङ्गन्यास करे। उस प्रथम अक्षरको बिन्दु और प्रणवसे संयुक्त करके 'बीज' माने। समस्त देवताओंका मूल-मन्त्रके द्वारा ही पूजन एवं स्थापन करे। इसके सिवा मैं नियम, व्रत, कृच्छ्र, मठ, सेतु, गृह, मासोपवास और द्वादशीव्रत आदिकी स्थापनाके विषयमें भी कहूँगा॥ १—४½॥

पहले शिला, पूर्णकुम्भ और कांस्यपात्र लाकर रखे। साधक ब्रह्मकूर्चको लाकर '**तद् विष्णोः परमम्०**' (शु० यजु० ६।५) मन्त्रके द्वारा कपिला गौके दुग्धसे यवमय चरु श्रपित करे। प्रणवके द्वारा उसमें घृत डालकर दर्वी (कलछी)-से संघटित करे। इस प्रकार चरुको सिद्ध करके उतार ले। फिर श्रीविष्णुका पूजन करके हवन करे। व्याहृति और गायत्रीसे युक्त '**तद्विप्रासो०**' (शु० यजु० ३४।४४) आदि मन्त्रसे चरु-होम करे। '**विश्वतश्चक्षुः०**' (शु० यजु० १७।१९) आदि वैदिक मन्त्रोंसे भूमि, अग्नि, सूर्य, प्रजापति, अन्तरिक्ष, द्यौ, ब्रह्मा, पृथ्वी, कुबेर तथा राजा सोमको चतुर्थ्यन्त एवं 'स्वाहा' संयुक्त करके इनके उद्देश्यसे आहुतियाँ प्रदान करे। इन्द्र आदि देवताओंको इन्द्र आदिसे सम्बन्धित मन्त्रोंद्वारा आहुति दे। इस प्रकार चरुभागोंका हवन करके आदरपूर्वक दिग्बलि समर्पित करे॥ ५—१०॥

फिर एक सौ आठ पलाश-समिधाओंका हवन करके पुरुषसूक्तसे घृत-होम करे। '**इरावती**

धेनुमती०' (शु० यजु० ५।१६) मन्त्रसे तिलाष्टकका होम करके ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव—इन देवताओंके पार्षदों, ग्रहों तथा लोकपालोंके लिये पुनः आहुति दे। पर्वत, नदी, समुद्र—इन सबके उद्देश्यसे आहुतियोंका हवन करके, तीन महाव्याहृतियोंका उच्चारण करके, स्रुवाके द्वारा तीन पूर्णाहुति दे। पितामह! 'वौषट्' संयुक्त वैष्णव मन्त्रसे पञ्चगव्य तथा चरुका प्राशन करके आचार्यको सुवर्णयुक्त तिलपात्र, वस्त्र एवं अलंकृत गौ दक्षिणामें दे। विद्वान् पुरुष '**भगवान् विष्णुः प्रीयताम्**'—ऐसा कहकर व्रतका विसर्जन करे॥ ११—१५॥

मैं मासोपवास आदि व्रतोंकी दूसरी विधि भी कहता हूँ। पहले देवाधिदेव श्रीहरिको यज्ञसे सन्तुष्ट करे। तिल, तण्डुल, नीवार, श्यामाक अथवा यवके द्वारा वैष्णव चरु श्रपित करे। उसको घृतसे संयुक्त करके उतारकर मूर्ति-मन्त्रोंसे हवन करे। तदनन्तर मासाधिपति विष्णु आदि देवताओंके उद्देश्यसे पुनः होम करे॥ १६—१८॥

ॐ श्रीविष्णवे स्वाहा। ॐ विष्णवे विभूषणाय स्वाहा। ॐ विष्णवे शिपिविष्टाय स्वाहा। ॐ नरसिंहाय स्वाहा। ॐ पुरुषोत्तमाय स्वाहा।

—आदि मन्त्रोंसे घृतप्लुत अश्वत्थवृक्षकी बारह समिधाओंका हवन करे। '**विष्णो रराटमसि०**' (शु० यजु० ५।२१) मन्त्रके द्वारा भी बारह आहुतियाँ दे। फिर '**इदं विष्णु०**' (शु० यजु० ५।१५) '**इरावती०**' (शु० यजु० ५।१६) मन्त्रसे चरुकी बारह आहुतियाँ प्रदान करे। '**तद्विप्रासो०**' (शु० यजु० ३४।४४) आदि मन्त्रसे घृताहुति समर्पित करे। फिर शेष होम करके तीन पूर्णाहुति दे। '**युञ्जते०**' (शु० यजु० ५।१४) आदि अनुवाकका जप करके मन्त्रके आदिमें स्वकर्तृक मन्त्रोच्चारणके पश्चात् पीपलके पत्ते आदिके पात्रमें रखकर चरुका प्राशन करे॥ १९—२२ $\frac{1}{2}$॥

तदनन्तर मासाधिपतियोंके उद्देश्यसे बारह ब्राह्मणोंको भोजन करावे। आचार्य उनमें तेरहवाँ होना चाहिये। उनको मधुर जलसे पूर्ण तेरह कलश, उत्तम छत्र, पादुका, श्रेष्ठ वस्त्र, सुवर्ण तथा माला प्रदान करे। व्रतपूर्तिके लिये सभी वस्तुएँ तेरह-तेरह होनी चाहिये। 'गौएँ प्रसन्न हों। वे हर्षित होकर चरें।'—ऐसा कहकर पौंसला, उद्यान, मठ तथा सेतु आदिके समीप गोपथ (गोचरभूमि) छोड़कर दस हाथ ऊँचा यूप निवेशित करे। गृहस्थ घरमें होम तथा अन्य कार्य विधिवत् करके, पूर्वोक्त विधिके अनुसार गृहमें प्रवेश करे। इन सभी कार्योंमें जनसाधारणके लिये अनिवारित अन्न-सत्र खुलवा दे। विद्वान् पुरुष ब्राह्मणोंको यथाशक्ति दक्षिणा दे॥ २३—२८॥

जो मनुष्य उद्यानका निर्माण कराता है, वह चिरकालतक नन्दनकाननमें निवास करता है। मठ-प्रदानसे स्वर्गलोक एवं इन्द्रलोककी प्राप्ति होती है। प्रपादान करनेवाला वरुणलोकमें तथा पुलका निर्माण करनेवाला देवलोकमें निवास करता है। ईंटका सेतु बनवानेवाला भी स्वर्गको प्राप्त होता है। गोपथ-निर्माणसे गोलोककी प्राप्ति होती है। नियमों और व्रतोंका पालन करनेवाला विष्णुके सारूप्यको अधिगत करता है। कृच्छ्रव्रत करनेवाला सम्पूर्ण पापोंका नाश कर देता है। गृहदान करके दाता प्रलयकालपर्यन्त स्वर्गमें निवास करता है। गृहस्थ-मनुष्योंको शिव आदि देवताओंकी समुदाय-प्रतिष्ठा करनी चाहिये॥ २९—३२॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'देवता-सामान्य-प्रतिष्ठा-कथन' नामक छाछठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ६६॥

सड़सठवाँ अध्याय

जीर्णोद्धार-विधि

श्रीभगवान् कहते हैं—ब्रह्मन्! अब मैं जीर्णोद्धारकी विधि बतलाता हूँ। आचार्य मूर्तिको विभूषित करके स्नान करावे। अत्यन्त जीर्ण, अङ्गहीन, भग्न तथा शिलामात्रावशिष्ट (विशेष चिह्नसे रहित) प्रतिमाका परित्याग करे। उसके स्थानपर पूर्ववत् देवगृहमें नवीन स्थिर-मूर्तिका न्यास करे। आचार्य वहाँपर (भूतशुद्धि-प्रकरणमें उक्त) संहारविधिसे सम्पूर्ण तत्त्वोंका संहार करे। गुरु नृसिंह-मन्त्रकी सहस्र आहुतियाँ देकर मूर्तिको उखाड़ दे। फिर दारुमयी मूर्तिको अग्निमें जला दे, प्रस्तरनिर्मित विसर्जित प्रतिमाको जलमें फेंक दे, धातुमयी या रत्नमयी मूर्ति हो तो उसे समुद्रकी अगाध जलराशिमें विसर्जित कर दे। जीर्णाङ्ग प्रतिमाको यानपर आरूढ़ कर, वस्त्र आदिसे आच्छादित करके, गाजे-बाजेके साथ ले जाय और जलमें छोड़ दे। फिर आचार्यको दक्षिणा दे। उसी दिन पूर्व प्रतिमाके प्रमाण तथा द्रव्यके अनुसार उसी प्रमाणकी मूर्ति स्थापित करे। इसी प्रकार कूप, वापी और तड़ाग आदिका जीर्णोद्धार करनेसे भी महान् फलकी प्राप्ति होती है॥ १—६॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'जीर्णोद्धारविधि-कथन' नामक सड़सठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ६७॥

अड़सठवाँ अध्याय

उत्सव-विधिका कथन

श्रीभगवान् कहते हैं—अब मैं उत्सवकी विधिका वर्णन करता हूँ। देवस्थापन होनेके पश्चात् उसी वर्षमें एकरात्र, त्रिरात्र या अष्टरात्र उत्सव मनावे; क्योंकि उत्सवके बिना देवप्रतिष्ठा निष्फल होती है। अयन या विषुव-संक्रान्तिके समय शयनोपवन या देवगृहमें अथवा कर्ताके जिस प्रकार अनुकूल हो, भगवान्‌की नगरयात्रा करावे। उस समय मङ्गलाङ्कुरोंका रोपण, नृत्य-गीत तथा गाजे-बाजेका प्रबन्ध करे। अङ्कुरोंके रोपणके लिये शराव (परई) या हँडिया श्रेष्ठ मानी गयी हैं। यव, शालि, तिल, मुद्ग, गोधूम, श्वेत सर्षप, कुलत्थ, माष और निष्पावको प्रक्षालित करके वपन करे। प्रदीपोंके साथ रात्रिमें नगरभ्रमण करते हुए इन्द्रादि दिक्पालों, कुमुद आदि दिग्गजों तथा सम्पूर्ण भूत-प्राणियोंके उद्देश्यसे पूर्वादि दिशाओंमें बलि-प्रदान करे। जो मनुष्य देवबिम्बका वहन करते हुए देवयात्राका अनुगमन करते हैं, उनको पद-पदपर अश्वमेध यज्ञके फलकी प्राप्ति होती है, इसमें तनिक भी संशय नहीं है॥ १—६ $\frac{1}{2}$ ॥

आचार्य पहले दिन देवमन्दिरमें आकर देवताको सूचित करे—'भगवन्! देवश्रेष्ठ! आपको कल तीर्थयात्रा करनी है। सर्वज्ञ! आप उसका आरम्भ करनेकी आज्ञा देनेमें सदा समर्थ हैं।' देवताके सम्मुख इस प्रकार निवेदन करके उत्सव-कार्यका आरम्भ करे। चार स्तम्भोंसे युक्त मङ्गलाङ्कुरोंकी घटिकासे समन्वित तथा विभूषित वेदिकाके समीप जाय। उसके मध्यभागमें स्वस्तिकपर प्रतिमाका न्यास करे। काम्य अर्थको लिखकर चित्रोंमें स्थापित करके अधिवासन करे॥ ७—१०॥

फिर विद्वान् पुरुष वैष्णवोंके साथ मूल-मन्त्रसे देवमूर्तिके अङ्गोंमें घृतका लेपन करे तथा सारी रात घृतधारासे अभिषेक करे। देवताको दर्पण दिखलाकर, आरती, गीत, वाद्य आदिके

साथ मङ्गल कृत्य करे, व्यजन डुलावे एवं पूजन करे। फिर दीप, गन्ध तथा पुष्पादिसे यजन करे। हरिद्रा, कपूर, केसर और श्वेत चन्दन-चूर्णको देवमूर्ति तथा भक्तोंके सिरपर छोड़नेसे समस्त तीर्थोंके फलकी प्राप्ति होती है। आचार्य यात्राके लिये नियत देवमूर्तिकी रथपर स्थापना और अर्चना करके छत्र-चँवर तथा शङ्खनाद आदिके साथ राष्ट्रका पालन करनेवाली नदीके तटपर ले जाय॥ ११—१४॥

नदीमें नहलानेसे पूर्व वहाँ तटपर वेदीका निर्माण करे। फिर मूर्तिको यानसे उतारकर उसे वेदिकापर विन्यस्त करे। वहाँ चरु निर्मित करके उसकी आहुति देनेके पश्चात् पायसका होम करे। फिर वरुणदेवतासम्बन्धी मन्त्रोंसे तीर्थोंका आवाहन करे। **'आपो हि ष्ठा०'** आदि मन्त्रोंसे उनको अर्घ्य प्रदान करके पूजन करे। देवमूर्तिको लेकर जलमें अघमर्षण करके ब्राह्मणों और महाजनोंके साथ स्नान करे। स्नानके पश्चात् मूर्तिको ले आकर वेदिकापर रखे। उस दिन देवताका वहाँ पूजन करके देवप्रासादमें ले जाय। आचार्य अग्निमें स्थित देवका पूजन करे। यह उत्सव भोग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाला है॥ १५—१९॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'उत्सव-विधि-कथन' नामक अड़सठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ६८॥

उनहत्तरवाँ अध्याय

स्नपनोत्सवके विस्तारका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं— ब्रह्मन्! अब मैं स्नपनोत्सवका विस्तारपूर्वक वर्णन करता हूँ। प्रासादके सम्मुख मण्डपके नीचे मण्डलमें कलशोंका न्यास करे। प्रारम्भकालमें तथा सम्पूर्ण कर्मोंको करते समय भगवान् श्रीहरिका ध्यान, पूजन और हवन करे। पूर्णाहुतिके साथ हजार या सौ आहुतियाँ दे। फिर स्नान-द्रव्योंको लाकर कलशोंका विन्यास करे। कण्ठसूत्रयुक्त कुम्भोंका अधिवासन करके मण्डलमें रखे॥ १—३॥

चौकोर मण्डलका निर्माण करके उसे ग्यारह रेखाओंद्वारा विभाजित कर दे। फिर पार्श्वभागकी एक रेखा मिटा दे। इस तरह उस मण्डलमें चारों दिशाओंमें नौ-नौ कोष्ठकोंकी स्थापना करके उनको पूर्व आदिके क्रमसे शालिचूर्ण आदिसे पूरित करे। फिर विद्वान् मनुष्य कुम्भमुद्राकी रचना करके पूर्वादि दिशाओंमें स्थित नवकमें कलश लाकर रखे। पुण्डरीकाक्ष-मन्त्रसे उनमें दर्भ डाले। सर्वरत्नसमन्वित जलपूर्ण कुम्भको मध्यमें विन्यस्त करे। शेष आठ कुम्भोंमें क्रमशः यव, व्रीहि, तिल, नीवार, श्यामाक, कुलत्थ, मुद्ग और श्वेत सर्षप डालकर आठ दिशाओंमें स्थापित करे। पूर्वदिशावर्ती नवकमें घृतपूर्ण कुम्भ रखे। इसमें पलाश, अश्वत्थ, वट, बिल्व, उदुम्बर, प्लक्ष, जम्बू, शमी तथा कपित्थ वृक्षकी छालका क्वाथ डाले। आग्नेयकोणवर्ती नवकमें मधुपूर्ण घटका न्यास करे। इस कलशमें गोशृङ्ग, पर्वत, गङ्गाजल, गजशाला, तीर्थ, खेत और खलिहान—इन आठ स्थलोंकी मृत्तिका छोड़े॥ ४—१०॥

दक्षिणदिशावर्ती नवकमें तिल-तैलसे परिपूर्ण घट स्थापित करे। उसमें क्रमशः नारंगी, जम्बीरी नीबू, खजूर, मृत्तिका, नारिकेल, सुपारी, अनार और पनस (कटहल)-का फल डाल दे। नैर्ऋत्यकोणगत नवकमें क्षीरपूर्ण कलश रखे। उसमें कुङ्कुम, नागपुष्प, चम्पक, मालती, मल्लिका, पुंनाग, करवीर एवं कमल-कुसुमोंको प्रक्षिप्त करे। पश्चिमीय नवकमें नारिकेल-जलसे पूर्ण

कलशमें नदी, समुद्र, सरोवर, कूप, वर्षा, हिम, निर्झर तथा देवनदीका जल छोड़े। वायव्यकोणवर्ती नवकमें कदलीजलपूरित कुम्भ रखे। उसमें सहदेवी, कुमारी, सिंही, व्याघ्री, अमृता, विष्णुपर्णी, दूर्वा, वच—इन दिव्य ओषधियोंको प्रक्षिप्त करे। पूर्वादि उत्तरवर्ती नवकमें दधिकलशका विन्यास करे। उसमें क्रमशः पत्र, इलायची, तज, कूट, सुगन्धवाला, चन्दनद्वय, लता, कस्तूरी, कृष्णागुरु तथा सिद्ध द्रव्य डाल दे। ईशानस्थ नवकमें शान्तिजलसे पूर्ण कुम्भ रखे। उसमें क्रमशः शुभ्र रजत, लौह, त्रपु, कांस्य, सीसक तथा रत्न डाले। प्रतिमाको घृतका अभ्यङ्ग तथा उद्वर्तन करके मूल-मन्त्रसे स्नान करावे। फिर उसका गन्धादिके द्वारा पूजन करे। अग्निमें होम करके पूर्णाहुति दे। सम्पूर्ण भूतोंको बलि प्रदान करे। ब्राह्मणोंको दक्षिणापूर्वक भोजन करावे। देवता और मुनि तथा बहुत-से भूपाल भी भगवद्विग्रहका अभिषेक करके ईश्वरत्वको प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार एक हजार आठ कलशोंसे स्नपनोत्सवका अनुष्ठान करे। इससे मनुष्य सब कुछ प्राप्त करता है। यज्ञके अवभृथ-स्नानमें भी पूर्णस्नान सम्पन्न हो जाता है। पार्वती तथा लक्ष्मीके विवाह आदिमें भी स्नपनोत्सव किया जाता है॥ ११—२३॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'स्नपनोत्सव-विधि-कथन' नामक उनहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ६९॥

सत्तरवाँ अध्याय
वृक्षोंकी प्रतिष्ठाकी विधि

श्रीभगवान् कहते हैं—ब्रह्मन्! अब मैं वृक्षप्रतिष्ठाका वर्णन करता हूँ, जो भोग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाली है। वृक्षोंको सर्वौषधिजलसे लिप्त, सुगन्धित चूर्णसे विभूषित तथा मालाओंसे अलंकृत करके वस्त्रोंसे आवेष्टित करे। सभी वृक्षोंका सुवर्णमयी सूचीसे कर्णवेधन तथा सुवर्णमयी शलाकासे अञ्जन करे। वेदिकापर सात फल रखे। प्रत्येक वृक्षका अधिवासन करे तथा कुम्भ समर्पित करे। फिर इन्द्र आदि दिक्पालोंके उद्देश्यसे बलिप्रदान करे। वृक्षके अधिवासनके समय ऋग्वेद, यजुर्वेद या सामवेदके मन्त्रोंसे अथवा वरुणदेवता-सम्बन्धी तथा मत्तभैरव-सम्बन्धी मन्त्रोंसे होम करे। श्रेष्ठ ब्राह्मण वृक्षवेदीपर स्थित कलशोंद्वारा वृक्षों और यजमानको स्नान करावें। यजमान अलंकृत होकर ब्राह्मणोंको गो, भूमि, आभूषण तथा वस्त्रादिकी दक्षिणा दे तथा चार दिनतक क्षीरयुक्त भोजन करावे। इस कर्ममें तिल, घृत तथा पलाश-समिधाओंसे हवन करना चाहिये। आचार्यको दुगुनी दक्षिणा दे। मण्डप आदिका पूर्ववत् निर्माण करे। वृक्ष तथा उद्यानकी प्रतिष्ठासे पापोंका नाश होकर परम सिद्धिकी प्राप्ति होती है। अब सूर्य, शिव, गणपति, शक्ति तथा श्रीहरिके परिवारकी प्रतिष्ठाकी विधि सुनिये, जो भगवान् महेश्वरने कार्तिकेयको बतलायी थी॥ १—९॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'पादप-प्रतिष्ठा-विधिवर्णन' नामक सत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७०॥

इकहत्तरवाँ अध्याय

गणपतिपूजनकी विधि

भगवान् महेश्वरने कहा—कार्तिकेय! मैं विघ्नोंके विनाशके लिये गणपतिपूजाकी विधि बतलाता हूँ, जो सम्पूर्ण अभीष्ट अर्थोंको सिद्ध करनेवाली है। '**गणंजयाय स्वाहा०**'—हृदय, '**एकदंष्ट्राय हुं फट्**'—सिर, '**अचलकर्णिने नमो नमः।**'—शिखा, '**गजवक्त्राय नमो नमः।**'—कवच, '**महोदराय चण्डाय नमः।**'—नेत्र एवं '**सुदण्डहस्ताय हुं फट्।**'—अस्त्र है। इन मन्त्रोंद्वारा अङ्गन्यास करे। गण, गुरु, गुरु-पादुका, शक्ति, अनन्त और धर्म—इनका मुख्य कमल-मण्डलके ऊर्ध्व तथा निम्न दलोंमें पूजन करे एवं कमलकर्णिकामें बीजकी अर्चना करे। तीव्रा, ज्वालिनी, नन्दा, भोगदा, कामरूपिणी, उग्रा, तेजोवती, सत्या एवं विघ्ननाशिनी—इन नौ पीठशक्तियोंकी भी पूजा करे। फिर चन्दनके चूर्णका आसन समर्पित करे। 'यं' शोषकवायु, 'रं' अग्नि, 'लं' प्लव (पृथिवी) तथा 'वं' अमृतका बीज माना गया है।

'**ॐ लम्बोदराय विद्महे महोदराय धीमहि तन्नो दन्ती प्रचोदयात्।**'—यह गणेश-गायत्री-मन्त्र है। गणपति, गणाधिप, गणेश, गणनायक, गणक्रीड, वक्रतुण्ड, एकदंष्ट्र, महोदर, गजवक्त्र, लम्बोदर, विकट, विघ्ननाशन, धूम्रवर्ण तथा इन्द्र आदि दिक्पाल—इन सबका गणपतिकी पूजामें अङ्गरूपसे पूजन करे॥ १—८॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'गणपतिपूजा-विधिकथन' नामक इकहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७१॥

बहत्तरवाँ अध्याय

स्नान, संध्या और तर्पणकी विधिका वर्णन

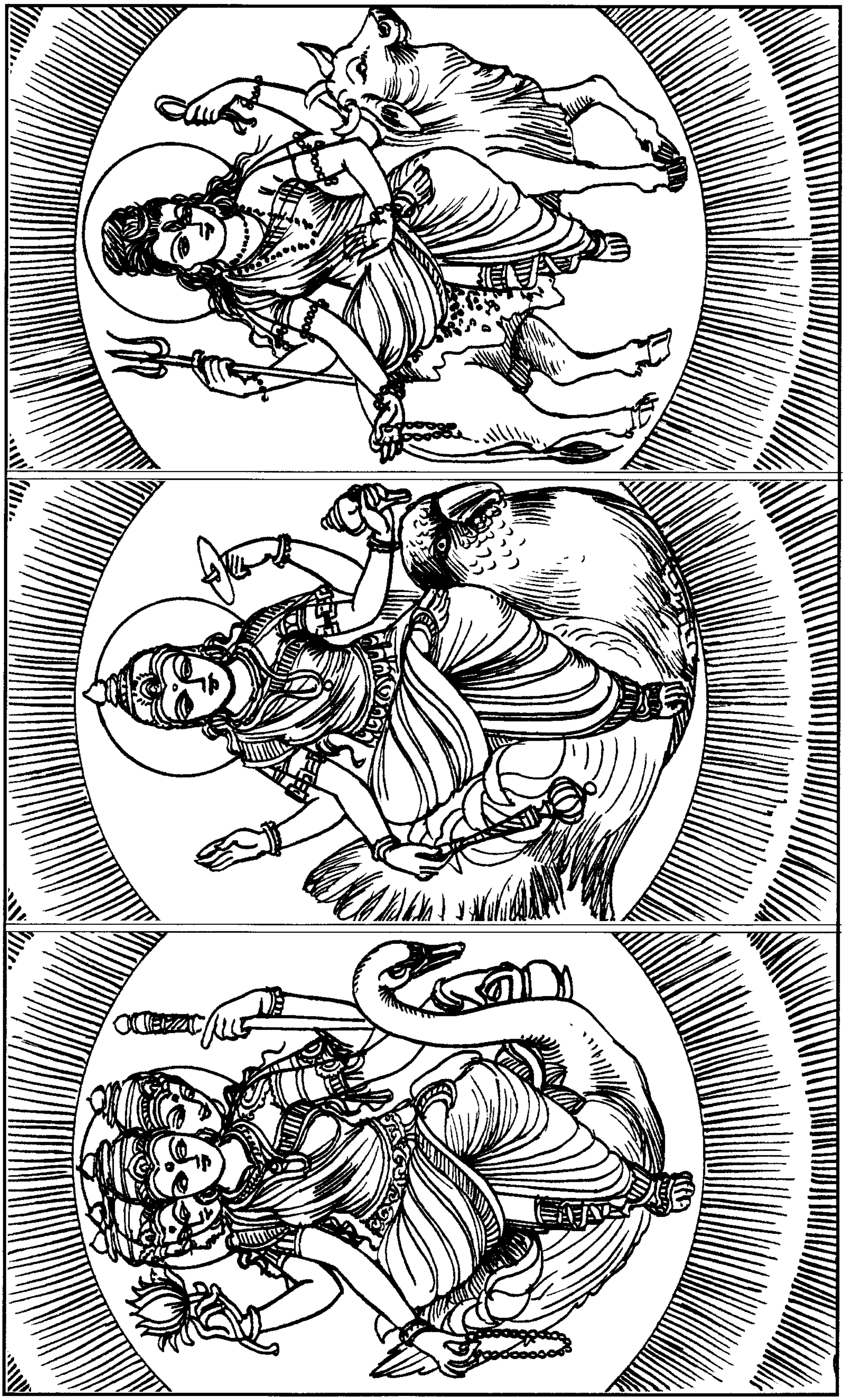
भगवान् महेश्वर कहते हैं—स्कन्द! अब मैं नित्य-नैमित्तिक आदि स्नान, संध्या और प्रतिष्ठासहित पूजाका वर्णन करूँगा। किसी तालाब या पोखरेसे अस्त्रमन्त्र (फट्)-के उच्चारणपूर्वक आठ अङ्गुल गहरी मिट्टी खोदकर निकाले। उसे सम्पूर्णरूपसे ले आकर उसी मन्त्रद्वारा उसका पूजन करे। इसके बाद शिरोमन्त्र (स्वाहा)-से उस मृत्तिकाको जलाशयके तटपर रखकर अस्त्रमन्त्रसे उसका शोधन करे। फिर शिखामन्त्र (वषट्)-के उच्चारणपूर्वक उसमेंसे तृण आदिको निकालकर, कवच-मन्त्र (हुम्)-से उस मृत्तिकाके तीन भाग करे। प्रथम भागकी जलमिश्रित मिट्टीको नाभिसे लेकर पैरतकके अङ्गोंमें लगावे। तत्पश्चात् उसे धोकर, अस्त्र-मन्त्रद्वारा अभिमन्त्रित हुई दूसरे भागकी दीप्तिमती मृत्तिकाद्वारा शेष सम्पूर्ण शरीरको अनुलिप्त करके, दोनों हाथोंसे कान-नाक आदि इन्द्रियोंके छिद्रोंको बंद कर, साँस रोक मन-ही-मन कालाग्निके समान तेजोमय अस्त्रका चिन्तन करते हुए पानीमें डुबकी लगाकर स्नान करे। यह मल (शारीरिक मैल)-को दूर करनेवाला स्नान कहलाता है। इसे इस प्रकार करके जलके भीतरसे निकल आवे और संध्या करके विधि-स्नान करे॥ १—५ $\frac{1}{2}$॥

हृदय-मन्त्र (नमः)-के उच्चारणपूर्वक अङ्कुशमुद्राद्वारा[1] सरस्वती आदि तीर्थोंमेंसे किसी एक तीर्थका भावनाद्वारा आकर्षण करके, फिर संहारमुद्राद्वारा[2] उसे अपने समीपवर्ती जलाशयमें स्थापित करे। तदनन्तर शेष (तीसरे भागकी)

---

१. मध्यमा अँगुलीको सीधी रखकर तर्जनीको बिचले पोरुतक उसके साथ सटाकर कुछ सिकोड़ ले—यही अङ्कुश-मुद्रा है।

२. अधोमुख वामहस्तपर ऊर्ध्वमुख दाहिना हाथ रखकर अंगुलियोंको परस्पर ग्रथित करके घुमावे—यह संहार-मुद्रा है। (मन्त्रमहार्णव)



संध्यादेवी—प्रातःकाल

संध्यादेवी—मध्याह्न

संध्यादेवी—सायंकाल

[अग्नि० अ० ७२]

मिट्टी लेकर नाभितक जलके भीतर प्रवेश करे और उत्तराभिमुख हो, बायीं हथेलीपर उसके तीन भाग करे। दक्षिणभागकी मिट्टीको अङ्गन्यास-सम्बन्धी मन्त्रोंद्वारा (अर्थात् **ॐ हृदयाय नमः, शिरसे स्वाहा, शिखायै वषट्, कवचाय हुम्, नेत्रत्रयाय वौषट्** तथा **अस्त्राय फट्**—इन छः मन्त्रोंद्वारा) एक बार अभिमन्त्रित करे। पूर्वभागकी मिट्टीको '**अस्त्राय फट्**'—इस मन्त्रका सात बार जप करके अभिमन्त्रित करे तथा उत्तरभागकी मिट्टीका '**ॐ नमः शिवाय**'—इस मन्त्रका दस बार जप करके अभिमन्त्रण करे। इस तरह पूर्वोक्त मृत्तिकाके तीन भागोंका क्रमशः अभिमन्त्रण करना चाहिये। तत्पश्चात् पहले उन मृत्तिकाओंमेंसे थोड़ा-थोड़ा-सा भाग लेकर सम्पूर्ण दिशाओंमें छोड़े। छोड़ते समय '**अस्त्राय हुं फट्।**' का जप करता रहे। इसके बाद '**ॐ नमः शिवाय।**'— इस शिव-मन्त्रका तथा '**ॐ सोमाय स्वाहा।**' इस सोम-मन्त्रका जप करके जलमें अपनी भुजाओंको घुमाकर उसे शिवतीर्थस्वरूप बना दे तथा पूर्वोक्त अङ्गन्यास-सम्बन्धी मन्त्रोंका जप करते हुए उसे मस्तकसे लेकर पैरतकके सारे अङ्गोंमें लगावे॥ ६—९॥

तदनन्तर अङ्गन्यास-सम्बन्धी चार मन्त्रोंका पाठ करते हुए दाहिनेसे आरम्भ करके बायें-तकके हृदय, सिर, शिखा और दोनों भुजाओंका स्पर्श करे तथा नाक, कान आदि सारे छिद्रोंको बंद करके सम्मुखीकरण-मुद्राद्वारा भगवान् शिव, विष्णु अथवा गङ्गाजीका स्मरण करते हुए जलमें गोता लगावे। '**ॐ हृदयाय नमः।**' '**शिरसे स्वाहा।**' '**शिखायै वषट्।**' '**कवचाय हुम्।**' '**नेत्रत्रयाय वौषट्।**' तथा '**अस्त्राय फट्।**'—इन षडङ्ग-सम्बन्धी मन्त्रोंका उच्चारण करके, जलमें स्थित हो, बायें और दायें हाथ दोनोंको मिलाकर, कुम्भमुद्राद्वारा अभिषेक करे। फिर रक्षाके लिये पूर्वादि दिशाओंमें जल छोड़े। सुगन्ध और आँवला आदि राजोचित उपचारसे स्नान करे। स्नानके पश्चात् जलसे बाहर निकलकर संहारिणी-मुद्राद्वारा उस तीर्थका उपसंहार करे। इसके बाद विधि-विधानसे शुद्ध, संहितामन्त्रसे अभिमन्त्रित तथा निवृत्ति आदिके द्वारा शोधित भस्मसे स्नान करे॥ १०—१४ $\frac{१}{२}$ ॥

'**ॐ अस्त्राय हुं फट्।**'—इस मन्त्रका उच्चारण करके, सिरसे पैरतक भस्मद्वारा मलस्नान करके फिर विधिपूर्वक शुद्ध स्नान करे। ईशान, तत्पुरुष, अघोर, गुह्यक या वामदेव तथा सद्योजात-सम्बन्धी मन्त्रोंद्वारा क्रमशः मस्तक, मुख, हृदय, गुह्याङ्ग तथा शरीरके अन्य अवयवोंमें उद्वर्तन (अनुलेप) लगाना चाहिये। तीनों संध्याओंके समय, निशीथकालमें, वर्षाके पहले और पीछे, सोकर, खाकर, पानी पीकर तथा अन्य आवश्यक कार्य करके आग्नेय स्नान करना चाहिये। स्त्री, नपुंसक, शूद्र, बिल्ली, शव और चूहेका स्पर्श हो जानेपर भी आग्नेय स्नानका विधान है। चुल्लूभर पवित्र जल पी ले, यही 'आग्नेय-स्नान' है। सूर्यकी किरणोंके दिखायी देते समय यदि आकाशसे जलकी वर्षा हो रही हो तो पूर्वाभिमुख हो, दोनों भुजाएँ ऊपर उठाकर, ईशान-मन्त्रका उच्चारण करते हुए, सात पग चलकर उस वर्षाके जलसे स्नान करे। यह 'माहेन्द्र-स्नान' कहलाता है। गौओंके समूहके मध्यभागमें स्थित हो उनकी खुरोंसे खुदकर ऊपरको उड़ी हुई धूलसे इष्टदेव-सम्बन्धी मूलमन्त्रका जप करते हुए अथवा कवच-मन्त्र (हुम्)-का जप करते हुए जो स्नान किया जाता है, उसे 'पावनस्नान' कहते हैं॥ १५—२० $\frac{१}{२}$ ॥

सद्योजात आदि मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक जो जलसे अभिषेक किया जाता है, उसे 'मन्त्रस्नान' कहते हैं। इसी प्रकार वरुणदेवता और अग्निदेवता-

सम्बन्धी मन्त्रोंसे भी यह स्नान-कर्म सम्पन्न किया जाता है। मन-ही-मन मूल-मन्त्रका उच्चारण करके प्राणायामपूर्वक मानसिक स्नान करना चाहिये। इसका सर्वत्र विधान है। विष्णुदेवता आदिसे सम्बन्ध रखनेवाले कार्योंमें उन-उन देवताओंके मन्त्रोंसे ही स्नान करावे॥ २१—२३॥

कार्तिकेय! अब मैं विभिन्न मन्त्रोंद्वारा संध्या-विधिका सम्यग् वर्णन करूँगा। भलीभाँति देख-भालकर ब्रह्मतीर्थसे तीन बार जलका मन्त्रपाठपूर्वक आचमन करे। आचमन-कालमें आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्व—इन शब्दोंके अन्तमें '**नमः**' सहित '**स्वाहा**' शब्द जोड़कर मन्त्रपाठ करना चाहिये। यथा '**ॐ आत्मतत्त्वाय नमः स्वाहा।**' '**ॐ विद्यातत्त्वाय नमः स्वाहा।**' '**ॐ शिवतत्त्वाय नमः स्वाहा।**'—इन मन्त्रोंसे आचमन करनेके पश्चात् मुख, नासिका, नेत्र और कानोंका स्पर्श करे। फिर प्राणायामद्वारा सकलीकरणकी क्रिया सम्पन्न करके स्थिरतापूर्वक बैठ जाय। इसके बाद मन्त्र-साधक पुरुष मन-ही-मन तीन बार शिवसंहिताकी आवृत्ति करे और आचमन एवं अङ्गन्यास करके प्रातःकाल ब्राह्मी संध्याका इस प्रकार ध्यान करे— ॥ २४—२६॥

संध्यादेवी प्रातःकाल ब्रह्मशक्तिके रूपमें उपस्थित हैं। हंसपर आरूढ हो कमलके आसनपर विराजमान हैं। उनकी अङ्गकान्ति लाल है। वे चार मुख और चार भुजाएँ धारण करती हैं। उनके दाहिने हाथोंमें कमल और स्फटिकाक्षकी माला तथा बायें हाथोंमें दण्ड एवं कमण्डलु शोभा पाते हैं।[1] मध्याह्नकालमें वैष्णवी शक्तिके रूपमें संध्याका ध्यान करे। वे गरुडकी पीठपर बिछे हुए कमलके आसनपर विराजमान हैं। उनकी अङ्गकान्ति श्वेत है। वे अपने बायें हाथोंमें शङ्ख और चक्र धारण करती हैं तथा दायें हाथोंमें गदा एवं अभयकी मुद्रासे सुशोभित हैं।[2] सायंकालमें संध्यादेवीका रुद्रशक्तिके रूपमें ध्यान करे। वे वृषभकी पीठपर बिछे हुए कमलके आसनपर बैठी हैं। उनके तीन नेत्र हैं। वे मस्तकपर अर्धचन्द्रके मुकुटसे विभूषित हैं। दाहिने हाथोंमें त्रिशूल और रुद्राक्ष धारण करती हैं और बायें हाथोंमें अभय एवं शक्तिसे सुशोभित हैं।[3] ये संध्याएँ कर्मोंकी साक्षिणी हैं। अपने-आपको उनकी प्रभासे अनुगत समझे। इन तीनके अतिरिक्त एक चौथी संध्या है, जो केवल ज्ञानीके लिये है। उसका आधी रातके आरम्भमें बोधात्मक साक्षात्कार होता है॥ २७—३०॥

ये तीन संध्याएँ क्रमशः हृदय, बिन्दु और ब्रह्मरन्ध्रमें स्थित हैं। चौथी संध्याका कोई रूप नहीं है। वह परमशिवमें विराजमान है; क्योंकि वह शिव सबसे परे हैं, इसलिये इसे 'परमा संध्या' कहते हैं। तर्जनी अँगुलीके मूलभागमें पितरोंका, कनिष्ठाके मूलभागमें प्रजापतिका, अङ्गुष्ठके मूलभागमें ब्रह्माका और हाथके अग्रभागमें देवताओंका तीर्थ है। दाहिने हाथकी हथेलीमें अग्निका, बायीं हथेलीमें सोमका तथा अँगुलियोंके सभी पर्वों एवं संधियोंमें ऋषियोंका तीर्थ है। संध्याके ध्यानके पश्चात् शिव-सम्बन्धी मन्त्रोंद्वारा तीर्थ (जलाशय)-को शिवस्वरूप बनाकर '**आपो हि ष्ठा०**' इत्यादि संहिता-मन्त्रोंद्वारा उसके जलसे मार्जन करे। बायें हाथपर तीर्थके जलको गिराकर उसे रोके रहे और दाहिने हाथसे मन्त्रपाठपूर्वक क्रमशः सिरका सेचन करना 'मार्जन' कहलाता है॥ ३१—३५॥

---

१ हंसपद्मासनां रक्तां चतुर्वक्त्रां चतुर्भुजाम्। अब्जाक्षमालिनीं दक्षे वामे दण्डकमण्डलुम्॥ (अग्नि० ७२। २७)

२. तार्क्ष्यपद्मासनां ध्यायेन्मध्याह्ने वैष्णवीं सिताम्। शङ्खचक्रधरां वामे दक्षिणे सगदाभयाम्॥ (अग्नि० ७२। २८)

३. रौद्रीं ध्यायेद् वृषाब्जस्थां त्रिनेत्रां शशिभूषिताम्। त्रिशूलाक्षधरां दक्षे वामे साभयशक्तिकाम्॥ (अग्नि० ७२। २९)

इसके बाद अघमर्षण करे। दाहिने हाथके दोनेमें रखे हुए बोधरूप शिवमय जलको नासिकाके समीप ले जाकर बायीं—इडा नाड़ीद्वारा साँसको खींचकर रोके और भीतरसे काले रंगके पाप-पुरुषको दाहिनी—पिङ्गला नाडीद्वारा बाहर निकालकर उस जलमें स्थापित करे। फिर उस पापयुक्त जलको हथेलीद्वारा वज्रमयी शिलाकी भावना करके उसपर दे मारे। इससे अघमर्षणकर्म सम्पन्न होता है। तदनन्तर कुश, पुष्प, अक्षत और जलसे युक्त अर्घ्याञ्जलि लेकर, उसे **'ॐ नमः शिवाय स्वाहा।'**—इस मन्त्रसे भगवान् शिवको समर्पित करे और यथाशक्ति गायत्रीमन्त्रका जप करे॥ ३६—३८॥

अब मैं तर्पणकी विधिका वर्णन करूँगा। देवताओंके लिये देवतीर्थसे उनके नाममन्त्रके उच्चारणपूर्वक तर्पण करे। **'ॐ हूं शिवाय स्वाहा।'** ऐसा कहकर शिवका तर्पण करे। इसी प्रकार अन्य देवताओंको भी उनके स्वाहायुक्त नाम लेकर जलसे तृप्त करना चाहिये। **'ॐ हां हृदयाय नमः। ॐ हीं शिरसे स्वाहा। ॐ हूं शिखायै वषट्। ॐ हैं कवचाय हुम्। ॐ हौं नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ हः अस्त्राय फट्।'**—इन वाक्योंको क्रमशः पढ़कर हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्र एवं अस्त्र-विषयक न्यास करना चाहिये। आठ देवगणोंको उनके नामके अन्तमें 'नमः' पद जोड़कर तर्पणार्थ जल अर्पित करना चाहिये। यथा—**'ॐ हां आदित्येभ्यो नमः। ॐ हां वसुभ्यो नमः। ॐ हां रुद्रेभ्यो नमः। ॐ हां विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः। ॐ हां मरुद्भ्यो नमः। ॐ हां भृगुभ्यो नमः। ॐ हां अङ्गिरोभ्यो नमः।'** तत्पश्चात् जनेऊको कण्ठमें मालाकी भाँति धारण करके ऋषियोंका तर्पण करे॥ ३९—४१॥

'ॐ हां अत्रये नमः। ॐ हां वसिष्ठाय नमः। ॐ हां पुलस्तये नमः। ॐ हां क्रतवे नमः। ॐ हां भरद्वाजाय नमः। ॐ हां विश्वामित्राय नमः। ॐ हां प्रचेतसे नमः। ॐ हां मरीचये नमः।'—इन मन्त्रोंको पढ़ते हुए अत्रि आदि ऋषियोंको (ऋषितीर्थसे) एक-एक अञ्जलि जल दे। तत्पश्चात् सनकादि मुनियोंको (दो-दो अञ्जलि) जल देते हुए निम्नाङ्कित मन्त्रवाक्य पढ़े—**'ॐ हां सनकाय वषट्। ॐ हां सनन्दनाय वषट्। ॐ हां सनातनाय वषट्। ॐ हां सनत्कुमाराय वषट्। ॐ हां कपिलाय वषट्। ॐ हां पञ्चशिखाय वषट्। ॐ हां ऋभवे वषट्।'**—इन मन्त्रोंद्वारा जुड़े हाथोंकी कनिष्ठिकाओंके मूलभागसे जलाञ्जलि देनी चाहिये॥ ४२—४४॥

'ॐ हां सर्वेभ्यो भूतेभ्यो वषट्'—इस मन्त्रसे वषट्स्वरूप भूतगणोंका तर्पण करे। तत्पश्चात् यज्ञोपवीतको दाहिने कंधेपर करके दुहरे मुड़े हुए कुशके मूल और अग्रभागसे तिलसहित जलकी तीन-तीन अञ्जलियाँ दिव्य पितरोंके लिये अर्पित करे। **'ॐ हां कव्यवाहनाय स्वधा। ॐ हां अनलाय स्वधा। ॐ हां सोमाय स्वधा। ॐ हां यमाय स्वधा। ॐ हां अर्यम्णे स्वधा। ॐ हां अग्निष्वात्तेभ्यः स्वधा। ॐ हां बर्हिषद्भ्यः स्वधा। ॐ हां आज्यपेभ्यः स्वधा। ॐ हां सोमपेभ्यः स्वधा।'**—इत्यादि मन्त्रोंका उच्चारण कर विशिष्ट देवताओंकी भाँति दिव्य पितरोंको जलाञ्जलिसे तृप्त करना चाहिये॥ ४५—४६ $\frac{1}{2}$॥

'ॐ हां ईशानाय पित्रे स्वधा।' कहकर पिताको, **'ॐ हां पितामहाय स्वधा।'** कहकर पितामहको तथा **'ॐ हां शान्तप्रपितामहाय स्वधा।'** कहकर प्रपितामहको भी तृप्त करे। इसी प्रकार समस्त प्रेत-पितरोंका तर्पण करे। यथा—**'ॐ हां पितृभ्यः स्वधा। ॐ हां पितामहेभ्यः स्वधा। ॐ हां प्रपितामहेभ्यः स्वधा। ॐ हां वृद्धप्रपितामहेभ्यः स्वधा। ॐ हां मातृभ्यः स्वधा। ॐ हां मातामहेभ्यः स्वधा। ॐ हां प्रमातामहेभ्यः**

स्वधा। ॐ हां वृद्धप्रमातामहेभ्यः स्वधा। ॐ हां सर्वेभ्यः पितृभ्यः स्वधा। ॐ हां सर्वेभ्यः ज्ञातिभ्यः स्वधा। ॐ हां सर्वाचार्येभ्यः स्वधा। ॐ हां दिग्भ्यः स्वधा। ॐ हां दिक्पतिभ्यः स्वधा। ॐ हां सिद्धेभ्यः स्वधा। ॐ हां मातृभ्यः स्वधा। ॐ हां ग्रहेभ्यः स्वधा। ॐ हां रक्षोभ्यः स्वधा।'— इन वाक्योंको पढ़ते हुए क्रमशः पितरों, पितामहों, वृद्धप्रपितामहों, माताओं, मातामहों, प्रमातामहों, वृद्धप्रमातामहों, सभी पितरों, सभी ज्ञातिजनों, सभी आचार्यों, सभी दिशाओं, दिक्पतियों, सिद्धों, मातृकाओं, ग्रहों और राक्षसोंको जलाञ्जलि दे॥ ४७—५१॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'स्नान आदिकी विधिका वर्णन' नामक बहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७२॥

तिहत्तरवाँ अध्याय

सूर्यदेवकी पूजा-विधिका वर्णन

महादेवजी कहते हैं— स्कन्द! अब मैं करन्यास और अङ्गन्यासपूर्वक सूर्यदेवताके पूजनकी विधि बताऊँगा। 'मैं तेजोमय सूर्य हूँ'—ऐसा चिन्तन करके अर्घ्य-पूजन करे। लाल रंगके चन्दन या रोलीसे मिश्रित जलको ललाटके निकटतक ले जाकर उसके द्वारा अर्घ्यपात्रको पूर्ण करे। उसका गन्धादिसे पूजन करके सूर्यके अङ्गोंद्वारा रक्षावगुण्ठन करे। तत्पश्चात् जलसे पूजा-सामग्रीका प्रोक्षण करके पूर्वाभिमुख हो सूर्यदेवकी पूजा करे। '**ॐ आं हृदयाय नमः**।' इस प्रकार आदिमें स्वर-बीज लगाकर सिर आदि अन्य सब अङ्गोंमें भी न्यास करे। पूजा-गृहके द्वारदेशमें दक्षिणकी ओर 'दण्डी' का और वामभागमें 'पिङ्गल' का पूजन करे। ईशानकोणमें '**गं गणपतये नमः**।' इस मन्त्रसे 'गणेश' की और अग्निकोणमें गुरुकी पूजा करे। पीठके मध्यभागमें कमलाकार आसनका चिन्तन एवं पूजन करे। पीठके अग्नि आदि चारों कोणोंमें क्रमशः विमल, सार, आराध्य तथा परम सुखकी और मध्यभागमें प्रभूतासनकी पूजा करे। उपर्युक्त प्रभूत आदि चारोंके वर्ण क्रमशः श्वेत, लाल, पीले और नीले हैं तथा उनकी आकृति सिंहके समान है। इन सबकी पूजा करनी चाहिये॥ १—५॥

पीठस्थ कमलके भीतर '**रां दीप्तायै नमः**।' इस मन्त्रद्वारा दीप्ताकी, '**रीं सूक्ष्मायै नमः**।' इस मन्त्रसे सूक्ष्माकी, '**रूं जयायै नमः**।' इससे जयाकी, '**रें भद्रायै नमः**।' इससे भद्राकी, '**रैं विभूतये नमः**।' इससे विभूतिकी, '**रों विमलायै नमः**।' इससे विमलाकी, '**रौं अमोघायै नमः**।' इससे अमोघाकी तथा '**रं विद्युतायै नमः**।' इससे विद्युताकी पूर्व आदि आठों दिशाओंमें पूजा करे और मध्य-भागमें '**रः सर्वतोमुख्यै नमः**।' इस मन्त्रसे नवीं पीठशक्ति सर्वतोमुखीकी आराधना करे। तत्पश्चात् '**ॐ ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाय सौराय योगपीठात्मने नमः**।' इस मन्त्रके द्वारा सूर्यदेवके आसन (पीठ)-का पूजन करे। तदनन्तर '**खखोल्काय नमः**।' इस षडक्षर मन्त्रके आरम्भमें '**ॐ हं खं**' जोड़कर नौ अक्षरोंसे युक्त ('**ॐ हं खं खखोल्काय नमः**।'—इस) मन्त्रद्वारा सूर्यदेवके विग्रहका आवाहन करे। इस प्रकार आवाहन करके भगवान् सूर्यकी पूजा करनी चाहिये॥ ६—७ $\frac{१}{२}$॥

अञ्जलिमें लिये हुए जलको ललाटके निकटतक ले जाकर रक्त वर्णवाले सूर्यदेवका ध्यान करके उन्हें भावनाद्वारा अपने सामने स्थापित करे। फिर '**ह्रां ह्रीं सः सूर्याय नमः**।' ऐसा कहकर उक्त जलसे सूर्यदेवको अर्घ्य दे। इसके बाद

'बिम्बमुद्रा'[१] दिखाते हुए आवाहन आदि उपचार अर्पित करे। तदनन्तर सूर्यदेवकी प्रीतिके लिये गन्ध (चन्दन-रोली) आदि समर्पित करे। तत्पश्चात् 'पद्ममुद्रा'[२] और 'बिम्बमुद्रा' दिखाकर अग्नि आदि कोणोंमें हृदय आदि अङ्गोंकी पूजा करे। अग्निकोणमें '**ॐ आं हृदयाय नमः।**' इस मन्त्रसे हृदयकी, नैर्ऋत्यकोणमें '**ॐ भूः अर्काय शिरसे स्वाहा।**' इससे सिरकी, वायव्यकोणमें '**ॐ भुवः सुरेशाय शिखायै वषट्।**' इससे शिखाकी, ईशानकोणमें '**ॐ स्वः कवचाय हुम्।**' इससे कवचकी, इष्टदेव और उपासकके बीचमें '**ॐ हां नेत्रत्रयाय वौषट्।**' से नेत्रकी तथा देवताके पश्चिमभागमें '**वः अस्त्राय फट्।**' इस मन्त्रसे अस्त्रकी पूजा करे।[३] इसके बाद पूर्वादि दिशाओंमें मुद्राओंका प्रदर्शन करे॥ ८—११½ ॥

हृदय, सिर, शिखा और कवच—इनके लिये पूर्वादि दिशाओंमें धेनुमुद्राका प्रदर्शन करे। नेत्रोंके लिये गोशृङ्गकी मुद्रा दिखाये। अस्त्रके लिये त्रासनीमुद्राकी योजना करे। तत्पश्चात् ग्रहोंको नमस्कार और उनका पूजन करे। '**ॐ सों सोमाय नमः।**' इस मन्त्रसे पूर्वमें चन्द्रमाकी, '**ॐ बुं बुधाय नमः।**' इस मन्त्रसे दक्षिणमें बुधकी, '**ॐ बृं बृहस्पतये नमः**' इस मन्त्रसे पश्चिममें बृहस्पतिकी और '**ॐ भं भार्गवाय नमः।**' इस मन्त्रसे उत्तरमें शुक्रकी पूजा करे। इस तरह पूर्वादि दिशाओंमें चन्द्रमा आदि ग्रहोंकी पूजा करके, अग्नि आदि कोणोंमें शेष ग्रहोंका पूजन करे। यथा—'**ॐ भौं भौमाय नमः।**' इस मन्त्रसे अग्निकोणमें मङ्गलकी, '**ॐ शं शनैश्चराय नमः।**' इस मन्त्रसे नैर्ऋत्यकोणमें शनैश्चरकी, '**ॐ रां राहवे नमः**' इस मन्त्रसे वायव्यकोणमें राहुकी तथा '**ॐ कें केतवे नमः।**' इस मन्त्रसे ईशानकोणमें केतुकी गन्ध आदि उपचारोंसे पूजा करे। खखोल्की (भगवान् सूर्य)-के साथ इन सब ग्रहोंका पूजन करना चाहिये॥ १२—१४॥

मूलमन्त्रका[४] जप करके, अर्घ्यपात्रमें जल लेकर सूर्यको समर्पित करनेके पश्चात् उनकी स्तुति करे। इस तरह स्तुतिके पश्चात् सामने मुँह किये खड़े हुए सूर्यदेवको नमस्कार करके कहे—'प्रभो! मेरे अपराधों और त्रुटियोंको आप क्षमा करें।' इसके बाद '**अस्त्राय फट्।**' इस मन्त्रसे अणुसंहारका समाहरण करके 'शिव! सूर्य! (कल्याणमय सूर्यदेव!)'—ऐसा कहते हुए संहारिणी-शक्ति या मुद्राके द्वारा सूर्यदेवके उपसंहृत तेजको अपने हृदय-कमलमें स्थापित कर दे तथा सूर्यदेवका निर्माल्य उनके पार्षद चण्डको अर्पित कर दे। इस प्रकार जगदीश्वर सूर्यका पूजन करके उनके जप, ध्यान और होम करनेसे साधकका सारा मनोरथ सिद्ध होता है॥ १५—१७॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'सूर्यपूजाकी विधिका वर्णन' नामक तिहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७३॥

---

१. पद्माकारौ करौ कृत्वा प्रतिश्लिष्टे तु मध्यमे। अङ्गुल्यौ धारयेत्तस्मिन् बिम्बमुद्रेति सोच्यते॥

२. हस्तौ तु सम्मुखौ कृत्वा संनतप्रोन्नताङ्गुली। तलान्तर्मिलिताङ्गुष्ठौ मुद्रैषा पद्मसंज्ञिता॥

३. मन्त्रमहार्णवमें हृदयादि अङ्गोंके पूजनका क्रम इस प्रकार दिया गया है—

अग्निकोणे—ॐ सत्यतेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा हृदयाय नमः हृदयश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। निर्ऋतिकोणे—ॐ ब्रह्मतेजो ज्वालामणे हुं फट् स्वाहा शिरसे स्वाहा शिरःश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। वायव्ये—ॐ विष्णुतेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा शिखायै वषट् शिखाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। ऐशान्ये—ॐ रुद्रतेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा कवचाय हुं कवचश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। पूज्य-पूजकयोर्मध्ये—ॐ अग्नितेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा नेत्रत्रयाय वौषट् नेत्रश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। देवतापश्चिमे—ॐ सर्वतेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा अस्त्राय फट् अस्त्रश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। यहाँ मूलकी व्याख्यामें भी इसी क्रमसे संगति लगाते हुए अर्थ किया गया है।

४. 'शारदातिलक' के अनुसार सूर्यका दशाक्षर मूलमन्त्र इस प्रकार है—'ॐ ह्रीं घृणिः सूर्य्य आदित्य श्रीं।' इति दशाक्षरो मन्त्रः। किंतु इस ग्रन्थमें 'ॐ हं खं' इन बीजोंके साथ 'खखोल्काय नमः।' इस षडक्षर मन्त्रका उल्लेख है। अतः इसीको यहाँ मूल मन्त्र समझना चाहिये।

चौहत्तरवाँ अध्याय

शिवपूजाकी विधि

महादेवजी कहते हैं—स्कन्द! अब मैं शिव-पूजाकी विधि बताऊँगा। आचमन (एवं स्नान आदि) करके प्रणवका जप करते हुए सूर्यदेवको अर्घ्य दे। फिर पूजा-मण्डपके द्वारको 'फट्' इस मन्त्रद्वारा जलसे सींचकर आदिमें 'हां' बीजसहित नन्दी* आदि द्वारपालोंका पूजन करे। द्वारपर उदुम्बर वृक्षकी स्थापना या भावना करके उसके ऊपरी भागमें गणपति, सरस्वती और लक्ष्मीजीकी पूजा करे। उस वृक्षकी दाहिनी शाखापर या द्वारके दक्षिण भागमें नन्दी और गङ्गाका पूजन करे तथा वाम शाखापर या द्वारके वाम भागमें महाकाल एवं यमुनाजीकी पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् अपनी दिव्य दृष्टि डालकर दिव्य विघ्नोंका उत्सारण (निवारण) करे। उनके ऊपर या उनके उद्देश्यसे फूल फेंके और यह भावना करे कि 'आकाशचारी सारे विघ्न दूर हो गये।' साथ ही, दाहिने पैरकी एड़ीसे तीन बार भूमिपर आघात करे और इस क्रियाद्वारा भूतलवर्ती समस्त विघ्नोंके निवारणकी भावना करे। तत्पश्चात् यज्ञमण्डपकी देहलीको लाँघे। वाम शाखाका आश्रय लेकर भीतर प्रवेश करे। दाहिने पैरसे मण्डपके भीतर प्रविष्ट हो उदुम्बरवृक्षमें अस्त्रका न्यास करे तथा मण्डपके मध्य भागमें पीठकी आधारभूमिमें '**ॐ हां वास्त्वधिपतये ब्रह्मणे नमः।**' इस मन्त्रसे वास्तुदेवताकी पूजा करे॥ १—५॥

निरीक्षण आदि शस्त्रोंद्वारा शुद्ध किये हुए गडुओंको हाथमें लेकर, भावनाद्वारा भगवान् शिवसे आज्ञा प्राप्त करके साधक मौन हो गङ्गा आदि नदीके तटपर जाय। वहाँ अपने शरीरको पवित्र करके गायत्री-मन्त्रका जप करते हुए वस्त्रसे छाने हुए जलके द्वारा जलाशयमें उन गडुओंको भरे, अथवा हृदय-बीज (नमः)-का उच्चारण करके जल भरे। तत्पश्चात् पूजाके लिये गन्ध, अक्षत, पुष्प आदि सब द्रव्योंको अपने पास एकत्र करके भूतशुद्धि आदि कर्म करे। फिर उत्तराभिमुख हो आराध्यदेवके दाहिने भागमें—शरीरके विभिन्न अङ्गोंमें मातृकान्यास करके, संहार-मुद्राद्वारा अर्घ्यके लिये जल लेकर मन्त्रोच्चारणपूर्वक मस्तकसे लगावे और उसे देवतापर अर्पित करनेके लिये अपने पास रख ले। इसके बाद भोग्य कर्मोंके उपभोगके लिये पाणिकच्छपिका (कूर्ममुद्रा)-का प्रदर्शन करके द्वादश दलोंसे युक्त हृदयकमलमें अपने आत्माका चिन्तन करे॥ ६—१०॥

तदनन्तर शरीरमें शून्यका चिन्तन करते हुए पाँच भूतोंका क्रमशः शोधन करे। पैरोंके दोनों अँगूठोंको पहले बाहर और भीतरसे छिद्रमय (शून्यरूप) देखे। फिर कुण्डलिनी-शक्तिको मूलाधारसे उठाकर हृदयकमलसे संयुक्त करके इस प्रकार चिन्तन करे—'हृदयरन्ध्रमें स्थित अग्नितुल्य तेजस्वी '**हूं**' बीजमें कुण्डलिनी-शक्ति विराज रही है।' उस समय चिन्तन करनेवाला साधक प्राणवायुका अवरोध (कुम्भक) करके उसका रेचक (निःसारण) करनेके पश्चात्, '**हुं फट्**' के उच्चारणपूर्वक क्रमशः उत्तरोत्तर चक्रोंका भेदन करता हुआ उस कुण्डलिनीको हृदय, कण्ठ, तालु, भ्रूमध्य एवं ब्रह्मरन्ध्रमें ले जाकर स्थापित करे। इन ग्रन्थियोंका भेदन करके कुण्डलिनीके साथ हृदयकमलसे ब्रह्मरन्ध्रमें आये '**हूं**' बीजस्वरूप जीवको वहीं मस्तकमें (मस्तकवर्ती ब्रह्मरन्ध्रमें या सहस्रारचक्रमें) स्थापित कर दे। हृदयस्थित '**हूं**' बीजसे सम्पुटित हुए उस जीवमें

* नारदपुराणके अनुसार नन्दी, भृङ्गी, रिटि, स्कन्द, गणेश, उमा-महेश्वर, नन्दी-वृषभ तथा महाकाल—ये शैव द्वारपाल हैं।

पूरक प्राणायामद्वारा चैतन्यभाव जाग्रत् किया गया है। शिखाके ऊपर '**हूं**' का न्यास करके शुद्ध बिन्दुस्वरूप जीवका चिन्तन करे। फिर कुम्भक-प्राणायाम करके उस एकमात्र चैतन्य-गुणसे युक्त जीवको शिवके साथ संयुक्त कर दे॥ ११—१५॥

इस तरह शिवमें लीन होकर साधक सबीज रेचक प्राणायामद्वारा शरीरगत भूतोंका शोधन करे। अपने शरीरमें पैरसे लेकर बिन्दु-पर्यन्त सभी तत्त्वोंका विलोम-क्रमसे चिन्तन करे। बिन्दुरूप जीवको बिन्द्वन्त लीन करके पृथ्वी और वायुका एक-दूसरेमें लय करे। साथ ही अग्नि एवं जलका भी परस्पर विलय करे। इस प्रकार दो-दो विरोधी भूतोंका परस्पर शोधन (लय) करना चाहिये। आकाशका किसीसे विरोध नहीं है; इस भूत-शुद्धिका विशेष विवरण सुनो—भूमण्डलका स्वरूप चतुष्कोण है। उसका रंग सुवर्णके समान पीला है। वह कठोर होनेके साथ ही वज्रके चिह्नसे तथा '**हां**'[१] इस आत्मीय बीज (भूबीज)-से युक्त है। उसमें 'निवृत्ति' नामक कला है। (शरीरमें पैरसे लेकर घुटनेतक भूमण्डलकी स्थिति है।) इसी तरह पैरसे लेकर मस्तक-पर्यन्त क्रमशः पाँचों भूतोंका चिन्तन करना चाहिये। इस प्रकार पाँच गुणोंसे युक्त वायुभूत भूमण्डलका चिन्तन करे॥ १६—१९॥

जलका स्वरूप अर्धचन्द्राकार है। वह द्रवस्वरूप है, चन्द्रमण्डलमय है। उसकी कान्ति या वर्ण उज्ज्वल है। वह दो कमलोंसे चिह्नित है। '**ह्रीं**'[२] इस बीजसे युक्त है। 'प्रतिष्ठा' नामक कलाके स्वरूपको प्राप्त है। वह वामदेव तथा तत्पुरुष-मन्त्रोंसे संयुक्त जलतत्त्व चार गुणोंसे युक्त है। उसे इस प्रकार (घुटनेसे नाभितक जलका) चिन्तन करते हुए उस जल-तत्त्वका वह्निस्वरूपमें लीन करके शोधन करे। अग्निमण्डल त्रिकोणाकार है। उसका वर्ण लाल है। (नाभिसे हृदयतक उसकी स्थिति है।) वह स्वस्तिकके चिह्नसे युक्त है। उसमें '**हूं**'[३] बीज अङ्कित है। वह विद्याकला-स्वरूप है। उसका अघोर मन्त्र है तथा वह तीन गुणोंसे युक्त एवं जलभूत है—इस प्रकार चिन्तन करते हुए अग्नितत्त्वका शोधन करे। वायुमण्डल षट्कोणाकार है। (शरीरमें हृदयसे लेकर भौंहोंके मध्य भागतक उसकी स्थिति है।) वह छः बिन्दुओंसे चिह्नित है। उसका रंग काला है। वह '**हैं**'[४] बीज एवं सद्योजात-मन्त्रसे युक्त और शान्तिकला-स्वरूप है। उसमें दो गुण हैं तथा वह पृथ्वीभूत है। इस प्रकार चिन्तन करते हुए वायुतत्त्वका शोधन करे॥ २०—२४॥

आकाशका स्वरूप व्योमाकार, नाद-बिन्दुमय, गोलाकार, बिन्दु और शक्तिसे विभूषित तथा शुद्ध स्फटिक मणिके समान निर्मल है। (शरीरमें भ्रूमध्यसे लेकर ब्रह्मरन्ध्रतक उसकी स्थिति है।) वह '**हौं फट्**'[५] इस बीजसे युक्त है। शान्त्यतीतकलामय[६] है। एक गुणसे युक्त तथा परम विशुद्ध है। इस प्रकार चिन्तन करते हुए आकाश-तत्त्वका शोधन करे। तदनन्तर अमृतवर्षी मूलमन्त्रसे सबको परिपुष्ट करे। तत्पश्चात् आधारशक्ति, कूर्म, अनन्त (पृथ्वी)-की पूजा करे। फिर पीठ (चौकी)-के अग्निकोणवाले पायेमें धर्मकी, नैर्ऋत्य कोणवाले पायेमें ज्ञानकी, वायव्यकोणमें वैराग्यकी और ऐशान्यकोणमें ऐश्वर्यकी पूजा करनी चाहिये। इसके बाद पीठकी पूर्वादि दिशाओंमें क्रमशः अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्यकी पूजा करनी चाहिये। इसके बाद पीठके मध्यभागमें कमलकी पूजा करे। इस प्रकार मन-ही-मन इस पीठवर्ती कमलमय

१. अन्य तन्त्रोंके अनुसार पृथ्वीका अपना बीज 'लं' है।
२. जलका बीज 'वं' है। यही ग्रन्थान्तरोंसे सिद्ध है।
३. अग्निका मुख्य बीज 'रं' है।
४. वायुका बीज 'यं' है।
५. आकाशका बीज 'हं' है—यही सर्वसम्मत है।
६. शान्त्यतीतकलाके भीतर इन्धिका, दीपिका, रेचिका और मोचिका—ये चार कलाएँ आती हैं।

आसनका ध्यान करके उसपर देवमूर्ति सच्चिदानन्दघन भगवान् शिवका आवाहन करे। उस शिवमूर्तिमें शिवस्वरूप आत्माको देखे और फिर आसन, पादुकाद्वय तथा नौ पीठशक्ति—इन बारहोंका ध्यान करे। फिर शक्तिमन्त्रके अन्तमें '**वौषट्**' लगाकर उसके उच्चारणपूर्वक पूर्वोक्त आत्ममूर्तिको दिव्य अमृतसे आप्लावित करके उसमें सकलीकरण करे। हृदयसे लेकर हस्त-पर्यन्त अङ्गोंमें तथा कनिष्ठिका आदि अँगुलियोंमें हृदय (**नमः**) मन्त्रोंका जो न्यास है, इसीको 'सकलीकरण' माना गया है॥ २५—३०॥

तत्पश्चात् '**हुं फट्**'—इस मन्त्रसे प्राकारकी भावनाद्वारा आत्मरक्षाकी व्यवस्था करके उसके बाहर, नीचे और ऊपर भी भावनात्मक शक्तिजालका विस्तार करे। इसके बाद महामुद्राका[१] प्रदर्शन करे। तत्पश्चात् पूरक प्राणायामके द्वारा अपने हृदय-कमलमें विराजमान शिवका ध्यान करके भावमय पुष्पोंद्वारा उनके पैरसे लेकर सिरतकके अङ्गोंमें पूजन करे। वे भावमय पुष्प आनन्दामृतमय मकरन्दसे परिपूर्ण होने चाहिये। फिर शिव-मन्त्रोंद्वारा नाभिकुण्डमें स्थित शिवस्वरूप अग्निको तृप्त करे। वही शिवानल ललाटमें बिन्दुरूपसे स्थित है; उसका विग्रह मङ्गलमय है—इस प्रकार चिन्तन करे॥ ३१—३३॥

स्वर्ण, रजत एवं ताम्रपात्रोंमेंसे किसी एक पात्रको अर्घ्यके लिये लेकर उसे अस्त्रबीज (**फट्**)-के उच्चारणपूर्वक जलसे धोये। फिर बिन्दुरूप शिवसे प्रकट होनेवाले अमृतकी भावनासे युक्त जल एवं अक्षत आदिके द्वारा हृदय-मन्त्र (**नमः**)-के उच्चारणपूर्वक उसे भर दे। फिर हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्र और अस्त्र—इन छः अङ्गोंद्वारा (अथवा इनके बीज-मन्त्रोंद्वारा) उस अर्घ्यपात्रका पूजन करके उसे देवता-सम्बन्धी मूलमन्त्रसे अभिमन्त्रित करे। फिर अस्त्र-मन्त्र (**फट्**)-से उसकी रक्षा करके कवच-बीज (**हुम्**)-के द्वारा उसे अवगुण्ठित कर दे। इस प्रकार अष्टाङ्ग अर्घ्यकी रचना करके, धेनुमुद्राके द्वारा उसका अमृतीकरण करके उस जलको सब ओर सींचे। अपने मस्तकपर भी उस जलकी बूँदोंसे अभिषेक करे। वहाँ रखी हुई पूजा-सामग्रीका भी अस्त्र-बीजके उच्चारणपूर्वक उक्त जलसे प्रोक्षण करे। तदनन्तर हृदयबीजसे अभिमन्त्रित करके '**हुम्**' बीजसे पिण्डों (अथवा मत्स्यमुद्रा[२])-द्वारा उसे आवेष्टित या आच्छादित करे॥ ३४—३७॥

इसके बाद अमृता[३] (धेनुमुद्रा)-के लिये धेनुमुद्राका प्रदर्शन करके अपने आसनपर पुष्प अर्पित करे (अथवा देवताके निज आसनपर पुष्प चढ़ावे)। तत्पश्चात् पूजक अपने मस्तकमें तिलक लगाकर मूलमन्त्रके द्वारा आराध्यदेवको पुष्प अर्पित करे। स्नान, देवपूजन, होम, भोजन, यज्ञानुष्ठान, योग, साधन तथा आवश्यक जपके समय धीरबुद्धि साधकको सदा मौन रहना चाहिये।[४] प्रणवका

---

१. अन्योन्यग्रथिताङ्गुष्ठा प्रसारितकराङ्गुली। महामुद्रेयमुदिता परमीकरणी बुधैः॥ (वामकेश्वर तन्त्रान्तर्गत मुद्रानिघण्टु ३१-३२)
—दोनों अँगूठोंको परस्पर ग्रथित कर हाथोंकी अन्य सब अँगुलियोंको फैलाये रखना—यह 'महामुद्रा' कही गयी है। इसका परमीकरणमें प्रयोग होता है।

२. बायें हाथके पृष्ठभागपर दाहिने हाथकी हथेली रखे और दोनों अँगूठोंको फैलाये रखे। यही 'मत्स्यमुद्रा' है।

३. अमृतीकरणकी विधि यह है—
'वं' इस अमृत-बीजका उच्चारण करके धेनुमुद्राको दिखावे। धेनुमुद्राका लक्षण इस प्रकार है—

वामाङ्गुलीनां मध्येषु दक्षिणाङ्गुलिकास्तथा। संयोज्य तर्जनीं दक्षां वाममध्यमया तथा॥
दक्षमध्यमया वामां तर्जनीं च नियोजयेत्। वामयानामया दक्षकनिष्ठां च नियोजयेत्॥
दक्षयानामया वामां कनिष्ठां च नियोजयेत्। विहिताधोमुखी चैषा धेनुमुद्रा प्रकीर्तिता॥

'बायें हाथकी अँगुलियोंके बीचमें दाहिने हाथकी अँगुलियोंको संयुक्त करके दाहिनी तर्जनीको बायीं मध्यमासे जोड़े। दाहिने हाथकी मध्यमासे बायें हाथकी तर्जनीको मिलावे। फिर बायें हाथकी अनामिकासे दाहिने हाथकी कनिष्ठिका और दाहिने हाथकी अनामिकासे बायें हाथकी कनिष्ठिकाको संयुक्त करे। तत्पश्चात् इन सबका मुख नीचेकी ओर करे—यही 'धेनुमुद्रा' कही गयी है।'

४. स्नाने देवार्चने होमे भोजने यागयोगयोः। आवश्यके जपे धीरः सदा वाचंयमो भवेत्॥ (अग्नि० ७४। ३९)

नाद-पर्यन्त उच्चारण करके मन्त्रका शोधन करे। फिर उत्तम संस्कारयुक्त देव-पूजा आरम्भ करे। मूलगायत्री (अथवा रुद्र-गायत्री)-से अर्घ्य-पूजन करके रखे और वह सामान्य अर्घ्य देवताको अर्पित करे॥ ३८—४०॥

ब्रह्मपञ्चक (पञ्चगव्य और कुशोदकसे बना हुआ ब्रह्मकूर्च[१]) तैयार करके पूजित शिवलिङ्गसे पुष्प-निर्माल्य ले ईशानकोणकी ओर '**चण्डाय नमः**'। कहकर चण्डको समर्पित करे। तत्पश्चात् उक्त ब्रह्मपञ्चकसे पिण्डिका (पिण्डी या अर्घा) और शिवलिङ्गको नहलाकर '**फट्**'-का उच्चारण करके उन्हें जलसे नहलाये। फिर '**नमो नमः**' के उच्चारणपूर्वक पूर्वोक्त अर्घ्यपात्रके जलसे उस लिङ्गका अभिषेक करे। यह लिङ्ग-शोधनका प्रकार बताया गया है॥ ४१-४२॥

आत्मा (शरीर और मन), द्रव्य (पूजनसामग्री), मन्त्र तथा लिङ्गकी शुद्धि हो जानेपर सब देवताओंका पूजन करे। वायव्यकोणमें '**ॐ हां गणपतये नमः।**'[२] कहकर गणेशजीकी पूजा करे और ईशानकोणमें '**ॐ हां गुरुभ्यो नमः।**' कहकर गुरु, परम गुरु, परात्पर गुरु तथा परमेष्ठी गुरु-गुरुपंक्तिकी पूजा करे॥ ४३॥

तत्पश्चात् कूर्मरूपी शिलापर स्थित अङ्कुर-सदृश आधारशक्तिका तथा ब्रह्मशिलापर आरूढ़ शिवके आसनभूत अनन्तदेवका '**ॐ हां अनन्तासनाय नमः।**' मन्त्रद्वारा पूजन करे। शिवके सिंहासनके रूपमें जो मञ्च या चौकी है, उसके चार पाये हैं, जो विचित्र सिंहकी-सी आकृतिसे सुशोभित होते हैं। वे सिंह मण्डलाकारमें स्थित रहकर अपने आगेवालेके पृष्ठभागको ही देखते हैं तथा सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग—इन चार युगोंके प्रतीक हैं। तत्पश्चात् भगवान् शिवकी आसन-पादुकाकी पूजा करे। तदनन्तर धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्यकी पूजा करे। वे अग्नि आदि चारों कोणोंमें स्थित हैं। उनके वर्ण क्रमशः कपूर, कुङ्कुम, सुवर्ण और काजलके समान हैं। इनका चारों पायोंपर क्रमशः पूजन करे। इसके बाद ('**ॐ हां अधश्छदनाय नमोऽधः**', **ॐ हां ऊर्ध्वच्छदनाय नम ऊर्ध्वे। ॐ हां पद्मासनाय नमः।**—ऐसा कहकर) आसनपर विराजमान अष्टदल कमलके नीचे-ऊपरके दलोंकी, सम्पूर्ण कमलकी तथा '**ॐ हां कर्णिकायै नमः।**' के द्वारा कर्णिकाके मध्यभागकी पूजा करे। उस कमलके पूर्व आदि आठ दलोंमें तथा मध्यभागमें नौ पीठ-शक्तियोंकी पूजा करनी चाहिये। वे शक्तियाँ चँवर लेकर खड़ी हैं। उनके हाथ वरद एवं अभयकी मुद्राओंसे सुशोभित हैं॥ ४४—४७॥

उनके नाम इस प्रकार हैं—वामा, ज्येष्ठा,

---

१. ब्रह्मकूर्चकी विधि इस प्रकार है—पलाश या कमलके पत्तेमें अथवा ताँबे या सुवर्णके पात्रमें पञ्चगव्य संग्रह करना चाहिये। गायत्री-मन्त्रसे गोमूत्रका, 'गन्धद्वारां०' (श्रीसूक्त) इस मन्त्रसे गोबरका, 'आप्यायस्व०' (शु० यजु० १२।११२) इस मन्त्रसे दूधका, 'दधिक्राव्णो०' (शु० यजु० २३।३२) इस मन्त्रसे दहीका, 'तेजोऽसि शुक्रं०' (शु० यजु० २२।१) इस मन्त्रसे घीका और 'देवस्य त्वा०' (शु० यजु० ६।३०) इस मन्त्रसे कुशोदकका संग्रह करे। चतुर्दशीको उपवास करके अमावस्याको उपर्युक्त वस्तुओंका संग्रह करे। गोमूत्र एक पल होना चाहिये, गोबर आधे अँगूठेके बराबर हो, दूधका मान सात पल और दहीका तीन पल है। घी और कुशोदक एक-एक पल बताये गये हैं। इस प्रकार इन सबको एकत्र करके परस्पर मिला दे। तत्पश्चात् सात-सात पत्तोंके तीन कुश लेकर जिनके अग्रभाग कटे न हों, उनसे उस पञ्चगव्यकी अग्निमें आहुति दे। आहुतिसे बचे हुए पञ्चगव्यको प्रणवसे आलोडन और प्रणवसे ही मन्थन करके, प्रणवसे ही हाथमें ले तथा फिर प्रणवका ही उच्चारण करके उसे पी जाय। इस प्रकार तैयार किये हुए पञ्चगव्यको 'ब्रह्मकूर्च' कहते हैं। स्त्री-शूद्रोंको ब्राह्मणके द्वारा पञ्चगव्य बनवाकर प्रणव-उच्चारणके बिना ही पीना चाहिये। सर्वसाधारणके लिये ब्रह्मकूर्च-पानका मन्त्र यह है—

यत्त्वगस्थिगतं पापं देहे तिष्ठति देहिनाम्। ब्रह्मकूर्चो दहेत्सर्वं प्रदीप्ताग्निरिवेन्धनम्॥ (वृद्धशातातप० १२)

अर्थात् 'देहधारियोंके शरीरमें चमड़े और हड्डीतकमें जो पाप विद्यमान है, वह सब ब्रह्मकूर्च इस प्रकार जला दे, जैसे प्रज्वलित आग इन्धनको जला डालती है।'

२. प्रचलित 'गं' आदि स्वबीजके स्थानपर 'हां' बीज सोमशम्भुकी 'कर्मकाण्डक्रमावली' में भी मिलता है।

रौद्री, काली, कलविकारिणी[1], बलविकारिणी[2], बलप्रमथिनी, सर्वभूतदमनी तथा मनोन्मनी—इन सबका क्रमशः पूजन करना चाहिये। वामा आदि आठ शक्तियोंका कमलके पूर्व आदि आठ दलोंमें तथा नवीं मनोन्मनीका कमलके केसर-भागमें क्रमशः पूजन किया जाता है। यथा—'**ॐ हां वामायै नमः।**' इत्यादि। तदनन्तर पृथ्वी आदि अष्ट मूर्तियों एवं विशुद्ध विद्यादेहका चिन्तन एवं पूजन करे। (यथा—पूर्वमें '**ॐ सूर्यमूर्तये नमः।**' अग्निकोणमें '**ॐ चन्द्रमूर्तये नमः।**' दक्षिणमें '**ॐ पृथ्वीमूर्तये नमः।**' नैर्ऋत्यकोणमें '**ॐ जलमूर्तये नमः।**' पश्चिममें '**ॐ वह्निमूर्तये नमः।**' वायव्यकोणमें '**ॐ वायुमूर्तये नमः।**' उत्तरमें '**ॐ आकाशमूर्तये नमः।**' और ईशानकोणमें '**ॐ यजमानमूर्तये नमः।**') तत्पश्चात् शुद्ध विद्याकी और तत्त्वव्यापक आसनकी पूजा करनी चाहिये। उस सिंहासनपर कर्पूर-गौर, सर्वव्यापी एवं पाँच मुखोंसे सुशोभित भगवान् महादेवको प्रतिष्ठित करे। उनके दस भुजाएँ हैं। वे अपने मस्तकपर अर्धचन्द्र धारण करते हैं। उनके दाहिने हाथोंमें शक्ति, ऋष्टि, शूल, खट्वाङ्ग और वरद-मुद्रा हैं तथा अपने बायें हाथोंमें वे डमरू, बिजौरा नीबू, सर्प, अक्षसूत्र और नील कमल धारण करते हैं[3]॥ ४८—५१॥

आसनके मध्यमें विराजमान भगवान् शिवकी वह दिव्य मूर्ति बत्तीस लक्षणोंसे सम्पन्न है, ऐसा चिन्तन करके स्वयं-प्रकाश शिवका स्मरण करते हुए '**ॐ हां हां हां शिवमूर्तये नमः।**' कहकर उसे नमस्कार करे। ब्रह्मा आदि कारणोंके त्यागपूर्वक मन्त्रको शिवमें प्रतिष्ठित करे। फिर यह चिन्तन करे कि ललाटके मध्यभागमें विराजमान तथा तारापति चन्द्रमाके समान प्रकाशमान बिन्दुरूप परमशिव हृदयादि छः अङ्गोंसे संयुक्त हो पुष्पाञ्जलिमें उतर आये हैं। ऐसा ध्यान करके उन्हें प्रत्यक्ष पूजनीय मूर्तिमें स्थापित कर दे। इसके बाद '**ॐ हां हौं शिवाय नमः।**'—यह मन्त्र बोलकर मन-ही-मन आवाहनी[4]-मुद्राद्वारा मूर्तिमें भगवान् शिवका आवाहन करे। फिर स्थापनी-मुद्राद्वारा[5] वहाँ उनकी स्थापना और संनिधापिनी-मुद्राद्वारा[6] भगवान् शिवको समीपमें विराजमान करके संनिरोधनी-मुद्राद्वारा[7] उन्हें उस मूर्तिमें अवरुद्ध करे। तत्पश्चात् '**निष्ठुरायै कालकल्यायै (कालकान्त्यै** अथवा **कालकान्तायै) फट्।**' का उच्चारण करके खड्ग-मुद्रासे भय दिखाते हुए विघ्नोंको मार भगावे। इसके बाद लिङ्ग-मुद्राका[8] प्रदर्शन करके नमस्कार करे॥ ५२—५६॥

इसके बाद '**नमः**' बोलकर अवगुण्ठन करे। आवाहनका अर्थ है सादर सम्मुखीकरण—इष्टदेवको अपने सामने उपस्थित करना। देवताको अर्चा-विग्रहमें बिठाना ही उसकी स्थापना है।

---

१. अन्य तन्त्र-ग्रन्थोंमें 'कलविकरिणी' नाम मिलता है।

२. अन्यत्र 'बलविकरिणी' नाम मिलता है।

३. न्यसेत् सिंहासने देवं शुक्लं पञ्चमुखं विभुम्। दशबाहुं च खण्डेन्दुं दधानं दक्षिणैः करैः॥
शक्त्यृष्टिशूलखट्वाङ्गवरदं वामकैः करैः। डमरुं बीजपूरं च नागाक्ष सूत्रकोत्पलम्॥ (अग्नि० ७४।५०-५१)

४. दोनों हाथोंकी अञ्जलि बनाकर अनामिका अँगुलियोंके मूलपर्वपर अँगूठेको लगा देना—यह आवाहनकी मुद्रा है।

५. यह आवाहनी मुद्रा ही अधोमुखी (नीचेकी ओर मुखवाली) कर दी जाय तो 'स्थापिनी (बिठानेवाली) मुद्रा' कहलाती है।

६. अँगूठोंको ऊपर उठाकर दोनों हाथोंकी संयुक्त मुट्ठी बाँध लेनेपर 'संनिधापिनी (निकट सम्पर्कमें लानेवाली) मुद्रा' बन जाती है।

७. यदि मुट्ठीके भीतर अँगूठेको डाल दिया जाय तो 'संनिरोधिनी (रोक रखनेवाली) मुद्रा' कहलाती है।

८. दोनों हाथोंकी अञ्जलि बाँधकर अनामिका और कनिष्ठिका अँगुलियोंको परस्पर सटाकर लिङ्गाकार खड़ी कर ले। दोनों मध्यमाओंका अग्रभाग बिना खड़ी किये परस्पर मिला दे। दोनों तर्जनियोंको मध्यमाओंके साथ सटाये रखे और अँगूठोंको तर्जनियोंके मूलभागमें लगा ले। यह अर्घासहित शिवलिङ्गकी मुद्रा है।

'प्रभो! मैं आपका हूँ'—ऐसा कहकर भगवान्से निकटतम सम्बन्ध स्थापित करना ही 'संनिधान' या 'संनिधापन' कहलाता है। जबतक पूजन-सम्बन्धी कर्मकाण्ड चालू रहे, तबतक भगवान्की समीपताको अक्षुण्ण रखना ही 'निरोध' है और अभक्तोंके समक्ष जो शिवतत्त्वका अप्रकाशन या संगोपन किया जाता है, उसीका नाम 'अवगुण्ठन' है। तदनन्तर सकलीकरण करके '**हृदयाय नमः**', '**शिरसे स्वाहा**', '**शिखायै वषट्**', '**कवचाय हुम्**', '**नेत्राभ्यां वौषट्**', '**अस्त्राय फट्**'—इन छः मन्त्रोंद्वारा हृदयादि अङ्गोंकी अङ्गीके साथ एकता स्थापित करे—यही 'अमृतीकरण' है। चैतन्यशक्ति भगवान् शंकरका हृदय है, आठ प्रकारका ऐश्वर्य उनका सिर है, वशित्व उनकी शिखा है तथा अभेद्य तेज भगवान् महेश्वरका कवच है। उनका दुःसह प्रताप ही समस्त विघ्नोंका निवारण करनेवाला अस्त्र है। हृदय आदिको पूर्वमें रखकर क्रमशः '**नमः**', '**स्वधा**', '**स्वाहा**' और '**वौषट्**' का क्रमशः उच्चारण करके पाद्य आदि निवेदन करे॥ ५७—६१ $\frac{1}{2}$ ॥

पाद्यको आराध्यदेवके युगल चरणारविन्दोंमें, आचमनको मुखारविन्दमें तथा अर्घ्य, दूर्वा, पुष्प और अक्षतको इष्टदेवके मस्तकपर चढ़ाना चाहिये। इस प्रकार दस संस्कारोंसे परमेश्वर शिवका संस्कार करके गन्ध-पुष्प आदि पञ्च-उपचारोंसे विधिपूर्वक उनकी पूजा करे। पहले जलसे देवविग्रहका अभ्युक्षण (अभिषेक) करके राई-लोन आदिसे उबटन और मार्जन करना चाहिये। तत्पश्चात् अर्घ्यजलकी बूँदों और पुष्प आदिसे अभिषेक करके गडुओंमें रखे हुए जलके द्वारा धीरे-धीरे भगवान्को नहलावे। दूध, दही, घी, मधु और शक्कर आदिको क्रमशः ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव और सद्योजात—इन पाँच* मन्त्रोंद्वारा अभिमन्त्रित करके उनके द्वारा बारी-बारीसे स्नान करावे। उनको परस्पर मिलाकर पञ्चामृत बना ले और उससे भगवान्को नहलावे। इससे भोग और मोक्षकी प्राप्ति होती है। पूर्वोक्त दूध-दही आदिमें जल और धूप मिलाकर उन सबके द्वारा इष्ट देवता-सम्बन्धी मूल-मन्त्रके उच्चारणपूर्वक भगवान् शिवको स्नान करावे॥ ६२—६६॥

तदनन्तर जौके आटेसे चिकनाई मिटाकर इच्छानुसार शीतल जलसे स्नान करावे। अपनी शक्तिके अनुसार चन्दन, केसर आदिसे युक्त जलद्वारा स्नान कराकर शुद्ध वस्त्रसे इष्टदेवके श्रीविग्रहको अच्छी तरह पोंछे। उसके बाद अर्घ्य निवेदन करे। देवताके ऊपर हाथ न घुमावे। शिवलिङ्गके मस्तकभागको कभी पुष्पसे शून्य न रखे। तत्पश्चात् अन्यान्य उपचार समर्पित करे। (स्नानके पश्चात् देवविग्रहको वस्त्र और यज्ञोपवीत धारण कराकर) चन्दन-रोली आदिका अनुलेप करे। फिर शिव-सम्बन्धी मन्त्र बोलकर पुष्प अर्पण करते हुए पूजन करे। धूपके पात्रका अस्त्र-मन्त्र (फट्)-से प्रोक्षण करके शिव-मन्त्रसे धूपद्वारा पूजन करे। फिर अस्त्र-मन्त्रद्वारा पूजित घण्टा बजाते हुए गुग्गुलका धूप जलावे। फिर '**शिवाय नमः।**' बोलकर अमृतके समान

* ये पाँच मन्त्र इस प्रकार हैं—

(१) ॐ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणो ब्रह्मा शिवो मेऽस्तु सदा शिवोम्॥

(२) ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्॥

(३) ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः। सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः॥

(४) ॐ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलाय नमो बल-प्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः॥

(५) ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः। भवे भवे नातिभवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः॥

सुस्वादु जलसे भगवान्‌को आचमन करावे। इसके बाद आरती उतारकर पुनः पूर्ववत् आचमन करावे। फिर प्रणाम करके देवताकी आज्ञा ले भोगाङ्गोंकी पूजा करे॥ ६७—७१॥

अग्निकोणमें चन्द्रमाके समान उज्ज्वल हृदयका, ईशानकोणमें सुवर्णके समान कान्तिवाले सिरका, नैर्ऋत्यकोणमें लाल रंगकी शिखाका तथा वायव्यकोणमें काले रंगके कवचका पूजन करे। फिर अग्निवर्ण नेत्र और कृष्ण-पिङ्गल अस्त्रका पूजन करके चतुर्मुख ब्रह्मा और चतुर्भुज विष्णु आदि देवताओंको कमलके दलोंमें स्थित मानकर इन सबकी पूजा करे। पूर्व आदि दिशाओंमें दाढ़ोंके समान विकराल, वज्रतुल्य अस्त्रका भी पूजन करे॥ ७२-७३॥

मूल स्थानमें '**ॐ हां हूं शिवाय नमः।**' बोलकर पूजन करे। '**ॐ हां हृदयाय नमः, हीं शिरसे स्वाहा।**' बोलकर हृदय और सिरकी पूजा करे। '**हूं शिखायै वषट्**' बोलकर शिखाकी, '**हैं कवचाय हुम्।**' कहकर कवचकी तथा '**हः अस्त्राय फट्।**' बोलकर अस्त्रकी पूजा करे। इसके बाद परिवारसहित भगवान् शिवको क्रमशः पाद्य, आचमन, अर्घ्य, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, आचमनीय, करोद्वर्तन, ताम्बूल, मुखवास (इलायची आदि) तथा दर्पण अर्पण करे। तदनन्तर देवाधिदेवके मस्तकपर दूर्वा, अक्षत और पवित्रक चढ़ाकर हृदय (**नमः**)-से अभिमन्त्रित मूलमन्त्रका एक सौ आठ बार जप करे। तत्पश्चात् कवचसे आवेष्टित एवं अस्त्रके द्वारा सुरक्षित अक्षत-कुश, पुष्प तथा उद्भव नामक मुद्रासे भगवान् शिवसे इस प्रकार प्रार्थना करे—॥ ७४—७७ $\frac{१}{२}$॥

'प्रभो! गुह्यसे भी अति गुह्य वस्तुकी आप रक्षा करनेवाले हैं। आप मेरे किये हुए इस जपको ग्रहण करें, जिससे आपके रहते हुए आपकी कृपासे मुझे सिद्धि प्राप्त हो'[१]॥ ७८ $\frac{१}{२}$॥

भोगकी इच्छा रखनेवाला उपासक उपर्युक्त श्लोक पढ़कर, मूल मन्त्रके उच्चारणपूर्वक दाहिने हाथसे अर्घ्य-जल ले भगवान्‌के वरकी मुद्रासे युक्त हाथमें अर्घ्य निवेदन करे। फिर इस प्रकार प्रार्थना करे—'देव! शंकर! हम कल्याणस्वरूप आपके चरणोंकी शरणमें आये हैं। अतः सदा हम जो कुछ भी शुभाशुभ कर्म करते आ रहे हैं, उन सबको आप नष्ट कर दीजिये—निकाल फेंकिये। **हूं क्षः।** शिव ही दाता हैं, शिव ही भोक्ता हैं, शिव ही यह सम्पूर्ण जगत् हैं, शिवकी सर्वत्र जय हो। जो शिव हैं, वही मैं हूँ'[२]॥ ७९—८१ $\frac{१}{२}$॥

इन दो श्लोकोंको पढ़कर अपना किया हुआ जप आराध्यदेवको समर्पित कर दे। तत्पश्चात् जपे हुए शिव-मन्त्रका दशांश भी जपे (यह हवनकी पूर्तिके लिये आवश्यक है।) फिर अर्घ्य देकर भगवान्‌की स्तुति करे। अन्तमें अष्टमूर्तिधारी आराध्यदेव शिवकी परिक्रमा करके उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम करे। नमस्कार और शिव-ध्यान करके चित्रमें अथवा अग्नि आदिमें भगवान् शिवके उद्‌देश्यसे यजन-पूजन करना चाहिये॥ ८२—८४॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'शिव-पूजाकी विधिका वर्णन' नामक चौहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७४॥

---

१. गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्। सिद्धिर्भवतु मे येन त्वत्प्रसादात् त्वयि स्थिते॥ (अग्नि० पु० ७४—७८ $\frac{१}{२}$॥)

२. यत्किंचित्कुर्महे देव सदा सुकृतदुष्कृतम्॥
तन्मे शिवपदस्थस्य हूं क्षः क्षेपय शंकर। शिवो दाता शिवो भोक्ता शिवः सर्वमिदं जगत्॥
शिवो जयति सर्वत्र यः शिवः सोऽहमेव च। (अग्नि० ७४। ८०—८२)

पचहत्तरवाँ अध्याय
शिवपूजाके अङ्गभूत होमकी विधि

भगवान् महेश्वर कहते हैं—स्कन्द! पूजनके पश्चात् अपने शरीरको वस्त्र आदिसे आवृत करके हाथमें अर्घ्यपात्र लिये उपासक अग्निशालामें जाय और दिव्यदृष्टिसे यज्ञके समस्त उपकरणोंकी कल्पना (**संग्रह**) करे। उत्तराभिमुख हो कुण्डको देखे। कुशोंद्वारा उसका प्रोक्षण एवं ताडन (**मार्जन**) करे। ताडन तो अस्त्र-मन्त्र (**फट्**)-से करे; किंतु उसका अभ्युक्षण कवच-मन्त्र (**हुम्**)-से करना चाहिये। खड्गसे कुण्डका खात उद्धार, पूरण और समता करे। कवच (**हुम्**)-से उसका अभिषेक तथा शरमन्त्र (**फट्**)-से भूमिको कूटनेका कार्य करे। सम्मार्जन, उपलेपन, कलात्मक रूपकी कल्पना, त्रिसूत्री-परिधान तथा अर्चन भी सदा कवच-मन्त्रसे ही करना चाहिये। कुण्डके उत्तरमें तीन रेखा करे। एक रेखा ऐसी खींचे, जो पूर्वाभिमुखी हो और ऊपरसे नीचेकी ओर गयी हो। कुश अथवा त्रिशूलसे रेखा करनी चाहिये। अथवा उन सभी रेखाओंमें उलट-फेर भी किया जा सकता है॥ १—५॥

अस्त्र-मन्त्र (**फट्**)-का उच्चारण करके वज्रीकरणकी क्रिया करे। '**नमः**' का उच्चारण करके कुशोंद्वारा चतुष्पथका न्यास करे। कवच-मन्त्र (**हुम्**) बोलकर अक्षपात्रका और हृदय-मन्त्र (**नमः**)-से विष्टरका स्थापन करे। '**वागीश्वर्यै नमः।**' '**ईशाय नमः**'—ऐसा बोलकर वागीश्वरी देवी तथा ईशका आवाहन एवं पूजन करे। इसके बाद अच्छे स्थानसे शुद्धपात्रमें रखी हुई अग्निको ले आवे। उसमेंसे '**क्रव्यादमग्निं प्रहिणोमि दूरम्०**' (शु० यजु० ३५।१९) इत्यादि मन्त्रके उच्चारणपूर्वक क्रव्यादके अंशभूत अग्निकणको निकाल दे। फिर निरीक्षण आदिसे शोधित औदर्य, ऐन्दव तथा भौत—इन त्रिविध अग्नियोंको एकत्र करके, '**ॐ हूं वह्निचैतन्याय नमः।**' का उच्चारण करके अग्निबीज (**रं**)-के साथ स्थापित करे॥ ६—८ $\frac{1}{2}$ ॥

संहिता-मन्त्रसे अभिमन्त्रित, धेनुमुद्राके प्रदर्शनपूर्वक अमृतीकरणकी क्रियासे संस्कृत, अस्त्र-मन्त्रसे सुरक्षित तथा कवच-मन्त्रसे अवगुण्ठित एवं पूजित अग्निको कुण्डके ऊपर प्रदक्षिणा-क्रमसे तीन बार घुमाकर, 'यह भगवान् शिवका बीज है'—ऐसा चिन्तन करके ध्यान करे कि 'वागीश्वरदेवने इस बीजको वागीश्वरीके गर्भमें स्थापित किया है।' इस ध्यानके साथ मन्त्र-साधक दोनों घुटने पृथ्वीपर टेककर नमस्कारपूर्वक उस अग्निको अपने सम्मुख कुण्डमें स्थापित कर दे। तत्पश्चात् जिसके भीतर बीजस्वरूप अग्निका आधान हो गया है, उस कुण्डके नाभिदेशमें कुशोंद्वारा परिसमूहन करे। परिधान-सम्भार, शुद्धि, आचमन एवं नमस्कारपूर्वक गर्भाग्निका पूजन करके उस गर्भज अग्निकी रक्षाके लिये अस्त्र-मन्त्रसे भावनाद्वारा ही वागीश्वरीदेवीके पाणिपल्लवमें कङ्कण (या रक्षासूत्र) बाँधे॥ ९—१३ $\frac{1}{2}$ ॥

सद्योजात-मन्त्रसे गर्भाधानके उद्देश्यसे अग्निका पूजन करके हृदय-मन्त्रसे तीन आहुतियाँ दे। फिर भावनाद्वारा ही तृतीय मासमें होनेवाले पुंसवन-संस्कारकी सिद्धिके लिये वामदेवमन्त्रद्वारा अग्निकी पूजा करके, '**शिरसे स्वाहा।**' बोलकर तीन आहुतियाँ दे। इसके बाद उस अग्निपर जलबिन्दुओंसे छींटा दे। तदनन्तर छठे मासमें होनेवाले सीमन्तोन्नयन-संस्कारकी भावना करके, अघोर-मन्त्रसे अग्निका पूजन करके '**शिखायै वषट्।**' का उच्चारण करते हुए तीन आहुतियाँ

दे तथा शिखा-मन्त्रसे ही मुख आदि अङ्गोंकी कल्पना करे। मुखका उद्घाटन एवं प्रकटीकरण करे। तत्पश्चात् पूर्ववत् दसवें मासमें होनेवाले जातकर्म एवं नरकर्मकी भावनासे तत्पुरुष-मन्त्रद्वारा दर्भ आदिसे अग्निका पूजन एवं प्रज्वलन करके गर्भमलको दूर करनेवाला स्नान करावे तथा ध्यानद्वारा देवीके हाथमें सुवर्ण-बन्धन करके हृदय-मन्त्रसे पूजन करे। फिर सूतककी तत्काल निवृत्तिके लिये अस्त्र-मन्त्रद्वारा अभिमन्त्रित जलसे अभिषेक करे॥ १४—१९ ॥

कुण्डका बाहरकी ओरसे अस्त्र-मन्त्रके उच्चारणपूर्वक कुशोंद्वारा ताडन या मार्जन करे। फिर '**हुम्**' का उच्चारण करके उसे जलसे सींचे। तत्पश्चात् कुण्डके बाहर मेखलाओंपर अस्त्र-मन्त्रसे उत्तर और दक्षिण दिशाओंमें पूर्वाग्र तथा पूर्व और पश्चिम दिशाओंमें उत्तराग्र कुशाओंको बिछावे। उनपर हृदय-मन्त्रसे परिधि-विष्टर (आठों दिशाओंमें आसनविशेष) स्थापित करे। इसके बाद सद्योजातादि पाँच मुख-सम्बन्धी मन्त्रोंसे तथा अस्त्र-मन्त्रसे नालच्छेदनके उद्देश्यसे पाँच समिधाओंके मूलभागको घीमें डुबोकर उन पाँचोंकी आहुति दे। तदनन्तर ब्रह्मा, शंकर, विष्णु और अनन्तका दूर्वा और अक्षत आदिसे पूजन करे। पूजनके समय उनके नामके अन्तमें '**नमः**' जोड़कर उच्चारण करे। यथा—'**ब्रह्मणे नमः।**' '**शंकराय नमः।**' '**विष्णवे नमः।**' '**अनन्ताय नमः।**' फिर कुण्डके चारों ओर बिछे हुए पूर्वोक्त आठ विष्टरोंपर पूर्वादि दिशाओंमें क्रमशः इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर और ईशानका आवाहन और स्थापन करके यह भावना करे कि उन सबका मुख अग्निदेवकी ओर है। फिर उन सबकी अपनी-अपनी दिशामें पूजा करे। पूजाके समय उनके नाम मन्त्रके अन्तमें '**नमः**' जोड़कर बोले। यथा—'**इन्द्राय नमः।**' इत्यादि॥ २०—२३ $\frac{1}{2}$ ॥

इसके बाद उन सब देवताओंको भगवान् शिवकी यह आज्ञा सुनावे—'देवताओ! तुम सब लोग विघ्नसमूहका निवारण करके इस बालक (अग्नि)-का पालन करो।' तदनन्तर ऊर्ध्वमुख स्रुक् और स्रुवको लेकर उन्हें बारी-बारीसे तीन बार अग्निमें तपावे। फिर कुशके मूल, मध्य और अग्रभागसे उनका स्पर्श करावे। कुशसे स्पर्श कराये हुए स्थानोंमें क्रमशः आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्व—इन तीनोंका न्यास करे। न्यास-वाक्य इस प्रकार हैं—'**ॐ हां आत्मतत्त्वाय नमः।**' '**ॐ हीं विद्यातत्त्वाय नमः।**' '**ॐ हूँ शिवतत्त्वाय नमः।**'॥ २४—२६ $\frac{1}{2}$ ॥

तत्पश्चात् स्रुक्में '**नमः**' के साथ शक्तिका और स्रुवमें शिवका न्यास करे। यथा—'**शक्त्यै नमः।**' '**शिवाय नमः।**' फिर तीन आवृत्तिमें फैले हुए रक्षासूत्रसे स्रुक् और स्रुव दोनोंके ग्रीवाभागको आवेष्टित करे। इसके बाद पुष्पादिसे उनका पूजन करके अपने दाहिने भागमें कुशोंके ऊपर उन्हें रख दे। फिर गायका घी लेकर, उसे अच्छी तरह देख-भालकर शुद्ध कर ले और अपने स्वरूपके ब्रह्ममय होनेकी भावना करके, उस घीके पात्रको हाथमें लेकर हृदय-मन्त्रसे कुण्डके ऊपर अग्निकोणमें घुमाकर, पुनः अपने स्वरूपके विष्णुमय होनेकी भावना करे। तत्पश्चात् घृतको ईशानकोणमें रखकर कुशाग्रभागसे घी निकाले और '**शिरसे स्वाहा।**' एवं '**विष्णवे स्वाहा।**' बोलकर भगवान् विष्णुके लिये उस घृतबिन्दुकी आहुति दे। अपने स्वरूपके रुद्रमय होनेकी भावना करके, कुण्डके नाभिस्थानमें घृतको रखकर उसका आप्लावन करे॥ २७—३१ $\frac{1}{2}$ ॥

(फैलाये हुए अँगूठेसे लेकर तर्जनीतककी

लंबाईको 'प्रादेश' कहते हैं।) प्रादेश बराबर लंबे दो कुशोंको अङ्गुष्ठ तथा अनामिका—इन दो अँगुलियोंसे पकड़कर उनके द्वारा अस्त्र (**फट्**)-के उच्चारणपूर्वक अग्निके सम्मुख घीको प्रवाहित करे। इसी प्रकार हृदय-मन्त्र (**नमः**)-का उच्चारण करके अपने सम्मुख भी घृतका आप्लावन करे। '**नमः**' के उच्चारणपूर्वक हाथमें लिये हुए कुशके दग्ध हो जानेपर उसे शस्त्र-क्षेप (फट्के उच्चारण)-के द्वारा पवित्र करे। एक जलते हुए कुशसे उसकी नीराजना (आरती) करके फिर दूसरे कुशसे उसे जलावे। उस जले हुए कुशको अस्त्र-मन्त्रसे पुनः अग्निमें ही डाल दे। तत्पश्चात् घृतमें एक प्रादेश बराबर कुश छोड़े, जिसमें गाँठ लगायी गयी हो। फिर घीमें दो पक्षों तथा इडा आदि तीन नाड़ियोंकी भावना करे। इडा आदि तीनों भागोंसे क्रमशः स्रुवद्वारा घी लेकर उसका होम करे। '**स्वा**' का उच्चारण करके स्रुवावस्थित घीको अग्निमें डाले और '**हा**' का उच्चारण करके हुतशेष घीको उसे डालनेके लिये रखे हुए पात्रविशेषमें छोड़ दे। अर्थात् '**स्वाहा**' बोलकर क्रमशः दोनों कार्य (अग्निमें हवन और शेषका पात्रविशेषमें प्रक्षेप) करे॥ ३२—३६॥

प्रथम इडाभागसे घी लेकर '**ॐ हामग्नये स्वाहा।**' इस मन्त्रका उच्चारण करके घीका अग्निमें होम करे और हुतशेषका पात्रविशेषमें प्रक्षेप करे। इसी प्रकार दूसरे पिङ्गलाभागसे घी लेकर '**ॐ हां सोमाय स्वाहा।**' बोलकर घीमें आहुति दे और शेषका पात्रविशेषमें प्रक्षेप करे। फिर 'सुषुम्णा' नामक तृतीय भागसे घी लेकर '**ॐ हामग्नीषोमाभ्यां स्वाहा।**' बोलकर स्रुवद्वारा घी अग्निमें डाले और शेषका पात्रविशेषमें प्रक्षेपण करे। तत्पश्चात् बालक अग्निके मुखमें नेत्रत्रयके स्थानविशेषमें तीनों नेत्रोंका उद्घाटन करनेके लिये घृतपूर्ण स्रुवद्वारा निम्नाङ्कित मन्त्र बोलकर अग्निमें चौथी आहुति दे—'**ॐ हामग्नये स्विष्टकृते स्वाहा**'॥ ३७—३९॥

तत्पश्चात् (पहले अध्यायमें बताये अनुसार) '**ॐ हां हृदयाय नमः।**' इत्यादि छहों अङ्ग-सम्बन्धी मन्त्रोंद्वारा घीको अभिमन्त्रित करके धेनुमुद्राद्वारा जगावे। फिर कवच-मन्त्र (**हुम्**)-से अवगुण्ठित करके शरमन्त्र (**फट्**)-से उसकी रक्षा करे। इसके बाद हृदय-मन्त्रसे घृतबिन्दुका उत्क्षेपण करके उसका अभ्युक्षण एवं शोधन करे। साथ ही शिवस्वरूप अग्निके पाँच मुखोंके लिये अभिघार-होम, अनुसंधान-होम तथा मुखोंके एकीकरण-सम्बन्धी होम करे। अभिघार-होमकी विधि यों है—'**ॐ हां सद्योजाताय स्वाहा। ॐ हां वामदेवाय स्वाहा। ॐ हां अघोराय स्वाहा। ॐ हां तत्पुरुषाय स्वाहा। ॐ हां ईशानाय स्वाहा।**'—इन पाँच मन्त्रोंद्वारा सद्योजातादि पाँच मुखोंके लिये अलग-अलग क्रमशः घीकी एक-एक आहुति देकर उन मुखोंको अभिघारित-घीसे आप्लावित करे। यही मुखाभिघार-सम्बन्धी होम है। तत्पश्चात् दो-दो मुखोंके लिये एक साथ आहुति दे; यही मुखानुसंधान होम है। यह होम निम्नाङ्कित मन्त्रोंसे सम्पन्न करे—'**ॐ हां सद्योजातवामदेवाभ्यां स्वाहा। ॐ हां वामदेवाघोराभ्यां स्वाहा। ॐ हां अघोरतत्पुरुषाभ्यां स्वाहा। ॐ हां तत्पुरुषेशानाभ्यां स्वाहा।**'॥ ४०—४४ १/२॥

तदनन्तर कुण्डमें अग्निकोणसे वायव्यकोणतक तथा नैर्ऋत्यकोणसे ईशानकोणतक घीकी अविच्छिन्न धाराद्वारा आहुति देकर उक्त पाँचों मुखोंकी एकता करे। यथा—'**ॐ हां सद्योजातवामदेवाघोर-तत्पुरुषेशानेभ्यः स्वाहा।**' इस मन्त्रसे पाँचों मुखोंके लिये एक ही आहुति

देनेसे उन सबका एकीकरण होता है। इस प्रकार इष्टमुखमें सभी मुखोंका अन्तर्भाव होता है, अतः वह एक ही मुख उन सभी मुखोंका आकार धारण करता है—उन सबके साथ उसकी एकता हो जाती है। इसके बाद कुण्डके ईशानकोणमें अग्निकी पूजा करके, अस्त्र-मन्त्रसे तीन आहुतियाँ देकर अग्निका नामकरण करे—"हे अग्निदेव! तुम सब प्रकारसे शिव हो, तुम्हारा नाम 'शिव' है।" इस प्रकार नामकरण करके नमस्कारपूर्वक, पूजित हुए माता-पिता वागीश्वरी एवं वागीश्वर अथवा शक्ति एवं शिवका अग्निमें विसर्जन करके उनके लिये विधिपूरक पूर्णाहुति दे। मूल-मन्त्रके अन्तमें '**वौषट्**' पद जोड़कर (यथा—**ॐ नमः शिवाय वौषट्।**—ऐसा कहकर) शिव और शक्तिके लिये विधिपूर्वक पूर्णाहुति देनी चाहिये। तत्पश्चात् हृदय-कमलमें अङ्ग और सेनासहित परम तेजस्वी शिवका पूर्ववत् आवाहन करके पूजन करे और उनकी आज्ञा लेकर उन्हें पूर्णतः तृप्त करे॥ ४५—४९ $\frac{१}{२}$ ॥

यज्ञाग्नि तथा शिवका अपने साथ नाडीसंधान करके अपनी शक्तिके अनुसार मूल-मन्त्रसे अङ्गोंसहित दशांश होम करे। घी, दूध और मधुका एक-एक 'कर्ष' (सोलह माशा) होम करना चाहिये। दहीकी आहुतिकी मात्रा एक 'सितुही' बतायी गयी है। दूधकी आहुतिका मान एक 'पसर' है। सभी भक्ष्य पदार्थों तथा लावाकी आहुतिकी मात्रा एक-एक 'मुट्ठी' है। मूलके तीन टुकड़ोंकी एक आहुति दी जाती है। फलकी आहुति उसके अपने ही प्रमाणके अनुसार दी जाती है, अर्थात् एक आहुतिमें छोटा हो या बड़ा एक फल देना चाहिये। उसे खण्डित नहीं करना चाहिये। अन्नकी आहुतिका मान आधा ग्रास है। जो सूक्ष्म किसमिस आदि वस्तुएँ हैं, उन्हें एक बार पाँचकी संख्यामें लेकर होम करना चाहिये। ईंखकी आहुतिका मान एक 'पोर' है। लताओंकी आहुतिका मान दो-दो अङ्गुलका टुकड़ा है। पुष्प और पत्रकी आहुति उनके अपने ही मानसे दी जाती है, अर्थात् एक आहुतिमें पूरा एक फूल और पूरा एक पत्र देना चाहिये। समिधाओंकी आहुतिका मान दस अङ्गुल है॥ ५०—५४॥

कपूर, चन्दन, केसर और कस्तूरीसे बने हुए दक्ष-कर्दम (अनुलेपविशेष)-की मात्रा एक कलाय (मटर या केराव)-के बराबर है। गुग्गुलकी मात्रा बेरके बीजके बराबर होनी चाहिये। कंदोंके आठवें भागसे एक आहुति दी जाती है। इस प्रकार विचार करके विधिपूर्वक उत्तम होम करे। इस तरह प्रणव तथा बीज-पदोंसे युक्त मन्त्रोंद्वारा होम-कर्म सम्पन्न करना चाहिये॥ ५५-५६ ॥

तदनन्तर घीसे भरे हुए स्रुक्के ऊपर अधोमुख स्रुवको रखकर स्रुक्के अग्रभागमें फूल रख दे। फिर बायें और दायें हाथसे उन दोनोंको शङ्खकी मुद्रासे पकड़े। इसके बाद शरीरके ऊपरी भागको उन्नत रखते हुए उठकर खड़ा हो जाय। पैरोंको समभावसे रखे। स्रुक् और स्रुव दोनोंके मूलभागको अपनी नाभिमें टिका दे। नेत्रोंको स्रुक्के अग्र-भागपर ही स्थिरतापूर्वक जमाये रखे। ब्रह्मा आदि कारणोंका त्याग करते हुए भावनाद्वारा सुषुम्णा नाड़ीके मार्गसे निकलकर ऊपर उठे। स्रुक्-स्रुवके मूलभागको नाभिसे ऊपर उठाकर बायें स्तनके पास ले आवे। अपने तन-मनसे आलस्यको दूर रखे तथा (**ॐ नमः शिवाय वौषट्।** —इस प्रकार) मूल-मन्त्रका वौषट्-पर्यन्त अस्पष्ट (मन्द स्वरसे) उच्चारण करे और उस घीको जौकी-सी पतली धाराके साथ अग्निमें होम दे॥ ५७—६० $\frac{१}{२}$ ॥

इसके बाद आचमन, चन्दन और ताम्बूल आदि देकर भक्तिभावसे भगवान् शिवके ऐश्वर्यकी वन्दना करते हुए उनके चरणोंमें उत्तम (साष्टाङ्ग) प्रणाम करे। फिर अग्निकी पूजा करके '**ॐ हः अस्त्राय फट्।**' के उच्चारणपूर्वक संहारमुद्राके

द्वारा शंवरोंका आहरण करके इष्टदेवसे 'भगवन्! मेरे अपराधको क्षमा करें'—ऐसा कहकर हृदय-मन्त्रसे पूरक प्राणायामके द्वारा उन तेजस्वी परिधियोंको बड़ी श्रद्धाके साथ अपने हृदयकमलमें स्थापित करे॥ ६१—६३ ½ ॥

सम्पूर्ण पाक (रसोई)-से अग्रभाग निकालकर कुण्डके समीप अग्निकोणमें दो मण्डल बनाकर एकमें अन्तर्बलि दे और दूसरेमें बाह्य-बलि। प्रथम मण्डलके भीतर पूर्व दिशामें '**ॐ हां रुद्रेभ्यः स्वाहा।**'—इस मन्त्रसे रुद्रोंके लिये बलि (उपहार) अर्पित करे। दक्षिण दिशामें '**ॐ हां मातृभ्यः स्वाहा।**' कहकर मातृकाओंके लिये, पश्चिम दिशामें '**ॐ हां गणेभ्यः स्वाहा तेभ्योऽयं बलिरस्तु।**' ऐसा कहकर गणोंके लिये, उत्तर दिशामें '**ॐ हां यक्षेभ्यः स्वाहा तेभ्योऽयं बलिरस्तु।**' कहकर यक्षोंके लिये, ईशानकोणमें '**ॐ हां ग्रहेभ्यः स्वाहा तेभ्योऽयं बलिरस्तु।**' ऐसा कहकर ग्रहोंके लिये, अग्निकोणमें '**ॐ हां असुरेभ्यः स्वाहा तेभ्योऽयं बलिरस्तु।**' ऐसा कहकर असुरोंके लिये, नैर्ऋत्यकोणमें '**ॐ हां रक्षोभ्यः स्वाहा तेभ्योऽयं बलिरस्तु।**' ऐसा कहकर राक्षसोंके लिये, वायव्यकोणमें '**ॐ हां नागेभ्यः स्वाहा तेभ्योऽयं बलिरस्तु।**' ऐसा कहकर नागोंके लिये तथा मण्डलके मध्यभागमें '**ॐ हां नक्षत्रेभ्यः स्वाहा तेभ्योऽयं बलिरस्तु**' ऐसा कहकर नक्षत्रोंके लिये बलि अर्पित करे॥ ६४—६७ ॥

इसी तरह '**ॐ हां राशिभ्यः स्वाहा तेभ्योऽयं बलिरस्तु।**' ऐसा कहकर अग्निकोणमें राशियोंके लिये, '**ॐ हां विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा तेभ्योऽयं बलिरस्तु।**' ऐसा कहकर नैर्ऋत्यकोणमें विश्वेदेवोंके लिये तथा '**ॐ हां क्षेत्रपालाय स्वाहा तस्मा अयं बलिरस्तु।**' ऐसा कहकर पश्चिममें क्षेत्रपालको बलि दे॥ ६८ ॥

तदनन्तर दूसरे बाह्य-मण्डलमें पूर्व आदि दिशाओंके क्रमसे इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, जलेश्वर वरुण, वायु, धनरक्षक कुबेर तथा ईशानके लिये बलि समर्पित करे। फिर ईशानकोणमें '**ॐ ब्रह्मणे नमः स्वाहा।**' कहकर ब्रह्माके लिये तथा नैर्ऋत्यकोणमें '**ॐ विष्णवे नमः स्वाहा।**' कहकर भगवान् विष्णुके लिये बलि दे। मण्डलसे बाहर काक आदिके लिये भी बलि देनी चाहिये। आन्तर और बाह्य—दोनों बलियोंमें उपयुक्त होनेवाले मन्त्रोंको संहारमुद्राके द्वारा अपने-आपमें समेट ले॥ ६९—७१ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'शिवपूजाके अङ्गभूत होमकी विधिका निरूपण' नामक पचहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७५ ॥

छिहत्तरवाँ अध्याय

चण्डकी पूजाका वर्णन

महादेवजी कहते हैं—स्कन्द! तदनन्तर शिवविग्रहके निकट जाकर साधक इस प्रकार प्रार्थना करे—'भगवन्! मेरे द्वारा जो पूजन और होम आदि कार्य सम्पन्न हुआ है, उसे तथा उसके पुण्यफलको आप ग्रहण करें।' ऐसा कहकर, स्थिरचित्त हो 'उद्भव' नामक मुद्रा दिखाकर अर्घ्यजलसे '**नमः**' सहित पूर्वोक्त मूल-मन्त्र पढ़ते हुए इष्टदेवको अर्घ्य निवेदन करे। तत्पश्चात् पूर्ववत् पूजन तथा स्तोत्रोंद्वारा स्तवन करके प्रणाम करे तथा पराङ्मुख अर्घ्य देकर कहे—'प्रभो! मेरे अपराधोंको क्षमा करें।' ऐसा कहकर दिव्य नाराचमुद्रा दिखा '**अस्त्राय फट्**' का उच्चारण करके समस्त संग्रहका अपने-आपमें उपसंहार करनेके पश्चात् शिवलिङ्गको मूर्ति-सम्बन्धी मन्त्रसे

अभिमन्त्रित करे। तदनन्तर वेदीपर इष्टदेवताकी पूजा कर लेनेपर मन्त्रका अपने-आपमें उपसंहार करके पूर्वोक्त विधिसे चण्डका पूजन करे॥ १—५॥

'**ॐ चण्डेशानाय नमः।**' से चण्डदेवताको नमस्कार करे। फिर मण्डलके मध्यभागमें '**ॐ चण्डमूर्तये नमः।**' से चण्डकी पूजा करे। उस मूर्तिमें '**ॐ धूलिचण्डेश्वराय हूं फट् स्वाहा।**' बोलकर चण्डेश्वरका आवाहन करे। इसके बाद अङ्ग-पूजा करे। यथा—'**ॐ चण्डहृदयाय हूं फट्।**' इस मन्त्रसे हृदयकी, '**ॐ चण्डशिरसे हूं फट्।**' इस मन्त्रसे सिरकी, '**ॐ चण्डशिखायै हूं फट्।**' इस मन्त्रसे शिखाकी, '**ॐ चण्डायुष्कवचाय हूं फट्।**' से कवचकी तथा '**ॐ चण्डास्त्राय हूं फट्।**' से अस्त्रकी पूजा करे। इसके बाद रुद्राग्निसे उत्पन्न हुए चण्ड देवताका इस प्रकार ध्यान करे॥ ६-७ $\frac{१}{२}$ ॥

'चण्डदेव अपने दो हाथोंमें शूल और टङ्क धारण करते हैं। उनका रंग साँवला है। उनके तीसरे हाथमें अक्षसूत्र और चौथेमें कमण्डलु है। वे टङ्ककी-सी आकृतिवाले या अर्धचन्द्राकार मण्डलमें स्थित हैं। उनके चार मुख हैं।' इस प्रकार ध्यान करके उनका पूजन करना चाहिये। इसके बाद यथाशक्ति जप करे। हवनकी अङ्गभूत सामग्रीका संचय करके उसके द्वारा जपका दशांश होम करे। भगवान्पर चढ़े हुए या उन्हें अर्पित किये हुए गो, भूमि, सुवर्ण, वस्त्र आदि तथा मणि-सुवर्ण आदिके आभूषणको छोड़कर शेष सारा निर्माल्य चण्डेश्वरको समर्पित कर दे। उस समय इस प्रकार कहे—'हे चण्डेश्वर! भगवान् शिवकी आज्ञासे यह लेह्य, चोष्य आदि उत्तम अन्न, ताम्बूल, पुष्पमाला एवं अनुलेपन आदि निर्माल्यस्वरूप भोजन तुम्हें समर्पित है। चण्ड! यह सारा पूजन-सम्बन्धी कर्मकाण्ड मैंने तुम्हारी आज्ञासे किया है। इसमें मोहवश जो न्यूनता या अधिकता कर दी गयी हो, वह सदा मेरे लिये पूर्ण हो जाय—न्यूनातिरिक्तताका दोष मिट जाय॥ ८—१२॥

इस तरह निवेदन करके, उन देवेश्वरका स्मरण करते हुए उन्हें अर्घ्य देकर संहार-मूर्ति-मन्त्रको पढ़कर संहारमुद्रा दिखाकर धीरे-धीरे पूरक प्राणायाम-पूर्वक मूल-मन्त्रका उच्चारण करके सब मन्त्रोंका अपने-आपमें उपसंहार कर ले। निर्माल्य जहाँसे हटाया गया हो, उस स्थानको गोबर और जलसे लीप दे। फिर अर्घ्य आदिका प्रोक्षण करके देवताका विसर्जन करनेके पश्चात् आचमन करके अन्य आवश्यक कार्य करे॥ १३—१५॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'चण्डकी पूजाका वर्णन' नामक छिहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७६॥

सतहत्तरवाँ अध्याय

घरकी कपिला गाय, चूल्हा, चक्की, ओखली, मूसल, झाड़ू और खंभे आदिका पूजन एवं प्राणाग्निहोत्रकी विधि

भगवान् महेश्वर कहते हैं—स्कन्द! अब कपिलापूजनके विषयमें कहूँगा। निम्नाङ्कित मन्त्रोंसे गोमाताका पूजन करे—'**ॐ कपिले नन्दे नमः। ॐ कपिले भद्रिके नमः। ॐ कपिले सुशीले नमः। ॐ कपिले सुरभिप्रभे नमः। ॐ कपिले सुमनसे नमः। ॐ कपिले भुक्तिमुक्तिप्रदे नमः।**'* इस प्रकार गोमातासे प्रार्थना करे—'देवताओंको अमृत प्रदान करनेवाली, वरदायिनी, जगन्माता

* इन मन्त्रोंका भावार्थ इस प्रकार है—आनन्ददायिनी, कल्याणकारिणी, उत्तम स्वभाववाली, सुरभिकी-सी मनोहर कान्तिवाली, शुद्ध हृदयवाली तथा भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली कपिले! तुम्हें बार-बार नमस्कार है।

सौरभेयि! यह ग्रास ग्रहण करो और मुझे मनोवाञ्छित वस्तु दो। कपिले! ब्रह्मर्षि वसिष्ठ तथा बुद्धिमान् विश्वामित्रने भी तुम्हारी वन्दना की है। मैंने जो दुष्कर्म किया हो, मेरा वह सारा पाप तुम हर लो। गौएँ सदा मेरे आगे रहें, गौएँ मेरे पीछे भी रहें, गौएँ मेरे हृदयमें निवास करें और मैं सदा गौओंके बीच निवास करूँ। गोमातः! मेरे दिये हुए इस ग्रासको ग्रहण करो।'

गोमाताके पास इस प्रकार बारंबार प्रार्थना करनेवाला पुरुष निर्मल (पापरहित) एवं शिव-स्वरूप हो जाता है। विद्या पढ़नेवाले मनुष्यको चाहिये कि प्रतिदिन अपने विद्या-ग्रन्थोंका पूजन करके गुरुके चरणोंमें प्रणाम करे। गृहस्थ पुरुष नित्य मध्याह्नकालमें स्नान करके अष्टपुष्पिका (आठ फूलोंवाली) पूजाकी विधिसे भगवान् शिवका पूजन करे। योगपीठ, उसपर स्थापित शिवकी मूर्ति तथा भगवान् शिवके जानु, पैर, हाथ, उर, सिर, वाक्, दृष्टि और बुद्धि—इन आठ अङ्गोंकी पूजा ही 'अष्टपुष्पिका पूजा' कहलाती है (आठ अङ्ग ही आठ फूल हैं)। मध्याह्नकालमें सुन्दर रीतिसे लिपे-पुते हुए रसोईघरमें पका-पकाया भोजन ले आवे। फिर—

'त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्॥' वौषट्॥

(शु० यजु० ३।६०)

इस प्रकार अन्तमें 'वौषट्' पदसे युक्त मृत्युञ्जय-मन्त्रका सात बार जप करके कुशयुक्त शङ्खमें रखे हुए जलकी बूँदोंसे उस अन्नको सींचे। तत्पश्चात् सारी रसोईसे अग्राशन निकालकर भगवान् शिवको निवेदन करे॥ १—९॥

इसके बाद आधे अन्नको चुल्लिका-होमका कार्य सम्पन्न करनेके लिये रखे। विधिपूर्वक चूल्हेकी शुद्धि करके उसकी आगमें पूरक प्राणायामपूर्वक एक आहुति दे। फिर नाभिगत अग्नि—जठरानलके उद्देश्यसे एक आहुति देकर रेचक प्राणायामपूर्वक भीतरसे निकलती हुई वायुके साथ अग्निबीज (रं)-को लेकर क्रमशः 'क' आदि अक्षरोंके उच्चारणस्थान कण्ठ आदिके मार्गसे बाहर करके 'तुम शिवस्वरूप अग्नि हो' ऐसा चिन्तन करते हुए उसे चूल्हेकी आगमें भावनाद्वारा समाविष्ट कर दे। इसके बाद चूल्हेकी पूर्वादि दिशाओंमें '**ॐ हां अग्नये नमः। ॐ हां सोमाय नमः। ॐ हां सूर्याय नमः। ॐ हां बृहस्पतये नमः। ॐ हां प्रजापतये नमः। ॐ हां सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः। ॐ हां सर्वविश्वेभ्यो नमः। ॐ हां अग्नये स्विष्टकृते नमः।**'—इन आठ मन्त्रोंद्वारा अग्नि आदि आठ देवताओंकी पूजा करे। फिर इन मन्त्रोंके अन्तमें '**स्वाहा**' पद जोड़कर एक-एक आहुति दे और अपराधोंके लिये क्षमा माँगकर उन सबका विसर्जन कर दे॥ १०—१४॥

चूल्हेके दाहिने बगलमें '**धर्माय नमः।**' इस मन्त्रसे धर्मकी तथा बायें बगलमें '**अधर्माय नमः।**' इस मन्त्रसे अधर्मकी पूजा करे। फिर काँजी आदि रखनेके जो पात्र हों, उनमें तथा जलके आश्रयभूत घट आदिमें '**रसपरिवर्तमानाय वरुणाय नमः।**' इस मन्त्रसे वरुणकी पूजा करे। रसोईघरके द्वारपर '**विघ्नराजाय नमः।**' से विघ्नराजकी तथा '**सुभगायै नमः।**' से चक्कीमें सुभगाकी पूजा करे॥ १५-१६॥

ओखलीमें '**ॐ रौद्रिके गिरिके नमः।**' इस मन्त्रसे रौद्रिका तथा गिरिकाकी पूजा करनी चाहिये। मूसलमें '**बलप्रियायायुधाय नमः।**' इस मन्त्रसे बलभद्रजीके आयुधका पूजन करे। झाड़ूमें भी उक्त दो देवियों (रौद्रिका और गिरिका)-की, शय्यामें कामदेवकी तथा मझले खम्भेमें स्कन्दकी पूजा करे। बेटा स्कन्द! तत्पश्चात्

व्रतका पालन करनेवाला साधक एवं पुरोहित वास्तु-देवताको बलि देकर सोनेके थालमें अथवा पुरइनके पत्ते आदिमें मौनभावसे भोजन करे। भोजनपात्रके रूपमें उपयोग करनेके लिये बरगद, पीपल, मदार, रेंड़, साखू और भिलावेके पत्तोंको त्याग देना चाहिये—इन्हें काममें नहीं लाना चाहिये। पहले आचमन करके, 'प्रणवयुक्त प्राण' आदि शब्दोंके अन्तमें '**स्वाहा**' बोलकर अन्नकी पाँच आहुतियाँ देकर जठरानलको उद्दीप्त करनेके पश्चात् भोजन करना चाहिये। इसका क्रम यों है—नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय—ये पाँच उपवायु हैं। '**एतेभ्यो नागादिभ्य उपवायुभ्यः स्वाहा।**' इस मन्त्रसे आचमन करके, भात आदि भोजन निवेदन करके, अन्तमें फिर आचमन करे और कहे—'**ॐ अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा।**' इसके बाद पाँच प्राणोंको एक-एक ग्रासकी आहुतियाँ अपने मुखमें दे—(१) **ॐ प्राणाय स्वाहा।** (२) **ॐ अपानाय स्वाहा।** (३) **ॐ व्यानाय स्वाहा।** (४) **ॐ समानाय स्वाहा।** (५) **ॐ उदानाय स्वाहा।*** तत्पश्चात् पूर्ण भोजन करके पुनः चूल्लूभर पानीसे आचमन करे और कहे—'**ॐ अमृतापिधानमसि स्वाहा।**' यह आचमन शरीरके भीतर पहुँचे हुए अन्नको आच्छादित करने या पचानेके लिये है॥ १७—२४॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'कपिला-पूजन आदिकी विधिका वर्णन' नामक सतहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७७॥

अठहत्तरवाँ अध्याय

पवित्राधिवासनकी विधि

भगवान् महेश्वर कहते हैं—स्कन्द! अब मैं पवित्रारोहणका वर्णन करूँगा, जो क्रिया, योग तथा पूजा आदिमें न्यूनताकी पूर्ति करनेवाला है। जो पवित्रारोहण कर्म नित्य किया जाता है, उसे 'नित्य' कहा गया है तथा दूसरा, जो विशेष निमित्तको लेकर किया जाता है, उसे 'नैमित्तिक' कहते हैं। आषाढ़ मासकी आदि-चतुर्दशीको तथा श्रावण और भाद्रपद मासोंकी शुक्ल-कृष्ण उभय-पक्षीय चतुर्दशी एवं अष्टमी तिथियोंमें पवित्रारोहण या पवित्रारोपण कर्म करना चाहिये। अथवा आषाढ़ मासकी पूर्णिमासे लेकर कार्तिक मासकी पूर्णिमातक प्रतिपदा आदि तिथियोंको विभिन्न देवताओंके लिये पवित्रारोहण करना चाहिये। प्रतिपदाको अग्निके लिये, द्वितीयाको ब्रह्माजीके लिये, तृतीयाको पार्वतीके लिये, चतुर्थीको गणेशके लिये, पञ्चमीको नागराज अनन्तके लिये, षष्ठीको स्कन्दके अर्थात् तुम्हारे लिये, सप्तमीको सूर्यके लिये, अष्टमीको शूलपाणि अर्थात् मेरे लिये, नवमीको दुर्गाके लिये, दशमीको यमराजके लिये, एकादशीको इन्द्रके लिये, द्वादशीको भगवान् गोविन्दके लिये, त्रयोदशीको कामदेवके लिये, चतुर्दशीको मुझ शिवके लिये तथा पूर्णिमाको अमृतभोजी देवताओंके लिये पवित्रारोपण कर्म करना चाहिये॥ १—३ $\frac{1}{2}$॥

सत्ययुग आदि तीन युगोंमें क्रमशः सोने, चाँदी और ताँबेके पवित्रक अर्पित किये जाते हैं, किंतु कलियुगमें कपासके सूत, रेशमी सूत अथवा कमल आदिके सूतका पवित्रक अर्पित

* अग्निपुराणके मूलमें व्यान-वायुकी आहुति अन्तमें बतायी गयी है; परंतु गृह्यसूत्रोंमें इसका तीसरा स्थान है। इसलिये वही क्रम अर्थमें रखा गया है।

करनेका विधान है। प्रणव, चन्द्रमा, अग्नि, ब्रह्मा, नागगण, स्कन्द, श्रीहरि, सर्वेश्वर तथा सम्पूर्ण देवता—ये क्रमशः पवित्रकके नौ तन्तुओंके देवता हैं। उत्तम श्रेणीका पवित्रक एक सौ आठ सूत्रोंसे बनता है। मध्यम श्रेणीका चौवन तथा निम्न श्रेणीका सत्ताईस सूत्रोंसे निर्मित होता है। अथवा इक्यासी, पचास या अड़तीस सूत्रोंसे उसका निर्माण करना चाहिये। जो पवित्रक जितने नवसूत्रीसे बनाया जाय, उसमें बीचमें उतनी ही गाँठें लगनी चाहिये। पवित्रकोंका व्यास-मान या विस्तार बारह अङ्गुल, आठ अङ्गुल अथवा चार अङ्गुलका होना चाहिये। यदि शिवलिङ्गके लिये पवित्रक बनाना हो तो उस लिङ्गके बराबर ही बनाना चाहिये॥ ४—८॥

(इस प्रकार तीन तरहके पवित्रक बताये गये।) इसी तरह एक चौथे प्रकारका भी पवित्रक बनता है, जो सभी देवताओंके उपयोगमें आता है। वह उनकी पिण्डी या मूर्तिके बराबरका बनाया जाना चाहिये। इस तरह बने हुए पवित्रकको 'गङ्गावतारक' कहते हैं। इसे 'सद्योजात'[1] मन्त्रके द्वारा भलीभाँति धोना चाहिये। इसमें 'वामदेव'[2] मन्त्रसे ग्रन्थि लगावे। 'अघोर'[3] मन्त्रसे इसकी शुद्धि करे तथा 'तत्पुरुष'[4] मन्त्रसे रक्तचन्दन एवं रोलीद्वारा इसको रँगे। अथवा कस्तूरी, गोरोचना, कपूर, हल्दी और गेरू आदिसे मिश्रित रंगके द्वारा पवित्रक मात्रको रँगना चाहिये। सामान्यतः पवित्रकमें दस गाँठें लगानी चाहिये अथवा तन्तुओंकी संख्याके अनुसार उसमें गाँठें लगावे। एक गाँठसे दूसरी गाँठमें एक, दो या चार अङ्गुलका अन्तर रखे। अन्तर उतना ही रखना चाहिये, जिससे उसकी शोभा बनी रहे। प्रकृति (क्रिया), पौरुषी, वीरा, अपराजिता, जया, विजया, अजिता, सदाशिवा, मनोन्मनी तथा सर्वतोमुखी—ये दस ग्रन्थियोंकी अधिष्ठात्री देवियाँ हैं। अथवा दससे अधिक भी सुन्दर गाँठें लगानी चाहिये। पवित्रकके चन्द्रमण्डल, अग्निमण्डल तथा सूर्य-मण्डलसे युक्त होनेकी भावना करके, उसे साक्षात् भगवान् शिवके तुल्य मानकर हृदयमें धारण करे—मन-ही-मन उसके दिव्य स्वरूपका चिन्तन करे। शिवरूपसे भावित अपने स्वरूपको, पुस्तकको तथा गुरुगणको एक-एक पवित्रक अर्पित करे॥ ९—१४॥

इसी प्रकार द्वारपाल, दिक्पाल और कलश आदिपर भी एक-एक पवित्रक चढ़ाना चाहिये। शिवलिङ्गोंके लिये एक हाथसे लेकर नौ हाथतकका पवित्रक होता है। एक हाथवाले पवित्रकमें अट्ठाईस गाँठें होती हैं। फिर क्रमशः दस-दस गाँठें बढ़ती जाती हैं। इस तरह नौ हाथवाले पवित्रकमें एक सौ आठ गाँठें होती हैं। ये ग्रन्थियाँ क्रमशः एक या दो-दो अङ्गुलके अन्तरपर रहती हैं। इनका मान भी लिङ्गके विस्तारके अनुरूप हुआ करता है। जिस दिन पवित्रारोपण करना हो, उससे एक दिन पूर्व अर्थात् सप्तमी या त्रयोदशी तिथिको उपासक नित्यकर्म करके पवित्र हो सायंकालमें पुष्प और वस्त्र आदिसे याग-मन्दिर (पूजा-मण्डप)-को सजावे। नैमित्तिकी संध्योपासना करके, विशेषरूपसे तर्पण-कर्मका सम्पादन करनेके पश्चात् पूजाके लिये निश्चित किये हुए पवित्र भूभागमें सूर्यदेवका पूजन करे॥ १५—१८$\frac{१}{२}$॥

आचार्यको चाहिये कि वह आचमन एवं सकलीकरणकी क्रिया करके प्रणवके उच्चारणपूर्वक अर्घ्यपात्र हाथमें लिये अस्त्र-मन्त्र (**फट्**) बोलकर पूर्वादि दिशाओंके क्रमसे सम्पूर्ण द्वारोंका प्रोक्षण

१—४. 'सद्योजात' आदि पाँच मूर्तियोंके मन्त्र पचहत्तरवें अध्यायकी टिप्पणीमें दिये गये हैं।

करके उनका पूजन करे। **'हां शान्तिकलाद्वाराय नमः।' 'हां विद्याकलाद्वाराय नमः।' 'हां निवृत्तिकलाद्वाराय नमः।' 'हां प्रतिष्ठाकलाद्वाराय नमः।'**—इन मन्त्रोंसे पूर्वादि चारों द्वारोंका पूजन करना चाहिये। प्रत्येक द्वारकी दक्षिण और वाम शाखाओंपर दो-दो द्वारपालोंका पूजन करे। पूर्वमें **'नन्दिने नमः।' 'महाकालाय नमः।'**—इन मन्त्रोंसे नन्दी और महाकालका, दक्षिणमें **'भृङ्गिणे नमः।' 'गणाय नमः।'**—इन मन्त्रोंसे भृङ्गी और गणका, पश्चिममें **'वृषभाय नमः।' 'स्कन्दाय नमः।'**—इन मन्त्रोंसे नन्दिकेश्वर वृषभ तथा स्कन्दका तथा उत्तर द्वारमें **'देव्यै नमः।' 'चण्डाय नमः।'**—इन मन्त्रोंसे देवी तथा चण्ड नामक द्वारपालका क्रमशः पूजन करे॥ १९—२२॥

इस प्रकार द्वारपाल आदिकी 'नित्य' पूजा करके पश्चिम द्वारसे होकर याग-मन्दिरमें प्रवेश करे। फिर वास्तुदेवताका पूजन करके भूतशुद्धि करे। तत्पश्चात् विशेषार्घ्य हाथमें लेकर अपनेमें शिवस्वरूपकी भावना करते हुए पूजा-सामग्रीका प्रोक्षण आदि करके यज्ञभूमिका संस्कार करे। फिर कुश, दूर्वा और फूल आदि हाथमें लेकर **'नमः'** आदिके उच्चारणपूर्वक उसे अभिमन्त्रित करे। इस प्रकार शिवहस्तका विधान करके उसे अपने सिरपर रखे और यह भावना करे कि 'मैं सबका आदि कारण सर्वज्ञ शिव हूँ तथा यज्ञमें मेरी ही प्रधानता है।' इस प्रकार आचार्य भगवान् शिवका अत्यन्त ध्यान करे और ज्ञानरूपी खड्ग हाथमें लिये नैर्ऋत्य दिशामें जाकर उत्तराभिमुख हो अर्घ्यका जल छोड़े तथा यज्ञ-मण्डपमें चारों ओर पञ्चगव्य छिड़के। चतुष्पथान्त संस्कार और उत्तम संस्कारयुक्त वीक्षण आदिके द्वारा वहाँ सब ओर गौर सर्षप आदि बिखेरने योग्य वस्तुओंको बिखेरकर कुशनिर्मित कूर्चके द्वारा उनका उपसंहार करे। फिर उनके द्वारा ईशानकोणमें वर्धनी एवं कलशकी स्थापनाके लिये आसनकी कल्पना करे॥ २३—२८॥

तत्पश्चात् नैर्ऋत्यकोणमें वास्तुदेवताका तथा द्वारपर लक्ष्मीका पूजन करे। फिर पश्चिमाभिमुख कलशको सप्तधान्यके ऊपर स्थापित करके प्रणवके उच्चारणपूर्वक यह भावना करे कि 'यह शिवस्वरूप कलश नन्दिकेश्वर वृषभके ऊपर आरूढ़ है।' साथ ही वर्धनी सिंहके ऊपर स्थित है, ऐसी भावना करे। कलशपर साङ्ग भगवान् शिवकी और वर्धनीमें अस्त्रकी पूजा करे। इसके बाद पूर्वादि दिशाओंमें इन्द्र आदि दिक्पालोंका तथा मण्डपके मध्यभागमें ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव आदिका पूजन करे। तत्पश्चात् कलशके पृष्ठभागका अनुसरण करनेवाली वर्धनीको भलीभाँति हाथमें लेकर मन्त्रज्ञ गुरु भगवान् शिवकी आज्ञा सुनावे। फिर पूर्वसे लेकर प्रदक्षिणक्रमसे चलते हुए ईशानकोणतक जलकी अविच्छिन्न धारा गिरावे और मूलमन्त्रका उच्चारण करे। शस्त्ररूपिणी वर्धनीको यज्ञमण्डपकी रक्षाके लिये उसके चारों ओर घुमावे। पहले कलशको आरोपित करके उसके वामभागमें शस्त्रके लिये वर्धनीको स्थापित करे॥ २९—३३॥

उत्तम एवं सुस्थिर आसनवाले कलशपर भगवान् शंकरका तथा प्रणवपर स्थित हुई वर्धनीमें उनके आयुधका पूजन करे। तदनन्तर उन दोनोंका लिङ्गमुद्राके द्वारा परस्पर संयोग कराकर भगलिङ्ग-संयोगका सम्पादन करे। कलशपर ज्ञानरूपी खड्ग अर्पित करके मूल-मन्त्रका जप करे। उस जपके दशांश होमसे वर्धनीमें रक्षा घोषित करे। फिर वायव्यकोणमें गणेशजीकी पूजा करके पञ्चामृत आदिसे भगवान् शिवको स्नान करावे और पूर्ववत् पूजन करके कुण्डमें शिवस्वरूप अग्निकी पूजा करे। इसके बाद विधिपूर्वक चरु तैयार करके उसे सम्पाताहुतिकी विधिसे शोधित करे।

तदनन्तर भगवान् शिव, अग्नि और आत्माके भेदसे तीन अधिकारियोंके लिये चम्मचसे उस चरुके तीन भाग करे तथा अग्निकुण्डमें शिव एवं अग्निका भाग देकर शेष भाग आत्माके लिये सुरक्षित रखे॥ ३४—३८॥

तत्पुरुष-मन्त्रके साथ 'हुं' जोड़कर उसके उच्चारणपूर्वक पूर्व दिशामें इष्टदेवके लिये दन्तधावन अर्पित करे। अघोर-मन्त्रके अन्तमें 'वषट्' जोड़कर उसके उच्चारणपूर्वक उत्तर दिशामें आँवला अर्पित करे। वामदेव-मन्त्रके अन्तमें 'स्वाहा' जोड़कर उसका उच्चारण करते हुए जल निवेदन करे। ईशान-मन्त्रसे[1] ईशानकोणमें सुगन्धित जल समर्पित करे। पञ्चगव्य और पलाश आदिके दोने सब दिशाओंमें रखे। ईशानकोणमें पुष्प, अग्निकोणमें गोरोचन, नैर्ऋत्यकोणमें अगुरु तथा वायव्यकोणमें चतु:सम[2] समर्पित करे। तुरंतके पैदा हुए कुशोंके साथ समस्त होमद्रव्य भी अर्पित करे। दण्ड, अक्षसूत्र, कौपीन तथा भिक्षापात्र भी देवविग्रहको अर्पित करे। काजल, कुङ्कुम, सुगन्धित तेल, केशोंको शुद्ध करनेवाली कंघी, पान, दर्पण तथा गोरोचन भी उत्तर दिशामें अर्पित करे। तत्पश्चात् आसन, खड़ाऊँ, पात्र, योगपट्ट और छत्र—ये वस्तुएँ भगवान् शंकरकी प्रसन्नताके लिये ईशानकोणमें ईशान-मन्त्रसे ही निवेदन करे॥ ३९—४४ $\frac{1}{2}$ ॥

पूर्व दिशामें घीसहित चरु तथा गन्ध आदि भगवान् तत्पुरुषको अर्पित करे। तदनन्तर अर्घ्यजलसे प्रक्षालित तथा संहिता-मन्त्रसे शोधित पवित्रकोंको लेकर अग्निके निकट पहुँचावे। कृष्ण मृगचर्म आदिसे उन्हें ढककर रखे। उनके भीतर समस्त कर्मोंके साक्षी और संरक्षक संवत्सरस्वरूप अविनाशी भगवान् शिवका चिन्तन करे। फिर 'स्वा' और 'हा' का प्रयोग करते हुए मन्त्र-संहिताके पाठपूर्वक इक्कीस बार उन पवित्रकोंका शोधन करे। तत्पश्चात् गृह आदिको सूत्रोंसे वेष्टित करे। सूर्यदेवको गन्ध, पुष्प आदि चढ़ावे। फिर पूजित हुए सूर्यदेवको आचमनपूर्वक अर्घ्य दे। न्यास करके नन्दी आदि द्वारपालोंको और वास्तुदेवताको भी गन्धादि समर्पित करे। तदनन्तर यज्ञ-मण्डपके भीतर प्रवेश करके शिव-कलशपर उसके चारों ओर इन्द्रादि लोकपालों और उनके शस्त्रोंकी अपने-अपने नाम-मन्त्रोंसे पूजा करे॥ ४५—५०॥

इसके बाद वर्धनीमें विघ्नराज, गुरु और आत्माका पूजन करे। इन सबका पूजन करनेके अनन्तर सर्वौषधिसे लिप्त, धूपसे धूपित तथा पुष्प-दूर्वा आदिसे पूजित पवित्रकको दोनों अञ्जलियोंके बीचमें रख ले और भगवान् शिवको सम्बोधित करते हुए कहे—'सबके कारण तथा जड और चेतनके स्वामी परमेश्वर! पूजनकी समस्त विधियोंमें होनेवाली त्रुटिकी पूर्तिके लिये मैं आपको आमन्त्रित करता हूँ। आपसे अभीष्ट मनोरथकी प्राप्ति करानेवाली सिद्धि चाहता हूँ। आप अपनी आराधना करनेवाले इस उपासकके लिये उस सिद्धिका अनुमोदन कीजिये। शम्भो! आपको सदा और सब प्रकारसे मेरा नमस्कार है। आप मुझपर प्रसन्न होइये। देवेश्वर! आप देवी पार्वती तथा गणेश्वरोंके साथ आमन्त्रित हैं। मन्त्रेश्वरों, लोकपालों तथा सेवकोंसहित आप पधारें। परमेश्वर! मैं आपको सादर निमन्त्रित करता हूँ। आपकी आज्ञासे कल प्रात:काल पवित्रारोपण तथा तत्सम्बन्धी नियमका पालन करूँगा'॥ ५१—५५ $\frac{1}{2}$ ॥

इस प्रकार महादेवजीको आमन्त्रित करके

१. ॐ ईशान: सर्वविद्यानामीश्वर: सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणो ब्रह्माशिवो मेऽस्तु सदाशिवोम्।

२. एक गन्धद्रव्य, जिसमें दो भाग कस्तूरी, चार भाग चन्दन, तीन भाग कुङ्कुम और तीन भाग कपूर रहता है।

रेचक प्राणायामके द्वारा अमृतीकरणकी क्रिया सम्पादित करते हुए शिवान्त मूल-मन्त्रका उच्चारण एवं जप करके उसे भगवान् शिवको समर्पित करे। जप, स्तुति एवं प्रणाम करके भगवान् शंकरसे अपनी त्रुटियोंके लिये क्षमा-प्रार्थना करे। तत्पश्चात् चरुके तृतीय अंशका होम करे। उसे शिवस्वरूप अग्निको, दिग्वासियोंको, दिशाओंके अधिपतियोंको, भूतगणोंको, मातृगणोंको, एकादश रुद्रोंको तथा क्षेत्रपाल आदिको उनके नाममन्त्रके साथ '**नमः स्वाहा**' बोलकर आहुतिके रूपमें अर्पित करे। इसके बाद इन सबका चतुर्थ्यन्त नाम बोलकर '**अयं बलिः**' कहते हुए बलि समर्पित करे। पूर्वादि दिशाओंमें दिग्गजों आदिके साथ दिक्पालोंको, क्षेत्रपालको तथा अग्निको भी बलि समर्पित करनी चाहिये। बलिके पश्चात् आचमन करके विधिच्छिद्रपूरक* होम करे। फिर पूर्णाहुति और व्याहृति-होम करके अग्निदेवको अवरुद्ध करे॥ ५६—६०॥

तदनन्तर '**ॐ अग्नये स्वाहा।**' '**ॐ सोमाय स्वाहा।**' '**ॐ अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा।**' '**ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा।**'—इन चार मन्त्रोंसे चार आहुतियाँ देकर भावी कार्यकी योजना करे। अग्निकुण्डमें पूजित हुए आराध्यदेव भगवान् शिवको पूजामण्डलमें पूजित कलशस्थ शिवमें नाड़ीसंधानरूप विधिसे संयोजित करे। फिर बाँस आदिके पात्रमें '**फट्**' और '**नमः**' के उच्चारणपूर्वक अस्त्रन्यास और हृदयन्यास करके उसमें सब पवित्रकोंको रख दे। इसके बाद '**शान्तिकलात्मने नमः।**' '**विद्याकलात्मने नमः।**' '**निवृत्तिकलात्मने नमः।**' '**प्रतिष्ठाकलात्मने नमः।**' '**शान्त्यतीतकलात्मने नमः।**'—इन कला-मन्त्रोंद्वारा उन्हें अभिमन्त्रित करे। फिर प्रणवमन्त्र अथवा मूल-मन्त्रसे षडङ्गन्यास करके '**नमः**', '**हुं**', एवं '**फट्**' का उच्चारण करके, उनमें क्रमशः हृदय, कवच एवं अस्त्रकी योजना करे॥ ६१—६४॥

यह सब करके उन पवित्रकोंको सूत्रोंसे आवेष्टित करे। फिर '**नमः**', '**स्वाहा**', '**वषट्**', '**हुं**', '**वौषट्**', तथा '**फट्**' इन अङ्ग-सम्बन्धी मन्त्रोंद्वारा उन सबका पूजन करके उनकी रक्षाके लिये भक्तिभावसे नम्र हो, उन्हें जगदीश्वर शिवको समर्पित करे। इसके बाद पुष्प, धूप आदिसे पूजित सिद्धान्त-ग्रन्थपर पवित्रक अर्पित करके गुरुके चरणोंके समीप जाकर उन्हें भक्तिपूर्वक पवित्रक दे। फिर वहाँसे बाहर आकर आचमन करे और गोबरसे लिपे-पुते मण्डलत्रयमें क्रमशः पञ्चगव्य, चरु एवं दन्तधावनका पूजन करे॥ ६५—६७॥

तदनन्तर भलीभाँति आचमन करके मन्त्रसे आवृत एवं सुरक्षित साधक रात्रिमें संगीतकी व्यवस्था करके जागरण करे। आधी रातके बाद भोग-सामग्रीकी इच्छा रखनेवाला पुरुष मन-ही-मन भगवान् शंकरका स्मरण करता हुआ कुशकी चटाईपर सोये। मोक्षकी इच्छा रखनेवाला पुरुष भी इसी प्रकार जागरण करके उपवासपूर्वक एकाग्रचित्त हो केवल भस्मकी शय्यापर सोवे॥ ६८-६९॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'पवित्राधिवासनकी विधिका वर्णन' नामक अठहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७८॥

---

* विधिके पालन या सम्पादनमें जो त्रुटि रह गयी हो, उसकी पूर्ति करनेवाला।

उन्यासीवाँ अध्याय
पवित्रारोपणकी विधि

महादेवजी कहते हैं—स्कन्द! तदनन्तर प्रात:काल उठकर स्नान करके एकाग्रचित्त हो संध्या-पूजनका नियम पूर्ण करके मन्त्र-साधक यज्ञमण्डपमें प्रवेश करे और जिनका विसर्जन नहीं किया गया है, ऐसे इष्टदेव भगवान् शिवसे पूर्वोक्त पवित्रकोंको लेकर ईशानकोणमें बने हुए मण्डलके भीतर किसी शुद्धपात्रमें रखें। तत्पश्चात् देवेश्वर शिवका विसर्जन करके, उनपर चढ़ी हुई निर्माल्य-सामग्रीको हटाकर, पूर्ववत् शुद्ध भूमिपर दो बार आह्निक कर्म करे। फिर सूर्य, द्वारपाल, दिक्पाल, कलश तथा भगवान् ईशान (शिव)-का शिवाग्निमें विशेष विस्तारपूर्वक नैमित्तिकी पूजा करे। फिर मन्त्र-तर्पण और अस्त्र-मन्त्रद्वारा एक सौ आठ बार प्रायश्चित्त-होम करके धीरेसे मन्त्र बोलकर पूर्णाहुति कर दे॥ १—५॥

इसके बाद सूर्यदेवको पवित्रक देकर आचमन करे। फिर द्वारपाल आदिको, दिक्पालोंको, कलशको और वर्धनी आदिपर भी पवित्रक अर्पण करे। तदनन्तर भगवान् शिवके समीप अपने आसनपर बैठकर आत्मा, गण, गुरु तथा अग्निको पवित्रक अर्पित करे। उस समय भगवान् शिवसे इस प्रकार प्रार्थना करे—'देव! आप कालस्वरूप हैं। आपने मेरे कार्यके विषयमें जैसी आज्ञा दी थी, उसका ठीक-ठीक पालन न करके मैंने जो विहित कर्मको क्लेशयुक्त (त्रुटियोंसे पूर्ण) कर दिया है अथवा आवश्यक विधिको छोड़ दिया है या प्रकटको गुप्त कर दिया है, वह मेरा किया हुआ क्लिष्ट और संस्कारशून्य कर्म इस पवित्रारोपणकी विधिसे सर्वथा अक्लिष्ट (परिपूर्ण) हो जाय। शम्भो! आप अपनी ही इच्छासे मेरे इस पवित्रकद्वारा सम्पूर्ण रूपसे प्रसन्न होकर मेरे नियमको पूर्ण कीजिये।' '**ॐ पूरय पूरय मखव्रतं नियमेश्वराय स्वाहा**'—इस मन्त्रका उच्चारण करे॥ ६—१०॥

'**ॐ पद्मयोनिपालितात्मतत्त्वेश्वराय प्रकृतिलयाय ॐ नमः शिवाय।**'—इस मन्त्रका उच्चारण करके पवित्रकद्वारा भगवान् शिवकी पूजा करे। '**विष्णुकारणपालितविद्यातत्त्वेश्वराय ॐ नमः शिवाय।**'—इस मन्त्रका उच्चारण करके पवित्रक चढ़ावे। '**रुद्रकारणपालितशिवतत्त्वेश्वराय शिवाय ॐ नमः शिवाय।**' इस मन्त्रका उच्चारण करके भगवान् शिवको पवित्रक निवेदन करे। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले स्कन्द! '**सर्वकारण-पालाय शिवाय लयाय ॐ नमः शिवाय।**'—इस मन्त्रका उच्चारण करके भगवान् शिवको 'गङ्गावतारक' नामक सूत्र समर्पित करे॥ ११—१४॥

मुमुक्षु पुरुषोंके लिये आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्वके क्रमसे मन्त्रोच्चारणपूर्वक पवित्रक अर्पित करनेका विधान है तथा भोगाभिलाषी पुरुष क्रमशः शिवतत्त्व, विद्यातत्त्व और आत्मतत्त्वके अधिपति शिवको मन्त्रोच्चारणपूर्वक पवित्रक अर्पित करे, उसके लिये ऐसा ही विधान है। मुमुक्षु पुरुष स्वाहान्त मन्त्रका उच्चारण करे और भोगाभिलाषी पुरुष नमोऽन्त मन्त्रका। 'स्वाहान्त' मन्त्रका स्वरूप इस प्रकार है—'**ॐ हां आत्मतत्त्वाधिपतये शिवाय स्वाहा।**' '**ॐ हां विद्यातत्त्वाधिपतये शिवाय स्वाहा।**' '**ॐ हां शिवतत्त्वाधिपतये शिवाय स्वाहा।**' '**ॐ हां सर्वतत्त्वाधिपतये शिवाय स्वाहा।**' ('**स्वाहा**' की जगह '**नमः**' पद रख देनेसे ये ही मन्त्र भोगाभिलाषियोंके उपयोगमें आनेवाले हो जाते हैं; परंतु इनका क्रम ऊपर बताये अनुसार ही होना चाहिये।) गङ्गावतारक अर्पण करनेके पश्चात् हाथ जोड़कर भगवान् शिवसे इस प्रकार

प्रार्थना करे—'परमेश्वर! आप ही समस्त प्राणियोंकी गति हैं। आप ही चराचर जगत्की स्थितिके हेतुभूत (अथवा लयके आश्रय) हैं। आप सम्पूर्ण भूतोंके भीतर विचरते हुए उनके साक्षीरूपसे अवस्थित हैं। मन, वाणी और क्रियाद्वारा आपके सिवा दूसरी कोई मेरी गति नहीं है। महेश्वर! मैंने प्रतिदिन आपके पूजनमें जो मन्त्रहीन, क्रियाहीन, द्रव्यहीन तथा जप, होम और अर्चनसे हीन कर्म किया है, जो आवश्यक कर्म नहीं किया है तथा जो शुद्ध वाक्यसे रहित कर्म किया है, वह सब आप पूर्ण करें। परमेश्वर! आप परम पवित्र हैं। आपको अर्पित किया हुआ यह पवित्रक समस्त पापोंका नाश करनेवाला है। आपने सर्वत्र व्याप्त होकर इस समस्त चराचर जगत्को पवित्र कर रखा है। देव! मैंने व्याकुलताके कारण अथवा अङ्गवैकल्य-दोषके कारण जिस व्रतको खण्डित कर दिया है, वह सब आपकी आज्ञारूप सूत्रमें गुँथकर एक—अखण्ड हो जाय'॥ १५—२२ $\frac{१}{२}$ ॥

तत्पश्चात् जप निवेदन करके, उपासक भक्तिपूर्वक भगवान्की स्तुति करे और उन्हें नमस्कार करके, गुरुकी आज्ञाके अनुसार चार मास, तीन मास, तीन दिन अथवा एक दिनके लिये ही नियम ग्रहण करे। भगवान् शिवको प्रणाम करके उनसे त्रुटियोंके लिये क्षमा माँगकर व्रती पुरुष कुण्डके समीप जाय और अग्निमें विराजमान भगवान् शिवके लिये भी चार पवित्रक अर्पित करके पुष्प, धूप और अक्षत आदिसे उनकी पूजा करे। इसके बाद रुद्र आदिको अन्तर्बलि एवं पवित्रक निवेदन करे॥ २३—२६ ॥

तत्पश्चात् पूजा-मण्डपमें प्रवेश करके भगवान् शिवका स्तवन करते हुए प्रणामपूर्वक क्षमा-प्रार्थना करे। प्रायश्चित्त-होम करके खीरकी आहुति दे। मन्दस्वरमें मन्त्र बोलकर पूर्णाहुति करके अग्निमें विराजमान शिवका विसर्जन करे। फिर व्याहृति-होम करके, निष्ठुराद्वारा अग्निको निरुद्ध करे और अग्नि आदिको निम्नोक्त मन्त्रोंसे चार आहुति दे। तत्पश्चात् दिक्पालोंको पवित्र एवं बाह्य बलि अर्पित करे। इसके बाद सिद्धान्त-ग्रन्थपर उसके बराबरका पवित्रक अर्पित करे। पूर्वोक्त व्याहृति-होमके मन्त्र इस प्रकार हैं—**'ॐ हां भूः स्वाहा।' 'ॐ हां भुवः स्वाहा।' 'ॐ हां स्वः स्वाहा।' 'ॐ हां भूर्भुवः स्वः स्वाहा।'**॥ २७—३१ ॥

इस प्रकार व्याहृतियोंद्वारा होम करके अग्नि आदिके लिये चार आहुतियाँ देकर दूसरा कार्य करे। उन चार आहुतियोंके मन्त्र इस प्रकार हैं—**'ॐ हां अग्नये स्वाहा।' 'ॐ हां सोमाय स्वाहा।' 'ॐ हां अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा।' 'ॐ हां अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा।'** फिर गुरुकी शिवके समान वस्त्राभूषण आदि विस्तृत सामग्रीसे पूजा करे। जिसके ऊपर गुरुदेव पूर्णरूपसे संतुष्ट होते हैं, उस साधकका सारा वार्षिक कर्मकाण्ड आदि सफल हो जाता है—ऐसा परमेश्वरका कथन है। इस प्रकार गुरुका पूजन करके उन्हें हृदयतक लटकता हुआ पवित्रक धारण करावे और ब्राह्मण आदिको भोजन कराकर भक्तिपूर्वक उन्हें वस्त्र आदि दे। उस समय यह प्रार्थना करे कि 'देवेश्वर भगवान् सदाशिव इस दानसे मुझपर प्रसन्न हों।' फिर प्रातःकाल भक्तिपूर्वक स्नान आदि करके भगवान् शंकरके श्रीविग्रहसे पवित्रकोंको समेट ले और आठ फूलोंसे उनकी पूजा करके उनका विसर्जन कर दे। फिर पहलेकी तरह विस्तारपूर्वक नित्य-नैमित्तिक पूजन करके पवित्रक चढ़ाकर प्रणाम करनेके पश्चात् अग्निमें शिवका पूजन करे॥ ३२—३८ ॥

तदनन्तर अस्त्र-मन्त्रसे प्रायश्चित्त-होम करके पूर्णाहुति दे। भोग-सामग्रीकी इच्छावाले पुरुषको चाहिये कि वह भगवान् शिवको अपना सारा कर्म समर्पित करे और कहे—'प्रभो! आपकी कृपासे मेरा यह कर्म मनोवाञ्छित फलका

साधक हो।' मोक्षकी कामना रखनेवाला पुरुष भगवान् शिवसे इस प्रकार प्रार्थना करे—'नाथ! यह कर्म मेरे लिये बन्धनकारक न हो।' इस तरह प्रार्थना करके अग्निमें स्थित शिवको नाडीयोगके द्वारा अन्तरात्मामें स्थित शिवमें संयोजित करे। फिर अणुसमूहका हृदयमें न्यास करके अग्निदेवका विसर्जन कर दे और आचमन करके पूजा-मण्डपके भीतर प्रविष्ट हो, कलशके जलको सब ओर छिड़कते हुए भगवान् शिवसे संयुक्त करके कहे—'प्रभो! मेरी त्रुटियोंको क्षमा करो।' इसके बाद विसर्जन कर दे॥ ३९—४२॥

तदनन्तर लोकपाल आदिका विसर्जन करके भगवान् शिवकी प्रतिमासे पवित्रक लेकर चण्डेश्वरकी प्रतिमामें उनकी भी पूजा करके उन्हें वह पवित्रक अर्पित करे और शिवनिर्माल्य आदि सारी सामग्री पवित्रकके साथ ही उन्हें समर्पित कर दे। अथवा वेदीपर पूर्ववत् विधिपूर्वक चण्डेश्वरकी पूजा करे और उनसे प्रार्थनापूर्वक कहे—'चण्डनाथ! मैंने जो कुछ वार्षिक कर्म किया है, वह यदि न्यूनता या अधिकताके दोषसे युक्त है, तो आपकी आज्ञासे वह दोष दूर होकर मेरा कर्म साङ्गोपाङ्ग परिपूर्ण हो जाय।' इस प्रकार प्रार्थना करके देवेश्वर चण्डको नमस्कार करे और स्तुतिके पश्चात् उनका विसर्जन कर दे। निर्माल्यका त्याग करके, शुद्ध हो भगवान् शिवको नहलाकर उनका पूजन करे। घरसे पाँच योजन दूर रहनेपर भी गुरुके समीप पवित्रारोहण-कर्मका सम्पादन करना चाहिये॥ ४३—४६॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'पवित्रारोपणकी विधिका वर्णन' नामक उन्यासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७९॥

अस्सीवाँ अध्याय

दमनकारोपणकी विधि

भगवान् महेश्वर कहते हैं—स्कन्द! अब मैं दमनकारोपणकी विधिका वर्णन करूँगा। इसमें भी सब कार्य पूर्ववत् करने चाहिये। प्राचीन कालमें भगवान् शंकरके कोपसे भैरवकी उत्पत्ति हुई। भैरवने देवताओंका दमन आरम्भ किया। यह देख त्रिपुरारि शिवने रुष्ट होकर भैरवको शाप दिया—'तुम वृक्ष हो जाओ।' फिर भैरवके क्षमा माँगनेपर प्रसन्न हो भगवान् शिव बोले—'जो मनुष्य तुम्हारे पत्रोंद्वारा पूजन करेंगे, अथवा तुम्हारी पूजा करेंगे, उनका मनोवाञ्छित फल पूरा होगा। उनकी इच्छा किसी तरह अपूर्ण नहीं रहेगी।' सप्तमी या त्रयोदशी तिथिको मन्त्रवेत्ता पुरुष संहिता-मन्त्रोंसे दमनक-वृक्षकी पूजा करके उसे भगवान् शंकरके वाक्यका स्मरण दिलाते हुए जगावे—॥ १—३ $\frac{1}{2}$॥

हरप्रसादसम्भूत त्वमत्र संनिधीभव।
शिवकार्यं समुद्दिश्य नेतव्योऽसि शिवाज्ञया॥

'दमनक! तुम भगवान् शंकरके कृपाप्रसादसे प्रकट हुए हो। तुम यहाँ संनिहित हो जाओ। भगवान् शिवकी आज्ञासे उन्हींके कार्यके उद्देश्यसे मुझे तुम्हें अपने साथ ले जाना है।' घरपर भी उस वृक्षको आमन्त्रित करे और सायंकालमें अधिवासन-कर्म सम्पन्न करे। विधिपूर्वक सूर्य, शंकर और अग्निदेवकी पूजा करके, इष्टदेवताके पश्चिम भागमें मिट्टीके साथ संयुक्त करके उस वृक्षकी जड़को स्थापित करे। वामदेव-मन्त्र अथवा शिरोमन्त्रसे उस वृक्षकी नाल तथा आँवलेका फल उत्तर दिशामें रखे। उसके टूटे हुए पत्रको दक्षिणमें तथा पुष्प और धावनको पूर्वमें स्थापित करे॥ ४—७॥

ईशानकोणमें एक दोनेमें उसके फल और मूलको रखकर भगवान् शिवका पूजन करे। उस वृक्षकी जड़, नाल, पत्र, फूल और फल—इन पाँचों अङ्गोंको अञ्जलिमें लेकर आमन्त्रित करते हुए सिरपर रखे और इस प्रकार कहे—'देवेश्वर! मैं आज आपको निमन्त्रित करता हूँ। कल प्रात:काल मुझे तपस्याका लाभ लेना है—की हुई उपासनाको सफल बनाना है। वह सब कार्य आपकी आज्ञासे पूर्ण हो।' तत्पश्चात् पात्रमें रखे हुए शेष पवित्रकको मूल-मन्त्रसे ढककर प्रात:काल स्नान करनेके पश्चात् जगदीश्वर शिवका गन्ध-पुष्प आदिसे पूजन करे॥ ८—१०॥

तदनन्तर नित्य-नैमित्तिक कर्म करके दमनकसे पूजन करे। शेष दमनकको अञ्जलिमें लेकर—'**ॐ हां आत्मतत्त्वाधिपतये शिवाय स्वाहा।**', '**ॐ हां विद्यातत्त्वाधिपतये शिवाय स्वाहा।**', '**ॐ हां शिवतत्त्वाधिपतये शिवाय स्वाहा।**', '**ॐ हां सर्वतत्त्वाधिपतये शिवाय स्वाहा।**'—इन चार मन्त्रोंद्वारा दमनक चढ़ाकर शिवका पूजन करना चाहिये। तदनन्तर दमनककी चौथी अञ्जलि लेकर '**ॐ हौं महेश्वराय मखं पूरय पूरय शूलपाणये नमः।**'—इस मन्त्रके उच्चारणपूर्वक भगवान् शिवको अर्पित करे॥ ११—१३॥

इस प्रकार शिव और अग्निकी पूजा करके गुरुकी विशेषरूपसे अर्चना करते हुए प्रार्थना करे—'भगवन्! मैंने दमनकद्वारा पूजनकर्ममें जो न्यूनता या अधिकता कर दी है, वह सब आपकी कृपासे परिपूर्ण हो जाय।' इस रीतिसे दमनकारोपण-कर्मका सम्पादन करके मनुष्य चैत्रमासजनित सम्पूर्ण फलको पाता है और अन्तमें स्वर्ग-लोकको जाता है॥ १४-१५॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'दमनकारोपणकी विधिका वर्णन' नामक अस्सीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८०॥

इक्यासीवाँ अध्याय

समयाचार-दीक्षाकी विधि

भगवान् महेश्वर कहते हैं—स्कन्द! अब मैं भोग और मोक्षकी सिद्धिके लिये दीक्षाकी विधि बताऊँगा, जो समस्त पापोंका नाश करनेवाली है तथा जिसके द्वारा मल और माया आदि पाशोंका निवारण किया जाता है। जिससे शिष्यमें ज्ञानकी उत्पत्ति करायी जाती है, उसका नाम 'दीक्षा' है। वह भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली है। पशु (पाश-बद्ध जीव) शुद्ध विद्याद्वारा अनुग्राह्य कहा गया है। वह तीन प्रकारका होता है—पहला विज्ञानाकल, दूसरा प्रलयाकल तथा तीसरा सकल॥ १ $\frac{1}{2}$॥

उनमेंसे प्रथम अर्थात् 'विज्ञानाकल' पशु केवल मलरूप पाशसे युक्त होता है,[1] दूसरा अर्थात् 'प्रलयाकल' पशु मल और कर्म—इन दो पाशोंसे आबद्ध होता है[2] तथा तीसरा अर्थात्

---

१. जो परमात्माके स्वरूपको पहचानकर जप, ध्यान तथा संन्यासद्वारा अथवा भोगद्वारा कर्मोंका क्षय कर डालता है और कर्मोंका क्षय हो जानेके कारण जिसके लिये शरीर और इन्द्रिय आदिका कोई बन्धन नहीं रहता, उसमें केवल मलरूपी पाश (बन्धन) रह जाता है, उसे 'विज्ञानाकल' कहते हैं। मल तीन प्रकारके होते हैं—'आणव-मल', 'कर्मज-मल', तथा 'मायेय-मल'। विज्ञानाकलमें केवल आणव-मल रहता है। वह विज्ञान (तत्त्वज्ञान)-द्वारा अकल—कलारहित (कलादि भोग-बन्धनोंसे शून्य) हो जाता है, इसलिये उसकी 'विज्ञानाकल' संज्ञा होती है।

२. जिस जीवात्माके देह, इन्द्रिय आदि प्रलयकालमें लीन हो जाते हैं, इससे उसमें मायेय मल तो नहीं रहता, परंतु आणव और कर्मज—ये दो मलरूपी पाश (बन्धन) रह जाते हैं, वह प्रलयकालमें ही अकल (कलारहित) होनेके कारण 'प्रलयाकल' कहलाता है।

'सकल' पशु कला आदिसे लेकर भूमिपर्यन्त सारे तत्त्वसमूहोंसे बँधा होता है (अर्थात् वह मल, माया तथा कर्म—त्रिविध पाशोंसे बँधा हुआ बताया गया है।)* ॥ २—३ $\frac{1}{2}$ ॥

* जिस जीवात्मामें आणव, मायेय और कर्मज—तीनों मल (पाश) रहते हैं, वह कला आदि भोग-बन्धनोंसे युक्त होनेके कारण 'सकल' कहा गया है। पाशुपत-दर्शनके अनुसार विज्ञानाकल पशु (जीव)-के भी दो भेद हैं—'समाप्त कलुष' और 'असमाप्त कलुष'। (१) जीवात्मा जो कर्म करता है, उस प्रत्येक कर्मकी तह मलपर जमती रहती है। इसी कारण उस मलका परिपाक नहीं होने पाता; किंतु जब कर्मोंका त्याग हो जाता है, तब तह न जमनेके कारण मलका परिपाक हो जाता है और जीवात्माके सारे कलुष समाप्त हो जाते हैं, इसीलिये वह 'समाप्त-कलुष' कहलाता है। ऐसे जीवात्माओंको भगवान् आठ प्रकारके 'विद्येश्वर'-पदपर पहुँचा देते हैं। उनके नाम ये हैं—

अनन्तश्चैव सूक्ष्मश्च तथैव च शिवोत्तमः। एकनेत्रस्तथैवैकरुद्रश्चापि त्रिमूर्तिकः॥
श्रीकण्ठश्च शिखण्डी च प्रोक्ता विद्येश्वरा इमे।

'(१) अनन्त, (२) सूक्ष्म, (३) शिवोत्तम, (४) एकनेत्र, (५) एकरुद्र, (६) त्रिमूर्ति, (७) श्रीकण्ठ और (८) शिखण्डी।'

(२) 'असमाप्त-कलुष' वे हैं, जिनकी कलुषराशि अभी समाप्त नहीं हुई है। ऐसे जीवात्माओंको परमेश्वर 'मन्त्र' स्वरूप दे देता है। कर्म तथा शरीरसे रहित किंतु मलरूपी पाशमें बँधे हुए जीवात्मा ही 'मन्त्र' हैं और इनकी संख्या सात करोड़ है। ये सब अन्य जीवात्माओंपर अपनी कृपा करते रहते हैं। 'तत्त्व-प्रकाश' नामक ग्रन्थमें उपर्युक्त विषयके संग्राहक श्लोक इस प्रकार हैं—

पशवस्त्रिविधाः प्रोक्ता विज्ञानप्रलयाकलौ सकलः। मलयुक्तस्तत्राद्यो मलकर्मयुतो द्वितीयः स्यात्॥
मलमायाकर्मयुतः सकलस्तेषु द्विधा भवेदाद्यः। आद्यः समाप्तकलुषोऽसमाप्तकलुषो द्वितीयः स्यात्॥
आद्या ननु गृह्य शिवो विद्येशत्वे नियोजयत्यष्टौ। मन्त्रांश्च करोत्यपरान् ते चोक्ताः कोट्यः सप्त॥

'प्रलयाकल' भी दो प्रकारके होते हैं—'पक्वपाशद्वय' और 'अपक्वपाशद्वय'। (१) जिनके मल तथा कर्मरूपी दोनों पाशोंका परिपाक हो गया है, वे 'पक्वपाशद्वय' होकर मोक्षको प्राप्त हो जाते हैं। (२) 'अपक्वपाशद्वय' जीव पुर्यष्टकमय देह धारण करके नाना प्रकारके कर्मोंको करते हुए नाना योनियोंमें घूमा करते हैं।

'सकल' जीवोंके भी दो हैं—'पक्वकलुष' भेद और 'अपक्वकलुष'। (१) जैसे-जैसे जीवात्माके मल, कर्म तथा माया—इन पाशोंका परिपाक बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे ये सब पाश शक्तिहीन होते जाते हैं। तब वे पक्वकलुष जीवात्मा 'मन्त्रेश्वर' कहलाते हैं। सात करोड़ मन्त्ररूपी जीव-विशेषोंके, जिनका ऊपर वर्णन हो चुका है, अधिकारी ये ही ११८ मन्त्रेश्वर जीव हैं। (२) अपक्वकलुष जीव भवकूपमें गिरते हैं।

नारदपुराणमें शैव-महातन्त्रकी मान्यताके अनुसार पाँच प्रकारके पाश बताये गये हैं—(१) मलज, (२) कर्मज, (३) मायेय (मायाजन्य), (४) तिरोधान—शक्तिज और (५) बिन्दुज। आधुनिक शैव दर्शनमें चार प्रकारके पाशोंका उल्लेख है—मल, रोध, कर्म तथा माया। रोध-शक्ति या तिरोधान-शक्ति एक ही वस्तु है। 'बिन्दु' मायास्वरूप है। वह 'शिवतत्त्व' नामसे भी जानने योग्य है। यद्यपि शिवपद-प्राप्तिरूप परम मोक्षकी अपेक्षासे वह भी पाश ही है, तथापि विद्येश्वरादि-पदकी प्राप्तिमें परम हेतु होनेके कारण बिन्दु-शक्तिको 'अपरा-मुक्ति' कहा गया है। अतः उसे आधुनिक शैव दर्शनमें 'पाश' नाम नहीं दिया गया है। इसलिये यहाँ शेष चार पाशों (मल, कर्म, रोध और माया)-के ही स्वरूपका विचार किया जाता है—(१) जो आत्माके स्वाभाविक ज्ञान तथा क्रिया-शक्तिको ढक ले, वह 'मल' (अर्थात् अज्ञान) कहलाता है। यह मल आत्मास्वरूपका केवल आच्छादन ही नहीं करता, किंतु जीवात्माको बलपूर्वक दुष्कर्मोंमें प्रवृत्त करनेवाला पाश भी यही है। (२) प्रत्येक वस्तुमें जो सामर्थ्य है, उसे 'शिवशक्ति' कहते हैं। जैसे अग्निमें दाहिका शक्ति। यह शक्ति जैसे पदार्थमें रहती है, वैसा ही भला-बुरा स्वरूप धारण कर लेती है; अतः पाशमें रहती हुई यह शक्ति जब आत्माके स्वरूपको ढक लेती है, तब यह 'रोध-शक्ति' या 'तिरोधान-पाश' कहलाती है। इस अवस्थामें जीव शरीरको आत्मा मानकर शरीरके पोषणमें लगा रहता है; आत्माके उद्धारका प्रयत्न नहीं करता। (३) फलकी इच्छासे किये हुए 'धर्माधर्म' रूप कर्मोंको ही 'कर्मपाश' कहते हैं। (४) जिस शक्तिमें प्रलयके समय सब कुछ लीन हो जाता है तथा सृष्टिके समय जिसमेंसे सब कुछ उत्पन्न हो जाता है, वह 'मायापाश' है। अतः इन पाशोंमें बँधा हुआ पशु जब तत्त्वज्ञानद्वारा इनका उच्छेद कर डालता है, तभी वह 'परम शिवतत्त्व' अर्थात् 'पशुपति-पद' को प्राप्त होता है।

दीक्षा ही शिवत्व-प्राप्तिका साधन है। सर्वानुग्राहक परमेश्वर ही आचार्य-शरीरमें स्थित होकर दीक्षाकरणद्वारा जीवको परम शिवतत्त्वकी प्राप्ति कराते हैं; ऐसा ही कहा भी है—'योजयति परे तत्त्वे स दीक्षयाऽऽचार्यमूर्तिस्थः।'

'अपक्वपाशद्वय प्रलयाकल' जीव तथा 'अपक्वकलुष सकल' जीव जिस पुर्यष्टक देहको धारण करते हैं, वह पञ्चभूत तथा मन, बुद्धि, अहंकार—इन आठ तत्त्वोंसे युक्त होनेके कारण 'पुर्यष्टक' कहलाता है। पुर्यष्टक शरीर छत्तीस तत्त्वोंसे युक्त होता है। अन्तर्भोगके साधनभूत कला, काल, नियति, विद्या, राग, प्रकृति और गुण—ये सात तत्त्व, पञ्चभूत, पञ्चतन्मात्रा, दस इन्द्रियाँ, चार अन्तःकरण और पाँच शब्द आदि विषय—ये छत्तीस तत्त्व हैं। अपक्वपाशद्वय जीवोंमें जो अधिक पुण्यात्मा हैं, उन्हें परम दयालु भगवान् महेश्वर भुवनेश्वर या लोकपाल बना देते हैं।

इन पाशोंसे मुक्त होनेके लिये जीवको आचार्यसे मन्त्राराधनकी दीक्षा लेनी होती है। वह दीक्षा दो प्रकारकी मानी गयी है—एक 'निराधारा' और दूसरी 'साधारा'। उपर्युक्त तीन पशुओंमेंसे विज्ञानाकल और प्रलयाकल—इन दो पशुओंके लिये निराधारा दीक्षा बतायी गयी है और सकल पशुके लिये साधारा। आचार्यकी अपेक्षा न रखकर शम्भुद्वारा ही तीव्र शक्तिपात करके जो दीक्षा दी जाती है, वह 'निराधारा' कही गयी है। आचार्यके शरीरमें स्थित होकर भगवान् शंकर अपनी मन्दा, तीव्रा आदि भेदवाली शक्तिसे जिस दीक्षाका सम्पादन करते हैं, वह 'साधारा' कहलाती है। यह साधारा दीक्षा सबीजा, निर्बीजा, साधिकारा और अनधिकारा—इन भेदोंके द्वारा जिस तरह चार* प्रकारकी हो जाती है, वह बताया जाता है॥ ४—७ $\frac{1}{2}$ ॥

समर्थ पुरुषोंको जो समयाचारसे युक्त दीक्षा दी जाती है, उसे 'सबीजा' कहते हैं और असमर्थ पुरुषोंको दी जानेवाली समयाचारशून्य दीक्षा 'निर्बीजा' कही गयी है॥ ८ $\frac{1}{2}$ ॥

जिस दीक्षासे साधक और आचार्यको नित्य-नैमित्तिक एवं काम्य कर्मोंमें अधिकार प्राप्त होता है, वह 'साधिकारा दीक्षा' है। 'निर्बीजा दीक्षा' में दीक्षित होनेवाले लोगोंको तथा समयाचारकी दीक्षा लेनेवाले साधारण शिष्य एवं पुत्रकसंज्ञक शिष्यविशेषको नित्यकर्म-मात्रके अधिकारी होनेके कारण जो दीक्षा दी जाती है, वह 'निरधिकारा दीक्षा' कहलाती है। साधारा और निराधारा भेदसे जो दीक्षाके दो भेद बताये गये हैं, उनमेंसे प्रत्येकके निम्नाङ्कित दो रूप (या भेद) और होते हैं—एक तो 'क्रियावती' कही गयी है, जिसमें कर्मकाण्डकी विधिसे कुण्ड और मण्डलकी स्थापना एवं पूजा की जाती है। दूसरी 'ज्ञानवती दीक्षा' है, जो बाह्य-सामग्रीसे

---

* शारदापटलमें दीक्षाके चार भेदोंका विस्तारसे वर्णन है। वे चार भेद हैं—क्रियावती, वर्णमयी, कलावती और वेधमयी। क्रियावती दीक्षामें कर्मकाण्डका पूरा उपयोग होता है। स्नान, संध्या, प्राणायाम, भूतशुद्धि, न्यास, ध्यान, पूजा, शङ्ख-स्थापन आदिसे लेकर शास्त्रोक्त पद्धतिसे हवन-पर्यन्त कर्म किये जाते हैं। षडध्वाके शोधन-क्रमसे पृथक्-पृथक् आहुति देकर, शिवमें विलीन करके पुनः सृष्टि-क्रमसे शिष्यका चैतन्ययोग सम्पादित होता है। गुरु शिष्यसे अपनी एकताका अनुभव करता हुआ आत्मविद्याका दान करता है। गुरु-मन्त्र प्राप्त करके शिष्य धन्य-धन्य हो जाता है।

'वर्णमयी दीक्षा' न्यासरूपा है। अकारादि वर्ण प्रकृतिपुरुषात्मक हैं। शरीर भी प्रकृतिपुरुषात्मक होनेके कारण वर्णात्मक ही है। इसलिये पहले समस्त शरीरमें वर्णोंका सविधि न्यास किया जाता है। श्रीगुरुदेव अपनी आज्ञा और इच्छाशक्तिसे उन वर्णोंको प्रतिलोम-विधिसे अर्थात् संहार-क्रमसे विलीन कर देते हैं। यह क्रिया सम्पन्न होते ही शिष्यका शरीर दिव्य हो जाता है और गुरुके द्वारा वह परमात्मामें मिला दिया जाता है। ऐसी स्थिति होनेके पश्चात् श्रीगुरुदेव पुनः शिष्यको पृथक् करके दिव्य शरीरकी सृष्टि-क्रमसे रचना करते हैं। शिष्यमें परमानन्दस्वरूप दिव्यभावका विकास होता है और वह कृतकृत्य हो जाता है।

'कलावती दीक्षा'की विधि निम्नलिखित है—मनुष्यके शरीरमें पाँच प्रकारकी शक्तियाँ प्रतिष्ठित हैं। पैरके तलवेसे जानु-पर्यन्त 'निवृत्ति-शक्ति' है, जानुसे नाभि-पर्यन्त 'प्रतिष्ठा-शक्ति' है, नाभिसे कण्ठ-पर्यन्त 'विद्या-शक्ति' है, कण्ठसे ललाट-पर्यन्त 'शान्ति-शक्ति' है, ललाटसे शिखा-पर्यन्त 'शान्त्यतीतकला-शक्ति' है। संहार-क्रमसे पहलीको दूसरीमें, दूसरीको तीसरीमें और अन्तिम कलाको शिवमें संयुक्त करके शिष्य शिवरूप कर दिया जाता है। पुनः सृष्टि-क्रमसे इसका विस्तार किया जाता है और शिष्य दिव्य भावको प्राप्त होता है।

'वेधमयी दीक्षा' षट्चक्र-वेधन ही है। जब गुरु कृपा करके अपनी शक्तिसे शिष्यका षट्चक्रभेद कर देते हैं, तब इसीको 'वेधमयी दीक्षा' कहते हैं। गुरु पहले शिष्यके छः चक्रोंका चिन्तन करते हैं और उन्हें क्रमशः कुण्डलिनी शक्तिमें विलीन करते हैं। छः चक्रोंका विलयन बिन्दुमें करके तथा बिन्दुको कलामें, कलाको नादमें, नादको नादान्तमें, नादान्तको उन्मनीमें, उन्मनीको विष्णुमुखमें और तत्पश्चात् गुरुमुखमें संयुक्त करके अपने साथ ही उस शक्तिको परमेश्वरमें मिला देते हैं। गुरुकी इस कृपासे शिष्यका पाश छिन्न-भिन्न हो जाता है। उसे दिव्य बोधकी प्राप्ति होती है और वह सब कुछ प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार यह 'बोधमयी दीक्षा' सम्पन्न होती है।

नहीं, मानसिक व्यापारमात्रसे साध्य है॥ ९—१२॥

इस प्रकार अधिकारप्राप्त आचार्यद्वारा दीक्षा-कर्मका सम्पादन होता है।* स्कन्द! गुरुको चाहिये कि वह नित्यकर्मका विधिवत् अनुष्ठान करके शिष्यका दीक्षाकर्म सम्पन्न करे। प्रणवके जपपूर्वक गुरु अपने कर-कमलमें अर्घ्य-जल ले द्वारपालोंका पूजन करे। फिर विघ्नोंका निवारण करनेके अनन्तर, द्वार-देहलीपर अस्त्रन्यास करके अपने आसनपर बैठे। शास्त्रोक्त विधिसे भूतशुद्धि एवं अन्तर्याग करे। तिल, चावल, सरसों, कुश, दूर्वाङ्कुर, जौ, दूध और जल—इन सबको एकत्र करके विशेषार्घ्य बनावे। उसके जलसे समस्त द्रव्यों (पूजन-सामग्रियों)-की शुद्धि करे। फिर तिलक-सम्बन्धी अपने सम्प्रदायके मन्त्रसे भालदेशमें तिलक लगावे। फिर पूर्ववत् पूजन, मन्त्र-शोधन तथा पञ्चगव्य-प्राशन आदि कार्य करने चाहिये। क्रमशः लावा, चन्दन, सरसों, भस्म, दूर्वा, अक्षत, कुश और अन्तमें पुनः शुद्ध लावा—ये सब 'विकिर' (बिखरनेयोग्य द्रव्य) कहे गये हैं। इन सब वस्तुओंको एकत्र करके सात बार अस्त्र-मन्त्रसे अभिमन्त्रित करे। अस्त्र-मन्त्रद्वारा अभिमन्त्रित जलसे इनका प्रोक्षण करके फिर कवच-मन्त्र (**हुम्**)-से अवगुण्ठन करके यह भावना करे कि ये विघ्नसमूहका निवारण करनेवाले नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र हैं॥ १३—१८ $\frac{१}{२}$॥

तदनन्तर प्रादेशमात्र लंबे कुशके छत्तीस दलोंसे वेणीरूप बोधमय उत्तम खड्ग बनाकर उसे सात बार जपते हुए शिव-मन्त्रसे अभिमन्त्रित करे। फिर उसे शिवस्वरूप मानकर भावनाद्वारा अपने हृदयमें स्थापित करे। साथ ही जगदाधार भगवान् शिवकी जो झाँकी अपनेको अभीष्ट हो, उसी रूपमें उनका ध्यान-चिन्तन करके निष्कल परमात्मा शिवका अपने भीतर न्यास करे। तत्पश्चात् यह भावना करे कि 'मैं साक्षात् शिव हूँ।' फिर सिरपर (मूल-मन्त्रसे अभिमन्त्रित) श्वेत पगड़ी रखकर अपने शरीरको (गन्ध, पुष्प एवं आभूषणोंसे) अलंकृत करे। तत्पश्चात् गुरु अपने दाहिने हाथपर सुगन्ध-द्रव्य अथवा कुङ्कुमद्वारा मण्डलका निर्माण करे। फिर उसपर विधिपूर्वक भगवान् शिवकी पूजा करे। इससे वह 'शिवहस्त' हो जाता है। उस तेजस्वी शिवहस्तको शिव-मन्त्रसे अपने मस्तकपर रखकर यह दृढ़ भावना करे कि 'मैं शिवसे अभिन्न और सबका कर्ता साक्षात् परमात्मा शिव ही हूँ।' जब गुरु ऐसी भावना कर ले, तब वह यज्ञमण्डपमें कर्मोंका साक्षी, कलशमें यज्ञका रक्षक, अग्निमें होमका अधिष्ठान, शिष्यमें उसके अज्ञानमय पाशका उच्छेद करनेवाला तथा अन्तरात्मामें अनुग्रहीता—इन पाँच आकारोंमें अभिव्यक्त ईश्वररूप हो जाता है। गुरु इस भावको अत्यन्त दृढ़तर कर ले कि 'वह परमेश्वर मैं ही हूँ'॥ १९—२५॥

तदनन्तर ज्ञानरूपी खड्ग हाथमें लिये गुरु यज्ञमण्डपके नैर्ऋत्यकोणवाले भागमें उत्तराभिमुख स्थित हो, अर्घ्य, जल और पञ्चगव्यसे उस

---

* सोमशम्भुकी 'कर्मकाण्ड-क्रमावली' (श्लोक ६१९-६२० $\frac{१}{२}$)-में 'इत्थं लब्धाधिकारेण दीक्षाचार्येण साध्यते।' इस पंक्तिके बाद दो श्लोक और अधिक उपलब्ध होते हैं, जो इस प्रकार हैं—

स च सद्देशसम्भूतः सुमूर्तिः श्रुतशीलवान्॥ ज्ञानाचारो गुणोपेतः क्षमी शुद्धाशयो वरः।
देशकालगुणाचारो गुरुभक्तिसमन्वितः॥ शिवानुध्यानवान् शस्तो विरक्तश्च प्रशस्यते।

'दीक्षाप्राप्त शिष्य यदि उत्तम देशमें उत्पन्न, सुन्दर शरीरवाला, शास्त्राध्ययन एवं शीलसे सम्पन्न, ज्ञानी, सदाचारी, गुणवान्, क्षमाशील, शुद्ध अन्तःकरणसे युक्त, श्रेष्ठ, देश-कालोचित गुण और आचारसे सुशोभित, गुरुभक्त, शिवध्यानपरायण तथा विरक्त हो तो वह उत्तम माना गया है और उसकी प्रशंसा की जाती है।'

मण्डपका प्रोक्षण करे। ईक्षण आदि चतुष्पथान्त-संस्कारोंद्वारा उसका संस्कार करे। फिर यज्ञमण्डपमें बिखरनेयोग्य पूर्वोक्त वस्तुओंको बिखेरकर कुशकी कूँचीसे उन सबको बटोर ले और उन्हें ईशानकोणमें स्थापित वार्धानी (जलपात्र)-में आसनके लिये रख दे। नैर्ऋत्यकोणमें वास्तुदेवताओंका और पश्चिम द्वारपर लक्ष्मीका पूजन करे। साथ ही यह भावना करे कि 'वे मण्डपरूपिणी लक्ष्मी देवी रत्नोंके भण्डारसे यज्ञमण्डपको परिपूर्ण कर रही हैं।' इस प्रकार ध्यान एवं आवाहन कर हृदय-मन्त्र '**नमः**' के द्वारा अर्थात् '**लक्ष्म्यै नमः।**'—इस मन्त्रसे उनकी पूजा करनी चाहिये। इसके बाद ईशानकोणमें सप्तधान्यपर स्थापित किये हुए वस्त्रवेष्टित पञ्चरत्नयुक्त एवं जलसे परिपूर्ण पश्चिमाभिमुख कलशपर भगवान् शंकरका पूजन करे। फिर उस कलशके दक्षिण भागमें सिंहपर विराजमान पश्चिमाभिमुखी शक्ति खड्गरूपिणी वार्धानीका पूजन करे॥ २६—३०॥

तदनन्तर पूर्व आदि दिशाओंमें इन्द्र आदि दिक्पालोंका और इसके अन्तमें विष्णुभगवान्का पूजन करे। ये सब-के-सब प्रणवमय आसनपर विराजमान हैं तथा अपने-अपने वाहनों और आयुधोंसे संयुक्त हैं—ऐसी भावना करके उनके नामोंके अन्तमें '**नमः**' पद जोड़कर उन्हींसे उनकी पूजा करे। यथा—'**इन्द्राय नमः।**', '**विष्णवे नमः।**' इत्यादि। पहले पूर्वोक्त वार्धानीको भलीभाँति हाथमें ले, उसे कलशके सामनेकी ओरसे ले जाकर प्रदक्षिणक्रमसे उसके चारों ओर घुमावे और उससे जलकी अविच्छिन्न धारा गिराता रहे। साथ ही मूलमन्त्रका उच्चारण करते हुए लोकपालोंको भगवान् शिवकी निम्नाङ्कित आज्ञा सुनावे—'लोकपालगण! आपलोग यथाशक्ति सावधानीके साथ इस यज्ञकी रक्षा करें।' यों आदेश दे, नीचे एक कलश रखकर उसके ऊपर उस वार्धानीको स्थापित कर दे। तत्पश्चात् सुस्थिर आसनवाले कलशपर भगवान् शंकरका साङ्ग पूजन करे। इसके बाद कला आदि षडध्वाका न्यास करके शोधन करे और वार्धानीमें अस्त्रकी पूजा करे॥ ३१—३४॥

पूजाके मन्त्र इस प्रकार हैं—'**ॐ हः अस्त्रासनाय हूं फट् नमः।**', '**ॐ ॐ अस्त्रमूर्तये हूं फट् नमः।**', '**ॐ हूं फट् पाशुपतास्त्राय नमः।**', '**ॐ ॐ हृदयाय हूं फट् नमः।**', '**ॐ श्रीं शिरसे हूं फट् नमः।**', '**ॐ यं शिखायै हूं फट् नमः।**' '**ॐ शुं कवचाय हूं फट् नमः।**', '**ॐ हूं फट् अस्त्राय हूं फट् नमः।**' इसके बाद पाशुपतास्त्रके स्वरूपका इस प्रकार चिन्तन करे—'उनके चार मुख हैं। प्रत्येक मुखमें दाढ़ें हैं। उनके हाथोंमें शक्ति, मुद्गर, खड्ग और त्रिशूल हैं तथा उनकी प्रभा करोड़ों सूर्योंके समान है।' इस प्रकार ध्यान करके लिङ्गमुद्राके प्रदर्शनद्वारा भगलिङ्गका समायोग करे। हृदय-मन्त्र (**नमः**)-का उच्चारण करते हुए अङ्गुष्ठसे कलशका स्पर्श करे और मुट्ठीसे खड्गरूपिणी वार्धानीका। भोग और मोक्षकी सिद्धिके लिये पहले मुट्ठीसे वार्धानीका ही स्पर्श करना चाहिये। फिर कलशके मुखभागकी रक्षाके लिये उसपर पूर्वोक्त ज्ञान-खड्ग समर्पित करे। साथ ही मूल-मन्त्रका एक सौ आठ बार जप करके वह जप भी कलशको निवेदन कर दे। उसके दशमांशका जप करके वार्धानीमें उसका अर्पण करे। तदनन्तर भगवान्से रक्षाके लिये प्रार्थना करे—'सम्पूर्ण यज्ञोंको धारण करनेवाले भगवान् जगन्नाथ! बड़े यत्नसे इस यज्ञ-मन्दिरका निर्माण किया गया है? कृपया आप इसकी रक्षा करें'॥ ३५—४०॥

इसके बाद वायव्यकोणमें प्रणवमय आसनपर

विराजमान चार भुजाधारी गणेशजीका पूजन करे। तत्पश्चात् वेदीपर शिवका पूजन करके अर्घ्य हाथमें लिये साधक यज्ञकुण्डके पास जाय। वहाँ बैठकर मन्त्र-देवताकी तृप्तिके लिये बायें भागमें अर्घ्य, गन्ध और घृत आदिको तथा दाहिने भागमें समिधा, कुशा एवं तिल आदिको रखकर कुण्ड, अग्नि, स्रुक् तथा घृत आदिका पूर्ववत् संस्कार करके, हृदयमें ऊर्ध्वमुख अग्निकी प्रधानताका चिन्तन करे तथा अग्निमें भगवान् शिवका पूजन करे। फिर गुरु अपने शरीरमें, शिवकलशमें, मण्डलमें, अग्नि और शिष्यकी देहमें सृष्टिन्यासकी रीतिसे न्यासकर्मका सम्पादन करके अध्वाका विधिपूर्वक शोधन करनेके पश्चात् कुण्डकी लंबाई-चौड़ाईके अनुसार ही अग्निदेवके मुखकी लंबाई-चौड़ाईका चिन्तन करके अग्निजिह्वाओंके नाम-मन्त्रके अन्तमें '**नमः**' (एवं '**स्वाहा**') बोलकर अभीष्ट वस्तुकी आहुतियाँ देते हुए अग्निदेवको तृप्त करे। अग्निकी सात जिह्वाओंके सात बीज हैं। होमके लिये उनका परिचय दिया जाता है॥ ४१—४५॥

रेफरहित अन्तिम दो वर्णोंके सभी (अर्थात् सात) अक्षर यदि रकार और छठे स्वर (ऊ)-पर आरूढ़ हों और उनके भी ऊपर चन्द्रबिन्दुरूप शिखा हो तो वे ही अग्निकी सात जिह्वाओंके क्रमशः सात बीज-मन्त्र हैं। (यथा—**य्रूँ ल्रूँ व्रूँ श्रूँ ष्रूँ स्रूँ ह्रूँ**)[1] अग्निकी सात जिह्वाओंके नाम इस प्रकार हैं—हिरण्या, कनका, रक्ता, कृष्णा, सुप्रभा, अतिरक्ता तथा बहुरूपा। ईशान, पूर्व, अग्नि, नैर्ऋत्य, पश्चिम, वायव्य तथा मध्य दिशामें क्रमशः इनके मुख हैं। (अर्थात् एक त्रिभुजके ऊपर दूसरा त्रिभुज बनानेसे जो छः कोण बनते हैं, वे क्रमशः ईशान, पूर्व, अग्नि, नैर्ऋत्य, पश्चिम तथा वायव्यकोणमें स्थित होते हैं। अग्निकी हिरण्या आदि छः जिह्वाओंको इन्हीं छः कोणोंमें स्थापित करे तथा अन्तिम जिह्वा 'बहुरूपा' को मध्यमें)[2]॥ ४६-४७॥

शान्तिक एवं पौष्टिक कर्ममें खीर आदि मधुर पदार्थोंद्वारा होम करे। परंतु अभिचार कर्ममें सरसोंकी खली, सत्तू, जौकी काँजी, नमक, राई, मट्ठा, कड़वा तेल, काँटे तथा टेढ़ी-मेढ़ी समिधाओंद्वारा क्रोधपूर्वक भाष्याणु (भाष्यमन्त्र)-से हवन करे।[3] कदम्बकी कलिकाओंद्वारा होम करनेसे निश्चय ही यक्षिणी सिद्ध हो जाती है। वशीकरण और आकर्षणकी सिद्धिके लिये बन्धूक (दुपहरिया) और पलाशके फूलोंका हवन करना चाहिये। राज्यलाभके लिये बिल्वफलका और लक्ष्मीकी प्राप्तिके लिये पाटल (पाड़र) एवं चम्पाके फूलोंका होम करे। चक्रवर्ती सम्राट्का

---

१. ये सात बीज अग्निकी 'हिरण्या' आदि सात जिह्वाओंके नामके आदिमें लगाये जाते हैं और अन्तमें 'नमः' पद जोड़कर नाम-मन्त्रोंसे ही उनकी पूजा की जाती है। यथा—'ॐ य्रूँ हिरण्यायै नमः। ','ल्रूँ कनकायै नमः।','व्रूँ रक्तायै नमः।','श्रूँ कृष्णायै नमः।' ष्रूँ 'सुप्रभायै नमः।','स्रूँ अतिरक्तायै नमः।','ह्रूं बहुरूपायै नमः।'

२. सोमशम्भुने इन जिह्वाओंके स्वरूप तथा कामनाभेदसे विभिन्न कर्मोंमें इनके उपयोगके विषयमें इस प्रकार लिखा है—

हिरण्या तप्तहेमाभा कनका वज्रसुप्रभा। रक्तोदितारुणप्रख्या कृष्णा नीलमणिप्रभा॥
सुप्रभा मौक्तिकद्योतातिरक्ता पद्मरागवत्। चन्द्रकान्तशरच्चन्द्रप्रभेव बहुरूपिणी॥
फलं तु कामभेदेन क्रमादासामुदीर्यते। वश्याकर्षणयोराद्या कनका स्तम्भने रिपोः॥
विद्वेषमोहने रक्ता कृष्णा मारणकर्मणि। सुप्रभा शान्तिके पुष्टौ सुरक्तोच्चाटने मता॥
एकैव बहुरूपा तु सर्वकामफलप्रदा। (कर्मकाण्ड-क्रमावली ६६४—६६७)

३. सोमशम्भुके ग्रन्थमें इसके बाद यह एक श्लोक अधिक है—

विद्याधरत्वलाभाय चन्द्रागुरुयुतं पुरम्। अथवा पद्मकिञ्जल्कैर्जुहुयात् साधकोत्तमः॥

'साधक-शिरोमणिको चाहिये कि वह 'विद्याधर-पद' की प्राप्तिके लिये कपूर, अगुरु और गुग्गुलसे अथवा कमलके केसरोंसे हवन करे।'

पद पानेके लिये कमलोंका तथा सम्पत्तिके लिये भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंका होम करे। दूर्वाका हवन किया जाय तो उससे व्याधियोंका नाश होता है। समस्त जीवोंको वशमें करनेके लिये विद्वान् पुरुष प्रियङ्गु तथा कदलीके पुष्पोंका हवन करे। आमके पत्तेका होम ज्वरका नाशक होता है॥ ४८—५२॥

मृत्युञ्जय देवता या मन्त्रका उपासक मृत्युविजयी होता है। तिलका होम करनेसे अभ्युदयकी प्राप्ति होती है। रुद्रशान्ति समस्त दोषोंकी शान्ति करनेवाली होती है। वे अब प्रस्तुत प्रसंगको पुनः प्रारम्भ करते हैं*॥ ५३॥

एक सौ आठ आहुतियोंसे मूलका और उसके दशांश आहुतियोंसे अङ्गोंका तर्पण करे। यह हवन अथवा तर्पण मूलमन्त्रसे ही करना चाहिये। फिर पूर्ववत् पूर्णाहुति दे। शिष्योंका दीक्षामें प्रवेश करानेके लिये प्रत्येक शिष्यके निमित्त मूलमन्त्रका सौ बार जप करना चाहिये। साथ ही दुर्निमित्तोंका निवारण तथा शुभ निमित्तोंकी सिद्धिके लिये मूलमन्त्रसे पूर्ववत् दो सौ आहुतियाँ देनी चाहिये। पहले बताये हुए जो अस्त्र-सम्बन्धी आठ मन्त्र हैं, उनके आदिमें मूल और अन्तमें '**स्वाहा**' जोड़कर पाठ करते हुए एक-एक बार तर्पण करे। मूल-मन्त्रमें जो बीज हों, उन्हें 'शिखा' (**वषट्**)-से सम्पुटित करके अन्तमें '**हूं फट्**' जोड़कर जप करे तो उससे मन्त्रका दीपन होता है। '**ॐ हूं शिवाय स्वाहा।**' इत्यादि मन्त्रोंसे तर्पण किया जाता है। इसी प्रकार '**ॐ ॐ शिवाय हूं फट्।**' इत्यादि दीपन-मन्त्र हैं॥ ५४—५७ $\frac{1}{2}$ ॥

तदनन्तर शिव-मन्त्रसे अभिमन्त्रित जलसे धोयी हुई बटलोईको कवच-मन्त्रसे अवगुण्ठित करके उसमें रोली-चन्दन आदि लगा दे। फिर उसके गलेमें '**हूं फट्**' मन्त्रसे अभिमन्त्रित उत्तम कुश और सूत्र बाँध दे। इससे चरुकी सिद्धि होती है। फिर धर्म आदि चार पायोंसे युक्त चौकी आदिका आसन देकर उसके ऊपर बने हुए अर्धचन्द्राकार मण्डलमें उस बटलोईको रखे तथा उसे आराध्यदेवताकी मूर्ति मानकर उसके ऊपर भावात्मक पुष्पोंसे भगवान् शिवका पूजन करे। अथवा उस बटलोईके मुखको वस्त्रसे बाँध दे और उसपर बाह्यपुष्पोंसे शिवका पूजन करे। इसके बाद पश्चिमाभिमुख रखे हुए चूल्हेको देख-भालकर शुद्ध करके उसमें अहंकार-बीजका

---

* इस प्रसंगमें सोमशम्भुने कुछ अधिक प्रयोग लिखे हैं। उनका कथन है कि—

विषमज्वरनाशाय चूतपत्राणि होमयेत्। घृतेन सह सार्द्राणि घृतप्लुतानि ज्वारिणः॥
ॐ अमुकस्य ज्वरं नाशय जुं सः वौषट्। जले वरुणमभ्यर्च्य वृष्ट्यर्थं ग्रहसंयुतम्॥
तिलान् वारुणमन्त्रेण जुहुयाद् गुह्यकेन वा। मेघानाप्लाविताशेषदिगन्तधरणीतलान्॥
धारयेत्तिलहोमेन शीघ्रं पाशुपताणुना। ॐ श्लीं पशु हूं फट् मेघान् स्फुटीक्रियताम् हूं फट्॥
सर्वोपद्रवनाशाय रुद्रशान्त्या तिलादिभिः। विधिना यजनं कुर्यादथ प्रस्तुतमुच्यते॥

(कर्मकाण्ड-क्रमावली ६७६—६८०)

अर्थात् 'विषमज्वरका नाश करनेके लिये आमके पत्तोंका हवन करे। उन पत्तोंको घीसे आर्द्र करके अथवा घीमें डुबोकर उनकी आहुति दे। पत्तोंकी आहुति घीकी आहुतिके साथ देनी चाहिये। इससे ज्वरग्रस्त पुरुषको लाभ होता है। उस पुरुषका नाम लेकर कहे—'ॐ अमुकपुरुषस्य ज्वरं नाशय जुं सः वौषट्।'

'वृष्टिके लिये निम्नाङ्कित प्रयोग करे। जलमें ग्रहोंसहित वरुणदेवका पूजन करके वारुण अथवा गुह्यक-मन्त्रसे तिलोंकी आहुति दे। तिलके इस होमसे मनुष्य आकाशमें ऐसे मेघोंको स्थापित कर सकता है, जो सम्पूर्ण दिगन्तों तथा पृथ्वीको वर्षाके जलसे आप्लावित करनेमें समर्थ हों। फिर शीघ्र ही पाशुपतमन्त्रसे उन मेघोंको वर्षाके लिये विदीर्ण करे। मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ श्लीं पशु हूं फट् मेघान् स्फुटीक्रियताम् हूं फट्।'

'समस्त उपद्रवोंके नाशके लिये रुद्रमन्त्रसे शान्ति-अभिषेक करे तथा तिल आदिसे विधिपूर्वक होम-यज्ञ करे। अब प्रस्तुत विषयका प्रतिपादन करते हैं।'

न्यास करे। तत्पश्चात् उसे कुण्डके दक्षिण भागमें रखे और यह भावना करे कि 'इस चूल्हेका शरीर धर्माधर्ममय है।' फिर उसकी शुद्धिके लिये उसके स्पर्शपूर्वक अस्त्र-मन्त्रका जप करे। इसके बाद अस्त्र-मन्त्र (**फट्**)-के जपसे अभिमन्त्रित गायके घीसे मार्जित हुई उस बटलोईको चूल्हेपर चढ़ावे॥ ५८—६२½ ॥

उसमें अस्त्र-मन्त्रसे शुद्ध किये हुए गोदुग्धको सौ बार प्रासाद-मन्त्र (**हौं**)-से अभिमन्त्रित करके डाले। फिर उस दूधमें साँवाँ आदिके चावल छोड़े। उसकी मात्रा इस प्रकार है—एक शिष्यकी दीक्षा-विधिके लिये पाँच पसर चावल डाले और दो-तीन आदि जितने शिष्य बढ़ें, उन सबके लिये क्रमशः एक-एक पसर चावल बढ़ाता जाय। फिर अस्त्र-मन्त्रसे आग जलावे एवं कवच-मन्त्र (**हुम्**)-से बटलोईको ढक दे। साधक पूर्वाभिमुख हो उक्त शिवाग्निमें मूल-मन्त्रके उच्चारणपूर्वक चरुको पकावे। जब वह अच्छी तरह सीझ जाय, तब वहाँ स्रुवाको घीसे भरकर स्वाहान्त संहिता-मन्त्रोंद्वारा उस चूल्हेमें ही 'तप्ताभिघार' नामक आहुति दे। तदनन्तर मण्डलमें चरु-स्थालीको रखकर अस्त्र-मन्त्रसे उसपर कुश रख दे। इसके बाद प्रणवसे चूल्हेमें उल्लेखन और हृदय-मन्त्रसे लेपन करके पूर्ववत् 'तप्ताभिघार' के स्थानमें 'सीताभिघार' नामक आहुति दे। इस तरह चूल्हा शीतल होता है। सीताभिघार-आहुतिकी विधि यह है कि संहिता-मन्त्रोंके अन्तमें '**वौषट्**' पद जोड़कर उसके द्वारा कुण्ड-मण्डपके पश्चिम भागमें दर्भ आदिके आसनपर प्रत्येक शिष्यके निमित्तसे एक-एक आहुति दे। फिर स्रुक्‌द्वारा सम्पात-होम करनेके पश्चात् संहिता-मन्त्रसे शुद्धि करे। फिर अन्तमें '**वषट्**' लगे हुए उसी संहिता-मन्त्रद्वारा एक बार चरु लेकर धेनुमुद्राद्वारा उसका अमृतीकरण करे। इसके बाद वेदीपर उसके द्वारा शान्ति-होम करे॥ ६३—७०½ ॥

तत्पश्चात् गुरु अपने शिष्योंके लिये, अग्निदेवताके लिये तथा लोकपालोंके लिये घृतसहित भाग नियत करे। ये तीनों भाग समान घीसे युक्त होते हैं। इन सबके नाम-मन्त्रोंके अन्तमें '**नमः**' पद लगाकर उनके द्वारा उनका भाग अर्पित करे और उसी मन्त्रसे उन्हें आचमनीय निवेदित करे। तदनन्तर मूल-मन्त्रसे एक सौ आठ आहुति देकर विधिवत् पूर्णाहुति होम करे। इसके बाद मण्डलके भीतर कुण्डके पूर्वभागमें अथवा शिव एवं कुण्डके मध्यभागमें हृदय-मन्त्रसे रुद्र-मातृकागण आदिके लिये अन्तर्बलि अर्पित करे। फिर शिवका आश्रय ले, उनकी आज्ञा पाकर एकत्वकी भावना करते हुए इस प्रकार चिन्तन करे—'मैं सर्वज्ञता आदि गुणोंसे युक्त और समस्त अध्वाओंके ऊपर विराजमान शिव हूँ। यह यज्ञस्थान मेरा अंश है। मैं यज्ञका अधिष्ठाता हूँ' यों अहंकार—शिवसे अपने ऐकात्म्य-बोधपूर्वक गुरु यज्ञमण्डपसे बाहर निकले॥ ७१—७५½ ॥

फिर अस्त्र-मन्त्र (**फट्**)-द्वारा निर्मित मण्डलमें पूर्वाग्र उत्तम कुश बिछाकर, उसमें प्रणवमय आसनकी भावना करके, उसके ऊपर स्नान किये हुए शिष्यको बिठावे। उस समय शिष्यको श्वेत वस्त्र और श्वेत उत्तरीय धारण किये रहना चाहिये। यदि वह मुक्तिका इच्छुक हो तो उसका मुख उत्तर दिशाकी ओर होना चाहिये और यदि वह भोगका अभिलाषी हो तो उसे पूर्वाभिमुख बिठाना चाहिये। शिष्यके शरीरका घुटनोंसे ऊपरका ही भाग उस प्रणवासनपर स्थित रहना चाहिये, नीचेका भाग नहीं। इस प्रकार बैठे हुए शिष्यकी ओर गुरु पूर्वाभिमुख होकर बैठे। मोक्षरूपी प्रयोजनकी सिद्धिके लिये शिष्यके पैरोंसे लेकर शिखातकके अङ्गोंका क्रमशः निरीक्षण करना चाहिये और यदि भोगरूपी प्रयोजनकी सिद्धि अभीष्ट हो तो इसके विपरीत क्रमसे शिष्यके

अङ्गोंपर दृष्टिपात करना उचित है, अर्थात् उस दशामें शिखासे लेकर पैरोंतकके अङ्गोंका क्रमशः निरीक्षण करना चाहिये।* उस समय गुरुकी दृष्टिमें शिष्यके प्रति कृपाप्रसाद भरा हो और वह दृष्टि शिष्यके समक्ष शिवके ज्योतिर्मय स्वरूपको अनावृतरूपसे अभिव्यक्त कर रही हो। इसके बाद अस्त्र-मन्त्रसे अभिमन्त्रित जलसे शिष्यका प्रोक्षण करके मन्त्राम्बु-स्नानका कार्य सम्पन्न करे (प्रोक्षण-मन्त्रसे ही यह स्नान सम्पन्न हो जाता है)। तदनन्तर विघ्नोंकी शान्ति और पापोंके नाशके लिये भस्म-स्नान करावे। इसकी विधि यों है—अस्त्र-मन्त्रद्वारा अभिमन्त्रित भस्म लेकर उसके द्वारा शिष्यको सृष्टि-संहार-योगसे ताडित करे (अर्थात् ऊपरसे नीचे तथा नीचेसे ऊपरतक अनुलोम-विलोम-क्रमसे उसके ऊपर भस्म छिड़के)॥ ७६—८०॥

फिर सकलीकरणके लिये पूर्ववत् अस्त्र-जलसे शिष्यका प्रोक्षण करके उसकी नाभिसे ऊपरके भागमें अस्त्र-मन्त्रका उच्चारण करते हुए कुशाग्रसे मार्जन करे और हृदय-मन्त्रका उच्चारण करके पापोंके नाशके लिये पूर्वोक्त कुशोंके मूलभागसे नाभिके नीचेके अङ्गोंका स्पर्श करे। साथ ही समस्त पाशोंको दो टूक करनेके लिये पुनः अस्त्र-मन्त्रसे उन्हीं कुशोंद्वारा यथोक्तरूपसे मार्जन एवं स्पर्श करे। तत्पश्चात् शिष्यके शरीरमें आसनसहित साङ्ग-शिवका न्यास करे। न्यासके पश्चात् शिवकी भावनासे ही पुष्प आदि द्वारा उसका पूजन करे। इसके बाद नेत्र-मन्त्र (**वौषट्**) अथवा हृदय-मन्त्र (**नमः**)-से शिष्यके दोनों नेत्रोंमें श्वेत, कोरदार एवं अभिमन्त्रित वस्त्रसे पट्टी बाँध दे और प्रदक्षिणक्रमसे उसको शिवके दक्षिण पार्श्वमें ले जाय। वहाँ षडुत्थ (छहों अध्वाओंसे ऊपर उठा हुआ अथवा उन छहोंसे उत्पन्न) आसन देकर यथोचित रीतिसे शिष्यको उसपर बिठावे॥ ८१—८४ $\frac{1}{2}$ ॥

संहारमुद्राद्वारा शिवमूर्तिसे एकीभूत अपने-आपको उसके हृदय-कमलमें अवरुद्ध करके उसका काय-शोधन करे। तत्पश्चात् न्यास करके उसकी पूजा करे। पूर्वाभिमुख शिष्यके मस्तकपर मूल-मन्त्रसे शिवहस्त रखना चाहिये, जो रुद्र एवं ईशका पद प्रदान करनेवाला है। इसके बाद शिव-मन्त्रसे शिष्यके हाथमें शिवकी सेवाकी प्राप्तिके उपायस्वरूप पुष्प दे और उसे शिवपर ही चढ़वावे। तदनन्तर गुरु उसके नेत्रोंमें बँधे हुए वस्त्रको हटाकर उसके लिये शिवदेवगणाङ्कित स्थान, मन्त्र, नाम आदिकी उद्भावना करे, अथवा अपनी इच्छासे ही ब्राह्मण आदि वर्णोंके क्रमशः नामकरण करे॥ ८५—८८ $\frac{1}{2}$ ॥

शिव-कलश तथा वार्धानीको प्रणाम करवाकर अग्निके समीप अपने दाहिने आसनपर पूर्ववत् उत्तराभिमुख शिष्यको बिठावे और यह भावना करे कि 'शिष्यके शरीरसे सुषुम्णा निकलकर मेरे शरीरमें विलीन हो गयी है।' स्कन्द! इसके बाद मूलमन्त्रसे अभिमन्त्रित दर्भ लेकर उसके अग्रभागको तो शिष्यके दाहिने हाथमें रखे और मूलभागको अपनी जंघापर। अथवा अग्रभागको ही अपनी जंघापर रखे और मूलभागको शिष्यके दाहिने हाथमें॥ ८९—९१ $\frac{1}{2}$ ॥

शिव-मन्त्रद्वारा रेचक प्राणायामकी क्रिया करते हुए शिष्यके हृदयमें प्रवेशकी भावना करके पुनः उसी मन्त्रसे पूरक प्राणायामद्वारा अपने हृदयाकाशमें लौट आनेकी भावना करे। फिर शिवाग्निसे इसी तरह नाडी-संधान करके उसके संनिधानके लिये हृदय-मन्त्रसे तीन आहुतियाँ दे।

* सोमशम्भुकी 'कर्मकाण्ड-क्रमावली' श्लोक ७०४ में दृष्टिपातका क्रम इसके विपरीत है। वहाँ 'मुक्तौ भुक्तौ विलोमतः' के स्थानमें 'भुक्त्यै मुक्त्यै विलोमतः' पाठ है।

शिवहस्तकी स्थिरताके लिये मूल-मन्त्रसे एक सौ आहुतियोंका हवन करे। इस प्रकार करनेसे शिष्य समय-दीक्षामें संस्कारके योग्य हो जाता है॥ ९२—९५॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'समय-दीक्षाकी योग्यताके आपादक-विधानका वर्णन' नामक इक्यासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८१॥

बयासीवाँ अध्याय

समय-दीक्षाके अन्तर्गत संस्कार-दीक्षाकी विधिका वर्णन

भगवान् शिव कहते हैं—षडानन! अब मैं संस्कार-दीक्षाकी विधिका वर्णन करूँगा, सुनो—अग्निमें स्थित महेश्वरके शिवा-शिवमय (अर्ध-नारीश्वर) रूपका अपने हृदयमें आवाहन करे। शिव और शिवा दोनों एक शरीरमें ही परस्पर सटे हुए हैं—इस प्रकार ध्यानद्वारा देखकर उनका पूजन करके हृदय-मन्त्रसे संतर्पण करे। फिर उनके संनिधानके लिये हृदय-मन्त्रसे ही अग्निमें पाँच आहुतियाँ दे। तदनन्तर अस्त्र-मन्त्रसे अभिमन्त्रित पुष्पद्वारा शिष्यके हृदयमें ताड़ना दे, अर्थात् उसके वक्षपर उस फूलको फेंके। फिर उसके भीतर प्रकाशमान नक्षत्रकी आकृतिमें चैतन्य (जीव)-की भावना करे। तत्पश्चात् हुंकारयुक्त रेचक प्राणायामके योगसे शिष्यके हृदयमें भावनाद्वारा प्रवेश करके संहारिणीमुद्राद्वारा उस जीवचैतन्यको वहाँसे खींचकर पूरक प्राणायामके योगसे उसे अपने हृदयमें स्थापित करे॥ १—४॥

तदनन्तर 'उद्भव' नामक मुद्राका प्रदर्शन करके हृत्सम्पुटित आत्ममन्त्रका उच्चारण करते हुए रेचक प्राणायामके सहयोगसे उसका वागीश्वरी देवीकी योनिमें भावनाद्वारा आधान करे। उक्त मन्त्रका स्वरूप इस प्रकार है—**ॐ हां हां हामात्मने नमः**। इसके बाद अत्यन्त प्रज्वलित एवं धूमरहित अग्निमें अभीष्ट-सिद्धिके लिये आहुति दे। अप्रज्वलित तथा धूमयुक्त अग्निमें किया गया होम सफल नहीं होता है। यदि अग्निकी लपटें दक्षिणावर्त उठ रही हों, उससे उत्तम गन्ध प्रकट हो रही हो तथा वह अग्नि सुस्निग्ध प्रतीत होती हो तो उसे श्रेष्ठ बताया गया है। इसके विपरीत जिस अग्निसे चिनगारियाँ छूटती हों तथा जिसकी लपट धरतीको ही चूम रही हो, उसे उत्तम नहीं कहा गया है*॥ ५—८॥

इस प्रकारके चिह्नोंसे शिष्यके पापको जानकर उसका हवन कर दे, अथवा पाप-भक्षण-निमित्तक होमसे उस पापको जला डाले। फिर नूतन रूपसे उसमें द्विजत्वकी प्राप्ति, रुद्रांशकी भावना, आहार और बीजकी शुद्धि, गर्भाधान, गर्भ-स्थिति (पुंसवन), सीमन्तोन्नयन, जातकर्म तथा

---

* इस श्लोकके बाद सोमशम्भुकी 'कर्मकाण्ड-क्रमावली'में तीन श्लोक अधिक उपलब्ध होते हैं, जिनमें शिष्यके पापविशेषको जाननेके लिये अग्निके लक्षण दिये गये हैं। वे श्लोक इस प्रकार हैं—

अन्तेवासिकृतं पापं जानीयादग्निलक्षणैः। विष्ठागन्धे स भूहर्ता ब्रह्महा गुरुतल्पगः॥
सुरापो गुरुहन्ता च गोघ्नश्च कृतनाशनः। कृशेऽग्नौ शवगन्धे च गर्भभर्त्तृविनाशनः॥
भ्रमति स्त्रीवधे वह्निः कम्पते हेमहर्तरि। वधे स्फुटति बालस्य निस्तेजा गर्भघातके॥

'हवनीय अग्निके लक्षणोंसे शिष्यद्वारा किये गये पापविशेषको जानना चाहिये। यदि उस अग्निसे विष्ठाकी-सी दुर्गन्ध प्रकट होती हो तो यह जानना चाहिये कि वह शिष्य भूमिहर्ता, ब्रह्महत्यारा, गुरुपत्नीगामी, शराबी, गुरुघाती, गोवध करनेवाला तथा कृतघ्न रहा है। यदि अग्नि क्षीण हो और उससे मुर्देकी-सी बदबू आ रही हो तो उस शिष्यको गर्भ-हत्यारा और स्वामिघाती समझना चाहिये। यदि शिष्यमें स्त्रीवधजनित पाप हो तो उसके आहुति देते समय आगकी लपट सब ओर चक्कर देती है और यदि वह सुवर्णकी चोरी करनेवाला है तो उससे अग्निदेवमें कम्पन होने लगता है। यदि शिष्यने बालहत्याका पाप किया है तो अग्निमें किसी वस्तुके फूटनेकी-सी आवाज होती है। यदि शिष्य गर्भघाती है तो उसके संनिहित होनेसे आग निस्तेज हो जाती है।'

नामकरणके लिये पृथक्-पृथक् मूल-मन्त्रसे एक सौ पाँच-पाँच आहुतियाँ दे तथा चूडाकर्म आदिके लिये इनकी अपेक्षा दशमांश आहुतियाँ प्रदान करे। इस प्रकार जिसका बन्धन शिथिल हो गया है, उस जीवात्माके भीतर जो शक्तिका उत्कर्ष होता है, वही उसके रुद्रपुत्र होनेमें निमित्त बनकर 'गर्भाधान' कहलाता है। स्वतन्त्रतापूर्वक उसमें जो आत्मगुणोंकी अभिव्यक्ति होती है, उसीको यहाँ 'पुंसवन' माना गया है। माया और आत्मा—दोनों एक-दूसरेसे पृथक् हैं, इस प्रकार जो विवेक-ज्ञान उत्पन्न होता है, उसीका नाम यहाँ 'सीमन्तोन्नयन' है॥ ९—१३॥

शिव आदि शुद्ध सद्वस्तुको स्वीकार करना 'जन्म' माना गया है। मुझमें शिवत्व है अथवा मैं शिव हूँ, इस प्रकार जो बोध होता है, वही शिवत्वके योग्य शिष्यका 'नामकरण' है। संहार-मुद्रासे प्रकाशमान अग्निकणके समान प्रतीत होनेवाले जीवात्माको लेकर अपने हृदयकमलमें स्थापित करे। तदनन्तर कुम्भक प्राणायामके योगपूर्वक मूल-मन्त्रका उच्चारण करते हुए उस समय हृदयके भीतर शक्ति और शिवकी समरसताका सम्पादन करे॥ १४—१६॥

ब्रह्मा आदि कारणोंका क्रमशः त्याग करते हुए रेचक-योगसे जीवात्माको शिवके समीप ले जाकर फिर उद्भवमुद्राके द्वारा उसे वापस ले ले और पूर्वोक्त हृत्सम्पुटित आत्ममन्त्रद्वारा रेचक प्राणायाम करते हुए विधानवेत्ता गुरु शिष्यके हृदय-कमलकी कर्णिकामें उस जीवात्माको स्थापित कर दे। इसके बाद गुरु शिव और अग्निकी तत्कालोचित पूजा करे और शिष्यसे अपने लिये प्रणाम करवाकर उसे समयाचारका उपदेश दे। वह उपदेश इस प्रकार है—'इष्टदेवता (शिव)-की कभी निन्दा न करे; शिव-सम्बन्धी शास्त्रोंकी भी निन्दासे दूर रहे; शिव-निर्माल्य आदिको कभी न लाँघे। जीवन-पर्यन्त शिव, अग्नि तथा गुरुदेवकी पूजा करता रहे। बालक, मूढ़, वृद्ध, स्त्री, भोगार्थी (भूखे) तथा रोगी मनुष्योंको यथाशक्ति धन आदि आवश्यक वस्तुएँ दे।' समर्थ पुरुषके लिये सब कुछ दान करनेका नियम बताया गया है॥ १७—२१॥

व्रतके अङ्गभूत जटा, भस्म, दण्ड, कौपीन एवं संयमपोषक अन्य वस्तुओंको ईशान आदि नामोंसे अथवा उनके आदिमें '**नमः**' लगाकर उन नाम-मन्त्रोंसे क्रमशः अभिमन्त्रित करके स्वाहान्त संहिता-मन्त्रोंका पाठ करते हुए उन्हें पात्रोंमें रखे और पूर्ववत् सम्पाताभिहत (संस्कारविशेषसे संस्कृत) करके स्थण्डिलेश (वेदीपर स्थापित-पूजित भगवान् शिव)-के समक्ष उपस्थित करे। इनकी रक्षाके लिये क्षणभर कलशके नीचे रखे। इसके बाद गुरु शिवसे आज्ञा लेकर उक्त सभी वस्तुएँ व्रतधारी शिष्यको अर्पित करे॥ २२—२४॥

इस प्रकार विशेषरूपसे विशिष्ट समय-दीक्षा-सम्पन्न हो जानेपर शिष्य अग्निहोम तथा आगमज्ञानके योग्य हो जाता है*॥ २५॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'समय-दीक्षाके अन्तर्गत संस्कार-दीक्षाकी विधिका वर्णन' नामक बयासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८२॥

---

* सोमशम्भुके ग्रन्थमें यहाँ निम्नाङ्कित पंक्तियाँ अधिक हैं—

नाडीसंधानहोमस्तु मन्त्राणां तर्पणं तथा। पूर्वजातेः समुद्धारो दिजत्वापादनं तथा॥
चैतन्यस्यापि संस्कारो रुद्रांशापादनं तथा। दत्त्वा पवित्रकं होमशतं वाथ सहस्रकम्॥
दीक्षैषा सामयी प्रोक्ता रुद्रेशपददायिनी। (श्लोक ७४९—७५१)

'नाडीसंधान-होम, मन्त्रतर्पण, शिष्यका पूर्व-जातिसे उद्धार, उसमें नूतनरूपसे द्विजत्वका सम्पादन, चैतन्यसंस्कार, रुद्रांशका आपादन तथा पवित्रक-दानपूर्वक सौ बार या सहस्र बार होम—इन क्रियाओंको 'सामयी-दीक्षा' कहा गया है। यह रुद्रेश-पद प्रदान करनेवाली है।'

तिरासीवाँ अध्याय
निर्वाण-दीक्षाके अन्तर्गत अधिवासनकी विधि

भगवान् शंकर कहते हैं—षडानन स्कन्द! तदनन्तर निर्वाण-दीक्षामें पाशबन्धन-शक्तिके लिये और ताड़न आदिके लिये मूल-मन्त्र आदिका दीपन करे। उस समय प्रत्येकके लिये एक-एक या तीन-तीन आहुति देकर मन्त्रोंका दीपन-कर्म सम्पन्न करे। आदिमें प्रणव और अन्तमें '**हूं फट्**' लगाकर बीचमें बीज, गर्भ एवं शिखाबन्ध-स्वरूप तीन '**हूं**' का उच्चारण करे। इससे मूल-मन्त्रका दीपन होता है, यथा—'**ॐ हूं हूं हूं हूं फट्।**' इसीसे हृदयका दीपन होता है। यथा —'**ॐ हूं हूं हूं हूं फट् हृदयाय नमः।**' फिर '**ॐ हूं हूं हूं हूं फट् शिरसे स्वाहा।**' आदि कहकर सिर आदि अङ्गोंका दीपन करे। समस्त क्रूर कर्मोंमें इसी तरह मूलादिका दीपन करना उचित है। शान्तिकर्म, पुष्टिकर्म और वशीकरणमें आदिगत प्रणव-मन्त्रके अन्तमें '**वषट्**' जोड़कर उसी मन्त्रद्वारा प्रत्येकका दीपन करे। '**वषट्**' और '**वौषट्**' से युक्त तथा सम्पूर्ण काम्य-कर्मोंके ऊपर स्थित शम्बर-मन्त्रोंद्वारा आप्यायन आदि सभी कर्मोंमें हवन करना चाहिये॥ १—५॥

तत्पश्चात् अपने वामभागमें स्थित और मण्डलमें विराजमान शुद्ध शरीरवाले शिष्यका पूजन करके, एक उत्तम सूत्रमें सुषुम्णा नाड़ीकी भावना करके, मूल-मन्त्रसे उसको शिखाबन्धतक ले जाकर, वहाँसे फिर पैरोंके अँगूठेतक ले आवे। तत्पश्चात् संहार-क्रमसे उसे पुनः मुमुक्षु शिष्यकी शिखाके समीप ले जाय और वहीं उसे बाँध दे। पुरुषके दाहिने भागमें और नारीके वामभागमें उस सूत्रको नियुक्त करना चाहिये। इसके बाद शिष्यके मस्तकपर शक्तिमन्त्रसे पूजित शक्तिको संहारमुद्राद्वारा लाकर उक्त सूत्रमें उसी मन्त्रसे जोड़ दे। सुषुम्णा नाड़ीको लेकर मूल-मन्त्रसे उसका सूत्रमें न्यास करे और हृदय-मन्त्रसे उसकी पूजा करे। तदनन्तर कवच-मन्त्रसे अवगुण्ठित करके हृदय-मन्त्रद्वारा तीन आहुतियाँ दे। ये आहुतियाँ नाड़ीके संनिधानके लिये दी जाती हैं। शक्तिके संनिधानके लिये भी इसी तरह आहुति देनेका विधान है॥ ६—१०॥

तदनन्तर '**ॐ हां तत्त्वाध्वने नमः।**', '**ॐ हां पदाध्वने नमः।**', '**ॐ हां वर्णाध्वने नमः।**', '**ॐ हां मन्त्राध्वने नमः।**', '**ॐ हां कलाध्वने नमः।**', '**ॐ हां भुवनाध्वने नमः।**'—इन मन्त्रोंसे पूर्वोक्त सूत्रमें छः प्रकारके अध्वाओंका न्यास करके अस्त्र-मन्त्रद्वारा अभिमन्त्रित जलसे शिष्यका प्रोक्षण करे। फिर अस्त्र-मन्त्रके जपपूर्वक पुष्प लेकर उसके द्वारा शिष्यके हृदयमें ताड़न करे। इसके बाद हूंकारयुक्त रेचक प्राणायामके योगसे वहाँ शिष्यके शरीरमें प्रवेश करके, उसके भीतर हंस-बीजमें स्थित जीवचैतन्यको अस्त्र-मन्त्र पढ़कर वहाँसे विलग करे। इसके बाद '**ॐ हः हूं फट्।**' इस शक्तिसूत्रसे तथा '**हां हां स्वाहा।**' इस मन्त्रसे संहारमुद्राद्वारा उक्त नाड़ीभूत सूत्रमें उस विलग हुए जीवचैतन्यको नियुक्त करे। '**ॐ हां हां हामात्मने नमः।**' इस मन्त्रका जप करते हुए जीवात्माके व्यापक होनेकी भावना करे। फिर कवच-मन्त्रसे उसका अवगुण्ठन करे और उसके सांनिध्यके लिये हृदय-मन्त्रसे तीन बार आहुतियाँ दे॥ ११—१८॥

तत्पश्चात् विद्यादेहका न्यास करके उसमें शान्त्यतीतकलाका अवलोकन करे। उस कलाके अन्तर्गत इतर तत्त्वोंसे युक्त आत्माका चिन्तन करे। '**ॐ हूं शान्त्यतीतकलापाशाय नमः।**' इस मन्त्रसे उक्त कलाका अवलोकन करे। दो तत्त्व, एक मन्त्र, एक पद, सोलह वर्ण, आठ भुवन, क, ख आदि बीज और नाड़ी, दो कलाएँ, विषय, गुण और एकमात्र कारणभूत सदाशिव—इन सबका श्वेतवर्णा शान्त्यतीतकलामें अन्तर्भाव करके '**ॐ हूं शान्त्यतीतकलापाशाय हूं फट्।**'

इस मन्त्रसे प्रताड़न करे। संहारमुद्राद्वारा उक्त कलापाशको लेकर सूत्रके मस्तकपर रखे और उसकी पूजा करे। तदनन्तर उसके सांनिध्यके लिये पूर्ववत् तीन आहुतियाँ दे। शान्त्यतीतकलाका अपना बीज है—'**हूं**'। दो तत्त्व, दो अक्षर, बीज, नाड़ी, क, ख—ये दो अक्षर, दो गुण, दो मन्त्र, कमलमें विराजमान एकमात्र कारणभूत ईश्वर, बारह पद, सात लोक और एक विषय—इन सबका कृष्णवर्णा शान्तिकलाके भीतर चिन्तन करे। तत्पश्चात् पूर्ववत् ताड़न करके सूत्रके मुखभागमें इन सबका नियोजन करे। इसके बाद सांनिध्यके लिये अपने बीज-मन्त्रद्वारा तीन आहुतियाँ दे। शान्तिकलाका अपना बीज है—'**हूं हूं**'॥ १९—२७॥

सात तत्त्व, इक्कीस पद, छः वर्ण, एक शम्बर, पचीस लोक, तीन गुण, एक विषय, रुद्ररूप कारणतत्त्व, बीज, नाड़ी और क, ख—ये दो कलाएँ—इन सबका अत्यन्त रक्तवर्णवाली विद्याकलामें अन्तर्भाव करके, आवाहन और संयोजनपूर्वक पूर्वोक्त सूत्रके हृदयभागमें स्थापित करके अपने मन्त्रसे पूजन करे और इन सबकी संनिधिके लिये पूर्ववत् तीन आहुतियाँ दे। आहुतिके लिये बीज-मन्त्र इस प्रकार है—'**हूं हूं हूं।**' चौबीस तत्त्व, पचीस वर्ण, बीज, नाड़ी, क, ख—ये दो कलाएँ, बाईस पद, साठ लोक, साठ कला, चार गुण, तीन मन्त्र, एक विषय तथा कारणरूप श्रीहरिका शुक्लर्णा प्रतिष्ठा-कलामें अन्तर्भाव करके ताड़न आदि करे। फिर इन सबका पूर्वोक्त सूत्रके नाभिभागमें संयोजन करके संनिधिकरणके लिये तीन आहुतियाँ दे। उसके लिये बीज-मन्त्र इस प्रकार है—'**हूं हूं हूं हूं।**' एक सौ आठ भुवन या लोक, अट्ठाईस पद, बीज, नाड़ी और समीरकी दो-दो संख्या, दो इन्द्रियाँ, एक वर्ण, एक तत्त्व, एक विषय, पाँच गुण, कारणरूप कमलासन ब्रह्मा और चार शम्बर—इन सबका पीतवर्णा निवृत्तिकलामें अन्तर्भाव करके ताड़न करे। इन्हें ग्रहण करके सूत्रके चरणभागमें स्थापित करनेके पश्चात् इनकी पूजा करे और इनके सांनिध्यके लिये अग्निमें तीन आहुतियाँ दे। आहुतिके लिये बीज-मन्त्र यों है—'**हूं हूं हूं हूं हूं**'॥ २८—३५॥

इस प्रकार सूत्रगत पाँच कलाओंको लेकर शिष्यके शरीरमें उनका संयोजन करे। सबीजादीक्षामें समयाचार-पाशसे, देहारम्भक धर्मसे, मन्त्रसिद्धिके फलसे तथा इष्टापूर्तादि धर्मसे भी भिन्न चैतन्यरोधक सूक्ष्म प्रबन्धकका कलाओंके भीतर चिन्तन करे। इसी क्रमसे अपने मन्त्रद्वारा तीन-तीन आहुतियाँ देते हुए तर्पण और दीपन करे। '**ॐ हूं शान्त्यतीत-कलापाशाय स्वाहा।**' इत्यादि मन्त्रसे तर्पण करे। '**ॐ हूं हूं शान्त्यतीतकलापाशाय हूं हूं फट्।**'—इत्यादि मन्त्रसे दीपन करे। पूर्वोक्त सूत्रको व्याप्ति-बोधके लिये पाँच कला-स्थानोंमें सुरक्षापूर्वक रखकर उसपर कुङ्कुम आदिके द्वारा साङ्ग-शिवका पूजन करे। फिर कला-मन्त्रोंके अन्तमें '**हूं फट्।**'— इन पदोंको जोड़कर उनका उच्चारण करते हुए क्रमशः पाशोंका भेदन करके नमस्कारान्त कलामन्त्रोंद्वारा ही उनके भीतर प्रवेश करे। साथ ही उन कलाओंका ग्रहण एवं बन्धन भी करे। '**ॐ हूं हूं हूं शान्त्यतीतकलां गृह्णामि बध्नामि च।**'—इत्यादि मन्त्रोंद्वारा कलाओंके ग्रहण एवं बन्धन आदिका प्रयोग होता है। पाश आदिका वशीकरण (या भेदन), ग्रहण और बन्धन तथा पुरुषके प्रति सम्पूर्ण व्यापारोंका निषेध—यह बारंबार प्रत्येक कलाके लिये आवश्यक कर्तव्य है॥ ३६—४४॥

तदनन्तर शिष्यको बिठाकर, पूर्वोक्त सूत्रको उसके कंधेसे लेकर उसके हाथमें दे और भूले-भटके पापोंका नाश करनेके लिये सौ बार मूल-मन्त्रसे हवन करे। अस्त्र-सम्बन्धी मन्त्रके सम्पुटमें पुरुषके और प्रणवके सम्पुटमें स्त्रीके सूत्रको रखकर, उसे हृदय-मन्त्रसे सम्पुटित करके उसी मन्त्रसे उसकी पूजा करे। साङ्ग-शिवसे सूत्रको

सम्पात-शोधित करके कलशके नीचे रखे और उसकी रक्षाके लिये इष्टदेवसे प्रार्थना करे। शिष्यके हाथमें फूल देकर कलश आदिका पूजन एवं प्रणाम करनेके अनन्तर याग-मन्दिरके मध्यभागसे बाहर जाय। वहाँ तीन मण्डल बनाकर मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले शिष्योंको उत्तराभिमुख बिठावे और भोगकी अभिलाषा रखनेवाले शिष्योंको पूर्वाभिमुख॥ ४५—४९॥

पहले कुशयुक्त हाथसे तीन चुल्लू पञ्चगव्य पिलावे। बीचमें कोई आचमन न करे। तत्पश्चात् दूसरी बार प्रत्येक शिष्यको तीन या आठ ग्रास चरु दे। मुक्तिकामी शिष्यको पलाशके दोनेमें और भोगेच्छुको पीपलके पत्तेसे बने हुए दोनेमें चरु देकर उसे हृदय-मन्त्रके उच्चारणपूर्वक दाँतोंके स्पर्शके बिना खिलाना चाहिये। चरु देकर गुरु स्वयं हाथ धो शुद्ध होकर, पवित्र जलसे उन शिष्योंको आचमन करावे। इसके बाद हृदय-मन्त्रसे दातुन करके उसे फेंक दे।[1] उसका मुखभाग शुभ दिशाकी ओर हो तो उसका शुभ फल होता है। न्यूनता आदि दोषको दूर करनेके लिये मूल-मन्त्रसे एक सौ आठ बार आहुति दे। स्थण्डिलेश्वर (वेदीपर स्थापित-पूजित शिव)-को सम्पूर्ण कर्म समर्पित करे। तदनन्तर इनकी पूजा और विसर्जन करके चण्डेशका पूजन करे॥ ५०—५४॥

तत्पश्चात् निर्माल्यको हटाकर चरुके शेष भागको अग्निमें होम दे। कलश और लोकपालोंका पूजन एवं विसर्जन करके गण और अग्निका भी, यदि वे बाह्य दिशामें रक्षित हों तो, विसर्जन करे। मण्डलसे बाहर लोकपालोंको भी संक्षेपसे बलि अर्पित करके भस्म और शुद्ध जलके द्वारा स्नान करनेके पश्चात् यागमण्डपमें प्रवेश करे। वहाँ गृहस्थ साधकोंको कुशकी शय्यापर अस्त्र-मन्त्रसे रक्षित करके सुलावे। उनका सिरहाना पूर्वकी ओर होना चाहिये। जो साधक या शिष्य विरक्त हों उन्हें हृदय-मन्त्रसे उत्तम भस्ममयी शय्यापर सुलावे। उन सबके मस्तक दक्षिण दिशाकी ओर होने चाहिये। सभी शिष्य अस्त्र-मन्त्रसे रक्षित होकर शिखा-मन्त्रसे अपनी-अपनी शिखा बाँध लें। तदनन्तर गुरु उन्हें स्वप्न-मानवका परिचय देकर सो जानेकी आज्ञा प्रदान करे और स्वयं मण्डलसे बाहर चला जाय॥ ५५—५९॥

इसके बाद **'ॐ हिलि हिलि शूलपाणये नमः स्वाहा।'** इस मन्त्रसे पञ्चगव्य और चरुका प्राशन करके दन्तधावन ले आचमन करे। फिर भगवान् शिवका ध्यान करके पवित्र शय्यापर आकर दीक्षागत क्रियाकाण्डका स्मरण करते हुए गुरु शयन करे।[2] इस प्रकार दीक्षाधिवासनकी विधि संक्षेपसे बतायी गयी॥ ६०—६२॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'निर्वाण-दीक्षाके अन्तर्गत अधिवासनकी विधिका वर्णन' नामक तिरासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८३॥

---

१. 'दन्तकाष्ठं हृदा कृत्वा प्रक्षिपेत् क्षोभने शुभम्।' इस पंक्तिके स्थानमें सोमशम्भुकी 'कर्मकाण्ड-क्रमावली'में इस प्रकार पाठ उपलब्ध होता है—

दन्तकाष्ठं हृदा दत्त्वा तद्दन्ताग्रविचर्वितम्॥
धौतमूर्ध्वमुखं भूमौ क्षेपयेत्पातमुन्नयेत्। प्राक्पश्चिमोत्तरे चोर्ध्वं वदने पातमुत्तमम्॥
सर्वेषामेव शिष्याणामितरास्यमशोभनम्। अशोभननिषेधार्थं शतमस्त्रेण होमयेत्॥ (७९७—७९९)

अर्थात् 'इसके बाद हृदय-मन्त्रसे दन्तकाष्ठ देकर उसे चबानेको कहे। शिष्यके दन्ताग्रभागसे जब वह अच्छी तरह चर्वित हो जाय (कूँच लिया जाय) तो उसे धोकर उसका मुखभाग ऊपरकी ओर रखते हुए पृथ्वीपर फेंकवा दे। जब वह गिर जाय तो उसके सम्बन्धमें निम्नाङ्कित प्रकारसे शुभाशुभका विचार करे। यदि उस दातुनका मुखभाग पूर्व, पश्चिम, उत्तर अथवा ऊर्ध्व दिशाकी ओर हो तो उसका वह गिरना उत्तम माना गया है। इसके सिवा दूसरी दिशाकी ओर उसका मुख हो तो वह सभी शिष्योंके लिये अशुभ होता है। अशुभका निवारण करनेके लिये अस्त्र-मन्त्रसे सौ आहुतियाँ दे।'

२. दीक्षागत क्रियाकाण्डके स्मरणीय स्वरूपका वर्णन सोमशम्भुकी 'कर्मकाण्ड-क्रमावली'में इस प्रकार मिलता है—

मन्त्राणां दीपनं प्रोक्तं ततः सूत्रावलम्बनम्। सुषुम्णानाडिसंयोगं शिष्यचैतन्ययोजनम्॥

चौरासीवाँ अध्याय

निर्वाण-दीक्षाके अन्तर्गत निवृत्तिकला-शोधन-विधि

भगवान् शंकर कहते हैं—स्कन्द! तदनन्तर प्रात:काल उठकर गुरु स्नान आदिसे निवृत्त हो शिष्योंसे उनके द्वारा देखे गये स्वप्नको पूछे। स्वप्नमें दही, ताजा कच्चा मांस और मद्य आदिका दर्शन या उपयोग उत्तम बताया गया है। ऐसा स्वप्न शुभका सूचक होता है। सपनेमें हाथी और घोड़ेपर चढ़ना तथा श्वेत वस्त्र आदिका दर्शन शुभ है। स्वप्नमें तेल लगाना आदि अशुभ माना गया है। उसकी शान्तिके लिये अघोर-मन्त्रसे होम करना चाहिये। प्रात: और मध्याह्न—दो कालोंका नित्य-कर्म करके यज्ञमण्डपमें प्रवेश करे तथा विधिवत् आचमन करके नैमित्तिक विधिमें भी नित्यके समान ही कर्म करे। तत्पश्चात् अध्व-शुद्धि करके अपने ऊपर शिवहस्त रखे। फिर कलशस्थ शिवका पूजन करके क्रमश: इन्द्रादि दिक्पालोंकी भी पूजा करे। मण्डलमें और वेदीपर भी भगवान् शिवका पूजन करना चाहिये। इसके बाद तर्पण, अग्निपूजन, पूर्णाहुति-पर्यन्त होम एवं मन्त्र-तर्पण* करे॥ १—५॥

दु:स्वप्न-दर्शनजनित दोषका निवारण करनेके लिये **'हूं'** सम्पुटित अस्त्र-मन्त्र **(हूं फट् हूं)**-के द्वारा एक सौ आठ आहुतियाँ देकर मन्त्र-दीपन करे। वेदी और कलशके मध्यभागमें अन्तर्बलिका अनुष्ठान करके, शिष्योंके प्रवेशके लिये इष्टदेवसे आज्ञा लेकर, गुरु मण्डपसे बाहर जाय। वहाँ समय-दीक्षाकी ही भाँति मण्डलारोपण आदि करे। सम्पातहोम तथा सुषुम्णा नाड़ीरूप कुशको शिष्यके हाथमें देने आदिसे सम्बद्ध कार्यका सम्पादन करे। फिर निवृत्तिकलाके सांनिध्यके लिये मूल-मन्त्रसे तीन आहुतियाँ देकर, कुम्भस्थ शिवकी पूजा करके कलापाशमय सूत्र अर्पित करे। तदनन्तर पूजित शिष्यके ऊपरी शरीरके दक्षिणी भागमें—उसकी शिखामें उस सूत्रको बाँधे और उसे पैरके अँगूठेतक लंबा रखे। इस प्रकार उस पाशका निवेश करके उसमें मन-ही-मन निवत्तिकलाकी व्याप्तिका दर्शन करे। उसमें एक सौ आठ भुवन जानने योग्य हैं॥ ६—११॥

१. कपाल, २. अज, ३. अहिर्बुध्न्य, ४. वज्रदेह, ५. प्रमर्दन, ६. विभूति, ७. अव्यय, ८. शास्ता, ९. पिनाकी, १०. त्रिदशाधिप—ये दस रुद्र पूर्व दिशामें विराजते हैं। ११. अग्निभद्र, १२. हुताश, १३. पिङ्गल, १४. खादक, १५. हर, १६. ज्वलन, १७. दहन, १८. बभ्रु, १९. भस्मान्तक, २०. क्षपान्तक—ये दस रुद्र अग्निकोणमें स्थित हैं। २१. दम्य, २२. मृत्युहर, २३. धाता, २४. विधाता, २५. कर्ता, २६. काल, २७. धर्म, २८. अधर्म, २९. संयोक्ता, ३०. वियोजक—ये दस रुद्र दक्षिण दिशामें शोभा पाते हैं। ३१. नैर्ऋत्य, ३२. मारुत, ३३. हन्ता, ३४. क्रूरदृष्टि, ३५. भयानक, ३६. ऊर्ध्वकेश, ३७. विरूपाक्ष, ३८. धूम्र, ३९. लोहित, ४०. दंष्ट्री—ये दस रुद्र नैर्ऋत्यकोणमें स्थित हैं। ४१. बल, ४२. अतिबल, ४३. पाशहस्त,

ग्रहणं ताडनं योगं पूजातर्पणदीपनम्। बन्धनं शान्त्यतीतादे: शिवकुम्भसमर्पणम्॥
एवं कर्मक्रम: प्रोक्त: पाशबन्धे शिवेन तु। (८०८—८०९ $\frac{1}{2}$)

'पहले तो मन्त्रोंका दीपन कहा गया है। फिर सूत्रावलम्बन, उसमें सुषुम्णा नाड़ीका संयोग, शिष्यचैतन्यका संयोजन, ग्रहण, ताड़न, योग, पूजा, तर्पण, दीपन, शान्त्यतीत आदि कलाओंका बन्धन तथा शिव-कलश-समर्पण —इस प्रकार भगवान् शिवने पाशबन्धविषयक कर्मकाण्डके क्रमका प्रतिपादन किया है।'

* कहीं-कहीं बह्नितर्पण पाठ भी मिलता है।

४४. महाबल, ४५. श्वेत, ४६. जयभद्र, ४७. दीर्घबाहु, ४८. जलान्तक, ४९. वडवास्य, ५०. भीम—ये दस रुद्र वरुणदिशामें स्थित बताये गये हैं। ५१. शीघ्र, ५२. लघु, ५३. वायुवेग, ५४. सूक्ष्म, ५५. तीक्ष्ण, ५६. क्षमान्तक, ५७. पञ्चान्तक, ५८. पञ्चशिख, ५९. कपर्दी, ६०. मेघवाहन—ये दस रुद्र वायव्यकोणमें स्थित हैं। ६१. जटामुकुटधारी, ६२. नानारत्नधर, ६३. निधीश, ६४. रूपवान्, ६५. धन्य, ६६. सौम्यदेह, ६७. प्रसादकृत्, ६८. प्रकाम, ६९. लक्ष्मीवान्, ७०. कामरूप—ये दस रुद्र उत्तर दिशामें स्थित हैं। ७१. विद्याधर, ७२. ज्ञानधर, ७३. सर्वज्ञ, ७४. वेदपारग, ७५. मातृवृत्त, ७६. पिङ्गाक्ष, ७७. भूतपाल, ७८. बलिप्रिय, ७९. सर्वविद्याविधाता, ८०. सुख-दुःखकर—ये दस रुद्र ईशानकोणमें स्थित हैं। ८१. अनन्त, ८२. पालक, ८३. धीर, ८४. पातालाधिपति, ८५. वृष, ८६. वृषधर, ८७. वीर, ८८. ग्रसन, ८९. सर्वतोमुख, ९०. लोहित—इन दस रुद्रोंकी स्थिति नीचेकी दिशा पाताललोकमें समझनी चाहिये। ९१. शम्भु, ९२. विभु, ९३. गणाध्यक्ष, ९४. त्र्यक्ष, ९५. त्रिदशवन्दित, ९६. संवाह, ९७. विवाह, ९८. नभ, ९९. लिप्सु, १००. विचक्षण—ये दस रुद्र ऊर्ध्व दिशामें विराजमान हैं। १०१. हूहुक, १०२. कालाग्निरुद्र, १०३. हाटक, १०४. कूष्माण्ड, १०५. सत्य, १०६. ब्रह्मा, १०७. विष्णु तथा १०८. रुद्र—ये आठ रुद्र ब्रह्माण्ड-कटाहके भीतर स्थित हैं। यह स्मरण रखना चाहिये कि इन्हींके नामपर एक सौ आठ भुवनोंके भी नाम हैं॥ १२—२५॥

(१) सद्भावेश्वर, (२) महातेजः, (३) योगाधिपते, (४) मुञ्च मुञ्च, (५) प्रमथ प्रमथ, (६) शर्व शर्व, (७) भव भव, (८) भवोद्भव, (९) सर्वभूतसुखप्रद, (१०) सर्वसांनिध्यकर, (११) ब्रह्मविष्णुरुद्रपर, (१२) अनर्चितानर्चित, (१३) असंस्तुतासंस्तुत, (१४) पूर्वस्थित पूर्वस्थित, (१५) साक्षिन् साक्षिन्, (१६) तुरु तुरु, (१७) पतंग पतंग, (१८) पिङ्ग पिङ्ग, (१९) ज्ञान ज्ञान, (२०) शब्द शब्द, (२१) सूक्ष्म सूक्ष्म, (२२) शिव, (२३) सर्व, (२४) सर्वद, (२५) ॐ नमो नमः, (२६) ॐ नमः, (२७) शिवाय, (२८) नमो नमः—ये अट्ठाईस पद हैं। स्कन्द! व्यापक आकाश मन है। '**ॐ नमो वौषट्**'—ये अभीष्ट मन्त्रवर्ण हैं। अकार और लकार (**अं लं**) बीज हैं। इडा और पिङ्गला नामवाली दो नाड़ियाँ हैं। प्राण और अपान—दो वायु हैं और घ्राण तथा उपस्थ—ये दो इन्द्रियाँ हैं। गन्धको 'विषय' कहा गया है तथा इसमें गन्ध आदि पाँच गुण हैं। यह पृथ्वीतत्त्वसे सम्बन्धित है। इसका रंग पीला है। इसकी मण्डलाकृति (भूपुर) चौकोर है और चारों ओरसे वज्रसे अङ्कित है। इस पार्थिव मण्डलका विस्तार सौ कोटि योजन माना गया है। चौदह योनियोंको भी इसीके अन्तर्गत जानना चाहिये॥ २६—३१॥

प्रथम छः योनियाँ मृग आदिकी हैं और आठ दूसरी देवयोनियाँ हैं। उनका विवरण इस प्रकार है—मृग पहली योनि है, दूसरी पक्षी, तीसरी पशु, चौथी सर्प आदि, पाँचवीं स्थावर और छठी योनि मनुष्यकी है। आठ देवयोनियोंमें प्रथम पिशाचोंकी योनि है, दूसरी राक्षसोंकी, तीसरी यक्षोंकी, चौथी गन्धर्वोंकी, पाँचवीं इन्द्रकी, छठी सोमकी, सातवीं प्रजापतिकी और आठवीं योनि ब्रह्माकी बतायी गयी है। पार्थिव-तत्त्वपर इन आठोंका अधिकार माना गया है। लय होता है प्रकृतिमें, भोग होता है बुद्धिमें और ब्रह्मा कारण हैं। तदनन्तर जाग्रत् अवस्था-पर्यन्त समस्त भुवन आदिसे गर्भित हुई निवृत्तिकलाका ध्यान करके उसका अपने मन्त्रमें विनियोग करे। वह मन्त्र इस प्रकार है—

'**ॐ हां ह्लां हां निवृत्तिकलापाशाय हूं फट् स्वाहा।**' इसके बाद '**ॐ हां ह्लां हों निवृत्तिकलापाशाय हूं फट् स्वाहा।**'—इस मन्त्रसे अङ्कुशमुद्राके प्रदर्शनपूर्वक पूरक प्राणायामद्वारा उक्त कलाका आकर्षण करे। फिर '**ॐ हूं हां ह्लां हां हूं निवृत्तिकलापाशाय हूं फट्।**'—इस मन्त्रसे संहारमुद्रा एवं कुम्भक प्राणायामद्वारा उसे नाभिके नीचेके स्थानसे लेकर '**ॐ हां निवृत्तिकलापाशाय नमः।**'—इस मन्त्रसे उद्भव-मुद्रा एवं रेचक प्राणायामके द्वारा उसको कुण्डमें किसी आधार या आसनपर स्थापित करे। तत्पश्चात् '**ॐ हां निवृत्तिकलापाशाय नमः।**'—इस मन्त्रसे अर्घ्यदानपूर्वक पूजन करके इसीके अन्तमें '**स्वाहा**' लगाकर तर्पण और संनिधानके उद्देश्यसे पृथक्-पृथक् तीन-तीन आहुतियाँ दे। इसके बाद '**ॐ हां ब्रह्मणे नमः।**'—इस मन्त्रसे ब्रह्माका आवाहन और पूजन करके उसीके अन्तमें '**स्वाहा**' जोड़कर तीन आहुतियोंद्वारा ब्रह्माजीको तृप्त करे। तदनन्तर उनसे इस प्रकार विज्ञप्तिपूर्वक प्रार्थना करे—'ब्रह्मन्! मैं इस मुमुक्षुको आपके अधिकारमें दीक्षित कर रहा हूँ। आपको सदा इसके अनुकूल रहना चाहिये'॥ ३२—३८॥

तदनन्तर रक्तवर्णा वागीश्वरीदेवीका मन-ही-मन हृदय-मन्त्रसे आवाहन करे। वे देवी इच्छा, ज्ञान और क्रियारूपिणी हैं। छः प्रकारके अध्वाओंकी एकमात्र कारण हैं। फिर पूर्वोक्त प्रकारसे वागीश्वरीदेवीका पूजन और तर्पण करे। साथ ही समस्त योनियोंको विक्षुब्ध करनेवाले और हृदयमें विराजमान वागीश्वरदेवका भी पूजन और तर्पण करना चाहिये। आदिमें अपने बीज और अन्तमें '**हूं फट्**' से युक्त जो अस्त्र-मन्त्र हैं, उसीसे विधानवेत्ता गुरु शिष्यके हृदयका ताड़न करे और भावनाद्वारा उसके भीतर प्रविष्ट हो। तत्पश्चात् हृदयके भीतर अग्निकणके समान प्रकाशमान जो शिष्यका जीवचैतन्य निवृत्तिकलामें स्थित होकर पाशोंसे आबद्ध है, उसे ज्येष्ठाद्वारा विभक्त करे। उसके विभाजनका मन्त्र इस प्रकार है—'**ॐ हां हूं हः हूं फट्।**' '**ॐ हां स्वाहा।**' इस मन्त्रसे पूरक प्राणायाम और अङ्कुश-मुद्राद्वारा उस जीवचैतन्यको हृदयमें आकृष्ट करके, आत्म-मन्त्रसे पकड़कर, उसे अपने आत्मामें योजित करे। वह मन्त्र इस प्रकार है—'**ॐ हां हां हामात्मने नमः।**'॥ ३९—४५॥

फिर माता-पिताके संयोगका चिन्तन करके रेचक प्राणायामद्वारा ब्रह्मादि कारणोंका क्रमशः त्याग करते हुए उक्त जीवचैतन्यको शिवरूप अधिष्ठानमें ले जाय और गर्भाधानके लिये उसे लेकर एक ही समय सब योनियोंमें तथा वामा उद्भव-मुद्राके द्वारा वागीश्वरी योनिमें उसे डाल दे। इसके बाद '**ॐ हां हां हामात्मने नमः।**' इसी मन्त्रसे पूजन और पाँच बार तर्पण भी करे। इस जीवचैतन्यका सभी योनियोंमें हृदय-मन्त्रसे देह-साधन करे। यहाँ पुंसवन-संस्कार नहीं होता; क्योंकि स्त्री आदिके शरीरकी भी उत्पत्ति सम्भव है। इसी तरह सीमन्तोन्नयन भी नहीं हो सकता; क्योंकि दैववश अन्ध आदिके शरीरसे भी उत्पत्तिकी सम्भावना है॥ ४६—५०॥

शिरोमन्त्र (**स्वाहा**)-से एक ही समय समस्त देहधारियोंके जन्मकी भावना करे। इसी तरह शिव-मन्त्रसे भी भावना करे। कवच-मन्त्रसे भोगकी और अस्त्र-मन्त्रसे विषय और आत्मामें मोहरूप लय नामक अभेदकी भी भावना करे। तदनन्तर शिव-मन्त्रसे स्रोतोंकी शुद्धि और हृदय-मन्त्रसे तत्त्वशोधन करके गर्भाधान आदि संस्कारोंके

निमित्त क्रमशः पाँच-पाँच आहुतियाँ दे। मायेय (मायाजनित), मलजनित तथा कर्मजनित आदि* पाश-बन्धनोंकी निवृत्तिके लिये हृदय-मन्त्रसे निष्कृति (प्रायश्चित्त अथवा शुद्धि) कर लेनेपर पीछे अग्निमें सौ आहुतियाँ दे। मलशक्तिका तिरोधान (लय) और पाशोंका वियोग सम्पादित करनेके लिये 'स्वाहान्त' अस्त्र-मन्त्रसे पाँच-पाँच आहुतियोंका हवन करे। अन्तःकरणमें स्थित मल आदि पाशका सात बार अस्त्र-मन्त्रके जपसे अभिमन्त्रित कटार-कला-शस्त्रसे छेदन करे। कला-शस्त्रसे छेदनका मन्त्र इस प्रकार है—'**ॐ हां हां हां निवृत्तिकलापाशाय हः हूं फट्**'॥ ५१—५७॥

बन्धकताकी निवृत्तिके लिये अस्त्र-मन्त्रसे दोनों हाथोंद्वारा मसलकर गोलाकार करके पाशको घीसे भरे हुए स्रुवमें डाल दे। फिर कलामय अस्त्रसे अथवा केवल अस्त्र-मन्त्रसे उसको जलाकर भस्म कर डाले। तदनन्तर पाशाङ्कुरकी निवृत्तिके लिये पाँच आहुतियाँ दे। आहुतिका मन्त्र इस प्रकार है—'**ॐ हः अस्त्राय हूं फट् स्वाहा।**' उक्त आहुतिके पश्चात् अस्त्र-मन्त्रसे आठ आहुतियाँ देकर प्रायश्चित्त-कर्म सम्पन्न करे। उसके बाद विधाताका आवाहन करके उनका पूजन और तर्पण करे। फिर '**ॐ हां शब्दस्पर्शौ शुल्कं ब्रह्मन् गृहाण स्वाहा।**' इस मन्त्रसे तीन आहुतियाँ देकर शिष्यको अधिकार अर्पित करे। उस समय ब्रह्माजीको भगवान् शिवकी यह आज्ञा सुनावे—'ब्रह्मन्! इस बालकके सम्पूर्ण पाश दग्ध हो गये हैं। अब आपको पुनः इसे बन्धनमें डालनेके लिये यहाँ नहीं रहना चाहिये।'॥ ५८—६३॥

—यों कहकर ब्रह्माजीको बिदा कर दे और संहारमुद्राद्वारा एवं कुम्भक प्राणायामपूर्वक राहुमुक्त एक देशवाले चन्द्रमण्डलके सदृश आत्माको तत्सम्बन्धी-मन्त्रका उच्चारण करते हुए दक्षिण नाड़ीद्वारा धीरे-धीरे लेकर रेचक प्राणायाम एवं 'उद्भव' नामक मुद्राके सहयोगसे पूर्वोक्त सूत्रमें योजित करे। फिर उसकी पूजा करके गुरु अर्घ्यपात्रमें स्थित अमृतोपम जलबिन्दु ले, शिष्यकी पुष्टि एवं तृप्तिके लिये उसके सिरपर रखे। तत्पश्चात् माता-पिताका विसर्जन करके 'वौषडन्त' अस्त्र-मन्त्रके द्वारा विधिकी पूर्तिके लिये पूर्णाहुति-होम करे। ऐसा करनेसे निवृत्तिकलाकी शुद्धि होती है। पूर्णाहुतिका पूरा मन्त्र इस प्रकार है—'**ॐ हूं हां अमुक आत्मनो निवृत्तिकलाशुद्धिरस्तु स्वाहा फट् वौषट्**'॥ ६४—६७॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'निर्वाण-दीक्षाके अन्तर्गत निवृत्तिकला-शोधन' नामक चौरासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८४॥

पचासीवाँ अध्याय

निर्वाण-दीक्षाके अन्तर्गत प्रतिष्ठाकलाके शोधनकी विधिका वर्णन

भगवान् शंकर कहते हैं—स्कन्द! तदनन्तर शुद्ध और अशुद्ध कलाओंका शान्त और नादान्तसंज्ञक ह्रस्व-दीर्घ-प्रयोगद्वारा संधान करे। संधानका मन्त्र इस प्रकार है—'**ॐ हां ह्लां ह्लीं हां।**' इसके बाद प्रतिष्ठाकलामें निविष्ट जल, तेज, वायु, आकाश, पाँच तन्मात्रा, दस इन्द्रिय, बुद्धि, तीनों गुण, चौबीसवाँ अहंकार और पुरुष—इन पचीस तत्त्वों तथा 'क' से लेकर 'य' तकके पचीस अक्षरोंका चिन्तन करे। प्रतिष्ठाकलामें छप्पन भुवन हैं और उनमें उन्हींके समान

* 'आदि' पदसे यहाँ 'तिरोधान', 'शक्तिज', और 'बिन्दुज' नामक पाश समझने चाहिये।

नामवाले उतने ही रुद्र जानने चाहिये। इनकी नामावली इस प्रकार है—॥ १—५॥

अमरेश, प्रभास, नैमिष, पुष्कर, आषाढ़ि, डिण्डि, भारभूति तथा लकुलीश—(यह प्रथम अष्टक कहा गया)। हरिश्चन्द्र, श्रीशैल, जल्प, आम्रातकेश्वर, महाकाल, मध्यम, केदार और भैरव—(यह द्वितीय अष्टक बताया गया)। तत्पश्चात् गया, कुरुक्षेत्र, नाल, कनखल, विमल, अट्टहास, महेन्द्र और भीम—(यह तृतीय अष्टक कहा गया)। वस्त्रापद, रुद्रकोटि, अविमुक्त, महालय, गोकर्ण, भद्रकर्ण, स्वर्णाक्ष और स्थाणु—(यह चौथा अष्टक बताया गया)। अजेश, सर्वज्ञ, भास्वर, तदनन्तर सुबाहु, मन्त्ररूपी, विशाल, जटिल तथा रौद्र—(यह पाँचवाँ अष्टक हुआ)। पिङ्गलाक्ष, कालदंष्ट्री, विधुर, घोर, प्राजापत्य, हुताशन, कालरूपी तथा कालकर्ण—(यह छठा अष्टक कहा गया)। भयानक, पतङ्ग, पिङ्गल, हर, धाता, शङ्कुकर्ण, श्रीकण्ठ तथा चन्द्रमौलि (यह सातवाँ अष्टक बताया गया)। ये छप्पन रुद्र छप्पन भुवनोंमें व्याप्त हैं। अब बत्तीस पद बताये जाते हैं॥ ६—१३॥

व्यापिन्, अरूपिन्, प्रथम, तेजः, ज्योतिः, अरूप, पुरुष, अनग्ने, अधूम, अभस्मन्, अनादे, नाना नाना, धूधू धूधू, ॐ भूः, ॐ भुवः, ॐ स्वः, अनिधन, निधन, निधनोद्भव, शिव, शर्व, परमात्मन्, महेश्वर, महादेव, सद्भाव, ईश्वर, महातेजा, योगाधिपते, मुञ्च, प्रमथ, सर्व, सर्वसर्व—ये बत्तीस पद हैं। दो बीज, तीन मन्त्र—वामदेव, शिर, शिखा, गान्धारी और सुषुम्णा—दो नाड़ियाँ, समान और उदान नामक दो प्राणवायु, रसना और पायु—दो इन्द्रियाँ, रस नामक विषय, रूप, शब्द, स्पर्श तथा रस—ये चार गुण, कमलसे अङ्कित श्वेत अर्धचन्द्राकार मण्डल, सुषुप्ति अवस्था तथा प्रतिष्ठामें कारणभूत भगवान् विष्णु—इस प्रकार भुवन आदि सब तत्त्वोंका प्रतिष्ठाके भीतर चिन्तन करके प्रतिष्ठाकला-सम्बन्धी मन्त्रसे शिष्यके शरीरमें भावनाद्वारा प्रवेश करके उसे उस कलापाशसे मुक्त करे॥ १४—१८॥

'**ॐ हां हीं हां प्रतिष्ठाकलापाशाय हूं फट् स्वाहा।**'—इस स्वाहान्त-मन्त्रसे ही पूरक प्राणायाम तथा अङ्कुशमुद्राद्वारा उक्त कलापाशका आकर्षण करे। तत्पश्चात् '**ॐ हूं हां हीं हां हूं प्रतिष्ठाकलापाशाय हूं फट्।**'—इस मन्त्रसे संहारमुद्रा और कुम्भक प्राणायामद्वारा उसे हृदयके नीचे नाड़ीसूत्रसे लेकर '**ॐ हूं हीं हां प्रतिष्ठाकलापाशाय नमः।**'—इस मन्त्रसे उद्भवमुद्रा तथा रेचक प्राणायामद्वारा कुण्डमें स्थापित करे। तदनन्तर '**ॐ हां हां हीं हां प्रतिष्ठाकलाद्वाराय नमः।**'—इस मन्त्रसे अर्घ्य दे, पूजन करके स्वाहान्त मन्त्रद्वारा तीन-तीन आहुतियाँ देते हुए संतर्पण और संनिधापन करे। इसके बाद '**ॐ हां विष्णवे नमः।**'—इस मन्त्रसे विष्णुका आवाहन, पूजन और संतर्पण करके निम्नाङ्कित प्रार्थना करे—'विष्णो! आपके अधिकारमें मैं मुमुक्षु शिष्यको दीक्षा दे रहा हूँ। आप सदा अनुकूल रहें।' इस प्रकार विष्णुभगवान्से निवेदन करे। तत्पश्चात् वागीश्वरी देवी और वागीश्वर देवताका पूर्ववत् आवाहन, पूजन और तर्पण करके शिष्यकी छातीमें ताड़न करे। ताड़नका मन्त्र इस प्रकार है—'**ॐ हां हं हः हूं फट्।**' इसी मन्त्रसे शिष्यके हृदयमें प्रवेश करके उसके पाशबद्ध चैतन्यको अस्त्र-मन्त्र एवं ज्येष्ठ अङ्कुशमुद्राद्वारा उस पाशसे पृथक् करे। यथा—'**ॐ हां हं हः फट्।**' उक्त मन्त्रके ही अन्तमें '**नमः स्वाहा**' लगाकर उससे सम्पुटित मन्त्रद्वारा जीवचैतन्यको खींचे तथा नमस्कारान्त आत्ममन्त्रसे उसको अपने आत्मामें

नियोजित करे। आत्मामें नियोजनका मन्त्र यों है—'**ॐ हां हां हामात्मने नमः।**'॥ १९—२६॥

इसके बाद पूर्ववत् उस जीवचैतन्यके पितासे संयुक्त होनेकी भावना करके वामा उद्भव-मुद्राद्वारा उसे देवीके गर्भमें स्थापित करे। साथ ही इस मन्त्रका उच्चारण करे—'**ॐ हां हां हामात्मने नमः।**' देहोत्पत्तिके लिये हृदय-मन्त्रसे पाँच बार और जीवात्माकी स्थितिके लिये शिरोमन्त्रसे पाँच बार आहुति दे। अधिकार-प्राप्तिके लिये शिखा-मन्त्रसे, भोगसिद्धिके लिये कवच-मन्त्रसे, लयके लिये अस्त्र-मन्त्रसे, स्रोत:सिद्धिके लिये शिव-मन्त्रसे तथा तत्त्वशुद्धिके लिये हृदय-मन्त्रसे इसी तरह पाँच-पाँच आहुतियाँ देनी चाहिये। इसके बाद पूर्ववत् गर्भाधान आदि संस्कार करे। पाशकी शिथिलता और निष्कृति (प्रायश्चित्त)-के लिये शिरोमन्त्रसे सौ आहुतियाँ दे। मलशक्तिके तिरोधान (निवारण)-के लिये स्वाहान्त अस्त्र-मन्त्रसे पाँच बार हवन करे॥ २७—३०॥

इस प्रकार पाश-वियोग होनेपर भी सात बार अस्त्र-मन्त्रके जपपूर्वक कलाबीजसे युक्त अस्त्र-मन्त्ररूपी कटारसे उस कलापाशको काट डाले। वह मन्त्र इस प्रकार है—'**ॐ ह्रीं प्रतिष्ठाकलापाशाय हूं फट्।**' तदनन्तर पाश-शस्त्रसे उस पाशको मसलकर वर्तुलाकार बनाकर पूर्ववत् घृतपूर्ण स्रुवामें रख दे और कला-शस्त्रसे ही उसकी आहुति दे दे। इसके बाद पाशाङ्कुरकी निवृत्तिके लिये अस्त्र-मन्त्रसे पाँच आहुतियाँ दे और प्रायश्चित्त-निवारणके लिये फिर आठ आहुतियोंका हवन करे। आहुतिके लिये अस्त्र-मन्त्र इस प्रकार है—'**ॐ हः अस्त्राय हूं फट्।**'॥ ३१—३५॥

इसके बाद हृदय-मन्त्रसे भगवान् हृषीकेशका आवाहन करके पूर्वोक्त विधिसे उनका पूजन और तर्पण करनेके पश्चात् अधिकार-समर्पण करे। इसके लिये मन्त्र इस प्रकार है—'**ॐ हां विष्णो रसं शुल्कं गृहाण स्वाहा।**' इसके बाद उन्हें भगवान् शिवकी आज्ञा इस प्रकार सुनावे—'हरे! इस पशुका पाश सम्पूर्णतः दग्ध हो चुका है। अब आपको इसके लिये बन्धनकारक होकर नहीं रहना चाहिये।' शिवाज्ञा सुनानेके बाद रौद्री नाड़ीद्वारा गोविन्दका विसर्जन करके राहुमुक्त आधे भागवाले चन्द्रमण्डलके समान आत्माको नियोजित करे—संहारमुद्राद्वारा उसे आत्मस्थ करके उद्भवमुद्राद्वारा सूत्रमें उसकी संयोजना करे। तत्पश्चात् पूर्ववत् जलबिन्दु-सदृश उस आत्माको शिष्यके सिरपर स्थापित करे। इससे उसका आप्यायन होता है। फिर अग्निके पिता-माताका पुष्प आदिसे पूजन एवं विसर्जन करके विधिकी पूर्तिके लिये विधानपूर्वक पूर्णाहुति प्रदान करे। ऐसा करनेसे प्रतिष्ठाकलाका भी शोधन सम्पन्न हो जाता है॥ ३६—४१॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'निर्वाण-दीक्षाके अन्तर्गत प्रतिष्ठाकलाके शोधनकी विधिका वर्णन' नामक पचासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८५॥

छियासीवाँ अध्याय

निर्वाण-दीक्षाके अन्तर्गत विद्याकलाका शोधन

भगवान् शिव कहते हैं— स्कन्द! पूर्ववर्तिनी कला-प्रतिष्ठाके साथ विद्याकलाका संधान करे तथा पूर्ववत् उसमें तत्त्व-वर्ण आदिका चिन्तन भी करे। उसके लिये मन्त्र इस प्रकार है—'**ॐ हां ह्रीं हूं हां।**'—यह संधान-मन्त्र है। राग, शुद्ध विद्या, नियति, कला, काल, माया तथा अविद्या—ये सात तत्त्व तथा **र, ल, व, श, ष, स**—ये छः वर्ण विद्याकलाके अन्तर्गत बताये गये हैं।

प्रणव आदि इक्कीस पद भी उसीके अन्तर्गत हैं। **'ॐ नमः शिवाय सर्वप्रभवे शिवाय ईशानमूर्ध्ने तत्पुरुषवक्त्राय अघोरहृदयाय वामदेवगुह्याय सद्योजातमूर्तये ॐ नमो नमः गुह्यातिगुह्याय गोप्त्रे अनिधनाय सर्वयोगाधिकृताय सर्वयोगाधिपाय ज्योतीरूपाय परमेश्वराय अचेतन अचेतन व्योमन् व्योमन्।'**—ये इक्कीस पद हैं॥ १—५॥

अब रुद्रों और भुवनोंका स्वरूप बताया जाता है—प्रमथ, वामदेव, सर्वदेवोद्भव, भवोद्भव, वज्रदेह, प्रभु, धाता, क्रम, विक्रम, सुप्रभ, बुद्ध, प्रशान्तनामा, ईशान, अक्षर, शिव, सशिव, बभ्रु, अक्षय, शम्भु, अदृष्टरूपनामा, रूपवर्धन, मनोन्मन, महावीर, चित्राङ्ग तथा कल्याण—ये पचीस भुवन एवं रुद्र जानने चाहिये॥ ६—९॥

विद्याकलामें अघोर-मन्त्र है, **'म'** और **'र'** बीज हैं, पूषा और हस्तिजिह्वा—दो नाड़ियाँ हैं, व्यान और नाद—ये दो प्राणवायु हैं। एकमात्र रूप ही विषय है। पैर और नेत्र दो इन्द्रियाँ हैं। शब्द, स्पर्श तथा रूप—ये तीन गुण कहे गये हैं। सुषुप्ति अवस्था है और रुद्रदेव कारण हैं। भुवन आदि समस्त वस्तुओंको भावनाद्वारा विद्याके अन्तर्गत देखे। इसके लिये संधान-मन्त्र है—**'ॐ हूं हैं हां।'** तत्पश्चात् रक्तवर्ण एवं स्वस्तिकके चिह्नसे अङ्कित त्रिकोणाकार मण्डलका चिन्तन करे। शिष्यके वक्षमें ताडन, कलापाशका छेदन, शिष्यके हृदयमें प्रवेश, उसके जीवचैतन्यका पाश-बन्धनसे वियोजन तथा हृदयप्रदेशसे जीवचैतन्य एवं विद्याकलाका आकर्षण और ग्रहण करे॥ १०—१३॥

जीवचैतन्यका अपने आत्मामें आरोपण करके कलापाशका संग्रहण एवं कुण्डमें स्थापन भी पूर्वोक्त पद्धतिसे करे। कारणरूप रुद्रदेवताका आवाहन-पूजन आदि करके शिष्यके प्रति बन्धनकारी न होनेके लिये उनसे प्रार्थना करे। पिता-माताका आवाहन आदि करके शिशु (शिष्य)-के हृदयमें ताड़न करे। पूर्वोक्त विधिके अनुसार पहले अस्त्र-मन्त्रद्वारा हृदयमें प्रवेश करके जीवचैतन्यको कलापाशसे विलग करे। फिर उसका आकर्षण एवं ग्रहण करके अपने आत्मामें संयोजन करे। फिर वामा उद्भवमुद्राद्वारा वागीश्वरीदेवीके गर्भमें उसके स्थापित होनेकी भावना करे। इसके बाद देह-सम्पादन करे। जन्म, अधिकार, भोग, लय, स्रोतःशुद्धि, तत्त्वशुद्धि, निःशेष मलकर्मादिके निवारण, पाश-बन्धनकी निवृत्ति एवं निष्कृतिके हेतु स्वाहान्त अस्त्र-मन्त्रसे सौ आहुतियाँ दे। तदनन्तर अस्त्र-मन्त्रसे पाश-बन्धनको शिथिल करना, मलशक्तिका तिरोधान करना, कलापाशका छेदन, मर्दन, वर्तुलीकरण, दाह, अङ्कुराभाव-सम्पादन तथा प्रायश्चित्त-कर्म पूर्वोक्त रीतिसे करे। इसके बाद रुद्रदेवका आवाहन, पूजन एवं रूप और गन्धका समर्पण करे। उसके लिये मन्त्र इस प्रकार है—**'ॐ हां रूपगन्धौ शुल्कं रुद्र गृहाण स्वाहा।'**॥ १४—१९॥

शंकरजीकी आज्ञा सुनाकर कारणस्वरूप रुद्रदेवका विसर्जन करे। इसके बाद जीवचैतन्यका आत्मामें स्थापन करके उसे पाशसूत्रमें निवेशित करे। फिर जलबिन्दु-स्वरूप उस चैतन्यका शिष्यके सिरपर न्यास करके माता-पिताका विसर्जन करे। तत्पश्चात् समस्त विधिकी पूर्ति करनेवाली पूर्णाहुतिका विधिवत् हवन करे॥ २०-२१॥

विद्यामें ताडन आदि कार्य पूर्वोक्त विधिसे ही करना चाहिये। अन्तर इतना ही है कि उसमें सर्वत्र अपने बीजका प्रयोग होगा। यह सब विधान पूर्ण करनेसे विद्याकलाका शोधन होता है॥ २२॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'निर्वाण-दीक्षाके अन्तर्गत विद्याकलाका शोधन' नामक छियासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८६॥

सतासीवाँ अध्याय

निर्वाण-दीक्षाके अन्तर्गत शान्तिकलाका शोधन

भगवान् शंकर कहते हैं—स्कन्द! पूर्वोक्त मार्गसे विद्याकलाका शान्तिकलाके साथ विधिपूर्वक संधान करे। उसके लिये मन्त्र है—'**ॐ हां हूं हां।**' शान्तिकलामें दो तत्त्व लीन हैं। वे दोनों हैं—ईश्वर और सदाशिव। हकार और क्षकार—ये दो वर्ण कहे गये हैं। अब भुवनोंके साथ उन्हींके समान नामवाले रुद्रोंका परिचय दिया जा रहा है। उनकी नामावली इस प्रकार है—प्रभव, समय, क्षुद्र, विमल, शिव, घन, निरञ्जन, अङ्गार, सुशिरा, दीप्तकारण, त्रिदशेश्वर, कालदेव, सूक्ष्म और अम्बुजेश्वर (या भुजेश्वर)—ये चौदह रुद्र शान्तिकलामें प्रतिष्ठित हैं। **व्योमव्यापिने, व्योमरूपाय, सर्वव्यापिने, शिवाय, अनन्ताय, अनाथाय, अनाश्रिताय, ध्रुवाय, शाश्वताय, योगपीठसंस्थिताय, नित्ययोगिने, ध्यानाहराय** — ये बारह पद हैं॥ १—५॥

पुरुष और कवच—ये दो मन्त्र हैं; बिन्दु और जकार—ये दो बीज हैं; अलम्बुषा और यशा—ये दो नाड़ियाँ हैं; कृकर और कूर्म—ये दो प्राणवायु हैं; त्वचा और हाथ—ये दो इन्द्रियाँ हैं; शान्तिकलाका विषय स्पर्श माना गया है; स्पर्श और शब्द—ये दो गुण हैं और एक ही कारण हैं—ईश्वर इसकी तुर्यावस्था है। इस प्रकार भुवन आदि समस्त तत्त्वोंकी शान्तिकलामें स्थितिका चिन्तन करके पूर्ववत् ताड़न, छेदन, हृदय-प्रवेश, चैतन्यका वियोजन, आकर्षण और ग्रहण करे। फिर शान्तिके मुखसूत्रसे चैतन्यका आत्मामें आरोपण करके कलाका ग्रहण कर उसे कुण्डमें स्थापित कर दे। तदनन्तर ईशसे इस प्रकार प्रार्थना करे—'हे ईश! मैं इस मुमुक्षुको तुम्हारे अधिकारमें दीक्षित कर रहा हूँ। तुम्हें इसके अनुकूल रहना चाहिये'॥ ६—१०॥

फिर माता-पिताका आवाहन आदि और शिष्यका ताड़न आदि करके चैतन्यको लेकर विधिवत् आत्मामें योजित करे। तत्पश्चात् पूर्ववत् माता-पिताके संयोगकी भावना करके उद्भवा नाड़ीद्वारा उस चैतन्यका हृदय-मन्त्रसे सम्पुटित आत्मबीजके उच्चारणपूर्वक देवीके गर्भमें नियोजन करे। देहोत्पत्तिके लिये हृदय-मन्त्रसे, जन्मके हेतु शिरोमन्त्रसे, अधिकार-सिद्धिके लिये शिखा-मन्त्रसे, भोगके निमित्त कवच-मन्त्रसे, लयके लिये शस्त्र-मन्त्रसे, स्रोतःशुद्धिके लिये शिव-मन्त्रसे तथा तत्त्वशोधनके लिये हृदय-मन्त्रसे पाँच-पाँच आहुतियाँ दे। इसी तरह पूर्ववत् गर्भाधान आदि संस्कार भी करे। कवच-मन्त्रसे पाशकी शिथिलता एवं निष्कृतिके लिये सौ आहुतियाँ दे। मलशक्ति-तिरोधानके उद्देश्यसे शस्त्र-मन्त्रद्वारा पाँच आहुतियोंका हवन करे। इसी तरह पाश-वियोगके निमित्त भी पाँच आहुतियाँ देनी चाहिये। तदनन्तर अस्त्र-मन्त्रका सात बार जप करके बीजयुक्त अस्त्र-मन्त्ररूपी कटारसे पाशका छेदन करे। उसके लिये मन्त्र इस प्रकार है—'**ॐ हौं शान्तिकलापाशाय नमः हः हूं फट्।**' ॥ ११—१७॥

इसके बाद पाशका विमर्दन तथा वर्तुलीकरण पूर्ववत् अस्त्र-मन्त्रसे करके उसे घृतसे भरे हुए स्रुवेमें रख दे और कला-सम्बन्धी अस्त्र-मन्त्रद्वारा उसका हवन करे। फिर पाशाङ्कुरकी निवृत्तिके लिये अस्त्र-मन्त्रसे पाँच आहुतियाँ दे और प्रायश्चित्त-निवारणके लिये आठ आहुतियोंका हवन करे। मन्त्र इस प्रकार है—'**ॐ हः अस्त्राय हूं फट्।**' फिर हृदय-मन्त्रसे ईश्वरका आवाहन

करके पूजन-तर्पण करनेके पश्चात् उन्हें विधिपूर्वक शुल्क समर्पण करे। मन्त्र इस प्रकार है—'**ॐ हां ईश्वर बुद्ध्यहंकारौ शुल्कं गृहाण स्वाहा**।' इसके बाद ईश्वरको शिवकी यह आज्ञा सुनावे—'ईश्वर! इस पशुके सारे पाश दग्ध हो गये हैं। अब तुम्हें इसके लिये बन्धनकारक होकर नहीं रहना चाहिये'॥ १८—२३॥

—यों कहकर ईश्वर देवका विसर्जन करे और रौद्रीशक्तिसे आत्माको नियोजित करे। जैसे ईशने चन्द्रमाको अपने मस्तकपर आश्रय दे रखा है, उसी प्रकार शिष्यके जीवात्माको गुरु अपने आत्मामें नियोजित करे। फिर शुद्धा उद्भव-मुद्राके द्वारा इसकी सूत्रमें संयोजना करे और मूल-मन्त्रसे शिष्यके मस्तकपर अमरबिन्दुस्वरूप उस चैतन्यसूत्रको रखे; तदनन्तर पुष्प आदिसे पूजित अग्निके पिता-माताका विसर्जन करके विधिज्ञ पुरुष समस्त विधिकी पूर्ति करनेवाली पूर्णाहुति प्रदान करे। इसमें भी पूर्ववत् ताड़न आदि करना चाहिये। विशेषतः कला-सम्बन्धी अपने बीजका प्रयोग होना चाहिये। इस प्रकार शान्तिकलाकी शुद्धि बतायी गयी॥ २४—२७॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'निर्वाण-दीक्षाके अन्तर्गत शान्तिकलाका शोधन' नामक सतासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८७॥

अठासीवाँ अध्याय

निर्वाण-दीक्षाकी अवशिष्ट विधिका वर्णन

भगवान् शंकर कहते हैं—स्कन्द! विशुद्ध शान्तिकलाके साथ शान्त्यतीतकलाका संधान करे। उसमें भी पूर्ववत् तत्त्व और वर्ण आदिका चिन्तन करना चाहिये, जैसा कि नीचे बताया जाता है। संधानकालमें इस मन्त्रका उच्चारण करे—'**ॐ हां हौं हूं हां।**' शान्त्यतीतकलामें शिव और शक्ति—ये दो तत्त्व हैं। आठ भुवन हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—इन्धक, दीपक, रोचक, मोचक, ऊर्ध्वगामी, व्योमरूप, अनाथ और आठवाँ अनाश्रित। ॐकार पद है, ईशान मन्त्र है, अकारसे लेकर विसर्गतक सोलह अक्षर हैं, नाद और हकार—ये दो बीज हैं, कुहू और शङ्खिनी—दो नाड़ियाँ हैं, देवदत्त और धनञ्जय—दो प्राणवायु हैं, वाक् और श्रोत्र—दो इन्द्रियाँ हैं, शब्द विषय है, गुण भी वही है और अवस्था पाँचवीं तुरीयातीता है॥ १—६॥

सदाशिव देव ही एकमात्र हेतु हैं। इस तत्त्वादिसंचयकी शान्त्यतीतकलामें स्थिति है, ऐसा चिन्तन करके ताड़न आदि कर्म करे। 'फडन्त' मन्त्रसे कला-पाशका ताड़न और बोधन करके नमस्कारान्त-मन्त्रसे शिष्यके अन्तःकरणमें प्रवेश करे। इसके बाद फडन्त-मन्त्रसे जीवचैतन्यको पाशसे वियुक्त करे। '**वषट्**' और '**नमः**' पदोंसे सम्पुटित, स्वाहान्त-मन्त्रका उच्चारण करके, अङ्कुशमुद्रा तथा पूरक प्राणायामद्वारा पाशका मस्तकसूत्रसे आकर्षण करके, कुम्भक प्राणायामद्वारा उसे लेकर, रेचक प्राणायाम एवं उद्भव-मुद्राद्वारा हृदय-मन्त्रसे सम्पुटित नमस्कारान्त-मन्त्रसे उसका अग्निकुण्डमें स्थापन करे। इसका पूजन आदि सब कार्य निवृत्तिकलाके समान ही सम्पन्न करे। सदाशिवका आवाहन, पूजन और तर्पण करके उनसे भक्तिपूर्वक इस प्रकार निवेदन करे—"भगवन्! इस 'साद' संज्ञक मुमुक्षुको तुम्हारे अधिकारमें दीक्षित करता हूँ। तुम्हें सदा इसके

अनुकूल रहना चाहिये"॥ ७—१२॥

फिर माता-पिताका आवाहन, पूजन एवं तर्पणसंनिधान करके हृदय-सम्पुटित आत्मबीजसे शिष्यके वक्षःस्थलमें ताड़न करे। मन्त्र इस प्रकार है—'**ॐ हां हां हां हः हूं फट्।**' इसी मन्त्रसे शिष्यके हृदयमें प्रवेश करके अस्त्र-मन्त्रद्वारा पाशयुक्त चैतन्यका उस पाशसे वियोजन करे। फिर ज्येष्ठा अङ्कुश-मुद्राद्वारा सम्पुटित उसी स्वाहान्त-मन्त्रसे उसका आकर्षण और ग्रहण करके '**नमोऽन्त**' मन्त्रसे उसे अपने आत्मामें नियोजित करे। आकर्षण-मन्त्र तो वही '**ॐ हां हां हां हः हूं फट्।**' है, परंतु आत्म-नियोजनका मन्त्र इस प्रकार है—'**ॐ हां हां हामात्मने नमः।**' पूर्ववत् वामा उद्भव-मुद्राद्वारा माता-पिताके संयोगकी भावना करके इसी मन्त्रसे उस जीवचैतन्यका देवीके गर्भमें स्थापन करे। तदनन्तर पूर्वोक्त विधिसे गर्भाधान आदि सब संस्कार करे। पाशबन्धनकी शिथिलताके लिये प्रायश्चित्तके रूपमें मूल-मन्त्रसे सौ आहुतियाँ दे (अथवा मूल-मन्त्रका सौ बार जप करे)॥ १३—२०॥

मलशक्तिके तिरोधान और पाशोंके वियोजनके निमित्त अस्त्र-मन्त्रसे पूर्ववत् पाँच-पाँच आहुतियाँ दे। कला-सम्बन्धी बीजसे युक्त आयुध-मन्त्रसे सात बार अभिमन्त्रित की हुई कटाररूप अस्त्रसे पाशोंका छेदन करे। उसके लिये मन्त्र इस प्रकार है—'**ॐ हः हां शान्त्यतीतकलापाशाय हूं फट्।**' तदनन्तर अस्त्र-मन्त्रसे पूर्ववत् उन पाशोंको मसलकर, वर्तुलाकार बनाकर, घीसे भरे हुए स्रुवमें रख दे और कला-सम्बन्धी अस्त्र-मन्त्रके द्वारा ही उसका हवन करे। फिर पाशाङ्कुरकी निवृत्तिके लिये अस्त्र-मन्त्रसे पाँच और प्रायश्चित्त-निषेधके लिये आठ आहुतियाँ दे। इसके बाद हृदय-मन्त्रसे सदाशिवका आवाहन एवं पूजन और तर्पण करके पूर्वोक्त विधिसे अधिकार समर्पण करे। उसका मन्त्र इस प्रकार है—'**ॐ हां सदाशिव मनोबिन्दुं शुल्कं गृहाण स्वाहा।**'॥ २१—२७॥

तत्पश्चात् उन्हें भी निम्नाङ्कित रूपसे शिवकी आज्ञा सुनावे—'सदाशिव! इस पशुके सारे पाप दग्ध हो गये हैं। अतः अब आपको इसे बन्धनमें डालनेके लिये यहाँ नहीं ठहरना चाहिये।' मूल-मन्त्रसे पूर्णाहुति दे और सदाशिवका विसर्जन करे। तत्पश्चात् गुरु शिष्यके शरत्कालिक चन्द्रमाके समान उदित विशुद्ध जीवात्माको रौद्री संहार-मुद्राके द्वारा अपने आत्मामें संयोजित करके आत्मस्थ कर ले। शिष्यके शरीरस्थ जीवात्माका उद्भव-मुद्राद्वारा उत्थान या उद्धार करके उसके पोषणके लिये शिष्यके मस्तकपर अर्घ्य-जलकी एक बूँद स्थापित करे। इसके बाद परम भक्तिभावसे क्षमा-प्रार्थना करके माता-पिताका विसर्जन करे। विसर्जनके समय इस प्रकार कहे—'मैंने शिष्यको दीक्षा देनेके लिये जो आप दोनों माता-पिताको खेद पहुँचाया है, उसके लिये मुझे कृपापूर्वक क्षमा-दान देकर आप दोनों अपने स्थानको पधारें'॥ २८—३२॥

वषट्-मन्त्रसे अभिमन्त्रित कर्तरी (कटार)-द्वारा शिवास्त्रसे शिष्यकी चार अङ्गुल बड़ी बोधशक्तिस्वरूपिणी शिखाका छेदन करे। छेदनके मन्त्र इस प्रकार हैं—'**ॐ हूं शिखायै हूं फट्।**' '**ॐ अस्त्राय हूं फट्।**' उसे घृतपूर्ण स्रुक्‌में रखकर '**हूं फट्**' अन्तवाले अस्त्र-मन्त्रसे अग्निमें होम दे। मन्त्र इस प्रकार है—'**ॐ ॐ* हः अस्त्राय हूं फट्।**' इसके बाद स्रुक् और स्रुवाको धोकर शिष्यको स्नान करवानेके पश्चात् स्वयं भी

* कहीं-कहीं 'हौं' पाठ है।

आचमन करे और योजनिका अथवा योजना-स्थानके लिये अस्त्र-मन्त्रसे अपने-आपका ताड़न करे। तत्पश्चात् वियोजन, आकर्षण और संग्रहण करके पूर्ववत् द्वादशान्त* (ललाटके ऊपरी भाग)-से जीवचैतन्यको ले आकर अपने हृदय-कमलकी कर्णिकामें स्थापित करे॥ ३३—३८॥

स्रुक्‌को घीसे भरकर और उसके ऊपर अधोमुख स्रुव रखकर शङ्खतुल्य मुद्राद्वारा नित्योक्त विधिसे हाथमें ले। तत्पश्चात् नादोच्चारणके अनुसार मस्तक और ग्रीवा फैलाकर दृष्टिको समभावसे रखते हुए स्थिर, शान्त एवं परमभावसे सम्पन्न हो कलश, मण्डल, अग्नि, शिष्य तथा अपने आत्मासे भी छः प्रकारके अध्वाको ग्रहण करके, स्रुक्‌के अग्रभागमें प्राणमयी नाड़ीके भीतर स्थापित करके, उसी भावसे उसका चिन्तन करे। इस प्रकार चिन्तन करके क्रमशः सात प्रकारके विषुवका ध्यान करे। उन सातोंका परिचय इस प्रकार है—पहला 'प्राणसंयोगस्वरूप' है और दूसरा हृदयादि-क्रमसे उच्चारित मन्त्रसंज्ञक है। तीसरा सुषुम्णामें अनुगत 'नाद या नाड़ी' रूप है। नाड़ी-सम्बद्ध नादका जो शक्तिमें लय होना है, उसको 'प्रशान्त-विषुव' कहते हैं। शक्तिमें लीन हुए नादका पुनः उज्जीवन होकर जो ऊपरको संचार और समतामें लय होता है, उसे 'शक्ति' नामक विषुव कहा गया है। सम्पूर्ण नादका शक्तिकी सीमाको लाँघकर उन्मनीमें लीन होना 'काल-विषुव' कहलाता है। यह छठा है। यह शक्तिसे अतीत होता है। सातवाँ विषुव है—'तत्त्वसंज्ञक'। यही योजना-स्थान है॥ ३९—४५ $\frac{१}{२}$ ॥

पूरक और कुम्भक करके मुँहको थोड़ा खोलकर धीरे-धीरे मूल-मन्त्रका उच्चारण करते हुए भावनाद्वारा शिष्यात्माका लय करे। उसका क्रम यों है—विद्युत्सदृश छहों अध्वाओंके प्राणस्वरूपमें 'फट्कार' का चिन्तन करे। नाभिसे ऊपर एक बित्तेका स्थान 'फट्कार' है, जो प्राणका स्थान माना गया है। उससे ऊपर हृदयसे चार अङ्गुलकी दूरीपर 'अकार' का चिन्तन करना चाहिये (यह ब्रह्माका बोधक है)। उससे आठ अङ्गुल ऊपर कण्ठमें विष्णुका वाचक 'उकार' है, उससे भी चार अङ्गुल ऊँचे तालु-स्थानमें रुद्रवाचक 'मकार' की स्थिति है। इसी प्रकार ललाटके मध्यभागमें ईश्वरवाचक 'बिन्दुका' स्थान है। ललाटसे ऊपर ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त नादमय सदाशिव देव विराजमान हैं। उनके साथ ही वहाँ उनकी शक्ति भी विद्यमान है। उपर्युक्त तत्त्वोंका क्रमशः चिन्तन और त्याग करते हुए अन्ततोगत्वा शक्तिको भी त्याग दे। वहीं दिव्य पिपीलिका-स्पर्शका अनुभव करके ललाटके ऊपरके प्रदेशमें परम तत्त्व, परमानन्दस्वरूप, भावशून्य, मनोऽतीत, नित्य गुणोदयशाली शिवतत्त्वमें शिष्यात्माके विलीन होनेकी भावना करे॥ ४६—५२ $\frac{१}{२}$ ॥

परम शिवमें योजनिकाकी स्थिरताके लिये **'ॐ नमः शिवाय वौषट्।'**—इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए अग्निकी ज्वालामें घीकी धारा छोड़ता रहे। फिर विधिपूर्वक पूर्णाहुति देकर गुणापादन करे। उसकी विधि इस प्रकार है। निम्नाङ्कित मन्त्रोंको पढ़कर अग्निमें आहुतियाँ दे—

'ॐ हां आत्मन् सर्वज्ञो भव स्वाहा।' 'ॐ हीं आत्मन् नित्यतृप्तो भव स्वाहा।' 'ॐ हूं आत्मन् अनादिबोधो भव स्वाहा।' 'ॐ हैं आत्मन् स्वतन्त्रो भव स्वाहा।' 'ॐ हौं आत्मन् अलुप्तशक्तिर्भव स्वाहा।' 'ॐ हः आत्मन् अनन्तशक्तिर्भव स्वाहा।'

---

* अङ्गुलविस्तृतस्य ललाटस्योर्ध्वप्रदेशो द्वादशान्तपदेनोच्यते।' अर्थात् 'अङ्गुल विस्तारवाले ललाटका ऊर्ध्वदेश 'द्वादशान्त' पदसे कथित होता है।' ('नित्याषोडशिकार्णव' ८।५५ पर भास्कररायकी सेतुबन्ध-व्याख्या)

इस प्रकार छः गुणोंसे सम्पन्न आत्माको अविनाशी परमशिवसे लेकर विधिवत् भावनापूर्वक शिष्यके शरीरमें नियोजित करे। तीव्र और मन्द शक्तिपातजनित श्रमकी शान्तिके लिये शिष्यके मस्तकपर न्यासपूर्वक अमृत-बिन्दु अर्पित करे॥ ५३—५७॥

ईशान-कलश आदिके रूपमें पूजित शिवस्वरूप कलशोंको नमस्कार करके दक्षिणमण्डलमें शिष्यको अपने दाहिने उत्तराभिमुख बिठावे और देवेश्वर शिवसे प्रार्थना करे—'प्रभो! मेरी मूर्तिमें स्थित हुए इस जीवको आपने ही अनुगृहीत किया है; अतः नाथ! देवता, अग्नि तथा गुरुमें इसकी भक्ति बढ़ाइये'॥ ५८-५९॥

इस प्रकार प्रार्थना करके देवेश्वर शिवको प्रणाम करनेके अनन्तर गुरु स्वयं शिष्यको आदरपूर्वक यह आशीर्वाद दे कि 'तुम्हारा कल्याण हो'। इसके बाद भगवान् शिवको उत्तम भक्तिभावसे आठ फूल चढ़ाकर शिवकलशके जलसे शिष्यको स्नान करवावे और यज्ञका विसर्जन करे॥ ६०-६१॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'निर्वाण-दीक्षाका वर्णन' नामक अठासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८८॥

नवासीवाँ अध्याय

एकतत्त्व-दीक्षाकी विधि*

भगवान् शिव कहते हैं—स्कन्द! अब लघु होनेके कारण एकतात्त्विकी-दीक्षाका उपदेश दिया जाता है। यथावसर यथोचित रीतिसे स्वकीय मन्त्रद्वारा सूत्रबन्ध आदि कर्म करे। तत्पश्चात् काल, अग्नि आदिसे लेकर शिव-पर्यन्त समस्त तत्त्वोंका प्रविभावन (चिन्तन) करे। शिवतत्त्वमें अन्य सब तत्त्व धागेमें मनकोंकी भाँति पिरोये हुए हैं। शिव-तत्त्व आदिका आवाहन करके गर्भाधान आदि संस्कारोंका पूर्ववत् सम्पादन करे; किंतु मूल-मन्त्रसे सर्वशुल्क समर्पण करे। इसके बाद तत्त्वसमूहोंसे गर्भित पूर्णाहुति प्रदान करे। उस एक ही आहुतिसे शिष्य निर्वाण प्राप्त कर लेता है॥ १—४॥

शिवमें नियोजन तथा स्थिरताका आपादन करनेके लिये दूसरी पूर्णाहुति भी देनी चाहिये। उसे देकर शिवकलशके जलसे शिष्यका अभिषेक करे॥ ५॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'एकतत्त्व-दीक्षाविधिका वर्णन' नामक नवासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८९॥

नब्बेवाँ अध्याय

अभिषेक आदिकी विधिका वर्णन

भगवान् शंकर कहते हैं—स्कन्द! शिवका पूजन करके गुरु शिष्य आदिका अभिषेक करे। इससे शिष्यको श्रीकी प्राप्ति होती है। ईशान आदि आठ दिशाओंमें आठ और मध्यमें एक—इस प्रकार नौ कलश स्थापित करे। उन आठ कलशोंमें क्रमशः क्षारोद, क्षीरोद, दध्युदक, घृतोद, इक्षुरसोद, सुरोद, स्वादूदक तथा गर्भोद—इन आठ समुद्रोंका आवाहन करे। इसी तरह क्रमानुसार उनमें आठ विद्येश्वरोंका भी स्थापन करे, जिनके नाम इस प्रकार हैं—१. शिखण्डी, २. श्रीकण्ठ,

* सोमशम्भुकी 'कर्मकाण्ड-क्रमावली' में इसके पूर्व 'त्रितत्त्वदीक्षा' का विस्तृत वर्णन है।

३. त्रिमूर्ति, ४. एकरुद्र, ५. एकनेत्र, ६. शिवोत्तम, ७. सूक्ष्म और ८. अनन्तरुद्र॥ १—४॥

मध्यवर्ती कलशमें शिव, समुद्र तथा शिव-मन्त्रकी स्थापना करे। यागमण्डपकी दिशाके स्वामीके लिये रचित स्नान-मण्डपमें दो हाथ लंबी और आठ अङ्गुल ऊँची एक वेदी बनावे। उसपर कमल आदिका आसन बिछा दे। और उसके ऊपर आसनस्वरूप अनन्तका न्यास करके शिष्यको पूर्वाभिमुख बिठाकर सकलीकरणपूर्वक पूजन करे। काञ्जी, भात, मिट्टी, भस्म, दूर्वा, गोबरके गोले, सरसों, दही और जल—इन सबके द्वारा उसके शरीरको मलकर क्षारोदक आदिके क्रमसे नमस्कारसहित विद्येश्वरोंके नाम-मन्त्रोंद्वारा पूर्वोक्त कलशोंके जलसे शिष्यको स्नान करावे और शिष्य मन-ही-मन यह धारणा करे कि 'मुझे अमृतसे नहलाया जा रहा है'॥ ५—८ $\frac{1}{2}$ ॥

तत्पश्चात् उसे दो श्वेत वस्त्र पहनाकर शिवके दक्षिण भागमें बिठावे और पूर्वोक्त आसनपर पुनः उस शिष्यकी पहलेकी ही भाँति पूजा करे। इसके बाद उसे पगड़ी, मुकुट, योग-पट्टिका, कर्तरी (कैंची, चाकू या कटार), खड़िया, अक्षमाला और पुस्तक आदि अर्पित करे। वाहनके लिये शिबिका आदि भी दे। तदनन्तर गुरु उस शिष्यको अधिकार सौंपे। 'आज से तुम भलीभाँति जानकर, अच्छी तरह जाँच-परखकर किसीको दीक्षा, व्याख्या और प्रतिष्ठा आदिका उपदेश करना'—यह आज्ञा सुनावे। तदनन्तर शिष्यका अभिवादन स्वीकार कर और महेश्वरको प्रणाम करके उनसे विघ्न-समूहका निवारण करनेके लिये इस प्रकार प्रार्थना करे—'प्रभो शिव! आप गुरुस्वरूप हैं; आपने इस शिष्यका अभिषेक करनेके लिये मुझे आदेश दिया था, उसके अनुसार मैंने इसका अभिषेक कर दिया। यह संहितामें पारंगत है'॥ ९—१३ $\frac{1}{2}$ ॥

मन्त्रचक्रकी तृप्तिके लिये पाँच-पाँच आहुतियाँ दे। फिर पूर्णाहुति-होम करे। इसके बाद शिष्यको अपने दाहिने बिठावे। शिष्यके दाहिने हाथकी अङ्गुष्ठ आदि अँगुलियोंको क्रमशः दग्ध दर्भाङ्ग-शम्बरोंसे 'ऊषरत्व' के लिये लाञ्छित करे। उसके हाथमें फूल देकर उससे कलश, अग्नि एवं शिवको प्रणाम करवावे। तदनन्तर उसके लिये कर्तव्यका आदेश दे—'तुम्हें शास्त्रके अनुसार भलीभाँति परीक्षा करके शिष्योंको अनुगृहीत करना चाहिये।' मानव आदिका राजाकी भाँति अभिषेक करनेसे अभीष्टकी प्राप्ति होती है। '**ॐ श्लीं पशु हूं फट्।**'—यह अस्त्रराज पाशुपत-मन्त्र है। इसके द्वारा अस्त्रराजका पूजन और अभिषेक करना चाहिये*॥ १४—१८॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'अभिषेक आदिकी विधिका वर्णन' नामक नब्बेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९०॥

इक्यानबेवाँ अध्याय

देवार्चनकी महिमा तथा विविध मन्त्र एवं मण्डलका कथन

भगवान् शंकर कहते हैं—स्कन्द! अभिषेक हो जानेपर दीक्षित पुरुष शिव, विष्णु तथा सूर्य आदि देवताओंका पूजन करे। जो शङ्ख, भेरी आदि वाद्योंकी ध्वनिके साथ देवताओंको पञ्चगव्यसे स्नान कराता है, वह अपने कुलका उद्धार करके स्वयं भी देवलोकको जाता है। अग्निनन्दन!

* सोमशम्भुने अपने ग्रन्थमें यहाँ साधकाभिषेक तथा अस्त्राभिषेकका भी विधान दिया है। (देखिये 'कर्मकाण्ड-क्रमावली' श्लोक- सं० १०८७ से १११३ तक)

कोटि सहस्र वर्षोंमें जो पाप उपार्जित किया गया है, वह सब देवताओंको घीका अभ्यङ्ग लगानेसे भस्म हो जाता है। एक आढ़क घी आदिसे देवताओंको नहलाकर मनुष्य देवता हो जाता है॥ १—३॥

चन्दनका अनुलेप लगाकर गन्ध आदिसे देवपूजन करे तो उसका भी वही फल है। थोड़ेसे आयासके द्वारा स्तुति पढ़कर यदि सदा देवताओंकी स्तुति की जाय तो वे भूत और भविष्यका ज्ञान, मन्त्रज्ञान, भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले होते हैं॥ ४ $\frac{1}{2}$॥

यदि कोई मन्त्रके शुभाशुभ फलके विषयमें प्रश्न करे तो प्रश्नकर्ताके संक्षिप्त प्रश्नवाक्यके अक्षरोंकी संख्या गिन ले। उस संख्यामें दोसे भाग दे। एक बचे तो शुभ और शून्य या दो बचे तो अशुभ फल जाने। तीनसे भाग देनेपर मूल धातुरूप जीवका परिचय मिलता है, अर्थात् एक शेष रहे तो वातजीव, दो शेष रहे तो पित्तजीव और तीन शेष रहे तो कफजीव जाने। चारसे भाग देनेपर ब्राह्मणादि वर्ण-बुद्धि होती है। तात्पर्य यह कि एक बाकी बचे तो उस मन्त्रमें ब्राह्मण-बुद्धि, दो बचनेपर क्षत्रिय-बुद्धि, तीन बचनेपर वैश्य-बुद्धि और चार शेष रहनेपर शूद्र-बुद्धि करे। पाँचसे भाग देनेपर शेषके अनुसार भूततत्त्व आदिका बोध होता है, अर्थात् एक आदि शेष रहनेपर पृथिवी आदि तत्त्वका परिचय मिलता है। इसी प्रकार जय-पराजय आदिका ज्ञान प्राप्त करे॥ ५-६॥

यदि मन्त्र-पदके अन्तमें एक त्रिक (तीन बीजाक्षर) हों, अधिक बीजाक्षर हों अथवा दो प, म एवं क हो तो इनमेंसे प्रथम वर्ग अशुभ, बीचवाला मध्यम तथा अन्तिम वर्ग शुभ है। यदि अन्तमें संख्या-समूह हो तो वह जीवनकालके दस वर्षका सूचक है। यदि दसकी संख्या हो तो दस वर्षके पश्चात् उस मन्त्रके साधकपर यमराजका निश्चय ही आक्रमण हो सकता है॥ ७ $\frac{1}{2}$॥

सूर्य, गणपति, शिव, दुर्गा, लक्ष्मी तथा श्रीविष्णु भगवान्के मन्त्रोंके अक्षरोंद्वारा जपमें तत्पर कठिनी (अङ्गुष्ठ अँगुली)-से स्पर्श किये गये कमलपत्रमें गोमूत्राकार रेखापर एक त्रिकसे आरम्भ कर बारह त्रिक-पर्यन्त लिखे। अर्थात् उक्त मन्त्रोंके तीन-तीन अक्षरोंका समुदाय एकसे लेकर बारह स्थानोंतक पृथक्-पृथक् लिखे। इसी प्रकार चौंसठ कोष्ठोंका एक मण्डल बनाकर उसमें मरुत् **(यं)**, व्योम **(हं)** और मरुत् **(यं)**—इन तीन बीजोंका त्रिक पहले कोष्ठसे लेकर आठवें कोष्ठतक लिखे। इन सब स्थानोंपर पासा फेंकनेसे अथवा स्पर्श करनेपर शुभाशुभका परिज्ञान होता है। विषम संख्यावाले स्थानोंपर पासा पड़े या स्पर्श हो तो शुभ और सम संख्यापर पड़े तो अशुभ फल होता है॥ ८—१०॥

'यं हं यं'—इन तीन बीजोंके आठ त्रिक हैं। वे ध्वज आदि आठ आयोंके प्रतीक हैं। इन आयोंमें जो सम हैं, वे अशुभ हैं। विषम आय शुभप्रद कहे गये हैं॥ ११॥

'क' आदि अक्षरोंको सोलह स्वरोंसे तथा सोलह स्वरोंको 'क' आदिसे युक्त करके उन सबके साथ **'आं ईं'** यह पल्लव लगा दे। पल्लवयुक्त इन सस्वर कादि अक्षरोंको आदिमें रखकर उनके साथ त्रिपुराके नाम-मन्त्रको पृथक्-पृथक् सम्बद्ध करे। उनके आदिमें **'ॐ ह्रीं'** जोड़े और अन्तमें **'नमः'** पद लगा दे। इस प्रकार पूजनकर्मके उपयोगमें आनेवाले इन मन्त्रोंका प्रस्तार बीस हजार एक सौ साठकी संख्यातक पहुँच जाता है॥ १२-१३॥

'आं ह्रीं'—इन बीजोंसे युक्त सरस्वती, चण्डी, गौरी तथा दुर्गाके मन्त्र हैं। श्रीदेवीके मन्त्र **'आं**

श्रीं' इन बीजोंसे युक्त हैं। सूर्यके मन्त्र 'आं क्षौं' इन बीजोंसे, शिवके मन्त्र 'आं हौं' इन बीजोंसे, गणेशके मन्त्र 'आं गं' इन बीजोंसे तथा श्रीहरिके मन्त्र 'आं अं' इन बीजोंसे युक्त हैं। कादि व्यञ्जन अक्षरों तथा अकारादि सोलह स्वरोंको मिलाकर इक्यावन होते हैं। इस प्रकार सस्वर कादि अक्षरोंको आदिमें और सस्वर 'क्ष' से लेकर 'क' तकके अक्षरोंको अन्तमें रखनेसे सम्पूर्ण मन्त्र बनते हैं॥ १४—१६॥

१४४० सम्पूर्ण मण्डल होनेसे सूर्य, शिव, देवी दुर्गा तथा विष्णुमेंसे प्रत्येकके तीन सौ साठ मण्डल होते हैं। अभिषिक्त गुरु इन सब मन्त्रों तथा देवताओंका जप-ध्यान करे तथा शिष्य एवं पुत्रको दीक्षा भी दे॥ १७॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'नाना-मन्त्र आदिका कथन' नामक इक्यानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९१॥

बानबेवाँ अध्याय

प्रतिष्ठाके अङ्गभूत शिलान्यासकी विधिका वर्णन

भगवान् शिव कहते हैं—स्कन्द! अब मैं संक्षेपसे और क्रमशः प्रतिष्ठाका वर्णन करूँगा। पीठ शक्ति है और लिङ्ग शिव। इन दोनों (पीठ और लिङ्ग अथवा शक्ति और शिव)-के योगमें शिव-सम्बन्धी मन्त्रोंद्वारा प्रतिष्ठाकी विधि सम्पादित होती है। प्रतिष्ठाके 'प्रतिष्ठा' आदि पाँच भेद[1] हैं। उनका स्वरूप तुम्हें बता रहा हूँ। जहाँ ब्रह्मशिलाका योग हो, वहाँ विशेषरूपसे की हुई स्थापना 'प्रतिष्ठा' कही गयी है। पीठपर ही यथायोग्य जो अर्चा-विग्रहको पधराया जाता है, उसे 'स्थापन' कहते हैं। प्रतिष्ठा (ब्रह्मशिला)-से भिन्नकी स्थापनाको 'स्थिर स्थापन' कहते हैं। लिङ्गके आधारपूर्वक जो स्थापना होती है, उसे 'उत्थापन' कहा गया है। जिस प्रतिष्ठामें लिङ्गको आरोपित करके विद्वानोंद्वारा उसका संस्कार किया जाता है, उसकी 'आस्थापन' संज्ञा है। ये शिव-प्रतिष्ठाके पाँच भेद हैं। 'आस्थान' और 'उत्थान' भेदसे विष्णु आदिकी प्रतिष्ठा दो प्रकारकी मानी गयी है। इन सभी प्रतिष्ठाओंमें चैतन्यस्वरूप परमशिवका नियोजन करे। 'पदाध्वा' आदि भेदसे प्रासादोंमें भी पाँच प्रकारकी प्रतिष्ठा बतायी गयी है[2]। प्रासादकी इच्छासे पृथ्वीकी परीक्षा करे। जहाँकी मिट्टीका रंग श्वेत हो और घीकी सुगन्ध आती हो, वह भूमि ब्राह्मणके लिये उत्तम बतायी गयी है। इसी तरह क्रमशः क्षत्रियके लिये लाल तथा रक्तकी-सी गन्धवाली मिट्टी, वैश्यके लिये पीली और सुगन्धयुक्त मिट्टीवाली तथा शूद्रके लिये काली एवं सुराकी-सी गन्धवाली मिट्टीसे युक्त भूमि श्रेष्ठ कही गयी है॥ १—७॥

पूर्व, ईशान, उत्तर अथवा सब ओर नीची और मध्यमें ऊँची भूमि प्रशस्त मानी गयी है[3]। एक हाथ गहराईतक खोदकर निकाली हुई मिट्टी

१. प्रतिष्ठा, स्थापन, स्थिर स्थापन, उत्थापन और आस्थापन।

२. 'अध्वा' छः कहे गये हैं—तत्त्वाध्वा, पदाध्वा, वर्णाध्वा, मन्त्राध्वा, कलाध्वा और भुवनाध्वा। इनमेंसे प्रथमको छोड़कर शेष पाँचोंके भेदसे यहाँ पाँच प्रकारकी प्रतिष्ठाका निर्देश किया गया है।

३. 'समराङ्गणसूत्रधार' में भी इससे मिलती-जुलती बात कही गयी है—

अनूषरा बहुतृणा शस्ता स्निग्धोत्तरपल्लवा। प्रागीशानप्लवा सर्वप्लवा वा दर्पणोदरा॥ (आठवाँ अ०, भूमि-परीक्षा ६-७)

यदि फिर उस गड्ढेमें डाली जानेपर अधिक हो जाय तो वहाँकी भूमिको उत्तम समझे। अथवा जल आदिसे उसकी परीक्षा करे।* हड्डी और कोयले आदिसे दूषित भूमिका खोदने, वहाँ गौओंको ठहराने अथवा बारंबार जोतने आदिके द्वारा अच्छी तरह शोधन करे। नगर, ग्राम, दुर्ग, गृह और प्रासादका निर्माण करानेके लिये उक्त प्रकारसे भूमि-शोधन आवश्यक है। मण्डपमें द्वारपूजासे लेकर मन्त्रतर्पण-पर्यन्त सम्पूर्ण कर्मका सम्पादन करके विधिपूर्वक घोरास्त्र सहस्त्रयाग करे। बराबर करके लिपी-पुती भूमिपर दिशाओंका साधन करे। सुवर्ण, अक्षत और दहीके द्वारा प्रदक्षिणक्रमसे रेखाएँ खींचे। मध्यभागसे ईशानकोष्ठमें स्थित भरे हुए कलशमें शिवका पूजन करे। फिर वास्तुकी पूजा करके उस कलशके जलसे कुदाल आदिको सींचे। मण्डपसे बाहर राक्षसों और ग्रहोंका पूजन करके दिशाओंमें विधिपूर्वक बलि दे॥ ८—१३ $\frac{1}{2}$ ॥

कलशमें पूजा करके लग्न आनेपर अग्निकोणवर्ती कोष्ठमें पहले जिसका अभिषेक किया गया था, उस मधुलिप्त कुदालसे धरती खुदावे और मिट्टीको नैर्ऋत्यकोणमें फेंके। खोदे गये गड्ढेमें कलशका जल गिरा दे। फिर भूमिका अभिषेक करके कुदाल आदिको नहलाकर उसका पूजन करे। तत्पश्चात् दूसरे कलशको दो वस्त्रोंसे आच्छादित करके ब्राह्मणके कंधेपर रखकर गाजे-बाजे और वेदध्वनिके साथ नगरकी पूर्व सीमाके अन्ततक, जितनी दूर जाना अभीष्ट हो, उतनी दूर ले जाय और वहाँ क्षणभर ठहरकर वहाँसे नगरके चारों ओर प्रदक्षिणक्रमसे चलते हुए ईशानकोणतक उस कलशको घुमावे। साथ ही सीमान्तचिह्नोंका अभिषेक करता रहे॥ १४—१८॥

इस प्रकार रुद्र-कलशको नगरके चारों ओर घुमाकर भूमिका परिग्रह करे। इस क्रियाको 'अर्घ्यदान' कहा गया है। तदनन्तर शल्यदोषका निवारण करनेके लिये भूमिको इतनी गहराईतक खुदवावे, जिससे कंकड़-पत्थर अथवा पानी दिखायी देने लगे। अथवा यदि शल्य (हड्डी आदि)-का ज्ञान हो जाय तो उसे विधिपूर्वक खुदवाकर निकाल दे। यदि कोई लग्न-कालमें प्रश्न पूछे और उसके मुखसे अ, क, च, ट, त, प, स और ह—इन वर्गोंके अक्षर निकलें तो इनकी दिशाओंमें शल्यकी स्थिति सूचित होती है। अथवा द्विज आदि वहाँ गिरें तो ये सब उस स्थानमें शल्य होनेकी सूचना देते हैं। कर्ताके अपने अङ्ग-विकारसे उसके ही बराबर शल्य होनेका निश्चय करे। पशु आदिके प्रवेशसे, कीर्तनसे तथा पक्षियोंके कलरवोंसे शल्यकी दिशाका ज्ञान प्राप्त करे॥ १९—२२॥

किसी पट्टीपर या भूमिपर अकारादि आठ वर्गोंसे युक्त मातृका-वर्णोंको लिखे। वर्गके अनुसार क्रमशः पूर्वसे लेकर ईशानतककी दिशाओंमें शल्यकी जानकारी प्राप्त करे। 'अ' वर्गमें पूर्व दिशाकी ओर लोहा होनेका अनुमान करे। 'क' वर्गमें अग्निकोणकी ओर कोयला जाने। 'च' वर्गमें दक्षिण दिशाकी ओर भस्म तथा 'ट' वर्गमें

* 'समराङ्गणसूत्रधार'के अनुसार जलसे परीक्षा करनेकी विधि इस प्रकार है—गड्ढा खोदकर उसकी मिट्टी निकालकर मिट्टीसे ही पूरित करनेके बजाय पानी भरना चाहिये। पानी भरकर सौ कदम (पदशतं व्रजेत्) चलना चाहिये। पुनः लौट आनेपर यदि पानी जितना था उतना ही रहे तो श्रेष्ठ, कुछ कम ($\frac{1}{3}$) हो जाय तो मध्यम और बहुत कम ($\frac{1}{4}$) अथवा और अधिक कम हो जाय तो वर्ज्य—निकृष्ट समझना चाहिये। समराङ्गणकी इस प्रक्रियामें मत्स्यपुराण-प्रक्रियाकी छाप है। परंतु मयमुनिने इस प्रक्रियाके सम्बन्धमें और भी कठोरता दिखायी है। उनके अनुसार गड्ढेमें सायंकाल पानी भरा जाय और दूसरे दिन प्रातः उसकी परीक्षा करनी चाहिये। यदि उसमें प्रातः भी कुछ पानीके दर्शन हो जायँ तो उसे अत्युत्कृष्ट भूमि समझना चाहिये। इसके विपरीत गुणवाली भूमि अनिष्टदायिनी तथा वर्ज्य है।

नैर्ऋत्यकोणकी ओर अस्थिका होना समझे। 'त' वर्गमें पश्चिम दिशाकी ओर ईंट, 'प' वर्गमें वायव्यकोणकी ओर खोपड़ी, 'य' वर्गमें उत्तर दिशाकी ओर मुर्दे और कीड़े आदि और 'स' वर्गमें ईशानकोणकी ओर लोहेका होना बतावे। इसी प्रकार 'ह' वर्गमें चाँदी होनेका अनुमान करे। 'क्ष' वर्गयुक्त दिग्भागसे उसी दिशामें अन्य अनर्थकारी वस्तुओंके होनेका अनुमान करे। एक-एक हाथ लंबे नौ शिलाखण्डोंका प्रोक्षण करके, उन्हें आठ-आठ अङ्गुल मिट्टीके भीतर गाड़ दे। फिर वहाँ पानी डालकर उनपर मुद्गरसे आघात करे। जब वे प्रस्तर तीन चौथाई भागतक गड्ढेके भीतर धँस जायँ, तब उस खातको भरकर, लीप-पोतकर वहाँकी भूमिको बराबर कर दे। ऐसा करवाकर गुरु सामान्य अर्घ्य हाथमें लिये आगे बताये जानेवाले मण्डल (या मण्डप)-की ओर जाय। मण्डपके द्वारपर द्वारपालोंका पूजन (आदर-सत्कार) करके पश्चिम द्वारसे उसके भीतर प्रवेश करे॥ २३—२८॥

वहाँ आत्मशुद्धि आदि कुण्ड-मण्डपका संस्कार करे। कलश और वार्धानी आदिका स्थापन करके लोकपालों तथा शिवका अर्चन करे। अग्निका जनन और पूजन आदि सब कार्य पूर्ववत् करे। तत्पश्चात् गुरु यजमानके साथ शिलाओंके स्नान-मण्डपमें जाय। वे शिलाएँ प्रासाद-लिङ्गके चार पाये हैं। उनके नाम हैं—क्रमशः धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य; अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्य आदि। उनकी ऊँचाई आठ अङ्गुलकी हो तो अच्छी मानी गयी है। वे चौकोर हों और उनकी लंबाई एक हाथकी हो, इस मापसे प्रस्तरकी शिलाएँ बनवानी चाहिये। ईंटोंकी शिलाओंका माप आधा होना चाहिये। प्रस्तरखण्डसे बने हुए प्रासादमें जो शिलाएँ उपयोगमें लायी जायँ अथवा ईंटोंके बने हुए मन्दिरमें जो ईंटें लगें, उनमेंसे नौ शिलाएँ अथवा ईंटें वज्र आदि चिह्नोंसे अङ्कित हों, अथवा पाँच शिलाएँ कमलके चिह्नोंसे अङ्कित हों। इन अङ्कित शिलाओंसे ही मन्दिर-निर्माणका कार्य आरम्भ किया जाय॥ २९—३२ $\frac{१}{२}$ ॥

पाँच शिलाओंके नाम इस प्रकार हैं—नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता और पूर्णा। इन पाँचोंके निधिकुम्भ इस प्रकार हैं—पद्म, महापद्म, शङ्ख, मकर और समुद्र। नौ शिलाओंके नाम इस प्रकार हैं—नन्दा, भद्रा, जया, पूर्णा, अजिता, अपराजिता, विजया, मङ्गला और नवमी शिला धरणी है। इन नवोंके निधिकलश क्रमशः इस प्रकार जानने चाहिये—सुभद्र, विभद्र, सुनन्द, पुष्पदन्त, जय, विजय, कुम्भ, पूर्व और उत्तर। प्रणवमय आसन देकर अस्त्र-मन्त्रसे ताड़न और उल्लेखन करनेके पश्चात् इन सब शिलाओंको सामान्य रूपसे कवच-मन्त्रसे अवगुण्ठित करना चाहिये। अस्त्र-मन्त्रके अन्तमें '**हूं फट्**' लगाकर उसका उच्चारण करते हुए मिट्टी, गोबर, गोमूत्र, कषाय तथा गन्धयुक्त जलसे मलस्नान करावे। तत्पश्चात् विधिपूर्वक पञ्चगव्य और पञ्चामृतसे स्नान कराना चाहिये। इसके बाद गन्धयुक्त जलसे स्नान करानेके अनन्तर अपने नामसे अङ्कित मन्त्रद्वारा फल, रत्न, सुवर्ण तथा गोशृङ्गके जलसे और चन्दनसे शिलाको चर्चित करके उसे वस्त्रोंसे आच्छादित करे॥ ३३—४० $\frac{१}{२}$ ॥

खड्डुत्थ आसन देकर, यागमण्डपकी परिक्रमा करके, उस शिलाको ले जाय और हृदय-मन्त्रद्वारा उसे शय्या अथवा कुशके बिस्तरपर सुला दे। वहाँ पूजन करके, बुद्धिसे लेकर पृथिवी-पर्यन्त तत्त्वसमूहोंका न्यास करनेके पश्चात्, त्रिखण्ड-व्यापक तत्त्वत्रयका उन शिलाओंमें क्रमशः न्यास करे। बुद्धिसे लेकर चित्ततक, चित्तके भीतर मातृकातक और तन्मात्रासे लेकर पृथिवी-

पर्यन्त शिवतत्त्व, विद्यातत्त्व तथा आत्मतत्त्वकी स्थिति है। पुष्पमाला आदिसे चिह्नित स्थानोंपर क्रमशः तीनों तत्त्वोंका अपने मन्त्रसे और तत्त्वेशोंका हृदय-मन्त्रसे पूजन करे। पूजनके मन्त्र इस प्रकार हैं—'**ॐ हूं शिवतत्त्वाय नमः। ॐ हां शिवतत्त्वाधिपाय रुद्राय नमः। ॐ हां विद्यातत्त्वाय नमः। ॐ हां विद्यातत्त्वाधिपाय विष्णवे नमः। ॐ हां आत्मतत्त्वाय नमः। ॐ हां आत्मतत्त्वाधिपतये ब्रह्मणे नमः।**' ॥ ४१—४६ ॥

प्रत्येक तत्त्व और प्रत्येक शिलामें पृथ्वी, अग्नि, यजमान, सूर्य, जल, वायु, चन्द्रमा और आकाश—इन आठ मूर्तियोंका न्यास करे। फिर क्रमशः शर्व, पशुपति, उग्र, रुद्र, भव, ईश्वर (या ईशान), महादेव तथा भीम—इन मूर्तीश्वरोंका न्यास करे। मूर्तियों तथा मूर्तीश्वरोंके मन्त्र इस प्रकार हैं—'**ॐ धरामूर्तये नमः। ॐ धराधिपतये शर्वाय नमः।**' इसके बाद अनन्त आदि लोकपालोंका क्रमशः अपने मन्त्रोंसे न्यास करे। इन्द्र आदि लोकपालोंके बीज आगे बताये जानेवाले क्रमसे यों जानने चाहिये—लृं, रूं, यूं, व्रूं, श्रूं, षूं, स्रूं, हूं, क्षूं। यह नौ शिलाओंके पक्षमें बताया गया है। जब पाँच पदकी शिलाएँ हों, तब प्रत्येक तत्त्वमयी शिलामें स्पर्शपूर्वक पृथ्वी आदि पाँच मूर्तियोंका न्यास करे। उक्त मूर्तियोंके पाँच मूर्तीश इस प्रकार हैं—ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव। इन पाँचोंका उक्त पाँचों मूर्तियोंमें पूर्ववत् पूजन करना चाहिये॥ ४७—५३ ॥

'**ॐ पृथिवीमूर्तये नमः। ॐ पृथिवीमूर्त्यधिपतये ब्रह्मणे नमः।**' इत्यादि मन्त्र पूजनके लिये जानने चाहिये। क्रमशः पाँच कलशोंका अपने नाम-मन्त्रोंसे पूजन करके उन्हें स्थापित करे। मध्यशिलाके क्रमसे विधिपूर्वक न्यास करे। विभूति, कुशा और तिलोंसे अस्त्र-मन्त्रद्वारा प्राकारकी कल्पना करे। कुण्डोंमें आधार-शक्तिका न्यास और पूजन करके तत्त्वों, तत्त्वाधिपों, मूर्तियों तथा मूर्तीश्वरोंका घृत आदिसे तर्पण करे। तत्पश्चात् ब्रह्मात्म-शुद्धिके लिये मूलके अङ्गभूत ब्रह्म-मन्त्रोंद्वारा क्रमशः सौ-सौ आहुतियाँ देकर पूर्णाहुति-पर्यन्त होम करनेके पश्चात् शान्ति-जलसे शिलाओंका प्रोक्षणपूर्वक पूजन करे। कुशाओंद्वारा स्पर्श करके प्रत्येक तत्त्वमें क्रमशः सांनिध्य और संधान करके फिर शुद्ध-न्यास करे। इस प्रकार जा-जाकर तीन भागोंमें कर्म करे। मन्त्र यों हैं—'**ॐ आम् ईम् आत्मतत्त्वविद्यातत्त्वाभ्यां नमः।**' इति॥ ५४—६० ॥

कुशके मूल आदिसे क्रमशः तत्त्वेशादि तीनका स्पर्श करे। इसके बाद ह्रस्व-दीर्घके प्रयोगपूर्वक तत्त्वानुसंधान करे। इसके लिये मन्त्र यों है—'**ॐ इं ऊं विद्यातत्त्वशिवतत्त्वाभ्यां नमः।**' तदनन्तर घी और मधुसे भरे हुए पञ्चरत्नयुक्त और पञ्चगव्यसे अग्रभागमें अभिषिक्त पाँच कलशोंका, जिनके देवता पञ्च-लोकपाल हैं, अपने मन्त्रोंसे पूजन करके उनके निकट होम करे। फिर समस्त शिलाओंके अधिदेवताओंका ध्यान करे। 'वे शिलाधिदेवता विद्यास्वरूप हैं, स्नान कर चुके हैं। उनकी अङ्गकान्ति सुवर्णके समान उद्दीप्त होती है। वे उज्ज्वल वस्त्र धारण करते हैं और समस्त आभूषणोंसे सम्पन्न हैं।' न्यूनतादि दोष दूर करनेके लिये तथा वास्तु-भूमिकी शुद्धिके लिये अस्त्र-मन्त्रद्वारा पूर्णाहुति-पर्यन्त सौ-सौ आहुतियाँ दे॥ ६१—६५ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'प्रतिष्ठाके अङ्गभूत शिलान्यासकी विधिका वर्णन' नामक बानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९२॥

तिरानबेवाँ अध्याय
वास्तुपूजा-विधि

भगवान् शिव कहते हैं—स्कन्द! तदनन्तर प्रासादको आसूत्रित करके वास्तुमण्डलकी रचना करे। समतल चौकोर क्षेत्रमें चौंसठ कोष्ठ बनावे। कोनोंमें दो वंशोंका विन्यास करे। विकोणगामिनी आठ रज्जुएँ अङ्कित करे। वे द्विपद और षट्पद स्थानोंके रूपमें विभक्त होंगी। उनमें वास्तुदेवताका पूजन करे, जिसकी विधि इस प्रकार है—'कुञ्चित केशधारी वास्तुपुरुष उत्तान सो रहा है। उसकी आकृति असुरके समान है।' पूजाकालमें उसके इसी स्वरूपका स्मरण करना चाहिये, परंतु दीवार आदिकी नींव रखते समय उसका ध्यान यों करना चाहिये कि 'वह औंधेमुँह पड़ा हुआ है। कोहनीसे सटे हुए उसके दो घुटने वायव्य और अग्निकोणमें स्थित हैं। अर्थात् दाहिना घुटना वायव्यकोणमें और बायाँ घुटना अग्निकोणमें स्थित है। उसके जुड़े हुए दोनों चरण पैतृ (नैर्ऋत्य!) दिशामें स्थित हैं तथा उसका सिर ईशानकोणकी ओर है। उसके हाथोंकी अञ्जलि वक्ष:स्थलपर है'॥ १—४॥

उस वास्तुपुरुषके शरीरपर आरूढ़ हुए देवताओंकी पूजा करनेसे वे शुभकारक होते हैं। आठ देवता कोणाधिपति माने गये हैं, जो आठ कोणार्धोंमें स्थित हैं। क्रमश: पूर्व आदि दिशाओंमें स्थित मरीचि आदि देवता छ:-छ: पदोंके स्वामी कहे गये हैं और उनके बीचमें विराजमान ब्रह्मा चार पदोंके स्वामी हैं। शेष देवता एक-एक पदके अधिष्ठाता बताये गये हैं। समस्त नाडी-सम्पात, महामर्म, कमल, फल, त्रिशूल, स्वस्तिक, वज्र, महास्वस्तिक, सम्पुट, त्रिकटि, मणिबन्ध तथा सुविशुद्ध पद—ये बारह मर्म-स्थान हैं। वास्तुकी भित्ति आदिमें इन सबका पूजन करे। ईशान (रुद्र)-को घृत और अक्षत चढ़ावे। पर्जन्यको कमल और जल अर्पित करे। जयन्तको कुङ्कुमरञ्जित निर्मल पताका दे। महेन्द्रको रत्नमिश्रित जल, सूर्यको धूम्र वर्णका चँदोवा, सत्यको घृतयुक्त गेहूँ तथा भृशको उड़द-भात चढ़ावे। अन्तरिक्षको विमांस (विशिष्ट फलका गूदा या औषधविशेष) अथवा सक्तु (सत्तू) निवेदित करे। ये पूर्व दिशाके आठ देवता हैं॥ ५—१०$\frac{1}{2}$ ॥

अग्निदेवको मधु, दूध और घीसे भरा हुआ स्रुक् अर्पित करे। पूषाको लाजा और वितथको सुवर्ण-मिश्रित जल दे। गृहक्षतको शहद तथा यमराजको पलोदन भेंट करे। गन्धर्वनाथको गन्ध, भृङ्गराजको पक्षिजिह्वा तथा मृगको यवपर्ण (जौके पत्ते) चढ़ावे—ये आठ देवता दक्षिण दिशामें पूजित होते हैं। 'पितृ' देवताको तिल-मिश्रित जल अर्पित करे। 'दौवारिक' नामवाले देवताको वृक्ष-जनित दूध और दन्तधावन धेनुमुद्राके प्रदर्शनपूर्वक निवेदित करे। 'सुग्रीव' को पूआ चढ़ावे, पुष्पदन्तको कुशा अर्पित करे, वरुणको लाल कमल भेंट करे और असुरको सुरा एवं आसव चढ़ावे। शोषको घीसे ओतप्रोत भात तथा (पाप यक्ष्मा) रोगको घृतमिश्रित माँड़ या लावा चढ़ावे। ये पश्चिम दिशाके आठ देवता कहे गये हैं॥ ११—१६॥

मारुतको पीले रंगका ध्वज, नागदेवताको नागकेसर, मुख्यको भक्ष्यपदार्थ तथा भल्लाटको छौंक-बघारकर मूँगकी दाल अर्पित करे। सोमको घृतमिश्रित खीर, चरकको शालूक, अदितिको लोपी तथा दितिको पूरी चढ़ावे। ये उत्तर दिशाके आठ देवता कहे गये। मध्यवर्ती ब्रह्माजीको मोदक चढ़ावे। पूर्व दिशामें छ: पदोंके उपभोक्ता

मरीचिको भी मोदक अर्पित करे। ब्रह्माजीसे नीचे अग्निकोणवर्ती कोष्ठमें स्थित सविता देवताको लाल फूल चढ़ावे। सवितासे नीचे वह्निकोणवर्ती कोष्ठमें सावित्री देवीको कुशोदक अर्पित करे। ब्रह्माजीसे दक्षिण छः पदोंके अधिष्ठाता विवस्वान्‌को लाल चन्दन चढ़ावे॥ १७—२०॥

ब्रह्माजीसे नैर्ऋत्य दिशामें नीचेके कोष्ठमें इन्द्र-देवताके लिये हल्दी-भात अर्पित करे। इन्द्रसे नीचे नैर्ऋत्यकोणमें इन्द्रजयके लिये मिष्टान्न निवेदित करे। ब्रह्माजीसे पश्चिम छः पदोंमें विराजमान मित्र देवताको गुडमिश्रित भात चढ़ावे। वायव्यकोणसे नीचेके पदमें रुद्रदेवताको घृतपक्क अन्न अर्पित करे। रुद्र देवतासे नीचेके कोष्ठमें, रुद्र दासके लिये आर्द्रमांस (औषधविशेष) निवेदित करे। तत्पश्चात् उत्तरवर्ती छः पदोंके अधिष्ठाता पृथ्वीधरके निमित्त उड़दका बना नैवेद्य चढ़ावे। ईशानकोणके निम्नवर्ती पदमें 'आप'की और उससे भी नीचेके पदमें आपवत्सकी विधिवत् पूजा करके उन्हें क्रमशः दही और खीर अर्पित करे॥ २१—२४॥

तत्पश्चात् (चौंसठ पदवाले वास्तुमण्डलमें) मध्यदेशवर्ती चार पदोंमें स्थित ब्रह्माजीको पञ्चगव्य, अक्षत और घृतसहित चरु निवेदित करे। तदनन्तर ईशानसे लेकर वायव्यकोण-पर्यन्त चार कोणोंमें स्थित चरकी आदि चार मातृकाओंका वास्तुके बाह्यभागमें क्रमशः पूजन करे, जैसा कि क्रम बताया जाता है। चरकीको सघृत मांस (फलका गूदा), विदारीको दही और कमल तथा पूतनाको पल, पित्त एवं रुधिर अर्पित करे। पापराक्षसीको अस्थि (हड्डी), मांस, पित्त तथा रक्त चढ़ावे। इसके पश्चात् पूर्व दिशामें स्कन्दको उड़द-भात चढ़ावे। दक्षिण दिशामें अर्यमाको खिचड़ी और पूआ चढ़ावे तथा पश्चिम दिशामें जम्भक-को रक्त-मांस अर्पित करे। उत्तर दिशामें पिलिपिच्छको रक्तवर्णका अन्न और पुष्प निवेदित करे। अथवा सम्पूर्ण वास्तुमण्डलका कुश, दही, अक्षत तथा जलसे ही पूजन करे॥ २५—३०॥

घर और नगर आदिमें इक्यासी पदोंसे युक्त वास्तुमण्डलका पूजन करना चाहिये। इस वास्तुमण्डलमें त्रिपद और षट्पद रज्जुएँ पूर्ववत् बनानी चाहिये। उसमें ईश आदि देवता 'पदिक' (एक-एक पदके अधिष्ठाता) माने गये हैं। 'आप' आदिकी स्थिति दो-दो कोष्ठोंमें बतायी गयी है। मरीचि आदि देवता छः पदोंमें अधिष्ठित होते हैं और ब्रह्मा नौ पदोंके अधिष्ठाता कहे गये हैं। नगर, ग्राम और खेट आदिमें शतपद-वास्तुका भी विधान है। उसमें दो वंश कोणगत होते हैं। वे सदा दुर्जय और दुर्धर कहे गये हैं॥ ३१—३३॥

देवालयमें जैसा न्यास बताया गया है, वैसा ही शतपद-वास्तुमण्डलमें भी विहित है। उसमें स्कन्द आदि ग्रह 'षट्पद' (छः पदोंके अधिष्ठाता) जानने चाहिये। चरकी आदि पाँच-पाँच पदोंकी अधिष्ठात्री कही गयी हैं। रज्जु और वंश आदिका उल्लेख पूर्ववत् करना चाहिये। देश (या राष्ट्र)-की स्थापनाके अवसरपर चौंतीस सौ पदोंका वास्तुमण्डल होना चाहिये। उसमें मध्यवर्ती ब्रह्मा चौंसठ पदोंके अधिष्ठाता होते हैं। मरीचि आदि देवताओंके अधिकारमें चौवन-चौवन पद होते हैं। 'आप' आदि आठ देवताओंके स्थान छत्तीस-छत्तीस पद बताये गये हैं। वहाँ ईशान आदि नौ-नौ पदोंके अधिष्ठाता कहे गये हैं और स्कन्द आदि सौ-सौ पदोंके। चरकी आदिके पद भी तदनुसार ही हैं। रज्जु, वंश आदिकी कल्पना पूर्ववत् जाननी चाहिये। बीस हजार पदोंके वास्तुमण्डलमें भी वास्तुदेवकी पूजा होती है—यह जानना चाहिये। उसमें देश-वास्तुकी भाँति

नौ गुना न्यास करना चाहिये। पच्चीस पदोंका वास्तुमण्डल चितास्थापनके समय विहित है। उसकी 'वताल' संज्ञा है। दूसरा नौ पदोंका भी होता है। इसके सिवा एक सोलह पदोंका भी वास्तुमण्डल होता है॥ ३४—३९॥

षट्कोण, त्रिकोण तथा वृत्त आदिके मध्यमें चौकोर वास्तुमण्डलका भी विधान है। ऐसा वास्तु खात (नींव आदिके लिये खोदे गये गड्ढे)-के लिये उपयुक्त है। इसीके समान वास्तु ब्रह्म-शिलात्मक पृष्ठन्यासमें, शावाकके निवेशमें और मूर्तिस्थापनमें भी उपयोगी होता है। वास्तुमण्डलवर्ती समस्त देवताओंको खीरसे नैवेद्य अर्पित करे। उक्त-अनुक्त सभी कार्योंके लिये सामान्यतः पाँच हाथकी लंबाई-चौड़ाईमें वास्तुमण्डल बनाना चाहिये। गृह और प्रासादके मानके अनुसार ही निर्मित वास्तुमण्डल सर्वदा श्रेष्ठ कहा गया है॥ ४०—४२॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'वास्तुपूजाकी विधिका वर्णन' नामक तिरानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९३॥

चौरानबेवाँ अध्याय

शिलान्यासकी विधि

भगवान् शिव कहते हैं—स्कन्द! ईशान आदि कोणोंमें वास्तुमण्डलके बाहर पूर्ववत् चरकी आदिका पूजन करे। प्रत्येक देवताके लिये क्रमशः तीन-तीन आहुतियाँ दे। भूतबलि देकर नियत लग्नमें शिलान्यासका उपक्रम करे। खातके मध्यभागमें आधार-शक्तिका न्यास करे। वहाँ अनन्त (शेषनाग)-के मन्त्रसे अभिमन्त्रित उत्तम कलश स्थापित करे। '**लं पृथिव्यै नमः।**'— इस मूल-मन्त्रसे इस कलशपर पृथिवीस्वरूपा शिलाका न्यास करे। उसके पूर्वादि दिग्भागोंमें क्रमशः सुभद्र आदि आठ कलशोंकी स्थापना करे। पहले उनके लिये गड्ढे खोदकर उनमें आधार-शक्तिका न्यास करनेके पश्चात् उक्त कलशोंको इन्द्रादि लोकपालोंके मन्त्रोंद्वारा स्थापित करना चाहिये। तदनन्तर उन कलशोंपर क्रमशः नन्दा आदि शिलाओंको रखे॥ १—४॥

तत्त्वमूर्तियोंके अधिदेवता-सम्बन्धी शस्त्रोंसे युक्त वे शिलाएँ होनी चाहिये। जैसे दीवारमें मूर्ति तथा अस्त्र आदि अङ्कित होते हैं, उसी प्रकार उन शिलाओंमें शर्व आदि मूर्ति, देवताओंके अस्त्र-शस्त्र अङ्कित रहें। उक्त शिलाओंपर कोण और दिशाओंके विभागपूर्वक धर्म आदि आठ देवताओंकी स्थापना करे। सुभद्र आदि चार कलशोंपर नन्दा आदि चार शिलाएँ अग्नि आदि चार कोणोंमें स्थापित करनी चाहिये। फिर जय आदि चार कलशोंपर अजिता आदि चार शिलाओंकी पूर्व आदि चार दिशाओंमें स्थापना करे। उन सबके ऊपर ब्रह्माजी तथा व्यापक महेश्वरका न्यास करके मन्दिरके मध्यवर्ती 'आकाश' नामक अध्वाका चिन्तन करे। इन सबको बलि अर्पित करके विघ्नदोषके निवारणार्थ अस्त्र-मन्त्रका जप करे। जहाँ पाँच ही शिलाएँ स्थापित करनेकी विधि है, उसके पक्षमें भी कुछ निवेदन किया जाता है॥ ५—८॥

मध्यभागमें सुभद्र-कलशके ऊपर पूर्णा नामक शिलाकी स्थापना करे और अग्नि आदि कोणोंमें क्रमशः पद्म आदि कलशोंपर नन्दा आदि शिलाएँ स्थापित करे। मध्यशिलाके अभावमें चार शिलाएँ भी मातृभावसे सम्मानित करके स्थापित की जा सकती हैं। उक्त पाँचों शिलाओंकी प्रार्थना इस

प्रकार करे—

'ॐ सर्वसंदोहस्वरूपे महाविद्ये पूर्णे! तुम अङ्गिरा-ऋषिकी पुत्री हो। इस प्रतिष्ठाकर्ममें सब कुछ सम्यक्-रूपसे ही पूर्ण करो। नन्दे! तुम समस्त पुरुषोंको आनन्दित करनेवाली हो। मैं यहाँ तुम्हारी स्थापना करता हूँ। तुम इस प्रासादमें सम्पूर्णतः तृप्त होकर तबतक सुस्थिरभावसे स्थित रहो, जबतक कि आकाशमें चन्द्रमा, सूर्य और तारे प्रकाशित होते रहें। वसिष्ठनन्दिनि नन्दे! तुम देहधारियोंको आयु, सम्पूर्ण मनोरथ तथा लक्ष्मी प्रदान करो। तुम्हें प्रासादमें सदा स्थित रहकर यत्नपूर्वक इसकी रक्षा करनी चाहिये। ॐ कश्यपनन्दिनि भद्रे! तुम सदा समस्त लोकोंका कल्याण करो। देवि! तुम सदा ही हमें आयु, मनोरथ और लक्ष्मी प्रदान करती रहो। ॐ देवि जये! तुम सदा-सर्वदा हमारे लिये लक्ष्मी तथा आयु प्रदान करनेवाली होओ। भृगुपुत्रि देवि जये! तुम स्थापित होकर सदा यहीं रहो और इस मन्दिरके अधिष्ठाता मुझ यजमानको नित्य-निरन्तर विजय तथा ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली बनो। ॐ रिक्ते! तुम अतिरिक्त दोषका नाश करनेवाली तथा सिद्धि और मोक्ष प्रदान करनेवाली हो। शुभे! सम्पूर्ण देश-कालमें तुम्हारा निवास है। ईशरूपिणि! तुम सदा इस प्रासादमें स्थित रहो'॥ ९—१६॥

तत्पश्चात् आकाशस्वरूप मन्दिरका ध्यान करके उसमें तीन तत्त्वोंका न्यास करे। फिर विधिवत् प्रायश्चित्त-होम करके यज्ञका विसर्जन करे॥ १७॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'शिलान्यासकी विधिका वर्णन' नामक चौरानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९४॥

पंचानबेवाँ अध्याय

प्रतिष्ठा-काल-सामग्री आदिकी विधिका कथन

भगवान् शंकर कहते हैं—स्कन्द! अब मैं मन्दिरमें लिङ्ग-स्थापनाकी विधिका वर्णन करूँगा, जो भोग और मोक्षको देनेवाली है। यदि मुक्तिके लिये लिङ्ग-प्रतिष्ठा करनी हो तो उसे हर समय किया जा सकता है, परंतु यदि भोग-सिद्धिके उद्देश्यसे लिङ्ग-स्थापना करनेका विचार हो तो देवताओंका दिन (उत्तरायण) होनेपर ही वह कार्य करना चाहिये। माघसे लेकर पाँच महीनोंमें, चैत्रको छोड़कर, देवस्थापना करनेकी विधि है। जब गुरु और शुक्र उदित हों तो प्रथम तीन करणों (वव, बालव और कौलव)-में स्थापना करनी चाहिये। विशेषतः शुक्लपक्षमें तथा कृष्ण-पक्षमें भी पञ्चमी तिथितकका समय प्रतिष्ठाके लिये शुभ माना गया है। चतुर्थी, नवमी, षष्ठी और चतुर्दशीको छोड़कर शेष तिथियाँ क्रूर-ग्रहके दिनसे रहित होनेपर उत्तम मानी गयी हैं॥ १—३ $\frac{1}{2}$॥

शतभिषा, धनिष्ठा, आर्द्रा, अनुराधा, तीनों उत्तरा, रोहिणी और श्रवण—ये नक्षत्र स्थिर प्रतिष्ठा आरम्भ करनेके लिये महान् अभ्युदयकारक कहे गये हैं। कुम्भ, सिंह, वृश्चिक, तुला, कन्या, वृष—ये लग्न श्रेष्ठ बताये गये हैं।* बृहस्पति

---

* यहाँ सोमशम्भुने अपनी 'कर्मकाण्ड-क्रमावली' में पिङ्गलामतके अनुसार चारों वर्णोंके लिये पृथक्-पृथक् प्रतिष्ठोपयोगी प्रशस्त नक्षत्र बताये हैं—पुष्य, हस्त, उत्तराषाढ़, पूर्वाषाढ़ और रोहिणी—ये नक्षत्र ब्राह्मणके लिये श्रेष्ठ कहे गये हैं। क्षत्रियके लिये पुनर्वसु, चित्रा, धनिष्ठा और श्रवण उत्तम कहे गये हैं। वैश्यके लिये रेवती, आर्द्रा, उत्तरा और अश्विनी शुभ नक्षत्र हैं तथा शूद्रके लिये मघा, स्वाती और पूर्वाफाल्गुनी—ये नक्षत्र श्रेष्ठ हैं। (श्लोक १३२४—१३२७ तक)

(तृतीय, अष्टम और द्वादशको छोड़कर शेष) नौ स्थानोंमें शुभ माने गये हैं। सात स्थानोंमें तो वे सर्वदा ही शुभ हैं। छठे, आठवें, दसवें, सातवें और चौथे भावोंमें बुधकी स्थिति हो तो वे शुभकारक होते हैं। इन्हीं स्थानोंमें छठेको छोड़कर यदि शुक्र हों तो उन्हें शुभ कहा गया है। प्रथम, तृतीय, सप्तम, षष्ठ, दशम (द्वितीय और नवम) स्थानोंमें चन्द्रमा सदैव बलदायक माने गये हैं। सूर्य, दसवें, तीसरे और छठे भावोंमें स्थित हों तो शुभफल देनेवाले होते हैं। तीसरे, छठे और दसवेंमें राहुको भी शुभकारक कहा गया है॥ ४—७॥

छठे और तीसरे स्थानमें स्थित होनेपर शनैश्चर, मङ्गल और केतु प्रशस्त कहे गये हैं। शुभग्रह, क्रूरग्रह और पापग्रह—सभी ग्यारहवें स्थानमें स्थित होनेपर श्रेष्ठ बताये गये हैं। अपनी जगहसे सप्तम स्थानपर ही इन समस्त ग्रहोंकी दृष्टि पूर्ण (चारों चरणोंसे युक्त) होती है। पाँचवें और नवें स्थानोंपर इनकी दृष्टि आधी (दो चरणोंसे युक्त) बतायी गयी है। तृतीय और दसवें स्थानोंको ये ग्रह एकपादसे देखते हैं तथा चौथे एवं आठवें स्थानोंपर इनकी दृष्टि तीन चरणोंसे युक्त होती है। मीन और मेष राशिका भोग पौने चार नाड़ीतक है। वृष और कुम्भ भी पौने चार नाड़ीका ही उपभोग करते हैं। मकर और मिथुन पाँच नाड़ी, धन, वृश्चिक, सिंह और कर्क पौने छः नाड़ी तथा तुला और कन्या राशियाँ साढ़े पाँच नाड़ीका उपभोग करती हैं॥ ८—११॥

सिंह, वृष और कुम्भ—ये 'स्थिर' लग्न सिद्धिदायक होते हैं। धन, तुला और मेष 'चर' कहे गये हैं। तीसरी-तीसरी संख्याके लग्न (मिथुन, कन्या आदि) 'द्वि-स्वभाव' कहे गये हैं। कर्क, मकर और वृश्चिक—ये प्रव्रज्या (संन्यास) कार्यके नाशक हैं। जो लग्न शुभग्रहोंसे देखा गया हो, वह शुभ है तथा जिस लग्नमें शुभग्रह स्थित हों, वह श्रेष्ठ माना गया है। बृहस्पति, शुक्र और बुधसे युक्त लग्न धन, आयु, राज्य, शौर्य (अथवा सौख्य), बल, पुत्र, यश तथा धर्म आदि वस्तुओंको अधिक मात्रामें प्रदान करता है। कुण्डलीके बारह भावोंमेंसे प्रथम, चतुर्थ, सप्तम और दशमको 'केन्द्र' कहते हैं। उन केन्द्र-स्थानोंमें यदि गुरु, शुक्र और बुध हों तो वे सम्पूर्ण सिद्धियोंके दाता होते हैं। लग्न-स्थानसे तीसरे, ग्यारहवें और चौथे स्थानोंमें पापग्रह हों तो वे शुभकारक होते हैं। अतः इनको तथा इनसे भिन्न शुभग्रहों तथा शुभ तिथियोंको विद्वान् पुरुष प्रतिष्ठाकर्मके लिये योजित करे। मन्दिरके सामने उससे पाँच गुनी अथवा मन्दिरके बराबर ही या सीढ़ीसे दस हाथ आगेतककी भूमि छोड़कर मण्डप निर्माण करे॥ १२—२७॥

वह मण्डप चौकोर और चार दरवाजोंसे युक्त हो। उसकी आधी भूमि लेकर स्नानके लिये मण्डप बनावे। उसमें भी एक या चार दरवाजे हों। यह स्नान-मण्डप ईशान, पूर्व अथवा उत्तर दिशामें होना चाहिये।* [प्रथम तीन लिङ्गोंके लिये तीन मण्डपोंका निर्माण करे। पहले मण्डपकी 'हास्तिक' संज्ञा है। वह आठ हाथका होता है। शेष दो मण्डप एक-एक हाथ बड़े होंगे, अर्थात् दूसरा मण्डप नौ हाथका और तीसरा दस हाथका होगा। इसी तरह अन्य लिङ्गोंके लिये भी प्रति-मण्डप दो-दो हाथ भूमि बढ़ा दे, जिससे नौ हाथ बड़े नवें लिङ्गके लिये बाईस हाथका मण्डप सम्पन्न हो सके।] प्रथम मण्डप आठ हाथका, दस हाथका अथवा बारह हाथका होना चाहिये।

* सोमशम्भुकी 'कर्मकाण्ड-क्रमावली' में यहाँ चार पंक्तियाँ अधिक उपलब्ध होती हैं, जिनका अर्थ कोष्ठक [ ] में दिया गया है (देखिये श्लोक १३२९ से १३३१ तक)।

शेष आठ मण्डपोंको दो-दो हाथ बढ़ाकर रखे। (इस प्रकार कुल नौ मण्डप होने चाहिये।) [पाद आदिसे वृद्धलिङ्गोंकी स्थापनामें पादों (पायों)- के अनुसार मण्डप बनावे। बाणलिङ्ग, रत्नजलिङ्ग तथा लौहलिङ्गकी स्थापनाके अवसरपर हास्तिक (आठ हाथवाले) मण्डपके अनुसार सब कुछ बनावे। अथवा जो देवीका प्रासाद हो, उसके अनुसार मण्डप बनावे। समस्त लिङ्गोंके लिये प्रासाद-निर्माणकी विधि शैव-शास्त्रके अनुसार जाननी चाहिये। घन, घोष, विराग,काञ्चन, काम, राम, सुवेश, घर्मर तथा दक्ष—ये नौ लिङ्गोंके लिये नौ मण्डपोंके नाम हैं। चारों कोणोंमें चार खंभे हों और दरवाजोंपर दो-दो। यह सब हास्तिक-मण्डपके विषयमें बताया गया है। उससे विस्तृत मण्डपमें जैसे भी उसकी शोभा सम्भव हो, अन्य खंभोंका भी उपयोग किया जा सकता है।]*॥ १८-१९॥

मध्य-मण्डलमें चार हाथकी वेदी बनावे। उसके चारों कोनोंमें चार खंभे हों। वेदी और पायोंके बीचका स्थान छोड़कर कुण्डोंका निर्माण करे। इनकी संख्या नौ अथवा पाँच होनी चाहिये। ईशान या पूर्व दिशामें एक ही कुण्ड बनावे। वह गुरुका स्थान है। यदि पचास आहुति देनी हो तो मुट्ठी बँधे हाथसे एक हाथका कुण्ड होना चाहिये। सौ आहुतियाँ देनी हों तो कोहनीसे लेकर कनिष्ठिकातकके मापसे एक अरत्नि या एक हाथका कुण्ड बनावे। एक हजार आहुतियोंका होम करना हो तो एक हाथ लंबा, चौड़ा और गहरा कुण्ड हो। दस हजार आहुतियोंके लिये इससे दूने मापका कुण्ड होना चाहिये। लाख आहुतियोंके लिये चार हाथके और एक करोड़ आहुतियोंके लिये आठ हाथके कुण्डका विधान है। अग्निकोणमें भगाकार, दक्षिण दिशामें अर्धचन्द्राकार, नैर्ऋत्यकोणमें त्रिकोण (पश्चिम दिशामें चन्द्रमण्डलके समान गोलाकार), वायव्यकोणमें षट्कोण, उत्तर दिशामें कमलाकार, ईशानकोणमें अष्टकोण (तथा पूर्व दिशामें चतुष्कोण) कुण्डका निर्माण करना चाहिये॥ २०—२३॥

कुण्ड सब ओरसे बराबर और ढालू होना चाहिये। ऊपरकी ओर मेखलाएँ बनी होनी चाहिये। बाहरी भागमें क्रमशः चार, तीन और दो अङ्गुल चौड़ी तीन मेखलाएँ होती हैं। अथवा एक ही छः अङ्गुल चौड़ी मेखला रहे। मेखलाएँ कुण्डके आकारके बराबर ही होती हैं। उनके ऊपर मध्यभागमें योनि हो, जिसकी आकृति पीपलके पत्तेकी भाँति रहे। उसकी ऊँचाई एक अङ्गुल और चौड़ाई आठ अङ्गुलकी होनी चाहिये। लंबाई कुण्डार्धके तुल्य हो। योनिका मध्यभाग कुण्डके कण्ठकी भाँति हो, पूर्व, अग्निकोण और दक्षिण दिशाके कुण्डोंकी योनि उत्तराभिमुखी होनी चाहिये, शेष दिशाओंके कुण्डोंकी योनि पूर्वाभिमुखी हो तथा ईशानकोणके कुण्डकी योनि उक्त दोनों प्रकारोंमेंसे किसी एक प्रकारकी (उत्तराभिमुखी या पूर्वाभिमुखी) रह सकती है॥ २४—२७॥

कुण्डोंका जो चौबीसवाँ भाग है, वह 'अङ्गुल' कहलाता है। इसके अनुसार विभाजन करके मेखला, कण्ठ और नाभिका निश्चय करना चाहिये। मण्डपमें पूर्वादि दिशाओंकी ओर जो चार दरवाजे लगते हैं, वे क्रमशः पाकड़, गूलर, पीपल और बड़की लकड़ीके होने चाहिये। पूर्वादि दिशाओंके क्रमसे इनके नाम शान्ति, भूति, बल और आरोग्य हैं। दरवाजोंकी ऊँचाई पाँच, छः अथवा सात हाथकी होनी चाहिये। वे

* प्रसङ्गको ठीकसे समझनेके लिये 'कर्मकाण्ड-क्रमावली'से अपेक्षित अंश यहाँ भावार्थरूपमें उद्‌धृत किया गया है। (देखिये श्लोक-सं० १३३३ से १३३६)

हाथभर गहरे खुदे हुए गड्ढेमें खड़े किये गये हों। उनका विस्तार ऊँचाई या लंबाईकी अपेक्षा आधा होना चाहिये। उनमें आम्र-पल्लव आदिकी बन्दनवारें लगा देनी चाहिये। मण्डपकी पूर्वादि दिशाओंमें क्रमशः इन्द्रायुधकी भाँति तिरंगी, लाल, काली, धूमिल, चाँदनीकी भाँति श्वेत, तोतेकी पाँखके समान हरे रंगकी, सुनहरे रंगकी तथा स्फटिक मणिके समान उज्ज्वल पताका फहरानी चाहिये। ईशान और पूर्वके मध्यभागमें ब्रह्माजीके लिये लाल रंगकी तथा नैर्ऋत्य और पश्चिमके मध्यभागमें अनन्त (शेषनाग)-के लिये नीले रंगकी पताका फहरानी चाहिये। ध्वजोंकी पताकाएँ पाँच हाथ लंबी और इससे आधी चौड़ी हों। ध्वज-दण्डकी ऊँचाई पाँच हाथकी होनी चाहिये। ध्वजकी मोटाई ऐसी हो कि दोनों हाथोंकी पकड़में आ जाय॥ २८—३२॥

पर्वत-शिखर, राजद्वार, नदीतट, घुड़सार, हथिसार, विमौट, हाथीके दाँतोंके अग्रभागसे कोड़ी गयी भूमि, साँड़के सींगसे खोदी गयी भूमि, कमलसमूहके नीचेके स्थान, सूअरकी खोदी हुई भूमि, गोशाला तथा चौराहा—इन बारह स्थानोंसे बारह प्रकारकी मिट्टी लेनी चाहिये। भगवान् विष्णुकी स्थापनामें ये द्वादश मृत्तिकाएँ तथा भगवान् शिवकी स्थापनामें आठ प्रकारकी मृत्तिकाएँ ग्राह्य हैं। बरगद, गूलर, पीपल, आम और जामुनकी छालसे पैदा हुई पाँच प्रकारकी गोंद संग्रहणीय हैं। आठ प्रकारके ऋतुफल मँगा लेने चाहिये। तीर्थजल, सुगन्धित जल, सर्वौषधि-मिश्रित जल, शस्य-पुष्पमिश्रित जल, स्वर्णमिश्रित, रत्नमिश्रित तथा गो-शृङ्गके स्पर्शसे युक्त जल, पञ्चगव्य और पञ्चामृत—इन सबको देवस्नानके लिये एकत्र करे। विघ्नकर्ताओंको डरानेके लिये आटेके बने हुए वज्र आदि आयुध-द्रव्योंको भी प्रस्तुत रखना चाहिये। सहस्र छिद्रोंसे युक्त कलश तथा मङ्गलकृत्यके लिये गोरोचना भी रखे॥ ३३—३७॥

सौ प्रकारकी ओषधियोंकी जड़, विजया, लक्ष्मणा (श्वेत कण्टकारिका), बला (अथवा अभया-हर्रे), गुरुचि, अतिबला, पाठा, सहदेवा, शतावरी, ऋद्धि, सुवर्चला और वृद्धि—इन सबका पृथक्-पृथक् स्नानके लिये उपयोग बताया गया है। रक्षाके लिये तिल और कुशा आदि संग्रहणीय हैं। भस्मस्नानके लिये भस्म जुटा ले। विद्वान् पुरुष स्नानके लिये जौ और गेहूँके आटे, बेलका चूर्ण, विलेपन, कपूर, कलश तथा गडुओंका संग्रह कर ले। खाट, दो तूलिका (रूईभरा गद्दा तथा रजाई), तकिया, चादर आदि अन्य आवश्यक वस्त्र—इन सबको अपने वैभवके अनुसार तैयार करावे और विविध चिह्नोंसे सुसज्जित शयन-कक्षमें इनको रखे। घी और मधुसे युक्त पात्र, सोनेकी सलाई, पूजोपयोगी जलसे भरा पात्र, शिवकलश और लोकपालोंके लिये कलशका भी संग्रह करे॥ ३८—४२॥

एक कलश निद्राके लिये भी होना चाहिये। कुण्डोंकी संख्याके अनुसार उतने ही शान्ति-कलश रखे जाने चाहिये। द्वारपाल आदि, धर्म आदि तथा प्रशान्त आदिके लिये भी कलश जुटा ले। वास्तुदेव, लक्ष्मी और गणेशके लिये भी अन्यान्य पृथक्-पृथक् कलश आवश्यक हैं। इन कलशोंके नीचे आधारभूमिपर धान्य-पुञ्ज रखना चाहिये। सभी कलश वस्त्र और पुष्पमालासे विभूषित किये जाने चाहिये। इनके भीतर सुवर्ण डालकर इनका स्पर्श किया जाय और इन्हें सुगन्धित जलसे भरा जाय। सभी कलशोंके ऊपर पूर्णपात्र और फल रखे जायँ। उनके मुखभागमें पञ्चपल्लव रहें तथा वे कलश उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न हों। कलशोंको वस्त्रोंसे आच्छादित करे। सब ओर बिखेरनेके लिये पीली सरसों और लावाका संग्रह कर ले। पूर्ववत् ज्ञान-खड्गका भी सम्पादन करे। चरु रखनेके लिये बटलोई

और उसका ढक्कन मँगा ले। ताँबेकी बनी हुई करछुल तथा पादाभ्यङ्गके लिये घृत और मधुका पात्र भी संगृहीत कर ले॥ ४३—४७॥

कुशके तीस दलोंसे बने हुए दो-दो हाथ लंबे-चौड़े चार-चार आसन एकत्र कर ले। इसी तरह पलाशोंके बने हुए चार-चार परिधि भी जुटा ले। तिलपात्र, हविष्यपात्र, अर्घ्यपात्र और पवित्रक एकत्र करे। इनका मान बीस-बीस पल है। घण्टा और धूपदानी भी मँगा ले। स्रुक्, स्रुवा, पिटक (पिटारी एवं टोकरी), पीठ (पीढ़ा या चौकी), व्यजन, सूखी लकड़ी, फूल, पत्र, गुग्गुल, घीके दीपक, धूप, अक्षत, तिगुना सूत, गायका घी, जौ, तिल, कुशा, शान्तिकर्मके लिये त्रिविध मधुर पदार्थ (मधु, शक्कर और घी), दस पर्वकी समिधाएँ, बाँह-बराबर या एक हाथका स्रुवा, सूर्य आदि ग्रहोंकी शान्तिके लिये समिधाएँ—आक, पलाश, खैर, अपामार्ग, पीपल, गूलर, शमी, दूर्वा और कुशा भी संग्रहणीय हैं। आक आदिमें प्रत्येककी समिधाएँ एक सौ आठ-आठ होनी चाहिये। ये न मिल सकें तो इनकी जगह जौ और तिलोंकी आहुति देनी चाहिये। इनके सिवा घरेलू आवश्यकताकी वस्तुओंका भी संग्रह करे॥ ४८—५३॥

बटलोई, करछुल, ढक्कन आदि जुटा ले। देवता आदिके लिये प्रत्येकको दो-दो वस्त्र देने चाहिये। आचार्यकी पूजाके लिये मुद्रा, मुकुट, वस्त्र, हार, कुण्डल और कङ्कन आदि तैयार करा ले। धन खर्च करनेमें कंजूसी न करे॥ ५४ $\frac{१}{२}$ ॥

मूर्ति धारण करनेवाले तथा अस्त्र-मन्त्रका जप करनेवाले ब्राह्मणोंको आचार्यकी अपेक्षा एक-एक चौथाई कम दक्षिणा दे। सामान्य ब्राह्मणों, ज्योतिषियों तथा शिल्पियोंको जपकर्ताओंके बराबर ही पूजा देनी चाहिये। हीरा, सूर्यकान्तमणि, नीलमणि, अतिनीलमणि, मुक्ताफल, पुष्पराग, पद्मराग तथा आठवाँ रत्न वैदूर्यमणि—इनका भी संग्रह करे। उशीर (खस), विष्णुक्रान्ता (अपराजिता), रक्तचन्दन, अगुरु, श्रीखण्ड, शारिवा (अनन्ता या श्यामालता), कुष्ठ (कुट) और शङ्खिनी (श्वेत पुन्नाग)—इन ओषधियोंका समुदाय संग्रहणीय है॥ ५५—५७$\frac{१}{२}$ ॥

सोना, ताँबा, लोहा, राँगा, चाँदी, काँसी और सीसा—इन सबकी 'लोह' संज्ञा है। इनका भी संग्रह करे। हरिताल, मैनसिल, गेरू, हेममाक्षीक, पारा, वह्निगैरिक, गन्धक और अभ्रक—ये आठ धातुएँ संग्रहणीय हैं। इसी प्रकार आठ प्रकारके व्रीहियों (अनाजों)-का भी संग्रह करना चाहिये। उनके नाम इस प्रकार हैं—धान, गेहूँ, तिल, उड़द, मूँग, जौ, तिन्नी और साँवाँ॥ ५८—६१॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'प्रतिष्ठा, काल और सामग्री आदिकी विधिका वर्णन' नामक पंचानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९५॥

छियानबेवाँ अध्याय

प्रतिष्ठामें अधिवासकी विधि

भगवान् शिव कहते हैं—स्कन्द! पुरोहितको चाहिये कि वह स्नान करके प्रातःकाल और मध्याह्नकाल, दोनों समयोंका नित्यकर्म सम्पन्न करके मूर्तिरक्षक सहायक ब्राह्मणोंके साथ यज्ञमण्डपको पधारे। (**मूर्तिभिर्जापिभिर्विप्रैः**—इस पाठान्तरके अनुसार मूर्तियों और जपकर्ता ब्राह्मणोंके साथ यज्ञमण्डपमें जाय, ऐसा अर्थ समझना चाहिये।) फिर वहाँ शान्ति आदि

द्वारोंका पूर्ववत् क्रमशः पूजन करे। इन द्वारोंकी दोनों शाखाओंपर प्रदक्षिणक्रमसे द्वारपालोंकी पूजा करनी चाहिये। पूर्व दिशामें द्वारपाल नन्दी और महाकालकी, दक्षिण दिशामें भृङ्गी और विनायककी, पश्चिम दिशामें वृषभ और स्कन्दकी तथा उत्तर दिशामें देवी और चण्डकी पूजा करे। द्वार-शाखाओंके मूलदेशमें पूर्वादि क्रमसे दो-दो कलशोंकी पूजा करे। उनके नाम इस प्रकार हैं—पूर्व दिशामें प्रशान्त और शिशिर, दक्षिणमें पर्जन्य और अशोक, पश्चिममें भूतसंजीवन और अमृत तथा उत्तरमें धनद और श्रीप्रद—इन दो-दो कलशोंकी क्रमशः पूजाका विधान है। इनके नामके आदिमें 'प्रणव' और अन्तमें '**नमः**' जोड़कर चतुर्थ्यन्त रूप रखे। यही इनके पूजनका मन्त्र है। यथा—'**ॐ प्रशान्तशिशिराभ्यां नमः।**' इत्यादि॥ १—५॥

लोक दो, ग्रह दो, वसु दो, द्वारपाल दो, नदियाँ दो, सूर्य तीन, युग एक, वेद एक, लक्ष्मी तथा गणेश—इतने देवता यज्ञमण्डपके प्रत्येक द्वारपर रहते हैं। इनका कार्य है—विघ्नसमूहका निवारण और यज्ञका संरक्षण। पूर्वादि दस दिशाओंमें वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, ध्वज, गदा, त्रिशूल, चक्र और कमलकी क्रमशः पूजा करे तथा प्रत्येक दिशामें दिक्पालकी पताकाका भी पूजन करे। पूजनके मन्त्रका स्वरूप इस प्रकार है—**ॐ हूं हः वज्राय हूं फट्। ॐ हूं हः शक्तये हूं फट्।**[1] इत्यादि॥ ६—९॥

कुमुद, कुमुदाक्ष, पुण्डरीक, वामन, शङ्कुकर्ण, सर्वनेत्र (अथवा पद्मनेत्र), सुमुख और सुप्रतिष्ठित—ये ध्वजोंके आठ देवता हैं, जो पूर्वादि दिशाओंमें कोटि-कोटि भूतोंसहित पूजनीय हैं। इनके पूजन-सम्बन्धी मन्त्र इस प्रकार हैं—'**ॐ कुं**[2] **कुमुदाय नमः।**' इत्यादि। हेतुक (अथवा हेरुक), त्रिपुरघ्न, शक्ति (अथवा वह्नि), यमजिह्व, काल, छठा कराली, सातवाँ एकाङ्घ्रि और आठवाँ भीम—ये क्षेत्रपाल हैं। इनका क्रमशः पूर्वादि आठ दिशाओंमें पूर्ववत् पूजन करे। बलि, पुष्प और धूप देकर इन सबको सन्तुष्ट करे। तदनन्तर उत्तम एवं पवित्र तृणोंपर, अथवा बाँसके खंभोंपर क्रमशः पृथ्वी आदि पाँच तत्त्वोंकी स्थापना करके सद्योजातादि पाँच मन्त्रोंद्वारा उनका पूजन करे। सदाशिवपदव्यापी मण्डपका, जो भगवान् शंकरका धाम है तथा पताका एवं शक्तिसे संयुक्त है (पाठान्तरके अनुसार पातालशक्ति या पिनाकशक्तिसे संयुक्त है), तत्त्वदृष्टिसे अवलोकन करे॥ १०—१५॥

पूर्ववत् दिव्य अन्तरिक्ष एवं भूलोकवर्ती विघ्नोंका अपसारण करके पश्चिम द्वारमें प्रवेश करे और शेष दरवाजोंको बंद करा दे (अथवा शेष द्वारोंका दर्शनमात्र कर ले)। प्रदक्षिणक्रमसे मण्डपके भीतर जाकर वेदीके दक्षिण भागमें उत्तराभिमुख होकर बैठे और पूर्ववत् भूतशुद्धि करे। अन्तर्याग, विशेषार्घ्य, मन्त्र-द्रव्यादि-शोधन, स्वात्मपूजन तथा पञ्चगव्य आदि पूर्ववत् करे। फिर वहाँ आधारशक्तिकी प्रतिष्ठापूर्वक कलश-स्थापन करे। विशेषतः शिवका ध्यान करे। तदनन्तर क्रमशः तीनों तत्त्वोंका चिन्तन करे। ललाटमें शिवतत्त्वकी, स्कन्धदेशमें विद्यातत्त्वकी तथा पादान्त-भागमें उत्तम आत्मतत्त्वकी भावना करे। शिवतत्त्वके रुद्र, विद्यातत्त्वके नारायण तथा आत्मतत्त्वके ब्रह्मा देवता हैं। इनका अपने नाम-मन्त्रोंद्वारा पूजन करना चाहिये। इन तत्त्वोंके आदि-बीज क्रमशः इस प्रकार हैं—'**ॐ ईं आम्**'॥ १६—२१॥

---

१. सोमशम्भुरचित 'कर्मकाण्ड-क्रमावली' में मन्त्रका यही स्वरूप उपलब्ध होता है। कुछ प्रतियोंमें 'ॐ हूं फट् नमः। ॐ हूं फट् द्वाःस्थशक्तये हूं फट् नमः।' ऐसा पाठ है।

२. कहीं-कहीं—'कुं' के स्थानमें 'कौं' पाठ है।

मूर्तियों और मूर्तीश्वरोंकी वहाँ पूर्ववत् स्थापना करे। उनमें व्यापक शिवका साङ्ग पूजन करके मस्तकपर शिवहस्त रखे। भावनाद्वारा ब्रह्मरन्ध्रके मार्गसे प्रविष्ट हुए तेजसे अपने बाहर-भीतरकी अन्धकार-राशिको नष्ट करके आत्मस्वरूपका इस प्रकार चिन्तन करे कि 'वह सम्पूर्ण दिङ्मण्डलको प्रकाशित कर रहा है।' मूर्तिपालकोंके साथ अपने-आपको भी हार, वस्त्र और मुकुट आदिसे अलंकृत करके—'मैं शिव हूँ'—ऐसा चिन्तन करते हुए 'बोधासि' (ज्ञानमय खड्ग)-को उठावे। चतुष्पदान्त संस्कारोंद्वारा यज्ञमण्डपका संस्कार करे। बिखेरने योग्य वस्तुओंको सब ओर बिखेरकर, कुशकी कूँचीसे उन सबको समेटे। उन्हें आसनके नीचे करके वार्धानीके जलसे पूर्ववत् वास्तु आदिका पूजन करे। शिव-कुम्भास्त्र और वार्धानीके सुस्थिर आसनोंकी भी पूजा करे। अपनी-अपनी दिशामें कलशोंपर विराजमान इन्द्रादि लोकपालोंका क्रमशः उनके वाहनों और आयुध आदिके साथ यथाविधि पूजन करे॥ २२—२७॥

पूर्व दिशामें इन्द्रका चिन्तन करे। वे ऐरावत हाथीपर बैठे हैं। उनकी अङ्ग-कान्ति सुवर्णके समान दमक रही है। मस्तकपर किरीट शोभा दे रहा है। वे सहस्त्र नेत्र धारण करते हैं। उनके हाथमें वज्र शोभा पाता है। अग्निकोणमें सात ज्वालामयी जिह्वाएँ धारण किये, अक्षमाला और कमण्डलु लिये, लपटोंसे घिरे रक्त वर्णवाले अग्निदेवका ध्यान करे। उनके हाथमें शक्ति शोभा पाती है तथा बकरा उनका वाहन है। दक्षिणमें महिषारूढ दण्डधारी यमराजका चिन्तन करे, जो कालाग्निके समान प्रकाशित हो रहे हैं। नैर्ऋत्य-कोणमें लाल नेत्रवाले नैर्ऋत्यकी भावना करे, जो हाथमें तलवार लिये, शव (मुर्दे)-पर आरूढ हैं। पश्चिममें मकरारूढ, श्वेतवर्ण, नागपाशधारी वरुणका चिन्तन करे। वायव्यकोणमें मृगारूढ, नीलवर्ण वायुदेवका तथा उत्तरमें भेंड़ेपर सवार कुबेरका ध्यान करे। ईशानकोणमें त्रिशूलधारी, वृषभारूढ ईशानका, नैर्ऋत्य तथा पश्चिमके मध्यभागमें कच्छपपर सवार चक्रधारी भगवान् अनन्तका तथा ईशान और पूर्वके भीतर चार मुख एवं चार भुजा धारण करनेवाले हंसवाहन ब्रह्माका ध्यान करे॥ २८—३२॥

खंभोंके मूल भागमें स्थित कलशोंमें तथा वेदीपर धर्म आदिका पूजन करे। कुछ लोग सम्पूर्ण दिशाओंमें स्थित कलशोंपर अनन्त आदिकी पूजा भी करते हैं। इसके बाद शिवाज्ञा सुनावे और कलशोंको अपने पृष्ठभागतक घुमावे। तत्पश्चात् पहले कलशको और फिर वार्धानीको पूर्ववत् अपने स्थानपर रख दे। स्थिर आसनवाले शिवका कलशमें और शस्त्रके लिये ध्रुवासनका पूर्ववत् पूजन करके उद्भव-मुद्राद्वारा स्पर्श करे। उस समय भगवान्‌से इस प्रकार प्रार्थना करे—'हे जगन्नाथ! आप अपने भक्तजनपर कृपा करके इस अपने ही यज्ञकी रक्षा कीजिये।'—यों रक्षाके लिये प्रार्थना सुनाकर कलशमें खड्गकी स्थापना करे। दीक्षा और स्थापनाके समय कलशमें, वेदीपर अथवा मण्डलमें भगवान् शिवका पूजन करे। मण्डलमें देवेश्वर शिवका पूजन करनेके पश्चात् कुण्डके समीप जाय॥ ३३—३७॥

कुण्ड-नाभिको आगे करके बैठे हुए मूर्तिधारी पुरुष गुरुकी आज्ञासे अपने-अपने कुण्डका संस्कार करें। जप करनेवाले ब्राह्मण संख्यारहित मन्त्रका जप करें। दूसरे लोग संहिताका पाठ करें। अपनी शाखाके अनुसार वेदोंके पारंगत विद्वान् शान्तिपाठमें लगे रहें। ऋग्वेदी विद्वान् पूर्व दिशामें श्रीसूक्त, पावमानी ऋचा, मैत्रेय ब्राह्मण तथा वृषाकपि-मन्त्र—इन सबका पाठ करें। सामवेदी विद्वान्

दक्षिणमें देवव्रत, भारुण्ड, ज्येष्ठसाम, रथन्तरसाम तथा पुरुषगीत—इन सबका गान करें। यजुर्वेदी विद्वान् पश्चिम दिशामें रुद्रसूक्त, पुरुषसूक्त, श्लोकाध्याय तथा विशेषतः ब्राह्मणभागका पाठ करें। अथर्ववेदी विद्वान् उत्तर दिशामें नीलरुद्र, सूक्ष्मासूक्ष्म तथा अथर्वशीर्षका तत्परतापूर्वक अध्ययन करें॥ ३८—४३॥

आचार्य (अरणी-मन्थनद्वारा) अग्निका उत्पादन करके उसे प्रत्येक कुण्डमें स्थापित करावें। अग्निके पूर्व आदि भागोंको पूर्व-कुण्ड आदिके क्रमसे लेकर धूप, दीप और चरुके निमित्त अग्निका उद्धार करे। फिर पहले बताये अनुसार भगवान् शंकरका पूजन करके शिवाग्निमें मन्त्र-तर्पण करे। देश, काल आदिकी सम्पन्नता तथा दुर्निमित्तकी शान्तिके लिये होम करके मन्त्रज्ञ आचार्य मङ्गलकारिणी पूर्णाहुति प्रदान करके, पूर्ववत् चरु तैयार करे और उसे प्रत्येक कुण्डमें निवेदित करे। यजमानसे वस्त्राभूषणोंद्वारा विभूषित एवं सम्मानित मूर्तिपालक ब्राह्मण स्नान-मण्डपमें जायँ। भद्रपीठपर भगवान् शिवकी प्रतिमाको स्थापित करके ताड़न और अवगुण्ठनकी क्रिया करें। पूर्वकी वेदीपर पूजन करके मिट्टी, काषाय-जल, गोबर और गोमूत्रसे तथा बीच-बीचमें जलसे भगवत्प्रतिमाको स्नान करावे। तत्पश्चात् भस्म तथा गन्धयुक्त जलसे नहलावे। इसके बाद आचार्य '**अस्त्राय फट्।**'—इस मन्त्रसे अभिमन्त्रित जलके द्वारा मूर्तिपालकोंके साथ हाथ धोकर कवच-मन्त्रसे अभिमन्त्रित पीताम्बरद्वारा मूर्तिको आच्छादित करके श्वेत फूलोंसे उसकी पूजा करे। तदनन्तर उसे उत्तर-वेदीपर ले जाय॥ ४४—५० $\frac{१}{२}$॥

वहाँ आसनयुक्त शय्यापर सुलाकर कुङ्कुममें रँगे हुए सूतसे अङ्गोंका विभाजन करके आचार्य सोनेकी शलाकाद्वारा उस प्रतिमामें दोनों नेत्र अङ्कित करे। यह कार्य शस्त्र-क्रियाद्वारा सम्पन्न होना चाहिये। पहले चिह्न बनानेवाला गुरु नेत्र-चिह्नको अञ्जनसे अङ्कित कर दे; इसके बाद वह शिल्पी, जो मूर्ति-निर्माणका कार्य पहले भी कर चुका हो, उस नेत्रचिह्नको शस्त्रद्वारा खोदे (अर्थात् खुदाई करके नेत्रकी आकृतिको स्पष्टरूपसे अभिव्यक्त करे)। अर्चाके तीन अंशसे कम अथवा एक चौथाई भाग या आधे भागमें सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धिके लिये शुभ लक्षण (चिह्न)-की अवतारणा करनी चाहिये। शिवलिङ्गकी लंबाईके मानमें तीनसे भाग देकर एक भागको त्याग देनेसे जो मान हो, वही लिङ्गके लक्ष्मदेहका सब ओरसे विस्तार होना चाहिये॥ ५१—५५॥

एक हाथके प्रस्तरखण्डमें जो लक्ष्मरेखा बनेगी, उसकी गहराई और चौड़ाई उतनी ही होगी, जितनी जौके नौ भागोंमेंसे एकको छोड़ने और आठको लेनेसे होती है। इसी प्रकार डेढ़ हाथ या दो हाथ आदिके लिङ्गसे लेकर नौ हाथतकके लिङ्गमें क्रमशः $\frac{१}{२}$ भागकी वृद्धि करके लक्ष्मरेखा बनानी चाहिये। इस तरह नौ हाथवाले लिङ्गमें आठ जौके बराबर मोटी और गहरी लक्ष्मरेखा होनी चाहिये। जो शिवलिङ्ग परस्पर अन्तर रखते हुए उत्तरोत्तर सवाये बड़े हों, वहाँ लक्ष्म-देहका विस्तार एक-एक जौ बढ़ाकर करना चाहिये। गहराई और मोटाईकी वृद्धिके अनुसार रेखा भी एक तिहाई बढ़ जायगी। सभी शिवलिङ्गोंमें लिङ्गका ऊपरी भाग ही उनका सूक्ष्म मस्तक है॥ ५६—५९॥

लक्ष्म अर्थात् चिह्नका जो क्षेत्र है, उसका आठ भाग करके दो भागोंको मस्तकके अन्तर्गत रखे। शेष छः भागोंमेंसे नीचेके दो भागोंको छोड़कर मध्यके अवशिष्ट भागोंमें तीन रेखा खींचे

और उन्हें पृष्ठदेशमें ले जाकर जोड़ दे। रत्नमय लिङ्गमें लक्षणोद्धारकी आवश्यकता नहीं है। भूमिसे स्वत: प्रकट हुए अथवा नर्मदादि नदियोंसे प्रादुर्भूत हुए शिवलिङ्गमें भी लक्ष्मोद्धार अपेक्षित नहीं है। रत्नमय लिङ्गोंके रत्नोंमें जो निर्मल प्रभा होती है, वही उनके स्वरूपका लक्षण (परिचायक) है। मुखभागमें जो नेत्रोन्मीलन किया जाता है, वह आवश्यक है और उसीके संनिधानके लिये वह लक्ष्म या चिह्न बनाया जाता है। लक्षणोद्धारकी रेखाका घृत और मधुसे मृत्युञ्जय-मन्त्रद्वारा पूजन करके, शिल्पिदोषकी निवृत्तिके लिये मृत्तिका आदिसे स्नान कराकर, लिङ्गकी अर्चना करे। फिर दान-मान आदिसे शिल्पीको संतुष्ट करके आचार्यको गोदान दे। तदनन्तर सौभाग्यवती स्त्रियाँ धूप, दीप आदिके द्वारा लिङ्गकी विशेष पूजा करके मङ्गल-गीत गायें और सव्य या अपसव्य भावसे सूत्र अथवा कुशके द्वारा स्पर्शपूर्वक रोचना अर्पित करके न्योछावर दें। इसके बाद यजमान गुड़, नमक और धनिया देकर उन स्त्रियोंको विदा करे॥ ६०—६६॥

तत्पश्चात् गुरु मूर्तिरक्षक ब्राह्मणोंके साथ **'नमः'** या प्रणव-मन्त्रके द्वारा मिट्टी, गोबर, गोमूत्र और भस्मसे पृथक्-पृथक् स्नान करावे। एक-एकके बाद बीचमें जलसे स्नान कराता जाय। फिर पञ्चगव्य, पञ्चामृत, रूखापन दूर करनेवाले कषाय द्रव्य, सर्वौषधिमिश्रित जल, श्वेत पुष्प, फल, सुवर्ण, रत्न, सींग एवं जौ मिलाये हुए जल, सहस्रधारा, दिव्यौषधियुक्त जल, तीर्थ-जल, गङ्गाजल, चन्दनमिश्रित जल, क्षीरसागर आदिके जल, कलशोंके जल तथा शिवकलशके जलसे अभिषेक करे। रूखेपनको दूर करनेवाला विलेपन लगाकर उत्तम गन्ध और चन्दन आदिसे पूजन करनेके पश्चात् ब्रह्ममन्त्रद्वारा पुष्प तथा कवच-मन्त्रसे लाल वस्त्र चढ़ावे। फिर अनेक प्रकारसे आरती उतारकर रक्षा और तिलकपूर्वक गीत-वाद्य आदिसे, विविध द्रव्योंसे तथा जय-जयकार और स्तुति आदिसे भगवान्‌को संतुष्ट करके पुरुष-मन्त्रसे उनकी पूजा करे। तदनन्तर हृदय-मन्त्रसे आचमन करके इष्टदेवसे कहे—'प्रभो! उठिये'॥ ६७—७३॥

फिर इष्टदेवको ब्रह्मरथपर बिठाकर उसीके द्वारा उन्हें सब ओर घुमाते और द्रव्य बिखेरते हुए मण्डपके पश्चिम द्वारपर ले जाय और वहाँ शय्यापर भगवान्‌को पधरावे। आसनके आदि-अन्तमें शक्तिकी भावना करके उस शुभ आसनपर उन्हें विराजमान करे। पश्चिमाभिमुख प्रासादमें पश्चिम दिशाकी ओर पिण्डिका स्थापित करके उसके ऊपर ब्रह्मशिला रखे। शिवकोणमें सौ अस्त्र-मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित निद्रा-कलश और शिवासनकी कल्पना करके, हृदय-मन्त्रसे अर्घ्य दे, देवताको उठाकर लिङ्गमय आसनपर शिरोमन्त्रद्वारा पूर्वकी ओर मस्तक रखते हुए आरोपित एवं स्थापित करे। इस प्रकार उन परमात्माका साक्षात्कार होनेपर चन्दन और धूप चढ़ाते हुए उनकी पूजा करे तथा कवच-मन्त्रसे वस्त्र अर्पित करे। घरका उपकरण आदि अर्पित कर दे। फिर अपनी शक्तिके अनुसार नमस्कारपूर्वक नैवेद्य निवेदन करे। अभ्यङ्ग-कर्मके लिये घृत और मधुसे युक्त पात्र इष्टदेवके चरणोंके समीप रखे। वहाँ उपस्थित हुए आचार्य शक्तिसे लेकर भूमि-पर्यन्त छत्तीस तत्त्वोंके समूहको उनके अधिपतियोंसहित स्थापित करके फूलकी मालाओंसे उनके तीन भागोंकी कल्पना करे॥ ७४—८०॥

वे तीन भाग मायासे लेकर शक्ति-पर्यन्त हैं।

उनमें प्रथम भाग चतुष्कोण, द्वितीय भाग अष्टकोण और तृतीय भाग वर्तुलाकार है। प्रथम भागमें आत्मतत्त्व, द्वितीय भागमें विद्यातत्त्व और तृतीय भागमें शिवतत्त्वकी स्थिति है। इन भागोंमें सृष्टिक्रमसे एक-एक अधिपति हैं, जो ब्रह्मा, विष्णु और शिव नामसे प्रसिद्ध हैं। तदनन्तर मूर्तियों और मूर्तीश्वरोंका पूर्वादि दिशाओंके क्रमसे न्यास करे। पृथ्वी, अग्नि, यजमान, सूर्य, जल, वायु, चन्द्रमा और आकाश—ये आठ मूर्तिरूप हैं। इनका न्यास करनेके पश्चात् इनके अधिपतियोंका न्यास करना चाहिये। उनके नाम इस प्रकार हैं—शर्व, पशुपति, उग्र, रुद्र, भव, ईश्वर, महादेव और भीम। इनके वाचक मन्त्र निम्नलिखित हैं—**लं, रं, शं, खं, चं, पं, सं, हं*** अथवा त्रिमात्रिक प्रणव तथा '**हां**' अथवा हृदय-मन्त्र अथवा कहीं-कहीं मूल-मन्त्र इनके (मूर्तियों और मूर्तिपतियोंके) पूजनके उपयोगमें आते हैं। अथवा पञ्चकुण्डात्मक यागमें पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—इन पाँच मूर्तियोंका ही न्यास करे॥ ८१—८६॥

फिर क्रमशः इनके पाँच अधिपतियों—ब्रह्मा, शेषनाग, रुद्र, ईश और सदाशिवका मन्त्रज्ञ पुरुष सृष्टि-क्रमसे न्यास करे। यदि यजमान मुमुक्षु हो तो वह पञ्चमूर्तियोंके स्थानमें 'निवृत्ति' आदि पाँच कलाओं तथा उनके 'अजात' आदि अधिपतियोंका न्यास करे। अथवा सर्वत्र व्याप्तिरूप कारणात्मक त्रितत्त्वका ही न्यास करना चाहिये। शुद्ध अध्वामें विद्येश्वरोंका और अशुद्धमें लोकनायकोंका मूर्तिपतियोंके रूपमें दर्शन करना चाहिये। भोगी (सर्प) भी मन्त्रेश्वर हैं। पैंतीस, आठ, पाँच और तीन मूर्तिरूप-तत्त्व क्रमशः कहे गये हैं। ये ही इनके तत्त्व हैं। इन तत्त्वोंके अधिपतियोंके मन्त्रोंका दिग्दर्शनमात्र कराया जाता है। **ॐ हां शक्तितत्त्वाय नमः।** इत्यादि। **ॐ हां शक्तितत्त्वाधिपाय नमः।** इत्यादि। **ॐ हां क्ष्मामूर्तये नमः। ॐ हां क्ष्मामूर्त्यधिपतये ब्रह्मणे नमः।** इत्यादि। **ॐ हां शिवतत्त्वाय नमः। ॐ हां शिवतत्त्वाधिपतये रुद्राय नमः।** इत्यादि। नाभिमूलसे उच्चरित होकर घण्टानादके समान सब ओर फैलनेवाले, ब्रह्मादि कारणोंके त्यागपूर्वक, द्वादशान्तस्थानको प्राप्त हुए मनसे अभिन्न तथा आनन्द-रसके उद्गमको पा लेनेवाले मन्त्रका और निष्कल, व्यापक शिवका, जो अड़तीस कलाओंसे युक्त, सहस्रों किरणोंसे प्रकाशमान, सर्वशक्तिमय तथा साङ्ग हैं, ध्यान करते हुए उन्हें द्वादशान्तसे लाकर शिवलिङ्गमें स्थापित करे॥ ८७—९४॥

इस प्रकार शिवलिङ्गमें जीवन्यास होना चाहिये, जो सम्पूर्ण पुरुषार्थोंका साधक है। पिण्डिका आदिमें किस प्रकार न्यास करना चाहिये, यह बताया जाता है। पिण्डिकाको स्नान कराकर उसमें चन्दन आदिका लेप करे और उसे सुन्दर वस्त्रोंसे आच्छादित करके, उसके भगस्वरूप छिद्रमें पञ्चरत्न आदि डालकर, उस पिण्डिकाको लिङ्गसे उत्तर दिशामें स्थापित करे। उसमें भी लिङ्गकी ही भाँति न्यास करके विधिपूर्वक उसकी पूजा करे। उसका स्नान आदि पूजन-कार्य सम्पन्न करके लिङ्गके मूलभागमें शिवका न्यास करे। फिर शक्त्यन्त वृषभका भी स्नान आदि संस्कार करके स्थापन करना चाहिये॥ ९५—९८॥

तत्पश्चात् पहले प्रणवका, फिर '**ह्रां ह्रूं ह्रीं।**'—इन तीन बीजोंमेंसे किसी एकका उच्चारण करते हुए क्रियाशक्तिसहित आधाररूपिणी शिला—पिण्डिकाका पूजन करे। भस्म, कुशा और तिलसे तीन प्राकार (परकोटा) बनावे तथा रक्षाके लिये

* सोमशम्भुकी 'कर्मकाण्ड-क्रमावली' में इन मन्त्रोंका क्रम 'य, र, स, ष, व, य, ह, प्रणव' इस प्रकार दिया गया है।

आयुधोंसहित लोकपालोंको बाहरकी ओर नियोजित एवं पूजित करे। पूजनके मन्त्र इस प्रकार हैं—**'ॐ ह्रीं क्रियाशक्तये नमः। ॐ ह्रीं महागौरि रुद्रदयिते स्वाहा।'** निम्नाङ्कित मन्त्रके द्वारा पिण्डिकामें पूजन करे—**'ॐ ह्रीं आधारशक्तये नमः। ॐ ह्रां वृषभाय नमः।'** ॥ ९९—१०१ ॥

धारिका, दीप्ता, अत्युग्रा, ज्योत्स्ना, बलोत्कटा, धात्री और विधात्री—इनका पिण्डीमें न्यास करे; अथवा वामा, ज्येष्ठा, क्रिया, ज्ञाना और वेधा (अथवा रोधा या प्रह्वी)—इन पाँच नायिकाओंका न्यास करे। अथवा क्रिया, ज्ञाना तथा इच्छा—इन तीनका ही न्यास करे; पूर्ववत् शान्तिमूर्तियोंमें तमी, मोहा, क्षुधा, निद्रा, मृत्यु, माया, जरा और भया—इनका न्यास करे; अथवा तमा, मोहा, घोरा, रति, अपज्वरा—इन पाँचोंका न्यास करे; या क्रिया, ज्ञाना और इच्छा—इन तीन अधिनायिकाओंका आत्मा आदि तीन तीव्र मूर्तिवाले तत्त्वोंमें न्यास करे। यहाँ भी पिण्डिका, ब्रह्मशिला आदिमें पूर्ववत् गौरी आदि शम्बरों (मन्त्रों) द्वारा ही सब कार्य विधिवत् सम्पन्न करे॥ १०२—१०६ ॥

इस प्रकार न्यास-कर्म करके कुण्डके समीप जा, उसके भीतर महेश्वरका, मेखलाओंमें चतुर्भुजका, नाभिमें क्रियाशक्तिका तथा ऊर्ध्वभागमें नादका न्यास करे। तदनन्तर कलश, वेदी, अग्नि और शिवके द्वारा नाड़ीसंधान-कर्म करे। कमलके तन्तुकी भाँति सूक्ष्मशक्ति ऊर्ध्वगत वायुकी सहायतासे ऊपर उठती और शून्य मार्गसे शिवमें प्रवेश करती है। फिर वह ऊर्ध्वगत शक्ति वहाँसे निकलती और शून्यमार्गसे अपने भीतर प्रवेश करती है। इस प्रकार चिन्तन करे। मूर्तिपालकोंको भी सर्वत्र इसी प्रकार संधान करना चाहिये॥ १०७—११० ॥

कुण्डमें आधार-शक्तिका पूजन करके, तर्पण करनेके पश्चात्, क्रमशः तत्त्व, तत्त्वेश्वर, मूर्ति और मूर्तीश्वरोंका घृत आदिसे पूजन और तर्पण करे। फिर उन दोनों (तत्त्व, तत्त्वेश्वर एवं मूर्ति, मूर्तीश्वर)-को संहिता-मन्त्रोंसे एक सौ, एक सहस्र अथवा आधा सहस्र आहुतियाँ दे। साथ ही पूर्णाहुति भी अर्पण करे। तत्त्व और तत्त्वेश्वरों तथा मूर्ति और मूर्तीश्वरोंका पूर्वोक्त रीतिसे एक- दूसरेके संनिधानमें तर्पण करके मूर्तिपालक भी उनके लिये आहुतियाँ दें। इसके बाद द्रव्य और कालके अनुसार वेदों और अङ्गोंद्वारा तर्पण करके, शान्ति-कलशके जलसे प्रोक्षित कुश-मूलद्वारा लिङ्गके मूलभागका स्पर्श करके, होम-संख्याके बराबर जप करे। हृदय-मन्त्रसे संनिधापन और कवच-मन्त्रसे अवगुण्ठन करे॥ १११—११५ ॥

इस प्रकार संशोधन करके, लिङ्गके ऊर्ध्व-भागमें ब्रह्मा और अन्त (मूल) भागमें विष्णुका पूजन आदि करके, शुद्धिके लिये पूर्ववत् सारा कार्य सम्पन्न कर, होम-संख्याके अनुसार जप आदि करे। कुशके मध्यभागसे लिङ्गके मध्यभागका और कुशके अग्रभागसे लिङ्गके अग्रभागका स्पर्श करे। जिस मन्त्रसे जिस प्रकार संधान किया जाता है, वह इस समय बताया जाता है—**ॐ हां हं, ॐ ॐ एं, ॐ भूं भूं बाह्यमूर्तये नमः। ॐ हां वां, आं ॐ आं षां, ॐ भूं भूं वां वह्निमूर्तये नमः***। इसी प्रकार यजमान आदि मूर्तियोंके साथ भी अभिसंधान करना चाहिये। पञ्चमूर्त्यात्मक शिवके लिये भी हृदयादि-मन्त्रोंद्वारा इसी तरह संधानकर्म करनेका विधान है। त्रितत्त्वात्मक स्वरूपमें मूलमन्त्र अथवा अपने बीज-मन्त्रोंद्वारा संधानकर्म करनेकी विधि है—ऐसा जानना चाहिये। शिला, पिण्डिका एवं

* आचार्य सोमशम्भुकी 'कर्मकाण्ड-क्रमावली' में ये मन्त्र इस प्रकार उपलब्ध होते हैं—ॐ हां हां वा, ॐ ॐ ॐ वा, ॐ लूं लूं वा, क्ष्मामूर्तये नमः। ॐ हां हां वा, ॐ ॐ ॐ वा, ॐ रूं रूं वा, वह्निमूर्तये नमः।

वृषभके लिये भी इसी तरह संधान आवश्यक है। प्रत्येक भागकी शुद्धिके लिये अपने मन्त्रोंद्वारा शतादि होम करे और उसे पूर्णाहुतिद्वारा पृथक् कर दे॥ ११६—१२०॥

न्यूनता आदि दोषसे छुटकारा पानेके लिये शिव-मन्त्रसे एक सौ आठ आहुतियाँ दे और जो कर्म किया गया है, उसे शिवके कानमें निवेदन करे—'प्रभो! आपकी शक्तिसे ही मेरे द्वारा इस कार्यका सम्पादन हुआ है, ॐ भगवान् रुद्रको नमस्कार है। रुद्रदेव! आपको मेरा नमस्कार है। यह कार्य विधिपूर्ण हो या अपूर्ण, आप अपनी शक्तिसे ही इसे पूर्ण करके ग्रहण करें।' '**ॐ ह्रीं शांकरि पूरय स्वाहा।**'। ऐसा कहकर पिण्डिकामें न्यास करे। तदनन्तर ज्ञानी पुरुष लिङ्गमें क्रियाशक्तिका और पीठ-विग्रहमें ब्रह्मशिलाके ऊपर आधाररूपिणी शक्तिका न्यास करे॥ १२१—१२५॥

सात, पाँच, तीन अथवा एक राततक उसका निरोध करके या तत्काल ही उसका अधिवासन करे। अधिवासनके बिना कोई भी याग सम्पादित होनेपर भी फलदायक नहीं होता। अतः अधिवासन अवश्य करे। अधिवासन-कालमें प्रतिदिन देवताओंको अपने-अपने मन्त्रोंद्वारा सौ-सौ आहुतियाँ दे तथा शिव-कलश आदिकी पूजा करके दिशाओंमें बलि अर्पित करे॥ १२६-१२७ $\frac{1}{2}$ ॥

गुरु आदिके साथ रातमें नियमपूर्वक वास 'अधिवास' कहलाता है। 'अधि'पूर्वक 'वस' धातुसे भावमें 'घञ्' प्रत्यय किया गया है। इससे 'अधिवास' शब्द सिद्ध हुआ है॥ १२८॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'प्रतिष्ठाके अन्तर्गत संधान एवं अधिवासकी विधिका वर्णन' नामक छियानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९६॥

सत्तानबेवाँ अध्याय

शिव-प्रतिष्ठाकी विधि

भगवान् शिव कहते हैं—स्कन्द! प्रातःकाल नित्य-कर्मके अनन्तर द्वार-देवताओंका पूजन करके मण्डपमें प्रवेश करे। पूर्वोक्त विधिसे देहशुद्धि आदिका अनुष्ठान करे। दिक्पालोंका, शिव-कलशका तथा वार्धानी (जलपात्र)-का पूजन करके अष्टपुष्पिकाद्वारा शिवलिङ्गकी अर्चना करे और क्रमशः आहुति दे, अग्निदेवको तृप्त करे। तदनन्तर शिवकी आज्ञा ले '**अस्त्राय फट्।**' का उच्चारण करते हुए मन्दिरमें प्रवेश करे तथा '**अस्त्राय हुं फट्।**' बोलकर वहाँके विघ्नोंका अपसारण करे॥ १—३॥

शिलाके ठीक मध्यभागमें शिवलिङ्गकी स्थापना न करे; क्योंकि वैसा करनेपर वेध-दोषकी आशङ्का रहती है। इसलिये मध्यभागको त्यागकर, एक या आधा जौ किंचित् ईशान भागका आश्रय ले आधारशिलामें शिवलिङ्गकी स्थापना करे। मूल-मन्त्रका उच्चारण करते हुए उस (अनन्त) नाम-धारिणी, सर्वाधारस्वरूपिणी, सर्वव्यापिनी शिलाको सृष्टियोगद्वारा अविचल भावसे स्थापित करे। अथवा निम्नाङ्कित मन्त्रसे शिवकी आसनस्वरूपा उस शिलाकी पूजा करे—'**ॐ नमो व्यापिनि भगवति स्थिरेऽचले ध्रुवे ह्रीं लं ह्रीं स्वाहा।**' पूजनसे पहले यों कहे—'आधारशक्ति-स्वरूपिणि शिले! तुम्हें भगवान् शिवकी आज्ञासे यहाँ नित्य-निरन्तर स्थिरतापूर्वक स्थित रहना चाहिये।'—ऐसा कहकर पूजन करनेके पश्चात् अवरोधिनी-मुद्रासे शिलाको अवरुद्ध (स्थिरतापूर्वक स्थापित) कर दे॥ ४—८॥

हीरे आदि रत्न, उशीर (खश) आदि ओषधियाँ, लौह और सुवर्ण, कांस्य आदि धातु, हरिताल, आदि, धान आदिके पौधे तथा पूर्वकथित अन्य वस्तुएँ क्रमशः एकत्र करे और मन-ही-मन भावना करे कि 'ये सब वस्तुएँ कान्ति, आरोग्य, देह, वीर्य और शक्तिस्वरूप हैं'। इस प्रकार एकाग्रचित्तसे भावना करके लोकपाल और शिवसम्बन्धी मन्त्रोंद्वारा पूर्वादि कुण्डोंमें इन वस्तुओंमेंसे एक-एकको क्रमशः डाले। सोने अथवा ताँबेके बने हुए कछुए या वृषभको द्वारके सम्मुख रखकर नदीके किनारेकी या पर्वतके शिखरकी मिट्टीसे युक्त करे और उसे बीचके कुण्ड आदिमें डाल दे। अथवा सुवर्णनिर्मित मेरुको मधूक, अक्षत और अञ्जनसे युक्त करके उसमें डाले अथवा सोने या चाँदीकी बनी हुई पृथ्वीको सम्पूर्ण बीजों और सुवर्णसे संयुक्त करके उसे मध्यम कुण्डमें डाले। अथवा सोने, चाँदी या सब प्रकारके लोहसे निर्मित सुवर्णमय केसरोंसे युक्त कमल या अनन्त (शेषनाग)-की मूर्तिको उसमें छोड़े॥ ९—१५॥

शक्तिसे लेकर मूर्ति-पर्यन्त अथवा शक्तिसे लेकर शक्ति-पर्यन्त तत्त्वका देवाधिदेव महादेवके लिये आसन निर्मित करके उसमें खीर या गुग्गुलका लेप करे। तत्पश्चात् वस्त्रसे गर्तको आच्छादित करके कवच और अस्त्र-मन्त्रद्वारा उसकी रक्षा करे। फिर दिक्पालोंको बलि देकर आचार्य आचमन करे। शिला और गर्तके सङ्ग-दोषकी निवृत्तिके लिये शिवमन्त्रसे अथवा अस्त्र-मन्त्रसे विधिपूर्वक सौ आहुतियाँ दे। साथ ही पूर्णाहुति भी करे। वास्तु देवताओंको एक-एक आहुति देकर तृप्त करनेके पश्चात् हृदय-मन्त्रसे भगवान्को उठाकर मङ्गल-वाद्य और मङ्गल-पाठ आदिके साथ ले आवे॥ १६—१९॥

गुरु भगवान्के आगे-आगे चले और चार दिशाओंमें स्थित चार मूर्तिपालोंके साथ यजमान स्वयं भगवान्की सवारीके पीछे-पीछे चले। मन्दिर आदिके चारों ओर घुमाकर शिवलिङ्गको भद्र-द्वारके सम्मुख नहलावे और अर्घ्य देकर उसे मन्दिरके भीतर ले जाय। खुले द्वारसे अथवा द्वारके लिये निश्चित स्थानसे शिवलिङ्गको मन्दिरमें ले जाय। इन सबके अभावमें द्वार बंद करनेवाली शिलासे शून्य-मार्गसे अथवा उस शिलाके ऊपरसे होकर मन्दिरमें प्रवेशका विधान है। दरवाजेसे ही महेश्वरको मन्दिरमें ले जाय, परंतु उनका द्वारसे स्पर्श न होने दे। यदि देवालयका समारम्भ हो रहा हो तो किसी कोणसे भी शिवलिङ्गको मन्दिरके भीतर प्रविष्ट कराया जा सकता है। व्यक्त अथवा स्थूल शिवलिङ्गके मन्दिर-प्रवेशके लिये सर्वत्र यही विधि जाननी चाहिये। घरमें प्रवेशका मार्ग द्वार ही है, इसका साधारण लोगोंको भी प्रत्यक्ष अनुभव है। यदि बिना द्वारके घरमें प्रवेश किया जाय तो गोत्रका नाश होता है—ऐसी मान्यता है॥ २०—२४ $\frac{१}{२}$॥

तदनन्तर पीठपर, द्वारके सामने शिवलिङ्गको स्थापित करके नाना प्रकारके वाद्यों तथा मङ्गलसूचक ध्वनियोंके साथ उसपर दूर्वा और अक्षत चढ़ावे तथा '**समुत्तिष्ठ नमः**'—ऐसा कहकर महापाशुपत-मन्त्रका पाठ करे। इसके बाद आचार्य गर्तमें रखे हुए घटको वहाँसे हटाकर मूर्तिपालकोंके साथ यन्त्रमें स्थापित करावे और उसमें कुङ्कुम आदिका लेप करके, शक्ति और शक्तिमान्की एकताका चिन्तन करते हुए लयान्त मूल-मन्त्रका उच्चारण करके, उस आलम्बनलक्षित घटका स्पर्शपूर्वक पुनः गर्तमें ही स्थापना करा दे। ब्रह्मभागके एक अंश, दो अंश, आधा अंश अथवा आठवें अंशतक या सम्पूर्ण ब्रह्मभागका

ही गर्तमें प्रवेश करावे। फिर नाभिपर्यन्त दीर्घाओंके साथ शीशेका आवरण देकर, एकाग्रचित्त हो, नीचेके गर्तको बालूसे पाट दे और कहे—'भगवन्! आप सुस्थिर हो जाइये'॥ २५—३०॥

तदनन्तर लिङ्गके स्थिर हो जानेपर सकल (सावयव) रूपवाले परमेश्वरका ध्यान करके, शक्त्यन्त-मूल-मन्त्रका उच्चारण करते हुए, शिवलिङ्गके स्पर्शपूर्वक उसमें निष्कलीकरण-न्यास करे। जब शिवलिङ्गकी स्थापना हो रही हो, उस समय जिस-जिस दिशाका आश्रय ले, उस-उस दिशाके दिक्पाल-सम्बन्धी मन्त्रका उच्चारण करके पूर्णाहुति-पर्यन्त होम करे और दक्षिणा दे। यदि शिवलिङ्गसे शब्द प्रकट हो अथवा उसका मुख्यभाग हिले या फट-फूट जाय तो मूल-मन्त्रसे या 'बहुरूप' मन्त्रद्वारा सौ आहुतियाँ दे। इसी प्रकार अन्य दोष प्राप्त होनेपर शिवशास्त्रोक्त शान्ति करे। उक्त विधिसे यदि शिवलिङ्गमें न्यासका विधान किया जाय तो कर्ता दोषका भागी नहीं होता। तदनन्तर लक्षणस्पर्शरूप पीठबन्ध करके गौरीमन्त्रसे उसका लय करे। फिर पिण्डीमें सृष्टिन्यास करे॥ ३१—३५॥

लिङ्गके पार्श्वभागमें जो संधि (छिद्र) हो, उसको बालू एवं वज्रलेपसे भर दे। तत्पश्चात् गुरु मूर्तिपालकोंके साथ शान्तिकलशके आधे जलसे शिवलिङ्गको नहलाकर, अन्य कलशों तथा पञ्चामृत आदिसे भी अभिषिक्त करे। फिर चन्दन आदिका लेप लगा, जगदीश्वर शिवकी पूजा करके, उमा-महेश्वर-मन्त्रोंद्वारा लिङ्गमुद्रासे उन दोनोंका स्पर्श करे। इसके बाद छहों अध्वाओंके न्यासपूर्वक त्रितत्त्वन्यास करके, मूर्तिन्यास, दिक्पालन्यास, अङ्गन्यास एवं ब्रह्मन्यासपूर्वक ज्ञानाशक्तिका लिङ्गमें तथा क्रियाशक्तिका पीठमें न्यास करनेके पश्चात् स्नान करावे॥ ३६—३९॥

गन्धका लेपन करके धूप दे और व्यापकरूपसे शिवका न्यास करे। हृदय-मन्त्रद्वारा पुष्पमाला, धूप, दीप, नैवेद्य और फल निवेदन करे। यथाशक्ति इन वस्तुओंको निवेदित करनेके पश्चात् महादेवजीको आचमन करावे। फिर विशेषार्घ्य देकर मन्त्र जपे और भगवान्‌के वरदायक हाथमें उस जपको अर्पित करनेके पश्चात् इस प्रकार कहे—'हे नाथ! जबतक चन्द्रमा, सूर्य और तारोंकी स्थिति रहे, तबतक मूर्तीशों तथा मूर्तिपालकोंके साथ आप स्वेच्छापूर्वक ही इस मन्दिरमें सदा स्थित रहें।' ऐसा कहकर प्रणाम करनेके पश्चात् बाहर जाय और हृदय या प्रणव-मन्त्रसे वृषभ (नन्दिकेश्वर)-की स्थापना करके, फिर पूर्ववत् बलि निवेदन करे। तत्पश्चात् न्यूनता आदि दोषके निराकरणके लिये मृत्युञ्जय-मन्त्रसे सौ बार समिधाओंकी आहुति दे एवं शान्तिके लिये खीरसे होम करे॥ ४०—४४॥

इसके बाद यों प्रार्थना करे—'महाविभो! ज्ञान अथवा अज्ञानपूर्वक कर्ममें जो त्रुटि रह गयी है, उसे आप पूर्ण करें।' यों कहकर यथाशक्ति सुवर्ण, पशु एवं भूमि आदि सम्पत्ति तथा गीत-वाद्य आदि उत्सव, सर्वकारणभूत अम्बिकानाथ शिवको भक्तिपूर्वक समर्पित करे। तदनन्तर चार दिनोंतक लगातार दान एवं महान् उत्सव करे। मन्त्रज्ञ आचार्यको चाहिये कि उत्सवके इन चार दिनोंमेंसे तीन दिनोंतक तीनों समय मूर्तिपालकोंके साथ होम करे और चौथे दिन पूर्णाहुति देकर, बहुरूप-सम्बन्धी मन्त्रसे चरु निवेदित करे। सभी कुण्डोंमें सम्पाताहुतिसे शोधित चरु अर्पित करना चाहिये। उक्त चार दिनोंतक निर्माल्य न हटावे। चौथे दिनके बाद निर्माल्य हटाकर, स्नान करानेके पश्चात् पूजन करे। सामान्य लिङ्गोंमें साधारण मन्त्रोंद्वारा पूजा करनी चाहिये। लिङ्ग-चैतन्यको छोड़कर स्थाणु-विसर्जन करे। आसाधारण लिङ्गोंमें **'क्षमस्व'** इत्यादि कहकर विसर्जन

करे॥ ४५—५०॥

आवाहन, अभिव्यक्ति, विसर्ग, शक्तिरूपता और प्रतिष्ठा—ये पाँच बातें मुख्य हैं। कहीं-कहीं प्रतिष्ठाके अन्तमें स्थिरता आदि गुणोंकी सिद्धिके लिये सात आहुतियाँ देनेका विधान है। भगवान् शिव स्थिर, अप्रमेय, अनादि, बोधस्वरूप, नित्य, सर्वव्यापी, अविनाशी एवं आत्मतृप्त हैं। महेश्वरकी संनिधि या उपस्थितिके लिये ये गुण कहे गये हैं। आहुतियोंका क्रम इस प्रकार है—'**ॐ नमः शिवाय स्थिरो भव नमः स्वाहा।**'—इत्यादि। इस प्रकार इस कार्यका सम्पादन करके शिव-कलशकी भाँति दो कलश और तैयार करे। उनमेंसे एक कलशके जलसे भगवान् शिवको स्नान कराकर, दूसरा यजमानके स्नानके लिये रखे। (कहीं-कहीं '**कर्मस्थानाय धारयेत्।**' ऐसा पाठ है। इसके अनुसार दूसरे कलशका जल कर्मानुष्ठानके लिये स्थापित करे, यह अर्थ समझना चाहिये।) इसके बाद बलि देकर आचमन करनेके पश्चात् शिवकी आज्ञासे बाहर जाय॥ ५१—५५॥

याग-मण्डपके बाहर मन्दिरके ईशानकोणमें चण्डका स्थापन-पूजन करे। फिर मण्डपमें धामके गर्भके बराबर उत्तम पीठपर आसनकी कल्पना करके, पूर्ववत् न्यास, होम, आदिका अनुष्ठान करे। फिर ध्यानपूर्वक 'सद्योजात' आदिकी स्थापना करके, वहाँ ब्रह्माङ्गोंद्वारा विधिवत् पूजन करे। ब्रह्माङ्गोंका वर्णन पहले किया जा चुका है। अब जिस प्रकार मन्त्रद्वारा पूजन किया जाता है, उसे सुनो—'**ॐ वं सद्योजाताय हूं फट् नमः।**' '**ॐ विं वामदेवाय हूं फट् नमः।**' '**ॐ वुं अघोराय हूं फट् नमः।**' इसी प्रकार '**ॐ वें तत्पुरुषाय हूं फट् नमः।**' तथा '**ॐ वों ईशानाय हूं फट् नमः।**'—ये मन्त्र हैं[1]॥ ५६—५९॥

इस प्रकार जप निवेदन करके, तर्पण करनेके पश्चात्, स्तुतिपूर्वक विज्ञापना देकर चण्डेशसे प्रार्थना करे—'हे चण्डेश! जबतक श्रीमहादेवजी यहाँ विराजमान हैं, तबतक तुम भी इसके समीप विद्यमान रहो। मैंने अज्ञानवश जो कुछ भी न्यूनाधिक कर्म किया है, वह सब तुम्हारे कृपाप्रसादसे पूर्ण हो जाय। तुम स्वयं उसे पूर्ण करो।' जहाँ बाणलिङ्ग (नर्मदेश्वर) हो, जहाँ चल लोहमय (सुवर्णमय) लिङ्ग हो, जहाँ सिद्धलिङ्ग (ज्योतिर्लिङ्गादि) तथा स्वयम्भूलिङ्ग हों, वहाँ और सब प्रकारकी प्रतिमाओंपर चढ़े हुए निर्माल्यमें चण्डेशका अधिकार नहीं होता है। अद्वैतभावनायुक्त यजमानपर तथा स्थण्डिलेश-विधिमें भी चण्डेशका अधिकार नहीं है।[2] चण्डका पूजन करके स्नापक (अभिषेक करनेवाला गुरु) स्वयं ही पत्नी और पुत्रसहित यजमानको पूर्व-स्थापित कलशके जलसे स्नान करावे। यजमान भी स्नापक गुरुका महेश्वरकी भाँति पूजन करके, धनकी कंजूसी छोड़कर, उन्हें भूमि और सुवर्ण आदिकी दक्षिणा दे॥ ६०—६४ $\frac{1}{2}$॥

तत्पश्चात् मूर्तिपालकों तथा जपकर्ता ब्राह्मणोंका, ज्योतिषीका और शिल्पीका भी भलीभाँति विधिवत् पूजन करके दीनों और अनाथों आदिको भोजन करावे। इसके बाद यजमान गुरुसे इस प्रकार प्रार्थना करे—'हे भगवन्! यहाँ सम्मुख करनेके लिये मैंने आपको जो कष्ट दिया है, वह सब आप क्षमा करें; क्योंकि नाथ! आप करुणाके सागर हैं, अतः मेरा सारा अपराध भूल जायँ।' इस प्रकार प्रार्थना करनेवाले यजमानको सद्गुरु

---

१. इन मन्त्रोंके विषयमें पाठभेद मिलता है। सोमशम्भुकी 'कर्मकाण्ड-क्रमावली'में ये मन्त्र इस प्रकार दिये गये हैं—'ॐ चैं सद्योजाताय हूं फट् नमः।' 'ॐ चैं तत्पुरुषाय हूं फट् नमः।' 'ॐ चों प्रशमनाय हूं फट् नमः।'

२. बाणलिङ्गे चले लोहे सिद्धलिङ्गे स्वयम्भुवि।
प्रतिमासु च सर्वासु न चण्डोऽधिकृतो भवेत्। अद्वैतभावनायुक्ते स्थण्डिलेशविधावपि॥ (अग्नि० ९७। ६२-६३)

अपने हाथसे कुश, पुष्प और अक्षतपुञ्जके साथ प्रतिष्ठाजनित पुण्यकी सत्ता समर्पित करे, जिसका स्वरूप चमकते हुए तारोंके समान दीप्तिमान् है॥ ६५—६८॥

तदनन्तर, पाशुपत-मन्त्रका जप करके, परमेश्वरको प्रणाम करनेके अनन्तर, भूतगणोंको बलि अर्पित करे और इस प्रकार उन सबको समीप लाकर यों निवेदन करे—'आपलोगोंको तबतक यहाँ स्थित रहना चाहिये, जबतक महादेवजी यहाँ विराजमान हैं।' वस्त्र आदिसे युक्त याग-मण्डपको गुरु अपने अधिकारमें ले ले तथा समस्त उपकरणोंसे युक्त स्नापन-मण्डपको शिल्पी ग्रहण करे। अन्य देवता आदिकी आगमोक्त मन्त्रोंद्वारा स्थापना करनी चाहिये। सूर्यके वर्णभेदके अनुसार उन देवता आदिके वर्णभेद समझने चाहिये। वे अपने तैजस-तत्त्वमें व्याप्त हैं—ऐसी भावना करनी चाहिये। साध्य आदि देवता, सरिताएँ, ओषधियाँ, क्षेत्रपाल और किंनर आदि—ये सब पृथ्वीतत्त्वके आश्रित हैं। कहीं-कहीं सरस्वती, लक्ष्मी और नदियोंका स्थान जलमें बताया गया है॥ ६९—७३॥

भुवनाधिपतियोंका स्थान वही है, जहाँ उनकी स्थिति है। अहंकार, बुद्धि और प्रकृति—ये तीन तत्त्व ब्रह्माके स्थान हैं। तन्मात्रासे लेकर प्रधान-पर्यन्त तीन तत्त्व श्रीहरिके स्थान हैं। नाट्येश, गण, मातृका, यक्षराज, कार्तिकेय तथा गणेशका अण्डजादि शुद्ध विद्यान्त-तत्त्व है। मायांश देशसे लेकर शक्ति-पर्यन्त तत्त्व शिवा, शिव तथा उग्रतेजवाले सूर्यदेवका स्थान है। व्यक्त प्रतिमाओंके लिये ईश्वर-पर्यन्त पद बताया गया है। स्थापनाकी सामग्रीमें जो कूर्म आदिका वर्णन किया गया है तथा जो रत्न आदि पाँच वस्तुएँ कही गयी हैं, उन सबको देवपीठके गर्तमें डाल दे, परंतु पाँच ब्रह्मशिलाओंको उसमें न डाले॥ ७४—७७ $\frac{१}{२}$॥

मन्दिरके गर्भका छ: भागोंमें विभाजन करके छठे भागको त्याग दे और पाँचवें भागमें देवताकी स्थापना करे। अथवा मन्दिरके गर्भका आठ भाग करके सातवें भागमें प्रतिमाओंकी स्थापना करे तो वह सुखावह होता है। लेप अथवा चित्रमय विग्रहकी स्थापनामें पञ्चभूतोंकी धारणाओंद्वारा विशुद्धि होती है। वहाँ स्नान आदि कार्य जलसे नहीं, मानसिक किये जाते हैं। वैसे विग्रहोंको शिला एवं रत्न आदिके भवनमें रखना चाहिये। उनमें नेत्रोन्मीलन तथा आसन आदिकी कल्पना अभीष्ट है। इनकी पूजा जलरहित पुष्पोंसे करनी चाहिये, जिससे चित्र दूषित न हो॥ ७८—८१॥

अब चल लिङ्गोंके लिये स्थापनाकी विधि बतायी जाती है। गर्भस्थानके पाँच अथवा तीन भाग करके एक भागको छोड़ दे और तीसरे या दूसरे भागमें चल लिङ्गकी स्थापना करे। इसी प्रकार उनके पीठोंके लिये भी करना चाहिये। लिङ्गोंमें तत्त्वभेदसे पूजनकी प्रक्रियामें भेद होता है। स्फटिक आदिके लिङ्गोंमें इष्टमन्त्रसे (अथवा सृष्टि-मन्त्रसे) विधिवत् संस्कार होना चाहिये। इसके सिवा वहाँ ब्रह्मशिला एवं रत्नप्रभूतिका निवेदन अपेक्षित नहीं है॥ ८२—८४॥

पिण्डिकाकी योजना भी मनसे ही कर लेनी चाहिये। स्वयम्भूलिङ्ग और बाणलिङ्ग आदिमें संस्कारका नियम नहीं है।* उन लिङ्गोंको संहिता-मन्त्रोंसे स्नान कराना चाहिये। वैदिक विधिसे ही उनके लिये न्यास और होम करना चाहिये। नदी, समुद्र तथा रोह—इनके स्थापन करानेका विधान पूर्ववत् है॥ ८५-८६॥

इहलोकमें जो मृत्तिका आदिके अथवा आटे आदिके शिवलिङ्गका पूजन किया जाता है, वह तात्कालिक होता है। अर्थात् पूजन-कालमें ही लिङ्ग-निर्माण करके वीक्षणादि विधानसे उनकी

* पाठान्तरके अनुसार वहाँ पीठके ही संस्कारका नियम है, लिङ्गका नहीं।

शुद्धि करे। तत्पश्चात् विधिवत् पूजन करना चाहिये। पूजनके पश्चात् मन्त्रोंको लेकर अपने-आपमें स्थापित करे और उस लिङ्गको जलमें डाल दे। एक वर्षतक ऐसा करनेसे वह लिङ्ग और उसका पूजन मनोवाञ्छित फल देनेवाला होता है। विष्णु आदि देवताओंकी स्थापनाके मन्त्र अलग हैं। उन्हींके द्वारा उनकी स्थापना करनी चाहिये॥ ८७—८९॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'शिव-प्रतिष्ठाकी विधिका वर्णन' नामक सत्तानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९७॥

अट्ठानबेवाँ अध्याय
गौरी-प्रतिष्ठा-विधि

भगवान् शिव कहते हैं—स्कन्द! अब मैं पूजासहित गौरीकी प्रतिष्ठाका वर्णन करूँगा, सुनो। पूर्ववत् मण्डप आदिकी रचना करके देवीकी स्थापना एवं शय्याधिवासन करे। पूर्वोक्त मन्त्रों और मूर्त्यादिकोंका न्यास करके आत्म-तत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्वका परमेश्वरमें स्थापन करे। तदनन्तर पराशक्तिका न्यास, होम और जप पूर्ववत् करके क्रियाशक्तिस्वरूपिणी पिण्डीका संधान करे। सर्वव्यापिनी पिण्डीका ध्यान करके वहाँ रत्न आदिका न्यास करे। इस विधिसे पिण्डीकी स्थापना करके उसके ऊपर देवीको स्थापित करे॥ १—४॥

वे देवी परमशक्तिस्वरूपा हैं। उनका अपने ही मन्त्रसे सृष्टि-न्यासपूर्वक स्थापन करे। तदनन्तर पीठमें क्रियाशक्तिका और देवीके विग्रहमें ज्ञानशक्तिका न्यास करे। इसके बाद सर्वव्यापिनी शक्तिका आवाहन करके देवीकी प्रतिमामें उसका नियोजन करे। फिर '**शिवा**' नामवाली अम्बिका देवीका स्पर्शपूर्वक पूजन करे*॥ ५-६॥

पूजाके मन्त्र इस प्रकार हैं—'**ॐ आं आधारशक्तये नमः। ॐ कूर्माय नमः। ॐ कन्दाय नमः। ॐ ह्रीं नारायणाय नमः। ॐ ऐश्वर्याय नमः। ॐ अधश्छदनाय नमः। ॐ पद्मासनाय नमः।**' तदनन्तर केसरोंकी पूजा करे। तत्पश्चात् '**ॐ ह्रीं कर्णिकायै नमः। ॐ क्षं पुष्कराक्षेभ्यो नमः।**'—इन मन्त्रोंद्वारा कर्णिका एवं कमलाक्षोंका पूजन करे। इसके बाद '**ॐ हां पुष्ट्यै नमः। ॐ ह्रीं ज्ञानायै नमः। ॐ हूं क्रियायै नमः।**'—इन मन्त्रोंद्वारा पुष्टि, ज्ञाना एवं क्रियाशक्तिका पूजन करे॥ ७—१०॥

'**ॐ नालाय नमः। ॐ रं धर्माय नमः। ॐ रुं ज्ञानाय नमः। ॐ वैराग्याय नमः। ॐ अधर्माय नमः। ॐ रं अज्ञानाय नमः। ॐ अवैराग्याय नमः। ॐ अनैश्वर्याय नमः।**'

—इन मन्त्रोंद्वारा नाल आदिकी पूजा करे। **ॐ हूं वाचे नमः। ॐ हूं रागिण्यै नमः। ॐ हूं ज्वालिन्यै नमः। ॐ ह्रौं शमायै नमः। ॐ हूं ज्येष्ठायै नमः। ॐ ह्रौं रौं क्रौं नवशक्त्यै नमः।**

—इन मन्त्रोंद्वारा वाक् आदि शक्तियोंकी पूजा करे। '**ॐ गौं गौर्यासनाय नमः। ॐ गौं गौरीमूर्तये नमः।**' अब गौरीका मूलमन्त्र बताया जाता है—'**ॐ ह्रीं सः महागौरि रुद्रदयिते स्वाहा गौर्यै नमः। ॐ गां हृदयाय नमः, ॐ गीं शिरसे स्वाहा। ॐ गूं शिखायै वषट्। ॐ गैं कवचाय हुम्। ॐ गौं नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ गः अस्त्राय फट्। ॐ गौं विज्ञानशक्तये नमः।**'—इन मन्त्रोंसे शिखा आदिकी पूजा करे॥ ११—१५॥

'**ॐ गूं क्रियाशक्तये नमः।**'—इस मन्त्रसे क्रियाशक्तिकी पूजा करे। पूर्वादि दिशाओंमें इन्द्रादि

* पाठान्तरके अनुसार 'अमुकेशी' इत्यादि नामसे उनका स्पर्शपूर्वक पूजन करे। यथा—'रामेश्वर्यै नमः। कृष्णेश्यैं नमः।' इत्यादि।

देवताओंका पूजन करे। इनके मन्त्र पहले बताये गये हैं। '**ॐ सुं सुभगायै नमः**'—इससे सुभगाका, '**ॐ ह्रीं ललितायै नमः।**' से ललिताका पूजन करे। '**ॐ ह्रीं कामिन्यै नमः।**' '**ॐ ह्रूं काममालिन्यै नमः।**'—इन मन्त्रोंसे गौरीकी प्रतिष्ठा, पूजा और जप करनेसे उपासक सब कुछ पा लेता है*॥ १६-१७॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'गौरी-प्रतिष्ठा-विधिका वर्णन' नामक अट्ठानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९८॥

निन्यानबेवाँ अध्याय

सूर्यदेवकी स्थापनाकी विधि

भगवान् शिव बोले—स्कन्द! अब मैं सूर्यदेवकी प्रतिष्ठाका वर्णन करूँगा। पूर्ववत् मण्डप-निर्माण और स्नान आदि कार्यका सम्पादन करके, पूर्वोक्त विधिसे विद्या तथा साङ्ग सूर्यदेवका आसन-शय्यामें न्यास करके त्रितत्त्वका, ईश्वरका तथा आकाशादि पाँच भूतोंका न्यास करे॥ १-२॥

पूर्ववत् शुद्धि आदि करके पिण्डीका शोधन करे। फिर सदेशपद-पर्यन्त तत्त्व-पञ्चकका न्यास करे। तदनन्तर सर्वतोमुखी शक्तिके साथ विधिवत् स्थापना करके, गुरु सूर्य-सम्बन्धी मन्त्र बोलते हुए शक्त्यन्त सूर्यका विधिवत् स्थापन करे॥ ३-४॥

श्रीसूर्यदेवका स्वाम्यन्त अथवा पादान्त नाम रखे। (यथा विक्रमादित्य-स्वामी अथवा रामादित्यपाद इत्यादि) सूर्यके मन्त्र पहले बताये गये हैं, उन्हींका स्थापनकालमें भी साक्षात्कार (प्रयोग) करना चाहिये॥ ५॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'सूर्य-प्रतिष्ठा-विधिका वर्णन' नामक निन्यानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९९॥

सौवाँ अध्याय

द्वारप्रतिष्ठा-विधि

भगवान् शंकर कहते हैं—स्कन्द! अब मैं द्वारगत प्रतिष्ठाकी विधिका वर्णन करूँगा। द्वारके अङ्गभूत उपकरणोंका कसैले जल आदिसे संस्कार करके उन्हें शय्यापर रखे। द्वारके मूल, मध्य और अग्रभागोंमें आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्वका न्यास करके संनिरोधिनी-मुद्राद्वारा उनका निरोध करे। फिर तदनुरूप होम और जप करके, द्वारके अधोभागमें अनन्त देवताके मन्त्रसे वास्तु-देवताकी

* सोमशम्भुकी 'कर्मकाण्ड-क्रमावली'में इन मन्त्रोंके स्वरूप और बीज कुछ भिन्न रूपमें मिलते हैं। अतः उन्हें अविकल रूपमें यहाँ उद्धृत किया जाता है—ॐ आं आधारशक्तये नमः। ॐ ईं कन्दराय नमः। ॐ ॐ नालाय नमः। ॐ ॠं धर्माय नमः। ॐ ॠं ज्ञानाय नमः। ॐ लृं वैराग्याय नमः। ॐ लृं ऐश्वर्याय नमः। ॐ ॠं अधर्माय नमः। ॐ ॠं अज्ञानाय नमः। ॐ लृं अवैराग्याय नमः। ॐ लृं अनैश्वर्याय नमः। ॐ अः ऊर्ध्वच्छदनाय नमः। ॐ हां पद्माय नमः। ॐ हं केसरेभ्यो नमः। ॐ हं कर्णिकायै नमः। ॐ हं पुष्करेभ्यो नमः। ॐ हं प्राज्च्यै नमः। ॐ ह्रीं ज्ञानवत्यै नमः। ॐ हूं क्रियायै नमः। ॐ ह्लृं वामायै नमः। ॐ ह्लृं वागीश्वर्यै नमः। ॐ ह्रीं ज्वालिन्यै नमः। ॐ ह्रों ज्येष्ठायै नमः। ॐ हौं रौद्र्यै नमः इति सर्वशक्तयः। ॐ गां गौर्यासनाय नमः। ॐ गों गौरीमूर्त्तये नमः। ॐ ह्रीं सः महागौरि रुद्रदयिते स्वाहा।—इति मूलमन्त्रः। गां हृदयाय नमः। गीं शिरसे स्वाहा। गूं शिखायै वषट्। गैं कवचाय हुम्। गौं नेत्रेभ्यो वौषट्। गः अस्त्राय फट्। ॐ सीं ज्ञानशक्तये नमः। ॐ सूं क्रियाशक्तये नमः। लोकपालमन्त्रास्तु पूर्वोक्ताः। ऐं स्हैं सुभगायै नमः। ॐ स्हैं ललितायै नमः। ॐ स्हं कामिन्यै नमः। ॐ स्हौं काममालिन्यै नमः। इत्येता गौरीसमानसख्यः।

पूजा करे। वहीं रत्नादि-पञ्चक स्थापित करके शान्ति-होम करे। तत्पश्चात् जौ, सरसों, बरहंटा, ऋद्धि (ओषधिविशेष), वृद्धि (ओषधिविशेष), पीली सरसों, महातिल, गोमृत् (गोपीचन्दन), दरद (हिङ्गुल या सिंगरफ), नागेन्द्र (नागकेसर), मोहिनी (त्रिपुरमाली या पोई), लक्ष्मणा (सफेद कटेहरी), अमृता (गुरुचि), गोरोचन या लाल कमल, आरग्वध (अमलताश) तथा दूर्वा—इन ओषधियोंको मन्दिरके नीचे नींवमें डाले तथा इनकी पोटली बनाकर दरवाजेके ऊपरी भागमें उसकी रक्षाके लिये बाँध दे। बाँधते समय प्रणव मन्त्रका उच्चारण करे॥ १—५॥

दरवाजेको कुछ उत्तर दिशाका आश्रय लेकर स्थापित करना चाहिये। द्वारके अधोभागमें आत्मतत्त्वका, दोनों बाजुओंमें विद्यातत्त्वका, आकाशदेश (खाली जगह)-में तथा सम्पूर्ण द्वार-मण्डलमें सर्वव्यापी शिवतत्त्वका न्यास करे। इसके बाद मूलमन्त्रसे महेशनाथका न्यास करना चाहिये। द्वारका आश्रय लेकर रहनेवाले नन्दी आदि द्वारपालोंके लिये '**नमः**' पदसे युक्त उनके नाम-मन्त्रोंद्वारा सौ या पचास आहुतियाँ दे। अथवा शक्ति हो तो इससे दूनी आहुतियाँ दे॥ ६—८॥

न्यूनातिरिक्तता-सम्बन्धी दोषसे छुटकारा पानेके लिये अस्त्र-मन्त्रसे सौ आहुतियाँ दे। तदनन्तर पहले बताये अनुसार दिशाओंमें बलि देकर दक्षिणा आदि प्रदान करे॥ ९॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'द्वार-प्रतिष्ठाकी विधिका वर्णन' नामक सौवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १००॥

एक सौ एकवाँ अध्याय

प्रासाद-प्रतिष्ठा

भगवान् शिव कहते हैं—स्कन्द! अब मैं प्रासाद (मन्दिर)-की स्थापनाका वर्णन करता हूँ। उसमें चैतन्यका सम्बन्ध दिखा रहा हूँ। जहाँ मन्दिरके गुंबजकी समाप्ति होती है, वहाँ पूर्ववेदीके मध्यभागमें आधारशक्तिका चिन्तन करके प्रणव-मन्त्रसे कमलका न्यास करे। उसके ऊपर सुवर्ण आदि धातुओंमेंसे किसी एकका बना हुआ कलश स्थापित करे। उसमें पञ्चगव्य, मधु और दूध पड़ा हुआ हो। रत्न आदि पाँच वस्तुएँ डाली गयी हों। कलशपर गन्धका लेप हुआ हो। वह वस्त्रसे आवृत हो तथा उसे सुगन्धित पुष्पोंसे सुवासित किया गया हो। उस कलशके मुखमें आम आदि पाँच वृक्षोंके पल्लव डाले गये हों। हृदय-मन्त्रसे हृदय-कमलकी भावना करके उस कलशको वहाँ स्थापित करना चाहिये॥ १—३ $\frac{1}{2}$॥

तदनन्तर गुरु पूरक प्राणायामके द्वारा श्वासको भीतर लेकर, शरीरके द्वारा सकलीकरण क्रियाका सम्पादन करके, स्व-सम्बन्धी मन्त्रसे कुम्भक प्राणायामद्वारा प्राणवायुको भीतर अवरुद्ध करे। फिर भगवान् शंकरकी आज्ञासे सर्वात्मासे अभिन्न आत्मा (जीवचैतन्य)-को जगावे। तत्पश्चात्, रेचक प्राणायामद्वारा द्वादशान्त-स्थानसे प्रज्वलित अग्निकणके समान जीव चैतन्यको लेकर कलशके भीतर स्थापित करे और उसमें आतिवाहिक शरीरका न्यास करके उसके गुणोंके बोधक काल आदिका एवं ईश्वरसहित पृथ्वी-पर्यन्त तत्त्व-समुदायका भी उसमें निवेश करे॥ ४—७॥

इसके बाद उक्त कलशमें दस नाड़ियों, दस प्राणों, (पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय तथा मन, बुद्धि और अहंकार—इन) तेरह इन्द्रियों तथा उनके अधिपतियोंकी भी उस कलशमें स्थापना करके, प्रणव आदि नाम-मन्त्रोंसे उनका पूजन करे। अपने-अपने कार्यके कारकरूपसे जो मायापाशके नियामक हैं, उनका, प्रेरक विद्येश्वरोंका

तथा सर्वव्यापी शिवका भी अपने-अपने मन्त्रद्वारा वहाँ न्यास और पूजन करे। समस्त अङ्गोंका भी न्यास करके अवरोधिनी-मुद्राद्वारा उन सबका निरोध करे। अथवा सुवर्ण आदि धातुओंद्वारा निर्मित पुरुषकी आकृति, जो ठीक मानव-शरीरके तुल्य हो, लेकर उसे पूर्ववत् पञ्चगव्य एवं कसैले जल आदिसे संस्कृत (शुद्ध) करे। फिर उसे शय्यापर आसीन करके उमापति रुद्रदेवका ध्यान करते हुए शिव-मन्त्रसे उस पुरुष-शरीरमें व्यापक रूपसे उन्हींका न्यास करे॥ ८—११ $\frac{1}{2}$ ॥

उनके संनिधानके लिये होम, प्रोक्षण, स्पर्श एवं जप करे। संनिधापन तथा रोधक आदि सारा कार्य भागत्रय-विभागपूर्वक करे। इस प्रकार प्रकृति-पर्यन्त न्यास सारा विधान पूर्ण करके उस पुरुषको पूर्वोक्त कलशमें स्थापित कर दे॥ १२-१३॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'प्रासाद-प्रतिष्ठाकी विधिका वर्णन' नामक एक सौ एकवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १०१॥

एक सौ दोवाँ अध्याय

ध्वजारोपण

भगवान् शंकर कहते हैं—स्कन्द! देव-मन्दिरमें शिखर, ध्वजदण्ड एवं ध्वजकी प्रतिष्ठा जिस प्रकार बतायी गयी है, उसका तुमसे वर्णन करता हूँ। शिखरके आधे भागमें शूलका प्रवेश हो अथवा सम्पूर्ण शूलके आधे भागका शिखरमें प्रवेश कराकर प्रतिष्ठा करनी चाहिये। ईंटोंके बने हुए मन्दिरमें लकड़ीका शूल होना चाहिये और प्रस्तरनिर्मित मन्दिरमें प्रस्तरका। विष्णु आदिके मन्दिरमें कलशको चक्रसे संयुक्त करना चाहिये। वह कलश देवमूर्तिकी मापके अनुरूप ही होना चाहिये। कलश यदि त्रिशूलसे युक्त हो तो 'अग्रचूल' या अगचूड नामसे प्रसिद्ध होता है॥ १—३॥

यदि उसके मस्तक-भागमें शिवलिङ्ग हो तो उसे 'ईश शूल' कहते हैं। अथवा शिरोभागमें बिजौरे नीबूकी आकृतिसे युक्त होनेपर भी उसका यही नाम है। शैव-शास्त्रोंमें वैसे शूलका वर्णन मिलता है। जिसकी ऊँचाई जङ्घावेदीके बराबर अथवा जङ्घावेदीके आधे मापकी हो, वह 'चित्रध्वज' कहा गया है। अथवा उसका मान दण्डके बराबर या अपनी इच्छाके अनुसार रखे। जो पीठको आवेष्टित कर ले, वह 'महाध्वज' कहा गया है। चौदह, नौ अथवा छ: हाथोंके मापका दण्ड क्रमशः उत्तम, मध्यम और अधम माना गया है—यह विद्वान् पुरुषोंद्वारा जाननेके योग्य है। ध्वजका दण्ड बाँसका अथवा साखू आदिका हो तो सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला होता है॥ ४—७॥

यह ध्वज आरोपण करते समय यदि टूट जाय तो राजा अथवा यजमानके लिये अनिष्टकारक होता है—ऐसा जानना चाहिये। उस दशामें बहुरूप-मन्त्रद्वारा पूर्ववत् शान्ति करे। द्वारपाल आदिका पूजन तथा मन्त्रोंका तर्पण करके ध्वज और उसके दण्डको अस्त्र-मन्त्रसे नहलावे। गुरु इसी मन्त्रसे ध्वजका प्रोक्षण करके मिट्टी तथा कसैले जल आदिसे मन्दिरको भी स्नान करावे। चूलक (ध्वजके ऊपरी भाग)-में गन्धादिका लेप करके उसे वस्त्रसे आच्छादित करे। फिर पूर्ववत् उसे शय्यापर रखकर उसमें लिङ्गकी भाँति न्यास करना चाहिये। परंतु चूलकमें ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्तिका

न्यास न करे। वहाँ विशेषार्थ-बोधिका चतुर्थी भी वाञ्छित नहीं है और न उसके लिये कुम्भ या कुण्डकी ही कल्पना आवश्यक है॥ ८—१२॥

दण्डमें आत्मतत्त्वका, विद्यातत्त्वका तथा सद्योजात आदि पाँच मुखोंका न्यास करे। फिर ध्वजमें शिवतत्त्वका न्यास करे। वहाँ निष्कल शिवका न्यास करके हृदय आदि अङ्गोंकी पूजा करे। तदनन्तर मन्त्रज्ञ गुरु ध्वज और ध्वजाग्रभागमें संनिधीकरणके लिये फडन्त संहिता-मन्त्रोंद्वारा प्रत्येक भागमें होम करे। किसी और प्रकारसे भी कहीं जो ध्वज-संस्कार किया गया है, वह भी इस प्रकार अस्त्र-याग करके ही करना चाहिये। ये सब बातें मनीषी पुरुषोंने करके दिखायी हैं॥ १३—१५ $\frac{१}{२}$ ॥

मन्दिरको नहलाकर, पुष्पहार और वस्त्र आदिसे विभूषित करके, जङ्घावेदीके ऊपरी भागमें त्रितत्त्व आदिका न्यास, होम आदिका विधान एवं शिवका पूर्ववत् पूजन करके, उनके सर्वतत्त्वमय व्यापक स्वरूपका ध्यान करते हुए व्यापक-न्यास करे। भगवान् शिवके चरणारविन्दमें अनन्त एवं कालरुद्रकी भावना करके पीठमें कूष्माण्ड, हाटक, पाताल तथा नरकोंकी भावना करे। तदनन्तर भुवनों, लोकपालों तथा शतरुद्रादिसे घिरे हुए इस ब्रह्माण्डका ध्यान करके जङ्घावेदीमें स्थापित करे॥ १६—१९ $\frac{१}{२}$ ॥

पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाशरूप पञ्चाष्टक, सर्वावरणसंज्ञक, बुद्धियोन्यष्टक, योगाष्टक, प्रलय-पर्यन्त रहनेवाला त्रिगुण, पटस्थ पुरुष और वाम सिंह—इन सबका भी जङ्घावेदीमें चिन्तन करे; किंतु मञ्जरी वेदिकामें विद्यादि चार तत्त्वोंकी भावना करे। कण्ठमें माया और रुद्रका, अमलसारमें विद्याओंका तथा कलशमें ईश्वर-बिन्दु और विद्येश्वरका चिन्तन करे। चन्द्रार्धस्वरूप शूलमें जटाजूटकी भावना करे। उसी शूलमें त्रिविध शक्तियोंकी तथा दण्डमें नाभिकी भावना करके ध्वजमें कुण्डलिनी शक्तिका चिन्तन करे। इस प्रकार मन्दिरके अवयवोंमें विभिन्न तत्त्वोंकी भावना करनी चाहिये॥ २०—२४ $\frac{१}{२}$ ॥

जगतीसे धाम (प्रासाद या मन्दिर)-का तथा पिण्डिकासे लिङ्गका संधान करके शेष सारा विधान यहाँ भी पूर्ववत् करना चाहिये। इसके बाद गुरु वाद्योंके मङ्गलमय घोष तथा वेदध्वनिके साथ मूर्तिधरोंसहित शिवरूप मूलवाले ध्वज-दण्डको उठाकर जहाँ मन्त्रोच्चारणपूर्वक शक्तिमय कमलका न्यास हुआ है तथा रत्नादि-पञ्चकका भी न्यास हो गया है, वहाँ आधार-भूमिमें उसे स्थापित कर दे॥ २५-२६॥

जब प्रासाद-शिखरपर ध्वज लग जाय, तब यजमान अपने मित्रों और बन्धुओं आदिके साथ मन्दिरकी परिक्रमा करके अभीष्ट फलका भागी होता है। गुरुको चाहिये कि वह अस्त्र आदिके साथ पाशुपतका चिरकालतक चिन्तन करते हुए उन सबके शस्त्रयुक्त अधिपतियोंको मन्दिरकी रक्षाके लिये निवेदन करे। न्यूनता आदि दोषकी शान्तिके लिये होम, दान और दिग्बलि करके यजमान गुरुको दक्षिणा दे। ऐसा करके वह दिव्य धाममें जाता है॥ २७—२९॥

प्रतिमा, लिङ्ग और वेदीके जितने परमाणु होते हैं, उतने सहस्र युगोंतक मन्दिरका निर्माण एवं प्रतिष्ठा करनेवाला यजमान दिव्यलोकमें उत्तम भोग भोगता है। यही उसका प्राप्तव्य फल है॥ ३०॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'ध्वजारोपणादिकी विधिका वर्णन' नामक एक सौ दोवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १०२॥

एक सौ तीनवाँ अध्याय
शिवलिङ्ग आदिके जीर्णोद्धारकी विधि

भगवान् शंकर कहते हैं—स्कन्द! जीर्ण आदि लिङ्गोंके विधिवत् उद्धारका प्रकार बता रहा हूँ। जिसका चिह्न मिट गया हो, जो टूट-फूट गया हो, मैल आदिसे स्थूल हो गया हो, वज्रसे आहत हुआ हो, सम्पुटित (बंद) हो, फट गया हो, जिसका अङ्ग-भङ्ग हो गया हो तथा जो इसी तरहके अन्य विकारोंसे ग्रस्त हो—ऐसे दूषित लिङ्गोंकी पिण्डी तथा वृषभका तत्काल त्याग कर देना चाहिये॥ १-२॥

जो शिवलिङ्ग किसीके द्वारा चालित हो या स्वयं चलित हो, अत्यन्त नीचा हो गया हो, विषम स्थानमें स्थित हो; जहाँ दिङ्मोह होता हो, जो किसीके द्वारा गिरा दिया गया हो अथवा जो मध्यस्थ होकर भी गिर गया हो—ऐसे लिङ्गकी पुनः ठीकसे स्थापना कर देनी चाहिये। परंतु यदि वह व्रणरहित हो, तभी ऐसा किया जा सकता है। यदि वह नदीके जलप्रवाहद्वारा वहाँसे अन्यत्र हटा दिया जाता हो तो उस स्थानसे अन्यत्र भी शास्त्रीय विधिके अनुसार उसकी स्थापना की जा सकती है। जो शिवलिङ्ग अच्छी तरह स्थित हो, सुदृढ़ हो, उसे विचलित करना या चलाना नहीं चाहिये॥ ३—५॥

जो अस्थिर या अदृढ हो, उस शिवलिङ्गको यदि चालित करे तो उसकी शान्तिके लिये एक सहस्र आहुतियाँ दे तथा सौ आहुतियाँ देकर पुनः उसकी स्थापना करे। जीर्णता आदि दोषोंसे युक्त शिवलिङ्ग भी यदि नित्यपूजा-अर्चा आदिसे युक्त हो तो उसे सुस्थित ही रहने दे; चालित न करे। जीर्णोद्धारके लिये दक्षिणदिशामें एक मण्डप बनावे। ईशानकोणमें पश्चिम द्वारका एक फाटक लगा दे। द्वारपूजा आदि करके, वेदीपर शिवजीकी पूजा करे। इसके बाद मन्त्रोंका पूजन और तर्पण करके वास्तुदेवताकी पूर्ववत् पूजा करे। तदनन्तर बाहर जा, दिशाओंमें बलि दे, स्वयं आचमन करनेके पश्चात् गुरु ब्राह्मणोंको भोजन करावे। तत्पश्चात् भगवान् शंकरको इस प्रकार विज्ञप्ति दे—॥ ६—८॥

'शम्भो! यह लिङ्ग दोषयुक्त हो गया है। इसके उद्धार करनेसे शान्ति होगी—ऐसा आपका वचन है। अतः विधिपूर्वक इसका अनुष्ठान होने जा रहा है। शिव! इसके लिये आप मेरे भीतर स्थित होइये और अधिष्ठाता बनकर इस कार्यका सम्पादन कीजिये।' देवेश्वर शिवको इस प्रकार विज्ञप्ति देकर मधु और घृतमिश्रित खीर एवं दूर्वाद्वारा मूल-मन्त्रसे एक सौ आठ आहुतियाँ देकर शान्ति-होमका कार्य सम्पन्न करे। तदनन्तर लिङ्गको स्नान कराकर वेदीपर इसकी पूजा करे। पूजनकालमें **'ॐ व्यापकेश्वराय शिवाय नमः।'** इस मन्त्रका उच्चारण करे। अङ्गपूजा और अङ्गन्यासके मन्त्र इस प्रकार हैं—**'ॐ व्यापकेश्वराय हृदयाय नमः। ॐ व्यापकेश्वराय शिरसे स्वाहा। ॐ व्यापकेश्वराय शिखायै वषट्। ॐ व्यापकेश्वराय कवचाय हुम्। ॐ व्यापकेश्वराय नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ व्यापकेश्वराय अस्त्राय फट्।'**॥ ९—१३॥

तत्पश्चात् उस शिवलिङ्गके आश्रित रहनेवाले भूतको अस्त्र-मन्त्रके उच्चारणपूर्वक सुनावे—'यदि कोई भूत-प्राणी यहाँ इस लिङ्गका आश्रय लेकर रहता है, वह भगवान् शिवकी आज्ञासे इस लिङ्गको त्यागकर, जहाँ इच्छा हो, वहाँ चला जाय। अब यहाँ विद्या तथा विद्येश्वरोंके साथ साक्षात् भगवान् शम्भु निवास करेंगे।' इसके बाद पाशुपतमन्त्रसे प्रत्येक भागके लिये सहस्र आहुतियाँ देकर शान्तिजलसे प्रोक्षण करे। फिर कुशोंद्वारा स्पर्श करके उक्त मन्त्रको जपे॥ १४—१६॥

तदनन्तर, विलोम-क्रमसे अर्घ्य देकर लिङ्ग और पिण्डिकामें स्थित तत्त्वों, तत्त्वाधिपतियों और अष्ट मूर्तीश्वरोंका गुरु स्वर्णपाशसे विसर्जन करके वृषभके कंधेपर स्थित रज्जुद्वारा उसे बाँधकर ले जाय तथा जनसमुदायके साथ शिव-नामका कीर्तन करते हुए, उस वृषभ (नन्दिकेश्वर)-को जलमें डाल दे। फिर मन्त्रज्ञ आचार्य पुष्टिके लिये सौ आहुतियाँ दे। दिक्पालोंकी तृप्ति तथा वास्तु-शुद्धिके लिये भी सौ-सौ आहुतियोंका होम करे। तत्पश्चात् महापाशुपत-मन्त्रसे उस मन्दिरमें रक्षाकी व्यवस्था करके, गुरु वहाँ विधिपूर्वक दूसरे लिङ्गकी स्थापना करे। असुरों, मुनियों, देवताओं तथा तत्त्ववेत्ताओंद्वारा स्थापित लिङ्ग जीर्ण या भग्न हो गया हो तो भी विधिके द्वारा भी उसे चालित न करे॥ १७—२१ ॥

जीर्ण-मन्दिरके उद्धारमें भी यही विधि काममें लानी चाहिये। मन्त्रगणोंका खड्गमें न्यास करके दूसरा मन्दिर तैयार करावे। यदि पहलेकी अपेक्षा मन्दिरको संकुचित या छोटा कर दिया जाय तो कर्ताकी मृत्यु होती है और विस्तार किया जाय तो धनका नाश होता है। अतः प्राचीन मन्दिरके द्रव्यको लेकर या और कोई श्रेष्ठ द्रव्य लेकर पहलेके मन्दिरके बराबर ही उस स्थानपर नूतन मन्दिरका निर्माण करना चाहिये॥ २२-२३ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'जीर्णोद्धारकी विधिका वर्णन' नामक एक सौ तीनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १०३ ॥

एक सौ चारवाँ अध्याय

प्रासादके लक्षण

भगवान् शंकर कहते हैं—ध्वजामें मयूरका चिह्न धारण करनेवाले स्कन्द! अब मैं प्रासाद-सामान्यका लक्षण कहता हूँ। चौकोर क्षेत्रके चार भाग करके एक भागमें भित्तियों (दीवारों)-का विस्तार हो। बीचके भाग गर्भके रूपमें रहें और एक भागमें पिण्डिका हो। पाँच भागवाले क्षेत्रके भीतरी भागमें तो पिण्डिका हो, एक भागका विस्तार छिद्र (शून्य या खाली जगह)-के रूपमें हो तथा एक भागका विस्तार दीवारोंके उपयोगमें लाया जाय। मध्यम गर्भमें दो भाग और ज्येष्ठ गर्भमें भी दो ही भाग रहें। किंतु कनिष्ठ गर्भ तीन भागोंसे सम्पन्न होता है; शेष आठवाँ भाग दीवारोंके उपयोगमें लाया जाय, ऐसा विधान कहीं-कहीं उपलब्ध होता है॥ १—३ $\frac{1}{2}$ ॥

छः भागोंद्वारा विभक्त क्षेत्रमें एक भागका विस्तार दीवारके उपयोगमें आता है, एक भागका विस्तार गर्भ है और दो भागोंमें पिण्डिका स्थापित की जाती है। कहीं-कहीं दीवारोंकी ऊँचाई उसकी चौड़ाईकी अपेक्षा दुगुनी, सवा दो गुनी, ढाई गुनी अथवा तीन गुनी भी होनेका विधान मिलता है। कहीं-कहीं प्रासाद (मन्दिर)-के चारों ओर दीवारके आधे या पौने विस्तारकी जगत होती है और चौथाई विस्तारकी नेमि। बीचमें एक तृतीयांशकी परिधि होती है। वहाँ रथ बनवावे और उनमें चामुण्ड-भैरव तथा नाट्येशकी स्थापना करे। प्रासादके आधे विस्तारमें चारों ओर बाहरी भागमें देवताओंके लिये आठ या चार परिक्रमाएँ बनवावे। प्रासाद आदिमें इनका निर्माण वैकल्पिक है। चाहे बनवावे, चाहे न बनवावे॥ ४—८ $\frac{1}{2}$ ॥

आदित्योंकी स्थापना पूर्व दिशामें और स्कन्द एवं अग्निकी प्रतिष्ठा वायव्यदिशामें करनी चाहिये। इसी प्रकार यम आदि देवताओंकी भी स्थिति उनकी अपनी-अपनी दिशामें मानी गयी है।

शिखरके चार भाग करके नीचेके दो भागोंकी 'शुकनासिका' (गुंबज) संज्ञा है। तीसरे भागमें वेदीकी प्रतिष्ठा है। इससे आगेका जो भाग है, वही 'अमलसार' नामसे प्रसिद्ध 'कण्ठ' है। वैराज, पुष्पक, कैलास, मणिक और त्रिविष्टप— ये पाँच ही प्रासाद मेरुके शिखरपर विराजमान हैं। (अतः प्रासादके ये ही पाँच मुख्य भेद माने गये हैं।) ॥ ९—११ $\frac{१}{२}$ ॥

इनमें पहला 'वैराज' नामवाला प्रासाद चतुरस्र (चौकोर) होता है। दूसरा (पुष्पक) चतुरस्रायत है। तीसरा (कैलास) वृत्ताकार है। चौथा (मणिक) वृत्तायत है तथा पाँचवाँ (त्रिविष्टप) अष्टकोणाकार है। इनमेंसे प्रत्येकके नौ-नौ भेद होनेके कारण कुल मिलाकर पैंतालीस भेद हैं। पहला प्रासाद मेरु, दूसरा मन्दर, तीसरा विमान, चौथा भद्र, पाँचवाँ सर्वतोभद्र, छठा रुचक, सातवाँ नन्दक (अथवा नन्दन), आठवाँ वर्धमान नन्दि अर्थात् नन्दिवर्द्धन और नवाँ श्रीवत्स—ये नौ प्रासाद 'वैराज'के कुलमें प्रकट हुए हैं॥ १२—१५ ॥

वलभी, गृहराज, शालागृह, मन्दिर, विशाल-चमस, ब्रह्म-मन्दिर, भुवन, प्रभव और शिविकावेश्म—ये नौ प्रासाद 'पुष्पक'से प्रकट हुए हैं। वलय, दुंदुभि, पद्म, महापद्म, वर्धनी, उष्णीष, शङ्ख, कलश तथा खवृक्ष—ये नौ वृत्ताकार प्रासाद 'कैलास' कुलमें उत्पन्न हुए हैं। गज, वृषभ, हंस, गरुत्मान्, ऋक्षनायक, भूषण, भूधर, श्रीजय तथा पृथ्वीधर—ये नौ वृत्तायत प्रासाद 'मणिक' नामक मुख्य प्रासादसे प्रकट हुए हैं। वज्र, चक्र, स्वस्तिक, वज्रस्वस्तिक (अथवा वज्रहस्तक), चित्र, स्वस्तिक-खड्ग, गदा, श्रीकण्ठ और विजय—ये नौ प्रासाद 'त्रिविष्टप'से प्रकट हुए हैं॥ १६—२१ ॥

ये नगरोंकी भी संज्ञाएँ हैं। ये ही लाट आदिकी भी संज्ञाएँ हैं। शिखरकी जो ग्रीवा (या कण्ठ) है, उसके आधे भागके बराबर ऊँचा चूल (चोटी) हो। उसकी मोटाई कण्ठके तृतीयांशके बराबर हो। वेदीके दस भाग करके पाँच भागोंद्वारा स्कन्धका विस्तार करना चाहिये, तीन भागोंद्वारा कण्ठ और चार भागोंद्वारा उसका अण्ड (या प्रचण्ड) बनाना चाहिये॥ २२-२३ ॥

पूर्वादि दिशाओंमें ही द्वार रखने चाहिये, कोणोंमें कदापि नहीं। पिण्डिका-विस्तार कोणतक जाना चाहिये, मध्यम भागतक उसकी समाप्ति हो—ऐसा विधान है। कहीं-कहीं द्वारोंकी ऊँचाई गर्भके चौथे या पाँचवें भागसे दूनी रखनी चाहिये। अथवा इस विषयको अन्य प्रकारसे भी बताया जाता है। एक सौ साठ अङ्गुलकी ऊँचाईसे लेकर दस-दस अङ्गुल घटाते हुए जो चार द्वार बनते हैं, वे उत्तम माने गये हैं (जैसे १६०, १५०, १४० और १३० अङ्गुलतक ऊँचे द्वार उत्तम कोटिमें गिने जाते हैं)। एक सौ बीस, एक सौ दस और सौ अङ्गुल ऊँचे द्वार मध्यम श्रेणीके अन्तर्गत हैं तथा इससे कम ९०, ८० और ७० अङ्गुल ऊँचे द्वार कनिष्ठ कोटिके बताये गये हैं। द्वारकी जितनी ऊँचाई हो, उससे आधी उसकी चौड़ाई होनी चाहिये। ऊँचाई उक्त मापसे तीन, चार, आठ या दस अङ्गुल भी हो तो शुभ है। ऊँचाईसे एक चौथाई विस्तार होना चाहिये, दरवाजेकी शाखाओं (बाजुओं)-का अथवा उन सबकी ही चौड़ाई द्वारकी चौड़ाईसे आधी होनी चाहिये—ऐसा बताया गया है। तीन, पाँच, सात तथा नौ शाखाओंद्वारा निर्मित द्वार अभीष्ट फलको देनेवाला है॥ २४—२९ ॥

नीचेकी जो शाखा है उसके एक चौथाई भागमें दो द्वारपालोंकी स्थापना करे। शेष शाखाओंको स्त्री-पुरुषोंके जोड़ेकी आकृतियोंसे विभूषित करे। द्वारके ठीक सामने खंभा पड़े तो 'स्तम्भवेध' नामक दोष होता है। इससे गृहस्वामीको दासता प्राप्त होती है। वृक्षसे वेध हो तो ऐश्वर्यका नाश होता है, कूपसे वेध हो तो भयकी प्राप्ति होती

है और क्षेत्रसे वेध होनेपर धनकी हानि होती है॥ ३०-३१॥

प्रासाद, गृह एवं शाला आदिके मार्गोंसे द्वारोंके विद्ध होनेपर बन्धन प्राप्त होता है, सभासे वेध प्राप्त होनेपर दरिद्रता होती है तथा वर्णसे वेध हो तो निराकरण (तिरस्कार) प्राप्त होता है। उलूखलसे वेध हो तो दारिद्र्य, शिलासे वेध हो तो शत्रुता और छायासे वेध हो तो निर्धनता प्राप्त होती है। इन सबका छेदन अथवा उत्पाटन हो जानेसे वेध-दोष नहीं लगता है। इनके बीचमें चहारदीवारी उठा दी जाय तो भी वेध-दोष दूर हो जाता है। अथवा सीमासे दुगुनी भूमि छोड़कर ये वस्तुएँ हों तो भी वेध-दोष नहीं होता है॥ ३२—३४॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'सामान्य-प्रासादलक्षण-वर्णन' नामक एक सौ चारवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १०४॥

एक सौ पाँचवाँ अध्याय

नगर, गृह आदिकी वास्तु-प्रतिष्ठा-विधि

भगवान् शंकर कहते हैं—स्कन्द! नगर, ग्राम तथा दुर्ग आदिमें गृहों और प्रासादोंकी वृद्धि हो, इसकी सिद्धिके लिये इक्यासी पदोंका वास्तुमण्डल बनाकर उसमें वास्तु-देवताकी पूजा अवश्य करनी चाहिये। (दस रेखा पश्चिमसे पूर्वकी ओर और दस दक्षिणसे उत्तरकी ओर खींचनेपर इक्यासी पद तैयार होते हैं।) पूर्वाभिमुखी दस रेखाएँ दस नाडियोंकी प्रतीकभूता हैं। उन नाडियोंके नाम इस प्रकार बताये गये हैं—शान्ता, यशोवती, कान्ता, विशाला, प्राणवाहिनी, सती, वसुमती, नन्दा, सुभद्रा और मनोरमा। उत्तराभिमुख प्रवाहित होनेवाली दस नाडियाँ और हैं, जो उक्त नौ पदोंको इक्यासी पदोंमें विभाजित करती हैं; उनके नाम ये हैं—हरिणी, सुप्रभा, लक्ष्मी, विभूति, विमला, प्रिया, जया, (विजया,) ज्वाला और विशोका। सूत्रपात करनेसे ये रेखामयी नाडियाँ अभिव्यक्त होकर चिन्तनका विषय बनती हैं। १—४॥

ईश आदि आठ-आठ देवता 'अष्टक' हैं, जिनका चारों दिशाओंमें पूजन करना चाहिये। (पूर्वादि चार दिशाओंके पृथक्-पृथक् अष्टक हैं।) ईश, घन (पर्जन्य), जय (जयन्त), शक्र (इन्द्र), अर्क (आदित्य या सूर्य), सत्य, भृश और व्योम (आकाश)—इन आठ देवताओंका वास्तुमण्डलमें पूर्व दिशाके पदोंमें पूजन करना चाहिये। हव्यवाह् (अग्नि), पूषा, वितथ, सौम (सोमपुत्र गृहक्षत), कृतान्त (यम), गन्धर्व, भृङ्ग (भृङ्गराज) और मृग—इन आठ देवताओंकी दक्षिण दिशाके पदोंमें अर्चना करनी चाहिये। पितर, द्वारपाल (या दौवारिक), सुग्रीव, पुष्पदन्त, वरुण, दैत्य (असुर), शेष (या शोष) और यक्ष्मा (पापयक्ष्मा)—इन आठोंका सदा पश्चिम दिशाके पदोंमें पूजन करनेकी विधि है। रोग, अहि (नाग), मुख्य, भल्लाट, सोम, शैल (ऋषि), अदिति और दिति—इन आठोंकी उत्तर दिशाके पदोंमें पूजा होनी चाहिये। वास्तुमण्डलके मध्यवर्ती नौ पदोंमें ब्रह्माजी पूजित होते हैं और शेष अड़तालीस पदोंमेंसे आधेमें अर्थात् चौबीस पदोंमें वे देवता पूजनीय हैं, जो अकेले छः पदोंपर अधिकार रखते हैं। [ब्रह्माजीके चारों ओर एक-एक करके चार देवता षट्पदगामी हैं—जैसे पूर्वमें मरीचि (या अर्यमा), दक्षिणमें विवस्वान्, पश्चिममें मित्र देवता तथा उत्तरमें पृथ्वीधर।] ॥ ५—८॥

ब्रह्माजी तथा ईशके मध्यवर्ती कोष्ठकोंमें जो दो पद हैं, उनमें 'आप'की तथा नीचेवाले दो पदोंमें 'आपवत्स'की पूजा करे। इसके बाद छः पदोंमें मरीचिकी अर्चना करे। मरीचि और अग्निके बीचमें जो कोणवर्ती दो पद हैं, उनमें सविताकी स्थिति है और उनसे निम्नभागके दो पदोंमें सावित्र तेज या सावित्रीकी। उसके नीचे छः पदोंमें विवस्वान् विद्यमान हैं। पितरों और ब्रह्माजीके बीचके दो पदोंमें विष्णु-इन्दु स्थित हैं और नीचेके दो पदोंमें इन्द्र-जय विद्यमान हैं, इनकी पूजा करे। वरुण तथा ब्रह्माके मध्यवर्ती छः पदोंमें मित्र-देवताका यजन करे। रोग तथा ब्रह्माके बीचवाले दो पदोंमें रुद्र-रुद्रदासकी पूजा करे और नीचेके दो पदोंमें यक्ष्मकी। फिर उत्तरके छः पदोंमें धराधर (पृथ्वीधर)-का यजन करे। फिर मण्डलके बाहर ईशानादि कोणोंके क्रमसे चरकी, स्कन्द, बिदारीविकट, पूतना, जम्भ, पापा (पापराक्षसी) तथा पिलिपिच्छ (या पिलिपित्स)—इन बालग्रहोंकी पूजा करे॥ ९—१३॥

इक्यासी पदोंसे युक्त वास्तुचक्र

पूर्व

ईशान — चरकी | इन्द्र — स्कन्द | अग्नि — बिदारी

१ ईश	२ (पर्जन्य) घन	३ (जयन्त) जय	४ (इन्द्र) शक्र	५ अर्क (आदित्य या सूर्य)	६ सत्य	७ भृश	८ व्योम (आकाश)	९ हव्यवाह् (अग्नि)
३२ दिति	३३ आप	आप	मरीचि	मरीचि	मरीचि	सविता	३४ सविता	१० पूषा
३१ अदिति	आपवत्स	४४ आपवत्स	मरीचि	३७ मरीचि	मरीचि	सावित्री	३८ सावित्री	११ वितथ
३० गिरि(शैल) या ऋषि	पृथ्वीधर	पृथ्वीधर				विवस्वान्	विवस्वान्	१२ सौम (गृहक्षत)
२९ सोम	पृथ्वीधर	४३ पृथ्वीधर		४५ ब्रह्मा		३९ विवस्वान्	विवस्वान्	१३ कृतान्त (धर्मराज या यम)
२८ भल्लाट	पृथ्वीधर	पृथ्वीधर				विवस्वान्	विवस्वान्	१४ गन्धर्व
२७ मुख्य	रुद्र-रुद्रदास	४२ रुद्र-रुद्रदास	मित्र	४१ मित्र	मित्र	४० विष्णु-इन्दु	विष्णु-इन्दु	१५ भृङ्ग या भृङ्गराज
२६ अहि (नाग)	३६ यक्ष्म	यक्ष्म	मित्र	मित्र	मित्र	इन्द्र-जय	३५ इन्द्र-जय	१६ मृग
२५ रोग	२४ यक्ष्मा (पापयक्ष्मा)	२३ शेष या शोष	२२ दैत्य (असुर)	२१ वरुण	२० पुष्पदन्त	१९ सुग्रीव	१८ द्वारपाल (दौवारिक)	१७ पितर

बायीं ओर: उत्तर — पिलिपिच्छ (पिलिपित्स); सोम (कुबेर)

दायीं ओर: कन्दर्प (विकट); दक्षिण (यम)

पापा (पापराक्षसी) — वायु | जम्भ — वरुण | पूतना — निर्ऋति

यह इक्यासी पदवाले वास्तुचक्रका वर्णन हुआ। एक शतपद-मण्डप भी होता है। उसमें भी पूर्ववत् देवताओंकी पूजाका विधान है। शतपदचक्रके मध्यवर्ती सोलह पदोंमें ब्रह्माजीकी पूजा करनी चाहिये। ब्रह्माजीके पूर्व आदि चार दिशाओंमें स्थित मरीचि, विवस्वान्, मित्र तथा पृथ्वीधरकी दस-दस पदोंमें पूजाका विधान है। अन्य जो ईशान आदि कोणोंमें स्थित देवता हैं, जैसे दैत्योंकी माता दिति और ईश; अग्नि तथा मृग (पूषा) और पितर तथा पापयक्ष्मा और अनिल (रोग)—वे सब-के-सब डेढ़-डेढ़ पदमें अवस्थित हैं॥ १४—१६॥

स्कन्द! अब मैं यज्ञ आदिके लिये जो मण्डप होता है, उसका संक्षेपसे तथा क्रमशः वर्णन करूँगा। तीस हाथ लंबा और अट्ठाईस हाथ चौड़ा मण्डप शिवका आश्रय है। लंबाई और चौड़ाई—दोनोंमें ग्यारह-ग्यारह हाथ घटा देनेपर उन्नीस हाथ लंबा और सत्रह हाथ चौड़ा मण्डप शिव-संज्ञक होता है। बाईस हाथ लम्बा और उन्नीस हाथ चौड़ा अथवा अठारह हाथ लम्बा तथा पन्द्रह हाथ चौड़ा मण्डप हो तो वह सावित्र-संज्ञावाला कहा गया है। अन्य गृहोंका विस्तार आंशिक होता है। दीवारकी जो मोटी उपजङ्घा (कुर्सी) होती है, उसकी ऊँचाईसे दीवारकी ऊँचाई तिगुनी होनी चाहिये। दीवारके लिये जो सूतसे मान निश्चित किया गया हो, उसके बराबर ही उसके सामने भूमि (सहन) होनी चाहिये। वह वीथीके भेदसे अनेक भेदवाली होती है॥ १७—२०॥

'भद्र' नामक प्रासादमें वीथियोंके समान ही 'द्वारवीथी' होती है; केवल वीथीका अग्रभाग द्वारवीथीमें नहीं होता है। 'श्रीजय' नामक प्रासादमें जो द्वारवीथी होती है, उसमें वीथीका पृष्ठभाग नहीं होता है। वीथीके पार्श्वभागोंको द्वारवीथीमें कम कर दिया जाय, तो उससे उपलक्षित प्रासादकी भी 'भद्र' संज्ञा ही होती है। गर्भके विस्तारकी ही भाँति वीथीका भी विस्तार होता है। कहीं-कहीं उसके आधे या चौथाई भागके बराबर भी होता है। वीथीके आधे मानसे उपवीथी आदिका निर्माण करना चाहिये। वह एक, दो या तीन पुरोंसे युक्त होता है। अब अन्य साधारण गृहोंके विषयमें बताया जाता है; गृहका वैसा स्वरूप हो तो वह सबकी समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला होता है। वह क्रमशः एक, दो, तीन, चार और आठ शालाओंसे युक्त होता है। एक शालावाले गृहकी शाला दक्षिणभागमें बनती है और उसका दरवाजा उत्तरकी ओर होता है। यदि दो शालाएँ बनानी हों तो पश्चिम और पूर्वमें बनवाये और उनका द्वार आमने-सामने पूर्व-पश्चिमकी ओर रखे। चार शालाओंवाला गृह चार द्वारों और अलिन्दोंसे युक्त होनेके कारण सर्वतोमुख होता है। वह गृहस्वामीके लिये कल्याणकारी है। पश्चिम दिशाकी ओर दो शालाएँ हों तो उस द्विशाल-गृहको 'यमसूर्यक' कहा गया है। पूर्व तथा उत्तरकी ओर शालाएँ हों तो उस गृहकी 'दण्ड' संज्ञा है तथा पूर्व-दक्षिणकी ओर दो शालाएँ हों तो वह गृह 'वात' संज्ञक होता है। जिस तीन शालावाले गृहमें पूर्व दिशाकी ओर शाला न हो, उसे 'सुक्षेत्र' कहा गया है, वह बुद्धिदायक होता है*॥ २१—२६॥

यदि दक्षिण दिशामें कोई शाला न हो (और

* मत्स्यपुराणमें एकशाल, द्विशाल, त्रिशाल और चतुःशाल-गृहका परिचय इस प्रकार दिया है—जिसमें एक दिशामें एक ही शाला (कमरा) हो और अन्य दिशाओंमें कोई कमरा न होकर बरामदा मात्र हो, वह 'एकशाल-गृह' है। इसी तरह दो दिशाओंमें दो कमरे और तीन दिशाओंमें तीन कमरे तथा चारों दिशाओंमें चार कमरे होनेपर उन घरोंको क्रमशः 'द्विशाल', 'त्रिशाल' और 'चतुःशाल' कहते हैं। चतुःशाल-गृहमें चारों ओर कमरे एवं चारों ओर दरवाजे होते हैं और वे द्वार आमने-सामने बने होते हैं। अतः वह सर्वतोमुखगृह है और उसका नाम 'सर्वतोभद्र' है। यह देवालय तथा नृपालय दोनोंमें शुभ होता है। पश्चिममें द्वार न हो (और अन्य तीन दिशाओंमें हो) तो उस गृहका विशेष नाम है—'नन्द्यावर्त'। यदि दक्षिण दिशामें ही द्वार न हो तो उस भवनका नाम है—'वर्धमान'। पूर्व-

अन्य दिशाओंमें हो) तो उस घरकी 'विशाल' संज्ञा है। वह कुलक्षयकारी तथा अत्यन्त भयदायक होता है। जिसमें पश्चिम दिशामें ही शाला न बनी हो, उस विशाल गृहको 'पक्षघ्न' कहते हैं। वह पुत्र-हानिकारक तथा बहुत-से शत्रुओंका उत्पादक होता है। अब मैं पूर्वादि दिशाओंके क्रमसे 'ध्वज'* आदि आठ गृहोंका वर्णन करता हूँ। (ध्वज, धूम, सिंह, श्वान, वृषभ, खर (गधा), हाथी और काक—ये ही आठोंके नाम हैं।) पूर्व-दिशामें स्नान और अनुग्रह (लोगोंसे कृपापूर्वक मिलने)-के लिये घर बनावे। अग्निकोणमें उसका रसोईघर होना चाहिये। दक्षिण दिशामें रस-क्रिया तथा शय्या (शयन)-के लिये घर बनाना चाहिये। नैर्ऋत्यकोणमें शस्त्रागार रहे। पश्चिम दिशामें धन-रत्न आदिके लिये कोषागार रखे। वायव्यकोणमें सम्यक् अन्नागार स्थापित करे। उत्तर दिशामें धन और पशुओंको रखे तथा ईशानकोणमें दीक्षाके लिये उत्तम भवन बनवावे। गृहस्वामीके हाथसे नापे हुए गृहका जो पिण्ड है, उसकी लंबाई-चौड़ाईके हस्तमानको तिगुना करके उसमें आठसे भाग दे। उस भागका जो शेष हो, तदनुसार यह ध्वज आदि आय स्थित होता है। उसीसे ध्वजादि-काकान्त आयका ज्ञान होता है। दो, तीन, चार, छः, सात और आठ शेष बचे तो उसके अनुसार शुभाशुभ फल हो। यदि मध्य (पाँचवें) और अन्तिम (काक)-में गृहकी स्थिति हुई तो वह गृह सर्वनाशकारी होता है। इसलिये आठ भागोंको छोड़कर नवम भागमें बना हुआ गृह शुभकारक होता है। उस नवम भागमें ही मण्डप उत्तम माना गया है। उसकी लंबाई-चौड़ाई बराबर रहे अथवा चौड़ाईसे लंबाई दुगुनी रहे॥ २७—३३॥

पूर्वसे पश्चिमकी ओर तथा उत्तरसे दक्षिणकी ओर बाजारमें ही गृहपङ्क्ति देखी जाती है। एक-एक भवनके लिये प्रत्येक दिशामें आठ-आठ द्वार हो सकते हैं। इन आठों द्वारोंके क्रमशः फल भी पृथक्-पृथक् कहे जाते हैं। भय, नारीकी चपलता, जय, वृद्धि, प्रताप, धर्म, कलह तथा निर्धनता—ये पूर्ववर्ती आठ द्वारोंके अवश्यम्भावी फल हैं। दाह, दुःख, सुहृन्नाश, धननाश, मृत्यु, धन, शिल्पज्ञान

द्वारसे रहित होनेपर उसका नाम 'स्वस्तिक' होता है और उत्तर द्वारसे रहित होनेपर 'रुचक'। जब किसी एक दिशामें शाला (कमरा) ही न हो तो वह 'त्रिशाल-गृह' है। इसके भी कई भेद हैं। जिस मकानके भीतर उत्तर दिशामें कोई शाला न हो, वह त्रिशाल-गृह 'धान्यक' कहलाता है। वह मनुष्योंके लिये क्षेमकारक, वृद्धिकारक तथा बहुपुत्र-फलदायक होता है। यदि पूर्व-दिशामें शाला न हो तो उस त्रिशाल-गृहको 'सुक्षेत्र' कहते हैं। यह धन, यश और आयुको देनेवाला तथा शोक और मोहका नाश करनेवाला होता है। यदि दक्षिण-दिशामें शाला न हो तो उसको 'विशाल' कहा गया है। वह मनुष्योंके लिये कुलक्षयकारी होता है तथा उसमें सब प्रकारके रोगोंका भय बना रहता है। यदि पश्चिम-दिशामें कोई शाला न हो तो उस त्रिशाल-गृहको 'पक्षघ्न' कहते हैं। वह मित्र, भाई-बन्धु तथा पुत्रोंका मारक होता है और उसमें सब प्रकारके भय प्राप्त होते रहते हैं।

अब द्विशाल-घरका फल बताते हैं—दक्षिण-पश्चिम दिशाओंमें ही दो शालाएँ हों (और अन्य दो दिशाओंमें न हों) तो वह द्विशाल-गृह, धन-धान्यफलदायक, मानवोंके क्षेमकी वृद्धि करनेवाला तथा पुत्ररूप फल देनेवाला है। यदि केवल पश्चिम और उत्तर दिशाओंमें ही दो शालाएँ हों तो उस गृहको 'यमसूर्य' कहते हैं। वह राजा और अग्निका भय देनेवाला है तथा मनुष्योंके कुलका संहार करनेवाला होता है। यदि उत्तर और पूर्वमें ही दो शालाएँ हों तो उस गृहका नाम 'दण्ड' है। जहाँ 'दण्ड' हो, वहाँ अकाल-मृत्युका भय प्राप्त होता है तथा शत्रुओंकी ओरसे भी भयकी प्राप्ति होती है। पूर्व और दक्षिण दिशाओंमें ही शाला होनेसे जो द्विशाल-गृह निर्मित हुआ है, उसकी 'धन' या 'बात' संज्ञा है। वह शस्त्रभय तथा पराभव देनेवाला होता है। पूर्व-पश्चिममें दो शालाएँ हों तो उसकी 'चुल्ली' संज्ञा है। वह मृत्युकी सूचक है। वह गृह स्त्रियोंके लिये वैधव्यकारक तथा अनेक भयदायक है। उत्तर-दक्षिणमें ही दो शालाएँ हों तो वह भी मनुष्यके लिये भयदायक है। (द्रष्टव्य अध्याय २५४ के श्लोक सं० १ से १३ तक।)

* अपराजितपृच्छा (विश्वकर्म-शास्त्र ६४ वें सूत्र)-के अनुसार पूर्वादि दिशाओंमें प्रदक्षिणक्रमसे रहनेवाले ध्वज आदिका उल्लेख इस प्रकार मिलता है—

ध्वजो धूमश्च सिंहश्च श्वानो वृषखरौ गजः। ध्वाङ्क्षश्चेति समुद्दिष्टाः प्राच्यादिषु प्रदक्षिणाः॥

तथा पुत्रकी प्राप्ति—ये दक्षिण दिशाके आठ द्वारोंके फल हैं। आयु, संन्यास, सस्य, धन, शान्ति, अर्थनाश, शोषण, भोग एवं संतानकी प्राप्ति—ये पश्चिम द्वारके फल हैं। रोग, मद, आर्ति, मुख्यता, अर्थ, आयु, कृशता और मान—ये क्रमशः उत्तर दिशाके द्वारके फल हैं॥ ३४—३८॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'नगरगृह आदिकी वास्तु-प्रतिष्ठा-विधिका वर्णन' नामक एक सौ पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १०५॥

एक सौ छठा अध्याय

नगर आदिके वास्तुका वर्णन

भगवान् महेश्वर कहते हैं— कार्तिकेय! अब मैं राज्यादिकी अभिवृद्धिके लिये नगर-वास्तुका वर्णन करता हूँ। नगर-निर्माणके लिये एक योजन या आधी योजन भूमि ग्रहण करे। वास्तु-नगरका पूजन करके उसको प्राकारसे संयुक्त करे। ईशादि तीस पदोंमें सूर्यके सम्मुख पूर्वद्वार, गन्धर्वके समीप दक्षिणद्वार, वरुणके निकट पश्चिमद्वार और सोमके समीप उत्तरद्वार बनाना चाहिये। नगरमें चौड़े-चौड़े बाजार बनाने चाहिये। नगरद्वार छः हाथ चौड़ा बनाना चाहिये, जिससे हाथी आदि सुखपूर्वक आ-जा सकें। नगर छिन्नकर्ण, भग्न तथा अर्धचन्द्राकार नहीं होना चाहिये। वज्र-सूचीमुख नगर भी हितकर नहीं है। एक, दो या तीन द्वारोंसे युक्त धनुषाकार वज्रनागाभ नगरका निर्माण शान्तिप्रद है॥ १—५॥

नगरके आग्नेयकोणमें स्वर्णकारोंको बसावे, दक्षिण दिशामें नृत्योपजीविनी वाराङ्गनाओंके भवन हों। नैर्ऋत्यकोणमें नट, कुम्भकार तथा केवट आदिके आवास-स्थान होने चाहिये। पश्चिममें रथकार, आयुधकार और खड्ग-निर्माताओंका निवास हो। नगरके वायव्यकोणमें मद्य-विक्रेता, कर्मकार तथा भृत्योंका निवेश करे। उत्तर दिशामें ब्राह्मण, यति, सिद्ध और पुण्यात्मा पुरुषोंको बसावे। ईशानकोणमें फलादिका विक्रय करनेवाले एवं वणिग्-जन निवास करें। पूर्व दिशामें सेनाध्यक्ष रहें। आग्नेयकोणमें विविध सैन्य, दक्षिणमें स्त्रियोंको ललित कलाकी शिक्षा देनेवाले आचार्यों तथा नैर्ऋत्यकोणमें धनुर्धर सैनिकोंको रखे। पश्चिममें महामात्य, कोषपाल एवं कारीगरोंको, उत्तरमें दण्डाधिकारी, नायक तथा द्विजोंको; पूर्वमें क्षत्रियोंको, दक्षिणमें वैश्योंको, पश्चिममें शूद्रोंको, विभिन्न दिशाओंमें वैद्योंको और अश्वों तथा सेनाको चारों ओर रखे॥ ६—१२॥

राजा पूर्वमें गुप्तचरों, दक्षिणमें श्मशान, पश्चिममें गोधन और उत्तरमें कृषकोंका निवेश करे। म्लेच्छोंको दिक्कोणोंमें स्थान दे अथवा ग्रामोंमें स्थापित करे। पूर्वद्वारपर लक्ष्मी एवं कुबेरकी स्थापना करे। जो उन दोनोंका दर्शन करते है, उन्हें लक्ष्मी (सम्पत्ति)-की प्राप्ति होती है। पश्चिममें निर्मित देवमन्दिर पूर्वाभिमुख, पूर्व दिशामें स्थित पश्चिमाभिमुख तथा दक्षिण दिशाके मन्दिर उत्तराभिमुख होने चाहिये। नगरकी रक्षाके लिये इन्द्र और विष्णु आदि देवताओंके मन्दिर बनवावे। देवशून्य नगर, ग्राम, दुर्ग तथा गृह आदिका पिशाच उपभोग करते हैं और वह रोगसमूहसे परिभूत हो जाता है। उपर्युक्त विधिसे निर्मित नगर आदि सदा जयप्रद और भोग-मोक्ष प्रदान करनेवाले होते हैं॥ १३—१७॥

वास्तु-भूमिकी पूर्व दिशामें शृङ्गार-कक्ष, अग्निकोणमें पाकगृह (रसोईघर), दक्षिणमें शयनगृह,

नैर्ऋत्यकोणमें शस्त्रागार, पश्चिममें भोजनगृह, वायव्यकोणमें धान्य-संग्रह, उत्तर दिशामें धनागार तथा ईशानकोणमें देवगृह बनवाना चाहिये। नगरमें एकशाल, द्विशाल, त्रिशाल या चतु:शाल-गृहका निर्माण होना चाहिये। चतु:शाल-गृहके शाला और अलिन्द (प्राङ्गण)-के भेदसे दो सौ भेद होते हैं। उनमें भी चतु:शाल-गृहके पचपन, त्रिशाल-गृहके चार तथा द्विशालके पाँच भेद होते हैं॥ १८—२१॥

एकशाल-गृहके चार भेद हैं। अब मैं अलिन्दयुक्त गृहके विषयमें बतलाता हूँ, सुनिये। गृह-वास्तु तथा नगर-वास्तुमें अट्ठाईस अलिन्द होते हैं। चार तथा सात अलिन्दोंसे पचपन, छ: अलिन्दोंसे बीस तथा आठ अलिन्दोंसे भी बीस भेद होते हैं। इस प्रकार नगर आदिमें आठ अलिन्दोंसे युक्त वास्तु भी होता है॥ २२—२४॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'नगर आदिके वास्तुका वर्णन' नामक एक सौ छठा अध्याय पूरा हुआ॥ १०६॥

एक सौ सातवाँ अध्याय

भुवनकोष (पृथ्वी-द्वीप आदि)-का तथा स्वायम्भुव सर्गका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं भुवनकोष तथा पृथ्वी एवं द्वीप आदिके लक्षणोंका वर्णन करूँगा। आग्नीध्र, अग्निबाहु, वपुष्मान्, द्युतिमान्, मेधा, मेधातिथि, भव्य, सवन और क्षय—ये प्रियव्रतके पुत्र थे। उनका दसवाँ यथार्थनामा पुत्र ज्योतिष्मान् था। प्रियव्रतके ये पुत्र विश्वमें विख्यात थे। पिताने उनको सात द्वीप प्रदान किये। आग्नीध्रको जम्बूद्वीप एवं मेधातिथिको प्लक्षद्वीप दिया। वपुष्मान्को शाल्मलिद्वीप, ज्योतिष्मान्को कुशद्वीप, द्युतिमान्को क्रौञ्चद्वीप तथा भव्यको शाकद्वीपमें अभिषिक्त किया। सवनको पुष्करद्वीप प्रदान किया। (शेष तीनको कोई स्वतन्त्र द्वीप नहीं मिला।) आग्नीध्रने अपने पुत्रोंमें लाखों योजन विशाल जम्बूद्वीपको इस प्रकार विभाजित कर दिया। नाभिको हिमवर्ष (आधुनिक भारतवर्ष) प्रदान किया। किम्पुरुषको हेमकूटवर्ष, हरिवर्षको नैषधवर्ष, इलावृतको मध्यभागमें मेरुपर्वतसे युक्त इलावृतवर्ष, रम्यकको नीलाचलके आश्रित रम्यकवर्ष, हिरण्यवान्को श्वेतवर्ष एवं कुरुको उत्तरकुरुवर्ष दिया। उन्होंने भद्राश्वको भद्राश्ववर्ष तथा केतुमालको मेरुपर्वतके पश्चिममें स्थित केतुमालवर्षका शासन प्रदान किया। महाराज प्रियव्रत अपने पुत्रोंको उपर्युक्त द्वीपोंमें अभिषिक्त करके वनमें चले गये। वे नरेश शालग्रामक्षेत्रमें तपस्या करके विष्णुलोकको प्राप्त हुए॥ १—८॥

मुनिश्रेष्ठ! किम्पुरुषादि जो आठ वर्ष हैं, उनमें सुखकी बहुलता है और बिना यत्नके स्वभावसे ही समस्त भोग-सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। उनमें जरा-मृत्यु आदिका कोई भय नहीं है और न धर्म-अधर्म अथवा उत्तम, मध्यम और अधम आदिका ही भेद है। वहाँ सब समान हैं। वहाँ कभी युग-परिवर्तन भी नहीं होता। हिमवर्षके शासक नाभिके मेरु देवीसे ऋषभदेव पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए। ऋषभके पुत्र भरत हुए। ऋषभदेवने भरतपर राज्यलक्ष्मीका भार छोड़कर शालग्रामक्षेत्रमें श्रीहरिकी शरण ग्रहण की। भरतके नामसे 'भारतवर्ष' प्रसिद्ध है। भरतसे सुमति हुए। भरतने सुमतिको राज्यलक्ष्मी देकर शालग्रामक्षेत्रमें श्रीहरिकी शरण ली। उन योगिराजने योगाभ्यासमें तत्पर होकर प्राणोंका परित्याग किया। इनका वह

चरित्र तुमसे मैं फिर कहूँगा॥ ९—१२ $\frac{1}{2}$ ॥

तदनन्तर सुमतिके वीर्यसे इन्द्रद्युम्नका जन्म हुआ। उससे परमेष्ठी और परमेष्ठीका पुत्र प्रतीहार हुआ। प्रतीहारके प्रतिहर्ता, प्रतिहर्ताके भव, भवके उद्‌गीथ, उद्‌गीथके प्रस्तार तथा प्रस्तारके विभु नामक पुत्र हुआ। विभुका पृथु, पृथुका नक्त एवं नक्तका पुत्र गय हुआ। गयके नर नामक पुत्र और नरके विराट् नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। विराट्का पुत्र महावीर्य था। उससे धीमान्का जन्म हुआ तथा धीमान्का पुत्र महान्त और उसका पुत्र मनस्यु हुआ। मनस्युका पुत्र त्वष्टा, त्वष्टाका विरज और विरजका पुत्र रज हुआ। मुने! रजके पुत्र शतजित्के सौ पुत्र उत्पन्न हुए, उनमें विश्वज्योति मुख्य था। उनसे भारतवर्षकी अभिवृद्धि हुई। कृत-त्रेतादि युगक्रमसे यह स्वायम्भुव-मनुका वंश माना गया है॥ १३—१९॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'भुवनकोष तथा पृथ्वी एवं द्वीप आदिके लक्षणका वर्णन' नामक एक सौ सातवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १०७॥

एक सौ आठवाँ अध्याय

भुवनकोश-वर्णनके प्रसंगमें भूमण्डलके द्वीप आदिका परिचय

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! जम्बू, प्लक्ष, महान् शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक और सातवाँ पुष्कर—ये सातों द्वीप चारों ओरसे खारे जल, इक्षुरस, मदिरा, घृत, दधि, दुग्ध और मीठे जलके सात समुद्रोंसे घिरे हुए हैं। जम्बूद्वीप उन सब द्वीपोंके मध्यमें स्थित है और उसके भी बीचों-बीचमें मेरुपर्वत सीना ताने खड़ा है। उसका विस्तार चौरासी हजार योजन है और यह पर्वतराज सोलह हजार योजन पृथिवीमें घुसा हुआ है। ऊपरी भागमें इसका विस्तार बत्तीस हजार योजन है। नीचेकी गहराईमें इसका विस्तार सोलह हजार योजन है। इस प्रकार यह पर्वत इस पृथिवीरूप कमलकी कर्णिकाके समान स्थित है। इसके दक्षिणमें हिमवान्, हेमकूट और निषध तथा उत्तरमें नील, श्वेत और शृङ्गी नामक वर्षपर्वत हैं। उनके बीचके दो पर्वत (निषध और नील) एक-एक लाख योजनतक फैले हुए हैं। दूसरे पर्वत उनसे दस-दस हजार योजन कम हैं। वे सभी दो-दो सहस्र योजन ऊँचे और इतने ही चौड़े हैं॥ १—६॥

द्विजश्रेष्ठ! मेरुपर्वतके दक्षिणकी ओर पहला वर्ष भारतवर्ष है तथा दूसरा किम्पुरुषवर्ष और तीसरा हरिवर्ष माना गया है। उत्तरकी ओर रम्यक, हिरण्मय और उत्तरकुरुवर्ष है, जो भारतवर्षके ही समान है। मुनिप्रवर! इनमेंसे प्रत्येकका विस्तार नौ-नौ हजार योजन है तथा इन सबके बीचमें इलावृतवर्ष है, जिसमें सुवर्णमय सुमेरु पर्वत खड़ा है। महाभाग! इलावृतवर्ष सुमेरुके चारों ओर नौ-नौ हजार योजनतक फैला हुआ है। इसके चारों ओर चार पर्वत हैं। ये चारों पर्वत मानो सुमेरुको धारण करनेवाले ईश्वरनिर्मित आधारस्तम्भ हों। इनमेंसे मन्दराचल पूर्वमें, गन्धमादन दक्षिणमें, विपुल पश्चिम पार्श्वमें और सुपार्श्व उत्तरमें है। ये सभी पर्वत दस-दस हजार योजन विस्तृत हैं। इन पर्वतोंपर ग्यारह-ग्यारह सौ योजन विस्तृत कदम्ब, जम्बू, पीपल और वटके वृक्ष हैं, जो इन पर्वतोंकी पताकाओंके समान प्रतीत होते हैं। इनमेंसे जम्बूवृक्ष ही जम्बूद्वीपके नामका कारण है। उस जम्बूवृक्षके फल हाथीके समान विशाल और मोटे होते हैं।

इसके रससे जम्बूनदी प्रवाहित होती है। इसीसे परम उत्तम जाम्बूनद-सुवर्णका प्रादुर्भाव होता है। मेरुके पूर्वमें भद्राश्ववर्ष और पश्चिममें केतुमाल वर्ष है। इसी प्रकार उसके पूर्वकी ओर चैत्ररथ, दक्षिणकी ओर गन्धमादन, पश्चिमकी ओर वैभ्राज और उत्तरकी ओर नन्दन नामक वन है। इसी तरह पूर्व आदि दिशाओंमें अरुणोद, महाभद्र, शीतोद और मानस—ये चार सरोवर हैं। सिताम्भ तथा चक्रमुञ्ज आदि (भूपद्मकी कर्णिकारूप) मेरुके पूर्व-दिशावर्ती केसर-स्थानीय अचल हैं। दक्षिणमें त्रिकूट आदि, पश्चिममें शिखिवास-प्रभृति और उत्तर दिशामें शङ्खकूट आदि इसके केसराचल हैं। सुमेरु पर्वतके ऊपर ब्रह्माजीकी पुरी है। उसका विस्तार चौदह हजार योजन है। ब्रह्मपुरीके चारों ओर सभी दिशाओंमें इन्द्रादि लोकपालोंके नगर हैं। इसी ब्रह्मपुरीसे श्रीविष्णुके चरणकमलसे निकली हुई गङ्गानदी चन्द्रमण्डलको आप्लावित करती हुई स्वर्गलोकसे नीचे उतरती हैं। पूर्वमें शीता (अथवा सीता) नदी भद्राश्वपर्वतसे निकलकर एक पर्वतसे दूसरे पर्वतपर जाती हुई समुद्रमें मिल जाती है। इसी प्रकार अलकनन्दा भी दक्षिण दिशाकी ओर भारतवर्षमें आती है और सात भागोंमें विभक्त होकर समुद्रमें मिल जाती है॥ ७—२०॥

चक्षु पश्चिम समुद्रमें तथा भद्रा उत्तरकुरुवर्षको पार करती हुई समुद्रमें जा गिरती है। माल्यवान् और गन्धमादन पर्वत उत्तर तथा दक्षिणकी ओर नीलाचल एवं निषध पर्वततक फैले हुए हैं। उन दोनोंके बीचमें कर्णिकाकार मेरुपर्वत स्थित है। मर्यादापर्वतोंके बहिर्भागमें स्थित भारत, केतुमाल, भद्राश्व और उत्तरकुरुवर्ष—इस लोकपद्मके दल हैं। जठर और देवकूट—ये दोनों मर्यादापर्वत हैं। ये उत्तर और दक्षिणकी ओर नील तथा निषध पर्वततक फैले हुए हैं। पूर्व और पश्चिमकी ओर विस्तृत गन्धमादन एवं कैलास—ये दो पर्वत अस्सी हजार योजन विस्तृत हैं। पूर्वके समान मेरुके पश्चिमकी ओर भी निषध और पारियात्र नामक दो मर्यादापर्वत हैं, जो अपने मूलभागसे समुद्रके भीतरतक प्रविष्ट हैं॥ २१—२५॥

उत्तरकी ओर त्रिशृङ्ग और रुधिर नामक वर्षपर्वत हैं। ये दोनों पूर्व और पश्चिमकी ओर समुद्रके गर्भमें व्यवस्थित हैं। इस प्रकार जठर आदि मर्यादापर्वत मेरुके चारों ओर सुशोभित होते हैं। ऋषिप्रवर! केसरपर्वतोंके मध्यमें जो श्रेणियाँ हैं, उनमें लक्ष्मी, विष्णु, अग्नि तथा सूर्य आदि देवताओंके नगर हैं। ये भौम होते हुए भी स्वर्गके समान हैं। इनमें पापात्मा पुरुषोंका प्रवेश नहीं हो पाता॥ २६—२८ $^{१}/_{२}$॥

श्रीविष्णुभगवान् भद्राश्ववर्षमें हयग्रीवरूपसे, केतुमालवर्षमें वराहरूपसे, भारतवर्षमें कूर्मरूपसे तथा उत्तरकुरुवर्षमें मत्स्यरूपसे निवास करते हैं। भगवान् श्रीहरि विश्वरूपसे सर्वत्र पूजित होते हैं। किम्पुरुष आदि आठ वर्षोंमें क्षुधा, भय तथा शोक आदि कुछ भी नहीं है। उनमें प्रजाजन चौबीस हजार वर्षतक रोग-शोकरहित होकर जीवन व्यतीत करते हैं। उनमें कृत-त्रेतादि युगोंकी कल्पना नहीं होती; न उनमें कभी वर्षा ही होती है। उनमें केवल पार्थिव-जल रहता है। इन सभी वर्षोंमें सात-सात कुलाचल पर्वत हैं और उनसे निकली हुई सैकड़ों तीर्थरूपा नदियाँ हैं। अब मैं भारतवर्षमें जो तीर्थ हैं, उनका तुम्हारे सम्मुख वर्णन करता हूँ॥ २९—३३॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'भुवनकोशका वर्णन' नामक एक सौ आठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १०८॥

एक सौ नौवाँ अध्याय

तीर्थ-माहात्म्य

अग्निदेव कहते हैं— अब मैं सब तीर्थोंका माहात्म्य बताऊँगा, जो भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है। जिसके हाथ, पैर और मन भलीभाँति संयममें रहें तथा जिसमें विद्या, तपस्या और उत्तम कीर्ति हो, वही तीर्थके पूर्ण फलका भागी होता है। जो प्रतिग्रह छोड़ चुका है, नियमित भोजन करता और इन्द्रियोंको काबूमें रखता है, वह पापरहित तीर्थयात्री सब यज्ञोंका फल पाता है। जिसने कभी तीन राततक उपवास नहीं किया; तीर्थोंकी यात्रा नहीं की और सुवर्ण एवं गौका दान नहीं किया, वह दरिद्र होता है। यज्ञसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, वही तीर्थ-सेवनसे भी मिलता है*॥ १—४॥

ब्रह्मन्! पुष्कर श्रेष्ठ तीर्थ है। वहाँ तीनों संध्याओंके समय दस हजार कोटि तीर्थोंका निवास रहता है। पुष्करमें सम्पूर्ण देवताओंके साथ ब्रह्माजी निवास करते हैं। सब कुछ चाहनेवाले मुनि और देवता वहाँ स्नान करके सिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। पुष्करमें देवताओं और पितरोंकी पूजा करनेवाले मनुष्य अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त करके ब्रह्मलोकमें जाते हैं। जो कार्तिककी पूर्णिमाको वहाँ अन्नदान करता है, वह शुद्धचित्त होकर ब्रह्मलोकका भागी होता है। पुष्करमें जाना दुष्कर है, पुष्करमें तपस्याका सुयोग मिलना दुष्कर है, पुष्करमें दानका अवसर प्राप्त होना भी दुष्कर है और वहाँ निवासका सौभाग्य होना तो अत्यन्त ही दुष्कर है। वहाँ निवास, जप और श्राद्ध करनेसे मनुष्य अपनी सौ पीढ़ियोंका उद्धार करता है। वहीं जम्बूमार्ग तथा तण्डुलिकाश्रम तीर्थ भी हैं॥ ५—९॥

(अब अन्य तीर्थोंके विषयमें सुनो—) कण्वाश्रम, कोटितीर्थ, नर्मदा और अर्बुद (आबू) भी उत्तम तीर्थ हैं। चर्मण्वती (चम्बल), सिन्धु, सोमनाथ, प्रभास, सरस्वती-समुद्र-संगम तथा सागर भी श्रेष्ठ तीर्थ हैं। पिण्डारक क्षेत्र, द्वारका और गोमती—ये सब प्रकारकी सिद्धि देनेवाले तीर्थ हैं। भूमितीर्थ, ब्रह्मतुङ्गतीर्थ और पञ्चनद (सतलज आदि पाँचों नदियाँ) भी उत्तम हैं। भीमतीर्थ, गिरीन्द्रतीर्थ, पापनाशिनी देविका नदी, पवित्र विनशनतीर्थ (कुरुक्षेत्र), नागोद्भेद, अघार्दन तथा कुमारकोटि तीर्थ—ये सब कुछ देनेवाले बताये गये हैं। 'मैं कुरुक्षेत्र जाऊँगा, कुरुक्षेत्रमें निवास करूँगा' जो सदा ऐसा कहता है, वह शुद्ध हो जाता है और उसे स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है। वहाँ विष्णु आदि देवता रहते हैं। वहाँ निवास करनेसे मनुष्य श्रीहरिके धाममें जाता है। कुरुक्षेत्रमें समीप ही सरस्वती बहती हैं। उसमें स्नान करनेवाला मनुष्य ब्रह्मलोकका भागी होता है। कुरुक्षेत्रकी धूलि भी परम गतिकी प्राप्ति कराती है। धर्मतीर्थ, सुवर्णतीर्थ, परम उत्तम गङ्गाद्वार (हरिद्वार), पवित्र तीर्थ कनखल, भद्रकर्ण-ह्रद, गङ्गा-सरस्वती-संगम और ब्रह्मावर्त—ये पापनाशक तीर्थ हैं॥ १०—१७॥

भृगुतुङ्ग, कुब्जाम्र तथा गङ्गोद्भेद—ये भी पापोंको दूर करनेवाले हैं। वाराणसी (काशी)

---

* ....। यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्॥
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते। प्रतिग्रहादुपावृत्तो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः॥
निष्पापस्तीर्थयात्री तु सर्वयज्ञफलं लभेत्। अनुपोष्य त्रिरात्राणि तीर्थान्यनभिगम्य च॥
अदत्त्वा काञ्चनं गाश्च दरिद्रो नाम जायते। तीर्थाभिगमने तत्स्याद्यद्यज्ञेनाऽऽप्यते फलम्॥
(अग्नि० १०९। १—४)

सर्वोत्तम तीर्थ है। उसे श्रेष्ठ अविमुक्त-क्षेत्र भी कहते हैं। कपाल-मोचनतीर्थ भी उत्तम है, प्रयाग तो सब तीर्थोंका राजा ही है। गोमती और गङ्गाका संगम भी पावन तीर्थ है। गङ्गाजी कहीं भी क्यों न हों, सर्वत्र स्वर्गलोककी प्राप्ति करानेवाली हैं। राजगृह पवित्र तीर्थ है। शालग्राम तीर्थ पापोंका नाश करनेवाला है। वटेश, वामन तथा कालिका-संगम तीर्थ भी उत्तम हैं॥ १८—२०॥

लौहित्य-तीर्थ, करतोया नदी, शोणभद्र तथा ऋषभतीर्थ भी श्रेष्ठ हैं। श्रीपर्वत, कोलाचल, सह्यगिरि, मलयगिरि, गोदावरी, तुङ्गभद्रा, वरदायिनी कावेरी नदी, तापी, पयोष्णी, रेवा (नर्मदा) और दण्डकारण्य भी उत्तम तीर्थ हैं। कालंजर, मुञ्जवट, शूर्पारक, मन्दाकिनी, चित्रकूट और शृङ्गवेरपुर श्रेष्ठ तीर्थ हैं। अवन्ती भी उत्तम तीर्थ है। अयोध्या सब पापोंका नाश करनेवाली है। नैमिषारण्य परम पवित्र तीर्थ है। वह भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है॥ २१—२४॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'तीर्थमाहात्म्य-वर्णन' नामक एक सौ नौवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १०९॥

एक सौ दसवाँ अध्याय

गङ्गाजीकी महिमा

अग्निदेव कहते हैं— अब गङ्गाका माहात्म्य बतलाता हूँ। गङ्गाका सदा सेवन करना चाहिये। वह भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली हैं। जिनके बीचसे गङ्गा बहती हैं, वे सभी देश श्रेष्ठ तथा पावन हैं। उत्तम गतिकी खोज करनेवाले प्राणियोंके लिये गङ्गा ही सर्वोत्तम गति है। गङ्गाका सेवन करनेपर वह माता और पिता—दोनोंके कुलोंका उद्धार करती है। एक हजार चान्द्रायण-व्रतकी अपेक्षा गङ्गाजीके जलका पीना उत्तम है। एक मास गङ्गाजीका सेवन करनेवाला मनुष्य सब यज्ञोंका फल पाता है॥ १—३॥

गङ्गादेवी सब पापोंको दूर करनेवाली तथा स्वर्गलोक देनेवाली हैं। गङ्गाके जलमें जबतक हड्डी पड़ी रहती है, तबतक वह जीव स्वर्गमें निवास करता है। अंधे आदि भी गङ्गाजीका सेवन करके देवताओंके समान हो जाते हैं। गङ्गा-तीर्थसे निकली हुई मिट्टी धारण करनेवाला मनुष्य सूर्यके समान पापोंका नाशक होता है। जो मानव गङ्गाका दर्शन, स्पर्श, जलपान अथवा 'गङ्गा' इस नामका कीर्तन करता है, वह अपनी सैकड़ों-हजारों पीढ़ियोंके पुरुषोंको पवित्र कर देता है॥ ४—६॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'गङ्गाजीकी महिमा' नामक एक सौ दसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११०॥

एक सौ ग्यारहवाँ अध्याय

प्रयाग-माहात्म्य

अग्निदेव कहते हैं— ब्रह्मन्! अब मैं प्रयागका माहात्म्य बताता हूँ, जो भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला तथा उत्तम है। प्रयागमें ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता तथा बड़े-बड़े मुनिवर निवास करते हैं। नदियाँ, समुद्र, सिद्ध, गन्धर्व तथा अप्सराएँ भी उस तीर्थमें वास करती हैं। प्रयागमें तीन

अग्निकुण्ड हैं। उनके बीचमें गङ्गा सब तीर्थोंको साथ लिये बड़े वेगसे बहती हैं। वहाँ त्रिभुवन-विख्यात सूर्यकन्या यमुना भी हैं। गङ्गा और यमुनाका मध्यभाग पृथ्वीका 'जघन' माना गया है और प्रयागको ऋषियोंने जघनके बीचका 'उपस्थ भाग' बताया है॥ १—४॥

प्रतिष्ठान (झूसी) सहित प्रयाग, कम्बल और अश्वतर नाग तथा भोगवती तीर्थ—ये ब्रह्माजीके यज्ञकी वेदी कहे गये हैं। प्रयागमें वेद और यज्ञ मूर्तिमान् होकर रहते हैं। उस तीर्थके स्तवन और नाम-कीर्तनसे तथा वहाँकी मिट्टीका स्पर्श करनेमात्रसे भी मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। प्रयागमें गङ्गा और यमुनाके संगमपर किये हुए दान, श्राद्ध और जप आदि अक्षय होते हैं॥ ५—७॥

ब्रह्मन्! वेद अथवा लोक—किसीके कहनेसे भी अन्तमें प्रयागतीर्थके भीतर मरनेका विचार नहीं छोड़ना चाहिये। प्रयागमें साठ करोड़, दस हजार तीर्थोंका निवास है; अत: वह सबसे श्रेष्ठ है। वासुकि नागका स्थान, भोगवती तीर्थ और हंसप्रपतन—ये उत्तम तीर्थ हैं। कोटि गोदानसे जो फल मिलता है, वही इनमें तीन दिनोंतक स्नान करनेमात्रसे प्राप्त हो जाता है। प्रयागमें माघमासमें मनीषी पुरुष ऐसा कहते हैं कि 'गङ्गा सर्वत्र सुलभ हैं; किंतु गङ्गाद्वार, प्रयाग और गङ्गा-सागर-संगम—इन तीन स्थानोंमें उनका मिलना बहुत कठिन है।' प्रयागमें दान देनेसे मनुष्य स्वर्गमें जाता है और इस लोकमें आनेपर राजाओंका भी राजा होता है॥ ८—१२॥

अक्षयवटके मूलके समीप और संगम आदिमें मृत्युको प्राप्त हुआ मनुष्य भगवान् विष्णुके धाममें जाता है। प्रयागमें परम रमणीय उर्वशी-पुलिन, संध्यावट, कोटितीर्थ, दशाश्वमेध घाट, गङ्गा-यमुनाका उत्तम संगम, रजोहीन मानसतीर्थ तथा वासरक तीर्थ—ये सभी परम उत्तम हैं॥ १३-१४॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'प्रयाग-माहात्म्य-वर्णन' नामक एक सौ ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १११॥

एक सौ बारहवाँ अध्याय

वाराणसीका माहात्म्य

अग्निदेव कहते हैं—वाराणसी परम उत्तम तीर्थ है। जो वहाँ श्रीहरिका नाम लेते हुए निवास करते हैं, उन सबको वह भोग और मोक्ष प्रदान करता है। महादेवजीने पार्वतीसे उसका माहात्म्य इस प्रकार बतलाया है॥ १॥

महादेवजी बोले—गौरि! इस क्षेत्रको मैंने कभी मुक्त नहीं किया—सदा ही वहाँ निवास किया है, इसलिये यह 'अविमुक्त' कहलाता है। अविमुक्त-क्षेत्रमें किया हुआ जप, तप, होम और दान अक्षय होता है। पत्थरसे दोनों पैर तोड़कर बैठ रहे, परंतु काशी कभी न छोड़े। हरिश्चन्द्र, आम्रातकेश्वर, जप्येश्वर, श्रीपर्वत, महालय, भृगु, चण्डेश्वर और केदारतीर्थ—ये आठ अविमुक्त-क्षेत्रमें परम गोपनीय तीर्थ हैं। मेरा अविमुक्त-क्षेत्र सब गोपनीयोंमें भी परम गोपनीय है। वह दो योजन लंबा और आधा योजन चौड़ा है। 'वरणा' और 'नासी' (असी)—इन दो नदियोंके बीचमें 'वाराणसीपुरी' है। इसमें स्नान, जप, होम, मृत्यु, देवपूजन, श्राद्ध, दान और निवास—जो कुछ होता है, वह सब भोग एवं मोक्ष प्रदान करता है॥ २—७॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'वाराणसी-माहात्म्यवर्णन' नामक एक सौ बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११२॥

एक सौ तेरहवाँ अध्याय

नर्मदा-माहात्म्य

अग्निदेव कहते हैं— अब मैं नर्मदा आदिका माहात्म्य बताऊँगा। नर्मदा श्रेष्ठ तीर्थ है। गङ्गाका जल स्पर्श करनेपर मनुष्यको तत्काल पवित्र करता है, किंतु नर्मदाका जल दर्शनमात्रसे ही पवित्र कर देता है। नर्मदातीर्थ सौ योजन लंबा और दो योजन चौड़ा है। अमरकण्टक पर्वतके चारों ओर नर्मदा-सम्बन्धी साठ करोड़, साठ हजार तीर्थ हैं। कावेरी-संगमतीर्थ बहुत पवित्र है। अब श्रीपर्वतका वर्णन सुनो—॥ १—३ ॥

एक समय गौरीने श्रीदेवीका रूप धारण करके भारी तपस्या की। इससे प्रसन्न होकर श्रीहरिने उन्हें वरदान देते हुए कहा—"देवि! तुम्हें अध्यात्म-ज्ञान प्राप्त होगा और तुम्हारा यह पर्वत 'श्रीपर्वत'के नामसे विख्यात होगा। इसके चारों ओर सौ योजनतकका स्थान अत्यन्त पवित्र होगा।" यहाँ किया हुआ दान, तप, जप तथा श्राद्ध सब अक्षय होता है। यह उत्तम तीर्थ सब कुछ देनेवाला है। यहाँकी मृत्यु शिवलोककी प्राप्ति करानेवाली है। इस पर्वतपर भगवान् शिव सदा पार्वतीदेवीके साथ क्रीड़ा करते हैं तथा हिरण्यकशिपु यहीं तपस्या करके अत्यन्त बलवान् हुआ था। मुनियोंने भी यहाँ तपस्यासे सिद्धि प्राप्त की है॥ ४—७ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'नर्मदा-माहात्म्य-वर्णन' नामक एक सौ तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११३ ॥

एक सौ चौदहवाँ अध्याय

गया-माहात्म्य

अग्निदेव कहते हैं— अब मैं गयाके माहात्म्यका वर्णन करूँगा। गया श्रेष्ठ तीर्थोंमें सर्वोत्तम है। एक समयकी बात है—गय नामक असुरने बड़ी भारी तपस्या आरम्भ की। उससे देवता संतप्त हो उठे और उन्होंने क्षीरसागरशायी भगवान् विष्णुके समीप जाकर कहा—'भगवन्! आप गयासुरसे हमारी रक्षा कीजिये।' 'तथास्तु' कहकर श्रीहरि गयासुरके पास गये और उससे बोले—'कोई वर माँगो।' दैत्य बोला—'भगवन्! मैं सब तीर्थोंसे अधिक पवित्र हो जाऊँ।' भगवान्ने कहा—'ऐसा ही होगा।'—यों कहकर भगवान् चले गये। फिर तो सभी मनुष्य उस दैत्यका दर्शन करके भगवान्के समीप जा पहुँचे। पृथ्वी सूनी हो गयी। स्वर्गवासी देवता और ब्रह्मा आदि प्रधान देवता श्रीहरिके निकट जाकर बोले—'देव! श्रीहरि! पृथ्वी और स्वर्ग सूने हो गये। दैत्यके दर्शनमात्रसे सब लोग आपके धाममें चले गये हैं।' यह सुनकर श्रीहरिने ब्रह्माजीसे कहा—'तुम सम्पूर्ण देवताओंके साथ गयासुरके पास जाओ और यज्ञभूमि बनानेके लिये उसका शरीर माँगो।' भगवान्का यह आदेश सुनकर देवताओंसहित ब्रह्माजी गयासुरके समीप जाकर उससे बोले—'दैत्यप्रवर! मैं तुम्हारे द्वारपर अतिथि होकर आया हूँ और तुम्हारे पावन शरीरको यज्ञके लिये माँग रहा हूँ'॥ १—६ ॥

'तथास्तु' कहकर गयासुर धरतीपर लेट गया। ब्रह्माजीने उसके मस्तकपर यज्ञ आरम्भ किया। जब पूर्णाहुतिका समय आया, तब गयासुरका

शरीर चञ्चल हो उठा। यह देख प्रभु ब्रह्माजीने पुनः भगवान् विष्णुसे कहा—'देव! गयासुर पूर्णाहुतिके समय विचलित हो रहा है।' तब श्रीविष्णुने धर्मको बुलाकर कहा—'तुम इस असुरके शरीरपर देवमयी शिला रख दो और सम्पूर्ण देवता उस शिलापर बैठ जायँ। देवताओंके साथ मेरी गदाधरमूर्ति भी इसपर विराजमान होगी।' यह सुनकर धर्मने देवमयी विशाल शिला उस दैत्यके शरीरपर रख दी। (शिलाका परिचय इस प्रकार है—) धर्मसे उनकी पत्नी धर्मवतीके गर्भसे एक कन्या उत्पन्न हुई थी, जिसका नाम 'धर्मव्रता' था। वह बड़ी तपस्विनी थी। ब्रह्माके पुत्र महर्षि मरीचिने उसके साथ विवाह किया। जैसे भगवान् विष्णु श्रीलक्ष्मीजीके साथ और भगवान् शिव श्रीपार्वतीजीके साथ विहार करते हैं, उसी प्रकार महर्षि मरीचि धर्मव्रताके साथ रमण करने लगे॥ ७—११॥

एक दिनकी बात है। महर्षि जंगलसे कुशा और पुष्प आदि ले आकर बहुत थक गये थे। उन्होंने भोजन करके धर्मव्रतासे कहा—'प्रिये! मेरे पैर दबाओ।' 'बहुत अच्छा' कहकर प्रिया धर्मव्रता थके-माँदे मुनिके चरण दबाने लगी। मुनि सो गये; इतनेमें ही वहाँ ब्रह्माजी आ गये। धर्मव्रताने सोचा—'मैं ब्रह्माजीका पूजन करूँ या अभी मुनिकी चरण-सेवामें ही लगी रहूँ। ब्रह्माजी गुरुके भी गुरु हैं—मेरे पतिके भी पूज्य हैं; अतः इनका पूजन करना ही उचित है।' ऐसा विचारकर वह पूजन-सामग्रियोंसे ब्रह्माजीकी पूजामें लग गयी। नींद टूटनेपर जब मरीचि मुनिने धर्मव्रताको अपने समीप नहीं देखा, तब आज्ञा-उल्लङ्घनके अपराधसे उसे शाप देते हुए कहा—'तू शिला हो जायगी।' यह सुनकर धर्मव्रता कुपित हो उनसे बोली—'मुने! चरण-सेवा छोड़कर मैंने आपके पूज्य पिताकी पूजा की है, अतः मैं सर्वथा निर्दोष हूँ; ऐसी दशामें भी आपने मुझे शाप दिया है, अतः आपको भी भगवान् शिवसे शापकी प्राप्ति होगी।' यों कहकर धर्मव्रताने शापको पृथक् रख दिया और स्वयं अग्निमें प्रवेश करके वह हजारों वर्षोंतक कठोर तपस्यामें संलग्न रही। इससे प्रसन्न होकर श्रीविष्णु आदि देवताओंने कहा—'वर माँगो।' धर्मव्रता देवताओंसे बोली—'आपलोग मेरे शापको दूर कर दें'॥ १२—१८॥

देवताओंने कहा—शुभे! महर्षि मरीचिका दिया हुआ शाप अन्यथा नहीं होगा। तुम देवताओंके चरण-चिह्नसे अङ्कित परमपवित्र शिला होओगी। गयासुरके शरीरको स्थिर रखनेके लिये तुम्हें शिलाका स्वरूप धारण करना होगा। उस समय तुम देवव्रता, देवशिला, सर्वदेवस्वरूपा, सर्वतीर्थमयी तथा पुण्यशिला कहलाओगी॥ १९-२०॥

देवव्रता बोली—देवताओ! यदि आपलोग मुझपर प्रसन्न हों तो शिला होनेके बाद मेरे ऊपर ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र आदि देवता और गौरी-लक्ष्मी आदि देवियाँ सदा विराजमान रहें॥ २१॥

अग्निदेव कहते हैं—देवव्रताकी बात सुनकर सब देवता 'तथास्तु' कहकर स्वर्गको चले गये। उस देवमयी शिलाको ही धर्मने गयासुरके शरीरपर रखा। परंतु वह शिलाके साथ ही हिलने लगा। यह देख रुद्र आदि देवता भी उस शिलापर जा बैठे। अब वह देवताओंको साथ लिये हिलने-डोलने लगा। तब देवताओंने क्षीरसागरशायी भगवान् विष्णुको प्रसन्न किया। श्रीहरिने उनको अपनी गदाधरमूर्ति प्रदान की और कहा—'देवगण! आपलोग चलिये; इस देवगम्य मूर्तिके द्वारा मैं स्वयं ही वहाँ उपस्थित होऊँगा।' इस प्रकार उस दैत्यके शरीरको स्थिर रखनेके लिये व्यक्ताव्यक्त उभयस्वरूप साक्षात् गदाधारी भगवान् विष्णु वहाँ स्थित हुए। वे आदि-गदाधरके नामसे उस तीर्थमें विराजमान



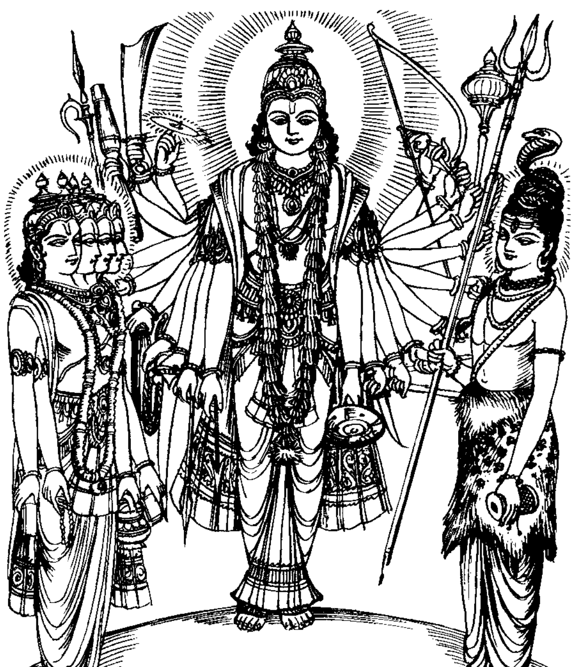
भगवान् ब्रह्मा [अग्नि० अ० ४९]



अष्टभुज विष्णु [अग्नि० अ० ४९]



त्रैलोक्यमोहन श्रीहरि [अग्नि० अ० ४९]



विश्वरूप विष्णु [अग्नि० अ० ४९]

हैं॥ २२—२५॥

पूर्वकालमें 'गद' नामसे प्रसिद्ध एक भयंकर असुर था। उसे श्रीविष्णुने मारा और उसकी हड्डियोंसे विश्वकर्माने गदाका निर्माण किया। वही 'आदि-गदा' है। उस आदि-गदाके द्वारा भगवान् गदाधरने 'हेति' आदि राक्षसोंका वध किया था, इसलिये वे 'आदि-गदाधर' कहलाये। पूर्वोक्त देवमयी शिलापर आदि-गदाधरके स्थित होनेपर गयासुर स्थिर हो गया; तब ब्रह्माजीने पूर्णाहुति दी। तदनन्तर गयासुरने देवताओंसे कहा—'किसलिये मेरे साथ वञ्चना की गयी है? क्या मैं भगवान् विष्णुके कहनेमात्रसे स्थिर नहीं हो सकता था? देवताओ! यदि आपने मुझे शिला आदिके द्वारा दबा रखा है, तो आपको मुझे वरदान देना चाहिये'॥ २६—३०॥

देवता बोले—'दैत्यप्रवर! तीर्थ-निर्माणके लिये हमने तुम्हारे शरीरको स्थिर किया है; अतः यह तुम्हारा क्षेत्र भगवान् विष्णु, शिव तथा ब्रह्माजीका निवास-स्थान होगा। सब तीर्थोंसे बढ़कर इसकी प्रसिद्धि होगी तथा पितर आदिके लिये यह क्षेत्र ब्रह्मलोक प्रदान करनेवाला होगा।'—यों कहकर सब देवता वहीं रहने लगे। देवियों और तीर्थ आदिने भी उसे अपना निवास-स्थान बनाया। ब्रह्माजीने यज्ञ पूर्ण करके उस समय ऋत्विजोंको दक्षिणाएँ दीं। पाँच कोसका गया-क्षेत्र और पचपन गाँव अर्पित किये। यही नहीं, उन्होंने सोनेके अनेक पर्वत बनाकर दिये। दूध और मधुकी धारा बहानेवाली नदियाँ समर्पित कीं। दही और घीके सरोवर प्रदान किये। अन्न आदिके बहुत-से पहाड़, कामधेनु गाय, कल्पवृक्ष तथा सोने-चाँदीके घर भी दिये। भगवान् ब्रह्माने ये सब वस्तुएँ देते समय ब्राह्मणोंसे कहा—'विप्रवरो! अब तुम मेरी अपेक्षा अल्प-शक्ति रखनेवाले अन्य व्यक्तियोंसे कभी याचना न करना।' यों कहकर उन्होंने वे सब वस्तुएँ उन्हें अर्पित कर दीं॥ ३१—३५॥

तत्पश्चात् धर्मने यज्ञ किया। उस यज्ञमें लोभवश धन आदिका दान लेकर जब वे ब्राह्मण पुनः गयामें स्थित हुए, तब ब्रह्माजीने उन्हें शाप दिया—'अब तुमलोग विद्याविहीन और लोभी हो जाओगे। इन नदियोंमें अब दूध आदिका अभाव हो जायगा और ये सुवर्ण-शैल भी पत्थर मात्र रह जायँगे।' तब ब्राह्मणोंने ब्रह्माजीसे कहा—'भगवन्! आपके शापसे हमारा सब कुछ नष्ट हो गया। अब हमारी जीविकाके लिये कृपा कीजिये।' यह सुनकर वे ब्राह्मणोंसे बोले—'अब इस तीर्थसे ही तुम्हारी जीविका चलेगी। जबतक सूर्य और चन्द्रमा रहेंगे, तबतक इसी वृत्तिसे तुम जीवननिर्वाह करोगे। जो लोग गया-तीर्थमें आयेंगे, वे तुम्हारी पूजा करेंगे। जो हव्य, कव्य, धन और श्राद्ध आदिके द्वारा तुम्हारा सत्कार करेंगे, उनकी सौ पीढ़ियोंके पितर नरकसे स्वर्गमें चले जायँगे और स्वर्गमें ही रहनेवाले पितर परमपदको प्राप्त होंगे'॥ ३६—४०॥

महाराज गयने भी उस क्षेत्रमें बहुत अन्न और दक्षिणासे सम्पन्न यज्ञ किया था। उन्हींके नामसे गयापुरीकी प्रसिद्धि हुई। पाण्डवोंने भी गयामें आकर श्रीहरिकी आराधना की थी॥ ४१॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'गया-माहात्म्य-वर्णन' नामक एक सौ चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११४॥

एक सौ पंद्रहवाँ अध्याय

गया-यात्राकी विधि

अग्निदेव कहते हैं— यदि मनुष्य गया जानेको उद्यत हो तो विधिपूर्वक श्राद्ध करके तीर्थयात्रीका वेष धारणकर अपने गाँवकी परिक्रमा कर ले; फिर प्रतिदिन पैदल यात्रा करता रहे। मन और इन्द्रियोंको वशमें रखे। किसीसे कुछ दान न ले। गया जानेके लिये घरसे चलते ही पग-पगपर पितरोंके लिये स्वर्गमें जानेकी सीढ़ी बनने लगती है। यदि पुत्र (पितरोंका श्राद्ध करनेके लिये) गया चला जाय तो उससे होनेवाले पुण्यके सामने ब्रह्मज्ञानकी क्या कीमत है? गौओंको संकटसे छुड़ानेके लिये प्राण देनेपर भी क्या उतना पुण्य होना सम्भव है? फिर तो कुरुक्षेत्रमें निवास करनेकी भी क्या आवश्यकता है? पुत्रको गयामें पहुँचा हुआ देखकर पितरोंके यहाँ उत्सव होने लगता है। वे कहते हैं—'क्या यह पैरोंसे भी जलका स्पर्श करके हमारे तर्पणके लिये नहीं देगा?' ब्रह्मज्ञान, गयामें किया हुआ श्राद्ध, गोशालामें मरण और कुरुक्षेत्रमें निवास—ये मनुष्योंकी मुक्तिके चार साधन हैं।[१] नरकके भयसे डरे हुए पितर पुत्रकी अभिलाषा रखते हैं। वे सोचते हैं, जो पुत्र गयामें जायगा, वह हमारा उद्धार कर देगा॥ १—६ $\frac{1}{2}$ ॥

मुण्डन और उपवास—यह सब तीर्थोंके लिये साधारण विधि है। गयातीर्थमें काल आदिका कोई नियम नहीं है। वहाँ प्रतिदिन पिण्डदान देना चाहिये। जो वहाँ तीन पक्ष (डेढ़ मास) निवास करता है, वह सात पीढ़ीतकके पितरोंको पवित्र कर देता है। अष्टका[२] तिथियोंमें, आभ्युदयिक कार्योंमें तथा पिता आदिकी क्षयाह-तिथिको भी यहाँ गयामें माताके लिये पृथक् श्राद्ध करनेका विधान है। अन्य तीर्थोंमें स्त्रीका श्राद्ध उसके पतिके साथ ही होता है। गयामें पिता आदिके क्रमसे 'नव देवताक' अथवा 'द्वादशदेवताक' श्राद्ध करना आवश्यक है[३]॥ ७—९ $\frac{1}{2}$ ॥

पहले दिन उत्तर-मानस-तीर्थमें स्नान करे। परम पवित्र उत्तर-मानस-तीर्थमें किया हुआ स्नान आयु और आरोग्यकी वृद्धि, सम्पूर्ण पापराशियोंका विनाश तथा मोक्षकी सिद्धि करनेवाला है; अतः वहाँ अवश्य स्नान करे। स्नानके बाद पहले देवता और पितर आदिका तर्पण करके श्राद्धकर्ता पुरुष पितरोंको पिण्डदान दे। तर्पणके समय यह भावना करे कि 'मैं स्वर्ग, अन्तरिक्ष तथा भूमिपर रहनेवाले सम्पूर्ण देवताओंको तृप्त करता हूँ।' स्वर्ग, अन्तरिक्ष तथा भूमिके

---

१. ब्रह्मज्ञानं गयाश्राद्धं गोगृहे मरणं तथा॥ वासः पुंसां कुरुक्षेत्रे मुक्तिरेषा चतुर्विधा। (अग्नि पु० ११५।५-६)

२. मार्गशीर्ष मासकी पूर्णिमाके बाद जो चार कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथियाँ आती हैं, उन्हें 'अष्टका' कहते हैं। उनके चार पृथक्-पृथक् नाम हैं—पौष कृष्ण अष्टमीको 'ऐन्द्री', माघ कृष्ण अष्टमीको 'वैश्वीदेवी', फाल्गुन कृष्ण अष्टमीको 'प्राजापत्या' और चैत्र कृष्ण अष्टमीको 'पित्र्या' कहते हैं।

उक्त चार अष्टकाओंका क्रमशः इन्द्र, विश्वेदेव, प्रजापति तथा पितृ-देवतासे सम्बन्ध है। अष्टकाके दूसरे दिन जो नवमी आती है, उसे 'अन्वष्टका' कहते हैं। 'अष्टका संस्कार'-कर्म है; अतः एक ही बार किया जाता है, प्रतिवर्ष नहीं। उस दिन मातृपूजा और आभ्युदयिक श्राद्धके पश्चात् गृह्याग्निमें होम किया जाता है।

३. पिता, पितामह, प्रपितामह, माता, पितामही, प्रपितामही, मातामह, प्रमातामह तथा वृद्ध प्रमातामह—ये नौ देवता हैं। इनके लिये किया जानेवाला श्राद्ध 'नवदेवताक' या 'नवदैवत्य' कहलाता है। इसमें मातामही आदिका भाग मातामह आदिके साथ ही सम्मिलित रहता है। जहाँ मातामही, प्रमातामही और वृद्ध प्रमातामहीको भी पृथक् पिण्ड दिया जाय, वहाँ बारह देवता होनेसे वह 'द्वादशदेवताक' श्राद्ध है।

देवता आदि एवं पिता-माता आदिका तर्पण करे। फिर इस प्रकार कहे—'पिता, पितामह और प्रपितामह; माता, पितामही और प्रपितामही तथा मातामह, प्रमातामह और वृद्ध-प्रमातामह—इन सबको तथा अन्य पितरोंको भी उनके उद्धारके लिये मैं पिण्ड देता हूँ। सोम, मङ्गल और बुधस्वरूप तथा बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर, राहु और केतुरूप भगवान् सूर्यको प्रणाम है।' उत्तर-मानस-तीर्थमें स्नान करनेवाला पुरुष अपने समस्त कुलका उद्धार कर देता है॥ १०—१६॥

सूर्यदेवको नमस्कार करके मनुष्य मौन-भावसे दक्षिण-मानस-तीर्थको जाय और यह भावना करे—'मैं पितरोंकी तृप्तिके लिये दक्षिण-मानस-तीर्थमें स्नान करता हूँ। मैं गयामें इसी उद्देश्यसे आया हूँ कि मेरे सम्पूर्ण पितर स्वर्गलोकको चले जायँ।' तदनन्तर श्राद्ध और पिण्डदान करके भगवान् सूर्यको प्रणाम करते हुए इस प्रकार कहे—'सबका भरण-पोषण करनेवाले भगवान् भानुको नमस्कार है। प्रभो! आप मेरे अभ्युदयके साधक हों। मैं आपका ध्यान करता हूँ। आप मेरे सम्पूर्ण पितरोंको भोग और मोक्ष देनेवाले हों। कव्यवाट्, अनल, सोम, यम, अर्यमा, अग्निष्वात्त, बर्हिषद तथा आज्यप नामवाले महाभाग पितृ-देवता यहाँ पदार्पण करें। आपलोगोंके द्वारा सुरक्षित जो मेरे पिता-माता, मातामह आदि पितर हैं, उनको पिण्डदान करनेके उद्देश्यसे मैं इस गयातीर्थमें आया हूँ।' मुण्डपृष्ठके उत्तर भागमें देवताओं और ऋषियोंसे पूजित जो 'कनखल' नामक तीर्थ है, वह तीनों लोकोंमें विख्यात है। सिद्ध पुरुषोंके लिये आनन्ददायक और पापियोंके लिये भयंकर बड़े-बड़े नाग, जिनकी जीभ लपलपाती रहती है, उस तीर्थकी प्रतिदिन रक्षा करते हैं। वहाँ स्नान करके मनुष्य इस भूतलपर सुखपूर्वक क्रीडा करते और अन्तमें स्वर्गलोकको जाते हैं॥ १७—२४॥

तत्पश्चात् महानदीमें स्थित परम उत्तम फल्गु-तीर्थपर जाय। यह नाग, जनार्दन, कूप, वट और उत्तर-मानससे भी उत्कृष्ट है। इसे 'गयाका शिरोभाग' कहा गया है। गयाशिरको ही 'फल्गु-तीर्थ' कहते हैं। यह मुण्डपृष्ठ और नग आदि तीर्थकी अपेक्षा सारसे भी सार वस्तु है। इसे 'आभ्यन्तर-तीर्थ' कहा गया है। जिसमें लक्ष्मी, कामधेनु गौ, जल और पृथ्वी सभी फलदायक होते हैं तथा जिससे दृष्टि रमणीय, मनोहर वस्तुएँ फलित होती हैं, वह 'फल्गु-तीर्थ' है। फल्गु-तीर्थ किसी हलके-फुलके तीर्थके समान नहीं है। फल्गु-तीर्थमें स्नान करके मनुष्य भगवान् गदाधरका दर्शन करे तो इससे पुण्यात्मा पुरुषोंको क्या नहीं प्राप्त होता? भूतलपर समुद्र-पर्यन्त जितने भी तीर्थ और सरोवर हैं, वे सब प्रतिदिन एक बार फल्गु-तीर्थमें जाया करते हैं। जो तीर्थराज फल्गु-तीर्थमें श्रद्धाके साथ स्नान करता है, उसका वह स्नान पितरोंको ब्रह्मलोककी प्राप्ति करानेवाला तथा अपने लिये भोग और मोक्षकी सिद्धि करनेवाला होता है॥ २५—३०॥

श्राद्धकर्ता पुरुष स्नानके पश्चात् भगवान् ब्रह्माजीको प्रणाम करे। (उस समय इस प्रकार कहे—) 'कलियुगमें सब लोग महेश्वरके उपासक हैं; किंतु इस गया-तीर्थमें भगवान् गदाधर उपास्यदेव हैं। यहाँ लिङ्गस्वरूप ब्रह्माजीका निवास है, उन्हीं महेश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ। भगवान् गदाधर (वासुदेव), बलराम (संकर्षण), प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नारायण, ब्रह्मा, विष्णु, नृसिंह तथा वराह आदिको मैं प्रणाम करता हूँ।' तदनन्तर श्रीगदाधरका दर्शन करके मनुष्य अपनी सौ पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। दूसरे दिन धर्मारण्य-तीर्थका दर्शन करे।

वहाँ मतङ्ग मुनिके श्रेष्ठ आश्रममें मतङ्ग-वापीके जलमें स्नान करके श्राद्धकर्ता पुरुष पिण्डदान करे। वहाँ मतङ्गेश्वर एवं सुसिद्धेश्वरको मस्तक झुकाकर इस प्रकार कहे—'सम्पूर्ण देवता प्रमाणभूत होकर रहें, समस्त लोकपाल साक्षी हों, मैंने इस मतङ्ग-तीर्थमें आकर पितरोंका उद्धार कर दिया।' तत्पश्चात् ब्राह्म-तीर्थ नामक कूपमें स्नान, तर्पण और श्राद्ध आदि करे। उस कूप और यूपके मध्यभागमें किया हुआ श्राद्ध सौ पीढ़ियोंका उद्धार करनेवाला है। वहाँ धर्मात्मा पुरुष महाबोधि-वृक्षको नमस्कार करके स्वर्गलोकका भागी होता है। तीसरे दिन नियम एवं व्रतका पालन करनेवाला पुरुष 'ब्रह्म-सरोवर' नामक तीर्थमें स्नान करे। उस समय इस प्रकार प्रार्थना करे—'मैं ब्रह्मर्षियोंद्वारा सेवित ब्रह्म-सरोवर-तीर्थमें पितरोंको ब्रह्मलोककी प्राप्ति करानेके लिये स्नान करता हूँ।' श्राद्धकर्ता पुरुष तर्पण करके पिण्डदान दे। फिर वृक्षको सींचे। जो वाजपेय-यज्ञका फल पाना चाहता हो, वह ब्रह्माजीद्वारा स्थापित यूपकी प्रदक्षिणा करे॥ ३१—३९॥

उस तीर्थमें एक मुनि रहते थे, वे जलका घड़ा और कुशका अग्रभाग हाथमें लिये आमके पेड़की जड़में पानी देते थे। इससे आम भी सींचे गये और पितरोंकी भी तृप्ति हुई। इस प्रकार एक ही क्रिया दो प्रयोजन सिद्ध करनेवाली हो गयी।* ब्रह्माजीको नमस्कार करके मनुष्य अपनी सौ पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। चौथे दिन फल्गु-तीर्थमें स्नान करके देवता आदिका तर्पण करे। फिर गयाशीर्षमें श्राद्ध और पिण्डदान करे। गयाका क्षेत्र पाँच कोसका है। उसमें एक कोस केवल 'गयाशीर्ष' है। उसमें पिण्डदान करके मनुष्य अपनी सौ पीढ़ियोंका उद्धार कर सकता है। परम बुद्धिमान् महादेवजीने मुण्डपृष्ठमें अपना पैर रखा है। मुण्डपृष्ठमें ही गयासुरका साक्षात् सिर है, अतएव उसे 'गया-शिर' कहते हैं। जहाँ साक्षात् गयाशीर्ष है, वहीं फल्गु-तीर्थका आश्रय है। फल्गु अमृतकी धारा बहाती है। वहाँ पितरोंके उद्देश्यसे किया हुआ दान अक्षय होता है। दशाश्वमेध-तीर्थमें स्नान तथा ब्रह्माजीका दर्शन करके महादेवजीके चरण (रुद्रपाद)-का स्पर्श करनेपर मनुष्य पुनः इस लोकमें जन्म नहीं लेता। गयाशीर्षमें शमीके पत्ते-बराबर पिण्ड देनेसे भी नरकोंमें पड़े हुए पितर स्वर्गको चले जाते हैं और स्वर्गवासी पितरोंको मोक्षकी प्राप्ति होती है। वहाँ खीर, आटा, सत्तू, चरु और चावलसे पिण्डदान करे। तिलमिश्रित गेहूँसे भी रुद्रपादमें पिण्डदान करके मनुष्य अपनी सौ पीढ़ियोंका उद्धार कर सकता है॥ ४०—४८॥

इसी प्रकार 'विष्णुपदी'में भी श्राद्ध और पिण्डदान करनेवाला पुरुष पितृ-ऋणसे छुटकारा पाता है और पिता आदि ऊपरकी सौ पीढ़ियों तथा अपनेको भी तार देता है। 'ब्रह्मपद'में श्राद्ध करनेवाला मानव अपने पितरोंको ब्रह्मलोकमें पहुँचाता है। दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य-अग्नि तथा आहवनीय-अग्निके स्थानमें श्राद्ध करनेवाला पुरुष यज्ञफलका भागी होता है। आवसथ्याग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, गणेश, अगस्त्य और कार्तिकेयके स्थानमें श्राद्ध करनेवाला मनुष्य अपने कुलका उद्धार कर देता है। मनुष्य सूर्यके रथको नमस्कार करके कर्णादित्यको मस्तक झुकावे। कनकेश्वरके पदको प्रणाम करके गया-केदार-तीर्थको नमस्कार करे। इससे मनुष्य सब पापोंसे छुटकारा पाकर

* एको मुनिः कुम्भकुशाग्रहस्त आम्रस्य मूले सलिलं ददाति। आम्राश्च सिक्ताः पितरश्च तृप्ता एका क्रिया द्व्यर्थकरी प्रसिद्धा॥
(अग्नि पु० ११५।४०)

अपने पितरोंको ब्रह्मलोकमें पहुँचा देता है। विशाल भी गयाशीर्षमें पिण्डदान करनेसे पुत्रवान् हुए।

कहते हैं, विशाला नगरीमें एक 'विशाल' नामसे प्रसिद्ध राजपुत्र थे। उन्होंने ब्राह्मणोंसे पूछा—'मुझे पुत्र आदिकी उत्पत्ति किस प्रकार होगी?' यह सुनकर ब्राह्मणोंने विशालसे कहा—'गयामें पिण्डदान करनेसे तुम्हें सब कुछ प्राप्त होगा।' तब विशालने भी गयाशीर्षमें पितरोंको पिण्डदान किया। उस समय आकाशमें उन्हें तीन पुरुष दिखायी दिये, जो क्रमशः श्वेत, लाल और काले थे। विशालने उनसे पूछा—'आपलोग कौन हैं?' उनमेंसे एक श्वेतवर्णवाले पुरुषने विशालसे कहा—'मैं तुम्हारा पिता हूँ; मेरा वर्ण श्वेत है; मैं अपने शुभकर्मसे इन्द्रलोकमें गया था। बेटा! ये लाल रंगवाले मेरे पिता और काले रंगवाले मेरे पितामह थे। ये नरकमें पड़े थे; तुमने हम सबको मुक्त कर दिया। तुम्हारे पिण्डदानसे हमलोग ब्रह्मलोकमें जा रहे हैं।' यों कहकर वे तीनों चले गये। विशालको पुत्र-पौत्र आदिकी प्राप्ति हुई। उन्होंने राज्य भोगकर मृत्युके पश्चात् भगवान् श्रीहरिको प्राप्त कर लिया॥ ४९—५९॥

एक प्रेतोंका राजा था, जो अन्य प्रेतोंके साथ बहुत पीड़ित रहता था। उसने एक दिन एक वणिक्से अपनी मुक्तिके लिये इस प्रकार कहा—'भाई! हमारे द्वारा एक ही पुण्य हुआ था, जिसका फल यहाँ भोगते हैं। पूर्वकालमें एक बार श्रवण-नक्षत्र और द्वादशी तिथिका योग आनेपर हमने अन्न और जलसहित कुम्भदान किया था; वही प्रतिदिन मध्याह्नके समय हमारी जीवन-रक्षाके लिये उपस्थित होता है। तुम हमसे धन लेकर गया जाओ और हमारे लिये पिण्डदान करो।' वणिक्ने उससे धन लिया और गयामें उसके निमित्त पिण्डदान किया। उसका फल यह हुआ कि वह प्रेतराज अन्य सब प्रेतोंके साथ मुक्त होकर श्रीहरिके धाममें जा पहुँचा। गयाशीर्षमें पिण्डदान करनेसे मनुष्य अपने पितरोंका तथा अपना भी उद्धार कर देता है॥ ६०—६३॥

वहाँ पिण्डदान करते समय इस प्रकार कहना चाहिये—'मेरे पिताके कुलमें तथा माताके वंशमें और गुरु, श्वशुर एवं बन्धुजनोंके वंशमें जो मृत्युको प्राप्त हुए हैं, इनके अतिरिक्त भी जो बन्धु-बान्धव मरे हैं, मेरे कुलमें जिनका श्राद्ध-कर्म—पिण्डदान आदि लुप्त हो गया है, जिनके कोई स्त्री-पुत्र नहीं रहा है, जिनके श्राद्ध-कर्म नहीं होने पाये हैं, जो जन्मके अंधे, लँगड़े और विकृत रूपवाले रहे हैं, जिनका अपक्व गर्भके रूपमें निधन हुआ है, इस प्रकार जो मेरे कुलके ज्ञात एवं अज्ञात पितर हों, वे सब मेरे दिये हुए इस पिण्डदानसे सदाके लिये तृप्त हो जायँ। जो कोई मेरे पितर प्रेतरूपसे स्थित हों, वे सब यहाँ पिण्ड देनेसे सदाके लिये तृप्तिको प्राप्त हों।' अपने कुलको तारनेवाली सभी संतानोंका कर्तव्य है कि वे अपने सम्पूर्ण पितरोंके उद्देश्यसे वहाँ पिण्ड दें तथा अक्षय लोककी इच्छा रखनेवाले पुरुषको अपने लिये भी पिण्ड अवश्य देना चाहिये*॥ ६४—६८॥

बुद्धिमान् पुरुष पाँचवें दिन 'गदालोल' नामक तीर्थमें स्नान करे। उस समय इस मन्त्रका पाठ करे—'भगवान् जनार्दन! जिसमें आपकी गदाका प्रक्षालन हुआ था, उस अत्यन्त पावन 'गदालोल' नामक तीर्थमें मैं संसाररूपी रोगकी शान्तिके लिये स्नान करता हूँ'॥ ६९ $\frac{1}{2}$॥

'अक्षय स्वर्ग प्रदान करनेवाले अक्षयवटको नमस्कार है। जो पिता-पितामह आदिके लिये अक्षय आश्रय है तथा सब पापोंका क्षय करनेवाला

* पिण्डो देयस्तु सर्वेभ्यः सर्वैर्वै कुलतारकैः। आत्मनस्तु तथा देयो ह्यक्षयं लोकमिच्छता॥ (अग्निपु० ११५। ६८)

है, उस अक्षय वटको नमस्कार है।'—यों प्रार्थना कर वटके नीचे श्राद्ध करके ब्राह्मण-भोजन करावे॥ ७०-७१॥

वहाँ एक ब्राह्मणको भोजन करानेसे कोटि ब्राह्मणोंको भोजन करानेका पुण्य होता है। फिर यदि बहुत-से ब्राह्मणोंको भोजन कराया जाय, तब तो उसके पुण्यका क्या कहना है? वहाँ पितरोंके उद्देश्यसे जो कुछ दिया जाता है, वह अक्षय होता है। पितर उसी पुत्रसे अपनेको पुत्रवान् मानते हैं, जो गयामें जाकर उनके लिये अन्नदान करता है। वट तथा वटेश्वरको नमस्कार करके अपने प्रपितामहका पूजन करे। ऐसा करनेवाला पुरुष अक्षय लोकमें जाता है और अपनी सौ पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। क्रमसे हो या बिना क्रमसे, गयाकी यात्रा महान् फल देनेवाली होती है॥ ७२—७४॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'गया-यात्राकी विधिका वर्णन' नामक एक सौ पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११५॥

एक सौ सोलहवाँ अध्याय

गयामें श्राद्धकी विधि

अग्निदेव कहते हैं—गायत्री-मन्त्रसे ही महानदीमें स्नान करके संध्योपासना करे। प्रातःकाल गायत्रीके सम्मुख किया हुआ श्राद्ध और पिण्डदान अक्षय होता है। सूर्योदयके समय तथा मध्याह्नकालमें स्नान करके गीत और वाद्यके द्वारा सावित्री देवीकी उपासना करे। फिर उन्हींके सम्मुख संध्या करके नदीके तटपर पिण्डदान करे। तदनन्तर अगस्त्यपदमें पिण्डदान करे। फिर 'योनिद्वार' (ब्रह्मयोनि)-में प्रवेश करके निकले। इससे वह फिर माताकी योनिमें नहीं प्रवेश करता, पुनर्जन्मसे मुक्त हो जाता है। तत्पश्चात् काकशिलापर बलि देकर कुमार कार्तिकेयको प्रणाम करे। इसके बाद स्वर्गद्वार, सोमकुण्ड और वायु-तीर्थमें पिण्डदान करे। फिर आकाशगङ्गा और कपिलाके तटपर पिण्ड दे। वहाँ कपिलेश्वर शिवको प्रणाम करके रुक्मिणीकुण्डपर पिण्डदान करे॥ १—५॥

कोटि-तीर्थमें भगवान् कोटीश्वरको नमस्कार करके मनुष्य अमोघपद, गदालोल, वानरक एवं गोप्रचार-तीर्थमें पिण्डदान दे। वैतरणीमें गौको नमस्कार एवं दान करके मनुष्य अपनी इक्कीस पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। वैतरणीके तटपर श्राद्ध एवं पिण्डदान करे। उसके बाद क्रौञ्चपादमें पिण्ड दे। तृतीया तिथिको विशाला, निश्चिरा, ऋणमोक्ष तथा पापमोक्ष-तीर्थमें भी पिण्डदान करे। भस्मकुण्डमें भस्मसे स्नान करनेवाला पुरुष पापसे मुक्त हो जाता है। वहाँ भगवान् जनार्दनको प्रणाम करे और इस प्रकार प्रार्थना करे—'जनार्दन! यह पिण्ड मैंने आपके हाथमें समर्पित किया है। परलोकमें जानेपर यह मुझे अक्षयरूपमें प्राप्त हो।' गयामें साक्षात् भगवान् विष्णु ही पितृदेवके रूपमें विराजमान हैं॥ ६—१०॥

उन भगवान् कमलनयनका दर्शन करके मानव तीनों ऋणोंसे मुक्त हो जाता है। तदनन्तर मार्कण्डेयेश्वरको प्रणाम करके मनुष्य गृध्रेश्वरको नमस्कार करे। महादेवजीके मूलक्षेत्र धारामें पिण्डदान करना चाहिये। इसी प्रकार गृध्रकूट, गृध्रवट और धौतपादमें भी पिण्डदान करना उचित है। पुष्करिणी, कर्दमाल और रामतीर्थमें पिण्ड दे। फिर प्रभासेश्वरको नमस्कार करके

प्रेतशिलापर पिण्डदान दे। उस समय इस प्रकार कहे—'दिव्यलोक, अन्तरिक्षलोक तथा भूमिलोकमें जो मेरे पितर और बान्धव आदि सम्बन्धी प्रेत आदिके रूपमें रहते हों, वे सब लोग इन मेरे दिये हुए पिण्डोंके प्रभावसे मुक्ति-लाभ करें।' प्रेतशिला तीन स्थानोंमें अत्यन्त पावन मानी गयी है—गयाशीर्ष, प्रभासतीर्थ और प्रेतकुण्ड। इनमें पिण्डदान करनेवाला पुरुष अपने कुलका उद्धार कर देता है॥ ११—१५॥

वसिष्ठेश्वरको नमस्कार करके उनके आगे पिण्डदान दे। गयानाभि, सुषुम्ना तथा महाकोष्ठीमें भी पिण्डदान करे। भगवान् गदाधरके सामने मुण्डपृष्ठपर देवीके समीप पिण्डदान करे। पहले क्षेत्रपाल आदिसहित मुण्डपृष्ठको नमस्कार कर लेना चाहिये। उनका पूजन करनेसे भयका नाश होता है, विष और रोग आदिका कुप्रभाव भी दूर हो जाता है। ब्रह्माजीको प्रणाम करनेसे मनुष्य अपने कुलको ब्रह्मलोकमें पहुँचा देता है। सुभद्रा, बलभद्र तथा भगवान् पुरुषोत्तमका पूजन करनेसे मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त करके अपने कुलका उद्धार कर देता और अन्तमें स्वर्गलोकका भागी होता है। भगवान् हृषीकेशको नमस्कार करके उनके आगे पिण्डदान देना चाहिये। श्रीमाधवका पूजन करके मनुष्य विमानचारी देवता होता है॥ १६—२०॥

भगवती महालक्ष्मी, गौरी तथा मङ्गलमयी सरस्वतीकी पूजा करके मनुष्य अपने पितरोंका उद्धार करता, स्वयं भी स्वर्गलोकमें जाता और वहाँ भोग भोगनेके पश्चात् इस लोकमें आकर शास्त्रोंका विचार करनेवाला पण्डित होता है। फिर बारह आदित्योंका, अग्निका, रेवन्तका और इन्द्रका पूजन करके मनुष्य रोग आदिसे छुटकारा पा जाता है और अन्तमें स्वर्गलोकका निवासी होता है। 'श्रीकपर्दि विनायक' तथा कार्तिकेयका पूजन करनेसे मनुष्यको निर्विघ्नतापूर्वक सिद्धि प्राप्त होती है। सोमनाथ, कालेश्वर, केदार, प्रपितामह, सिद्धेश्वर, रुद्रेश्वर, रामेश्वर तथा ब्रह्मकेश्वर—इन आठ गुप्त लिङ्गोंका पूजन करनेसे मनुष्य सब कुछ पा लेता है। यदि लक्ष्मीप्राप्तिकी कामना हो तो भगवान् नारायण, वाराह, नरसिंहको नमस्कार करे। ब्रह्मा, विष्णु तथा त्रिपुरनाशक महेश्वरको भी प्रणाम करे। वे सब कामनाओंको देनेवाले हैं॥ २१—२५॥

सीता, राम, गरुड़ तथा वामनका पूजन करनेसे मानव अपनी सम्पूर्ण कामनाएँ प्राप्त कर लेता है और पितरोंको ब्रह्मलोककी प्राप्ति करा देता है। देवताओंसहित भगवान् श्रीआदि-गदाधरका पूजन करनेसे मनुष्य तीनों ऋणोंसे मुक्त होकर अपने सम्पूर्ण कुलको तार देता है। प्रेतशिला देवरूपा होनेसे परम पवित्र है। गयामें वह शिला देवमयी ही है। गयामें ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँ तीर्थ न हो। गयामें जिसके नामसे भी पिण्ड दिया जाता है, उसे वह सनातन ब्रह्ममें प्रतिष्ठित कर देता है। फल्वीश्वर, फल्गुचण्डी तथा अङ्गारकेश्वरको प्रणाम करके श्राद्धकर्ता पुरुष मतङ्गमुनिके स्थानमें पिण्डदान दे। फिर भरतके आश्रमपर भी पिण्ड दे। इसी प्रकार हंस-तीर्थ और कोटि-तीर्थमें भी करना चाहिये। जहाँ पाण्डुशिला नद है, वहाँ अग्निधारा तथा मधुस्रवा तीर्थमें पिण्डदान करे। तत्पश्चात् इन्द्रेश्वर, किलकिलेश्वर तथा वृद्धि-विनायकको प्रणाम करे; तदनन्तर धेनुकारण्यमें पिण्डदान करे, धेनुपदमें गौको नमस्कार करे। इससे वह अपने सम्पूर्ण पितरोंका उद्धार कर देता है। फिर सरस्वती-तीर्थमें जाकर पिण्ड दे। सायंकाल संध्योपासना करके सरस्वती देवीको प्रणाम करे। ऐसा करनेवाला पुरुष तीनों

कालकी संध्योपासनामें तत्पर वेद-वेदाङ्गोंका पारंगत विद्वान् ब्राह्मण होता है॥ २६—३३॥

गयाकी परिक्रमा करके वहाँके ब्राह्मणोंका पूजन करनेसे गया-तीर्थमें किया हुआ अन्नदान आदि सम्पूर्ण पुण्य अक्षय होता है। भगवान् गदाधरकी स्तुति करके इस प्रकार प्रार्थना करे—'जो आदिदेवता, गदा धारण करनेवाले, गयाके निवासी तथा पितर आदिको सद्गति देनेवाले हैं, उन योगदाता भगवान् गदाधरको मैं धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्तिके लिये प्रणाम करता हूँ। वे देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण और अहंकारसे शून्य हैं। नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, द्वैतशून्य तथा देवता और दानवोंसे वन्दित हैं। देवताओं और देवियोंके समुदाय सदा उनकी सेवामें उपस्थित रहते हैं; मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ। वे कलिके कल्मष (पाप) और कालकी पीड़ाका नाश करनेवाले हैं। उनके कण्ठमें वनमाला सुशोभित होती है। सम्पूर्ण लोकपालोंका भी उन्हींके द्वारा पालन होता है। वे सबके कुलोंका उद्धार करनेमें मन लगाते हैं। व्यक्त और अव्यक्त—सबमें अपने स्वरूपको विभक्त करके स्थित होते हुए भी वे वास्तवमें अविभक्तात्मा ही हैं। अपने स्वरूपमें ही उनकी स्थिति है। वे अत्यन्त स्थिर और सारभूत हैं तथा भयंकर पापोंका भी मर्दन करनेवाले हैं। मैं उनके चरणोंमें मस्तक झुकाता हूँ। देव! भगवान् गदाधर! मैं पितरोंका श्राद्ध करनेके निमित्त गयामें आया हूँ। आप यहाँ मेरे साक्षी होइये। आज मैं तीनों ऋणोंसे मुक्त हो गया। ब्रह्मा और शंकर आदि देवता मेरे लिये साक्षी बनें। मैंने गयामें आकर अपने पितरोंका उद्धार कर दिया।' श्राद्ध आदिमें गयाके इस माहात्म्यका पाठ करनेसे मनुष्य ब्रह्मलोकका भागी होता है। गयामें पितरोंका श्राद्ध अक्षय होता है। वह अक्षय ब्रह्मलोक देनेवाला है॥ ३४—४३॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'गयामें श्राद्धकी विधि' विषयक एक सौ सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११६॥

एक सौ सत्रहवाँ अध्याय

श्राद्ध-कल्प

अग्निदेव कहते हैं—महर्षि कात्यायनने मुनियोंसे जिस प्रकार श्राद्धका वर्णन किया था, उसे बतलाता हूँ। गया आदि तीर्थोंमें, विशेषत: संक्रान्ति आदिके अवसरपर श्राद्ध करना चाहिये। अपराह्णकालमें, अपरपक्ष (कृष्णपक्ष)-में, चतुर्थी तिथिको अथवा उसके बादकी तिथियोंमें श्राद्धोपयोगी सामग्री एकत्रित कर उत्तम नक्षत्रमें श्राद्ध करे। श्राद्धके एक दिन पहले ही ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे। संन्यासी, गृहस्थ, साधु अथवा स्नातक तथा श्रोत्रिय ब्राह्मणोंको, जो निन्दाके पात्र न हों, अपने कर्मोंमें लगे रहते हों और शिष्ट एवं सदाचारी हों—निमन्त्रित करना चाहिये। जिनके शरीरमें सफेद दाग हों, जो कोढ़ आदिके रोगोंसे ग्रस्त हों, ऐसे ब्राह्मणोंको छोड़ दे; उन्हें श्राद्धमें सम्मिलित न करे। निमन्त्रित ब्राह्मण जब स्नान और आचमन करके पवित्र हो जायँ तो उन्हें देवकर्ममें पूर्वाभिमुख बिठावे। देव-श्राद्ध, पितृ-श्राद्धमें तीन-तीन ब्राह्मण रहें अथवा दोनोंमें एक-एक ही ब्राह्मण हों। इस प्रकार मातामह आदिके श्राद्धमें भी समझना चाहिये। शाक आदिसे भी श्राद्ध-कर्म करावे॥ १—५॥

श्राद्धके दिन ब्रह्मचारी रहे, क्रोध और

उतावली न करे। नम्र, सत्यवादी और सावधान रहे। उस दिन अधिक मार्ग न चले, स्वाध्याय भी न करे, मौन रहे। सम्पूर्ण पंक्तिमूर्धन्य (पंक्तिमें सर्वश्रेष्ठ अथवा पंक्तिपावन) ब्राह्मणोंसे प्रत्येक कर्मके विषयमें पूछे। आसनपर कुश बिछावे। पितृकर्ममें कुशोंको दुहरा मोड़ देना चाहिये। पहले देव-कर्म, फिर पितृ-कर्म करे।[1] देव-धर्ममें स्थित ब्राह्मणोंसे पूछे—'मैं विश्वेदेवोंका आवाहन करूँगा।' ब्राह्मण आज्ञा दें—'आवाहन करो', तब **'विश्वेदेवास आगत शृणुताम इमꣳ हवम्, एदं बर्हिर्निषीदत'** (यजु० ७। ३४)—इस मन्त्रके द्वारा विश्वेदेवोंका आवाहन करके आसनपर जौ छोड़े तथा **'विश्वेदेवाः शृणुतेमꣳ हवं मे ये अन्तरिक्षे य उपद्यविष्ठ। ये अग्निजिह्वा उत वा यजत्रा आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वम्॥'** (यजु० ३३। ५३)—इस मन्त्रका जप करे। तत्पश्चात् पितृकर्ममें नियुक्त ब्राह्मणोंसे पूछे—'मैं पितरोंका आवाहन करूँगा।' ब्राह्मण कहें—'आवाहन करो।' तब **'उशन्तस्त्वा०'**[2] इस मन्त्रका पाठ करते हुए आवाहन करे। फिर **'अपहता असुरा रक्षाꣳसि वेदिषदः॥'** (यजु० २। २९)—इस मन्त्रसे तिल बिखेरकर **'आयन्तु नः०'**[3] इत्यादि मन्त्रका जप करे। इसके बाद पवित्रकसहित अर्घ्यपात्रमें **'शं नो देवी०'**[4] इस मन्त्रसे जल डाले॥ ६—१०॥

तदनन्तर **'यवोऽसि'**[5] इस मन्त्रसे जौ देकर पितरोंके निमित्त सर्वत्र तिलका उपयोग करे। (पितरोंके अर्घ्यपात्रमें भी **'शं नो देवी०'** इस मन्त्रसे जल डालकर) **'तिलोऽसि सोमदेवत्यो गोसवे देवनिर्मितः। प्रत्नवद्भिः प्रत्तः स्वधया पितॄँल्लोकान् पृणीहि नः स्वधा।'** यह मन्त्र पढ़कर तिल डाले। फिर **'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्याव-होरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्। इष्णन्नि-षाणामुं म इषाण सर्वलोकं म इषाण॥'** (यजु० ३१। २२) इस मन्त्रसे अर्घ्यपात्रमें फूल छोड़े। अर्घ्यपात्र सोना, चाँदी, गूलर अथवा पत्तेका होना चाहिये। उसीमें देवताओंके लिये सव्यभावसे और पितरोंके लिये अपसव्यभावसे उक्त वस्तुएँ रखनी चाहिये। एक-एकको एक-एक अर्घ्यपात्र पृथक्-पृथक् देना उचित है। पितरोंके हाथोंमें पहले पवित्री रखकर ही उन्हें अर्घ्य देना चाहिये॥ ११—१३॥

तत्पश्चात् (देवताओंके अर्घ्यपात्रको बायें हाथमें लेकर उसमें रखी हुई पवित्रीको दाहिने हाथसे निकालकर देव-भोजन-पात्रपर पूर्वाग्र करके रख दे। उसके ऊपर दूसरा जल देकर अर्घ्यपात्रको ढककर) निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़े—**'ॐ या दिव्या आपः पयसा सम्बभूवुर्या अन्तरिक्षा उत पार्थिवीर्याः। हिरण्यवर्णा यज्ञियास्ता न आपः शिवाः शꣳ स्योनाः सुहवा भवन्तु॥'** फिर (जौ, कुश और जल हाथमें लेकर संकल्प पढ़े—) **'ॐ अद्यामुकगोत्राणां पितृपितामह-प्रपितामहानाम् अमुकामुकशर्मणाम् अमुकश्राद्धसम्बन्धिनो विश्वेदेवाःएष वो हस्तार्घ्यः स्वाहा।'**—यों कहकर देवताओंको अर्घ्य देकर पात्रको दक्षिण भागमें सीधे रख दे। इसी प्रकार पिता आदिके लिये भी अर्घ्य दे। उसका संकल्प इस प्रकार है—**'ओमद्य अमुकगोत्र पितः**

१. श्राद्ध आरम्भ करनेसे पूर्व रक्षा-दीप जला लेना चाहिये।

२. ॐ उशन्तस्त्वा निधीमह्युशन्तः समिधीमहि। उशन्नुशत आवह पितॄन् हविषे अत्तवे॥ (यजु० १९। ७०)

३. ॐ आयन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः। अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधिब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान्॥ (यजु० १९। ५८)

४. ॐ शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शँय्योरभिस्रवन्तु नः॥ (अथर्व० १। ६। १)

५. ॐ यवोऽसि यवयास्मद्द्वेषो यवयारातीः। (यजु० ५। २६)

अमुकशर्मन् अमुकश्राद्धे एष हस्तार्घ्यः ते स्वधा।' इसी तरह पितामह आदिको भी दे। फिर सब अर्घ्यका अवशेष पहले पात्रमें डाल दे अर्थात् प्रपितामहके अर्घ्यमें जो जल आदि हो, उसे पितामहके पात्रमें डाल दे। इसके बाद वह सब पिताके अर्घ्यपात्रमें रख दे। पिताके अर्घ्यपात्रको पितामहके अर्घ्यपात्रके ऊपर रखे। फिर उन दोनोंको प्रपितामहके अर्घ्यपात्रके ऊपर रख दे। तत्पश्चात् तीनोंको पिताके आसनके वामभागमें **'पितृभ्यः स्थानमसि।'** ऐसा कहकर उलट दे। तदनन्तर वहाँ देवताओं और पितरोंके लिये गन्ध, पुष्प, धूप, दीप तथा वस्त्र आदिका दान किया जाता है॥ १४—१६॥

उसके बाद श्राद्धकर्ता पुरुष पात्रमेंसे घृतयुक्त अन्न निकालकर ब्राह्मणोंसे पूछे—'मैं अग्निमें इस अन्नका हवन करूँगा।' ब्राह्मण आज्ञा दें—'करो'। तब साग्निक पुरुष तो अग्निमें हवन करे और निरग्निक पुरुष पवित्रीयुक्त पितरके हाथ (अथवा जल)-में मन्त्रसे आहुति दे। पहली आहुति **'अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा।'** (यजु० २। २९) कहकर दे। दूसरी आहुति **'सोमाय पितृमते स्वाहा।'** (यजु० २। २९) इस मन्त्रसे दे। दूसरे विद्वानोंका मत है कि 'यम' एवं 'अङ्गिरा' के उद्देश्यसे आहुति दे[1]। हवनसे शेष बचे हुए अन्नमेंसे क्रमशः देवताओं और पितरोंके पात्रोंमें परोसे और पात्रको हाथसे ढक दे। उस समय निम्नाङ्कित मन्त्रका जप करे—'ॐ **पृथिवी ते पात्रं द्यौरपिधानं ब्राह्मणस्य मुखेऽमृतेऽमृतं जुहोमि स्वाहा। इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् समूढमस्य पाꣳसुरे स्वाहा॥ कृष्ण हव्यमिदं रक्ष मदीयम्।'** (यजु० ५। १५) ऐसा पढ़कर अन्तमें ब्राह्मणके अँगूठेका स्पर्श करावे। (देवपात्रोंपर **'यवोऽसि यवयास्मद्द्वेषो यवयारातीः।'** इस मन्त्रसे जौ छींटे) और पितरोंके पात्रोंपर **'अपहता असुरा रक्षाꣳसि वेदिषदः।'** इस मन्त्रसे तिल छींटकर संकल्पपूर्वक अन्न अर्पण करे। तदनन्तर **'जुषध्वम्।'** (आपलोग अन्न ग्रहण करें) ऐसा कहकर गायत्री-मन्त्र आदिका जप करे॥ १७—२१॥

देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च।
नमः स्वधायै स्वाहायै नित्यमेव नमो नमः॥[2]

'इस मन्त्रका भी जप करे। पितरोंको तृप्त जानकर पात्रमें अन्न बिखेरे। फिर एक-एक बार सबको जल दे। पूर्ववत् सव्यभावसे गायत्री-जप करके **'मधु वाता'**[3] इस ऋचाका जप करे।[4] इसके बाद ब्राह्मणोंसे पूछे—'आपलोग तृप्त हो गये?' ब्राह्मण कहें—'हाँ, हम तृप्त हो गये।' तदनन्तर शेष अन्नको ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर एकमें मिला दे और पिण्ड बनानेके लिये पात्रसे बाहर निकाले और पितरोंके उच्छिष्ट अन्नके पास ही अवनेजन करके कुशोंपर संकल्पपूर्वक

१. यदि दूसरेकी भूमिमें श्राद्ध करते हों तो थोड़ा अन्न और जल कुशापर अपसव्यभावसे रखकर कहें— 'इदमन्नमेतद्भूस्वामिपितृभ्यो नमः।'

२. देवताओं, पितरों, महायोगियों, स्वधा और स्वाहाको मेरा सर्वदा नमस्कार है, नमस्कार है।

३. यह मन्त्र तीन ऋचाओंमें है। पूरा मन्त्र इस प्रकार है—ॐ मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः॥ १॥ ॐ मधु नक्तमुतोवसो मधुमत् पार्थिवꣳ रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता॥ २॥ ॐ मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँऽस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः॥ ३॥ (यजु० १३। २७—२९) ॐ मधु मधु मधु॥

४. उक्त ऋचाके अतिरिक्त भी 'उदीरतामवर०' (यजु० १९। ४९) इत्यादि पितृमन्त्रोंका 'ॐ कृणुष्व पाजः०' (यजु० १३। ९) इत्यादि रक्षोघ्न-मन्त्रोंका, 'सहस्रशीर्षा:०' (यजु० ३१) इत्यादि पुरुषसूक्तका तथा 'ॐ आशुः शिशानः०' (यजु० १७। ३३) इत्यादि मन्त्रोंका एवं शतरुद्रियका पाठ भी किया जाता है।

'नमस्तुभ्यं विरूपाक्ष नमस्तेऽनेकचक्षुषे। नमः पिनाकहस्ताय वज्रहस्ताय वै नमः॥' इस श्लोकको भी पढ़ना चाहिये।

तीन पिण्डदान करे।[1] दूसरोंका मत है कि ब्राह्मण जब भोजनके पश्चात् हाथ-मुँह धोकर आचमन कर लें, तब पिण्डदान देना चाहिये। आचमनके पश्चात् जल, फूल और अक्षत दे॥ २२—२५ $\frac{1}{2}$॥

फिर अक्षय्योदक देकर मनुष्य आशीर्वादकी प्रार्थना करे[2]। '**ॐ अघोराः पितरः सन्तु।**' (मेरे पितर सौम्य हों।) ऐसा कहकर जल गिरावे, फिर प्रार्थना करे—'हमारा गोत्र सदा ही बढ़ता रहे, हमारे दाता भी निरन्तर अभ्युदयशील हों, वेदोंकी पठन-पाठन-प्रणाली बढ़े। संतानोंकी भी वृद्धि हो। हमारी श्रद्धामें कमी न आवे; हमारे पास देने योग्य बहुत सामान संचित रहे; हमारे यहाँ अन्न भी अधिक हो। हम अतिथियोंको प्राप्त करते रहें अर्थात् हमारे घरपर अतिथियोंका शुभागमन होता रहे। हमारे पास माँगनेवाले आवें, किंतु हम किसीसे न माँगें।' फिर स्वधा-वाचनके लिये पिण्डोंपर पवित्रकसहित कुश बिछावे और ब्राह्मणोंसे पूछे—'मैं स्वधा-वाचन कराऊँगा।' ब्राह्मण आज्ञा दें—'स्वधा-वाचन कराओ।' तब श्राद्धकर्ता पुरुष इस प्रकार कहे—

'ब्राह्मणो! आपलोग मेरे पिता, पितामह और प्रपितामहके लिये स्वधा-वाचन करें।' ब्राह्मण कहें—'**अस्तु स्वधा।**' तदनन्तर '**ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम् स्वधा स्थ तर्पयत मे पितॄन्**' (यजु० २। ३४)—इस मन्त्रसे कुशोंपर दुग्ध-मिश्रित जलकी दक्षिणाग्रधारा गिरावे,[3] फिर (सव्य होकर देवार्घ्यपात्रको हिला दे और पितरोंके) अर्घ्यपात्रको उत्तान करके देवश्राद्ध

---

१. इसके पहले कुछ दूरपर दक्षिणाग्र कुश बिछाकर भूमिको सींच दे और तिल-घृतसहित अन्न एवं जल लेकर—

'ॐ अग्निदग्धाश्च ये जीवा येऽप्यदग्धाः कुले मम। भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्ता यान्तु परां गतिम्॥'

यह पढ़कर पूर्वोक्त कुशोंपर वह अन्न-जल बिखेर दे। तदनन्तर आचमन करके भगवान्‌का स्मरण कर तीन बार गायत्री-मन्त्रका जप करे। इसके बाद अपसव्यभावसे बालूकी चौकोर वेदी बनाकर उसके ऊपर कुशके मूलसे प्रादेशमात्र तीन रेखा खींचे; उस समय 'ॐ अपहता०' इत्यादि मन्त्र पढ़े। फिर रेखाके चारों ओर उल्मुकसे अङ्गार-भ्रमण करावे। इसका मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना असुराः सन्तः स्वधया चरन्ति। परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टाँल्लोकात्प्रणुदात्यस्मात्॥' (यजु० २। ३०) तत्पश्चात् रेखापर तीन कुश बिछाकर सव्यभावसे गायत्री-जप करके फिर अपसव्यभावसे दोनेमें जल, तिल, गन्ध-पुष्प लेकर 'ॐ अद्यामुकगोत्र पितः अमुकशर्मन् अमुकश्राद्धे पिण्डस्थानेऽत्रावनेनिक्ष्व ते स्वधा' ऐसा कहकर कुशपर जल गिरावे। यह 'अवनेजन' है। पिण्ड देनेके बाद पिण्डके ऊपर उसी पात्रसे जल गिराकर उसी प्रकार संकल्प पढ़कर प्रत्यवनेजन किया जाता है। उसमें 'प्रत्यवनेनिक्ष्व' कहना चाहिये। पिण्डदानका संकल्प इस प्रकार है—ओमद्यामुकगोत्र पितः अमुकशर्मन् अमुकश्राद्धे एष पिण्डस्ते स्वधा।' इसी प्रकार पितामह आदिको भी देना चाहिये। पिण्डदानके अनन्तर पिण्डके आधारभूत कुशोंमें अपने हाथ पोंछकर कहे—'ॐ लेपभागभुजः पितरस्तृप्यन्तु।' फिर सव्यभावसे तीन बार आचमन करके श्रीहरिका स्मरण करे। तदनन्तर अपसव्यभावसे दक्षिणकी ओर मुँह करके कहे—'अत्र पितरो मादयध्वं यथाभागमावृषायध्वम्।' (यजु० २। ३१) फिर वामावर्तसे उत्तरकी ओर मुँहकर श्वास रोककर प्रसन्नचित्त हो प्रकाशमान मूर्तिवाले पितरोंका ध्यान करते हुए फिर उसी मार्गसे लौटकर दक्षिणाभिमुख हो जाय और कहे—'अमीमदन्त पितरो यथाभागमावृषायिषत।' (यजु० २। ३१) इसके बाद पहलेके अवनेजनपात्रमें जो शेष जल हो, उसे पिण्डपर गिराकर प्रत्यवनेजन दें। उसका संकल्प अवनेजनकी ही भाँति है। 'अवनेनिक्ष्व'को 'प्रत्यवनेनिक्ष्व' कहना चाहिये। बहुवचनमें 'प्रत्यवनेनिग्ध्वम्' का उच्चारण करना उचित है।

२. प्रत्यवनेजनके बाद नीवी-विस्रंसन करके सव्यभावसे आचमन करे। फिर अपसव्य हो बायें हाथसे दाहिने हाथमें सूत्र लेकर 'ॐ नमो वः पितरो रसाय नमो वः पितरः शोषाय नमो वः पितरो जीवाय नमो वः पितरः स्वधायै नमो वः पितरो घोराय नमो वः पितरो मन्यवे नमो वः पितरः पितरो नमो वो गृहान्नः पितरो दत्तसतो वःपितरो देष्म' (यजु० २। ३२)—इस मन्त्रका पाठ करके 'एतद् वः पितरो वासः' (यजु० २। ३२)—ऐसा कहते हुए छहों पिण्डोंपर सूत्र रखकर संकल्प करे—'अद्यामुकगोत्र पितः (पितामह, प्रपितामह आदि) अमुकशर्मन् अमुकश्राद्धे पिण्डे एतत्ते वासः स्वधा।' तत्पश्चात् 'ॐ शिवा आपः सन्तु।' कहकर जल, 'ॐ सौमनस्यम् अस्तु।' इस वाक्यका उच्चारण करके फूल, 'ॐ अक्षतं चारिष्टमस्तु।' कहकर अक्षत अन्नपात्रोंपर डाले। फिर मोटक, तिल और जल लेकर 'ॐ अद्यामुकगोत्रस्य पितुः अमुकशर्मणः अमुकश्राद्धे दत्तान्येतान्यन्नपानादिकानि अक्षय्याणि सन्तु।' इस प्रकार संकल्प पढ़कर छोड़ दे। तत्पश्चात् सव्य हो दक्षिण दिशाकी ओर देखते हुए पिण्डोंके ऊपर पूर्वाग्र जलधारा गिरावे और पढ़े—'ॐ अघोराः पितरः सन्तु।' इसके बाद हाथ जोड़ पूर्वाभिमुख हो मूलमें कहे अनुसार आशीः-प्रार्थना करे।

३. इसके बाद स्वयं झुककर सब पिण्डोंको नाकसे सूँघ ले और उठा दे। पिण्डोंके आधारभूत कुशोंको तथा उल्मुक (जिससे अङ्गार-भ्रमण कराया गया था)-को अग्निमें डाल दे।

तथा पितृश्राद्धकी प्रतिष्ठाके लिये यथाशक्ति क्रमशः सुवर्ण और रजतकी दक्षिणा दे।* इसके बाद '**विश्वेदेवाः प्रीयन्ताम्।**'—ऐसा कहकर देवताओंका विसर्जन करे और '**वाजेवाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः। अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः॥**' (यजु० २१।११)—इस मन्त्रसे पिता आदिका विसर्जन करे॥ २६—३२॥

(तत्पश्चात् सव्यभावसे '**देवताभ्यश्च०**' इत्यादि पढ़कर भगवान्‌का स्मरण करे। फिर अपसव्यभावसे रक्षादीपको बुझा दे। उसके बाद सव्यभावसे भगवान्‌से प्रार्थना करे—'**प्रमादात्कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत्। स्मरणादेव तद् विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः॥ यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु। न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम्॥**' इत्यादि) तदनन्तर '**आ मा वाजस्य०**' (यजु० ९।१९) इत्यादि मन्त्र पढ़कर ब्राह्मणके पीछे-पीछे जाय और ब्राह्मणकी परिक्रमा करके अपने घरमें जाय। प्रत्येक मासकी अमावस्याको इसी प्रकार पार्वण-श्राद्ध करना चाहिये॥ ३३॥

अब मैं एकोद्दिष्ट श्राद्धका वर्णन करूँगा। यह श्राद्ध पूर्ववत् ही करे। इसमें इतनी ही विशेषता है कि एक ही पवित्रक, एक ही अर्घ्य और एक ही पिण्ड देना चाहिये। इसमें आवाहन, अग्निकरण और विश्वेदेव-पूजन नहीं होता। जहाँ तृप्ति पूछनी हो, वहाँ '**स्वदितम्?**' ऐसा प्रश्न करे। ब्राह्मण उत्तर दे—'**सुस्वदितम्।**','**उपतिष्ठताम्**'— कहकर अर्पण करे। अक्षय्योदक भी दे। विसर्जनके समय '**अभिरम्यताम्**' का उच्चारण करे। ब्राह्मण कहें—'**अभिरताः स्मः।**' शेष सभी बातें पूर्ववत् करनी चाहिये॥ ३४—३६॥

अब सपिण्डीकरणका वर्णन करूँगा। यह वर्षके अन्तमें और मध्यमें भी होता है। इसमें पितरोंके लिये तीन पात्र होते हैं और प्रेतके लिये एक पात्र अलग होता है। चारों अर्घ्यपात्रोंमें पवित्री, तिल, फूल, चन्दन और जल डालकर भर दिया जाता है। फिर उन्हींसे श्राद्धकर्ता पुरुष अर्घ्य देता है। '**ये समानाः०**' (यजु० १९।४५-४६) इत्यादि दो मन्त्रोंसे प्रेतके अर्घ्यपात्रको क्रमशः तीनों पितरोंके अर्घ्यपात्रमें मिलाया जाता है। इसी प्रकार पिण्डदान, दान आदि पूर्ववत् करके प्रेतके पिण्डको पितरोंके पिण्डमें मिलाया जाता है। इससे प्रेतको 'पितृ' पदवी प्राप्त होती है॥ ३७—३९॥

अब 'आभ्युदयिक' श्राद्ध बतलाता हूँ। इसकी सब विधि पूर्ववत् है। इसमें पितृसम्बन्धी मन्त्रके अतिरिक्त अन्य मन्त्रोंका जप करना चाहिये। पूर्वाह्णकालमें आभ्युदयिक श्राद्ध और उसकी प्रदक्षिणा करनी चाहिये। इसमें कोमल कुश ही उपचार है। यहाँ तिलके स्थानपर जौका ही उपयोग होता है। ब्राह्मणोंसे पितरोंकी तृप्तिके लिये प्रश्न करते समय '**सम्पन्नम्?**' का प्रयोग करना चाहिये। ब्राह्मण उत्तर दे '**सुसम्पन्नम्**'। इसमें दही, अक्षत और बेर आदिके ही पिण्ड होते हैं। आवाहनके समय पूछे—'मैं 'नान्दीमुख' नामवाले

* दक्षिणाका संकल्प इस प्रकार है—त्रिकुशा, जौ और जल हाथमें लेकर—'ॐ अद्यामुकगोत्राणां पितृपितामहप्रपितामहानाम् (मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहानां च) अमुकामुकशर्मणाम् अमुकश्राद्धसम्बन्धिनां विश्वेषां देवानां कृतैतदमुकश्राद्धप्रतिष्ठार्थं हिरण्यमग्निदैवत्यं तन्मूल्योपकल्पितं द्रव्यं वा यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणात्वेन दातुमहमुत्सृजे।' तुरंत दिया जाता हो तो 'सम्प्रददे' कहना चाहिये। मोटक, तिल, जल लेकर 'ओमद्यामुकगोत्रस्य पितुः अमुकशर्मणः कृतैतच्छ्राद्धप्रतिष्ठार्थं रजतं चन्द्रदैवत्यं तन्मूल्योपकल्पितं द्रव्यं यथानाम' इत्यादि कहकर पिता आदिके लिये दक्षिणा दें।

पितरोंका आवाहन करूँगा।' इसी प्रकार अक्षय्य-तृप्तिके लिये '**प्रीयताम्**' ऐसा कहे। फिर पूछे—'मैं नान्दीमुख पितरोंका तृप्ति-वाचन कराऊँगा।' ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर कहे—'**नान्दीमुखाः पितरः प्रीयन्ताम्।**' (नान्दीमुख पितर तृप्त एवं प्रसन्न हों।) (माता, पितामही, प्रपितामही) पिता, पितामह, प्रपितामह और (सपत्नीक) मातामह, प्रमातामह तथा वृद्धप्रमातामह—ये नान्दीमुख पितर हैं॥ ४०—४४॥

आभ्युदयिक श्राद्धमें '**स्वधा**' का प्रयोग न करे और युग्म ब्राह्मणोंको भोजन करावे। अब मैं पितरोंकी तृप्ति बतलाता हूँ। ग्राम्य अन्नसे तथा जंगली कन्द, मूल, फल आदिसे एक मासतक पितरोंकी तृप्ति बनी रहती है और गायके दूध एवं खीरसे एक वर्षतक पितरोंकी तृप्ति रहती है तथा वर्षा ऋतुमें त्रयोदशीको विशेषतः मघा-नक्षत्रमें किया हुआ श्राद्ध अक्षय होता है।[१] मन्त्रका पाठ करनेवाला, अग्निहोत्री, शाखाका अध्ययन करनेवाला, छहों अङ्गोंका विद्वान्, त्रिणाचिकेत[२], त्रिमधु[३], धर्मद्रोणका[४] पाठ करनेवाला, त्रिसुपर्ण[५] तथा बृहत् सामका ज्ञाता—ये ब्राह्मण पंक्तिपावन (पंक्तिको पवित्र करनेवाले) माने गये हैं॥ ४५—४७॥

अब काम्य श्राद्धकल्पका वर्णन करूँगा। प्रतिपदाको श्राद्ध करनेसे बहुत धन प्राप्त होता है। द्वितीयाको श्राद्ध करनेसे श्रेष्ठ स्त्री मिलती है। चतुर्थीको किया हुआ श्राद्ध धर्म और कामको देनेवाला है। पुत्रकी इच्छावाला पुरुष पञ्चमीको श्राद्ध करे। षष्ठीके श्राद्धसे मनुष्य श्रेष्ठ होता है। सप्तमीके श्राद्धसे खेतीमें लाभ होता और अष्टमीके श्राद्धसे अर्थकी प्राप्ति होती है। नवमीको श्राद्धका अनुष्ठान करनेसे एक खुरवाले घोड़े आदि पशु प्राप्त होते हैं। दशमीके श्राद्धसे गो-समुदायकी उपलब्धि होती है। एकादशीके श्राद्धसे परिवार और द्वादशीके श्राद्धसे धन-धान्य बढ़ता है। त्रयोदशीको श्राद्ध करनेसे अपनी जातिमें श्रेष्ठता प्राप्त होती है। चतुर्दशीको उसीका श्राद्ध किया जाता है, जिसका शस्त्रद्वारा वध हुआ है। अमावास्याको सम्पूर्ण मृत व्यक्तियोंके लिये श्राद्ध करनेका विधान है॥ ४८—५१॥

'जो दशार्णदेशके वनमें सात व्याध थे, वे कालंजर गिरिपर मृग हुए, शरद्वीपमें चक्रवाक हुए तथा मानस सरोवरमें हंस हुए। वे ही अब कुरुक्षेत्रमें वेदोंके पारंगत विद्वान् ब्राह्मण हुए हैं। अब उन्होंने दूरतकका मार्ग तय कर लिया है; तुमलोग उनसे बहुत पीछे रहकर कष्ट पा रहे

---

१. कुछ लोग श्राद्धमें मांसका भी विधान मानते हैं, परंतु श्राद्धकर्ममें मांस कितना निन्दनीय है, यह श्रीमद्भागवत, सप्तम स्कन्ध, अध्याय १५ के इन श्लोकोंसे स्पष्ट हो जाता है—

न दद्यादामिषं श्राद्धे न चाद्याद्धर्मतत्त्ववित्। मुन्यन्नैः स्यात्परा प्रीतिर्यथा न पशुहिंसया॥
नैतादृशः परो धर्मो नृणां सद्धर्ममिच्छताम्। न्यासो दण्डस्य भूतेषु मनोवाक्कायजस्य यः॥
द्रव्ययज्ञैर्यक्ष्यमाणं दृष्ट्वा भूतानि बिभ्यति। एष माकरुणो हन्यादतज्ज्ञो ह्यसुतृब् ध्रुवम्॥
(७-८, १०)

"धर्मके मर्मको समझनेवाला पुरुष श्राद्धमें (खानेके लिये) मांस न दे और न स्वयं ही खाय; क्योंकि पितृगणकी तृप्ति जैसी मुनिजनोचित आहारसे होती है, वैसी पशुहिंसासे नहीं होती। सद्धर्मकी इच्छावाले पुरुषोंके लिये 'सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति मन, वाणी और शरीरसे दण्डका त्याग कर देना'—इसके समान और कोई श्रेष्ठ धर्म नहीं है। पुरुषको द्रव्ययज्ञसे यजन करते देखकर जीव डरते हैं कि 'यह अपने ही प्राणोंका पोषण करनेवाला निर्दय अज्ञानी मुझे अवश्य मार डालेगा।'" अतएव श्राद्धकर्ममें मांसका उपयोग कभी नहीं करना चाहिये।

२. द्वितीय कठके अन्तर्गत 'अयं वाव यः पवते' इत्यादि 'त्रिणाचिकेत' नामक तीन अनुवाकोंको पढ़ने या उसका अनुष्ठान करनेवाला।

३. 'मधुवाता०' इत्यादि तीन ऋचाओंका अध्ययन और मधुव्रतका आचरण करनेवाला।

४. 'धर्मव्याधा दशार्णेषु' इत्यादि प्रसंगका नाम यहाँ 'धर्मद्रोण' कहा गया है।

५. 'ब्रह्म मेतु माम्' इत्यादि तीन अनुवाकोंका अध्ययन और तत्सम्बन्धी व्रत करनेवाला।

हो।'* श्राद्ध आदिके अवसरपर इसका पाठ करनेसे श्राद्ध पूर्ण एवं ब्रह्मलोक देनेवाला होता है। यदि पितामह जीवित हो तो पुत्र आदि अपने पिताका तथा पितामहके पिता और उनके भी पिताका श्राद्ध करे। यदि प्रपितामह जीवित हो तो पिता, पितामह एवं वृद्धप्रपितामहका श्राद्ध करे। इसी प्रकार माता आदि तथा मातामह आदिके श्राद्धमें भी करना चाहिये। जो इस श्राद्धकल्पका पाठ करता है, उसे श्राद्ध करनेका फल मिलता है॥ ५२—५६॥

उत्तम तीर्थमें, युगादि और मन्वादि तिथिमें किया हुआ श्राद्ध अक्षय होता है। आश्विन शुक्ला नवमी, कार्तिककी द्वादशी, माघ तथा भाद्रपदकी तृतीया, फाल्गुनकी अमावास्या, पौष शुक्ला एकादशी, आषाढ़की दशमी, माघमासकी सप्तमी, श्रावण कृष्णपक्षकी अष्टमी, आषाढ़, कार्तिक, फाल्गुन तथा ज्येष्ठकी पूर्णिमा—ये तिथियाँ स्वायम्भुव आदि मनुसे सम्बन्ध रखनेवाली हैं। इनके आदिभागमें किया हुआ श्राद्ध अक्षय होता है। गया, प्रयाग, गङ्गा, कुरुक्षेत्र, नर्मदा, श्रीपर्वत, प्रभास, शालग्रामतीर्थ (गण्डकी), काशी, गोदावरी तथा श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्र आदि तीर्थोंमें श्राद्ध उत्तम होता है॥ ५७—६२॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'श्राद्ध-कल्पका वर्णन' नामक एक सौ सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११७॥

एक सौ अठारहवाँ अध्याय

भारतवर्षका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—समुद्रके उत्तर और हिमालयके दक्षिण जो वर्ष है, उसका नाम 'भारत' है। उसका विस्तार नौ हजार योजन है। स्वर्ग तथा अपवर्ग पानेकी इच्छावाले पुरुषोंके लिये यह कर्मभूमि है। महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, हिमालय, विन्ध्य और पारियात्र—ये सात यहाँके कुल-पर्वत हैं। इन्द्रद्वीप, कसेरु, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गान्धर्व और वारुण—ये आठ द्वीप हैं। समुद्रसे घिरा हुआ भारत नवाँ द्वीप है॥ १—४॥

भारतद्वीप उत्तरसे दक्षिणकी ओर हजारों योजन लंबा है। भारतके उपर्युक्त नौ भाग हैं। भारतकी स्थिति मध्यमें है। इसमें पूर्वकी ओर किरात और (पश्चिममें) यवन रहते हैं। मध्यभागमें ब्राह्मण आदि वर्णोंका निवास है। वेद-स्मृति आदि नदियाँ पारियात्र पर्वतसे निकली हैं। विन्ध्याचलसे नर्मदा आदि प्रकट हुई हैं। सह्य पर्वतसे तापी, पयोष्णी, गोदावरी, भीमरथी और कृष्णवेणा आदि नदियोंका प्रादुर्भाव हुआ है॥ ५—७॥

मलयसे कृतमाला आदि और महेन्द्र पर्वतसे त्रिसामा आदि नदियाँ निकली हैं। शुक्तिमान्से कुमारी आदि और हिमालयसे चन्द्रभागा आदिका प्रादुर्भाव हुआ है। भारतके पश्चिमभागमें कुरु, पाञ्चाल और मध्यदेश आदिकी स्थिति है॥ ८॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'भारतवर्षका वर्णन' नामक एक सौ अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११८॥

---

* सप्तव्याधा दशारण्ये मृगाः कालञ्जरे गिरौ। चक्रवाकाः शरद्वीपे हंसाः सरसि मानसे॥
तेऽपि जाताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः। प्रस्थिता दूरमध्वानं यूयं तेभ्योऽवसीदत॥

(अग्नि पु० ११७। ५६-५७)

एक सौ उन्नीसवाँ अध्याय

जम्बू आदि महाद्वीपों तथा समस्त भूमिके विस्तारका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—जम्बूद्वीपका विस्तार एक लाख योजन है। वह सब ओरसे एक लाख योजन विस्तृत खारे पानीके समुद्रसे घिरा है। उस क्षारसमुद्रको घेरकर प्लक्षद्वीप स्थित है। मेधातिथिके सात पुत्र प्लक्षद्वीपके स्वामी हैं। शान्तभय, शिशिर, सुखोदय, आनन्द, शिव, क्षेम तथा ध्रुव—ये सात ही मेधातिथिके पुत्र हैं; उन्हींके नामसे उक्त सात वर्ष हैं। गोमेध, चन्द्र, नारद, दुन्दुभि, सोमक, सुमना और शैल—ये उन वर्षोंके सुन्दर मर्यादापर्वत हैं। वहाँके सुन्दर निवासी 'वैभ्राज' नामसे विख्यात हैं। इस द्वीपमें सात प्रधान नदियाँ हैं। प्लक्षसे लेकर शाकद्वीपतकके लोगोंकी आयु पाँच हजार वर्ष है। वहाँ वर्णाश्रम-धर्मका पालन किया जाता है॥ १—५॥

आर्य, कुरु, विविंश तथा भावी—यही वहाँके ब्राह्मण आदि वर्णोंकी संज्ञाएँ हैं। चन्द्रमा उनके आराध्यदेव हैं। प्लक्षद्वीपका विस्तार दो लाख योजन है। वह उतने ही बड़े इक्षुरसके समुद्रसे घिरा है। उसके बाद शाल्मलद्वीप है, जो प्लक्षद्वीपसे दुगुना बड़ा है। वपुष्मान्‌के सात पुत्र शाल्मलद्वीपके स्वामी हुए। उनके नाम हैं—श्वेत, हरित, जीमूत, लोहित, वैद्युत, मानस और सुप्रभ। इन्हीं नामोंसे वहाँके सात वर्ष हैं। वह प्लक्षद्वीपसे दुगुना है तथा उससे दुगुने परिमाणवाले 'सुरोद' नामक (मदिराके) समुद्रसे घिरा हुआ है। कुमुद, अनल, बलाहक, द्रोण, कङ्क, महिष और ककुद्मान्—ये मर्यादापर्वत हैं। सात ही वहाँ प्रधान नदियाँ हैं। कपिल, अरुण, पीत और कृष्ण—ये वहाँके ब्राह्मण आदि वर्ण हैं। वहाँके लोग वायु-देवताकी पूजा करते हैं। वह मदिराके समुद्रसे घिरा है॥ ६—१० $\frac{1}{2}$॥

इसके बाद कुशद्वीप है। ज्योतिष्मान्‌के पुत्र उस द्वीपके अधीश्वर हैं। उद्भिद, धेनुमान्, द्वैरथ, लम्बन, धैर्य, कपिल और प्रभाकर—ये सात उनके नाम हैं। इन्हींके नामपर वहाँ सात वर्ष हैं। दमी[1] आदि वहाँके ब्राह्मण हैं, जो ब्रह्मरूपधारी भगवान् विष्णुका पूजन करते हैं। विद्रुम, हेमशैल, द्युतिमान्, पुष्पवान्, कुशेशय, हरि और मन्दराचल—ये सात वहाँ के वर्षपर्वत हैं। यह कुशद्वीप अपने ही बराबर विस्तारवाले घीके समुद्रसे घिरा हुआ है और वह घृतसमुद्र क्रौञ्चद्वीपसे परिवेष्टित है। राजा द्युतिमान्‌के पुत्र क्रौञ्चद्वीपके स्वामी हैं। उन्हींके नामपर वहाँके वर्ष प्रसिद्ध हैं॥ ११—१४॥

कुशल, मनोनुग, उष्ण, प्रधान, अन्धकारक, मुनि और दुन्दुभि—ये सात द्युतिमान्‌के पुत्र हैं। उस द्वीपके मर्यादापर्वत और नदियाँ भी सात ही हैं। पर्वतोंके नाम इस प्रकार हैं—क्रौञ्च, वामन, अन्धकारक, रत्नशैल[2], देवावृत, पुण्डरीक और दुन्दुभि। ये द्वीप परस्पर उत्तरोत्तर दुगुने विस्तारवाले हैं। उन द्वीपोंमें जो वर्ष पर्वत हैं, वे भी द्वीपोंके समान ही पूर्ववर्ती द्वीपके पर्वतोंसे दुगुने विस्तारवाले हैं। वहाँके ब्राह्मण आदि वर्ण क्रमशः पुष्कर, पुष्कल, धन्य और तिष्य—इन नामोंसे प्रसिद्ध हैं। वे वहाँ श्रीहरिकी आराधना करते हैं। क्रौञ्चद्वीप दधिमण्डोदक (मट्ठे)-के समुद्रसे घिरा हुआ है और वह समुद्र शाकद्वीपसे परिवेष्टित है। वहाँके राजा भव्यके जो सात पुत्र हैं, वे ही शाकद्वीपके शासक हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—जलद, कुमार, सुकुमार, मणीवक, कुशोत्तर, मोदाकी और द्रुम। इन्हींके नामसे वहाँके वर्ष

१. दमी, शुषुमी, स्नेह और मन्दे—ये क्रमशः वहाँके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंकी संज्ञाएँ हैं।

२. यहाँ मूलमें छः नाम ही आये हैं, तथापि पुराणान्तरमें आये हुए 'चतुर्थो रत्नशैलश्च' के अनुसार अर्थमें रत्नशैल बढ़ा दिया गया है।

प्रसिद्ध हैं॥ १५—१९॥

उदयगिरि, जलधर, रैवत, श्याम, कोद्रक, आम्बिकेय और सुरम्य पर्वत केसरी—ये सात वहाँके मर्यादापर्वत हैं तथा सात ही वहाँकी प्रसिद्ध नदियाँ हैं[1]। मग, मगध, मानस्य और मन्दग—ये वहाँके ब्राह्मण आदि वर्ण हैं, जो सूर्यरूपधारी भगवान् नारायणकी आराधना करते हैं। शाकद्वीप क्षीरसागरसे घिरा हुआ है। क्षीरसागर पुष्करद्वीपसे परिवेष्टित है। वहाँके अधिकारी राजा सवनके दो पुत्र हुए, जिनके नाम थे—महावीत और धातकि। उन्हींके नामसे वहाँके दो वर्ष प्रसिद्ध हैं॥ २०—२२॥

वहाँ एक ही मानसोत्तर नामक वर्षपर्वत विद्यमान है, जो उस वर्षके मध्यभागमें वलयाकार स्थित है। उसका विस्तार कई सहस्र योजन है[2]। ऊँचाई भी विस्तारके समान ही है। वहाँके लोग दस हजार वर्षोंतक जीवन धारण करते हैं। वहाँ देवता लोग ब्रह्माजीकी पूजा करते हैं। पुष्करद्वीप स्वादिष्ट जलवाले समुद्रसे घिरा हुआ है। उस समुद्रका विस्तार उस द्वीपके समान ही है। महामुने! समुद्रोंमें जो जल है, वह कभी घटता-बढ़ता नहीं है। शुक्ल और कृष्ण—दोनों पक्षोंमें चन्द्रमाके उदय और अस्तकालमें केवल पाँच सौ दस अङ्गुलतक समुद्रके जलका घटना और बढ़ना देखा जाता है (परंतु इससे जलमें न्यूनता या अधिकता नहीं होती है)॥ २३—२६॥

मीठे जलवाले समुद्रके चारों ओर उससे दुगुने परिमाणवाली भूमि सुवर्णमयी है, किंतु वहाँ कोई भी जीव-जन्तु नहीं रहते हैं। उसके बाद लोकालोकपर्वत है, जिसका विस्तार दस हजार योजन है। लोकालोकपर्वत एक ओरसे अन्धकारद्वारा आवृत है और वह अन्धकार अण्डकटाहसे आवृत है। अण्डकटाहसहित सारी भूमिका विस्तार पचास करोड़ योजन है॥ २७-२८॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'महाद्वीप आदिका वर्णन' नामक एक सौ उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११९॥

एक सौ बीसवाँ अध्याय

भुवनकोश-वर्णन

अग्निदेव कहते हैं— वसिष्ठ! भूमिका विस्तार सत्तर हजार योजन बताया गया है। उसकी ऊँचाई दस हजार योजन है। पृथ्वीके भीतर सात पाताल हैं। एक-एक पाताल दस-दस हजार योजन विस्तृत है। सात पातालोंके नाम इस प्रकार हैं—अतल, वितल, नितल, प्रकाशमान महातल, सुतल, तलातल और सातवाँ रसातल या पाताल। इन पातालोंकी भूमियाँ क्रमशः काली, पीली, लाल, सफेद, कँकरीली, पथरीली और सुवर्णमयी हैं। वे सभी पाताल बड़े रमणीय हैं। उनमें दैत्य और दानव आदि सुखपूर्वक निवास करते हैं। समस्त पातालोंके नीचे शेषनाग विराजमान हैं, जो भगवान् विष्णुके तमोगुण-प्रधान विग्रह हैं। उनमें अनन्त गुण हैं, इसीलिये उन्हें 'अनन्त' भी कहते हैं। वे अपने मस्तकपर इस पृथ्वीको धारण करते हैं॥ १—४॥

पृथ्वीके नीचे अनेक नरक हैं, परंतु जो भगवान् विष्णुका भक्त है, वह उन नरकोंमें नहीं पड़ता है। सूर्यदेवसे प्रकाशित होनेवाली पृथ्वीका जितना विस्तार है, उतना ही नभोलोक (अन्तरिक्ष या भुवर्लोक)-का विस्तार माना गया है। वसिष्ठ! पृथ्वीसे एक लाख योजन दूर सूर्यमण्डल है।

---

१. पुराणान्तरमें इन नदियोंके नाम इस प्रकार मिलते हैं—सुकुमारी, कुमारी, नलिनी, धेनुका, इक्षु, वेणुका और गभस्ति।

२. विष्णुपुराणमें इसकी ऊँचाई और विस्तार—दोनों ही पचास हजार योजन बताये गये हैं। देखिये विष्णुपुराण २। ४। ७६।

सूर्यसे लाख योजनकी दूरीपर चन्द्रमा विराजमान हैं। चन्द्रमासे एक लाख योजन ऊपर नक्षत्र-मण्डल प्रकाशित होता है। नक्षत्रमण्डलसे दो लाख योजन ऊँचे बुध विराजमान हैं। बुधसे दो लाख योजन ऊपर शुक्र हैं। शुक्रसे दो लाख योजनकी दूरीपर मङ्गलका स्थान है। मङ्गलसे दो लाख योजन ऊपर बृहस्पति हैं। बृहस्पतिसे दो लाख योजन ऊपर शनैश्चरका स्थान है। उनसे लाख योजन ऊपर सप्तर्षियोंका स्थान है। सप्तर्षियोंसे लाख योजन ऊपर ध्रुव प्रकाशित होता है। त्रिलोकीकी इतनी ही ऊँचाई है, अर्थात् त्रिलोकी (भूर्भुवः स्वः)-के ऊपरी भागकी चरम सीमा ध्रुव ही है॥ ५—८॥

ध्रुवसे कोटि योजन ऊपर 'महर्लोक' है, जहाँ कल्पान्तजीवी भृगु आदि सिद्धगण निवास करते हैं। महर्लोकसे दो करोड़ ऊपर 'जनलोक'की स्थिति है, जहाँ सनक, सनन्दन आदि सिद्ध पुरुष निवास करते हैं। जनलोकसे आठ करोड़ योजन ऊपर 'तपोलोक' है, जहाँ वैराज नामवाले देवता निवास करते हैं। तपोलोकसे छानबे करोड़ योजन ऊपर 'सत्यलोक' विराजमान है। सत्यलोकमें पुनः मृत्युके अधीन न होनेवाले पुण्यात्मा देवता एवं ऋषि-मुनि निवास करते हैं। उसीको 'ब्रह्मलोक' भी कहा गया है। जहाँतक पैरोंसे चलकर जाया जाता है, वह सब 'भूलोक' है। भूलोकसे सूर्यमण्डलके बीचका भाग 'भुवर्लोक' कहा गया है। सूर्यलोकसे ऊपर ध्रुवलोकतकके भागको 'स्वर्गलोक' कहते हैं। उसका विस्तार चौदह लाख योजन है। यही त्रैलोक्य है और यही अण्डकटाहसे घिरा हुआ विस्तृत ब्रह्माण्ड है। यह ब्रह्माण्ड क्रमशः जल, अग्नि, वायु और आकाशरूप आवरणोंद्वारा बाहरसे घिरा हुआ है। इन सबके ऊपर अहंकारका आवरण है। ये जल आदि आवरण उत्तरोत्तर दसगुने बड़े हैं। अहंकाररूप आवरण महत्तत्त्वमय आवरणसे घिरा हुआ है॥ ९—१३॥

महामुने! ये सारे आवरण एकसे दूसरेके क्रमसे दसगुने बड़े हैं। महत्तत्त्वको भी आवृत करके प्रधान (प्रकृति) स्थित है। वह अनन्त है; क्योंकि उसका कभी अन्त नहीं होता। इसीलिये उसकी कोई संख्या अथवा माप नहीं है। मुने! वह सम्पूर्ण जगत्का कारण है। उसे ही 'अपरा प्रकृति' कहते हैं। उसमें ऐसे-ऐसे असंख्य ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुए हैं। जैसे काठमें अग्नि और तिलमें तेल रहता है, उसी प्रकार प्रधानमें स्वयंप्रकाश चेतनात्मा व्यापक पुरुष विराजमान है॥ १४—१६ $\frac{1}{2}$॥

महाज्ञान मुने! ये संश्रयधर्मी (परस्पर संयुक्त हुए) प्रधान और पुरुष सम्पूर्ण भूतोंकी आत्मभूता विष्णुशक्तिसे आवृत हैं। महामुने! भगवान् विष्णुकी स्वरूपभूता वह शक्ति ही प्रकृति और पुरुषके संयोग और वियोगमें कारण है। वही सृष्टिके समय उनमें क्षोभका कारण बनती है। जैसे जलके सम्पर्कमें आयी हुई वायु उसकी कणिकाओंमें व्याप्त शीतलताको धारण करती है, उसी प्रकार भगवान् विष्णुकी शक्ति भी प्रकृति-पुरुषमय जगत्को धारण करती है। विष्णु-शक्तिका आश्रय लेकर ही देवता आदि प्रकट होते हैं। वे भगवान् विष्णु स्वयं ही साक्षात् ब्रह्म हैं, जिनसे इस सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्ति होती है॥ १७—२० $\frac{1}{2}$॥

मुनिश्रेष्ठ! सूर्यदेवके रथका विस्तार नौ सहस्र योजन है तथा उस रथका ईषादण्ड (हरसा) इससे दूना बड़ा अर्थात् अठारह हजार योजनका है। उसका धुरा डेढ़ करोड़ सात लाख योजन लंबा है, जिसमें उस रथका पहिया लगा हुआ है। उसमें पूर्वाह्न, मध्याह्न और अपराह्नरूप तीन नाभियाँ हैं। संवत्सर, परिवत्सर, इडावत्सर, अनुवत्सर और वत्सर—ये पाँच प्रकारके वर्ष उसके पाँच अरे हैं। छहों ऋतुएँ उसकी छः नेमियाँ हैं और उत्तर-दक्षिण दो अयन उसके शरीर हैं। ऐसे संवत्सरमय रथचक्रमें सम्पूर्ण कालचक्र प्रतिष्ठित है। महामते! भगवान् सूर्यके रथका दूसरा धुरा साढ़े पैंतालीस हजार योजन लंबा है। दोनों धुरोंके परिमाणके तुल्य ही उसके

युगार्द्धोंका* परिमाण है॥ २१—२५॥

उस रथके दो धुरोंमेंसे जो छोटा है वह, और उसका युगार्द्ध ध्रुवके आधारपर स्थित है। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले मुने! गायत्री, बृहती, उष्णिक्, जगती, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् और पंक्ति—ये सात छन्द ही सूर्यदेवके सात घोड़े कहे गये हैं। सूर्यका दिखायी देना उदय है और उनका दृष्टिसे ओझल हो जाना ही अस्तकाल है, ऐसा जानना चाहिये। वसिष्ठ! जितने प्रदेशमें ध्रुव स्थित है, पृथ्वीसे लेकर उस प्रदेश-पर्यन्त सम्पूर्ण देश प्रलयकालमें नष्ट हो जाता है। सप्तर्षियोंसे उत्तर दिशामें ऊपरकी ओर जहाँ ध्रुव स्थित है, आकाशमें वह दिव्य एवं प्रकाशमान स्थान ही विराट्रूपधारी भगवान् विष्णुका तीसरा पद है। पुण्य और पापके क्षीण हो जानेपर दोषरूपी पङ्कसे रहित संयतचित्त महात्माओंका यही परम उत्तम स्थान है। इस विष्णुपदसे ही गङ्गाका प्राकट्य हुआ है, जो स्मरणमात्रसे सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाली हैं॥ २६—२९$\frac{१}{२}$॥

आकाशमें जो शिशुमार (सूँस)-की आकृतिवाला ताराओंका समुदाय देखा जाता है, उसे भगवान् विष्णुका स्वरूप जानना चाहिये। उस शिशुमारचक्रके पुच्छभागमें ध्रुवकी स्थिति है। यह ध्रुव स्वयं घूमता हुआ चन्द्रमा और सूर्य आदि ग्रहोंको घुमाता है। भगवान् सूर्यका वह रथ प्रतिमास भिन्न-भिन्न आदित्य-देवता, श्रेष्ठ ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, ग्रामणी (यक्ष), सर्प तथा राक्षसोंसे अधिष्ठित होता है। भगवान् सूर्य ही सर्दी, गर्मी तथा जल-वर्षाके कारण हैं। वे ही ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदमय भगवान् विष्णु हैं; वे ही शुभ और अशुभके कारण हैं॥ ३०—३२$\frac{१}{२}$॥

चन्द्रमाका रथ तीन पहियोंसे युक्त है। उस रथके बायें और दायें भागमें कुन्द-कुसुमकी भाँति श्वेत रंगके दस घोड़े जुते हुए हैं। उसी रथके द्वारा वे चन्द्रदेव नक्षत्रलोकमें विचरण करते हैं। तैंतीस हजार तैंतीस सौ तैंतीस (३६३३३) देवता चन्द्रदेवकी अमृतमयी कलाओंका पान करते हैं। अमावास्याके दिन 'अमा' नामक एक रश्मि (कला)-में स्थित हुए पितृगण चन्द्रमाकी बची हुई दो कलाओंमेंसे एकमात्र अमृतमयी कलाका पान करते हैं। चन्द्रमाके पुत्र बुधका रथ वायु और अग्निमय द्रव्यका बना हुआ है। उसमें आठ शीघ्रगामी घोड़े जुते हुए हैं। उसी रथसे बुध आकाशमें विचरण करते हैं॥ ३३—३६॥

शुक्रके रथमें भी आठ घोड़े जुते होते हैं। मङ्गलके रथमें भी उतने ही घोड़े जोते जाते हैं। बृहस्पति और शनैश्चरके रथ भी आठ-आठ घोड़ोंसे युक्त हैं। राहु और केतुके रथोंमें भी आठ-आठ ही घोड़े जोते जाते हैं। विप्रवर! भगवान् विष्णुका शरीरभूत जो जल है, उससे पर्वत और समुद्रादिके सहित कमलके समान आकारवाली पृथ्वी उत्पन्न हुई। ग्रह, नक्षत्र, तीनों लोक, नदी, पर्वत, समुद्र और वन—ये सब भगवान् विष्णुके ही स्वरूप हैं। जो है और जो नहीं है, वह सब भगवान् विष्णु ही हैं। विज्ञानका विस्तार भी भगवान् विष्णु ही हैं। विज्ञानसे अतिरिक्त किसी वस्तुकी सत्ता नहीं है। भगवान् विष्णु ज्ञानस्वरूप ही हैं। वे ही परमपद हैं। मनुष्यको वही करना चाहिये, जिससे चित्तशुद्धिके द्वारा विशुद्ध ज्ञान प्राप्त करके वह विष्णुस्वरूप हो जाय। सत्य एवं अनन्त ज्ञानस्वरूप ब्रह्म ही 'विष्णु' हैं॥ ३७—४० $\frac{१}{२}$॥

जो इस भुवनकोशके प्रसंगका पाठ करेगा, वह सुखस्वरूप परमात्मपदको प्राप्त कर लेगा। अब ज्यौतिषशास्त्र आदि विद्याओंका वर्णन करूँगा। उसमें विवेचित शुभ और अशुभ—सबके स्वामी भगवान् श्रीहरि ही हैं॥ ४१-४२॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'भुवनकोशका वर्णन' नामक एक सौ बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२०॥

---

* आधे जुएको युगार्द्ध कहते हैं।

एक सौ इक्कीसवाँ अध्याय

ज्योतिःशास्त्रका कथन

[वर-वधूके गुण और विवाहादि संस्कारोंके कालका विचार; शत्रुके वशीकरण एवं स्तम्भन-सम्बन्धी मन्त्र; ग्रहण-दान; सूर्य-संक्रान्ति एवं ग्रहोंकी महादशा]

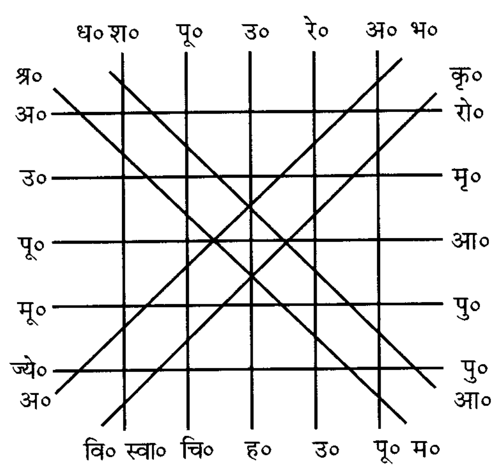
अग्निदेव कहते हैं—मुने! अब मैं शुभ-अशुभका विवेक प्रदान करनेवाले संक्षिप्त ज्यौतिष-शास्त्रका वर्णन करूँगा, जो चार लक्ष श्लोकवाले विशाल ज्यौतिषशास्त्रका सारभूत अंश है, जिसे जानकर मनुष्य सर्वज्ञ हो सकता है। यदि कन्याकी राशिसे वरकी राशिसंख्या परस्पर छः-आठ, नौ-पाँच और दो-बारह हो तो विवाह शुभ नहीं होता है। शेष दस-चार, ग्यारह-तीन और सम सप्तक (सात-सात) हो तो विवाह शुभ होता है। यदि कन्या और वरकी राशिके स्वामियोंमें परस्पर मित्रता हो या दोनोंकी राशियोंका एक ही स्वामी हो, अथवा दोनोंकी ताराओं (जन्म-नक्षत्रों)-में मैत्री हो तो नौ-पाँच तथा दो-बारहका दोष होनेपर भी विवाह कर लेना चाहिये; किंतु षडष्टक (छः-आठ)-के दोषमें तो कदापि विवाह नहीं हो सकता।[१] गुरु-शुक्रके अस्त रहनेपर विवाह करनेसे वधूके पतिका निधन हो जाता है। गुरु-क्षेत्र (धनु, मीन)-में सूर्य हो एवं सूर्यके क्षेत्र (सिंह)-में गुरु हो तो विवाहको अच्छा नहीं मानते हैं; क्योंकि वह विवाह कन्याके लिये वैधव्यकारक होता है॥ १—५॥

(संस्कार-मुहूर्त) बृहस्पतिके वक्र रहनेपर तथा अतिचारी होनेपर विवाह तथा उपनयन नहीं करना चाहिये। आवश्यक होनेपर अतिचारके समय त्रिपक्ष अर्थात् डेढ़ मास तथा वक्र होनेपर चार मास छोड़कर शेष समयमें विवाह-उपनयनादि शुभ संस्कार करने चाहिये। चैत्र-पौषमें, रिक्ता तिथिमें, भगवान्‌के सोनेपर, मङ्गल तथा रविवारमें, चन्द्रमाके क्षीण रहनेपर भी विवाह शुभ नहीं होता है। संध्याकाल (गोधूलि-समय) शुभ होता है। रोहिणी, तीनों उत्तरा, मूल, स्वाती, हस्त, रेवती—इन नक्षत्रोंमें, तुला लग्नको छोड़कर मिथुनादि द्विस्वभाव एवं स्थिर लग्नोंमें विवाह करना शुभ होता है। विवाह, कर्णवेध, उपनयन तथा पुंसवन संस्कारोंमें, अन्न-प्राशन तथा प्रथम चूड़ाकर्ममें विद्धनक्षत्रको[२] त्याग देना चाहिये॥ ६—९॥

---

१. नारदपुराण, पूर्वभाग, द्वितीयपाद, अध्याय ५६, श्लोक ५०४ में भी यही बात कही गयी है।

२. विद्धनक्षत्रके परिज्ञानके लिये नारदपुराण, अध्याय ५६ के श्लोक ४८३-८४ में पञ्चशलाका-वेधका इस प्रकार वर्णन है—पाँच रेखाएँ पड़ी और पाँच रेखाएँ खड़ी खींचकर, दो-दो रेखाएँ कोणोंमें खींचने (बनाने)-से पञ्चशलाका-चक्र बनता है। इस चक्रके ईशानकोणवाली दूसरी रेखामें कृत्तिकाको लिखकर आगे प्रदक्षिणक्रमसे रोहिणी आदि अभिजित्‌सहित सम्पूर्ण नक्षत्रोंका उल्लेख करे। जिस रेखामें ग्रह हो, उसी रेखाकी दूसरी ओरवाला नक्षत्र विद्ध समझा जाता है। इस विषयको भलीभाँति समझनेके लिये निम्नाङ्कित चक्रपर दृष्टिपात करें—



श्रवण, मूल, पुष्य—इन नक्षत्रोंमें, रवि, मङ्गल, बृहस्पति—इन वारोंमें तथा कुम्भ, सिंह, मिथुन—इन लग्नोंमें पुंसवन-कर्म करनेका विधान है। हस्त, मूल, मृगशिरा और रेवती नक्षत्रोंमें, बुध और शुक्र वारमें बालकोंका निष्कासन शुभ होता है। रवि, सोम, बृहस्पति तथा शुक्र—इन दिनोंमें, मूल नक्षत्रमें प्रथम बार ताम्बूल-भक्षण करना चाहिये। शुक्र तथा बृहस्पति वारको, मकर और मीन लग्नमें, हस्तादि पाँच नक्षत्रोंमें, पुष्यमें तथा कृत्तिकादि तीन नक्षत्रोंमें अन्न-प्राशन करना चाहिये। अश्विनी, रेवती, पुष्य, हस्त, ज्येष्ठा, रोहिणी और श्रवण नक्षत्रोंमें नूतन अन्न और फलका भक्षण शुभ होता है। स्वाती तथा मृगशिरा नक्षत्रमें औषध-सेवन करना शुभ होता है।

(रोग-मुक्त-स्नान) तीनों पूर्वा, मघा, भरणी, स्वाती तथा श्रवणसे तीन नक्षत्रोंमें, रवि, शनि और मङ्गल—इन वारोंमें रोग-विमुक्त व्यक्तिको स्नान करना चाहिये॥ १०—१४ $\frac{१}{२}$ ॥

(यन्त्र-प्रयोग) मिट्टीके चौकोर पट्टपर आठ दिशाओंमें आठ 'ह्रीं' कार और बीचमें अपना नाम लिखे अथवा पार्थिव पट्ट या भोजपत्रपर आठों दिशाओंमें **'ह्रीं'** लिखकर मध्यमें अपना नाम गोरोचन तथा कुङ्कुमसे लिखे। ऐसे यन्त्रको वस्त्रमें लपेटकर गलेमें धारण करनेसे शत्रु निश्चय ही वशमें हो जाते हैं। इसी तरह गोरोचन तथा कुङ्कुमसे **'श्रीं' 'ह्रीं'** मन्त्रद्वारा सम्पुटित नामको आठ भूर्जपत्र-खण्डपर लिखकर पृथ्वीमें गाड़ दे तो शीघ्र विदेश गया हुआ व्यक्ति वापस आता है और उसी यन्त्रको हल्दीके रससे शिलापट्टपर लिखकर नीचे मुख करके पृथ्वीपर रख दे तो शत्रुका स्तम्भन होता है। **'ॐ' 'हूं' 'सः'** मन्त्रसे सम्पुटित नाम गोरोचन तथा कुङ्कुमसे आठ भूर्जपत्रोंपर लिखकर रखा जाय तो मृत्युका निवारण होता है। यह यन्त्र एक, पाँच और नौ बार लिखनेसे परस्पर प्रेम होता है। दो, छः या बारह बार लिखनेसे वियुक्त व्यक्तियोंका संयोग होता है और तीन, सात या ग्यारह बार लिखनेसे लाभ होता है और चार, आठ और बारह बार लिखनेसे परस्पर शत्रुता होती है॥ १५—२०॥

(भाव और तारा) मेषादि लग्नोंसे तनु, धन, सहज, सुहृत्, सुत, रिपु, जाया, निधन, धर्म, कर्म, आय, व्यय—ये बारह भाव होते हैं। अब नौ ताराओंका बल बतलाता हूँ। जन्म, संपत्, विपत्, क्षेम, प्रत्यरि, साधक, मृत्यु, मैत्र और अतिमैत्र—ये नौ तारे होते हैं। बुध, बृहस्पति, शुक्र, रवि तथा सोम वारको और माघ आदि छः मासोंमें प्रथम क्षौर-कर्म (बालकका मुण्डन) कराना शुभ कहा गया है। बुधवार तथा गुरुवारको एवं पुष्य, श्रवण और चित्रा नक्षत्रमें कर्णवेध-संस्कार शुभ होता है। पाँचवें वर्षमें प्रतिपदा, षष्ठी, रिक्ता और पूर्णिमा तिथियोंको एवं मङ्गलवारको छोड़कर शेष वारोंमें सरस्वती, विष्णु और लक्ष्मीका पूजन करके अध्ययन (अक्षरारम्भ) करना चाहिये। माघसे लेकर छः मासतक अर्थात् आषाढ़तक उपनयन-संस्कार शुभ होता है। चूडाकरण आदि कर्म श्रावण आदि छः मासोंमें प्रशस्त नहीं माने गये हैं। गुरु तथा शुक्र अस्त हो गये हों और चन्द्रमा क्षीण हों तो यज्ञोपवीत-संस्कार करनेसे बालककी मृत्यु अथवा जडता होती है, ऐसा संकेत कर दे। क्षौरमें कहे हुए नक्षत्रोंमें तथा शुभ ग्रहके दिनोंमें समावर्तन-संस्कार करना शुभ होता है॥ २१—२८॥

(विविध मुहूर्त—) लग्नमें शुभ ग्रहोंकी राशि हो और लग्नमें शुभ ग्रह बैठे हों या उसे देखते हों तथा अश्विनी, मघा, चित्रा, स्वाती, भरणी, तीनों उत्तरा, पुनर्वसु और पुष्य नक्षत्र हों तो ऐसे समयमें धनुर्वेदका आरम्भ शुभ होता है। भरणी, आर्द्रा, मघा, आश्लेषा, कृत्तिका, पूर्वाफाल्गुनी—इन नक्षत्रोंमें जीवनकी इच्छा रखनेवाला पुरुष नवीन वस्त्र धारण न करे। बुध, बृहस्पति तथा शुक्र—इन दिनोंमें वस्त्र धारण करना चाहिये। विवाहादि माङ्गलिक कार्योंमें वस्त्र-

धारणके लिये नक्षत्रादिका विचार नहीं करना चाहिये। रेवती, अश्विनी, धनिष्ठा और हस्तादि पाँच नक्षत्रोंमें चूड़ी, मूँगा तथा रत्नोंका धारण करना शुभ होता है॥ २९—३२॥

(क्रय-विक्रय-मुहूर्त—) भरणी, आश्लेषा, धनिष्ठा, तीनों पूर्वा और कृत्तिका—इन नक्षत्रोंमें खरीदी हुई वस्तु हानिकारक (घाटा देनेवाली) होती है और बेचना लाभदायक होता है। अश्विनी, स्वाती, चित्रा, रेवती, शतभिषा, श्रवण—इन नक्षत्रोंमें खरीदा हुआ सामान लाभदायक होता है और बेचना अशुभ होता है। भरणी, तीनों पूर्वा, आर्द्रा, आश्लेषा, मघा, स्वाती, कृत्तिका, ज्येष्ठा और विशाखा—इन नक्षत्रोंमें स्वामीकी सेवाका आरम्भ नहीं करना चाहिये। साथ ही इन नक्षत्रोंमें दूसरेको द्रव्य देना, ब्याजपर द्रव्य देना, थाती या धरोहरके रूपमें रखना आदि कार्य भी नहीं करने चाहिये। तीनों उत्तरा, श्रवण और ज्येष्ठा—इन नक्षत्रोंमें राज्याभिषेक करना चाहिये। चैत्र, ज्येष्ठ, भाद्रपद, आश्विन, पौष और माघ—इन मासोंको छोड़कर शेष मासोंमें गृहारम्भ शुभ होता है। अश्विनी, रोहिणी, मूल, तीनों उत्तरा, मृगशिरा, स्वाती, हस्त और अनुराधा—ये नक्षत्र और मङ्गल तथा रविवारको छोड़कर शेष दिन गृहारम्भ, तड़ाग, वापी एवं प्रासादारम्भके लिये शुभ होते हैं। गुरु सिंह-राशिमें हों तब, गुर्वादित्यमें (अर्थात् जब सिंह राशिके गुरु और धन एवं मीन राशिओंके सूर्य हों,) अधिक मासमें और शुक्रके बाल, वृद्ध तथा अस्त रहनेपर गृह-सम्बन्धी कोई कार्य नहीं करना चाहिये। श्रवणसे पाँच नक्षत्रोंमें तृण तथा काष्ठोंके संग्रह करनेसे अग्निदाह, भय, रोग, राजपीड़ा तथा धन-क्षति होती है। **(गृह-प्रवेश—)** धनिष्ठा, तीनों उत्तरा, शतभिषा—इन नक्षत्रोंमें गृहप्रवेश करना चाहिये। **(नौका-निर्माण—)** द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी, त्रयोदशी—इन तिथियोंमें नौका बनवाना शुभ होता है। **(नृपदर्शन—)** धनिष्ठा, हस्त, रेवती, अश्विनी—इन नक्षत्रोंमें राजाका दर्शन करना शुभ होता है। **(युद्धयात्रा—)** तीनों पूर्वा, धनिष्ठा, आर्द्रा, कृत्तिका, मृगशिरा, विशाखा, आश्लेषा और अश्विनी—इन नक्षत्रोंमें की हुई युद्धयात्रा सम्पत्ति-लाभपूर्वक सिद्धिदायिनी होती है। **(गौओंके गोष्ठसे बाहर ले जाने या गोष्ठके भीतर लानेका मुहूर्त—)** अष्टमी, सिनीवाली (अमावास्या) तथा चतुर्दशी तिथियोंमें, तीनों उत्तरा, रोहिणी, श्रवण, हस्त और चित्रा—इन नक्षत्रोंमें बेचनेके लिये गोशालासे पशुको बाहर नहीं ले जाना चाहिये और खरीदे हुए पशुओंका गोशालामें प्रवेश भी नहीं कराना चाहिये। **(कृषि-कर्म-मुहूर्त—)** स्वाती, तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिरा, मूल, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त तथा श्रवण—इन नक्षत्रोंमें सामान्य कृषि-कर्म करना चाहिये। पुनर्वसु, तीनों उत्तरा, स्वाती, पूर्वाफाल्गुनी, मूल, ज्येष्ठा और शतभिषा—इन नक्षत्रोंमें, रवि, सोम, गुरु तथा शुक्र—इन वारोंमें, वृष, मिथुन, कन्या—इन लग्नोंमें, द्वितीया, पञ्चमी, दशमी, सप्तमी, तृतीया और त्रयोदशी—इन तिथियोंमें (हल-प्रवहणादि) कृषि-कर्म करना चाहिये।

रेवती, रोहिणी, ज्येष्ठा, कृत्तिका, हस्त, अनुराधा, तीनों उत्तरा—इन नक्षत्रोंमें, शनि एवं मङ्गलवारोंको छोड़कर दूसरे दिनोंमें सभी सम्पत्तियोंकी प्राप्तिके लिये बीज-वपन करना चाहिये।

(धान्य काटने तथा घरमें रखनेका मुहूर्त—) रेवती, हस्त, मूल, श्रवण, पूर्वाफाल्गुनी, अनुराधा, मघा, मृगशिरा—इन नक्षत्रोंमें तथा मकर लग्नमें धान्य-छेदन-(धान काटनेका) मुहूर्त शुभ होता है और हस्त, चित्रा, पुनर्वसु, स्वाती, रेवती तथा श्रवणादि तीन नक्षत्रोंमें भी धान्य-छेदन शुभ है। स्थिर लग्न तथा बुध, गुरु, शुक्रवारोंमें, भरणी, पुनर्वसु, मघा, ज्येष्ठा, तीनों उत्तरा—इन नक्षत्रोंमें अनाजको डेहरी या बखार आदिमें रखे॥ ३३—५१॥

(धान्य-वृद्धिके लिये मन्त्र—) 'ॐ

धनदाय सर्वधनेशाय देहि मे धनं स्वाहा।'— 'ॐ नवे वर्षे इलादेवि! लोकसंवर्द्धिनि! कामरूपिणि! देहि मे धनं स्वाहा।'—इन मन्त्रोंको पत्ते या भोजपत्रपर लिखकर धान्यकी राशिमें रख दे तो धान्यकी वृद्धि होती है। तीनों पूर्वा, विशाखा, धनिष्ठा और शतभिषा—इन छः नक्षत्रोंमें बखारसे धान्य निकालना चाहिये। (**देवादि-प्रतिष्ठा-मुहूर्त—**) सूर्यके उत्तरायणमें रहनेपर देवता, बाग, तड़ाग, वापी आदिकी प्रतिष्ठा करनी चाहिये। **भगवान्‌के शयन, पार्श्व-परिवर्तन और जागरणका उत्सव—**) मिथुन-राशिमें सूर्यके रहनेपर अमावास्याके बाद जब द्वादशी तिथि होती है, उसीमें सदैव भगवान् चक्रपाणिके शयनका उत्सव करना चाहिये। सिंह तथा तुला-राशिमें सूर्यके रहनेपर अमावास्याके बाद जो दो द्वादशी तिथियाँ होती हैं, उनमें क्रमसे भगवान्‌का पार्श्व-परिवर्तन तथा प्रबोधन (जागरण) होता है। कन्या-राशिका सूर्य होनेपर अमावास्याके बाद जो अष्टमी तिथि होती है, उसमें दुर्गाजी जागती हैं। (**त्रिपुष्करयोग—**) जिन नक्षत्रोंके तीन चरण दूसरी राशिमें प्रविष्ट हों (जैसे कृत्तिका, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, विशाखा, उत्तराषाढ़ा और पूर्वभाद्रपदा—इन नक्षत्रोंमें, जब भद्रा द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी तिथियाँ हों एवं रवि, शनि तथा मङ्गलवार हों तो त्रिपुष्करयोग होता है। (**चन्द्र-बल—**) प्रत्येक व्यावहारिक कार्यमें चन्द्र तथा ताराकी शुद्धि देखनी चाहिये। जन्मराशिमें तथा जन्मराशिसे तृतीय, षष्ठ, सप्तम, दशम, एकादश स्थानोंपर स्थित चन्द्रमा शुभ होते हैं। शुक्ल पक्षमें द्वितीय, पञ्चम, नवम चन्द्रमा भी शुभ होता है। (**तारा-शुद्धि—**) मित्र, अतिमित्र, साधक, सम्पत् और क्षेम आदि ताराएँ शुभ हैं। 'जन्म-तारा' से मृत्यु होती है, 'विपत्ति-तारा'से धनका विनाश होता है, 'प्रत्यरि' और 'मृत्युतारा' में निधन होता है। (अतः इन ताराओंमें कोई नया काम या यात्रा नहीं करनी चाहिये।) (**क्षीण और पूर्ण चन्द्र—**) कृष्ण पक्षकी अष्टमीसे शुक्ल पक्षकी अष्टमी तिथितक चन्द्रमा क्षीण रहता है; इसके बाद वह पूर्ण माना जाता है। (**महाज्येष्ठी—**) वृष तथा मिथुन राशिका सूर्य हो, गुरु मृगशिरा अथवा ज्येष्ठा नक्षत्रमें हो और गुरुवारको पूर्णिमा तिथि हो तो वह पूर्णिमा 'महाज्येष्ठी' कही जाती है। ज्येष्ठामें गुरु तथा चन्द्रमा हों, रोहिणीमें सूर्य हो एवं ज्येष्ठ मासकी पूर्णिमा हो तो वह पूर्णिमा 'महाज्येष्ठी' कहलाती है। स्वाती नक्षत्रके आनेसे पूर्व ही यन्त्रपर इन्द्रदेवका पूजन करके उनका ध्वजारोपण करना चाहिये; श्रवण अथवा अश्विनीमें या सप्ताहके अन्तमें उसका विसर्जन करना चाहिये॥ ५२—६४॥

(**ग्रहणमें दानका महत्त्व—**) सूर्यके राहुद्वारा ग्रस्त होनेपर अर्थात् सूर्यग्रहण लगनेपर सब प्रकारका दान सुवर्ण-दानके समान है, सब ब्राह्मण ब्रह्माके समान होते हैं और सभी जल गङ्गाजलके समान हो जाते हैं। (**संक्रान्तिका कथन—**) सूर्यकी संक्रान्ति रविवारसे लेकर शनिवारतक किसी-न-किसी दिन होती है। इस क्रमसे उस संक्रान्तिके सात भिन्न-भिन्न नाम होते हैं। यथा—घोरा, ध्वाङ्क्षी, महोदरी, मन्दा, मन्दाकिनी, युता (मिश्रा) तथा राक्षसी। कौलव, शकुनि और किंस्तुघ्न करणोंमें सूर्य यदि संक्रमण करे तो लोग सुखी होते हैं। गर, वव, वणिक्, विष्टि और बालव—इन पाँच करणोंमें यदि सूर्य-संक्रान्ति बदले तो प्रजा राजाके दोषसे सम्पत्तिके साथ पीड़ित होती है। चतुष्पात्, तैतिल और नाग—इन करणोंमें सूर्य यदि संक्रमण करे तो देशमें दुर्भिक्ष होता है, राजाओंमें संग्राम होता है तथा पति-पत्नीके जीवनके लिये भी संशय उपस्थित होता है॥ ६६—७०॥

(**रोगकी स्थितिका विचार—**) जन्म नक्षत्र या आधान (जन्मसे उन्नीसवें) नक्षत्रमें रोग उत्पन्न हो जाय, तो अधिक क्लेशदायक होता है। कृत्तिका नक्षत्रमें रोग उत्पन्न हो तो नौ दिनतक,

रोहिणीमें उत्पन्न हो तो तीन राततक तथा मृगशिरामें हो तो पाँच राततक रहता है। आर्द्रामें रोग हो तो प्राणनाशक होता है। पुनर्वसु तथा पुष्य नक्षत्रोंमें रोग हो तो सात राततक बना रहता है। आश्लेषाका रोग नौ राततक रहता है। मघाका रोग अत्यन्त घातक या प्राणनाशक होता है। पूर्वाफाल्गुनीका रोग दो मासतक रहता है। उत्तराफाल्गुनीमें उत्पन्न हुआ रोग तीन दिनोंतक रहता है। हस्त तथा चित्राका रोग पंद्रह दिनोंतक पीड़ा देता है। स्वातीका रोग दो मासतक, विशाखाका बीस दिन, अनुराधाका रोग दस दिन और ज्येष्ठका पंद्रह दिन रहता है। मूल नक्षत्रमें रोग हो तो वह छूटता ही नहीं है। पूर्वाषाढ़ाका रोग पाँच दिन रहता है। उत्तराषाढ़ाका रोग बीस दिन, श्रवणका दो मास, धनिष्ठाका पंद्रह दिन और शतभिषाका रोग दस दिनोंतक रहता है। पूर्वाभाद्रपदाका रोग छूटता ही नहीं। उत्तराभाद्रपदाका रोग सात दिनोंतक रहता है*। रेवतीका रोग दस रात और अश्विनीका रोग एक दिन-रात मात्र रहता है; किंतु भरणीका रोग प्राणनाशक होता है। **(रोग-शान्तिका उपाय—)** पञ्चधान्य, तिल और घृत आदि हवनीय सामग्रीद्वारा गायत्री-मन्त्रसे हवन करनेपर रोग छूट जाता है और शुभ फलकी प्राप्ति होती है तथा ब्राह्मणको दूध देनेवाली गौका दान करनेसे रोगका शमन हो जाता है॥ ७१—७७ $\frac{१}{२}$ ॥

(अष्टोत्तरी-क्रमसे) सूर्यकी दशा छः वर्षकी होती है। इसी प्रकार चन्द्रदशा पंद्रह वर्ष, मङ्गलकी आठ वर्ष, बुधकी सत्रह वर्ष, शनिकी दस वर्ष, बृहस्पतिकी उन्नीस वर्ष, राहुकी बारह वर्ष और शुक्रकी इक्कीस वर्ष महादशा चलती है॥ ७८-७९ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'ज्यौतिषशास्त्रका कथन' नामक एक सौ इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२१ ॥

एक सौ बाईसवाँ अध्याय

कालगणना—पञ्चाङ्गमान-साधन

अग्निदेव कहते हैं—मुने! (अब मैं) वर्षोंके समुदायस्वरूप 'काल' का वर्णन कर रहा हूँ और उस कालको समझनेके लिये मैं गणित बतला रहा हूँ। (ब्रह्म-दिनादिकालसे अथवा सृष्ट्यारम्भकालसे अथवा व्यवस्थित शकारम्भसे) वर्षसमुदाय-संख्याको १२ से गुणा करे। उसमें चैत्रादि गत मास-संख्या मिला दे। उसे दोसे गुणा करके दो स्थानोंमें रखे। प्रथम स्थानमें चार मिलाये, दूसरे स्थानमें आठ सौ पैंसठ मिलाये। इस तरह जो अङ्क सम्पन्न हो, वह 'सगुण' कहा गया है। उसे तीन स्थानोंमें रखे; उसमें बीचवालेको आठसे गुणा करके फिर चारसे गुणित करे। इस तरह मध्यका संस्कार करके गोमूत्रिका-क्रमसे रखे हुए तीनोंका यथास्थान संयोजन करे। उसमें प्रथम स्थानका नाम 'ऊर्ध्व', बीचका नाम 'मध्य' और तृतीय स्थानका नाम 'अधः' ऐसा रखे। अधः-अङ्कमें ३८८ और मध्याङ्कमें ८७ घटाये। तत्पश्चात् उसे ६० से विभाजित करके शेषको (अलग) लिखे। फिर लब्धिको आगेवाले अङ्कमें मिलाकर ६० से विभाजित करे। इस प्रकार तीन स्थानोंमें स्थापित अङ्कोंमेंसे प्रथम स्थानके अङ्कमें ७ से भाग देनेपर शेष बची हुई

* 'बुध्नार्यमेज्यादितिधातृभे नगाः' (मुहू० चिन्ता०, नक्ष० प्रक० ४६)-के अनुसार उत्तराभाद्रपदामें उत्पन्न रोग सात दिन रहता है।

संख्याके अनुसार रवि आदि वार निकलते हैं। शेष दो स्थानोंका अङ्क तिथिका ध्रुवा होता है। सगुणको दोसे गुणा करे। उसमें तीन घटाये। उसके नीचे सगुणको लिखकर उसमें तीस जोड़े। फिर भी ६, १२, ८—इन पलोंको भी क्रमसे तीनों स्थानोंमें मिला दे। फिर ६० से विभाजित करके प्रथम स्थानमें २८ से भाग देकर शेषको लिखे। उसके नीचे पूर्वानीत तिथि-ध्रुवाको लिखे। सबको मिलानेपर ध्रुवा हो जायगा। फिर भी उसी सगुणको अर्द्ध करे। उसमें तीन घटा दे। दोसे गुणा करे। मध्यको एकादशसे गुणा करे। नीचेमें एक मिलाये। द्वितीय स्थानमें उनतालीससे भाग देकर लब्धिको प्रथम स्थानमें घटाये, उसीका नाम 'मध्य' है। मध्यमें बाईस घटाये। उसमें ६० से भाग देनेपर शेष 'ऋण' है। लब्धिको ऊर्ध्वमें अर्थात् नक्षत्र-ध्रुवामें मिलाना चाहिये। २७ से भाग देनेपर शेष नक्षत्र तथा योगका ध्रुवा हो जाता है॥ १—७ $\frac{1}{2}$ ॥

अब तिथि तथा नक्षत्रका मासिक ध्रुवा कह रहे हैं। (२।३२।००) यह तिथि-ध्रुवा है और (२।११।००) यह नक्षत्र-ध्रुवा है। इस ध्रुवाको प्रत्येक मासमें जोड़कर, वार-स्थानमें ७ से भाग देकर शेष वारमें तिथिका दण्ड-पल समझना चाहिये। नक्षत्रके लिये २७ से भाग देकर अश्विनीसे शेष संख्यावाले नक्षत्रका दण्डादि जानना चाहिये॥ ८—१०॥

(पूर्वोक्त प्रकारसे तिथ्यादिका मान मध्यममानसे निश्चित हुआ। उसे स्पष्ट करनेके लिये संस्कार कहते हैं।) चतुर्दशी आदि तिथियोंमें कही हुई घटियोंको क्रमसे ऋण-धन तथा धन-ऋण करना चाहिये। जैसे चतुर्दशीमें शून्य घटी तथा त्रयोदशी और प्रतिपदामें पाँच घटी क्रमसे ऋण तथा धन करना चाहिये। एवं द्वादशी तथा द्वितीयामें दस घटी ऋण-धन करना चाहिये। तृतीया तथा एकादशीमें पंद्रह घटी, चतुर्थी और दशमीमें १९ घटी, पञ्चमी और नवमीमें २२ घटी, षष्ठी तथा अष्टमीमें २४ घटी तथा सप्तमीमें २५ घटी धन-ऋण-संस्कार करना चाहिये। यह अंशात्मक फल चतुर्दशी आदि तिथिपिण्डमें करना होता है॥ ११—१३ $\frac{1}{2}$ ॥

(अब कलात्मक फल-संस्कारके लिये कहते हैं—) कर्कादि तीन राशियोंमें छः, चार, तीन (६।४।३) तथा तुलादि तीन राशियोंमें विपरीत तीन, चार, छः (३।४।६) संस्कार करनेके लिये 'खण्डा' होता है। "खेषवः—५०", "खयुगाः—४०", "मैत्रं—१२"—इनको मेषादि तीन राशियोंमें धन करना चाहिये। कर्कादि तीन राशियोंमें विपरीत १२, ४०, ५० का संस्कार करना चाहिये। तुलादि छः राशियोंमें इनका ऋण संस्कार करना चाहिये। चतुर्गुणित तिथिमें विकलात्मक फल-संस्कार करना चाहिये। 'गत' तथा 'एष्य' खण्डाओंके अन्तरसे कलाको गुणित करे। ६० से भाग दे। लब्धिको प्रथमोच्चारमें ऋण-फल रहनेपर भी धन करे और धन रहनेपर भी धन ही करे। द्वितीयोच्चारित वर्ग रहनेपर विपरीत करना चाहिये। तिथिको द्विगुणित करे। उसका छठा भाग उसमें घटाये। सूर्य-संस्कारके विपरीत तिथि-दण्डको मिलाये। ऋण-फलको घटानेपर स्पष्ट तिथिका दण्डादि मान होता है। यदि ऋण-फल नहीं घटे तो उसमें ६० मिलाकर संस्कार करना चाहिये। यदि फल ही ६० से अधिक हो तो उसमें ६० घटाकर शेषका ही संस्कार करना चाहिये। इससे तिथिके साथ-साथ नक्षत्रका मान होगा। फिर भी चतुर्गुणित तिथिमें तिथिका त्रिभाग मिलाये। उसमें ऋण-फलको भी मिलाये। तष्टित करनेपर योगका मान होता है। तिथिका मान तो स्पष्ट ही है, अथवा सूर्य-चन्द्रमाको योग करके भी 'योग' का मान निश्चित आता है। तिथिकी संख्यामेंसे एक घटाकर

उसे द्विगुणित करनेपर फिर एक घटाये तो भी चर आदि करण निकलते हैं। कृष्णपक्षकी चतुर्दशीके परार्धसे शकुनि, चतुरङ्घ्रि (चतुष्पद), किंस्तुघ्न और अहि (नाग)—ये चार स्थिर करण होते हैं। इस तरह शुक्लपक्षकी प्रतिपदा तिथिके पूर्वार्द्धमें किंस्तुघ्न करण होता है*॥ १४—२४॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'ज्यौतिष-शास्त्रके अन्तर्गत कालगणना' नामक एक सौ बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२२॥

---

* इस अध्यायमें वर्णित गणितको उदाहरण देकर समझाया जाता है—

कल्पना कीजिये कि वर्तमान वर्षगण-संख्या =२१ है और वर्तमान शकमें वैशाख शुक्ल प्रतिपदाको पञ्चाङ्ग-मान-साधन करना है तो चैत्र शुक्लादि गतमास १ हुआ। वर्षगण २१ को १२ से गुणा करके उसमें चैत्र शुक्लादि गतमासकी संख्या १ मिलानेसे २१×१२+१=२५३ हुआ। इसे द्विगुणित करके दो स्थानोंमें रखा। प्रथम स्थानमें ४ और दूसरे स्थानमें ८६५ मिलाया।

यथा—२५३×२=५०६।

५०६ । ५०६
४ । ८६५

५१० । १३७१ इसे (६० से) तष्टित (विभाजित) किया तो ५३२।५१ हुआ अर्थात् (१३७१) में ६० से भाग देनेपर लब्धि २२ शेष ५१ आता है। लब्धिको (५१०) में मिलाया तो (५३२।५१) हुआ। इसका नाम सगुण या गुणसंज्ञ रखा।

फिर इस गुणसंज्ञको तीन स्थानोंमें रखा—

५३२ । ५१ ऊर्ध्व संख्या
५३२ । ५१ मध्य संख्या
५३२ । ५१ अधः संख्या

इसमें मध्य (५३२।५१)-को आठसे गुणा किया तो (४२५६।४०८) हुआ, फिर इसे ४ से गुणा किया तो (१७०२४।१६३२) हुआ। इसे ६० से तष्टित किया अर्थात् (१६३२) में ६० से भाग देकर शेष १२ को अपने स्थानपर रखा, लब्धि २७ को बायें अङ्कमें मिलाया तो (१७०५१ । १२) हुआ। इस तरह मध्यका संस्कार करके उसे मध्यके स्थानमें रखकर न्यास किया—

५३२ । ५१
१७०५१ । १२
५३२ । ५१

ऊर्ध्व मध्य अधः सबोंको यथास्थानीय योग किया

५३२ । १७१०२ । ५४४ । ५१ इस (५१) को छोड़ दिया तो—

ऊर्ध्व मध्य अधः

५३२ । १७१०२ । ५४४ हुआ। यहाँपर तृतीय स्थानीय (अधः अङ्कमें ३८८ और मध्यमें 'सैकरसाष्टक'

८७ ३८८ = ८७ घटाया तो—

शेष रहा—

५३२ । १७०१५ । १५६ इसे ६० से तष्टित किया तो—

८१५ । ३७ । ३६ हुआ न्यूनः सप्तकृतः अर्थात् वार-स्थानमें ७ से भाग दिया शेष = ३

३ । ३७ । ३६ यह तिथिका ध्रुवा-मान हुआ, जिसे तिथि-नाड़ी कहते हैं।

फिर गुणसंज्ञ (५३२।५१) को २ से गुणा किया तो १०६४।१०२ हुआ। ६० से तष्टित किया तो १०६५।४२ हुआ। प्रथम

एक सौ तेईसवाँ अध्याय
युद्धजयार्णव-सम्बन्धी विविध योगोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—(अब स्वरके द्वारा विजय-साधन कह रहे हैं—) मैं इस पुराणके युद्धजयार्णव-प्रकरणमें विजय आदि शुभ कार्योंकी सिद्धिके लिये सार वस्तुओंको कहूँगा। जैसे अ,

स्थानमें ३ घटाया तो १०६२। ४२ हुआ। (पुनर्गुणः) फिर भी इसके साथ गुणसंज्ञ (५३२। ५१) का न्यास किया और जोड़ा तो—

१०६२ ।	४२		
	५३२ ।	५१	
१०६२ ।	५७४ ।	५१	हुआ। यहाँ तृतीय स्थानीय (५१) में ३० मिलाया तो—
		३०	
१०६२ ।	५७४ ।	८१	हुआ। इसमें 'रसार्काष्टपलैर्युतः' के अनुसार (६। १२। ८)
६ ।	१२ ।	८	तीनों स्थानोंमें मिलाया
१०६८ ।	५८६ ।	८९	हुआ। इसे ६० से तष्टित किया तो—
१०७७ ।	४७ ।	२९	हुआ। यहाँ प्रथम स्थानमें २८ से भाग देकर शेष १३ को रखा तो
१३ ।	४७ ।	२९	हुआ। इसमें पूर्वानीत तिथि-नाड़ी (३। ३७। ३६) को मिलाया तो
३ ।	३७ ।	३६	
१७ ।	२५ ।	५	यह भी सम्पन्नाङ्क हुआ अर्थात् दूसरा ऊर्ध्वाङ्क हुआ।

फिर गुणसंज्ञ (५३२। ५१)-को आधा किया तो (२६६। २५) हुआ। दूसरे स्थानमें ३ घटाया तो (२६६। २२) हुआ। इसे दोसे गुणा किया तो (५३२। ४४) हुआ। यहाँ (५३२) को ११ से गुणा किया और ४४ में १ मिलाया तो (५८५२। ४५) हुआ। यहाँ (४५)-में ३९ से भाग देकर शेष ६ को अपने स्थानमें लिखा। लब्धिको प्रथम स्थानमें घटाया तो (५८५१। ६) हुआ। प्रथम स्थानमें २२ घटाया तो (५८२९। ६) हुआ। इसे ६० से तष्टित करके लब्धाङ्क (९७। ९। ६) हुआ। इसमें दूसरे ऊर्ध्वाङ्क (१७। २५। ५)-को मिलाया तो (११४। ३४। ११) हुआ। प्रथम स्थानमें २७ से भाग देनेपर (६। ३४। ११) हुआ—यह नक्षत्र तथा योगका ध्रुवा हुआ।

व्यवस्थित शकादिमें तिथिका ध्रुवा (२। ३२। ००) यह है और नक्षत्र-ध्रुवा (२। ११। ००) यह है, इसको प्रत्येक मासमें अपने-अपने मानमें जोड़ना चाहिये। जैसे कि पूर्वानीत तिथिके वारादि (३। ३७। ३६)-में तिथिका वारादि ध्रुवा (२। ३२। ००)-को मिलाया तो वैशाख शुक्ल प्रतिपदाका मान वारादि (६। ९। ३६) मध्यम मानसे हुआ एवं पूर्वानीत नक्षत्र-मान (६। ३४। ११)-में नक्षत्र-ध्रुवा (२। ११। ००) को जोड़ा तो (८। ४५। ११) हुआ अर्थात् पुष्य नक्षत्रका मान मध्यम दण्डादि (४५। ११) हुआ।

अब तिथि आदिका स्पष्ट मान जाननेके लिये संस्कार-विधि कह रहे हैं। इसे ११ वें श्लोकसे २० वें श्लोकतककी व्याख्याके अनुसार समझना चाहिये।

	ति.			
	१४	= ०		
ति.	ति.	क्रमसे ऋण-धन		
१३	१		= ५	अर्थात् त्रयोदशीके साधित
१२	२	,,	= १०	घटीमानमें ५ घटी ऋण
११	३	,,	= १५	और प्रतिपदाकी घटीमें ५
१०	४	,,	= १९	घटी अंशात्मक फल धन
९	५	,,	= २२	करना चाहिये।
८	६	,,	= २४	
	७	,,	= २५	

इ, उ, ए, ओ—ये पाँच स्वर होते हैं। इन्हींके क्रमसे नन्दा (भद्रा, जया, रिक्ता, पूर्णा) आदि तिथियाँ होती हैं। 'क'से लेकर 'ह' तक वर्ण होते हैं और पूर्वोक्त स्वरोंके क्रमसे सूर्य-

इसी तरह कलादि फल-साधनके लिये 'कर्कटादौ हरेद्राशिमृतुवेदत्रयैः क्रमात्' के अनुसार करना चाहिये।

क. ६ + १२''	कल्पना किया कि चं० सू० = ०० । ११ । २५ । १०''
सिं ४ + ४०''	यहाँपर मेष राशिका विकलात्मक ५०
क. ३ + ५०''	फल—५० को जोड़ा = ०० । ११ । २६ । ००''
तु. ३ — ५०''	यहाँ ११ सम्बन्धि ५ घटी फल प्रतिपदाकी घटी
वृ. ४ — ४०''	जोड़ दिया तो २।४९।३६
ध. ६ — १२''	५।००
म. ६ — १२''	२।५४।३६ हुआ
कुं. ४ — ४०''	फिर मीन तथा मेषका राशि ध्रुवा (३-३) = ०
मी. ३ — ५०''	इससे (२६ । ००) × ० गुणा किया तो
मे. ३ + ५०''	= ० । ० हुआ। इसको तिथि घट्यादिमें
वृ. ४ + ४०''	संस्कार किया २।५४ ।३६
मि. ६ + १२''	०० ।०० =स्पष्ट

२।५४ ।३६ तिथि-मान हुआ।

इसमें एष्यखण्डासे गतखण्डा अधिक हो तो फलको ऋण समझना चाहिये। फिर भी तिथि-संस्कारके लिये तृतीय संस्कार कह रहे हैं (श्लो० १९-२०)। तिथिमानको द्विगुणित करके षष्ठांश उसीमें घटा दे। सूर्यके अंशके फलको विपरीत संस्कार करे, उसमें तिथि-नाड़ीको मिला दे। इसमें कलादिका ऋण फल-संशोधन करनेपर स्पष्टमान दण्डादिक हो जाता है। ऋणात्मक मानके नहीं घटनेपर उसमें ६० मिलाकर घटाना चाहिये एवं जिसमें संस्कार करना है, वही ६० से अधिक हो तो उसमें ही ६० घटाना चाहिये—इस तरह तृतीय संस्कार होता है।

उदाहरण—''द्विगुणिता'' के स्थानपर ''त्रिगुणिता'' पाठ रखनेपर पूर्वानीत मध्यम तिथिका मान दण्डादिक (९।३६) को ३ से गुणा किया तो (२८।४८) हुआ। इसका षष्ठांश (४।४८) हुआ। (२८।४८)-मेंसे षष्ठांश (४।४८)-को घटाया तो = २४।०० हुआ। इसमें तिथि-नाड़ी (९।३६)-को मिलाया तो (३३।३६) हुआ। इसमें सूर्यके अंशका ५ घ० संस्कार-फल घटाया तो (३३।३६)—(५।०)=(२८।३६) हुआ। ६० से तष्टित किया तो २८।३६ घट्यादिक स्पष्ट तिथिका मान हुआ, जो पूर्वानीत मध्य तिथिके घट्यादिक (९।३६) के आसन्न हुआ।

''द्विगुणिता'' पाठ रखनेपर ऐसा नहीं होता है, अधिक अन्तर होता है। अब योगका साधन बताते हैं (श्लोक २१—२३)।

स्पष्ट तिथि-मानको (२८।३६)×४=११४।२४ हुआ। इसमें तिथिका तृतीयांश(९।३२) मिलाया तो १२३।५६ हुआ। २७ से तष्टित किया तो लब्धि ४ से घट्यादिक १५।५६ हुआ अर्थात् सौभाग्य योगका मान घट्यादिक १५।५६ हुआ।

योग-साधनका दूसरा प्रकार कहते हैं—(श्लोक २३) सूर्य तथा चन्द्रमाकी योग-कलामें ८०० से भाग देनेपर लब्धि योगसंख्या होगी। शेष एष्य योगका गत घट्यादि मान होगा। उसे ८०० कलामें घटाकर सूर्य-चन्द्र-गति-योगमें ६० घटी तो शेष योगकलामें क्या इस तरह अनुपातसे भी योगका घट्यादि मान होगा।

अब करणका साधन-प्रकार कहते हैं—

द्विगुणित तिथि-संख्यामें १ घटानेसे सात 'चल' करण होते हैं और कृष्णपक्षकी चतुर्दशीके द्वितीय परार्धमें शकुनि तथा अमावास्याके पूर्वार्ध और परार्धमें चतुष्पद एवं 'नाग' करण होते हैं। शुक्लपक्षकी प्रतिपदाके पूर्वार्धमें किंस्तुघ्न नामके चार करण 'स्थिर' होते हैं और तिथिके आधेके बराबर करणोंका मान होता। यहाँपर मूल पाठमें ''तिथ्यर्धतो हि'' ऐसा लिखा है, किंतु वास्तवमें ''तिथ्यर्धतोऽहिः'' ऐसा पाठ होना चाहिये; क्योंकि 'हि' को पादपूरक रखनेसे 'नाग' अर्थ नहीं होगा। जिससे नाग नामक करणका ज्ञान नहीं होगा और ''अहिः'' ऐसा रखनेपर नाग करणका बोध होगा।

मङ्गल, बुध-चन्द्रमा, बृहस्पति-शुक्र, शनि-मङ्गल तथा सूर्य-शनि—ये ग्रह-स्वामी होते हैं[१] ॥ १-२ ॥

चालीसको साठसे गुणा करे। उसमें ग्यारहसे भाग दे। लब्धिको छ:से गुणा करके गुणनफलमें फिर ग्यारहसे ही भाग दें। लब्धिको तीनसे गुणा करके गुणनफलमें एक मिला दे तो उतनी ही बार नाडीके स्फुरणके आधारपर पल होता है। इसके बाद भी अहर्निश नाडीका स्फुरण होता ही रहता है।

उदाहरण—जैसे ४०×६०=२४००। २४००/११=२१९ लब्धि स्वल्पान्तरसे हुई। इसे छ:से गुणा किया तो २१९×६=१३१४ गुणनफल हुआ। इसमें फिर ११ से भाग दिया तो १३१४/११=११९ लब्धि, शेष=५, शेष छोड़ दिया। लब्धि ११९ को ३ से गुणा किया तो गुणनफल ३५७ हुआ। इसमें १ मिलाया तो ३५८ हुआ। इसको स्वल्पान्तरसे ३६० मान लिया। अर्थात् करमूलगत नाडीका ३६० बार स्फुरण होनेके आधारपर ही पल होते हैं, जिनका ज्ञानप्रकार आगे कहेंगे। इसी तरह नाड़ीका स्फुरण अहर्निश होता रहता है और इसी मानसे अकारादि स्वरोंका उदय भी होता रहता है ॥ ३—४ १/२ ॥

(अब व्यावहारिक काल-ज्ञान कहते हैं—) तीन बार स्फुरण होनेपर १ 'उच्छ्वास' होता है अर्थात् १ 'अणु'[२] होता है, ६ 'उच्छ्वास'का १ 'पल' होता है, ६० पलका एक 'लिप्ता' अर्थात् १ 'दण्ड' होता है, (यद्यपि 'लिप्ता' शब्द कला-वाचक है, जो कि ग्रहोंके राश्यादि विभागमें लिया जाता है, फिर भी यहाँ काल-मानके प्रकरणमें 'लिप्ता' शब्दसे 'दण्ड' ही लिया जायगा; क्योंकि 'कला' तथा 'दण्ड'—ये दोनों भचक्रके षष्ट्यंश-विभागमें ही लिये गये हैं।) ६० दण्डका १ अहोरात्र होता है। उपर्युक्त अ, इ, उ, ए, ओ—स्वरोंकी क्रमसे बाल, कुमार, युवा, वृद्ध, मृत्यु—ये पाँच संज्ञाएँ होती हैं। इनमें किसी एक स्वरके उदयके बाद पुन: उसका उदय पाँचवें खण्डपर होता है। जितने समयसे उदय होता है, उतने ही समयसे अस्त भी होता है। इनके

१. इस विषयके स्पष्ट बोधके लिये निम्नाङ्कित स्वरचक्र देखिये—

स्वरा:	अ	इ	उ	ए	ओ
तिथय:	नन्दा १।६।११	भद्रा २।७।१२	जया ३।८।१३	रिक्ता ४।९।१४	पूर्णा ५।१०।१५
वर्णा:	क छ ड ध भ व	ख ज ढ न म श	ग झ त प य ष	घ ट थ फ र स	च ठ द ब ल ह
स्वामिन:	सूर्य मंगल	बुध चन्द्र	बृह० शुक्र	शनि० मं०	सू० श०
संज्ञा	बाल	कुमार	युवा	वृद्ध	मृत्यु

२. इस विषयपर भास्कराचार्य अपनी 'गणिताध्याय' नामक पुस्तकके 'कालमानाध्याय' में लिखते हैं—

गुर्वक्षरैः खेन्दुमितैरणुस्तैः षड्भिः पलं तैर्घटिका खषड्भिः। स्याद्वा घटीषष्टिरहः खरामैर्मासो दिनैस्तैर्द्विकुभिश्च वर्षम्॥ १॥

"दस गुरु अक्षरोंके उच्चारणमें जितना समय लगता है, उसे एक 'अणु' कहते हैं और ६ अणुओंका एक 'पल' होता है। ६० पलका १ 'दण्ड', ६० दण्डका १ 'अहोरात्र', ३० दिन-रातका एक 'मास' और १२ मासका एक 'वर्ष' होता है।"

उदयकाल एवं अस्तकालका मान अहोरात्रके अर्थात् ६० दण्डके एकादशांशके समान होता है—जैसे ६० में ११ से भाग देनेपर ५ दण्ड २७ पल लब्धि होगी तो ५ दण्ड २७ पल उक्त स्वरोंका उदयास्तमान होता है। किसी स्वरके उदयके बाद दूसरा स्वर ५ दण्ड २७ पलपर उदय होगा। इसी तरह पाँचोंका उदय तथा अस्तमान जानना चाहिये। इनमेंसे जब मृत्युस्वरका उदय हो, तब युद्ध करनेपर पराजयके साथ ही मृत्यु हो जाती है॥ ५—७॥

(अब शनिचक्रका वर्णन करते हैं—) शनिचक्रमें १५ दिनोंपर क्रमशः ग्रहोंका उदय हुआ करता है। इस पञ्चदश विभागके अनुसार शनिका भाग युद्धमें मृत्युदायक होता है। (विशेष—जब कि शनि एक राशिमें ढाई साल अर्थात् ३० मास रहता है, उसमें दिन-संख्या ९०० हुई। ९०० में १५ का भाग देनेसे लब्धि ६० होगी। ६० दिनका १ पञ्चदश विभाग हुआ। शनिके राशिमें प्रवेश करनेके बाद शनि आदि ग्रहोंका उदय ६० दिनका होगा; जिसमें उदयसंख्या ४ बार होगी। इस तरह जब शनिका भाग आये, उस समय युद्ध करना निषिद्ध है)॥ ८॥

(अब कूर्मपृष्ठाकार शनि-बिम्बके पृष्ठका क्षेत्रफल कहते हैं—) दस कोटि सहस्र तथा तेरह लाखमें इसीका दशांश मिला दे तो उतने ही योजनके प्रमाणवाले कूर्मरूप शनि-बिम्बके पृष्ठका क्षेत्रफल होता है। अर्थात् ११००, १४३०००० ग्यारह अरब चौदह लाख तीस हजार योजन शनि-बिम्ब पृष्ठका क्षेत्रफल है। (विशेष—ग्रन्थान्तरोंमें ग्रहोंके बिम्ब-प्रमाण तथा कर्मप्रमाण योजनमें ही कहे गये हैं। जैसे 'गणिताध्याय' में भास्कराचार्य—सूर्य तथा चन्द्रका बिम्बपरिमाण-कथनके अवसरपर—**'बिम्बं रवेर्द्विद्विशरर्त्तुसंख्यानीन्दोः खनागाम्बुधियोजनानि।'** आदि। यहाँ भी संख्या योजनके प्रमाणवाली ही लेनी चाहिये।) मघाके प्रथम चरणसे लेकर कृत्तिकाके आदिसे अन्ततक शनिका निवास अपने स्थानपर रहता है, उस समय युद्ध करना ठीक नहीं होता॥ ९॥

(अब राहु-चक्रका वर्णन करते हैं—) राहु-चक्रके लिये सात खड़ी रेखा एवं सात पड़ी रेखा बनानी चाहिये। उसमें वायुकोणसे नैर्ऋत्यकोणको लिये हुए अग्निकोणतक शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे लेकर पूर्णिमातककी तिथियोंको लिखना चाहिये एवं अग्निकोणसे ईशानकोणको लिये हुए वायुकोणतक कृष्णपक्षकी प्रतिपदासे लेकर अमावास्यातककी तिथियोंको लिखना चाहिये। इस तरह तिथिरूप राहुका न्यास होता है। 'र' कारको दक्षिण दिशामें लिखे और 'ह' कारको वायुकोणमें लिखे। प्रतिपदादि तिथियोंके सहारे 'क'कारादि अक्षरोंको भी लिखे। नैर्ऋत्यकोणमें 'सकार' लिखे। इस तरह राहुचक्र तैयार हो जाता है। राहु-मुखमें* यात्रा करनेसे यात्रा-भङ्ग

---

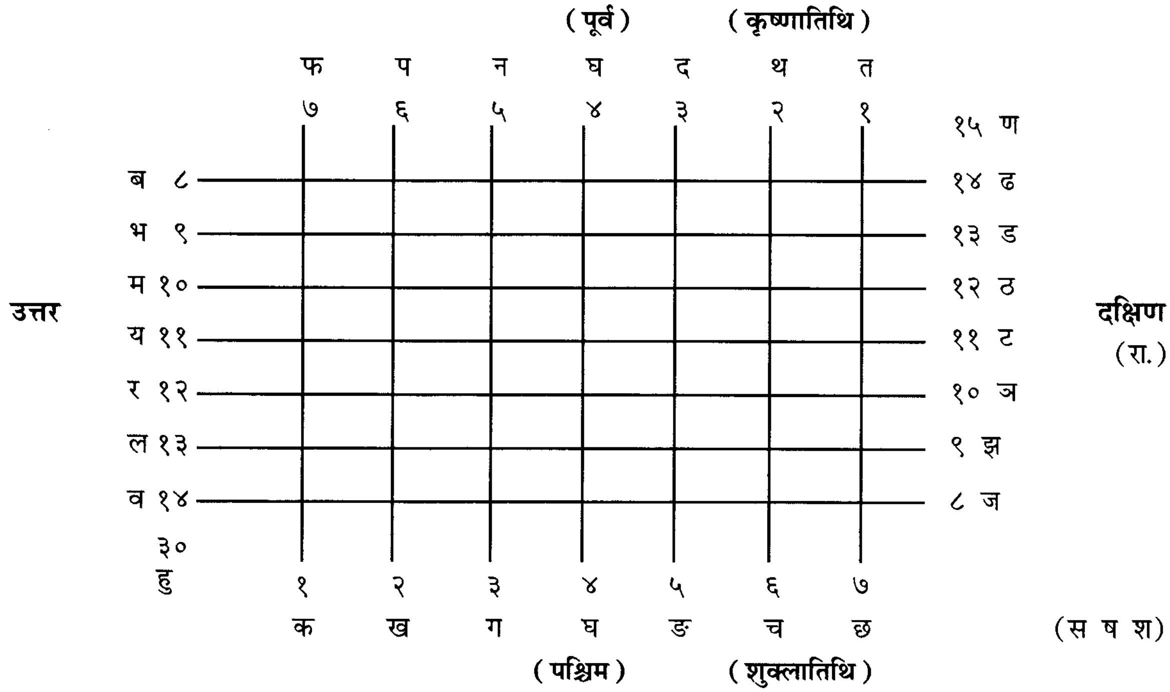
* देवालये गेहविधौ जलाशये राहोर्मुखं शम्भुदिशो विलोमतः।
मीनार्कसिंहाकमृगार्कतस्त्रिभे खाते मुखात् पृष्ठविदिक् शुभा भवेत्॥

(मुहूर्तचिन्तामणि, वास्तुप्रकरण, १९)

मुहूर्तचिन्तामणि-ग्रन्थोक्त रामाचार्यके प्रोक्त वचनानुसार राहुका भ्रमण अपने स्थानसे विलोम ही होता है। जैसे लिखित चक्रमें शुक्लपक्षकी एकादशीको राहुका मुख दक्षिण दिशामें कहा गया है और पुच्छ अमावास्या तिथिपर रहेगी; क्योंकि राहुका स्वरूप सर्पाकार है और एकादशीके बाद दशमी, नवमी आदि विलोम तिथियोंपर राहुका मुख भ्रमण करेगा। इसी तरह शुक्लपक्षकी प्रत्येक तिथियोंपर राहुका मुख आता रहेगा। जहाँपर राहुका मुख रहे, उस तिथिमें उस दिशामें यात्रा करना ठीक नहीं होता है। ककारादि अक्षरोंसे स्वरका भी सम्बन्ध लिया गया है। जैसे पूर्वोक्त स्वरचक्रमें किस स्वरका कौन वर्ण है, यह लिखा गया है; अतः जिस तिथिपर जो वर्ण है, वह जिस स्वरसे सम्बन्ध रखता हो, उस स्वरवाले भी उस दिशामें यात्रा न करें।

राहुचक्र नीचे दिया जा रहा है—

राहुचक्र



होता है॥ १०—१२॥

(अब तिथिके अनुसार भद्रा-निवासकी दिशाका वर्णन करते हैं—)पौर्णमासी तिथिको भद्राका नाम 'विष्टि' होता है और वह अग्निकोणमें रहती है। तृतीया तिथिको भद्राका नाम 'कराली' होता है और वह पूर्व दिशामें वास करती है। सप्तमी तिथिको भद्राका नाम 'घोरा' होता है और वह दक्षिण दिशामें निवास करती है। सप्तमी तथा दशमी तिथियोंको भद्रा क्रमसे ईशानकोण तथा उत्तर दिशामें, चतुर्दशी तिथिको वायव्य कोणमें, चतुर्थी तिथिको पश्चिम दिशामें, शुक्लपक्षकी अष्टमी तथा एकादशीको दक्षिण दिशामें रहती है। इसका प्रत्येक शुभ कार्योंमें सर्वथा त्याग करना चाहिये॥ १३-१४॥

(अब पंद्रह मुहूर्तोंका नाम एवं नामानुकूल कार्योंका वर्णन कर रहे हैं—) रौद्र, श्वेत, मैत्र, सारभट, सावित्र, विरोचन, जयदेव, अभिजित्, रावण, विजय, नन्दी, वरुण, यम, सौम्य, भव— ये पंद्रह मुहूर्त हैं। 'रौद्र' मुहूर्तमें भयानक कार्य करना चाहिये। 'श्वेत' मुहूर्तमें स्नानादिक कार्य करना चाहिये। 'मैत्र' मुहूर्तमें कन्याका विवाह शुभ होता है। 'सारभट' मुहूर्तमें शुभ कार्य करना चाहिये। 'सावित्र' मुहूर्तमें देवोंका स्थापन, 'विरोचन' मुहूर्तमें राजकीय कार्य, 'जयदेव' मुहूर्तमें विजय-सम्बन्धी कार्य तथा 'रावण' मुहूर्तमें संग्रामका कार्य करना चाहिये। 'विजय' मुहूर्तमें कृषि तथा व्यापार, 'नन्दी' मुहूर्तमें षट्कर्म, 'वरुण' मुहूर्तमें तडागादि और 'यम' मुहूर्तमें विनाशवाला कार्य करना चाहिये। 'सौम्य' मुहूर्तमें सौम्य कार्य करना चाहिये। 'भव' मुहूर्तमें दिन-रात शुभ लग्न ही रहता है, अत: उसमें सभी शुभ कार्य किये जा सकते हैं। इस प्रकार ये पंद्रह योग

अपने नामानुसार ही शुभ तथा अशुभ होते हैं*॥ १५—२०॥

(अब राहुके दिशा-संचारका वर्णन कर रहे हैं—) (दैनिक राहु) राहु पूर्वदिशासे वायुकोणतक, वायुकोणसे दक्षिण दिशातक, दक्षिण दिशासे ईशानकोणतक, ईशानकोणसे पश्चिमतक, पश्चिमसे अग्निकोणतक एवं अग्निकोणसे उत्तरतक तीन-तीन दिशा करके चार घटियोंमें भ्रमण करता है॥ २१-२२॥

(अब ओषधियोंके लेपादिद्वारा विजयका वर्णन कर रहे हैं—) चण्डी, इन्द्राणी (सिंधुवार), वाराही (वाराहीकंद), मुशली (तालमूली), गिरिकर्णिका (अपराजिता), बला (कुट), अतिबला (कंघी), क्षीरी (सिरखोला), मल्लिका (मोतिया), जाती (चमेली), यूथिका (जूही), श्वेतार्क (सफेद मदार), शतावरी, गुरुच, वागुरी—इन यथाप्राप्त दिव्य ओषधियोंको धारण करना चाहिये। धारण करनेपर ये युद्धमें विजय-दायिनी होती हैं॥ २३-२४॥

'ॐ नमो भैरवाय खड्गपरशुहस्ताय ॐ हूं विघ्नविनाशाय ॐ हूं फट्।'—इस मन्त्रसे शिखा बाँधकर यदि संग्राम करे तो विजय अवश्य होती है। (अब संग्राममें विजयप्रद) तिलक, अञ्जन, धूप, उपलेप, स्नान, पान, तैल, योगचूर्ण—इन पदार्थोंका वर्णन करता हूँ, सुनो—

सुभगा (नीलदूर्वा), मनःशिला (मैनसिल), ताल (हरताल)—इनको लाक्षारसमें मिलाकर, स्त्रीके दूधमें घोंटकर ललाटमें तिलक करनेसे शत्रु वशमें हो जाता है। विष्णुक्रान्ता (अपराजिता), सर्पाक्षी (महिषकंद), सहदेवी (सहदेइया), रोचना (गोरोचन)—इनको बकरीके दूधमें पीसकर लगाया हुआ तिलक शत्रुओंको वशमें करनेवाला होता है। प्रियंगु (नागकेसर), कुङ्कुम, कुष्ठ, मोहिनी (चमेली), तगर, घृत—इनको मिलाकर लगाया हुआ तिलक वश्यकारक होता है। रोचना (गोरोचन), रक्तचन्दन, निशा (हल्दी), मनःशिला (मैनसिल), ताल (हरताल), प्रियंगु (नागकेसर), सर्षप (सरसों), मोहिनी (चमेली), हरिता (दूर्वा), विष्णुक्रान्ता (अपराजिता), सहदेवी, शिखा (जटामाँसी)—इनको मातुलुङ्ग (बिजौरा नीबू)के रसमें पीसकर ललाटमें किया हुआ तिलक वशमें करनेवाला होता है। इन तिलकोंसे इन्द्रसहित समस्त देवता वशमें हो जाते हैं, फिर क्षुद्र मनुष्योंकी तो बात ही क्या है। मञ्जिष्ठ, रक्तचन्दन, कटुकन्दा (सहिजन), विलासिनी, पुनर्नवा (गदहपूर्णा)—इनको मिलाकर लेप करनेसे सूर्य भी वशमें हो जाते हैं। मलयचन्दन, नागपुष्प (चम्पा), मञ्जिष्ठ, तगर, वच, लोध्र, प्रियंगु (नागकेसर), रजनी (हल्दी), जटामाँसी—इनके सम्मिश्रणसे बना हुआ तैल वशमें करनेवाला होता है॥ २५—३४॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'युद्धजयार्णवसम्बन्धी विविध योगोंका वर्णन' नामक एक सौ तेईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२३॥

---

* दिनमानके ३० दण्ड होनेपर दिनमानका १५ वाँ भाग २ दण्डका होगा; अतः उक्त पंद्रह मुहूर्तोंका मान मध्यम मानसे २ दण्डका ही प्रतिदिन माना गया है। इसे ही 'शिवद्विघटिका' मुहूर्त कहते हैं। उदयसे सायंकालतक २ दण्डके मानसे प्रत्येक मुहूर्तका मान होता है। इसमें नामानुकूल शुभ या अशुभ कार्य करना चाहिये। इसी तरह 'मुहूर्तचिन्तामणि' में १५ मुहूर्त विवाह-प्रकरण (५२)-में कहे गये हैं, जैसे—

गिरिशभुजगमित्रापित्र्यवस्वम्बुविश्वेऽभिजिदथ च विधातापीन्द्र इन्द्रानलौ च॥
निर्ऋतिरुदकनाथोऽप्यर्यमाथो भगः स्युः क्रमश इह मुहूर्ता वासरे बाणचन्द्राः।

एक सौ चौबीसवाँ अध्याय

युद्धजयार्णवीय ज्यौतिषशास्त्रका सार

अग्निदेव कहते हैं— अब मैं युद्धजयार्णव-प्रकरणमें ज्योतिषशास्त्रकी सारभूत वेला (समय), मन्त्र और औषध आदि वस्तुओंका उसी प्रकार वर्णन करूँगा, जिस तरह शंकरजीने पार्वतीजीसे कहा था॥ १॥

पार्वतीजीने पूछा— भगवन्! देवताओंने (देवासुर-संग्राममें) दानवोंपर जिस उपायसे विजय पायी थी, उसका तथा युद्धजयार्णवोक्त शुभाशुभ-विवेकादि रूप ज्ञानका वर्णन कीजिये॥ २॥

शंकरजी बोले— मूलदेव (परमात्मा)-की इच्छासे पंद्रह अक्षरवाली एक शक्ति पैदा हुई। उसीसे चराचर जीवोंकी सृष्टि हुई। उस शक्तिकी आराधना करनेसे मनुष्य सब प्रकारके अर्थोंका ज्ञाता हो जाता है। अब पाँच मन्त्रोंसे बने हुए मन्त्रपीठका वर्णन करूँगा। वे मन्त्र सभी मन्त्रोंके जीवन-मरणमें अर्थात् 'अस्ति' तथा 'नास्ति' रूप सत्तामें स्थित हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद—इन चारों वेदोंके मन्त्रोंको प्रथम मन्त्र कहते हैं। सद्योजातादि मन्त्र द्वितीय मन्त्र हैं एवं ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र—ये तृतीय मन्त्रके स्वरूप हैं। ईश (मैं), सात शिखावाले अग्नि तथा इन्द्रादि देवता—ये चौथे मन्त्रके स्वरूप हैं। अ, इ, उ, ए, ओ—ये पाँचों स्वर पञ्चम मन्त्रके स्वरूप हैं। इन्हीं स्वरोंको मूलब्रह्म भी कहते हैं॥ ३—६॥

(अब पञ्च स्वरोंकी उत्पत्ति कह रहे हैं—) जिस तरह लकड़ीमें व्यापक अग्निकी प्रतीति बिना जलाये नहीं होती है, उसी तरह शरीरमें विद्यमान शिव-शक्तिकी प्रतीति ज्ञानके बिना नहीं होती है। महादेवी पार्वती! पहले ॐकारस्वरसे विभूषित शक्तिकी उत्पत्ति हुई। तत्पश्चात् बिन्दु 'एकार' रूपमें परिणत हुआ। पुनः ओंकारमें शब्द पैदा हुआ, जिससे 'उकार' का उद्गम हुआ। यह 'उकार' हृदयमें शब्द करता हुआ विद्यमान रहता है। 'अर्धचन्द्र' से मोक्ष-मार्गको बतानेवाले 'इकार' का प्रादुर्भाव हुआ। तदनन्तर भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला अव्यक्त 'अकार' उत्पन्न हुआ। वही 'अकार' सर्वशक्तिमान् एवं प्रवृत्ति तथा निवृत्तिका बोधक है॥ ७—१०॥

(अब शरीरमें पाँचों स्वरोंका स्थान कह रहे हैं—) 'अ' स्वर शरीरमें प्राण अर्थात् श्वासरूपसे स्थिर होकर विद्यमान रहता है। इसीका नाम 'इडा' है। 'इकार' प्रतिष्ठा नामसे रहकर रसरूपमें तथा पालक-स्वरूपमें रहता है। इसे ही 'पिङ्गला' कहते हैं। 'ई' स्वरको 'क्रूरा शक्ति' कहते हैं। 'हर-बीज' (उकार) स्वर शरीरमें अग्निरूपसे रहता है। यही 'समान-बोधिका विद्या' है। इसे 'गान्धारी' कहते हैं। इसमें 'दहनात्मिका' शक्ति है। 'एकार' स्वर शरीरमें जलरूपसे रहता है। इसमें शान्ति-क्रिया है तथा 'ओकार' स्वर शरीरमें वायुरूपसे रहता है। यह अपान, व्यान, उदान आदि पाँच स्वरूपोंमें होकर स्पर्श करता हुआ गतिशील रहता है। पाँचों स्वरोंका सम्मिलित सूक्ष्म रूप जो 'ओंकार' है, वह 'शान्त्यतीत' नामसे बोधित होकर शब्द-गुणवाले आकाश-रूपमें रहता है। इस तरह पाँचों स्वर (अ, इ, उ, ए, ओ) हुए, जिनके स्वामी क्रमसे मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र तथा शनि ग्रह हुए। ककारादि वर्ण इन स्वरोंके नीचे होते हैं। ये ही संसारके मूल कारण हैं। इन्हींसे चराचर सब पदार्थोंका ज्ञान होता है॥ ११—१४ $\frac{1}{2}$॥

अब मैं विद्यापीठका स्वरूप बतलाता हूँ, जिसमें 'ओंकार' शिवरूपसे कहा गया है और 'उमा' स्वयं सोम अर्थात् अमृतरूपसे है।

इन्हींको वामा, ज्येष्ठा तथा रौद्री शक्ति भी कहते हैं। ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र—क्रमशः ये ही तीनों गुण हैं एवं सृष्टिके उत्पादक, पालक तथा संहारक हैं। शरीरके अंदर तीन रत्न नाड़ियाँ हैं, जिनका नाम स्थूल, सूक्ष्म तथा पर है। इनका श्वेत वर्ण है। इनसे सदैव अमृत टपकता रहता है, जिससे आत्मा सदैव आप्लावित रहता है। इस प्रकार उसका दिन-रात ध्यान करते रहना चाहिये। देवि! ऐसे साधकका शरीर अजर हो जाता है तथा उसे शिव-सायुज्यकी प्राप्ति हो जाती है। प्रथमतः अङ्गुष्ठ आदिमें, नेत्रोंमें तथा देहमें भी अङ्गन्यास करे, तत्पश्चात् मृत्युंजयकी अर्चना करके यात्रा करनेवाला संग्राम आदिमें विजयी होता है। आकाश शून्य है, निराधार है तथा शब्द-गुणवाला है। वायुमें स्पर्श गुण है। वह तिरछा झुककर स्पर्श करता है। रूपकी अर्थात् अग्निकी ऊर्ध्वगति बतलायी गयी है तथा जलकी अधोगति होती है। सब स्थानोंको छोड़कर गन्ध-गुणवाली पृथ्वी मध्यमें रहकर सबके आधार-रूपमें विद्यमान है॥ १५—२० १/२ ॥

नाभिके मूलमें अर्थात् मेरुदण्डकी जड़में कंदके स्वरूपमें श्रीशिवजी सुशोभित हैं। वहींपर शक्ति-समुदायके साथ सूर्य, चन्द्रमा तथा भगवान् विष्णु रहते हैं और पञ्चतन्मात्राओंके साथ दस प्रकारके प्राण भी रहते हैं। कालाग्निके समान देदीप्यमान वह शिवजीकी मूर्ति सदैव चमकती रहती है। वही चराचर जीवलोकका प्राण है। उस मन्त्रपीठके नष्ट होनेपर वायुस्वरूप जीवका नाश समझना चाहिये*॥ २१—२३ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'युद्धजयार्णव-सम्बन्धी ज्योतिष शास्त्रका सार-कथन' नामक एक सौ चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२४॥

एक सौ पचीसवाँ अध्याय

युद्धजयार्णव-सम्बन्धी अनेक प्रकारके चक्रोंका वर्णन

शंकरजीने कहा—'ॐ ह्रीं कर्णमोटनि बहुरूपे बहुदंष्ट्रे ह्रूं फट्, ॐ हः, ॐ ग्रस ग्रस, कृन्त कृन्तच्छक च्छक ह्रूं फट् नमः।' इस मन्त्रका नाम 'कर्णमोटी महाविद्या' है। यह सभी वर्णोंमें रक्षा करनेवाली है। इस मन्त्रको केवल पढ़नेसे ही मनुष्य क्रोधाविष्ट हो जाता है तथा उसके नेत्र लाल हो जाते हैं। यह मन्त्र मारण, पातन, मोहन एवं उच्चाटनमें उपयुक्त होता है॥ १-२ ॥

अब स्वरोदयके साथ पाँच प्रकारके वायुका स्थान तथा उसका प्रयोजन कहता हूँ। नाभिसे लेकर हृदयतक जो वायुका संचार होता रहता है, उसको 'मारुतचक्र' कहते हैं। जप तथा होम-कार्यमें लगा हुआ क्रोधी साधक उससे संग्रामादि कार्योंमें उच्चाटन-कर्म करता है। कानसे लेकर नेत्रतक जो वायु है, उससे प्रभेदन-कार्य करे एवं हृदयसे गुदामार्गतक जो वायु है, उससे ज्वर-दाह तथा शत्रुओंका मारण-कार्य करना चाहिये। इसी वायुका नाम 'वायुचक्र' है। हृदयसे लेकर कण्ठतक जो वायु है, उसका नाम 'रस' है। इसे ही 'रसचक्र' कहते हैं। उससे शान्तिका प्रयोग किया जाता है तथा पौष्टिक रसके समान उसका गुण है। भौंहसे लेकर नासिकाके अग्रभागतक जो वायु है, उसका नाम 'दिव्य' है। इसे ही 'तेजश्चक्र' कहते हैं। गन्ध इसका गुण है तथा

* यह विषय इस अध्यायके पूर्व अध्यायमें 'स्वरचक्र'के अन्तर्गत आ गया है।

इससे स्तम्भन और आकर्षण-कार्य होता है। नासिकाग्रमें मनको स्थिर करके साधक निस्संदेह स्तम्भन तथा कीलन कर्म करता है। उपर्युक्त वायुचक्रमें चण्डघण्टा, कराली, सुमुखी, दुर्मुखी, रेवती, प्रथमा तथा घोरा—इन शक्तियोंका अर्चन करना चाहिये। उच्चाटन करनेवाली शक्तियाँ तेजश्चक्रमें रहती हैं। सौम्या, भीषणी, देवी, जया, विजया, अजिता, अपराजिता, महाकोटी, महारौद्री, शुष्ककाया, प्राणहरा—ये ग्यारह शक्तियाँ रसचक्रमें रहती हैं॥ ३—९½ ॥

विरूपाक्षी, परा, दिव्या, ११ आकाश-मातृकाएँ, संहारी, जातहारी, दंष्ट्राला, शुष्करेवती, पिपीलिका, पुष्टिहरा, महापुष्टि, प्रवर्धना, भद्रकाली, सुभद्रा, भद्रभीमा, सुभद्रिका, स्थिरा, निष्ठुरा, दिव्या, निष्कम्पा, गदिनी और रेवती—ये बत्तीस मातृकाएँ कहे हुए चारों चक्रों (मारुत, वायु, रस, दिव्य)-में आठ-आठके क्रमसे स्थित रहती हैं॥ १०—१२½ ॥

सूर्य तथा चन्द्रमा एक ही हैं तथा उनकी शक्तियाँ भी भूतभेदसे एक-एक ही हैं। जैसे भूतलपर नदीके जलकी स्थानभेदसे 'तीर्थ' संज्ञा हो जाती है, शरीरके अस्थिपञ्जरमें रहनेवाला एक ही प्राण कई मण्डलों (चक्रों)-से विभक्त हो जाता है। जैसे वाम तथा दक्षिण अङ्गके योगसे वही वायु दस प्रकारका हो जाता है, वैसे ही वही वायु तत्त्वरूपी वस्त्रमें छिपकर विचित्र बिन्दुरूपी मुण्डके द्वारा कपालरूपी ब्रह्माण्डके अमृतका पान करता है॥ १३—१५ ॥

अब पञ्चवर्गके बलसे जिस प्रकार युद्धमें विजय होती है, उसे सुनो—'अ, आ, क, च, ट, त, प, य, श'—यह प्रथम वर्ग कहा गया है। 'इ, ई, ख, छ, ठ, थ, फ, र, ष'—यह द्वितीय वर्ग है। 'उ, ऊ, ग, ज, ड, द, ब, ल, स'—यह तृतीय वर्ग है। 'ए, ऐ, घ, झ, ढ, ध, भ, व, ह'—यह चौथा वर्ग है। 'ओ, औ, अं, अः, ङ, ञ, ण, न, म'—यह पञ्चम वर्ग है। ये पैंतालीस अक्षर मनुष्योंके अभ्युदयके लिये हैं। इन वर्गोंके क्रमसे बाल, कुमार, युवा, वृद्ध और मृत्यु—ये पाँच नाम हैं॥ १६—१९½ ॥

(अब तिथि, वार और नक्षत्रोंके योगसे काल-ज्ञानका वर्णन करते हैं—) आत्मपीड़, शोषक, उदासीन—ये तीन प्रकारके काल होते हैं। मङ्गलवारको प्रतिपदा तिथि तथा कृत्तिका नक्षत्र हों तो वे प्राणीके लिये लाभदायक होते हैं। मङ्गलवारको षष्ठी तिथि तथा मघा नक्षत्र हों तो पीड़ाकारक होते हैं। मङ्गलवारको एकादशी तिथि और आर्द्रा नक्षत्र हों तो वे मृत्युदायक होते हैं। बुधवार, द्वितीया तिथि तथा मघा नक्षत्रका योग एवं बुधवार, सप्तमी तिथि और आर्द्रा नक्षत्रका योग लाभदायक होते हैं। बुधवार और भरणी नक्षत्रका योग हानिकारक होता है। इसी प्रकार बुधवार तथा श्रवण नक्षत्रके योगमें 'कालयोग' होता है। बृहस्पतिवार, तृतीया तिथि और पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रका योग लाभकारक होता है। बृहस्पतिवार, अष्टमी तिथि, धनिष्ठा तथा आर्द्रा नक्षत्र एवं गुरुवार, त्रयोदशी तिथि, आश्लेषा नक्षत्र—ये योग मृत्युकारक होते हैं। शुक्रवार, चतुर्थी तिथि और पूर्वभाद्रपदा नक्षत्रका योग श्रीवृद्धि करता है। शुक्रवार, नवमी तिथि और पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र—यह योग दुःखप्रद होता है। शुक्रवार, द्वितीया तिथि और भरणी नक्षत्रका योग यमदण्डके समान हानिकर होता है। शनिवार, पञ्चमी तिथि और कृत्तिका नक्षत्रका योग लाभके लिये कहा गया है। शनिवार, दशमी तिथि और आश्लेषा नक्षत्रका योग पीड़ाकारक होता है। शनिवार, पूर्णिमा तिथि और मघा नक्षत्रका योग मृत्युकारक कहा गया है॥ २०—२६ ॥

(अब दिशा-तिथि-दिनके योगसे हानि-लाभ कहते हैं—) पूर्व, उत्तर, अग्नि, नैर्ऋत्य, दक्षिण,

वायव्य, पश्चिम, ऐशान्य—ये इनमेंसे एक-दूसरेको देखते हैं। प्रतिपदा तथा नवमी आदि तिथियोंमें मेषादि राशियोंके साथ ही रवि आदि वारको भी मिलाये। यह योग कार्यसिद्धिके लिये होता है। जैसे पूर्व दिशा, प्रतिपदा तिथि, मेष लग्न, रविवार—यह योग पूर्व दिशाके लिये युद्ध आदि कार्योंमें सिद्धिदायक होता है। ऐसे और भी समझने चाहिये। मेषसे चार राशियाँ अर्थात् मेष, वृष, मिथुन, कर्क एवं कुम्भ—ये लग्न पूर्ण विजयके लिये होते हैं। शेष राशियाँ मृत्युके लिये होती हैं। सूर्यादि ग्रह तथा रिक्ता, पूर्णा आदि तिथियोंका इसी तरह क्रमशः न्यास करना चाहिये, जैसा कि पहले दिशाओंके साथ कहा गया है। सूर्यके सम्बन्धसे युद्धमें कोई उत्तम फल नहीं होता। सोमका सम्बन्ध संधिके लिये होता है। मङ्गलके सम्बन्धसे कलह होता है। बुधके सम्बन्धसे संग्राम करनेसे अभीष्टसाधनकी प्राप्ति होती है। गुरुके सम्बन्धसे विजयलाभ होता है। शुक्रके सम्बन्धसे अभीष्ट सिद्ध होता है एवं शनिके सम्बन्धसे युद्धमें पराजय होती है॥ २७—३०॥

(पिङ्गला (पक्षि)-चक्रसे शुभाशुभ कहते हैं—) एक पक्षीका आकार लिखकर उसके मुख, नेत्र, ललाट, सिर, हस्त, कुक्षि, चरण तथा पंखमें सूर्यके नक्षत्रसे तीन-तीन नक्षत्र लिखे। पैरवाले तीन नक्षत्रोंमें रण करनेसे मृत्यु होती है तथा पंखवाले तीन नक्षत्रोंमें धनका नाश होता है। मुखवाले तीन नक्षत्रोंमें पीड़ा होती है और सिरवाले तीन नक्षत्रोंमें कार्यका नाश होता है। कुक्षिवाले तीन नक्षत्रोंमें रण करनेसे उत्तम फल होता है॥ ३१-३२ $\frac{१}{२}$ ॥

(अब राहुचक्र कहते हैं—) पूर्वसे नैर्ऋत्यकोणतक, नैर्ऋत्यकोणसे उत्तर दिशातक, उत्तर दिशासे अग्निकोणतक, अग्निकोणसे पश्चिमतक, पश्चिमसे ईशानतक, ईशानसे दक्षिणतक, दक्षिणसे वायव्यकोणतक, वायव्यकोणसे उत्तरतक चार-चार दण्डतक राहुका भ्रमण होता है। राहुको पृष्ठकी ओर रखकर रण करना विजयप्रद होता है तथा राहुके सम्मुख रहनेसे मृत्यु हो जाती है॥ ३३-३४ $\frac{३}{४}$ ॥

प्रिये! मैं तुमसे अब तिथि-राहुका वर्णन करता हूँ। पूर्णिमाके बाद कृष्णपक्षकी प्रतिपदासे अग्निकोणसे लेकर ईशानकोणतक अर्थात् कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथितक राहु पूर्व दिशामें रहता है। उसमें युद्ध करनेसे जय होती है। इसी तरह ईशानसे अग्निकोणतक और नैर्ऋत्यकोणसे वायव्यकोणतक राहुका भ्रमण होता रहता है। मेषादि राशियोंको पूर्वादि दिशामें रखना चाहिये। इस तरह रखनेपर मेष, सिंह, धनु राशियाँ पूर्वमें; वृष, कन्या, मकर—ये दक्षिणमें; मिथुन, तुला, कुम्भ—ये पश्चिममें; कर्क, वृश्चिक, मीन—ये उत्तरमें हो जाती हैं। सूर्यकी राशिसे सूर्यकी दिशा जानकर सम्मुख सूर्यमें रण करना मृत्युकारक होता है॥ ३५—३७॥

(भद्राकी तिथिका निर्णय बताते हैं—) कृष्णपक्षमें तृतीया, सप्तमी, दशमी तथा चतुर्दशीको 'भद्रा' होती है। शुक्लपक्षमें चतुर्थी, एकादशी, अष्टमी और पूर्णिमाको 'भद्रा' होती है। भद्राका निवास अग्निकोणसे वायव्यकोणतक रहता है। अ, क, च, ट, त, प, य, श—ये आठ वर्ग होते हैं, जिनके स्वामी क्रमसे सूर्य, चन्द्रमा, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु ग्रह होते हैं। इन ग्रहोंके वाहन क्रमसे गृध्र, उलूक, बाज, पिङ्गल, कौशिक (उलूक), सारस, मयूर, गोरङ्क नामके पक्षी हैं। पहले हवन करके मन्त्रोंको सिद्ध कर लेना चाहिये। उच्चाटनमें मन्त्रोंका प्रयोग पल्लवरूपसे करना चाहिये॥ ३८—४० $\frac{१}{२}$ ॥

वश्य, ज्वर एवं आकर्षणमें पल्लवका प्रयोग

सिद्धिकारक होता है। शान्ति तथा मोहन-प्रयोगोंमें 'नमः' कहना ठीक होता है। पुष्टिमें तथा वशीकरणमें 'वौषट्' एवं मारण तथा प्रीतिविनाशके प्रयोगमें 'हुम्' कहना ठीक होता है। विद्वेषण तथा उच्चाटनमें 'फट्' कहना चाहिये। पुत्रादि-प्राप्तिके प्रयोगमें तथा दीप्ति आदिमें 'वषट्' कहना चाहिये। इस तरह मन्त्रोंकी छः जातियाँ होती हैं॥ ४१-४२ $\frac{१}{२}$ ॥

अब हर तरहसे रक्षा करनेवाली ओषधियोंका वर्णन करूँगा—महाकाली, चण्डी, वाराही (वाराहीकंद), ईश्वरी, सुदर्शना, इन्द्राणी (सिंधुवार)—इनको शरीरमें धारण करनेसे ये धारककी रक्षा करती हैं। बला (कुट), अतिबला (कंघी), भीरु (शतावरी अथवा कंटकारी), मुसली (तालमूली), सहदेवी, जाती (चमेली), मल्लिका (मोतिया), यूथी (जूही), गारुड़ी, भृङ्गराज (भटकटैया), चक्ररूपा—ये महौषधियाँ धारण करनेसे युद्धमें विजयदायिनी होती हैं। महादेवि! ग्रहण लगनेपर पूर्वोक्त ओषधियोंका उखाड़ना शुभदायक होता है॥ ४३—४६॥

हाथीकी सर्वाङ्गसम्पन्न मिट्टीकी मूर्ति बनाकर, उसके पैरके नीचे शत्रुके स्वरूपको रखकर, स्तम्भन-प्रयोग करना चाहिये। अथवा किसी पर्वतके ऊपर, जहाँपर एक ही वृक्ष हो, उसके नीचे, अथवा जहाँपर बिजली गिरी हो, उस प्रदेशमें, वल्मीककी मिट्टीसे एक स्त्रीकी प्रतिकृति बनाये। फिर '**ॐ नमो महाभैरवाय विकृतदंष्ट्रोग्ररूपाय पिंगलाक्षाय त्रिशूलखड्गधराय वौषट्।**' हे देवि! इस मन्त्रसे उस मृत्तिकामयी देवीकी पूजा करके (शत्रुके) शस्त्रसमूहका स्तम्भन करना चाहिये॥ ४७—४९ $\frac{१}{२}$ ॥

अब संग्राममें विजय दिलानेवाले अग्निकार्यका वर्णन करूँगा—रातमें श्मशानमें जाकर नंग-धड़ंग, शिखा खोलकर, दक्षिणमुख बैठकर जलती हुई चितामें मनुष्यका मांस, रुधिर, विष, भूसी और हड्डीके टुकड़े मिलाकर नीचे लिखे मन्त्रसे आठ सौ बार शत्रुका नाम लेकर हवन करे—'**ॐ नमो भगवति कौमारि लल लल लालय लालय घण्टादेवि! अमुकं मारय मारय सहसा नमोऽस्तु ते भगवति विद्ये स्वाहा।**'—इस विद्यासे हवन करनेपर शत्रु अंधा हो जाता है॥ ५०—५३॥

(सब प्रकारकी सफलताके लिये हनुमान्‌जीका मन्त्र कहते हैं—) '**ॐ वज्रकाय वज्रतुण्ड कपिलपिङ्गल करालवदनोर्ध्वकेश महाबल रक्तमुख तडिज्जिह्व महारौद्र दंष्ट्रोत्कट कटकरालिन् महादृढप्रहार लङ्केश्वरसेतुबन्ध शैलप्रवाह गगनचर, एह्येहि भगवन्महाबलपराक्रम भैरवो ज्ञापयति, एह्येहि महारौद्र दीर्घलाङ्गूलेन अमुकं वेष्टय वेष्टय जम्भय जम्भय खन खन वैते हूं फट्।**' देवि! इस मन्त्रको ३८०० बार जप कर लेनेपर श्रीहनुमान्‌जी सब प्रकारके कार्योंको सिद्ध कर देते हैं। कपड़ेपर हनुमान्‌जीकी मूर्ति लिखकर दिखानेसे शत्रुओंका विनाश होता है॥ ५४-५५॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'युद्धजयार्णव-सम्बन्धी विविध चक्रोंका वर्णन' नामक एक सौ पचीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२५॥

एक सौ छब्बीसवाँ अध्याय

नक्षत्र-सम्बन्धी पिण्डका वर्णन

शंकरजी कहते हैं— देवि! अब मैं प्राणियोंके शुभाशुभ फलकी जानकारीके लिये नाक्षत्रिक पिण्डका वर्णन करूँगा। (जिस राजा या मनुष्यके लिये शुभाशुभ फलका ज्ञान करना हो, उसकी प्रतिकृतिरूपसे एक मनुष्यका आकार बनाकर) सूर्य जिस नक्षत्रमें हों, उससे तीन नक्षत्र उसके मस्तकमें, एक मुखमें, दो नेत्रोंमें, चार हाथ और पैरमें, पाँच हृदयमें और पाँच जानुमें लिखकर आयु-वृद्धिका विचार करना चाहिये। सिरवाले नक्षत्रोंमें संग्राम (कार्य) करनेसे राज्यकी प्राप्ति होती है। मुखवाले नक्षत्रमें सुख, नेत्रवाले नक्षत्रोंमें सुन्दर सौभाग्य, हृदयवाले नक्षत्रोंमें द्रव्यसंग्रह, हाथवाले नक्षत्रोंमें चोरी और पैरवाले नक्षत्रोंमें मार्गमें ही मृत्यु—इस तरह क्रमशः फल होते हैं॥ १—३ $\frac{१}{२}$ ॥

(अब 'कुम्भ-चक्र' कह रहे हैं—) आठ कुम्भको पूर्वादि आठ दिशाओंमें स्थापित करना चाहिये। प्रत्येक कुम्भमें तीन-तीन नक्षत्रोंकी स्थापना करनेपर आठ कुम्भोंमें चौबीस नक्षत्रोंका निवेश हो जानेपर चार नक्षत्र शेष रह जायँगे। इन्हें ही 'सूर्यकुम्भ' कहते हैं। यह सूर्यकुम्भ अशुभ होता है। शेष पूर्वादि दिशाओंवाले कुम्भ-सम्बन्धी नक्षत्र शुभ होते हैं। (इसका उपयोग नाम-नक्षत्रसे दैनिक नक्षत्रतक गिनकर उसी संख्यासे करना चाहिये।)॥ ४ $\frac{१}{२}$ ॥

अब मैं संग्राममें जय-पराजयका विवेक प्रदान करनेवाले सर्पाकार राहुचक्रका वर्णन करता हूँ। प्रथम अट्ठाईस बिन्दुओंको लिखे, उसमें तीन-तीनका विभाग कर दे, इस तरह आठ विभाग कर देनेपर चौबीस नक्षत्रोंका निवेश हो जायगा। चार शेष रह जायँगे। उसपर रेखा करे। इस तरह करनेपर 'सर्पाकार चक्र' बन जायगा। जिस नक्षत्रमें राहु रहे, उसको सर्पके फणमें लिखे। उसके बाद उसी नक्षत्रसे प्रारम्भ करके क्रमशः सत्ताईस नक्षत्रोंका निवेश करे॥ ५—७॥



(सर्पाकार राहुचक्रका फल—) मुखवाले सात नक्षत्रोंमें संग्राम करनेसे मरण होता है, स्कन्धवाले सात नक्षत्रोंमें युद्ध करनेसे पराजय होती है, पेटवाले सात नक्षत्रोंमें युद्ध करनेसे सम्मान तथा विजयकी प्राप्ति होती है, कटिवाले नक्षत्रोंमें संग्राम करनेसे शत्रुओंका हरण होता है, पुच्छवाले नक्षत्रोंमें संग्राम करनेसे कीर्ति होती है और राहुसे दृष्ट नक्षत्रमें संग्राम करनेसे मृत्यु होती है। इसके बाद फिर सूर्यसे राहुतक ग्रहोंके बलका वर्णन करूँगा॥ ८—१०॥

(अर्धयामेशका वर्णन करते हैं—) जैसे चार प्रहरका एक दिन होता है तो एक दिनमें आठ अर्धप्रहर होंगे। यदि दिनमान बत्तीस दण्डका हो तो एक अर्ध प्रहरका मान चार दण्डका होगा। दिनमान-प्रमाणमें आठसे भाग देनेपर जो लब्धि होगी, वही एक अर्धप्रहरका मान होता है। रवि आदि सात वारोंमें प्रत्येक अर्धप्रहरका कौन ग्रह स्वामी होगा—इसपर विचार करते हुए केवल रविवारके दिन प्रत्येक अर्धप्रहरके स्वामियोंको बता रहे हैं। जैसे रविवारमें एकसे लेकर आठ अर्धप्रहरोंके स्वामी क्रमशः सूर्य, शुक्र, बुध, सोम, शनि, गुरु, मङ्गल और राहु ग्रह होते हैं। (इनमें जिस विभागका स्वामी शनि होता है, वह समय शुभ कार्योंमें त्याज्य है और उसे ही 'वारवेला' कहते हैं।)

(विशेष—रविवारके अर्धयामेशोंको देखनेसे यह अनुमान होता है कि रविवारके अतिरिक्त जिस दिनका अर्धयामेश जानना हो तो प्रथम

अर्धयामेश तो दिनपति ही होगा और बादके अर्धयामोंके स्वामी छः संख्यावाले ग्रह होंगे। इसी आधारपर रविवारसे लेकर शनिवारतकके अर्धयामोंके स्वामी नीचे चक्रमें दिये जा रहे हैं*—

वार	सू०	चं०	मं०	बु०	बृ०	शु०	श०
४ दण्ड	सू०	चं०	मं०	बु०	बृ०	शु०	श०
४ दण्ड	शु०	श०	सू०	चं०	मं०	बु०	बृ०
४ दण्ड	बु०	बृ०	शु०	श०	सू०	चं०	मं०
४ दण्ड	सो०	मं०	बु०	बृ०	शु०	श०	सू०
४ दण्ड	श०	सू०	चं०	मं०	बु०	बृ०	शु०
४ दण्ड	बृ०	शु०	श०	सू०	चं०	मं०	बु०
४ दण्ड	मं०	बु०	बृ०	शु०	श०	सू०	चं०
४ दण्ड	रा०	रा०	रा०	रा०	रा०	रा०	रा०

शनि, सूर्य तथा राहुको यत्नसे पीठ पीछे करके जो संग्राम करता है, वह सैन्यसमुदायपर विजय प्राप्त करता है तथा जूआ, मार्ग और युद्धमें सफल होता है॥ ११-१२॥

(नक्षत्रोंकी स्थिरादि संज्ञा तथा उसका प्रयोजन कहते हैं—) रोहिणी, तीनों उत्तराएँ, मृगशिरा—इन पाँच नक्षत्रोंकी 'स्थिर' संज्ञा है। अश्विनी, रेवती, स्वाती, धनिष्ठा, शतभिषा—इन पाँचों नक्षत्रोंकी 'क्षिप्र' संज्ञा है। इनमें यात्रार्थीको यात्रा करनी चाहिये। अनुराधा, हस्त, मूल, मृगशिरा, पुष्य, पुनर्वसु—इनमें प्रत्येक कार्य हो सकता है। ज्येष्ठा, चित्रा, विशाखा, तीनों पूर्वाएँ, कृत्तिका, भरणी, मघा, आर्द्रा, आश्लेषा—इनकी 'दारुण' संज्ञा है। स्थिर कार्योंमें स्थिर संज्ञावाले नक्षत्रोंको लेना चाहिये। यात्रामें 'क्षिप्र' संज्ञक नक्षत्र उत्तम माने गये हैं। 'मृदु' संज्ञक नक्षत्रोंमें सौभाग्यका काम तथा 'उग्र' संज्ञक नक्षत्रोंमें उग्र काम करना चाहिये। 'दारुण' संज्ञक नक्षत्र दारुण (भयानक) कामके लिये उपयुक्त होते हैं॥ १३—१६ $\frac{१}{२}$ ॥

(अब अधोमुख, तिर्यङ्मुख आदि नक्षत्रोंका नाम तथा प्रयोजन कहता हूँ—) कृत्तिका, भरणी, आश्लेषा, विशाखा, मघा, मूल, तीनों पूर्वाएँ—ये अधोमुख नक्षत्र हैं। इनमें अधोमुख कर्म करना चाहिये। उदाहरणार्थ कूप, तड़ाग, विद्याकर्म, चिकित्सा, स्थापन, नौका-निर्माण, कूपोंका विधान, गड्ढा खोदना आदि कार्य इन्हीं अधोमुख नक्षत्रोंमें करना चाहिये। रेवती, अश्विनी, चित्रा, हस्त, स्वाती, पुनर्वसु, अनुराधा, मृगशिरा, ज्येष्ठा—ये नौ नक्षत्र तिर्यङ्मुख हैं। इनमें राज्याभिषेक, हाथी तथा घोड़ेको पट्टा बाँधना, बाग लगाना, गृह तथा प्रासादका निर्माण, प्राकार बनाना, क्षेत्र, तोरण, ध्वजा, पताका लगाना—इन सभी कार्योंको करना चाहिये। रविवारको द्वादशी, सोमवारको एकादशी, मङ्गलवारको दशमी, बुधवारको तृतीया, बृहस्पतिवारको षष्ठी, शुक्रवारको द्वितीया, शनिवारको सप्तमी हो तो 'दग्धयोग' होता है॥ १७—२३॥

(अब त्रिपुष्कर योग बतलाते हैं—) द्वितीया, द्वादशी, सप्तमी—तीन तिथियाँ तथा रवि, मङ्गल, शनि—तीन वार—ये छः 'त्रिपुष्कर' हैं तथा विशाखा, कृत्तिका, दोनों उत्तराएँ, पुनर्वसु, पूर्वाभाद्रपदा—ये छः नक्षत्र भी 'त्रिपुष्कर' हैं। अर्थात् रवि, शनि, मङ्गलवारोंमें द्वितीया, सप्तमी, द्वादशीमेंसे कोई तिथि हो तथा उपर्युक्त नक्षत्रोंमेंसे कोई नक्षत्र हो तो 'त्रिपुष्कर-योग' होता है। त्रिपुष्कर योगमें लाभ, हानि, विजय, वृद्धि, पुत्रजन्म, वस्तुओंका नष्ट एवं विनष्ट होना—ये सब त्रिगुणित हो जाते हैं॥ २४—२६॥

(अब नक्षत्रोंकी स्वक्ष, मध्याक्ष, मन्दाक्ष और अन्धाक्ष संज्ञा तथा प्रयोजन कहते हैं—) अश्विनी, भरणी, आश्लेषा, पुष्य, स्वाती, विशाखा, श्रवण, पुनर्वसु—ये दृढ़ नेत्रवाले नक्षत्र हैं और दसों

* प्रत्येक दिनकी अर्धयामेश-संख्या आठ है तथा दिनपति रविसे लेकर शनितक सात ही हैं। अतः आठवें अर्धयामको ग्रन्थान्तरोंमें 'निरीश' माना गया है। जैसे—

रविवारादिशन्यन्तं गुलिकादिर्निरूप्यते। अष्टमांशो निरीशः स्याच्छन्यंशो गुलिकः स्मृतः॥

किंतु यहाँ अग्निपुराणमें प्रतिदिन राहुको अष्टमांशका स्वामी मान रहे हैं—यह विशेष बात है।

दिशाओंको देखते हैं। (इनकी संज्ञा 'स्वक्ष' है।) इनमें गयी हुई वस्तु तथा यात्रामें गया हुआ व्यक्ति विशेष पुण्यके उदय होनेपर ही लौटते हैं। दोनों आषाढ़ नक्षत्र, रेवती, चित्रा, पुनर्वसु—ये पाँच नक्षत्र 'केकर' हैं, अर्थात् 'मध्याक्ष' हैं। इनमें गयी हुई वस्तु विलम्बसे मिलती है। कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, पूर्वाफाल्गुनी, मघा, मूल, ज्येष्ठा, अनुराधा, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा—ये नक्षत्र 'चिपिटाक्ष' अर्थात् 'मन्दाक्ष' हैं। इनमें गयी हुई वस्तु तथा मार्ग चलनेवाला व्यक्ति कुछ ही विलम्बमें लौट आता है। हस्त, उत्तराभाद्रपदा, आर्द्रा, पूर्वाषाढा—ये नक्षत्र 'अन्धाक्ष' हैं। इनमें गयी हुई वस्तु शीघ्र मिल जाती है, कोई संग्राम नहीं करना पड़ता॥ २७—३२॥

अब नक्षत्रोंमें स्थित 'गण्डान्त'का निरूपण करता हूँ—रेवतीके अन्तके चार दण्ड और अश्विनीके आदिके चार दण्ड 'गण्डान्त' होते हैं। इन दोनों नक्षत्रोंका एक प्रहर शुभ कार्योंमें प्रयत्नपूर्वक त्याग देना चाहिये। आश्लेषाके अन्तका तथा मघाके आदिके चार दण्ड 'द्वितीय गण्डान्त' कहे गये हैं। भैरवि! अब 'तृतीय गण्डान्त'को सुनो—ज्येष्ठा तथा मूलके बीचका एक प्रहर बहुत ही भयानक होता है। यदि व्यक्ति अपना जीवन चाहता हो तो उसे इस कालमें कोई शुभ कार्य नहीं करना चाहिये। इस समयमें यदि बालक पैदा हो तो उसके माता-पिता जीवित नहीं रहते॥ ३३—३६॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'नक्षत्रोंके निर्णयका प्रतिपादन' नामक एक सौ छब्बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२६॥

एक सौ सत्ताईसवाँ अध्याय
विभिन्न बलोंका वर्णन

शंकरजी कहते हैं—'विष्कुम्भ योग'की तीन घड़ियाँ, 'शूल योग'की पाँच 'गण्ड' तथा 'अतिगण्ड योग'की छः 'व्याघात' तथा 'वज्र योग' की नौ घड़ियोंको सभी शुभ कार्योंमें त्याग देना चाहिये। 'परिघ', 'व्यतीपात' और 'वैधृति' योगोंमें पूरा दिन त्याज्य बतलाया गया है। इन योगोंमें यात्रा-युद्धादि कार्य नहीं करने चाहिये॥ १-२॥

देवि! अब मैं मेषादि राशि तथा ग्रहोंके द्वारा शुभाशुभका निर्णय बताता हूँ—जन्म-राशिके चन्द्रमा तथा शुक्र वर्जित होनेपर ही शुभदायक होते हैं। जन्म-राशि तथा लग्नसे दूसरे स्थानमें सूर्य, शनि, राहु अथवा मङ्गल हो तो प्राप्त द्रव्यका नाश और अप्राप्तका अलाभ होता है तथा युद्धमें पराजय होती है। चन्द्रमा, बुध, गुरु, शुक्र—ये दूसरे स्थानमें शुभप्रद होते हैं। सूर्य, शनि, मङ्गल, शुक्र, बुध, चन्द्रमा, राहु—ये तीसरे घरमें हों तो शुभ फल देते हैं। बुध, शुक्र चौथे भावमें हों तो शुभ तथा शेष ग्रह भयदायक होते हैं। बृहस्पति, शुक्र, बुध, चन्द्रमा—ये पञ्चम भावमें हों तो अभीष्ट लाभकी प्राप्ति कराते हैं। देवि! अपनी राशिसे छठे भावमें सूर्य, चन्द्र, शनि, मङ्गल, बुध—ये ग्रह शुभ फल देते हैं; किंतु छठे भावका शुक्र तथा गुरु शुभ नहीं होता। सप्तम भावके सूर्य, शनि, मङ्गल, राहु हानिकारक होते हैं तथा बुध, गुरु, शुक्र सुखदायक होते हैं। अष्टम भावके बुध और शुक्र—शुभ तथा शेष ग्रह हानिकारक होते हैं। नवम भावके बुध, शुक्र शुभ तथा शेष ग्रह अशुभ होते हैं। दशम भावके शुक्र, सूर्य लाभकर होते हैं तथा शनि, मङ्गल, राहु, चन्द्रमा-बुध शुभकारक होते हैं। ग्यारहवें भावमें प्रत्येक ग्रह शुभ फल देता है, परंतु दसवें बृहस्पति त्याज्य हैं। द्वादश भावमें बुध-शुक्र शुभ तथा शेष ग्रह अशुभ होते हैं। एक दिन-रातमें द्वादश राशियाँ भोग करती हैं। अब मैं उनका

वर्णन कर रहा हूँ॥ ३—१२॥

(राशियोंका भोगकाल एवं चरादि संज्ञा तथा प्रयोजन कह रहे हैं—) मीन, मेष, मिथुन—इनमें प्रत्येकके चार दण्ड; वृष, कर्क, सिंह, कन्या—इनमें प्रत्येकके छः दण्ड; तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ—इनमें प्रत्येकके पाँच दण्ड भोगकाल हैं। सूर्य जिस राशिमें रहते हैं, उसीका उदय होता है और उसी राशिसे अन्य राशियोंका भोगकाल प्रारम्भ होता है। मेषादि राशियोंकी क्रमशः 'चर', 'स्थिर' और 'द्विस्वभाव' संज्ञा होती है। जैसे—मेष, कर्क, तुला, मकर—इन राशियोंकी 'चर' संज्ञा है। इनमें शुभ तथा अशुभ स्थायी कार्य करने चाहिये। वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ—इन राशियोंकी 'स्थिर' संज्ञा है। इनमें स्थायी कार्य करना चाहिये। इन लग्नोंमें बाहर गये हुए व्यक्तिसे शीघ्र समागम नहीं होता तथा रोगीको शीघ्र रोगसे मुक्ति नहीं प्राप्त होती। मिथुन, कन्या, धनु, मीन—इन राशियोंकी 'द्विस्वभाव' संज्ञा है। ये द्विस्वभावसंज्ञक राशियाँ प्रत्येक कार्यमें शुभ फल देनेवाली हैं। इनमें यात्रा, व्यापार, संग्राम, विवाह एवं राजदर्शन होनेपर वृद्धि, जय तथा लाभ होते हैं और युद्धमें विजय होती है। अश्विनी नक्षत्रकी बीस ताराएँ हैं और घोड़ेके समान उसका आकार है। यदि इसमें वर्षा हो तो एक राततक घनघोर वर्षा होती है। यदि भरणीमें वर्षा आरम्भ हो तो पंद्रह दिनतक लगातार वर्षा होती रहती है॥ १३—१९॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'विभिन्न बलोंका वर्णन' नामक एक सौ सत्ताईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२७॥

एक सौ अट्ठाईसवाँ अध्याय

कोटचक्रका वर्णन

शंकरजी कहते हैं—अब मैं 'कोटचक्र' का वर्णन करता हूँ—पहले चतुर्भुज लिखे, उसके भीतर दूसरा चतुर्भुज, उसके भीतर तीसरा चतुर्भुज और उसके भीतर चौथा चतुर्भुज लिखे। इस तरह लिख देनेपर 'कोटचक्र' बन जाता है। कोटचक्रके भीतर तीन मेखलाएँ बनती हैं, जिनका नाम क्रमसे 'प्रथम नाड़ी', 'मध्यनाड़ी' और 'अन्तनाड़ी' है। कोटचक्रके ऊपर पूर्वादि दिशाओंको लिखकर मेषादि राशियोंको भी लिख देना चाहिये। (कोटचक्रमें नक्षत्रोंका न्यास कहते हैं—) पूर्व भागमें कृत्तिका, अग्निकोणमें आश्लेषा, दक्षिणमें मघा, नैर्ऋत्यमें विशाखा, पश्चिममें अनुराधा, वायुकोणमें श्रवण, उत्तरमें धनिष्ठा, ईशानमें भरणीको लिखे। इस तरह लिख देनेपर बाह्य नाड़ीमें अर्थात् प्रथम नाड़ीमें आठ नक्षत्र हो जायँगे। इसी तरह पूर्वादि दिशाओंके अनुसार रोहिणी, पुष्य, पूर्वाफाल्गुनी, स्वाती, ज्येष्ठा, अभिजित्, शतभिषा, अश्विनी—ये आठ नक्षत्र, मध्यनाड़ीमें हो जाते हैं। कोटके भीतर जो अन्तनाड़ी है, उसमें भी पूर्वादि दिशाओंके अनुसार पूर्वमें मृगशिरा, अग्निकोणमें पुनर्वसु, दक्षिणमें उत्तराफाल्गुनी, नैर्ऋत्यमें चित्रा, पश्चिममें मूल, वायव्यमें उत्तराषाढ़ा, उत्तरमें पूर्वाभाद्रपदा और ईशानमें रेवतीको लिखे। इस तरह लिख देनेपर अन्तनाड़ीमें भी आठ नक्षत्र हो जाते हैं। आर्द्रा, हस्त, पूर्वाषाढ़ा तथा उत्तराभाद्रपदा—ये चार नक्षत्र कोटचक्रके मध्यमें स्तम्भ होते हैं।* इस तरह चक्रको लिख देनेपर बाहरका स्थान दिशाके स्वामियोंका होता

* आर्द्रा हस्तस्तथाषाढा तुर्यमुत्तरभाद्रकम्। मध्ये स्तम्भचतुष्कं तु दद्यात् कोटस्य कोटरे॥ (अग्निपु० १२८।९)
ग्रन्थान्तरमें भी ऐसा ही वर्णन है।
'नृपतिजयचर्या' नामक ग्रन्थमें समचतुरस्र कोटचक्रके प्रकरणमें २३ वें श्लोकमें स्तम्भ-चतुष्टयका वर्णन इस प्रकार किया गया है—
पूर्वे रौद्रं यमे हस्तं पूर्वाषाढा च वारुणे। उत्तरे चोत्तराभाद्रा एतत् स्तम्भचतुष्टयम्॥

है*। आगन्तुक योद्धा जिस दिशामें जो नक्षत्र है, उसी नक्षत्रमें उसी दिशासे कोटमें यदि प्रवेश करता है तो उसकी विजय होती है। कोटके बीचमें जो नक्षत्र हैं, उन नक्षत्रोंमें जब शुभ ग्रह आये, तब युद्ध करनेसे मध्यवालेकी विजय तथा चढ़ाई करनेवालेकी पराजय होती है। प्रवेश करनेवाले नक्षत्रमें प्रवेश करना तथा निर्गमवाले नक्षत्रमें निकलना चाहिये। शुक्र, मङ्गल और बुध—ये जब नक्षत्रके अन्तमें रहें, तब यदि युद्ध आरम्भ किया जाय तो आक्रमणकारीकी पराजय होती है। प्रवेशवाले चार नक्षत्रोंमें यदि युद्ध छेड़ा जाय तो वह दुर्ग वशमें हो जाता है—इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है॥ १—१३॥ (विशेष—प्रथम नाड़ीके आठ नक्षत्र दिशाके नक्षत्र हैं, उन्हींको 'बाह्य' भी कहते हैं। मध्य तथा अन्त नाड़ीवाले नक्षत्रोंको कोटके मध्यका समझना चाहिये।)

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'कोटचक्रका वर्णन' नामक एक सौ अट्ठाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२८॥

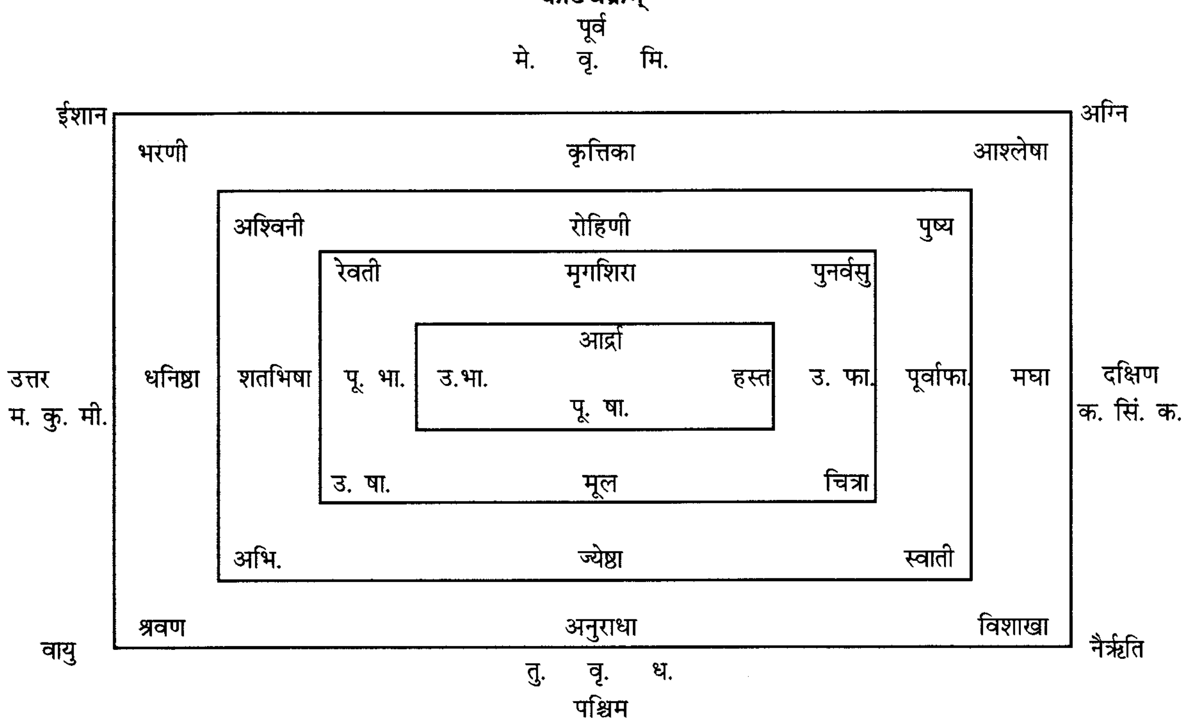
---

* दिशाओंके स्वामीके लिये रामाचार्य 'मुहूर्त-चिन्तामणि' नामक ग्रन्थके यात्रा-प्रकरणमें लिखते हैं—

सूर्यः सितो भूमिसुतोऽथ राहुः शनिः शशी ज्ञश्च बृहस्पतिश्च। प्राच्यादितो दिक्षु विदिक्षु चापि दिशामधीशाः क्रमतः प्रदिष्टाः॥ (११।४७)

'पूर्वके सूर्य, अग्निकोणके शुक्र, दक्षिणके मङ्गल, नैर्ऋत्यके राहु, पश्चिमके शनि, वायव्यके चन्द्र, उत्तरके बुध, ईशानके बृहस्पति—इस प्रकार क्रमशः दिशाओंके स्वामी कहे गये हैं।

कोटचक्रम्



विशेष—भरणी, कृत्तिका, आश्लेषा, मघा, विशाखा, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा—ये आठ नक्षत्र बाह्य (प्रथम नाड़ी) हैं। अश्विनी, रोहिणी, पुष्य, पू० फा०, स्वाती, ज्येष्ठा, अभि०, शतभिषा—ये मध्यनाड़ीके आठ नक्षत्र हैं। रेवती, मृगशिरा, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, चित्रा, मूल, उत्तराषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपदा—ये आठ नक्षत्र अन्तनाड़ीके हैं। मध्य तथा अन्तनाड़ीके नक्षत्रोंको 'मध्यके नक्षत्र' कहते हैं। दिशाके नक्षत्रको 'प्रवेशर्क्ष' कहते हैं। उसके विरुद्ध दिशाके नक्षत्रको 'निर्गम' कहते हैं। जैसे पूर्व प्रवेश तो पश्चिम निर्गम होगा।

एक सौ उन्तीसवाँ अध्याय
अर्घकाण्डका प्रतिपादन

शंकरजी कहते हैं— अब मैं वस्तुओंकी महँगी तथा सस्तीके सम्बन्धमें विचार प्रकट कर रहा हूँ। जब कभी भूतलपर उल्कापात, भूकम्प, निर्घात (वज्रापात), चन्द्र और सूर्यके ग्रहण तथा दिशाओंमें अधिक गरमीका अनुभव हो तो इस बातका प्रत्येक मासमें लक्ष्य करना चाहिये। यदि उपर्युक्त लक्षणोंमेंसे कोई लक्षण चैत्रमें हो तो अलंकार-सामग्रियों (सोना-चाँदी आदि)-का संग्रह करना चाहिये। वह छः मासके बाद चौगुने मूल्यपर बिक सकता है। यदि वैशाखमें हो तो वस्त्र, धान्य, सुवर्ण, घृतादि सब पदार्थोंका संग्रह करना चाहिये। वे आठवें मासमें छः गुने मूल्यपर बिकते हैं। यदि ज्येष्ठ तथा आषाढ़ मासमें मिले तो जौ, गेहूँ और धान्यका संग्रह करना चाहिये। यदि श्रावणमें मिले तो घृत-तैलादि रस-पदार्थोंका संग्रह करना चाहिये। यदि आश्विनमें मिले तो वस्त्र तथा धान्य दोनोंका संग्रह करना चाहिये। यदि कार्तिकमें मिले तो सब प्रकारका अन्न खरीदकर रखना चाहिये। अगहन तथा पौषमें यदि मिले तो कुङ्कुम तथा सुगन्धित पदार्थोंसे लाभ होता है। माघमें यदि उक्त लक्षण मिले तो धान्यसे लाभ होता है। फाल्गुनमें मिले तो सुगन्धित पदार्थोंसे लाभ होता है। लाभकी अवधि छः या आठ मास समझनी चाहिये॥ १—५॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'अर्घकाण्डका प्रतिपादन' नामक एक सौ उन्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२९॥

एक सौ तीसवाँ अध्याय
विविध मण्डलोंका वर्णन

शंकरजी कहते हैं— भद्रे! अब मैं विजयके लिये चार प्रकारके मण्डलका वर्णन करता हूँ। कृत्तिका, मघा, पुष्य, पूर्वाफाल्गुनी, विशाखा, भरणी, पूर्वाभाद्रपदा—इन नक्षत्रोंका 'आग्नेय मण्डल' होता है, उसका लक्षण बतलाता हूँ। इस मण्डलमें यदि विशेष वायुका प्रकोप हो, सूर्य-चन्द्रका परिवेष लगे, भूकम्प हो, देशकी क्षति हो, चन्द्र-सूर्यका ग्रहण हो, धूमज्वाला देखनेमें आये, दिशाओंमें दाहका अनुभव होता हो, केतु अर्थात् पुच्छल तारा दिखायी पड़ता हो, रक्तवृष्टि हो, अधिक गर्मीका अनुभव हो, पत्थर पड़े, तो जनतामें नेत्रका रोग, अतिसार (हैजा) और अग्निभय होता है। गायें दूध कम कर देती हैं। वृक्षोंमें फल-पुष्प कम लगते हैं। उपज कम होती है। वर्षा भी स्वल्प होती है। चारों वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र) दुःखी रहते हैं। सारे मनुष्य भूखसे व्याकुल रहते हैं। ऐसे उत्पातोंके दीख पड़नेपर सिन्ध-यमुनाकी तलहटी, गुजरात, भोज, बाह्लीक, जालन्धर, काश्मीर और सातवाँ उत्तरापथ—ये देश विनष्ट हो जाते हैं। हस्त, चित्रा, मघा, स्वाती, मृगशिरा, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, अश्विनी—इन नक्षत्रोंका 'वायव्य मण्डल' कहा जाता है। इसमें यदि पूर्वोक्त उत्पात हों तो विक्षिप्त होकर हाहाकार करती हुई सारी प्रजाएँ नष्टप्राय हो जाती हैं। साथ ही डाहल (त्रिपुर), कामरूप, कलिङ्ग, कोशल, अयोध्या, उज्जैन, कोङ्कण तथा आन्ध्र—ये देश नष्ट हो जाते हैं। आश्लेषा, मूल, पूर्वाषाढ़ा, रेवती, शतभिषा तथा उत्तराभाद्रपदा—इन नक्षत्रोंको 'वारुण मण्डल' कहते हैं। इसमें यदि पूर्वोक्त उत्पात हों तो गायोंमें दूध-घीकी

वृद्धि और वृक्षोंमें पुष्प तथा फल अधिक लगते हैं। प्रजा आरोग्य रहती है। पृथ्वी धान्यसे परिपूर्ण हो जाती है। अन्नोंका भाव सस्ता तथा देशमें सुकालका प्रसार हो जाता है, किंतु राजाओंमें परस्पर घोर संग्राम होता रहता है॥ १—१४॥

ज्येष्ठा, रोहिणी, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, उत्तराषाढ़ा, सातवाँ अभिजित्—इन नक्षत्रोंका नाम 'माहेन्द्र मण्डल' है। इसमें यदि पूर्वोक्त उत्पात हों तो प्रजा प्रसन्न रहती है, किसी प्रकारके रोगका भय नहीं रह जाता। राजा लोग आपसमें संधि कर लेते हैं और राजाओंके लिये हितकारक सुभिक्ष होता है॥ १५-१६ १/२॥

'ग्राम' दो प्रकारका होता है—पहलेका नाम 'मुखग्राम' है और दूसरेका नाम 'पुच्छग्राम' है। चन्द्र, राहु तथा सूर्य जब एक राशिमें हो जाते हैं, तब उसे 'मुखग्राम' कहते हैं। राहुसे सातवें स्थानको 'पुच्छग्राम' कहते हैं। सूर्यके नक्षत्रसे पंद्रहवें नक्षत्रमें जब चन्द्रमा आता है, उस समय तिथि-साधनके अनुसार 'सोमग्राम' होता है अर्थात् पूर्णिमा तिथि होती है*॥ १७—१९॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'विविध मण्डलोंका वर्णन' नामक एक सौ तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १३०॥

एक सौ इकतीसवाँ अध्याय

घातचक्र आदिका वर्णन

शंकरजी कहते हैं—पूर्वादि दिशाओंमें प्रदक्षिणक्रमसे अकारादि स्वरोंको लिखे। उसमें शुक्लपक्षकी प्रतिपदा, पूर्णिमा, त्रयोदशी, चतुर्दशी, केवल शुक्लपक्षकी एक अष्टमी (कृष्णपक्षकी अष्टमी नहीं), सप्तमी, कृष्णपक्षमें प्रतिपदासे लेकर त्रयोदशीतक (अष्टमीको छोड़कर) द्वादश तिथियोंका न्यास करे। इस चैत्र-चक्रमें पूर्वादि दिशाओंमें स्पर्श-वर्णोंको लिखनेसे जय-पराजयका तथा लाभका निर्णय होता है। विषम दिशा, विषम स्वर तथा विषम वर्णमें शुभ होता है और सम दिशा आदिमें अशुभ होता है॥ १—३॥

चैत्रचक्रम्

अं अ: ईशान र ध झ कृ. १२।१३ ति.	क ट न ल अ आ पूर्व शुक्ल १।१३।१४।१५	अग्नि. शु. प. ७।८ ति. इ ई ख ठ प व
ओ औ य ज द उत्तर कृ. १०।११ ति.		दक्षिण कृ० १।२ ति. उ ऊ ग ड फ श
वायु० ए कृ० ७।९ ति. ह छ थ म	पश्चिम कृ. ५।६ ति. लृ लॄ च. त. भ. स.	नैर्ऋ० कृ. ३।४ ति. ऋ ॠ घ ढ ब ष

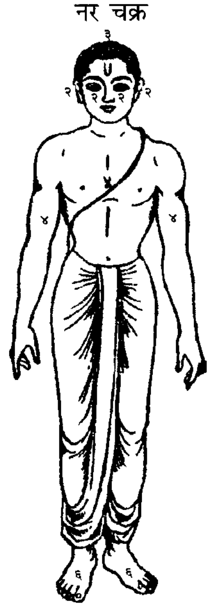
इस चक्रमें शुक्लपक्षकी १।७।८।१३।१४।१५ ये तिथियाँ ली गयी हैं। कृष्णपक्षमें अष्टमी छोड़कर १।२।३।४।५।६।७।९।१०।११।१२।१३ ये तिथियाँ ली गयी हैं।

* सूर्यके साथ चन्द्रमा जब रहेगा, तब अमावास्या तिथि होगी। सूर्यके नक्षत्रसे पंद्रहवें नक्षत्रमें चन्द्रमा आयेगा तो सूर्यसे सातवीं राशिमें चन्द्रमा रहेगा; क्योंकि सवा दो नक्षत्रकी एक राशि होती है। जब सूर्यसे सातवीं राशिमें चन्द्रमा रहता है, तब पूर्णिमा ही तिथि होती है। उसे ही 'सोमग्राम' कहते हैं।

(अब युद्धमें जय-पराजयका लक्षण बतलाते हैं—) युद्धारम्भके समय सेनापति पहले जिसका नाम लेकर बुलाता है, उस व्यक्तिके नामका आदि-अक्षर यदि 'दीर्घ' हो तो उसकी घोर संग्राममें भी विजय होती है। यदि नामका आदि-वर्ण 'ह्रस्व' हो तो निश्चय ही मृत्यु होती है। जैसे—एक सैनिकका नाम 'आदित्य' और दूसरेका नाम है—'गुरु'। इन दोनोंमें प्रथमके नामके आदिमें 'आ' दीर्घ स्वर है और दूसरेके नामके आदिमें 'उ' ह्रस्व स्वर है; अतः यदि दीर्घ स्वरवाले व्यक्तिको बुलाया जायगा तो विजय और ह्रस्ववालेको बुलानेपर हार तथा मृत्यु होगी॥ ४—७॥

(अब 'नरचक्र'के द्वारा घाताङ्गका निर्णय करते हैं—) नक्षत्र-पिण्डके आधारपर नर-चक्रका वर्णन करता हूँ। पहले एक मनुष्यका आकार बनावे। तत्पश्चात् उसमें नक्षत्रोंका न्यास करे। सूर्यके नक्षत्रसे नामके नक्षत्रतक गिनकर संख्या जान ले। पहले तीनको नरके सिरमें, एक मुखमें, दो नेत्रमें, चार हाथमें, दो कानमें, पाँच हृदयमें और छः पैरोंमें लिखे। फिर नाम-नक्षत्रका स्पष्ट रूपसे चक्रके मध्यमें न्यास करे। इस तरह लिखनेपर नरके नेत्र, सिर, दाहिना कान, दाहिना हाथ, दोनों पैर, हृदय, ग्रीवा, बायाँ हाथ और गुह्याङ्गमेंसे जहाँ शनि, मङ्गल, सूर्य तथा राहुके नक्षत्र पड़ते हों, युद्धमें उसी अङ्गमें घात (चोट) होता है॥ ८—१२॥

नर चक्र



(अब जयचक्रका निर्णय करते हैं—) पूर्वसे पश्चिमतक तेरह रेखाएँ बनाकर पुनः उत्तरसे दक्षिणतक छः तिरछी रेखाएँ खींचे। (इस तरह लिखनेपर जयचक्र बन जायगा।) उसमें अ से ह तक अक्षरोंको लिखे और १०।९।७।१२।४।११।१५।२४।१८। ४।२७।२४—इन अङ्कोंका भी न्यास करे। अङ्कोंको ऊपर लिखकर अकारादि अक्षरोंको उसके नीचे लिखे। शत्रुके नामाक्षरके स्वर तथा व्यञ्जन वर्णके सामने जो अङ्क हों, उन सबको जोड़कर पिण्ड बनाये। उसमें सातसे भाग देनेपर एक आदि शेषके अनुसार सूर्यादि ग्रहोंका भाग जाने। १ शेषमें सूर्य, २ में चन्द्र, ३ में भौम, ४ में बुध, ५ में गुरु, ६ में शुक्र, ७ में शनिका भाग होता है—यों समझना चाहिये। जब सूर्य, शनि और मङ्गलका भाग आये तो विजय होती है तथा शुभ ग्रहके भागमें संधि होती है॥ १३—१५ $\frac{1}{2}$॥

प्रथम जयचक्र—

१०	९	७	१२	४	११	१५	२४	१८	४	२७	२४
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ऋ	ॠ	लृ	ए	ऐ	ओ
औ	अं	अः	क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ
ञ	ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न	प
फ	ब	भ	म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह

उदाहरण—जैसे किसीका नाम देवदत्त है, इस नामके अक्षरों तथा ए स्वरके अनुसार अङ्क-क्रमसे १८+४+२४+१८+ १५=७९ (उन्यासी) योग हुआ। इसमें सातका भाग दिया $\frac{७९}{७}$= ११ लब्धि तथा २ शेष हुआ। शेषके अनुसार सूर्यसे गिननेपर चन्द्रका भाग हुआ, अतः संधि होगी। इससे यह निश्चय हुआ कि 'देवदत्त' नामका व्यक्ति संग्राममें कभी पराजित नहीं हो सकता। इसी तरह और नामके अक्षर तथा मात्राके अनुसार जय-पराजयका ज्ञान करना चाहिये।

(अब द्वितीय जयचक्रका निर्णय करते हैं—) पूर्वसे पश्चिमतक बारह रेखाएँ लिखे और छः रेखाएँ याम्योत्तर करके लिखी जायँ। इस तरह यह 'जयचक्र' बन जायगा। उसके सर्वप्रथम ऊपरवाले कोष्ठमें १४। २७। २। १२। १५। ६। ४। ३। १७। ८। ८—इन अङ्कोंको लिखे और कोष्ठोंमें 'अकार' आदि स्वरोंसे लेकर 'ह' तकके अक्षरोंका क्रमशः न्यास करे। तत्पश्चात् नामके अक्षरोंद्वारा बने हुए पिण्डमें आठसे भाग दे तो एक आदि शेषके अनुसार वायस, मण्डल, रासभ, वृषभ, कुञ्जर, सिंह, खर, धूम्र—ये आठ शेषोंके नाम होते हैं। इसमें वायससे प्रबल मण्डल और मण्डलसे प्रबल रासभ—यों उत्तरोत्तर बली जानना चाहिये। संग्राममें यायी तथा स्थायीके नामाक्षरके अनुसार मण्डल बनाकर एक-दूसरेसे बली तथा दुर्बलका ज्ञान करना चाहिये॥ १६—२०॥

द्वितीय जयचक्र—

१४	२७	२	१२	१५	६	४	३	१७	८	८
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ऋ	ॠ	लृ	ॡ	ए
ऐ	ओ	औ	क	ख	ग	घ	च	छ	ज	झ
ट	ठ	ड	ढ	त	थ	द	ध	न	प	फ
ब	भ	म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह

उदाहरण—जैसे यायी रामचन्द्र तथा स्थायी रावण— इन दोनोंमें कौन बली है—यह जानना है। अतः रामचन्द्रके अक्षर तथा स्वरके अनुसार र्=१५, आ=२७, म्=२, अ=१४, च्=३, अ=१४, न्=१७, द्=४, र्=१५, अ=१४—इनका योग १२५ हुआ। इसमें ८ का भाग दिया तो शेष ५ रहा। तथा रावणके अक्षर और स्वरके अनुसार र्=१५, आ=२७, व्=४, अ=१४, न्=१७, अ= १४—इनका योग हुआ ९१। इसमें ८ से भाग देनेपर ३ शेष हुआ। ३ शेषसे ५ बली है, अतः रामचन्द्र-रावणके संग्राममें रामचन्द्र ही बली हो रहे हैं।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'घातचक्रोंका वर्णन' नामक एक सौ इकतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १३१॥

एक सौ बत्तीसवाँ अध्याय

सेवाचक्र आदिका निरूपण

शंकरजी कहते हैं—अब मैं 'सेवाचक्र' का प्रतिपादन कर रहा हूँ, जिससे सेवकको सेव्यसे लाभ तथा हानिका ज्ञान होता है। पिता, माता तथा भाई एवं स्त्री-पुरुष—इन लोगोंके लिये इसका विचार विशेषरूपसे करना चाहिये। कोई भी व्यक्ति पूर्वोक्त व्यक्तियोंमेंसे किससे लाभ प्राप्त कर सकेगा—इसका ज्ञान वह उस 'सेवाचक्र' से कर सकता है॥ १-२॥

(सेवाचक्रका स्वरूप वर्णन करते हैं—) पूर्वसे पश्चिमको छः रेखाएँ और उत्तरसे दक्षिणको आठ तिरछी रेखाएँ खींचे। इस तरह लिखनेपर पैंतीस कोष्ठका 'सेवाचक्र' बन जायगा। उसमें ऊपरके कोष्ठोंमें पाँच स्वरोंको लिखकर पुनः स्पर्श-वर्णोंको लिखे। अर्थात् 'क' से लेकर 'ह' तकके वर्णोंका न्यास करे। उसमें तीन वर्णों (ङ, ञ, ण)-को छोड़कर लिखे। नीचेवाले कोष्ठोंमें क्रमसे सिद्ध, साध्य, सुसिद्ध, शत्रु तथा मृत्यु—इनको लिखे। इस तरह लिखनेपर सेवाचक्र सर्वाङ्गसम्पन्न हो जाता है। इस चक्रमें शत्रु तथा मृत्यु नामके कोष्ठमें जो स्वर तथा अक्षर हैं, उनका प्रत्येक कार्यमें त्याग कर देना चाहिये। किंतु सिद्ध, साध्य, सुसिद्ध, शत्रु तथा मृत्यु नामवाले कोष्ठोंमेंसे किसी एक ही कोष्ठमें यदि सेव्य तथा सेवकके नामका आदि-अक्षर पड़े तो वह सर्वथा शुभ है। इसमें द्वितीय कोष्ठ पोषक है, तृतीय कोष्ठ धनदायक है, चौथा कोष्ठ आत्मनाशक है, पाँचवाँ कोष्ठ मृत्यु देनेवाला है। इस चक्रसे मित्र, नौकर एवं बान्धवसे लाभकी प्राप्तिके लिये विचार करना चाहिये। अर्थात् हम किससे मित्रताका व्यवहार करें कि मुझे उससे लाभ हो तथा किसको नौकर रखें, जिससे लाभ हो एवं परिवारके किस व्यक्तिसे मुझे लाभ होगा—इसका विचार इस चक्रसे करे। जैसे—अपने नामका आदि-अक्षर तथा विचारणीय व्यक्तिके नामका आदि-अक्षर सेवाचक्रके किसी एक ही कोष्ठमें पड़ जाय तो वह शुभ है, अर्थात् उस व्यक्तिसे लाभ होगा—यह जाने। यदि पहलेवाले तीन कोष्ठोंमेंसे किसी एकमें अपने नामका आदि-वर्ण पहलेवाले तीन कोष्ठों (सि०, सा०, सु०) मेंसे किसी एकमें पड़े और विचारणीय व्यक्तिके नामका आदि-अक्षर चौथे तथा पाँचवें पड़े तो अशुभ होता है। चौथे तथा पाँचवें कोष्ठोंमें किसी एकमें सेव्यके तथा दूसरेमें सेवकके नामका आदि-वर्ण पड़े तो अशुभ ही होता है॥ ३—८½॥

सेवाचक्रका स्वरूप—

अ	इ	उ	ए	ओ
क	ख	ग	घ	च
छ	ज	झ	ट	ठ
ड	ढ	त	थ	द
ध	न	प	फ	ब
भ	म	य	र	ल
व	श	ष	स	ह
सिद्ध १	साध्य २	सुसिद्ध ३	शत्रु ४	मृत्यु ५

अब अकारादि वर्गों तथा ताराओंके द्वारा सेव्य-सेवकका विचार कर रहे हैं—अवर्ग (अ इ उ ए ओ)-का स्वामी देवता है, कवर्ग (क ख ग घ ङ)-का स्वामी दैत्य है, चवर्ग (च छ ज झ ञ)-का स्वामी नाग है, टवर्ग (ट ठ ड ढ ण)-का स्वामी गन्धर्व है, तवर्ग (त थ द ध न)-का स्वामी ऋषि है, पवर्ग (प फ ब भ म)-का स्वामी राक्षस है, यवर्ग (य र ल व)-का स्वामी पिशाच है, शवर्ग (श ष स ह)-का स्वामी मनुष्य है। इनमें देवतासे बली दैत्य है, दैत्यसे बली सर्प है, सर्पसे बली गन्धर्व है,

गन्धर्वसे बली ऋषि है, ऋषिसे बली राक्षस है, राक्षससे बली पिशाच है और पिशाचसे बली मनुष्य होता है। इसमें बली दुर्बलका त्याग करे— अर्थात् सेव्य-सेवक—इन दोनोंके नामोंके आदि-अक्षरके द्वारा बली वर्ग तथा दुर्बल वर्गका ज्ञान करके बली वर्गवाले दुर्बल वर्गवालेसे व्यवहार न करें। एक ही वर्गके सेव्य तथा सेवकके नामका आदि-वर्ण रहना उत्तम होता है॥ ९—१३॥

अब मैत्री-विभाग-सम्बन्धी 'ताराचक्र' को सुनो। पहले नामके प्रथम अक्षरके द्वारा नक्षत्र जान ले, फिर नौ ताराओंकी तीन बार आवृत्ति करनेपर सत्ताईस नक्षत्रोंकी ताराओंका ज्ञान हो जायगा। इस तरह अपने नामके नक्षत्रका तारा जान लें। १ जन्म, २ सम्पत्, ३ विपत्, ४ क्षेम, ५ प्रत्यरि, ६ साधक, ७ वध, ८ मैत्र, ९ अतिमैत्र—ये नौ ताराएँ हैं। इनमें 'जन्म' तारा अशुभ, 'सम्पत्' तारा अति उत्तम और 'विपत्' तारा निष्फल होती है। 'क्षेम' ताराको प्रत्येक कार्यमें लेना चाहिये। 'प्रत्यरि' तारासे धन-क्षति होती है। 'साधक' तारासे राज्य-लाभ होता है। 'वध' तारासे कार्यका विनाश होता है। 'मैत्र' तारा मैत्रीकारक है और 'अतिमैत्र' तारा हितकारक होती है।

विशेष प्रयोजन—जैसे सेव्य रामचन्द्र, सेवक हनुमान्—इन दोनोंमें भाव कैसा रहेगा, इसे जाननेके लिये हनुमान्के नामके आदि वर्ण (ह)-के अनुसार पुनर्वसु नक्षत्र हुआ तथा रामके नामके आदि वर्ण (रा)-के अनुसार नक्षत्र चित्रा हुआ। पुनर्वसुसे चित्राकी संख्या आठवीं हुई। इस संख्याके अनुसार 'मैत्र' नामक तारा हुई। अतः इन दोनोंकी मैत्री परस्पर कल्याणकर होगी—यों जानना चाहिये॥ १४—१८॥

(अब ताराचक्र कहते हैं—) प्रिये! नामाक्षरोंके स्वरोंकी संख्यामें वर्णोंकी संख्या जोड़ दे। उसमें बीसका भाग दे। शेषसे फलको जाने। अर्थात् स्वल्प शेषवाला व्यक्ति अधिक शेषवाले व्यक्तिसे लाभ उठाता है। जैसे सेव्य राम तथा सेवक हनुमान्। इनमें सेव्य रामके नामका र्=२। आ=२। म्=५। अ=१। सबका योग १० हुआ। इसमें २० से भाग दिया तो शेष १० सेव्यका हुआ तथा सेवक हनुमान्के नामका ह्=४। अ=१। न्=५। उ=५। म्=५। आ=२। न्=५। सबका योग २७ हुआ। इसमें २० का भाग दिया तो शेष ७ सेवकका हुआ। यहाँपर सेवकके शेषसे सेव्यका शेष अधिक हो रहा है, अतः हनुमान्जी रामजीसे पूर्ण लाभ उठायेंगे—ऐसा ज्ञान होता है॥ १९॥

अब नामाक्षरोंमें स्वरोंकी संख्याके अनुसार लाभ-हानिका विचार करते हैं। सेव्य-सेवक दोनोंके बीच जिसके नामाक्षरोंमें अधिक स्वर हों, वह धनी है तथा जिसके नामाक्षरोंमें अल्प स्वर हों, वह ऋणी है। 'धन' स्वर मित्रताके लिये तथा 'ऋण' स्वर दासताके लिये होता है। इस प्रकार लाभ तथा हानिकी जानकारीके लिये 'सेवाचक्र' कहा गया। मेष-मिथुन राशिवालोंमें प्रीति, मिथुन-सिंह राशिवालोंमें मैत्री तथा तुला-सिंह राशिवालोंमें महामैत्री होती है; किंतु धनु-कुम्भ राशिवालोंमें मैत्री नहीं होती। अतः इन दोनोंको परस्पर सेवा नहीं करनी चाहिये। मीन-वृष, वृष-कर्क, कर्क-कुम्भ, कन्या-वृश्चिक, मकर-वृश्चिक, मीन-मकर राशिवालोंमें मैत्री तथा मिथुन-कुम्भ, तुला-मेष राशिवालोंकी परस्पर महामैत्री होती है। वृष-वृश्चिकमें परस्पर वैर होता है; मिथुन-धनु, कर्क-मकर, मकर-कुम्भ, कन्या-मीन राशिवालोंमें परस्पर प्रीति रहती है। अर्थात् उपर्युक्त दोनों राशिवालोंमें सेव्य-सेवक भाव तथा मैत्री-व्यवहार एवं कन्या-वरका सम्बन्ध सुन्दर तथा शुभप्रद होता है॥ २०—२६॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'सेवा-चक्र आदिका वर्णन' नामक एक सौ बत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १३२॥

एक सौ तैंतीसवाँ अध्याय

नाना प्रकारके बलोंका विचार

शंकरजी कहते हैं— अब सूर्यादि ग्रहोंकी राशियोंमें पैदा हुए नवजात शिशुका जन्म-फल क्षेत्राधिपके अनुसार वर्णन करूँगा। सूर्यके गृहमें अर्थात् सिंह लग्नमें उत्पन्न बालक समकाय, कभी कृशाङ्ग, कभी स्थूलाङ्ग, गौरवर्ण, पित्त प्रकृति, लाल नेत्रोंवाला, गुणवान् तथा वीर होता है। चन्द्रके गृहमें अर्थात् कर्क लग्नका जातक भाग्यवान् तथा कोमल शरीरवाला होता है। मङ्गलके गृहमें अर्थात् मेष तथा वृश्चिक लग्नोंका जातक वातरोगी तथा अत्यन्त लोभी होता है। बुधके गृहमें अर्थात् मिथुन तथा कन्या लग्नोंका जातक बुद्धिमान्, सुन्दर तथा मानी होता है। गुरुके गृहमें अर्थात् धनु तथा मीन लग्नोंका जातक सुन्दर और अत्यन्त क्रोधी होता है। शुक्रके गृहमें अर्थात् तुला तथा वृष लग्नोंका जातक त्यागी, भोगी एवं सुन्दर शरीरवाला होता है। शनिके गृहमें अर्थात् मकर तथा कुम्भ लग्नोंका जातक बुद्धिमान्, सुन्दर तथा मानी होता है। सौम्य लग्नका जातक सौम्य स्वभावका तथा क्रूर लग्नका जातक क्रूर स्वभावका होता है*॥ १—५॥

गौरि! अब नाम-राशिके अनुसार सूर्यादि ग्रहोंका दशा-फल कहता हूँ। सूर्यकी दशामें हाथी, घोड़ा, धन-धान्य, प्रबल राज्यलक्ष्मीकी प्राप्ति और धनागम होता है। चन्द्रमाकी दशामें दिव्य स्त्रीकी प्राप्ति होती है। मङ्गलकी दशामें भूमिलाभ और सुख होता है। बुधकी दशामें भूमिलाभके साथ धन-धान्यकी भी प्राप्ति होती है। गुरुकी दशामें घोड़ा, हाथी तथा धन मिलता है। शुक्रकी दशामें खाद्यान्न तथा गोदुग्धादिपानके साथ धनका लाभ होता है। शनिकी दशामें नाना प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं। राहुका दर्शन होनेपर अर्थात् ग्रहण लगनेपर निश्चित स्थानपर निवास, दिनमें ध्यान और व्यापारका काम करना चाहिये॥ ६—८ $\frac{1}{2}$ ॥

यदि वाम श्वास चलते समय नामका अक्षर विषम संख्याका हो तो वह समय मङ्गल, शनि तथा राहुका रहता है। उसमें युद्ध करनेसे विजय होती है। दक्षिण श्वास चलते समय यदि नामका अक्षर सम संख्याका हो तो वह समय सूर्यका रहता है। उसमें व्यापार-कार्य निष्फल होता है, किंतु उस समय पैदल संग्राम करनेसे विजय होती है और सवारीपर चढ़कर युद्ध करनेसे मृत्यु होती है॥ ९—११॥

ॐ हूं, ॐ हूं, ॐ स्फें, अस्त्रं मोटय, ॐ चूर्णय, चूर्णय, ॐ सर्वशत्रुं मर्दय, मर्दय ॐ हूं, ॐ ह्रः फट्।—इस मन्त्रका सात बार न्यास करना चाहिये। फिर जिनके चार, दस तथा बीस भुजाएँ हैं, जो हाथोंमें त्रिशूल, खट्वाङ्ग, खड्ग और कटार धारण किये हुए हैं तथा जो अपनी सेनासे विमुख और शत्रु-सेनाका भक्षण करनेवाले हैं, उन भैरवजीका अपने हृदयमें ध्यान करके शत्रु-सेनाके सम्मुख उक्त मन्त्रका एक सौ आठ बार जप करे। जपके पश्चात् डमरूका शब्द करनेसे शत्रु-सेना शस्त्र त्यागकर भाग खड़ी होती है॥ १२—१५॥

पुनः शत्रु-सेनाकी पराजयका अन्य प्रयोग बतलाता हूँ। श्मशानके कोयलेको काक या उल्लूकी विष्ठामें मिलाकर उसीसे कपड़ेपर शत्रुकी

---

* यहाँपर मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु, कुम्भ—ये राशियाँ तथा लग्न क्रूर हैं और वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर, मीन—ये राशियाँ तथा लग्न सौम्य हैं। इसके लिये वराहमिहिरने 'लघुजातक' तथा 'बृहज्जातक' में लिखा है—

'पुंस्त्री क्रूराक्रूरौ चरस्थिरद्विस्वभावसंज्ञाश्च।'

प्रतिमा लिखे और उसके सिर, मुख, ललाट, हृदय, गुह्य, पैर, पृष्ठ, बाहु और मध्यमें शत्रुका नाम नौ बार लिखे। उस कपड़ेको मोड़कर संग्रामके समय अपने पास रखनेसे तथा पूर्वोक्त मन्त्र पढ़नेसे विजय होती है॥ १६—१८ $\frac{1}{2}$ ॥

अब विजय प्राप्त करनेके लिये त्रिमुखाक्षर 'तार्क्ष्यचक्र'को कहता हूँ। **'क्षिप ॐ स्वाहा तार्क्ष्यात्मा शत्रुरोगविषादिनुत्।'** इस मन्त्रको 'तार्क्ष्य-चक्र' कहते हैं। इसके अनुष्ठानसे दुष्टोंकी बाधा, भूत-बाधा एवं ग्रह-बाधा तथा अनेक प्रकारके रोग निवृत्त हो जाते हैं। इस 'गरुड-मन्त्र' से जैसा कार्य चाहे, सब सिद्ध हो जाता है। इस मन्त्रके साधकका दर्शन करनेसे स्थावर-जंगम, लूता तथा कृत्रिम—ये सभी विष नष्ट हो जाते हैं॥ १९—२१ $\frac{1}{2}$ ॥

पुन: महातार्क्ष्यका यों ध्यान करना चाहिये—जिनकी आकृति मनुष्यकी-सी है, जो दो पाँख और दो भुजा धारण करते हैं, जिनकी चोंच टेढ़ी है, जो सामर्थ्यशाली तथा हाथी और कछुएको पकड़ रखनेवाले हैं, जिनके पंजोंमें असंख्य सर्प उलझे हुए हैं, जो आकाशमार्गसे आ रहे हैं और रणभूमिमें शत्रुओंको खाते हुए नोच-नोचकर निगल रहे हैं, कुछ शत्रु जिनकी चोंचसे मारे हुए दीख रहे हैं, कुछ पंजोंके आघातसे चूर्ण हो गये हैं, किन्हींका पंखोंके प्रहारसे कचूमर निकल गया है और कुछ नष्ट होकर दसों दिशाओंमें भाग गये हैं। इस तरह जो साधक ध्यान-निष्ठ होगा, वह तीनों लोकोंमें अजेय होकर रहेगा अर्थात् उसपर कोई विजय नहीं प्राप्त कर सकता॥ २२—२५ ॥

अब मन्त्र-साधनसे सिद्ध होनेवाली 'पिच्छिका-क्रिया'का वर्णन करता हूँ—**ॐ हूं पक्षिन् क्षिप, ॐ हूं सः महाबलपराक्रम सर्वसैन्यं भक्षय भक्षय, ॐ मर्दय मर्दय, ॐ चूर्णय चूर्णय, ॐ विद्रावय विद्रावय, ॐ हूं खः, ॐ भैरवो ज्ञापयति स्वाहा।**—इस 'पिच्छिका-मन्त्र' को चन्द्रग्रहणमें जप करके सिद्ध कर लेनेवाला साधक संग्राममें सेनाके सम्मुख हाथी तथा सिंहको भी खदेड़ सकता है। मन्त्रके ध्यानसे उनके शब्दोंका मर्दन कर सकता है तथा सिंहारूढ़ होकर मृग तथा बकरेके समान शत्रुओंको मार सकता है॥ २६—२८ $\frac{1}{2}$ ॥

दूर रहकर केवल मन्त्रोच्चारणसे शत्रुनाशका उपाय कह रहे हैं—कालरात्रि (आश्विन शुक्लाष्टमी)-में मातृकाओंको चरु प्रदान करे और श्मशानकी भस्म, मालती-पुष्प, चामरी एवं कपासकी जड़के द्वारा दूरसे शत्रुको सम्बोधित करे। सम्बोधित करनेका मन्त्र निम्नलिखित है—

ॐ, अहे हे महेन्द्रि! अहे महेन्द्रि भञ्ज हि। ॐ जहि मसानं हि खाहि खाहि, किलि किलि, ॐ हूं फट्।—इस भङ्गविद्याका जप करके दूरसे ही शब्द करनेसे, अपराजिता और धतूरेका रस मिलाकर तिलक करनेसे शत्रुका विनाश होता है॥ २९—३२ $\frac{1}{2}$ ॥

ॐ किलि किलि विकिलि इच्छाकिलि भूतहनि शङ्खिनि, उमे दण्डहस्ते रौद्रि माहेश्वरि, उल्कामुखि ज्वालामुखि शङ्कुकर्णे शुष्कजङ्घे अलम्बुषे हर हर, सर्वदुष्टान् खन खन, ॐ यन्मान्निरीक्षयेद् देवि ताँस्तान् मोहय, ॐ रुद्रस्य हृदये स्थिता रौद्रि सौम्येन भावेन आत्मरक्षां ततः कुरु स्वाहा।—इस सर्वकार्यार्थसाधक मन्त्रको भोजपत्रपर वृत्ताकार लिखकर बाहरमें मातृकाओंको लिखे। इस विद्याको पहले ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तथा इन्द्रने हाथ आदिमें धारण किया था तथा इस विद्याद्वारा बृहस्पतिने देवासुर-संग्राममें देवताओंकी रक्षा की थी॥ ३३—३५ ॥

(अब रक्षायन्त्रका वर्णन करते हैं—) रक्षारूपिणी नारसिंही, शक्तिरूपा भैरवी तथा

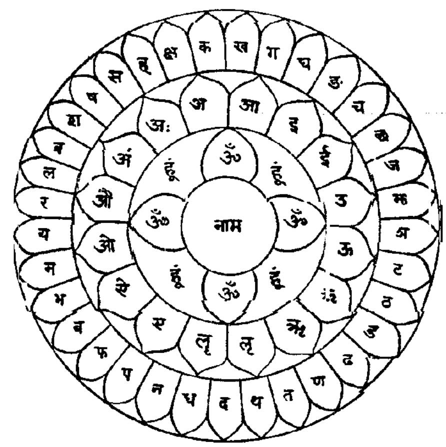
त्रैलोक्यमोहिनी गौरीने भी देवासुर-संग्राममें देवताओंकी रक्षा की थी। अष्टदल-कमलकी कर्णिका तथा दलोंमें गौरीके बीज (ह्रीं) मन्त्रसे सम्पुटित अपना नाम लिख दे। पूर्व दिशामें रहनेवाले प्रथमादि दलोंमें पूजाके अनुसार गौरीजीकी अङ्ग-देवताओंका न्यास करे। इस तरह लिखनेपर शुभे! 'रक्षायन्त्र' बन जायगा॥ ३६-३७॥

अब इन्हीं संस्कारोंके बीच 'मृत्युंजय-मन्त्र'को कहता हूँ, जो सब कलाओंसे परिवेष्टित है, अर्थात् उस मन्त्रसे प्रत्येक कार्यका साधन हो सकता है, तथा जो सकारसे प्रबोधित होता है। मन्त्रका स्वरूप कहते हैं—

ॐकार पहले लिखकर फिर बिन्दुके साथ जकार लिखे, पुनः धकारके पेटमें वकारको लिखे, उसे चन्द्रबिन्दुसे अङ्कित करे। अर्थात् '**ॐ जं ध्वम्**'—यह मन्त्र सभी दुष्टोंका विनाश करनेवाला है॥ ३८-३९ १/२॥

दूसरे 'रक्षायन्त्र' का उद्धार कहते हैं— गोरोचन-कुङ्कुमसे अथवा मलयागिरि चन्दन-कर्पूरसे भोजपत्रपर लिखे हुए चतुर्दल कमलकी कर्णिकामें अपना नाम लिखकर चारों दलोंमें ॐकार लिखे। आग्नेय आदि कोणोंमें हूंकार लिखे। उसके ऊपर षोडश दलोंका कमल बनाये। उसके दलोंमें अकारादि षोडश स्वरोंको लिखे। फिर उसके ऊपर चौंतीस दलोंका कमल बनाये। उसके दलोंमें 'क' से लेकर 'क्ष' तक अक्षरोंको लिखे। उस यन्त्रको श्वेत सूत्रसे वेष्टित करके रेशमी वस्त्रसे आच्छादित कर, कलशपर स्थापन करके उसका पूजन करे। इस यन्त्रको धारण करनेसे सभी रोग शान्त होते हैं एवं शत्रुओंका विनाश होता है॥ ४०—४३ १/२॥

रक्षायंत्रका स्वरूप



अब 'भेलखी विद्या' को कह रहा हूँ, जो वियोगमें होनेवाली मृत्युसे बचाती है। उसका मन्त्रस्वरूप निम्नलिखित है—

'ॐ वातले वितले विडालमुखि इन्द्रपुत्रि उद्भवो वायुदेवेन खीलि आजी हाजा मयि वाह इहादिदुःखनित्यकण्ठोच्चैर्मुहूर्त्तान्वया अह मां यस्महमुपाडि ॐ भेलखि ॐ स्वाहा।'

नवरात्रके अवसरपर इस मन्त्रको सिद्ध करके संग्रामके समय सात बार मन्त्रजप करनेपर शत्रुका मुखस्तम्भन होता है॥ ४४—४६॥

'ॐ चण्डि, ॐ हूं फट् स्वाहा।'—इस मन्त्रको संग्रामके अवसरपर सात बार जपनेसे खड्ग-युद्धमें विजय होती है॥ ४७-४८॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'नाना प्रकारके बलोंका विचार' नामक एक सौ तैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १३३॥

एक सौ चौंतीसवाँ अध्याय

त्रैलोक्यविजया-विद्या

भगवान् महेश्वर कहते हैं—देवि! अब मैं समस्त यन्त्र-मन्त्रोंको नष्ट करनेवाली 'त्रैलोक्यविजया-विद्या'का वर्णन करता हूँ॥ १॥

ॐ हूं क्षूं हूं, ॐ नमो भगवति दंष्ट्रिणि भीमवक्त्रे महोग्ररूपे हिलि हिलि, रक्तनेत्रे किलि किलि, महानिस्वने कुलु, ॐ विद्युज्जिह्वे कुलु ॐ निर्मांसे कट कट, गोनसाभरणे चिलि चिलि, शवमालाधारिणि द्रावय, ॐ महारौद्रि सार्द्रचर्मकृताच्छदे विजृम्भ, ॐ नृत्यासिलता-धारिणि भ्रुकुटीकृतापाङ्गे विषमनेत्रकृतानने वसामेदोविलिप्तगात्रे कह कह, ॐ हस हस, क्रुध्य क्रुध्य, ॐ नीलजीमूतवर्णेऽभ्रमालाकृताभरणे विस्फुर, ॐ घण्टारवाकीर्णदेहे, ॐ सिंसिस्थेऽरुणवर्णे, ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं रौद्ररूपे हूं ह्रीं क्लीं, ॐ ह्रीं हू मोमाकर्ष, ॐ धून धून, ॐ हे हः स्वः खः, वज्रिणि हूं क्षूं क्षां क्रोधरूपिणि प्रज्वल प्रज्वल, ॐ भीमभीषणे भिन्द, ॐ महाकाये छिन्द, ॐ करालिनि किटि किटि, महाभूतमातः सर्वदुष्टनिवारिणि जये, ॐ विजये ॐ त्रैलोक्यविजये हूं फट् स्वाहा॥

ॐ हूं क्षूं हूं, ॐ बड़ी-बड़ी दाढ़ोंसे जिनकी आकृति अत्यन्त भयंकर है, उन महोग्ररूपिणी भगवतीको नमस्कार है। वे रणाङ्गणमें स्वेच्छापूर्वक क्रीड़ा करें, क्रीड़ा करें। लाल नेत्रोंवाली! किलकारी कीजिये, किलकारी कीजिये। भीमनादिनि कुलु। ॐ विद्युज्जिह्वे! कुलु। ॐ मांसहीने! शत्रुओंको आच्छादित कीजिये, आच्छादित कीजिये। भुजङ्गमालिनि! वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत होइये, अलंकृत होइये। शवमालाविभूषिते! शत्रुओंको खदेड़िये। ॐ शत्रुओंके रक्तसे सने हुए चमड़ेके वस्त्र धारण करनेवाली महाभयंकरि! अपना मुख खोलिये। ॐ! नृत्य-मुद्रामें तलवार धारण करनेवाली!! टेढ़ी भौंहोंसे युक्त तिरछे नेत्रोंसे देखनेवाली! विषम नेत्रोंसे विकृत मुखवाली!! आपने अपने अङ्गोंमें मज्जा और मेदा लपेट रखा है। ॐ अट्टहास कीजिये, अट्टहास कीजिये। हँसिये, हँसिये। क्रुद्ध होइये, क्रुद्ध होइये। ॐ नील मेघके समान वर्णवाली! मेघमालाको आभरण रूपमें धारण करनेवाली!! विशेषरूपसे प्रकाशित होइये। ॐघण्टाकी ध्वनिसे शत्रुओंके शरीरोंकी धज्जियाँ उड़ा देनेवाली! **ॐ सिंसिस्थिते! रक्तवर्णे! ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं** रौद्ररूपे! **हूं ह्रीं क्लीं ॐ ह्रीं हूं** ॐ शत्रुओंका आकर्षण कीजिये, उनको हिला डालिये, कँपा डालिये। **ॐ हे हः खः वज्रहस्ते! हूं क्षूं क्षां क्रोधरूपिणि!** प्रज्वलित होइये, प्रज्वलित होइये। ॐ महाभयंकरको डरानेवाली! उनको चीर डालिये। ॐ विशाल शरीरवाली देवि! उनको काट डालिये। ॐ करालरूपे! शत्रुओंको डराइये, डराइये। महाभयंकर भूतोंकी जननि! समस्त दुष्टोंका निवारण करनेवाली जये!! ॐ विजये!!! **ॐ त्रैलोक्यविजये हूं फट् स्वाहा**॥ २॥

विजयके उद्देश्यसे नीलवर्णा, प्रेताधिरूढ़ा त्रैलोक्यविजया-विद्याकी बीस हाथ ऊँची प्रतिमा बनाकर उसका पूजन करे। पञ्चाङ्गन्यास करके रक्तपुष्पोंका हवन करे। इस त्रैलोक्यविजया-विद्याके पठनसे समरभूमिमें शत्रुकी सेनाएँ पलायन कर जाती हैं॥ ३॥

ॐ नमो बहुरूपाय स्तम्भय स्तम्भय ॐ मोहय, ॐ सर्वशत्रून् द्रावय, ॐ ब्रह्माणमाकर्षय, ॐ विष्णुमाकर्षय, ॐ महेश्वरमाकर्षय, ॐ इन्द्रं टालय, ॐ पर्वतांश्चालय, ॐ सप्तसागराञ्शोषय, ॐ च्छिन्द च्छिन्द बहुरूपाय नमः॥

ॐ अनेकरूपको नमस्कार है। शत्रुका स्तम्भन कीजिये, स्तम्भन कीजिये। ॐ सम्मोहन कीजिये। ॐ सब शत्रुओंको खदेड़ दीजिये। ॐ ब्रह्माका आकर्षण कीजिये। ॐ विष्णुका आकर्षण कीजिये। ॐ महेश्वरका आकर्षण कीजिये। ॐ इन्द्रको भयभीत कीजिये। ॐ पर्वतोंको विचलित कीजिये। ॐ सातों समुद्रोंको सुखा डालिये। ॐ काट डालिये, काट डालिये। अनेकरूपको नमस्कार है॥ ४॥

मिट्टीकी मूर्ति बनाकर उसमें शत्रुको स्थित हुआ जाने, अर्थात् उसमें शत्रुके स्थित होनेकी भावना करे। उस मूर्तिमें स्थित शत्रुका ही नाम भुजंग है; **'ॐ बहुरूपाय'** इत्यादि मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके उस शत्रुके नाशके लिये उक्त मन्त्रका जप करे। इससे शत्रुका अन्त हो जाता है॥ ५॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें युद्धजयार्णवके अन्तर्गत 'त्रैलोक्यविजया-विद्याका वर्णन' नामक एक सौ चौंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १३४॥

एक सौ पैंतीसवाँ अध्याय

संग्रामविजय-विद्या

महेश्वर कहते हैं—देवि! अब मैं संग्राममें विजय दिलानेवाली विद्या (मन्त्र)-का वर्णन करता हूँ, जो पदमालाके रूपमें है॥ १॥

ॐ ह्रीं चामुण्डे श्मशानवासिनि खट्वाङ्गकपालहस्ते महाप्रेतसमारूढे महाविमानसमाकुले कालरात्रि महागणपरिवृते महामुखे बहुभुजे घण्टाडमरुकिङ्किणि (हस्ते), अट्टाट्टहासे किलि किलि, ॐ हूं फट्, दंष्ट्राघोरान्धकारिणि नादशब्दबहुले गजचर्मप्रावृतशरीरे मांसदिग्धे लेलिहानोग्रजिह्वे महाराक्षसि रौद्रदंष्ट्राकराले भीमाट्टाट्टहासे स्फुरद्विद्युत्प्रभे चल चल, ॐ चकोरनेत्रे चिलि चिलि, ॐ ललज्जिह्वे, ॐ भीं भ्रुकुटीमुखि हुंकारभयत्रासनि कपालमालावेष्टितजटा-मुकुटशशाङ्कधारिणि, अट्टाट्टहासे किलि किलि, ॐ ह्रूं दंष्ट्राघोरान्धकारिणि, सर्वविघ्नविनाशिनि, इदं कर्म साधय साधय, ॐ शीघ्रं कुरु कुरु, ॐ फट्, ओमङ्कुशेन शमय, प्रवेशय, ॐ रङ्ग रङ्ग, कम्पय कम्पय, ॐ चालय, ॐ रुधिरमांसमद्यप्रिये हन हन, ॐ कुट्ट कुट्ट, ॐ छिन्द, ॐ मारय, ओमनुक्रमय, ॐ वज्रशरीरं पातय, ॐ त्रैलोक्यगतं दुष्टमदुष्टं वा गृहीतमगृहीतं वाऽऽवेशय, ॐ नृत्य, ॐ वन्द, ॐ कोटराक्ष्यूर्ध्वकेश्युलूकवदने करङ्किणि, ॐ करङ्कमालाधारिणि दह, ॐ पच पच, ॐ गृह्ण, ॐ मण्डलमध्ये प्रवेशय, ॐ किं विलम्बसि ब्रह्मसत्येन विष्णुसत्येन रुद्रसत्येनर्षिसत्येनावेशय, ॐ किलि किलि, ॐ खिलि खिलि, विलि विलि, ॐ विकृतरूपधारिणि कृष्णभुजंगवेष्टितशरीरे सर्वग्रहावेशिनि प्रलम्बौष्ठिनि भ्रूभङ्गलग्ननासिके विकटमुखि कपिलजटे ब्राह्मि भञ्ज, ॐ ज्वालामुखि स्वन, ॐ पातय, ॐ रक्ताक्षि घूर्णय, भूमिं पातय, ॐ शिरो गृह्ण, चक्षुर्मीलय, ॐ हस्तपादौ गृह्ण, मुद्रां स्फोटय, ॐ फट्, ॐ विदारय, ॐ त्रिशूलेन च्छेदय, ॐ वज्रेण हन, ॐ दण्डेन ताडय ताडय, ॐ चक्रेण च्छेदय च्छेदय, ॐ शक्त्या भेदय, दंष्ट्रया कीलय, ॐ कर्णिकया पाटय, ओमङ्कुशेन गृह्ण, ॐ शिरोऽक्षिज्वरमेकाहिकं द्व्याहिकं त्र्याहिकं चातुर्थिकं डाकिनिस्कन्दग्रहान् मुञ्च मुञ्च, ॐ पच, ओमुत्सादय, ॐ भूमिं पातय, ॐ गृह्ण, ॐ ब्रह्माण्येहि, ॐ माहेश्वर्येहि, (ॐ) कौमार्येहि, ॐ वैष्णव्येहि, ॐ वाराह्येहि, ओमैन्द्र्येहि,

ॐ चामुण्ड एहि, ॐ रेवत्येहि, ओमाकाशरेवत्येहि, ॐ हिमवच्चारिण्येहि, ॐ रुरुमर्दिन्यसुरक्षयंकर्याकाशगामिनि पाशेन बन्ध बन्ध, अङ्कुशेन कट कट, समये तिष्ठ, ॐ मण्डलं प्रवेशय, ॐ गृह्ण, मुखं बन्ध, ॐ चक्षुर्बन्ध हस्तपादौ च बन्ध, दुष्टग्रहान् सर्वान् बन्ध, ॐ दिशो बन्ध, ॐ विदिशो बन्ध, अधस्ताद्बन्ध, ॐ सर्वं बन्ध, ॐ भस्मना पानीयेन वा मृत्तिकया सर्षपैर्वा सर्वानावेशय, ॐ पातय, ॐ चामुण्डे किलि किलि, ॐ विच्चे हुं फट् स्वाहा॥

ॐ ह्रीं चामुण्डे देवि! आप श्मशानमें वास करनेवाली हैं। आपके हाथमें खट्वाङ्ग और कपाल शोभा पाते हैं। आप महान् प्रेतपर आरूढ़ हैं। आप बड़े-बड़े विमानोंसे घिरी हुई हैं। आप ही कालरात्रि हैं। बड़े-बड़े पार्षदगण आपको घेरकर खड़े हैं। आपका मुख विशाल है। भुजाएँ बहुत हैं। घण्टा, डमरू और घुँघुरू बजाकर विकट अट्टहास करनेवाली देवि! क्रीड़ा कीजिये, क्रीड़ा कीजिये। **ॐ हूं फट्।** आप अपनी दाढ़ोंसे घोर अन्धकार प्रकट करनेवाली हैं। आपका गम्भीर घोष और शब्द अधिक मात्रामें अभिव्यक्त होता है। आपका विग्रह हाथीके चमड़ेसे ढका हुआ है। शत्रुओंके मांससे परिपुष्ट हुई देवि! आपकी भयानक जिह्वा लपलपा रही है। महाराक्षसि! भयंकर दाढ़ोंके कारण आपकी आकृति बड़ी विकराल दिखायी देती है। आपका अट्टहास बड़ा भयानक है। आपकी कान्ति चमकती हुई बिजलीके समान है। आप संग्राममें विजय दिलानेके लिये चलिये, चलिये। **ॐ चकोरनेत्रे** (चकोरके समान नेत्रोंवाली)! **चिलि, चिलि। ॐ ललज्जिह्वे** (लपलपाती हुई जीभवाली)! **ॐ भीं** टेढ़ी भौंहोंसे युक्त मुखवाली! आप हुंकारमात्रसे ही भय और त्रास उत्पन्न करनेवाली हैं। आप नरमुण्डोंकी मालासे वेष्टित जटा-मुकुटमें चन्द्रमाको धारण करती हैं। विकट अट्टहासवाली देवि! **किलि, किलि** (रणभूमिमें क्रीड़ा करो, क्रीड़ा करो)। **ॐ हूं** दाढ़ोंसे घोर अन्धकार प्रकट करनेवाली और सम्पूर्ण विघ्नोंका नाश करनेवाली देवि! आप मेरे इस कार्यको सिद्ध करें, सिद्ध करें। ॐ शीघ्र कीजिये, कीजिये। **ॐ फट्।** ॐ अङ्कुशसे शान्त कीजिये, प्रवेश कराइये। ॐ रक्तसे रँगिये, रँगिये; कँपाइये, कँपाइये। ॐ विचलित कीजिये। **ॐ रुधिर-मांस-मद्यप्रिये!** शत्रुओंका हनन कीजिये, हनन कीजिये। ॐ विपक्षी योद्धाओंको कूटिये, कूटिये। ॐ काटिये। ॐ मारिये। ॐ उनका पीछा कीजिये। ॐ वज्रतुल्य शरीरवालेको भी मार गिराइये। ॐ त्रिलोकीमें विद्यमान जो शत्रु है, वह दुष्ट हो या अदुष्ट, पकड़ा गया हो या नहीं, आप उसे आविष्ट कीजिये। ॐ नृत्य कीजिये। **ॐ वन्द। ॐ कोटराक्षि** (खोंखलेके समान नेत्रवाली)! **ऊर्ध्वकेशि** (ऊपर उठे हुए केशोंवाली)! **उलूकवदने** (उल्लूके समान मुँहवाली)! हड्डियोंकी ठटरी या खोपड़ी धारण करनेवाली! खोपड़ीकी माला धारण करनेवाली चामुण्डे! आप शत्रुओंको जलाइये। ॐ पकाइये, पकाइये। ॐ पकड़िये। ॐ मण्डलके भीतर प्रवेश कराइये। ॐ आप क्यों विलम्ब करती हैं? ब्रह्माके सत्यसे, विष्णुके सत्यसे, रुद्रके सत्यसे तथा ऋषियोंके सत्यसे आविष्ट कीजिये। **ॐ किलि किलि। ॐ खिलि खिलि। विलि विलि। ॐ** विकृत रूप धारण करनेवाली देवि! आपके शरीरमें काले सर्प लिपटे हुए हैं। आप सम्पूर्ण ग्रहोंको आविष्ट करनेवाली हैं। आपके लंबे-लंबे ओठ लटक रहे हैं। आपकी टेढ़ी भौंहें नासिकासे लगी हैं। आपका मुख विकट है। आपकी जटा कपिलवर्णकी है। आप ब्रह्माकी शक्ति हैं। आप शत्रुओंको भङ्ग कीजिये। **ॐ ज्वालामुखि!** गर्जना कीजिये। ॐ

शत्रुओंको मार गिराइये। ॐ लाल-लाल आँखोंवाली देवि! शत्रुओंको चक्कर कटाइये, उन्हें धराशायी कीजिये। ॐ शत्रुओंके सिर उतार लीजिये। उनकी आँखें बंद कर दीजिये। ॐ उनके हाथ-पैर ले लीजिये, अङ्ग-मुद्रा फोड़िये। **ॐ फट्।** ॐ विदीर्ण कीजिये। ॐ त्रिशूलसे छेदिये। ॐ वज्रसे हनन कीजिये। ॐ डंडेसे पीटिये, पीटिये। ॐ चक्रसे छिन्न-भिन्न कीजिये, छिन्न-भिन्न कीजिये। ॐ शक्तिसे भेदन कीजिये। दाढ़से कीलन कीजिये। ॐ कतरनीसे चीरिये। ॐ अङ्कुशसे ग्रहण कीजिये। ॐ सिरके रोग और नेत्रकी पीड़ाको, प्रतिदिन होनेवाले ज्वरको, दो दिनपर होनेवाले ज्वरको, तीन दिनपर होनेवाले ज्वरको, चौथे दिन होनेवाले ज्वरको, डाकिनियोंको तथा कुमारग्रहोंको शत्रुसेनापर छोड़िये, छोड़िये। ॐ उन्हें पकाइये। ॐ शत्रुओंका उन्मूलन कीजिये। ॐ उन्हें भूमिपर गिराइये। ॐ उन्हें पकड़िये। **ॐ ब्रह्माणि!** आइये। **ॐ माहेश्वरि!** आइये। **ॐ कौमारि!** आइये। **ॐ वैष्णवि!** आइये। **ॐ वाराहि!** आइये। **ॐ ऐन्द्रि!** आइये। **ॐ चामुण्डे!** आइये। **ॐ रेवति!** आइये। **ॐ आकाशरेवति!** आइये। ॐ हिमालयपर विचरनेवाली देवि! आइये। **ॐ रुरुमर्दिनि! असुरक्षयंकरि** (असुरविनाशिनि)! **आकाशगामिनि** देवि! विरोधियोंको पाशसे बाँधिये, बाँधिये। अङ्कुशसे आच्छादित कीजिये, आच्छादित कीजिये। अपनी प्रतिज्ञापर स्थिर रहिये। ॐ मण्डलमें प्रवेश कराइये। ॐ शत्रुको पकड़िये और उसका मुँह बाँध दीजिये। ॐ नेत्र बाँध दीजिये। हाथ-पैर भी बाँध दीजिये। हमें सतानेवाले समस्त दुष्ट ग्रहोंको बाँध दीजिये। ॐ दिशाओंको बाँधिये। ॐ विदिशाओंको बाँधिये। नीचे बाँधिये। ॐ सब ओरसे बाँधिये। ॐ भस्मसे, जलसे, मिट्टीसे अथवा सरसोंसे सबको आविष्ट कीजिये। ॐ नीचे गिराइये। **ॐ चामुण्डे! किलि किलि। ॐ विच्चे हुं फट् स्वाहा**॥ २॥

यह 'जया' नामक पदमाला है, जो समस्त कर्मोंको सिद्ध करनेवाली है। इसके द्वारा होम करनेसे तथा इसका जप एवं पाठ आदि करनेसे सदा ही युद्धमें विजय प्राप्त होती है। अट्ठाईस भुजाओंसे युक्त चामुण्डा देवीका ध्यान करना चाहिये। उनके दो हाथोंमें तलवार और खेटक हैं। दूसरे दो हाथोंमें गदा और दण्ड हैं। अन्य दो हाथ धनुष और बाण धारण करते हैं। अन्य दो हाथ मुष्टि और मुद्गरसे युक्त हैं। दूसरे दो हाथोंमें शङ्ख और खड्ग हैं। अन्य दो हाथोंमें ध्वज और वज्र हैं। दूसरे दो हाथ चक्र और परशु धारण करते हैं। अन्य दो हाथ डमरू और दर्पणसे सम्पन्न हैं। दूसरे दो हाथ शक्ति और कुन्द धारण करते हैं। अन्य दो हाथोंमें हल और मूसल हैं। दूसरे दो हाथ पाश और तोमरसे युक्त हैं। अन्य दो हाथोंमें ढक्का और पणव हैं। दूसरे दो हाथ अभयकी मुद्रा धारण करते हैं तथा शेष दो हाथोंमें मुष्टिक शोभा पाते हैं। वे महिषासुरको डाँटती और उसका वध करती हैं। इस प्रकार ध्यान करके हवन करनेसे साधक शत्रुओंपर विजय पाता है। घी, शहद और चीनीमिश्रित तिलसे हवन करना चाहिये। इस संग्रामविजय-विद्याका उपदेश जिस-किसीको नहीं देना चाहिये (अधिकारी पुरुषको ही देना चाहिये)॥ ३—७॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणके अन्तर्गत युद्धजयार्णवमें 'संग्रामविजय-विद्याका वर्णन' नामक एक सौ पैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १३५॥

एक सौ छत्तीसवाँ अध्याय

नक्षत्रोंके त्रिनाडी-चक्र या फणीश्वर-चक्रका वर्णन

महेश्वर कहते हैं—देवि! अब मैं नक्षत्र-सम्बन्धी त्रिनाडी-चक्रका वर्णन करूँगा, जो यात्रा आदिमें फलदायक होता है। अश्विनी आदि नक्षत्रोंमें तीन नाडियोंसे भूषित चक्र अङ्कित करे। पहले अश्विनी, आर्द्रा और पुनर्वसु अङ्कित करे; फिर उत्तराफाल्गुनी, हस्त, ज्येष्ठा, मूल, शतभिषा और पूर्वभाद्रपद—इन नक्षत्रोंको लिखे। यह प्रथम नाडी कही गयी है। दूसरी नाडी इस प्रकार है—भरणी, मृगशिरा, पुष्य, पूर्वाफाल्गुनी, चित्रा, अनुराधा, पूर्वाषाढा, धनिष्ठा तथा उत्तराभाद्रपदा। तीसरी नाडीके नक्षत्र ये हैं—कृत्तिका, रोहिणी, आश्लेषा, मघा, स्वाती, विशाखा, उत्तराषाढ़ा, श्रवण तथा रेवती*॥ १—४॥

इन तीन नाडियोंके नक्षत्रोंद्वारा सेवित ग्रहके अनुसार शुभाशुभ फल जानना चाहिये। इस 'त्रिनाडी' नामक चक्रको 'फणीश्वर-चक्र' कहा गया है। इस चक्रगत नक्षत्रपर यदि सूर्य, मङ्गल, शनैश्चर एवं राहु हों तो वह अशुभ होता है। इनके सिवा, अन्य ग्रहोंद्वारा अधिष्ठित होनेपर वह नक्षत्र शुभ होता है। देश, ग्राम, भाई और भार्या आदि अपने नामके आदि अक्षरके अनुसार एक नाडीचक्रमें पड़ते हों तो वे शुभकारक होते हैं॥ ५-६॥

अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा तथा रेवती—ये सत्ताईस नक्षत्र यहाँ जानने योग्य हैं॥ ७-८॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'नक्षत्रचक्र-वर्णन' नामक एक सौ छत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १३६॥

एक सौ सैंतीसवाँ अध्याय

महामारी-विद्याका वर्णन

महेश्वर कहते हैं—देवि! अब मैं महामारी-विद्याका वर्णन करूँगा, जो शत्रुओंका मर्दन करनेवाली है॥ १॥

ॐ ह्रीं महामारि रक्ताक्षि कृष्णवर्णे यमस्याज्ञाकारिणि सर्वभूतसंहारकारिणि अमुकं हन हन, ॐ दह दह, ॐ पच पच, ॐ च्छिन्द च्छिन्द, ॐ मारय मारय, ओमुत्सादयोत्सादय, ॐ सर्वसत्त्ववशंकरि सर्वकामिके हुं फट् स्वाहा॥

ॐ ह्रीं लाल नेत्रों तथा काले रंगवाली महामारि! तुम यमराजकी आज्ञाकारिणी हो,

* अग्निपुराणकी ही भाँति नारदपुराण, पूर्व भाग, द्वितीय पाद, अध्याय ५६ के ५०९ वें श्लोकमें भी त्रिनाडी-चक्रका वर्णन है। यथा—

त्रिनाडी—

१	अश्विनी	आर्द्रा	पुनर्वसु	उत्तरा-फाल्गुनी	हस्त	ज्येष्ठा	मूल	शतभिषा	पूर्वा-भाद्रपदा
२	भरणी	मृगशिरा	पुष्य	पूर्वा-फाल्गुनी	चित्रा	अनुराधा	पूर्वाषाढ़ा	धनिष्ठा	उत्तरा-भाद्रपदा
३	कृत्तिका	रोहिणी	आश्लेषा	मघा	स्वाती	विशाखा	उत्तराषाढ़ा	श्रवण	रेवती

समस्त भूतोंका संहार करनेवाली हो, मेरे अमुक शत्रुका हनन करो, हनन करो। ॐ उसे जलाओ, जलाओ। ॐ पकाओ, पकाओ। ॐ काटो, काटो। ॐ मारो, मारो। ॐ उखाड़ फेंको, उखाड़ फेंको। ॐ समस्त प्राणियोंको वशमें करनेवाली और सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाली! **हुं फट् स्वाहा**॥ २॥

अङ्गन्यास

'ॐ मारि हृदयाय नमः।'—इस वाक्यको बोलकर दाहिने हाथकी मध्यमा, अनामिका और तर्जनी अँगुलियोंसे हृदयका स्पर्श करे। **'ॐ महामारि शिरसे स्वाहा।'**—इस वाक्यको बोलकर दाहिने हाथसे सिरका स्पर्श करे। **'ॐ कालरात्रि शिखायै वौषट्।'**—इस वाक्यको बोलकर दाहिने हाथके अँगूठेसे शिखाका स्पर्श करे। **'ॐ कृष्णवर्णे खः कवचाय हुम्।'**—इस वाक्यको बोलकर दाहिने हाथकी पाँचों अँगुलियोंसे बायीं भुजाका और बायें हाथकी पाँचों अँगुलियोंसे दाहिनी भुजाका स्पर्श करे। **'ॐ तारकाक्षि विद्युज्जिह्वे सर्वसत्त्वभयंकरि रक्ष रक्ष सर्वकार्येषु ह्रं त्रिनेत्राय वषट्।'**—इस वाक्यको बोलकर दाहिने हाथकी अँगुलियोंके अग्रभागसे दोनों नेत्रों और ललाटके मध्यभागका स्पर्श करे। **'ॐ महामारि सर्वभूतदमनि महाकालि अस्त्राय हुं फट्।'**—इस वाक्यको बोलकर दाहिने हाथको सिरके ऊपर एवं बायीं ओरसे पीछेकी ओर ले जाकर दाहिनी ओरसे आगेकी ओर ले आये और तर्जनी तथा मध्यमा अँगुलियोंसे बायें हाथकी हथेलीपर ताली बजाये॥ ३॥

महादेवि! साधकको यह अङ्गन्यास अवश्य करना चाहिये। वह मुर्देपरका वस्त्र लाकर उसे चौकोर फाड़ ले। उसकी लंबाई-चौड़ाई तीन-तीन हाथकी होनी चाहिये। उसी वस्त्रपर अनेक प्रकारके रंगोंसे देवीकी एक आकृति बनावे, जिसका रंग काला हो। वह आकृति तीन मुख और चार भुजाओंसे युक्त होनी चाहिये। देवीकी यह मूर्ति अपने हाथोंमें धनुष, शूल, कतरनी और खट्वाङ्ग (खाटका पाया) धारण किये हुए हो। उस देवीका पहला मुख पूर्व दिशाकी ओर हो और अपनी काली आभासे प्रकाशित हो रहा हो तथा ऐसा जान पड़ता हो कि दृष्टि पड़ते ही वह अपने सामने पड़े हुए मनुष्यको खा जायगी। दूसरा मुख दक्षिण भागमें होना चाहिये। उसकी जीभ लाल हो और वह देखनेमें भयानक जान पड़ता हो। वह विकराल मुख अपनी दाढ़ोंके कारण अत्यन्त उत्कट और भयंकर हो और जीभसे दो गलफर चाट रहा हो। साथ ही ऐसा जान पड़ता हो कि दृष्टि पड़ते ही यह घोड़े आदिको खा जायगा॥ ४—७ $\frac{१}{२}$॥

देवीका तीसरा मुख पश्चिमाभिमुख हो। उसका रंग सफेद होना चाहिये। वह ऐसा जान पड़ता हो कि सामने पड़नेपर हाथी आदिको भी खा जायगा। गन्ध-पुष्प आदि उपचारों तथा घी-मधु आदि नैवेद्योंद्वारा उसका पूजन करे॥ ८ $\frac{१}{२}$॥

पूर्वोक्त मन्त्रका स्मरण करनेमात्रसे नेत्र और मस्तक आदिका रोग नष्ट हो जाता है। यक्ष और राक्षस भी वशमें हो जाते हैं और शत्रुओंका नाश हो जाता है। यदि मनुष्य क्रोधयुक्त होकर, निम्ब-वृक्षकी समिधाओंको होम करे तो उस होमसे ही वह अपने शत्रुको मार सकता है, इसमें संशय नहीं है। यदि शत्रुकी सेनाकी ओर मुँह करके एक सप्ताहतक इन समिधाओंका हवन किया जाय तो शत्रुकी सेना नाना प्रकारके रोगोंसे ग्रस्त हो जाती है और उसमें भगदड़ मच जाती है। जिसके नामसे आठ हजार उक्त समिधाओंका होम कर दिया जाय, वह यदि ब्रह्माजीके द्वारा सुरक्षित हो तो भी शीघ्र ही मर जाता है। यदि धतूरेकी एक सहस्र समिधाओंको

रक्त और विषसे संयुक्त करके तीन दिनतक उनका होम किया जाय तो शत्रु अपनी सेनाके साथ ही नष्ट हो जाता है॥ ९—१३½ ॥

राई और नमकसे होम करनेपर तीन दिनमें ही शत्रुकी सेनामें भगदड़ पड़ जायगी—शत्रु भाग खड़ा होगा। यदि उसे गदहेके रक्तसे मिश्रित करके होम किया जाय तो साधक अपने शत्रुका उच्चाटन कर सकता है—वहाँसे भागनेके लिये उसके मनमें उचाट पैदा कर सकता है। कौएके रक्तसे संयुक्त करके हवन करनेपर शत्रुको उखाड़ फेंका जा सकता है। साधक उसके वधमें समर्थ हो सकता है तथा साधकके मनमें जो-जो इच्छा होती है, उन सब इच्छाओंको वह पूर्ण कर लेता है। युद्धकालमें साधक हाथीपर आरूढ़ हो, दो कुमारियोंके साथ रहकर, पूर्वोक्त मन्त्रद्वारा शरीरको सुरक्षित कर ले; फिर दूरके शङ्ख आदि वाद्योंको पूर्वोक्त महामारी-विद्यासे अभिमन्त्रित करे। तदनन्तर महामायाकी प्रतिमासे युक्त वस्त्रको लेकर समराङ्गणमें ऊँचाईपर फहराये और शत्रुसेनाकी ओर मुँह करके उस महान् पटको उसे दिखाये। तत्पश्चात् वहाँ कुमारी कन्याओंको भोजन करावे। फिर पिण्डीको घुमाये। उस समय साधक यह चिन्तन करे कि शत्रुकी सेना पाषाणकी भाँति निश्चल हो गयी है॥ १४—१९ ॥

वह यह भी भावना करे कि शत्रुकी सेनामें लड़नेका उत्साह नहीं रह गया है, उसके पाँव उखड़ गये हैं और वह बड़ी घबराहटमें पड़ गयी है। इस प्रकार करनेसे शत्रुकी सेनाका स्तम्भन हो जाता है। (वह चित्रलिखितकी भाँति खड़ी रह जाती है, कुछ कर नहीं पाती।) यह मैंने स्तम्भनका प्रयोग बताया है। इसका जिस-किसी भी व्यक्तिको उपदेश नहीं देना चाहिये। यह तीनों लोकोंपर विजय दिलानेवाली देवी 'माया' कही गयी है और इसकी आकृतिसे अङ्कित वस्त्रको 'मायापट' कहा गया है। इसी तरह दुर्गा, भैरवी, कुब्जिका, रुद्रदेव तथा भगवान् नृसिंहकी आकृतिका भी वस्त्रपर अङ्कन किया जा सकता है। इस तरहकी आकृतियोंसे अङ्कित पट आदिके द्वारा भी यह स्तम्भनका प्रयोग सिद्ध हो सकता है॥ २०-२१ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'महामारी-विद्याका वर्णन' नामक एक सौ सैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १३७॥

एक सौ अड़तीसवाँ अध्याय

तन्त्रविषयक छः कर्मोंका वर्णन

महादेवजी कहते हैं—पार्वती! सभी मन्त्रोंके साध्यरूपसे जो छः कर्म कहे गये हैं, उनका वर्णन करता हूँ, सुनो। शान्ति, वश्य, स्तम्भन, द्वेष, उच्चाटन और मारण—ये छः कर्म हैं। इन सभी कर्मोंमें छः सम्प्रदाय अथवा विन्यास होते हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—पल्लव, योग, रोधक, सम्पुट, ग्रन्थन तथा विदर्भ। भोजपत्र आदिपर पहले जिसका उच्चाटन करना हो, उस पुरुषका नाम लिखे। उसके बाद उच्चाटन-सम्बन्धी मन्त्र लिखे। लेखनके इस क्रमको 'पल्लव' नामक विन्यास या सम्प्रदाय समझना चाहिये। यह उच्चकोटिका महान् उच्चाटनकारी प्रयोग है। आदिमें मन्त्र लिखा जाय फिर साध्य व्यक्तिका नाम अङ्कित किया जाय। यह साध्य बीचमें रहे। इसके लिये अन्तमें पुनः मन्त्रका उल्लेख किया जाय। इस क्रमको 'योग' नामक सम्प्रदाय कहा गया है। शत्रुके समस्त कुलका संहार करनेके लिये इसका प्रयोग करना

चाहिये॥ १-२ $\frac{१}{२}$ ॥

पहले मन्त्रका पद लिखे। बीचमें साध्यका नाम लिखे। अन्तमें फिर मन्त्र लिखे। फिर साध्यका नाम लिखे। तत्पश्चात् पुनः मन्त्र लिखे। यह 'रोधक' सम्प्रदाय कहा गया है। स्तम्भन आदि कर्मोंमें इसका प्रयोग करना चाहिये। मन्त्रके ऊपर, नीचे, दायें, बायें और बीचमें भी साध्यका नामोल्लेख करे, इसे 'सम्पुट' समझना चाहिये। वश्याकर्षण-कर्ममें इसका प्रयोग करे। जब मन्त्रका एक अक्षर लिखकर फिर साध्यके नामका एक अक्षर लिखा जाय और इस प्रकार बारी-बारीसे दोनोंके एक-एक अक्षरको लिखते हुए मन्त्र और साध्यके अक्षरोंको परस्पर ग्रथित कर दिया जाय तो यह 'ग्रन्थन' नामक सम्प्रदाय है। इसका प्रयोग आकर्षण या वशीकरण करनेवाला है। पहले मन्त्रका दो अक्षर लिखे, फिर साध्यका एक अक्षर। इस तरह बार-बार लिखकर दोनोंको पूर्ण करे। (यदि मन्त्राक्षरोंके बीचमें ही समाप्ति हो जाय तो दुबारा उनका उल्लेख करे।) इसे 'विदर्भ' नामक सम्प्रदाय समझना चाहिये तथा वशीकरण एवं आकर्षणके लिये इसका प्रयोग करना चाहिये॥ ३—७॥

आकर्षण आदि जो मन्त्र हैं, उनका अनुष्ठान वसन्त-ऋतुमें करना चाहिये। तापज्वरके निवारण, वशीकरण तथा आकर्षण-कर्ममें 'स्वाहा'का प्रयोग शुभ होता है। शान्ति और वृद्धि-कर्ममें 'नमः' पदका प्रयोग करना चाहिये। पौष्टिक-कर्म, आकर्षण और वशीकरणमें 'वषट्कार'का प्रयोग करे। विद्वेषण, उच्चाटन और मारण आदि अशुभ कर्ममें पृथक् 'फट्' पदकी योजना करनी चाहिये। लाभ आदिमें तथा मन्त्रकी दीक्षा आदिमें 'वषट्कार' ही सिद्धिदायक होता है। मन्त्रकी दीक्षा देनेवाले आचार्यमें यमराजकी भावना करके इस प्रकार प्रार्थना करे—'प्रभो! आप यम हैं, यमराज हैं, कालरूप हैं तथा धर्मराज हैं। मेरे दिये हुए इस शत्रुको शीघ्र ही मार गिराइये'॥ ८—११॥

तब शत्रुसूदन आचार्य प्रसन्नचित्तसे इस प्रकार उत्तर दे—'साधक! तुम सफल होओ। मैं यत्नपूर्वक तुम्हारे शत्रुको मार गिराता हूँ।' श्वेत कमलपर यमराजकी पूजा करके होम करनेसे यह प्रयोग सफल होता है। अपनेमें भैरवकी भावना करके अपने ही भीतर कुलेश्वरी (भैरवी)-की भी भावना करे। ऐसा करनेसे साधक रातमें अपने तथा शत्रुके भावी वृत्तान्तको जान लेता है। 'दुर्गरक्षिणि दुर्गे!' (दुर्गकी रक्षा करनेवाली अथवा दुर्गम संकटसे बचानेवाली देवि! आपको नमस्कार है)—इस मन्त्रके द्वारा दुर्गाजीकी पूजा करके साधक शत्रुका नाश करनेमें समर्थ होता है। **'ह स क्ष म ल व र यु म्'**—इस भैरवी-मन्त्रका जप करनेपर साधक अपने शत्रुका वध कर सकता है॥ १२—१४॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'षट्कर्मका वर्णन' नामक
एक सौ अड़तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १३८॥

एक सौ उन्तालीसवाँ अध्याय

साठ संवत्सरोंमें मुख्य-मुख्यके नाम एवं उनके फल-भेदका कथन

भगवान् महेश्वर कहते हैं—पार्वति! अब मैं साठ संवत्सरों (मेंसे कुछ)-के शुभाशुभ फलको कहता हूँ, ध्यान देकर सुनो। 'प्रभव' संवत्सरमें यज्ञकर्मकी बहुलता होती है। 'विभव'में प्रजा सुखी होती है। 'शुक्ल'में समस्त धान्य प्रचुर मात्रामें उत्पन्न होते हैं। 'प्रमोद'से सभी प्रमुदित

होते हैं। 'प्रजापति' नामक संवत्सरमें वृद्धि होती है। 'अङ्गिरा' संवत्सर भोगोंकी वृद्धि करनेवाला है। 'श्रीमुख' संवत्सरमें जनसंख्याकी वृद्धि होती है और 'भाव' संज्ञक संवत्सरमें प्राणियोंमें सद्भावकी वृद्धि होती है। 'युवा' संवत्सरमें मेघ प्रचुर वृष्टि करते हैं। 'धाता' संवत्सरमें समस्त ओषधियाँ बहुलतासे उत्पन्न होती हैं। 'ईश्वर' संवत्सरमें क्षेम और आरोग्यकी प्राप्ति होती है। 'बहुधान्य'में प्रचुर अन्न उत्पन्न होता है। 'प्रमाथी' वर्ष मध्यम होता है। 'विक्रम'में अन्न-सम्पदाकी अधिकता होती है। 'वृष' संवत्सर सम्पूर्ण प्रजाओंका पोषण करता है। 'चित्रभानु' विचित्रता और 'सुभानु' कल्याण एवं आरोग्यको उपस्थित करता है। 'तारण' संवत्सरमें मेघ शुभकारक होते हैं॥ १—५॥

'पार्थिव'में सस्य-सम्पत्ति, 'अव्यय'में अतिवृष्टि, 'सर्वजित्' में उत्तम वृष्टि और 'सर्वधारी' नामक संवत्सरमें धान्यादिकी अधिकता होती है। 'विरोधी' मेघोंका नाश करता है अर्थात् अनावृष्टिकारक होता है। 'विकृति' भय प्रदान करनेवाला है। 'खर' नामक संवत्सर पुरुषोंमें शौर्यका संचार करता है। 'नन्दन'में प्रजा आनन्दित होती है। 'विजय' संवत्सर शत्रुनाशक और 'जय' रोगोंका मर्दन करनेवाला है। 'मन्मथ'में विश्व ज्वरसे पीड़ित होता है। 'दुष्कर'में प्रजा दुष्कर्ममें प्रवृत्त होती है। 'दुर्मुख' संवत्सरमें मनुष्य कटुभाषी हो जाते हैं। 'हेमलम्ब'से सम्पत्तिकी प्राप्ति होती है। महादेवि! 'विलम्ब' नामक संवत्सरमें अन्नकी प्रचुरता होती है। 'विकारी' शत्रुओंको कुपित करता है और 'शार्वरी' कहीं-कहीं सर्वप्रदा होती है। 'प्लव' संवत्सरमें जलाशयोंमें बाढ़ आती है। 'शोभन' और 'शुभकृत्' में प्रजा संवत्सरके नामानुकूल गुणसे युक्त होती है॥ ६—१०॥

'राक्षस' वर्षमें लोक निष्ठुर हो जाता है। 'आनल' संवत्सरमें विविध धान्योंकी उत्पत्ति होती है। 'पिङ्गल'में कहीं-कहीं उत्तम वृष्टि और 'कालयुक्त'में धनहानि होती है। 'सिद्धार्थ'में सम्पूर्ण कार्योंकी सिद्धि होती है। 'रौद्र' वर्षमें विश्वमें रौद्रभावोंकी प्रवृत्ति होती है। 'दुर्मति' संवत्सरमें मध्यम वर्षा और 'दुन्दुभि'में मङ्गल एवं धन-धान्यकी उपलब्धि होती है। 'रुधिरोद्गारी' और 'रक्ताक्ष' नामक संवत्सर रक्तपान करनेवाले हैं। 'क्रोधन' वर्ष विजयप्रद है। 'क्षय' संवत्सरमें प्रजाका धन क्षीण होता है। इस प्रकार साठ संवत्सरों (मेंसे कुछ)-का वर्णन किया गया है॥ ११—१३॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'साठ संवत्सरों (मेंसे कुछ)-के नाम एवं उनके फल-भेदका कथन' नामक एक सौ उन्तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १३९॥

एक सौ चालीसवाँ अध्याय

वश्य आदि योगोंका वर्णन

भगवान् महेश्वर कहते हैं—स्कन्द! अब मैं वशीकरण आदिके योगोंका वर्णन करूँगा। निम्नाङ्कित ओषधियोंको सोलह कोष्ठवाले चक्रमें अङ्कित करे—भृङ्गराज (भँगरैया), सहदेवी (सहदेइया), मोरकी शिखा, पुत्रजीवक (जीवापोता) नामक वृक्षकी छाल, अध:पुष्पा (गोझिया), रुदन्तिका (रुद्रदन्ती), कुमारी (घीकुँआर), रुद्रजटा (लताविशेष), विष्णुक्रान्ता (अपराजिता), श्वेतार्क (सफेद मदार), लज्जालुका (लाजवन्ती लता), मोहलता (त्रिपुरमाली), काला धतूरा, गोरक्षकर्कटी (गोरखककड़ी या गुरुम्ही), मेषशृङ्गी (मेढ़ासिंगी) तथा स्नुही (सेंहुड़)॥ १—३॥

ओषधियोंके ये भाग प्रदक्षिण-क्रमसे ऋत्विज् १६, वह्नि ३, नाग ८, पक्ष २, मुनि ७, मनु १४,

शिव ११, वसुदेवता ८, दिशा १०, शर ५, वेद ४, ग्रह ९, ऋतु ६, सूर्य १२, चन्द्रमा १ तथा तिथि १५—इन सांकेतिक नामों और संख्याओंसे गृहीत होते हैं। प्रथम चार ओषधियोंका अर्थात् भँगरैया, सहदेइया, मोरकी शिखा और पुत्रजीवककी छाल—इनका चूर्ण बनाकर इनसे धूपका काम लेना चाहिये। अथवा इन्हें पानीके साथ पीसकर उत्तम उबटन तैयार कर ले और उसे अपने अङ्गोंमें लगावे॥ ४-५॥

तीसरे चतुष्क (चौक) अर्थात् अपराजिता, श्वेतार्क, लाजवन्ती लता और मोहलता—इन चार ओषधियोंसे अञ्जन तैयार करके उसे नेत्रमें लगावे तथा चौथे चतुष्क अर्थात् काला धतूरा, गोरखककड़ी, मेढ़ासिंगी और सेंहुड़—इन चार ओषधियोंसे मिश्रित जलके द्वारा स्नान करना चाहिये। भृङ्गराजवाले चतुष्कके बादका जो द्वितीय चतुष्क अर्थात् अध:पुष्पा, रुद्रदन्ती, कुमारी तथा रुद्रजटा नामक ओषधियाँ हैं, उन्हें पीसकर अनुलेप या उबटन लगानेका विधान है*॥ ६॥

अध:पुष्पाको दाहिने पार्श्वमें धारण करना चाहिये तथा लाजवन्ती आदिको वाम पार्श्वमें। मयूरशिखाको पैरमें तथा घृतकुमारीको मस्तकपर धारण करना चाहिये। रुद्रजटा, गोरखककड़ी और मेढ़ाशृङ्गी—इनके द्वारा सभी कार्योंमें धूपका काम लिया जाता है। इन्हें पीसकर उबटन बनाकर जो अपने शरीरमें लगाता है, वह देवताओंद्वारा भी सम्मानित होता है। भृङ्गराज आदि चार ओषधियाँ, जो धूपके उपयोगमें आती हैं, ग्रहादिजनित बाधा दूर करनेके लिये उनका उद्वर्तनके कार्यमें भी उपयोग बताया गया है। युगादिसे सूचित लज्जालुका आदि ओषधियाँ अञ्जनके लिये बतायी गयी हैं। बाण आदिसे सूचित श्वेतार्क आदि ओषधियाँ स्नान-कर्ममें उपयुक्त होती हैं। घृतकुमारी आदि ओषधियाँ भक्षण करनेयोग्य कही गयी हैं और पुत्रजीवक आदिसे संयुक्त जलका पान बताया गया है। ऋत्विक् (भँगरैया), वेद (लाजवन्ती), ऋतु (काला धतूरा) तथा नेत्र (पुत्रजीवक)—इन ओषधियोंसे तैयार किये हुए चन्दनका तिलक सब लोगोंको मोहित करनेवाला होता है॥ ७—१०॥

सूर्य (गोरखककड़ी), त्रिदश (काला धतूरा), पक्ष (पुत्रजीवक) और पर्वत (अध:पुष्पा)—इन ओषधियोंका अपने शरीरमें लेप करनेसे स्त्री वशमें होती है। चन्द्रमा (मेढ़ासिंगी), इन्द्र (रुद्रदन्तिका), नाग (मोरशिखा), रुद्र (घीकुआँर)—इन ओषधियोंका योनिमें लेप करनेसे स्त्रियाँ वशमें होती हैं। तिथि

* ओषधियोंके चतुष्क, नाम, विशेष संकेत और उपयोग निम्नाङ्कित चक्रसे जानने चाहिये—

अनुक्रम	ओषधियोंकी नामावली				उपयोगी
प्रथम चतुष्क विशेष संकेत	१ भृङ्गराज ऋत्विज् १६	२ सहदेवी वह्नि ३ गुण	३ मयूरशिखा नाग ८	४ पुत्रजीवक पक्ष २ नेत्र	धूप-उद्वर्तन
द्वितीय चतुष्क विशेष संकेत	५ अध:पुष्पा मुनि ७ शैल	६ रुदन्तिका मनु १४ इन्द्र	७ कुमारी शिव ११	८ रुद्रजटा वसु ८	अनुलेप
तृतीय चतुष्क विशेष संकेत	९ विष्णुक्रान्ता दिशा १०	१० श्वेतार्क शर ५	११ लज्जालुका वेद ४ युग	१२ मोहलता ग्रह ९	अञ्जन
चौथा चतुष्क विशेष संकेत	१३ कृष्ण धत्तूर ऋतु ६	१४ गोरक्षकर्कटी सूर्य १२	१५ मेषशृङ्गी चन्द्रमा १	१६ स्नुही तिथि १५	स्नान

(सेंहुड़), दिक् (अपराजिता), युग (लाजवन्ती) और बाण (श्वेतार्क)—इन ओषधियोंके द्वारा बनायी हुई गुटिका (गोली) लोगोंको वशमें करनेवाली होती है। किसीको वशमें करना हो तो उसके लिये भक्ष्य, भोज्य और पेय पदार्थमें इसकी एक गोली मिला देनी चाहिये॥ ११-१२॥

ऋत्विक् (भँगरैया), ग्रह (मोहलता), नेत्र (पुत्रजीवक) तथा पर्वत (अध:पुष्पा)—इन ओषधियोंको मुखमें धारण किया जाय तो इनके प्रभावसे शत्रुओंके चलाये हुए अस्त्र-शस्त्रोंका स्तम्भन हो जाता है—वे घातक आघात नहीं कर पाते। पर्वत (अध:पुष्पा), इन्द्र (रुद्रदन्ती), वेद (लाजवन्ती) तथा रन्ध्र (मोहलता)—इन ओषधियोंका अपने शरीरमें लेप करके मनुष्य पानीके भीतर निवास कर सकता है। बाण (श्वेतार्क), नेत्र (पुत्रजीवक), मनु (रुद्रदन्ती) तथा रुद्र (घीकुआँरि)—इन ओषधियोंसे बनायी हुई बटी भूख, प्यास आदिका निवारण करनेवाली होती है। तीन (सहदेइया), सोलह (भँगरैया), दिशा (अपराजिता) तथा बाण (श्वेतार्क)—इन ओषधियोंका लेप करनेसे दुर्भगा स्त्री सुभगा बन जाती है। त्रिशद (काला धतूरा), अक्षि (पुत्रजीवक) तथा दिशा (विष्णुक्रान्ता) और नेत्र (सहदेइया)—इन दवाओंका अपने शरीरमें लेप करके मनुष्य सर्पोंके साथ क्रीडा कर सकता है। इसी प्रकार त्रिदश (काला धतूरा), अक्षि (पुत्रजीवक), शिव (घृतकुमारी) और सर्प (मयूरशिखा)-से उपलक्षित दवाओंका लेप करनेसे स्त्री सुखपूर्वक प्रसव कर सकती है॥ १३—१५॥

सात (अध:पुष्पा), दिशा (अपराजिता), मुनि (अध:पुष्पा) तथा रन्ध्र (मोहलता)—इन दवाओंका वस्त्रमें लेपन करनेसे मनुष्यको जूएमें विजय प्राप्त होती है। काला धतूरा, नेत्र (पुत्रजीवक), अब्धि (अध:पुष्पा) तथा मनु (रुद्रदन्तिका)-से उपलक्षित ओषधियोंका लिङ्गमें लेप करके रति करनेपर जो गर्भाधान होता है, उससे पुत्रकी उत्पत्ति होती है। ग्रह (मोहलता), अब्धि (अध:पुष्पा), सूर्य (गोरक्षकर्कटी) और त्रिदश (काला धतूरा)—इन ओषधियोंद्वारा बनायी गयी बटी सबको वशमें करनेवाली होती है। इस प्रकार ऋत्विक् आदि सोलह पदोंमें स्थित ओषधियोंके प्रभावका वर्णन किया गया॥ १६-१७॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'वश्य आदि योगोंका वर्णन' नामक एक सौ चालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १४०॥

एक सौ इकतालीसवाँ अध्याय

छत्तीस कोष्ठोंमें निर्दिष्ट ओषधियोंके वैज्ञानिक प्रभावका वर्णन

महादेवजी कहते हैं—स्कन्द! अब मैं छत्तीस पदों (कोष्ठकों)-में स्थापित की हुई ओषधियोंका फल बताता हूँ। इन ओषधियोंके सेवनसे मनुष्योंका अमरीकरण होता है। ये औषध ब्रह्मा, रुद्र तथा इन्द्रके द्वारा उपयोगमें लाये गये हैं॥ १॥

हरीतकी (हर्रे), अक्षधात्री (आँवला), मरीच (गोलमिर्च), पिप्पली, शिफा (जटामांसी), वह्नि (भिलावा), शुण्ठी (सोंठ), पिप्पली, गुडुची (गिलोय), वच, निम्ब, वासक (अडूसा), शतमूली (शतावरी), सैंधव (सेंधानमक), सिन्धुवार, कण्टकारि (कटेरी), गोक्षुर (गोखरु), बिल्व (बेल), पुनर्नवा (गदहपूर्णा), बला (बरियारा), रेंड़, मुण्डी, रुचक (बिजौरा नीबू), भृङ्ग (दालचीनी), क्षार (खारा नमक या यवक्षार), पर्पट (पित्तपापड़ा), धन्याक (धनिया), जीरक (जीरा), शतपुष्पी (सौंफ), यवानी (अजवाइन), विडङ्ग (वायविडंग), खदिर (खैर), कृतमाल (अमलतास), हल्दी, वचा, सिद्धार्थ (सफेद सरसों)—ये छत्तीस

पदोंमें स्थापित औषध हैं॥ २—५॥

क्रमशः एक-दो आदि संख्यावाले ये महान् औषध समस्त रोगोंको दूर करनेवाले तथा अमर बनानेवाले हैं; इतना ही नहीं, पूर्वोक्त सभी कोष्ठोंके औषध शरीरमें झुर्रियाँ नहीं पड़ने देते और बालोंका पकना रोक देते हैं। इनका चूर्ण या इनके रससे भावित बटी, अवलेह, कषाय (काढ़ा), लड्डू या गुडखण्ड यदि घी या मधुके साथ खाया जाय, अथवा इनके रससे भावित घी या तेलका जिस किसी तरहसे भी उपयोग किया जाय, वह सर्वथा मृतसंजीवन (मुर्देको भी जिलानेवाला) होता है। आधे कर्ष या एक कर्षभर अथवा आधे पल या एक पलके तोलमें इसका उपयोग करनेवाला पुरुष यथेष्ट आहार-विहारमें तत्पर होकर तीन सौ वर्षोंतक जीवित रहता है। मृतसंजीवनी-कल्पमें इससे बढ़कर दूसरा योग नहीं है॥ ६—१०॥

(नौ-नौ औषधोंके समुदायको एक 'नवक' कहते हैं। इस तरह उक्त छत्तीस औषधोंमें चार नवक होते हैं।) प्रथम नवकके योगसे बनी हुई ओषधिका सेवन करनेसे मनुष्य सब रोगोंसे छुटकारा पा जाता है, इसी तरह दूसरे, तीसरे और चौथे नवकके योगका सेवन करनेसे भी मनुष्य रोगमुक्त होता है। इसी प्रकार पहले, दूसरे, तीसरे, चौथे, पाँचवें और छठें षट्कके[1] सेवनमात्रसे भी मनुष्य नीरोग हो जाता है। उक्त छत्तीस ओषधियोंमें नौ चतुष्क होते हैं। उनमेंसे किसी एक चतुष्कके[2] सेवनसे भी मनुष्यके सारे रोग दूर हो जाते हैं। प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम, षष्ठ, सप्तम और अष्टम कोष्ठकी ओषधियोंके सेवनसे वात-दोषसे छुटकारा मिलता है। तीसरी, बारहवीं, छब्बीसवीं और सत्ताईसवीं ओषधियोंके सेवनसे पित्त-दोष दूर होता है तथा पाँचवीं, छठी, सातवीं, आठवीं और पंद्रहवीं ओषधियोंके सेवनसे कफ-दोषकी निवृत्ति होती है। चौंतीसवें, पैंतीसवें और छत्तीसवें कोष्ठकी औषधोंको धारण करनेसे वशीकरणकी सिद्धि होती है तथा ग्रहबाधा, भूतबाधा आदिसे लेकर निग्रहपर्यन्त सारे संकटोंसे छुटकारा मिल जाता है॥ ११—१४ $\frac{1}{2}$॥

प्रथम, द्वितीय, तृतीय, षष्ठ, सप्तम, अष्टम, नवम, एकादश संख्यावाली ओषधियों तथा बत्तीसवीं, पंद्रहवीं एवं बारहवीं संख्यावाली ओषधियोंको धारण करनेसे भी उक्त फलकी प्राप्ति (वशीकरणकी सिद्धि एवं भूतादि बाधाकी निवृत्ति) होती है। इसमें कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। छत्तीस कोष्ठोंमें निर्दिष्ट की गयी इन ओषधियोंका ज्ञान जैसे-तैसे हर व्यक्तिको नहीं देना चाहिये॥ १५-१६॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'छत्तीस कोष्ठोंके भीतर स्थापित ओषधियोंके विज्ञानका वर्णन' नामक एक सौ इकतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १४१॥

एक सौ बयालीसवाँ अध्याय

चोर और जातकका निर्णय, शनि-दृष्टि, दिन-राहु, फणि-राहु, तिथि-राहु तथा विष्टि-राहुके फल और अपराजिता-मन्त्र एवं ओषधिका वर्णन

भगवान् महेश्वर कहते हैं—स्कन्द! अब मैं मन्त्र-चक्र तथा औषध-चक्रोंका वर्णन करूँगा, जो सम्पूर्ण मनोरथोंको देनेवाले हैं। जिन-जिन व्यक्तियोंके ऊपर चोरी करनेका संदेह हो, उनके लिये किसी वस्तु (वृक्ष, फूल या देवता आदि)-का नाम बोले। उस वस्तुके नामके अक्षरोंकी संख्याको दुगुनी करके एक स्थानपर रखे तथा उस नामकी मात्राओंकी संख्यामें चारसे गुणा

१-२. छः ओषधियोंके समुदायको 'षट्क' और चार ओषधियोंके समुदायको 'चतुष्क' कहते हैं।

करके गुणनफलको दूसरे स्थानपर रखे। पहली संख्यासे दूसरी संख्यामें भाग दे। यदि कुछ शेष बचे तो वह व्यक्ति चोर है। यदि भाजकसे भाज्य पूरा-पूरा कट जाय तो यह समझना चाहिये कि वह व्यक्ति चोर नहीं है॥ १ $\frac{1}{2}$ ॥

अब यह बता रहा हूँ कि गर्भमें जो बालक है, वह पुत्र है या कन्या, इसका निश्चय किस प्रकार किया जाय? प्रश्न करनेवाले व्यक्तिके प्रश्न-वाक्यमें जो-जो अक्षर उच्चारित होते हैं, वे सब मिलकर यदि विषम संख्यावाले हैं तो गर्भमें पुत्रकी उत्पत्ति सूचित करते हैं। (इसके विपरीत सम संख्या होनेपर उस गर्भसे कन्याकी उत्पत्ति होनेकी सूचना मिलती है।) प्रश्न करनेवालेसे किसी वस्तुका नाम लेनेके लिये कहना चाहिये। वह जिस वस्तुके नामका उल्लेख करे, वह नाम यदि स्त्रीलिंग है तो उसके अक्षरोंके सम होनेपर पूछे गये गर्भसे उत्पन्न होनेवाला बालक बायीं आँखका काना होता है। यदि वह नाम पुँल्लिग है और उसके अक्षर विषम हैं तो पैदा होनेवाला बालक दाहिनी आँखका काना होता है। इसके विपरीत होनेपर उक्त दोष नहीं होते हैं। स्त्री और पुरुषके नामोंकी मात्राओं तथा उनके अक्षरोंकी संख्यामें पृथक्-पृथक् चारसे गुणा करके गुणनफलको अलग-अलग रखे। पहली संख्या 'मात्रा-पिण्ड' है और दूसरी संख्या 'वर्ण-पिण्ड'। वर्ण-पिण्डमें तीनसे भाग दे। यदि सम शेष हो तो कन्याकी उत्पत्ति होती है, विषम शेष हो तो पुत्रकी उत्पत्ति होती है। यदि शून्य शेष हो तो पतिसे पहले स्त्रीकी मृत्यु होती है और यदि प्रथम 'मात्रा-पिण्ड' में तीनसे भाग देनेपर शून्य शेष रहे तो स्त्रीसे पहले पुरुषकी मृत्यु होती है। समस्त भागमें सूक्ष्म अक्षरवाले द्रव्योंद्वारा प्रश्नको ग्रहण करके विचार करनेसे अभीष्ट फलका ज्ञान होता है॥ २—५॥

अब मैं शनि-चक्रका वर्णन करूँगा। जहाँ शनिकी दृष्टि हो, उस लग्नका सर्वथा परित्याग कर देना चाहिये। जिस राशिमें शनि स्थित होते हैं, उससे सातवीं राशिपर उनकी पूर्ण दृष्टि रहती है, चौथी और दसवींपर आधी दृष्टि रहती है तथा पहली, दूसरी, आठवीं और बारहवीं राशिपर चौथाई दृष्टि रहती है। शुभकर्ममें इन सबका त्याग करना चाहिये। जिस दिनका जो ग्रह अधिपति हो, उस दिनका प्रथम पहर उसी ग्रहका होता है और शेष ग्रह उस दिनके आधे-आधे पहरके अधिकारी होते हैं। दिनमें जो समय शनिके भागमें पड़ता है, उसे युद्धमें त्याग दे॥ ६-७ $\frac{1}{2}$ ॥

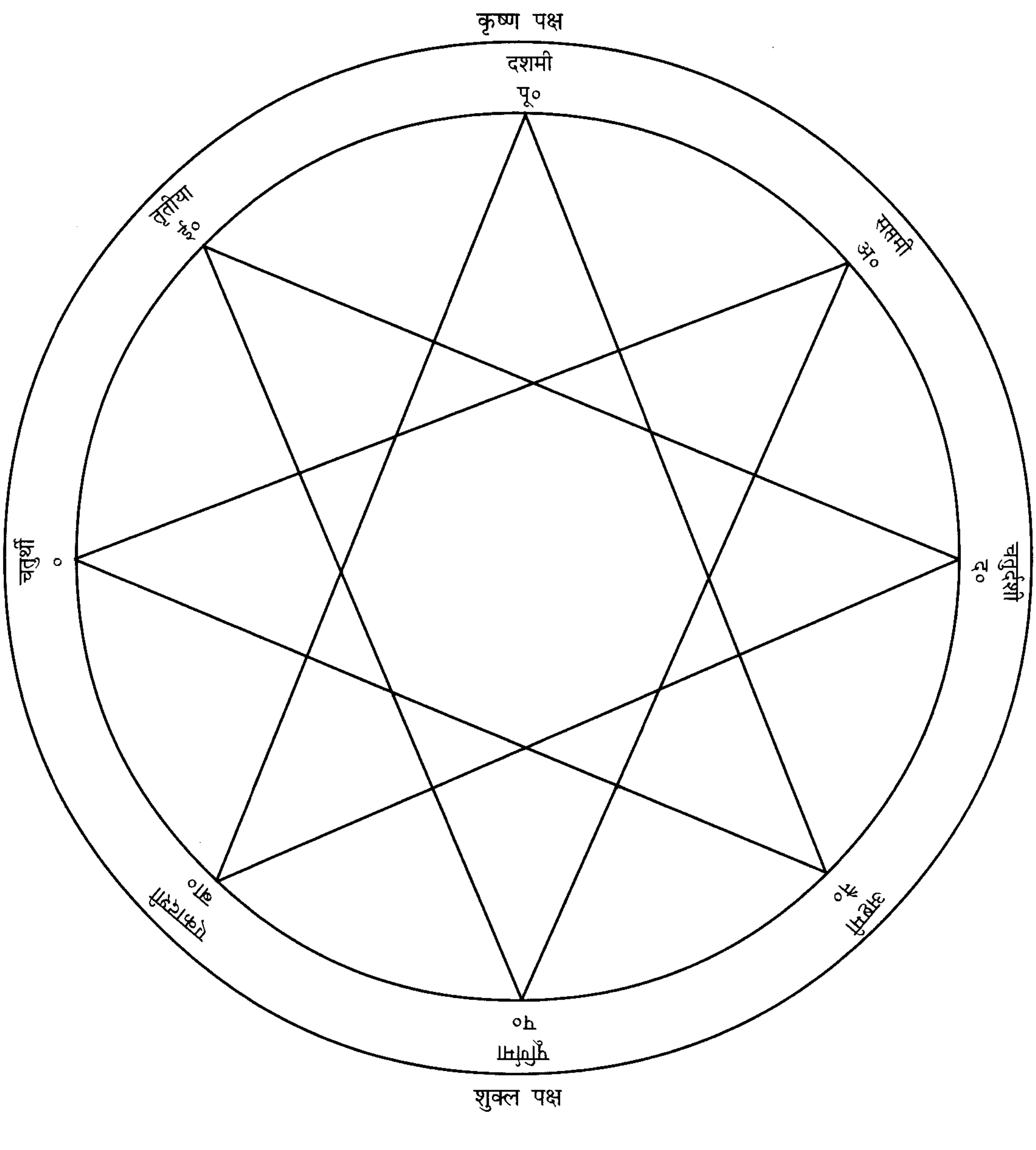
अब मैं तुम्हें दिनमें राहुकी स्थितिका विषय बता रहा हूँ। राहु रविवारको पूर्वमें, शनिवारको वायव्यकोणमें, गुरुवारको दक्षिणमें, शुक्रवारको अग्निकोणमें, मङ्गलवारको भी अग्निकोणमें तथा बुधवारको सदा उत्तर दिशामें स्थित रहते हैं। फणि-राहु ईशान, अग्नि, नैर्ऋत्य एवं वायव्य-कोणमें एक-एक पहर रहते हैं और युद्धमें अपने सामने खड़े हुए शत्रुको आवेष्टित करके मार डालते हैं॥ ८-९ $\frac{1}{2}$ ॥

अब मैं तिथि-राहुका वर्णन करूँगा। पूर्णिमाको अग्नि-कोणमें राहुकी स्थिति होती है और अमावास्याको वायव्यकोणमें। सम्मुख राहु शत्रुका नाश करनेवाले हैं। पश्चिमसे पूर्वकी ओर तीन खड़ी रेखाएँ खींचे और फिर इन मूलभूत रेखाओंका भेदन करते हुए दक्षिणसे उत्तरकी ओर तीन पड़ी रेखाएँ खींचे। इस तरह प्रत्येक दिशामें तीन-तीन रेखाग्र होंगे। सूर्य जिस राशिपर स्थित हों, उसे सामनेवाली दिशामें लिखकर क्रमशः बारहों राशियोंको प्रदक्षिण-क्रमसे उन रेखाग्रोंपर लिखे। तत्पश्चात् 'क' से लेकर 'ज' तकके अक्षरोंको सामनेकी दिशामें लिखे। 'झ' से लेकर 'द' तकके अक्षर दक्षिण दिशामें स्थित रहें, 'ध' से लेकर 'म' तकके अक्षर पूर्व दिशामें लिखे जायँ और 'य' से लेकर 'ह' तकके अक्षर उत्तर दिशामें अङ्कित हों। ये राहुके गुण या चिह्न बताये गये हैं। शुक्लपक्षमें इनका त्याग करे तथा

तिथि-राहुकी सम्मुख दृष्टिका भी त्याग करे। राहुकी दृष्टि सामने हो तो हानि होती है; अन्यथा विजय प्राप्त होती है॥ १०—१३॥

अब 'विष्टि-राहु' का वर्णन करता हूँ। निम्नाङ्कित रूपसे आठ रेखाएँ खींचे—ईशानकोणसे दक्षिण दिशातक, दक्षिण दिशासे वायव्यकोणतक, वायव्यकोणसे पूर्व दिशातक, वहाँसे नैर्ऋत्यकोणतक, नैर्ऋत्यकोणसे उत्तर दिशातक, उत्तर दिशासे अग्निकोणतक, अग्निकोणसे पश्चिम दिशातक तथा पश्चिम दिशासे ईशानकोणतक। इन रेखाओंपर विष्टि (भद्रा)-के साथ महाबली राहु विचरण करते हैं। कृष्णपक्षकी तृतीयादि तिथियोंमें विष्टि-राहुकी स्थिति ईशानकोणमें होती है और सप्तमी आदि तिथियोंमें दक्षिण दिशामें। (इसी प्रकार शुक्लपक्षकी अष्टमी आदिमें उनकी स्थिति नैर्ऋत्यकोणमें होती है और चतुर्थी आदिमें उत्तर दिशामें)। इस तरह कृष्ण एवं शुक्लपक्षमें वायुके आश्रित रहनेवाले सम्मुख राहु शत्रुओंका नाश करते हैं।* विष्टि-राहुचक्रकी पूर्व आदि दिशाओंमें इन्द्र आदि आठ दिक्पालों, महाभैरव आदि आठ

* विष्टि-राहुचक्र इस प्रकार समझना चाहिये—



महाभैरवों[१], ब्रह्माणी आदि आठ[२] शक्तियों तथा सूर्य आदि आठ ग्रहोंको स्थापित करे। पूर्व आदि प्रत्येक दिशामें ब्रह्माणी आदि आठ शक्तियोंके आठ अष्टकोंकी भी स्थापना करे। दक्षिण आदि दिशाओंमें वातयोगिनीका उल्लेख करे। वायु जिस दिशामें बहती है, उसी दिशामें इन सबके साथ रहकर राहु शत्रुओंका संहार करता है॥ १४—१७½ ॥

अब मैं अङ्गोंको सुदृढ़ करनेका उपाय बता रहा हूँ। पुष्यनक्षत्रमें उखाड़ी हुई तथा निम्नाङ्कित अपराजिता-मन्त्रका जप करके कण्ठ अथवा भुजा आदिमें धारण की हुई शरपुंखिका ('सरफोंका' नामक ओषधि) विपक्षीके बाणोंका लक्ष्य बननेसे बचाती है। इसी प्रकार पुष्यमें उखाड़ी 'अपराजिता' एवं 'पाठा' नामक ओषधिको भी यदि मन्त्रपाठपूर्वक कण्ठ और भुजाओंमें धारण किया जाय तो उन दोनोंके प्रभावसे मनुष्य तलवारके वारको बचा सकता है॥ १८-१९॥

(अपराजिता-मन्त्र इस प्रकार है—) **ॐ नमो भगवति वज्रशृङ्खले हन हन, ॐ भक्ष भक्ष, ॐ खाद, ॐ अरे रक्तं पिब कपालेन रक्ताक्षि रक्तपटे भस्माङ्गि भस्मलिप्तशरीरे वज्रायुधे वज्रप्राकारनिचिते पूर्वां दिशं बन्ध बन्ध, ॐ दक्षिणां दिशं बन्ध बन्ध, ॐ पश्चिमां दिशं बन्ध बन्ध, ॐ उत्तरां दिशं बन्ध बन्ध, नागान् बन्ध बन्ध, नागपत्नीर्बन्ध बन्ध, ॐ असुरान् बन्ध बन्ध, ॐ यक्षराक्षसपिशाचान् बन्ध बन्ध, ॐ प्रेतभूतगन्धर्वादयो ये केचिदुपद्रवास्तेभ्यो रक्ष रक्ष, ॐ ऊर्ध्वं रक्ष रक्ष, ॐ अधो रक्ष रक्ष, ॐ क्षुरिकं बन्ध बन्ध, ॐ ज्वल महाबले। घटि घटि, ॐ मोटि मोटि, सटावलिवज्राग्नि वज्रप्राकारे हुं फट्, ह्रीं ह्रूं श्रीं फट् ह्रीं हः फूं फें फः सर्वग्रहेभ्यः सर्वव्याधिभ्यः सर्वदुष्टोपद्रवेभ्यो ह्रीं अशेषेभ्यो रक्ष रक्ष॥ २०॥**

ग्रहपीड़ा, ज्वर आदिकी पीड़ा तथा भूतबाधा आदिके निवारण—इन सभी कर्मोंमें इस मन्त्रका उपयोग करना चाहिये॥ २१॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'मन्त्रौषधि आदिका वर्णन' नामक एक सौ बयालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १४२॥

एक सौ तैंतालीसवाँ अध्याय

कुब्जिका-सम्बन्धी न्यास एवं पूजनकी विधि

महादेवजी कहते हैं—स्कन्द! अब मैं कुब्जिकाकी क्रमिक पूजाका वर्णन करूँगा, जो समस्त मनोरथोंको सिद्ध करनेवाली है। 'कुब्जिका' वह शक्ति है, जिसकी सहायतासे राज्यपर स्थित हुए देवताओंने अस्त्र-शस्त्रादिसे असुरोंपर विजय पायी है॥ १॥

मायाबीज 'ह्रीं' तथा हृदयादि छः मन्त्रोंका क्रमशः गुह्याङ्ग एवं हाथमें न्यास करे। '**काली-काली**'—यह हृदय मन्त्र है। '**दुष्ट चाण्डालिका**'—यह शिरोमन्त्र है। '**ह्रीं स्फेंह स ख क छ ड ओंकारो भैरवः।**'—यह शिखा-सम्बन्धी मन्त्र है। '**भेलखी दूती**'—यह कवच-सम्बन्धी मन्त्र है। '**रक्तचण्डिका**'—यह नेत्र-सम्बन्धी मन्त्र है तथा '**गुह्यकुब्जिका**'—यह अस्त्र-सम्बन्धी मन्त्र है। अङ्गों और हाथोंमें इनका न्यास करके मण्डलमें यथास्थान इनका

१. 'मन्त्र-महोदधि' १। ५४ में आठ भैरवोंके नाम इस प्रकार आये हैं—असिताङ्गभैरव, रुरुभैरव, चण्डभैरव (या कालभैरव), क्रोधभैरव, उन्मत्तभैरव, कपालिभैरव, भीषणभैरव तथा संहारभैरव।

२. अध्याय १४३ के छठे श्लोकमें ब्रह्माणी आदि आठ शक्तियोंके नाम इस प्रकार आये हैं—ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री, चामुण्डा तथा चण्डिका। अध्याय १४४ के ३१वें श्लोकमें 'चण्डिका'की जगह 'महालक्ष्मी'का उल्लेख हुआ है।

पूजन करना चाहिये* ॥ २-३ $\frac{1}{2}$ ॥

मण्डलके अग्निकोणमें कूर्च बीज (हूं), ईशानकोणमें शिरोमन्त्र (स्वाहा), नैर्ऋत्यकोणमें शिखामन्त्र (वषट्), वायव्यकोणमें कवचमन्त्र (हुम्), मध्यभागमें नेत्रमन्त्र (वौषट्) तथा मण्डलकी सम्पूर्ण दिशाओंमें अस्त्र-मन्त्र (फट्)-का उल्लेख एवं पूजन करे। बत्तीस अक्षरोंसे युक्त बत्तीस दलवाले कमलकी कर्णिकामें '**स्त्रों ह स क्ष म ल न व ब ष ट स च**' तथा आत्मबीज-मन्त्र (आम्)-का न्यास एवं पूजन करे। कमलके सब ओर पूर्व दिशासे आरम्भ करके क्रमशः ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री, चामुण्डा और चण्डिका (महालक्ष्मी)-का न्यास एवं पूजन करना चाहिये ॥ ४—६ ॥

तत्पश्चात् ईशान, पूर्व, अग्निकोण, दक्षिण, नैर्ऋत्य और पश्चिममें क्रमशः र, व, ल, क, स और ह—इनका न्यास और पूजन करे। फिर इन्हीं दिशाओंमें क्रमशः कुसुममाला एवं पाँच पर्वतोंका स्थापन एवं पूजन करे। पर्वतोंके नाम हैं—जालन्धर, पूर्णगिरि और कामरूप आदि। तत्पश्चात् वायव्य, ईशान, अग्नि और नैर्ऋत्यकोणमें तथा मध्यभागमें वज्रकुब्जिकाका पूजन करे। इसके बाद वायव्य, ईशान, नैर्ऋत्य, अग्नि तथा उत्तर शिखरपर क्रमशः अनादि विमल, सर्वज्ञ विमल, प्रसिद्ध विमल, संयोग विमल तथा समय विमल—इन पाँच विमलोंकी पूजा करे। इन्हीं शृङ्गोंपर कुब्जिकाकी प्रसन्नताके लिये क्रमशः खिङ्खिनी, षष्ठी, सोपत्रा, सुस्थिरा तथा रत्नसुन्दरीका पूजन करना चाहिये। ईशानकोणवर्ती शिखरपर आठ आदिनाथोंकी आराधना करे ॥ ७—११ ॥

अग्निकोणवर्ती शिखरपर मित्रकी, पश्चिमवर्ती शिखरपर औडीश वर्षकी तथा वायव्यकोणवर्ती शिखरपर षष्टि नामक वर्षकी पूजा करनी चाहिये। पश्चिमदिशावर्ती शिखरपर गगनरत्न और कवचरत्नकी अर्चना की जानी चाहिये। वायव्य, ईशान और अग्निकोणमें 'ब्रुं' बीजसहित 'पञ्चनामा' संज्ञक मर्त्यकी पूजा करनी चाहिये। दक्षिण दिशा और अग्निकोणमें 'पञ्चरत्न' की अर्चना करे। ज्येष्ठा, रौद्री तथा अन्तिका—ये तीन संध्याओंकी अधिष्ठात्री देवियाँ भी उसी दिशामें पूजने योग्य हैं। इनके साथ सम्बन्ध रखनेवाली पाँच महावृद्धाएँ हैं, उन सबकी प्रणवके उच्चारणपूर्वक पूजा करनी चाहिये। इनका पूजन सत्ताईस अथवा अट्ठाईसके भेदसे दो प्रकारका बताया गया है ॥ १२—१४ ॥

चौकोर मण्डलमें दाहिनी ओर गणपतिका तथा बायीं ओर वटुकका पूजन करे। '**ॐ एं गूं क्रमगणपतये नमः।**' इस मन्त्रसे क्रमगणपतिकी तथा '**ॐ वटुकाय नमः।**' इस मन्त्रसे वटुककी पूजा करे। वायव्य आदि कोणोंमें चार गुरुओंका तथा अठारह षट्कोणोंमें सोलह नाथोंका पूजन करे। फिर मण्डलके चारों ओर ब्रह्मा आदि आठ देवताओंकी तथा मध्यभागमें नवमी कुब्जिका एवं कुलटा देवीकी पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार सदा इसी क्रमसे पूजा करे ॥ १५—१७ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'कुब्जिकाकी क्रम-पूजाका वर्णन' नामक एक सौ तैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४३ ॥

---

* अङ्गन्यास-सम्बन्धी वाक्यकी योजना इस प्रकार है। ॐ ह्रीं काली काली हृदयाय नमः। ॐ ह्रीं दुष्टचाण्डालिकायै शिरसे स्वाहा। ॐ ह्रीं स्फें ह स ख क छ ड ॐकाराय भैरवाय शिखायै वषट्। ॐ ह्रीं भेलख्यै दूत्यै कवचाय हुम्। ॐ ह्रीं रक्तचण्डिकायै नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ गुह्यकुब्जिकायै अस्त्राय फट्। इन छः वाक्योंद्वारा क्रमशः हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्र एवं सम्पूर्ण दिशाओंमें न्यास किया जाता है। इन्हीं वाक्योंमें 'हृदयाय नमः' के स्थानमें 'अङ्गुष्ठाभ्यां नमः', 'शिरसे' के स्थानमें 'तर्जनीभ्यां नमः', 'शिखायै' के स्थानमें 'मध्यमाभ्यां नमः', 'कवचाय' की जगह 'अनामिकाभ्यां नमः', 'नेत्रत्रयाय' के स्थानमें 'कनिष्ठिकाभ्यां नमः' तथा 'अस्त्राय' के स्थानमें 'करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः' कर दिया जाय तो ये करन्यास-सम्बन्धी वाक्य हो जायँगे तथा इनका क्रमशः हाथके दोनों अङ्गुष्ठों, तर्जनियों, मध्यमाओं, अनामिकाओं, कनिष्ठिकाओं तथा करतल-कर-पृष्ठ-भागोंमें न्यास किया जायगा।

एक सौ चौवालीसवाँ अध्याय

कुब्जिकाकी पूजा-विधिका वर्णन

भगवान् महेश्वर कहते हैं— स्कन्द! अब मैं धर्म, अर्थ, काम तथा विजय प्रदान करनेवाली श्रीमती कुब्जिकादेवीके मन्त्रका वर्णन करूँगा। परिवारसहित मूलमन्त्रसे उनकी पूजा करनी चाहिये॥ १॥

'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं खैं ह्रें हसक्षमलचवयं भगवति अम्बिके ह्रां ह्रीं क्ष्रीं क्षौं क्ष्रूं क्रीं कुब्जिके ह्राम् ॐ ङञनणमेऽअघोरमुखि व्रां छ्रां छीं किलि किलि क्ष्रौं विच्चे ख्यों श्रीं क्रोम्, ॐ ह्रोम्, ऐं वज्रकुब्जिनि स्त्रीं त्रैलोक्यकर्षिणि ह्रीं कामाङ्गद्राविणि ह्रीं स्त्रीं महाक्षोभकारिणि ऐं ह्रीं क्ष्रौं ऐं ह्रीं श्रीं फें क्षौं नमो भगवति क्ष्रौं कुब्जिके ह्रों ह्रों क्रैं ङञणनमे अघोरमुखि छ्रां छां विच्चे, ॐ किलि किलि।'—यह कुब्जिकामन्त्र है॥ २॥

करन्यास और अङ्गन्यास करके संध्या-वन्दन करे। वामा, ज्येष्ठा तथा रौद्री—ये क्रमशः तीन संध्याएँ कही गयी हैं॥ ३॥

कौली गायत्री

'कुलवागीशि विद्महे, महाकौलीति धीमहि। तन्नः कौली प्रचोदयात्।' 'कुलवागीश्वरि! हम आपको जानें। महाकौलीके रूपमें आपका चिन्तन करें। कौली देवी हमें शुभ कर्मोंके लिये प्रेरित करे'॥ ४॥

इसके पाँच मन्त्र हैं, जिनके आदिमें 'प्रणव' और अन्तमें 'नमः' पदका प्रयोग होता है। बीचमें पाँच नाथोंके नाम हैं; अन्तमें **'श्रीपादुकां पूजयामि'**— इस पदको जोड़ना चाहिये। मध्यमें देवताका चतुर्थ्यन्त नाम जोड़ देना चाहिये। इस प्रकार ये पाँचों मन्त्र लगभग अठारह-अठारह अक्षरोंके होते हैं। इन सबके नामोंको षष्ठी विभक्तिके साथ संयुक्त करना चाहिये। इस तरह वाक्य-योजना करके इनके स्वरूप समझने चाहिये। मैं उन पाँचों नाथोंका वर्णन करता हूँ—कौलीशनाथ, श्रीकण्ठनाथ, कौलनाथ, गगनानन्दनाथ तथा तूर्णनाथ। इनकी पूजाका मन्त्र-वाक्य इस प्रकार होना चाहिये—**'ॐ कौलीशनाथाय नमस्तस्मै पादुकां पूजयामि।'** इनके साथ क्रमशः ये पाँच देवियाँ भी पूजनीय हैं—१—सुकला देवी, जो जन्मसे ही कुब्जा होनेके कारण 'कुब्जिका' कही गयी हैं; २—चटुला देवी, ३—मैत्रीशी देवी, जो विकराल रूपवाली हैं, ४—अतल देवी और ५—श्रीचन्द्रा देवी हैं। इन सबके नामके अन्तमें 'देवी' पद है। इनके पूजनका मन्त्र-वाक्य इस प्रकार होगा—

'ॐ सुकलादेव्यै नमस्तस्यै भगात्मपुङ्गण-देवमोहिनीं पादुकां पूजयामि।' दूसरी (चटुला) देवीकी पादुकाका यह विशेषण देना चाहिये—**'अतीतभुवनानन्दरत्नाढ्यां पादुकां पूजयामि।'** इसी तरह तीसरी देवीकी पादुकाका विशेषण **'ब्रह्मज्ञानाढ्यां'**, चौथीकी पादुकाका विशेषण **'कमलाढ्यां'** तथा पाँचवींकी पादुकाका विशेषण **'परमविद्याढ्यां'** देना चाहिये॥ ५—९॥

इस प्रकार विद्या, देवी और गुरु (उपर्युक्त पाँच नाथ)—इन तीनकी शुद्धि 'त्रिशुद्धि' कहलाती है। मैं तुमसे इसका वर्णन करता हूँ। गगनानन्द, चटुली, आत्मानन्द, पद्मानन्द, मणि, कला, कमल, माणिक्यकण्ठ, गगन, कुमुद, श्रीपद्म, भैरवानन्द, कमलदेव, शिव, भव तथा कृष्ण—ये सोलह नूतन सिद्ध हैं॥ १०-११ $\frac{1}{2}$ ॥

चन्द्रपूर, गुल्म, शुभकाम, अतिमुक्तक, वीरकण्ठ, प्रयोग, कुशल, देवभोगक्र (अथवा भोगदायक), विश्वदेव, खड्गदेव, रुद्र, धाता, असि, मुद्रास्फोट, वंशपूर तथा भोज—ये सोलह

सिद्ध हैं। इन सिद्धोंका शरीर भी छः प्रकारके न्यासोंसे नियन्त्रित होनेके कारण इनके आत्माके समान जातिका ही (सच्चिदानन्दमय) हो गया है। मण्डलमें फूल बिखेरकर मण्डलोंकी पूजा करे। अनन्त, महान्, शिवपादुका, महाव्याप्ति, शून्य, पञ्चतत्त्वात्मक-मण्डल, श्रीकण्ठनाथ-पादुका, शंकर एवं अनन्तकी भी पूजा करे॥ १२—१६॥

सदाशिव, पिङ्गल, भृग्वानन्द, नाथ-समुदाय, लाङ्गूलानन्द और संवर्त—इन सबका मण्डल-स्थानमें पूजन करे। नैर्ऋत्यकोणमें श्रीमहाकाल, पिनाकी, महेन्द्र, खड्ग, नाग, बाण, अघासि (पापका छेदन करनेके लिये खड्गरूप), शब्द, वश, आज्ञारूप और नन्दरूप—इनको बलि अर्पित करके क्रमशः इनका पूजन करे। इसके बाद वटुकको अर्घ्य, पुष्प, धूप, दीप, गन्ध एवं बलि तथा क्षेत्रपालको गन्ध, पुष्प और बलि अर्पित करे। इसके लिये मन्त्र इस प्रकार है—**'ह्रीं खं खं हूं सौं वटुकाय अरु अरु अर्घ्यं पुष्पं धूपं दीपं गन्धं बलिं पूजां गृह्ण गृह्ण नमस्तुभ्यम्। ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं क्षेत्रपालायावतरावतर महाकपिलजटाभार भास्वर त्रिनेत्र ज्वालामुख एह्येहि गन्धपुष्पबलिपूजां गृह्ण गृह्ण खः खः ॐ कः ॐ लः ॐ महाडामराधिपतये स्वाहा।'** बलिके अन्तमें दायें-बायें तथा सामने त्रिकूटका पूजन करे; इसके लिये मन्त्र इस प्रकार है—'**ह्रीं ह्रूं ह्रां श्रीं त्रिकूटाय नमः।**' फिर बायें निशानाथकी, दाहिने तमोऽरिनाथ (या सूर्यनाथ)-की तथा सामने कालानलकी पादुकाओंका यजन-पूजन करे। तदनन्तर उड्डियान, जालन्धर, पूर्णगिरि तथा कामरूपका पूजन करना चाहिये। फिर गगनानन्ददेव, वर्गसहित स्वर्गानन्ददेव, परमानन्ददेव, सत्यानन्ददेवकी पादुका तथा नागानन्ददेवकी पूजा करे। इस प्रकार 'वर्ग' नामक पञ्चरत्नका तुमसे वर्णन किया गया है॥ १७—२३½॥

उत्तर और ईशानकोणमें इन छःकी पूजा करे—सुरनाथकी पादुकाकी, श्रीमान् समयकोटीश्वरकी, विद्याकोटीश्वरकी, कोटीश्वरकी, बिन्दुकोटीश्वरकी तथा सिद्धकोटीश्वरकी। अग्निकोणमें चार* सिद्ध-समुदायकी तथा अमरीशेश्वर, चक्रीशेश्वर, कुरङ्गेश्वर, वृत्रेश्वर और चन्द्रनाथ या चन्द्रेश्वरकी पूजा करे। इन सबकी गन्ध आदि पञ्चोपचारोंसे पूजा करनी चाहिये। दक्षिण दिशामें अनादि विमल, सर्वज्ञ विमल, योगीश विमल, सिद्ध विमल और समय विमल—इन पाँच विमलोंका पूजन करे॥ २४—२७½॥

नैर्ऋत्यकोणमें चार वेदोंका, कंदर्पनाथका, पूर्वोक्त सम्पूर्ण शक्तियोंका तथा कुब्जिकाकी श्रीपादुकाका पूजन करे। इनमें कुब्जिकाकी पूजा '**ॐ ह्रां ह्रीं कुब्जिकायै नमः।**'—इस नवाक्षर मन्त्रसे अथवा केवल पाँच प्रणवरूप मन्त्रसे करे। पूर्व दिशासे लेकर ईशानकोण-पर्यन्त ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, अनन्त, वरुण, वायु, कुबेर तथा ईशान—इन दस दिक्पालोंकी पूजा करे। सहस्रनेत्रधारी इन्द्र, अनवद्य विष्णु तथा शिवकी पूजा सदा ही करनी चाहिये। ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, ऐन्द्री, चामुण्डा तथा महालक्ष्मी—इनकी पूजा पूर्व दिशासे लेकर ईशानकोण-पर्यन्त आठ दिशाओंमें क्रमशः करे॥ २८—३१॥

तदनन्तर वायव्यकोणसे छः उग्र दिशाओंमें क्रमशः डाकिनी, राकिनी, लाकिनी, काकिनी, शाकिनी तथा याकिनी—इनकी पूजा करे। तत्पश्चात् ध्यानपूर्वक कुब्जिकादेवीका पूजन करना चाहिये। बत्तीस व्यञ्जन अक्षर ही उनका शरीर है। उनके

* मन्त्रमहोदधि १२। ३७ के अनुसार चार 'सिद्धौघ' गुरु हैं। यथा—योगक्रीड, समय, सहज और परावर। पूजाका मन्त्र—'योगक्रीडानन्दनाथाय नमः, समयानन्दनाथाय नमः' इत्यादि।

पूजनमें पाँच प्रणव अथवा 'ह्रीं' का बीजरूपसे उच्चारण करना चाहिये। (यथा—'**ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ कुब्जिकायै नमः।**' अथवा '**ॐ ह्रीं कुब्जिकायै नमः।**') ॥ ३२-३३ ॥

देवीकी अङ्गकान्ति नील कमल-दलके समान श्याम है, उनके छः मुख हैं और उनकी मुखकान्ति भी छः प्रकारकी है। वे चैतन्य-शक्तिस्वरूपा हैं। अष्टादशाक्षर मन्त्रद्वारा उनका प्रतिपादन होता है। उनके बारह भुजाएँ हैं। वे सुखपूर्वक सिंहासनपर विराजमान हैं। प्रेतपद्मके ऊपर बैठी हैं। वे सहस्रों कोटि कुलोंसे सम्पन्न हैं। 'कर्कोटक' नामक नाग उनकी मेखला (करधनी) है। उनके मस्तकपर 'तक्षक' नाग विराजमान है। 'वासुकि' नाग उनके गलेका हार है। उनके दोनों कानोंमें स्थित 'कुलिक' और 'कूर्म' नामक नाग कुण्डल-मण्डल बने हुए हैं। दोनों भौंहोंमें 'पद्म' और 'महापद्म' नामक नागोंकी स्थिति है। बायें हाथोंमें नाग, कपाल, अक्षसूत्र, खट्वाङ्ग, शङ्ख और पुस्तक हैं। दाहिने हाथोंमें त्रिशूल, दर्पण, खड्ग, रत्नमयी माला, अङ्कुश तथा धनुष हैं। देवीके दो मुख ऊपरकी ओर हैं, जिनमें एक तो पूरा सफेद है और दूसरा आधा सफेद है। उनका पूर्ववर्ती मुख पाण्डुवर्णका है, दक्षिणवर्ती मुख क्रोधयुक्त जान पड़ता है, पश्चिमवाला मुख काला है और उत्तरवर्ती मुख हिम, कुन्द एवं चन्द्रमाके समान श्वेत है। ब्रह्मा उनके चरणतलमें स्थित हैं, भगवान् विष्णु जघनस्थलमें विराजमान हैं, रुद्र हृदयमें, ईश्वर कण्ठमें, सदाशिव ललाटमें तथा शिव उनके ऊपरी भागमें स्थित हैं। कुब्जिकादेवी झूमती हुई-सी दिखायी देती हैं। पूजा आदि कर्मोंमें कुब्जिकाका ऐसा ही ध्यान करना चाहिये॥ ३४—४० ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'कुब्जिकाकी पूजाका वर्णन' नामक एक सौ चौवालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १४४॥

एक सौ पैंतालीसवाँ अध्याय

मालिनी आदि नाना प्रकारके मन्त्र और उनके षोढा-न्यास

भगवान् महेश्वर कहते हैं— स्कन्द! अब मैं छः प्रकारके न्यासपूर्वक नाना प्रकारके मन्त्रोंका वर्णन करूँगा। ये छहों प्रकारके न्यास 'शाम्भव', 'शाक्त' तथा 'यामल'के भेदसे तीन-तीन प्रकारके होते हैं। 'शाम्भव-न्यास' में षट्षोडश ग्रन्थिरूप शब्दराशि प्रथम है, तीन विद्याएँ और उनका ग्रहण द्वितीय न्यास है, त्रितत्त्वात्मक न्यास तीसरा है, वनमालान्यास चौथा है, यह बारह श्लोकोंका है। रत्नपञ्चकका न्यास पाँचवाँ है और नवाक्षरमन्त्रका न्यास छठा कहा गया है॥ १—३ ॥

शाक्तपक्षमें 'मालिनी'का न्यास प्रथम, 'त्रिविद्या'का न्यास द्वितीय, 'अघोर्यष्टक'का न्यास तृतीय, 'द्वादशाङ्गन्यास' चतुर्थ, 'षडङ्गन्यास' पञ्चम तथा 'अस्त्रचण्डिका' नामक शक्तिका न्यास छठा है। **क्लीं (क्रीं), ह्रीं, क्लीं, श्रीं, क्रूं, फट्**— इन छः बीजमन्त्रोंका जो छः प्रकारका न्यास है, यही तीसरा अर्थात् 'यामल न्यास' है। इन छहोंमेंसे चौथा '**श्रीं**' बीजका न्यास है, वह सम्पूर्ण मनोरथोंको सिद्ध करनेवाला है॥ ४-५ ॥

'न' से लेकर 'फ' तक जो न्यास बताया जाता है, वह सब मालिनीका ही न्यास है। 'न' से आरम्भ होनेवाली अथवा नाद करनेवाली शक्तिका न्यास शिखामें करना चाहिये। 'अ' ग्रसनी शक्ति तथा 'श' शिरोमाला-निवृत्ति शक्तिका स्थान सिरमें है; अतः वहीं उनका न्यास करे। 'ट' शान्तिका प्रतीक है, इसका न्यास भी सिरमें

ही होगा। 'च' चामुण्डाका प्रतीक है, इसका न्यास नेत्रत्रयमें करना चाहिये। 'ढ' प्रियदृष्टिस्वरूप है, इसका न्यास नेत्रद्वयमें होना चाहिये। गुह्यशक्तिका प्रतीक है—'नी', इसका न्यास नासिकाद्वयमें करे। 'न' नारायणीरूप है, इसका स्थान दोनों कानोंमें है। 'त' मोहिनीरूप है, इसका स्थान केवल दाहिने कानमें है। 'ज' प्रज्ञाका प्रतीक है, इसकी स्थिति बायें कानमें बतायी गयी है। वज्रिणी देवीका स्थान मुखमें है। 'क' कराली शक्तिका प्रतीक है, इसकी स्थिति दाहिनी दंष्ट्रा (दाढ़)-में है। 'ख' कपालिनीरूप है, 'व' बायें कंधेपर स्थापित होनेके योग्य है। 'ग' शिवाका प्रतीक है, इसका स्थान ऊपरी दाढ़ोंमें है। 'घ' घोरा शक्तिका सूचक है, इसकी स्थिति बायीं दाढ़में मानी गयी है। 'उ' शिखा शक्तिका सूचक है, इसका स्थान दाँतोंमें है। 'ई' मायाका प्रतीक है, जिसका स्थान जिह्वाके अन्तर्गत माना गया है। 'अ' नागेश्वरीरूप है, इसका न्यास वाक्-इन्द्रियमें होना चाहिये। 'व' शिखिवाहिनीका बोधक है, इसका स्थान कण्ठमें है॥ ६—१०॥

'भ' के साथ भीषणी शक्तिका न्यास दाहिने कंधेमें करे। 'म' के साथ वायुवेगका न्यास बायें कंधेमें करे। 'ड' अक्षर और नामा शक्तिका दाहिनी भुजामें तथा 'ढ' अक्षर एवं विनायका देवीका बायीं भुजामें न्यास करे। 'प' एवं पूर्णिमाका न्यास दोनों हाथोंमें करे। प्रणवसहित ओंकारा शक्तिका दाहिने हाथकी अङ्गुलियोंमें तथा 'अं' सहित दर्शनीका बायें हाथकी अङ्गुलियोंमें न्यास करे। 'अः' एवं संजीवनी-शक्तिका हाथमें न्यास करे। 'ट' अक्षरसहित कपालिनी शक्तिका स्थान कपाल है। 'त' सहित दीपनीकी स्थिति शूलदण्डमें है। जयन्तीकी स्थिति त्रिशूलमें है। 'य' सहित साधनी देवीका स्थान ऋद्धि (वृद्धि) है॥ ११—१३॥

'श' अक्षरके साथ परमाख्या देवीकी स्थिति जीवमें है। 'ह' अक्षरसहित अम्बिका देवीका न्यास प्राणमें करना चाहिये। 'छ' अक्षरके साथ शरीरा देवीका स्थान दाहिने स्तनमें है। 'न' सहित पूतनाकी स्थिति बायें स्तनमें बतायी गयी है। 'अ' सहित आमोटीका स्तन-दुग्धमें, 'थ' सहित लम्बोदरीका उदरमें, 'क्ष' सहित संहारिकाका नाभिमें तथा 'म' सहित महाकालीका नितम्बमें न्यास करे। 'स' अक्षरसहित कुसुममालाका गुह्यदेशमें, 'ष' सहित शुक्रदेविकाका शुक्रमें, 'त' सहित तारा देवीका दोनों ऊरुओंमें तथा 'द' सहित ज्ञानाशक्तिका दाहिने घुटनेमें न्यास करे। 'औ' सहित क्रियाशक्तिका बायें घुटनेमें, 'ओ' सहित गायत्री देवीका दाहिनी जङ्घा (पिण्डली)-में, 'ॐ' सहित सावित्रीका बायीं जङ्घामें तथा 'द' सहित दोहिनीका दाहिने पैरमें न्यास करे। 'फ' सहित 'फेत्कारी' का बायें पैरमें न्यास करना चाहिये॥ १४—१७॥

मालिनी-मन्त्र नौ अक्षरोंसे युक्त होता है। 'अ' सहित श्रीकण्ठका शिखामें, 'आ' सहित अनन्तका मुखमें, 'इ' सहित सूक्ष्मका दाहिने नेत्रमें, 'ई' सहित त्रिमूर्तिका बायें नेत्रमें, 'उ' सहित अमरीशका दाहिने कानमें तथा 'ऊ' सहित अर्धांशकका बायें कानमें न्यास करे। 'ऋ' सहित भावभूतिका दाहिने नासाग्रमें, 'ॠ' सहित तिथीशका वामनासाग्रमें, 'ऌ' सहित स्थाणुका दाहिने गालमें तथा 'ॡ' सहित हरका बायें गालमें न्यास करे। 'ए' अक्षरसहित कटीशका नीचेकी दन्तपङ्क्तिमें, 'ऐ' सहित भूतीशका ऊपरकी दन्तपङ्क्तिमें, 'ओ' सहित सद्योजातका नीचेके ओष्ठमें तथा 'औ' सहित अनुग्रहीश (या अनुग्रहेश)-का ऊपरके ओष्ठमें न्यास करे। 'अं' सहित क्रूरका गलेकी घाटीमें, 'अः' सहित महासेनका जिह्वामें, 'क' सहित क्रोधीशका दाहिने कंधेमें तथा 'ख' सहित

चण्डीशका बाहुओंमें न्यास करे। 'ग' सहित पञ्चान्तकका कूर्परमें, 'घ' सहित शिखीका दाहिने कङ्कणमें, 'ङ' सहित एकपादका दायीं अङ्गुलियोंमें तथा 'च' सहित कूर्मकका बायें कंधेमें न्यास करे॥ १८—२३॥

'छ' सहित एकनेत्रका बाहुमें, 'ज' सहित चतुर्मुखका कूर्पर या कोहनीमें, 'झ' सहित राजसका वामकङ्कणमें तथा 'ञ' सहित सर्वकामदका बायीं अङ्गुलियोंमें न्यास करे। 'ट' सहित सोमेश्वरका नितम्बमें, 'ठ' सहित लाङ्गलीका दक्षिण ऊरु (दाहिनी जाँघ)-में, 'ड' सहित दारुकका दाहिने घुटनेमें तथा 'ढ' सहित अर्द्धजलेश्वरका पिण्डलीमें न्यास करे। 'ण' सहित उमाकान्तका दाहिने पैरकी अङ्गुलियोंमें, 'त' सहित आषाढ़ीका नितम्बमें, 'थ' सहित दण्डीका वाम ऊरु (बायीं जाँघ)-में तथा 'द' सहित भिदका बायें घुटनेमें न्यास करे। 'ध' सहित मीनका बायीं पिण्डलीमें, 'न' सहित मेषका बायें पैरकी अङ्गुलियोंमें, 'प' सहित लोहितका दाहिनी कुक्षिमें तथा 'फ' सहित शिखीका बायीं कुक्षिमें न्यास करे। 'ब' सहित गलण्डका पृष्ठवंशमें, 'भ' सहित द्विरण्डका नाभिमें, 'म' सहित महाकालका हृदयमें तथा 'य' सहित वाणीशका त्वचामें न्यास बताया गया है॥ २४—२८॥

'र' सहित भुजङ्गेशका रक्तमें, 'ल' सहित पिनाकीका मांसमें, 'व' सहित खड्गीशका अपने आत्मा (शरीर)-में तथा 'श' सहित वकका हड्डीमें न्यास करे। 'ष' सहित श्वेतका मज्जामें, 'स' सहित भृगुका शुक्र एवं धातुमें, 'ह' सहित नकुलीशका प्राणमें तथा 'क्ष' सहित संवर्तका पञ्चकोशोंमें न्यास करना चाहिये। 'ह्रीं' बीजसे रुद्रशक्तियोंका पूजन करके उपासक सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है॥ २९-३०॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'मालिनी-मन्त्र आदिके न्यासका वर्णन' नामक एक सौ पैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १४५॥

एक सौ छियालीसवाँ अध्याय

त्रिखण्डी-मन्त्रका वर्णन, पीठस्थानपर पूजनीय शक्तियों तथा आठ अष्टक देवियोंका कथन

भगवान् महेश्वर कहते हैं— स्कन्द! अब मैं ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वरसे सम्बन्ध रखनेवाली त्रिखण्डीका वर्णन करूँगा॥ १॥

'**ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः। नमश्चामुण्डे नमश्चाकाशमातॄणां सर्वकामार्थसाधनीनामजरामरीणां सर्वत्राप्रतिहतगतीनां स्वरूपपरिवर्तिनीनां सर्वसत्त्ववशीकरणोत्सादनोन्मूलनसमस्तकर्मप्रवृत्तानां सर्वमातृगुह्यं हृदयं परमसिद्धं परकर्मच्छेदनं परमसिद्धिकरं मातॄणां वचनं शुभम्।**' इस ब्रह्मखण्डपदमें रुद्रमन्त्र-सम्बन्धी एक सौ इक्कीस अक्षर हैं॥ २-३॥

(अब विष्णुखण्डपद बताया जाता है—)

'**ॐ नमश्चामुण्डे ब्रह्माणि अघोरे अमोघे वरदे विच्चे स्वाहा। ॐ नमश्चामुण्डे माहेश्वरि अघोरे अमोघे वरदे विच्चे स्वाहा। ॐ नमश्चामुण्डे कौमारि अघोरे अमोघे वरदे विच्चे स्वाहा। ॐ नमश्चामुण्डे वैष्णवि अघोरे अमोघे वरदे विच्चे स्वाहा। ॐ नमश्चामुण्डे वाराहि अघोरे अमोघे वरदे विच्चे स्वाहा। ॐ नमश्चामुण्डे इन्द्राणि अघोरे अमोघे वरदे विच्चे स्वाहा। ॐ नमश्चामुण्डे चण्डि अघोरे अमोघे वरदे विच्चे स्वाहा। ॐ नमश्चामुण्डे ईशानि अघोरे अमोघे वरदे विच्चे स्वाहा।**' यह यथोचित अक्षरवाले पदोंका दूसरा मन्त्रखण्ड है, जो 'विष्णुखण्डपद' कहा

गया है॥ ४-५॥

(अब महेश्वरखण्डपद बताया जाता है—)

'ॐ नमश्चामुण्डे ऊर्ध्वकेशि ज्वलितशिखरे विद्युज्जिह्वे तारकाक्षि पिङ्गलभ्रुवे विकृतदंष्ट्रे क्रुद्धे, ॐ मांसशोणितसुरासवप्रिये हस हस ॐ नृत्य नृत्य ॐ विजृम्भय विजृम्भय ॐ मायात्रैलोक्यरूपसहस्रपरिवर्तिनीनामों बन्ध बन्ध, ॐ कुट्ट कुट्ट चिरि चिरि हिरि हिरि भिरि भिरि त्रासनि त्रासनि भ्रामणि भ्रामणि, ॐ द्रावणि द्रावणि क्षोभणि क्षोभणि मारणि मारणि संजीवनि संजीवनि हेरि हेरि गेरि गेरि घेरि घेरि, ॐ सुरि सुरि ॐ नमो मातृगणाय नमो नमो विच्चे'॥ ६॥

यह माहेश्वरखण्ड एकतीस पदोंका है। इसमें एक सौ एकहत्तर अक्षर हैं। इन तीनों खण्डोंको 'त्रिखण्डी' कहते हैं। इस त्रिखण्डी-मन्त्रके आदि और अन्तमें **'हें घों'** तथा पाँच प्रणव जोड़कर उसका जप एवं पूजन करना चाहिये। **'हें घों श्रीकुब्जिकायै नमः।'**— इस मन्त्रको त्रिखण्डीके पदोंकी संधियोंमें जोड़ना चाहिये। अकुलादि त्रिमध्यग, कुलादि त्रिमध्यग, मध्यमादि त्रिमध्यग तथा पाद-त्रिमध्यग—ये चार प्रकारके मन्त्र-पिण्ड हैं। साढ़े तीन मात्राओंसे युक्त प्रणवको आदिमें लगाकर इनका जप अथवा इनके द्वारा यजन करना चाहिये। तदनन्तर भैरवके शिखा-मन्त्रका जप एवं पूजन करे—**'ॐ क्ष्रौं शिखाभैरवाय नमः'**॥ ७—९ $\frac{1}{2}$ ॥

'स्खां स्खीं स्खें'—ये तीन सबीज त्र्यक्षर हैं। **'ह्रां ह्रीं ह्रें'**— ये निर्बीज त्र्यक्षर हैं। विलोम-क्रमसे 'क्ष' से लेकर 'क' तकके बत्तीस अक्षरोंकी वर्णमाला 'अकुला' कही गयी है। अनुलोम-क्रमसे गणना होनेपर वह 'सकुला' कही जाती है। शशिनी, भानुनी, पावनी, शिव, गन्धारी, 'ण' पिण्डाक्षी, चपला, गजजिह्विका, 'म' मृषा, भयसारा, मध्यमा, 'फ' अजरा, 'य' कुमारी, 'न' कालरात्री, 'द' संकटा, 'ध' कालिका, 'फ' शिवा, 'ण' भवघोरा, 'ट' बीभत्सा, 'त' विद्युता, 'ठ' विश्वम्भरा और शंसिनी अथवा 'उ' विश्वम्भरा, 'आ' शंसिनी, 'द' ज्वालामालिनी, कराली, दुर्जया, रङ्गी, वामा, ज्येष्ठा तथा रौद्री, 'ख' काली, 'क' कुलालम्बी, अनुलोमा, 'द' पिण्डिनी, 'आ' वेदिनी, 'इ' रूपी, 'वै' शान्तिमूर्ति एवं कलाकुला, 'ऋ' खड्गिनी, 'उ' वलिता, 'लॄ' कुला, 'लृ' सुभगा, वेदनादिनी और कराली, 'अं' मध्यमा तथा 'अः' अपेतरया—इन शक्तियोंका योगपीठपर क्रमशः पूजन करना चाहिये॥ १०—१७॥

'स्खां स्खीं स्खौं महाभैरवाय नमः।'— यह महाभैरवके पूजनका मन्त्र है। (ब्रह्माणी आदि आठ शक्तियोंके साथ पृथक् आठ-आठ शक्तियाँ और हैं, जिन्हें 'अष्टक' कहा गया है। उनका क्रमशः वर्णन किया जाता है।) अक्षोद्या, ऋक्षकर्णी, राक्षसी, क्षपणा, क्षया, पिङ्गाक्षी, अक्षया और क्षेमा—ये ब्रह्माणीके अष्टक-दलमें स्थित होती हैं। इला, लीलावती, नीला, लङ्का, लङ्केश्वरी, लालसा, विमला और माला—ये माहेश्वरी-अष्टकमें स्थित हैं। हुताशना, विशालाक्षी, हूंकारी, वडवामुखी, हाहारवा, क्रूरा, क्रोधा तथा खरानना बाला—ये आठ कौमारीके शरीरसे प्रकट हुई हैं। इनका पूजन करनेपर ये सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनवाली होती हैं। सर्वज्ञा, तरला, तारा, ऋग्वेदा, हयानना, सारासारा, स्वयंग्राहा तथा शाश्वती—ये आठ शक्तियाँ वैष्णवीके कुलमें प्रकट हुई हैं॥ १८—२२ $\frac{1}{2}$ ॥

तालुजिह्वा, रक्ताक्षी, विद्युज्जिह्वा, करङ्किणी, मेघनादा, प्रचण्डोग्रा, कालकर्णी तथा कलिप्रिया—ये वाराहीके कुलमें उत्पन्न हुई हैं। विजयकी इच्छावाले पुरुषको इनकी पूजा करनी चाहिये। चम्पा, चम्पावती, प्रचम्पा, ज्वलितानना, पिशाची, पिचुवक्त्रा तथा लोलुपा—ये इन्द्राणी शक्तिके कुलमें उत्पन्न हुई हैं। पावनी, याचनी, वामनी,

दमनी, विन्दुवेला, बृहत्कुक्षी, विद्युता तथा विश्वरूपिणी—ये चामुण्डाके कुलमें प्रकट हुई हैं और मण्डलमें पूजित होनेपर विजयदायिनी होती हैं॥ २३—२६ १/२ ॥

यमजिह्वा, जयन्ती, दुर्जया, यमान्तिका, विडाली, रेवती, जया और विजया—ये महालक्ष्मीके कुलमें उत्पन्न हुई हैं। इस प्रकार आठ अष्टकोंका वर्णन किया गया॥ २७-२८ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'आठ अष्टक देवियोंका वर्णन' नामक एक सौ छियालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १४६ ॥

एक सौ सैंतालीसवाँ अध्याय

गुह्यकुब्जिका, नवा त्वरिता तथा दूतियोंके मन्त्र एवं न्यास-पूजन आदिका वर्णन

भगवान् महेश्वर कहते हैं—स्कन्द! (अब मैं गुह्य-कुब्जिका, नवा त्वरिता, दूती तथा त्वरिताके गुह्याङ्ग एवं तत्त्वोंका वर्णन करूँगा—) '**ॐ गुह्यकुब्जिके हुं फट् मम सर्वोपद्रवान् यन्त्रमन्त्रतन्त्रचूर्णप्रयोगादिकं येन कृतं कारितं कुरुते करिष्यति कारयिष्यति तान् सर्वान् हन हन दंष्ट्रा-करालिनि ह्रैं ह्रीं ह्रुं गुह्यकुब्जिकायै स्वाहा ह्रौं, ॐ खें वों गुह्यकुब्जिकायै नमः।**' (इस मन्त्रसे गुह्यकुब्जिकाका पूजन एवं जप करना चाहिये।) '**ह्रीं सर्वजनक्षोभणी जनानुकर्षिणी ॐ खें ख्यां ख्यां सर्वजनवशंकरी जनमोहनी, ॐ ख्यौं सर्वजनस्तम्भनी, ऐं खं खां क्षोभणी, ऐं त्रितत्त्वं बीजं श्रेष्ठं कुले पञ्चाक्षरी, फं श्रीं क्षीं ह्रीं क्षें वच्छे क्षे क्षे ह्रूं फट्, ह्रीं नमः। ॐ ह्रां वच्छे क्षे क्षें क्षों ह्रीं फट्**'॥ १—४ ॥

यह 'नवा त्वरिता' बतायी गयी है। इसे बारंबार जानना (जपना) चाहिये। इसकी पूजा की जाय तो यह विजयदायिनी होती है। '**ह्रौं सिंहाय नमः।**' इस मन्त्रसे आसनकी पूजा करके देवीको सिंहासन समर्पित करे। '**ह्रीं क्षे हृदयाय नमः।**' बोलकर हृदयका स्पर्श करे। '**वच्छे शिरसे स्वाहा।**' बोलकर सिरका स्पर्श करे—इस प्रकार यह 'त्वरितामन्त्र'का शिरोन्यास बताया गया है। '**क्षें ह्रीं शिखायै वषट्।**' ऐसा कहकर शिखाका स्पर्श करे। '**क्षें कवचाय हुम्।**' कहकर दोनों भुजाओंका स्पर्श करे। '**ह्रूं नेत्रत्रयाय वौषट्।**' कहकर दोनों नेत्रोंका तथा ललाटके मध्यभागका स्पर्श करे। '**ह्रीं अस्त्राय फट्।**' कहकर ताली बजाये। हींकारी, खेचरी, चण्डा, छेदनी, क्षोभणी, क्रिया, क्षेमकारी, हुंकारी तथा फट्कारी—ये नौ शक्तियाँ हैं॥ ५—७ १/२ ॥

अब दूतियोंका वर्णन करता हूँ। इन सबका पूर्व आदि दिशाओंमें पूजन करना चाहिये—'**ह्रीं नले बहुतुण्डे च खगे ह्रीं खेचरे ज्वालिनि ज्वल ख खे छ च्छे शवविभीषणे चच्छे चण्डे छेदनि करालि ख खे छे खे खरहाङ्गी ह्रीं क्षे वक्षे कपिले ह क्षे ह्रूं क्रूं तेजोवति रौद्रि मातः ह्रीं फे वे फे फे वक्त्रे वरी फे पुटि पुटि घोरे ह्रूं फट् ब्रह्मवेतालि मध्ये।**' (यह दूती-मन्त्र है)॥ ८-९ ॥

अब पुनः त्वरिताके गुह्याङ्गों तथा तत्त्वोंका वर्णन करता हूँ। '**ह्रौं ह्रूं हः हृदयाय नमः।**' इसका हृदयमें न्यास करे। '**ह्रीं हः शिरसे स्वाहा।**' ऐसा कहकर सिरमें न्यास करे। '**फां ज्वल ज्वल शिखायै वषट्।**' कहकर शिखामें, '**इले ह्रं ह्रूं कवचाय हुम्।**' कहकर दोनों भुजाओंमें '**क्रों क्षूं श्रीं नेत्रत्रयाय वौषट्।**' बोलकर नेत्रोंमें तथा ललाटके मध्यभागमें न्यास करे। '**क्षौं अस्त्राय फट्।**' कहकर दोनों हाथोंसे ताली बजाये अथवा

'हुं खे वच्छे क्षे ह्रीं क्षें हुं अस्त्राय फट्।' कहकर ताली बजानी चाहिये॥ १०—१२॥

मध्यभागमें **'हुं स्वाहा।'** लिखे तथा पूर्व आदि दिशाओंमें क्रमशः **'खे सदाशिवे, व ईशः, छे मनोन्मनी, मक्षे तार्क्ष्यः, ह्रीं माधवः, क्षें ब्रह्मा, हुम् आदित्यः, दारुणं फट्'**का उल्लेख एवं पूजन करे। ये आठ दिशाओंमें पूजनीय देवता बताये गये हैं॥ १३॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'त्वरिता-पूजा आदिकी विधिका वर्णन' नामक एक सौ सैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १४७॥

एक सौ अड़तालीसवाँ अध्याय

संग्राम-विजयदायक सूर्य-पूजनका वर्णन

भगवान् महेश्वर कहते हैं— स्कन्द! (अब मैं संग्राममें विजय देनेवाले सूर्यदेवके पूजनकी विधि बताता हूँ।) **'ॐ डे ख ख्यां सूर्याय संग्रामविजयाय नमः।'**— यह मन्त्र है। **ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रें ह्रों ह्रः**—ये संग्राममें विजय देनेवाले सूर्यदेवके छः अङ्ग हैं, अर्थात् इनके द्वारा षडङ्गन्यास करना चाहिये। यथा—**'ह्रां हृदयाय नमः। ह्रीं शिरसे स्वाहा। ह्रूं शिखायै वषट्। ह्रें कवचाय हुम्। ह्रों नेत्रत्रयाय वौषट्। ह्रः अस्त्राय फट्'**॥ १-२॥

'ॐ हं खं खखोल्काय स्वाहा।'— यह पूजाके लिये मन्त्र है। **'स्फूं ह्रूं हुं क्रूं ॐ ह्रों क्रेम्'**— ये छः अङ्गन्यासके बीज-मन्त्र हैं। पीठस्थानमें प्रभूत, विमल, सार, आराध्य एवं परम सुखका पूजन करे। पीठके पायों तथा बीचकी चार दिशाओंमें क्रमशः धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य तथा अनैश्वर्य—इन आठोंकी पूजा करे। तदनन्तर अनन्तासन, सिंहासन एवं पद्मासनकी पूजा करे। इसके बाद कमलकी कर्णिका एवं केसरोंकी, वहीं सूर्यमण्डल, सोममण्डल तथा अग्निमण्डलकी पूजा करे। फिर दीप्ता, सूक्ष्मा, जया, भद्रा, विभूति, विमला, अमोघा, विद्युता तथा नवीं सर्वतोमुखी—इन नौ शक्तियोंका पूजन करे॥ ३—६॥

तत्पश्चात् सत्त्व, रज और तमका, प्रकृति और पुरुषका, आत्मा, अन्तरात्मा और परमात्माका पूजन करे। ये सभी अनुस्वारयुक्त आदि अक्षरसे युक्त होकर अन्तमें 'नमः' के साथ चतुर्थ्यन्त होनेपर पूजाके मन्त्र हो जाते हैं। यथा—**'सं सत्त्वाय नमः। अं अन्तरात्मने नमः।'** इत्यादि। इसी तरह उषा, प्रभा, संध्या, साया, माया, बला, बिन्दु, विष्णु तथा आठ द्वारपालोंकी पूजा करे। इसके बाद गन्ध आदिसे सूर्य, चण्ड और प्रचण्डका पूजन करे। इस प्रकार पूजा तथा जप, होम आदि करनेसे युद्ध आदिमें विजय प्राप्त होती है॥ ७—९॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'संग्राम-विजयदायक सूर्यदेवकी पूजाका वर्णन' नामक एक सौ अड़तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १४८॥

एक सौ उनचासवाँ अध्याय

होमके प्रकार-भेद एवं विविध फलोंका कथन

भगवान् महेश्वरने कहा— देवि! होमसे युद्धमें विजय, राज्यप्राप्ति और विघ्नोंका विनाश होता है। पहले 'कृच्छ्रव्रत' करके देहशुद्धि करे। तदनन्तर सौ प्राणायाम करके शरीरका शोधन करे। फिर जलके भीतर गायत्री-जप करके सोलह बार प्राणायाम करे। पूर्वाह्णकालमें अग्निमें

आहुति समर्पित करे। भिक्षाद्वारा प्राप्त यवनिर्मित भोज्यपदार्थ, फल, मूल, दुग्ध, सत्तू और घृतका आहार यज्ञकालमें विहित है॥ १—३॥

पार्वति! लक्ष-होमकी समाप्ति-पर्यन्त एक समय भोजन करे। लक्ष-होमकी पूर्णाहुतिके पश्चात् गौ, वस्त्र एवं सुवर्णकी दक्षिणा दे। सभी प्रकारके उत्पातोंके प्रकट होनेपर पाँच या दस ऋत्विजोंसे पूर्वोक्त यज्ञ करावे। इस लोकमें ऐसा कोई उत्पात नहीं है, जो इससे शान्त न हो जाय। इससे बढ़कर परम मङ्गलकारक कोई वस्तु नहीं है। जो नरेश पूर्वोक्त विधिसे ऋत्विजोंद्वारा कोटि-होम कराता है, युद्धमें उसके सम्मुख शत्रु कभी नहीं ठहर सकते हैं। उसके राज्यमें अतिवृष्टि, अनावृष्टि, मूषकोपद्रव, टिड्डीदल, शुकोपद्रव एवं भूत-राक्षस तथा युद्धमें समस्त शत्रु शान्त हो जाते हैं। कोटि-होममें बीस, सौ अथवा सहस्र ब्राह्मणोंका वरण करे। इससे यजमान इच्छानुकूल धन-वैभवकी प्राप्ति करता है। जो ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य इस कोटिहोमात्मक यज्ञका अनुष्ठान करता है, वह जिस पदार्थकी इच्छा करता है, उसको प्राप्त करता है। वह सशरीर स्वर्गलोकको जाता है॥ ४—९½॥

गायत्री-मन्त्र, ग्रह-सम्बन्धी मन्त्र, कूष्माण्ड-मन्त्र, जातवेदा—अग्नि-सम्बन्धी अथवा ऐन्द्र, वारुण, वायव्य, याम्य, आग्नेय, वैष्णव, शाक्त, शैव एवं सूर्यदेवता-सम्बन्धी मन्त्रोंसे होम-पूजन आदिका विधान है। अयुत-होमसे अल्प सिद्धि होती है। लक्ष-होम सम्पूर्ण दुःखोंको दूर करनेवाला है। कोटि-होम समस्त क्लेशोंका नाश करनेवाला और सम्पूर्ण पदार्थोंको प्रदान करनेवाला है। यव, धान्य, तिल, दुग्ध, घृत, कुश, प्रसातिका (छोटे दानेका चावल), कमल, खस, बेल और आम्रपत्र होमके योग्य माने गये हैं। कोटि-होममें आठ हाथ और लक्ष-होममें चार हाथ गहरा कुण्ड बनावे। अयुत-होम, लक्ष-होम और कोटि-होममें घृतका हवन करना चाहिये॥ १०॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'युद्धजयार्णवके अन्तर्गत अयुत-लक्ष-कोटिहोम' नामक एक सौ उनचासवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १४९॥

एक सौ पचासवाँ अध्याय

मन्वन्तरोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—अब मैं मन्वन्तरोंका वर्णन करूँगा। सबसे प्रथम स्वायम्भुव मनु हुए हैं। उनके आग्नीध्र आदि पुत्र थे। स्वायम्भुव मन्वन्तरमें यम नामक देवता, और्व आदि सप्तर्षि तथा शतक्रतु इन्द्र थे। दूसरे मन्वन्तरका नाम था—स्वारोचिष; उसमें पारावत और तुषित नामधारी देवता थे। स्वरोचिष मनुके चैत्र और किम्पुरुष आदि पुत्र थे। उस समय विपश्चित् नामक इन्द्र तथा उर्जस्वन्त आदि द्विज (सप्तर्षि) थे। तीसरे मनुका नाम उत्तम हुआ; उनके पुत्र अज आदि थे। उनके समयमें सुशान्ति नामक इन्द्र, सुधामा आदि देवता तथा वसिष्ठके पुत्र सप्तर्षि थे। चौथे मनु तामस नामसे विख्यात हुए; उस समय स्वरूप आदि देवता, शिखरी इन्द्र, ज्योतिर्होम आदि ब्राह्मण (सप्तर्षि) थे तथा उनके ख्याति आदि नौ पुत्र हुए॥ १—५॥

रैवत नामक पाँचवें मन्वन्तरमें वितथ इन्द्र, अमिताभ देवता, हिरण्यरोमा आदि मुनि तथा बलबन्ध आदि पुत्र थे। छठे चाक्षुष मन्वन्तरमें मनोजव नामक इन्द्र और स्वाति आदि देवता थे। सुमेधा आदि महर्षि और पुरु आदि मनु-पुत्र थे। तत्पश्चात् सातवें मन्वन्तरमें सूर्यपुत्र श्राद्धदेव मनु हुए। इनके समयमें आदित्य, वसु तथा रुद्र आदि देवता; पुरन्दर नामक इन्द्र; वसिष्ठ, काश्यप,

अत्रि, जमदग्नि, गौतम, विश्वामित्र तथा भरद्वाज सप्तर्षि हैं। यह वर्तमान मन्वन्तरका वर्णन है। वैवस्वत मनुके इक्ष्वाकु आदि पुत्र थे। इन सभी मन्वन्तरोंमें भगवान् श्रीहरिके अंशावतार हुए हैं। स्वायम्भुव मन्वन्तरमें भगवान् 'मानस' के नामसे प्रकट हुए थे। तदनन्तर शेष छः मन्वन्तरोंमें क्रमशः अजित, सत्य, हरि, देववर, वैकुण्ठ और वामन रूपमें श्रीहरिका प्रादुर्भाव हुआ। छायाके गर्भसे उत्पन्न सूर्यनन्दन सावर्णि आठवें मनु होंगे॥ ६—११॥

वे अपने पूर्वज (ज्येष्ठ भ्राता) श्राद्धदेवके समान वर्णवाले हैं, इसलिये 'सावर्णि' नामसे विख्यात होंगे। उनके समयमें सुतपा आदि देवता, परम तेजस्वी अश्वत्थामा आदि सप्तर्षि, बलि इन्द्र और विरज आदि मनुपुत्र होंगे। नवें मनुका नाम दक्षसावर्णि होगा। उस समय पार आदि देवता होंगे। उन देवताओंके इन्द्रकी 'अद्भुत' संज्ञा होगी। उनके समयमें सवन आदि श्रेष्ठ ब्राह्मण सप्तर्षि होंगे और 'धृतकेतु' आदि मनुपुत्र। तत्पश्चात् दसवें मनु ब्रह्मसावर्णिके नामसे प्रसिद्ध होंगे। उस समय सुख आदि देवगण, शान्ति इन्द्र, हविष्य आदि मुनि तथा सुक्षेत्र आदि मनुपुत्र होंगे॥ १२—१५॥

तदनन्तर धर्मसावर्णि नामक ग्यारहवें मनुका अधिकार होगा। उस समय विहङ्ग आदि देवता, गण इन्द्र, निश्चर आदि मुनि तथा सर्वत्रग आदि मनुपुत्र होंगे। इसके बाद बारहवें मनु रुद्रसावर्णिके नामसे विख्यात होंगे। उनके समयमें ऋतधामा नामक इन्द्र और हरित आदि देवता होंगे। तपस्य आदि सप्तर्षि और देववान् आदि मनुपुत्र होंगे। तेरहवें मनुका नाम होगा रौच्य। उस समय सूत्रामणि आदि देवता तथा दिवस्पति इन्द्र होंगे, जो दानव-दैत्य आदिका मर्दन करनेवाले होंगे। रौच्य मन्वन्तरमें निर्मोह आदि सप्तर्षि तथा चित्रसेन आदि मनुपुत्र होंगे। चौदहवें मनु भौत्यके नामसे प्रसिद्ध होंगे। उनके समयमें शुचि इन्द्र, चाक्षुष आदि देवता तथा अग्निबाहु आदि सप्तर्षि होंगे। चौदहवें मनुके पुत्र ऊरु आदिके नामसे विख्यात होंगे॥ १६—२० $\frac{१}{२}$॥

सप्तर्षि द्विजगण भूमण्डलपर वेदोंका प्रचार करते हैं, देवगण यज्ञ-भागके भोक्ता होते हैं तथा मनुपुत्र इस पृथ्वीका पालन करते हैं। ब्रह्मन्! ब्रह्माके एक दिनमें चौदह मनु होते हैं। मनु, देवता तथा इन्द्र आदि भी उतनी ही बार होते हैं। प्रत्येक द्वापरके अन्तमें व्यासरूपधारी श्रीहरि वेदका विभाग करते हैं। आदि वेद एक ही था, जिसमें चार चरण और एक लाख ऋचाएँ थीं। पहले एक ही यजुर्वेद था, उसे मुनिवर व्यासजीने चार भागोंमें विभक्त कर दिया। उन्होंने अध्वर्युका काम यजुर्भागसे, होताका कार्य ऋग्वेदकी ऋचाओंसे, उद्गाताका कर्म साम-मन्त्रोंसे तथा ब्रह्माका कार्य अथर्ववेदके मन्त्रोंसे होना निश्चित किया। व्यासके प्रथम शिष्य पैल थे, जो ऋग्वेदके पारंगत पण्डित हुए॥ २१—२५॥

इन्द्रने प्रमति और बाष्कलको संहिता प्रदान की। बाष्कलने भी बौध्य आदिको चार भागोंमें विभक्त अपनी संहिता दी। व्यासजीके शिष्य परम बुद्धिमान् वैशम्पायनने यजुर्वेदरूप वृक्षकी सत्ताईस शाखाएँ निर्माण कीं। काण्व और वाजसनेय आदि शाखाओंको याज्ञवल्क्य आदिने सम्पादित किया है। व्यास-शिष्य जैमिनिने सामवेदरूपी वृक्षकी शाखाएँ बनायीं। फिर सुमन्तु और सुकर्माने एक-एक संहिता रची। सुकर्माने अपने गुरुसे एक हजार संहिताओंको ग्रहण किया। व्यास-शिष्य सुमन्तुने अथर्ववेदकी भी एक शाखा बनायी तथा उन्होंने पैप्पल आदि अपने सहस्रों शिष्योंको उसका अध्ययन कराया। भगवान् व्यासदेवजीकी कृपासे सूतने पुराण-संहिताका विस्तार किया॥ २६—३१॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'मन्वन्तरोंका वर्णन' नामक एक सौ पचासवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १५०॥

एक सौ इक्यावनवाँ अध्याय

वर्ण और आश्रमके सामान्य धर्म, वर्णों तथा विलोमज जातियोंके विशेष धर्म

अग्निदेव कहते हैं—मनु आदि राजर्षि जिन धर्मोंका अनुष्ठान करके भोग और मोक्ष प्राप्त कर चुके हैं, उनका वरुण देवताने पुष्करको उपदेश किया था और पुष्करने श्रीपरशुरामजीसे उनका वर्णन किया था॥ १॥

पुष्करने कहा—परशुरामजी! मैं वर्ण, आश्रम तथा इनसे भिन्न धर्मोंका आपसे वर्णन करूँगा। वे धर्म सब कामनाओंको देनेवाले हैं। मनु आदि धर्मात्माओंने भी उनका उपदेश किया है तथा वे भगवान् वासुदेव आदिको संतोष प्रदान करनेवाले हैं। भृगुश्रेष्ठ! अहिंसा, सत्य-भाषण, दया, सम्पूर्ण प्राणियोंपर अनुग्रह, तीर्थोंका अनुसरण, दान, ब्रह्मचर्य, मत्सरताका अभाव, देवता, गुरु और ब्राह्मणोंकी सेवा, सब धर्मोंका श्रवण, पितरोंका पूजन, मनुष्योंके स्वामी श्रीभगवान्‌में सदा भक्ति रखना, उत्तम शास्त्रोंका अवलोकन करना, क्रूरताका अभाव, सहनशीलता तथा आस्तिकता (ईश्वर और परलोकपर विश्वास रखना)—ये वर्ण और आश्रम दोनोंके लिये 'सामान्य धर्म' बताये गये हैं। जो इसके विपरीत है, वही 'अधर्म' है। यज्ञ करना और कराना, दान देना, वेद पढ़ानेका कार्य करना, उत्तम प्रतिग्रह लेना तथा स्वाध्याय करना—ये ब्राह्मणके कर्म हैं। दान देना, वेदोंका अध्ययन करना और विधिपूर्वक यज्ञानुष्ठान करना—ये क्षत्रिय और वैश्यके सामान्य कर्म हैं। प्रजाका पालन करना और दुष्टोंको दण्ड देना—ये क्षत्रियके विशेष धर्म हैं। खेती, गोरक्षा और व्यापार—ये वैश्यके विशेष कर्म बताये गये हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—इन द्विजोंकी सेवा तथा सब प्रकारकी शिल्प-रचना—ये शूद्रके कर्म हैं॥ २—९॥

मौञ्जी-बन्धन (यज्ञोपवीत-संस्कार) होनेसे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य-बालकका द्वितीय जन्म होता है; इसलिये वे 'द्विज' कहलाते हैं। यदि अनुलोम-क्रमसे वर्णोंकी उत्पत्ति हो तो माताके समान बालककी जाति मानी गयी है॥ १०॥

विलोम-क्रमसे अर्थात् शूद्रके वीर्यसे उत्पन्न हुआ ब्राह्मणीका पुत्र 'चाण्डाल' कहलाता है, क्षत्रियके वीर्यसे उत्पन्न होनेवाला ब्राह्मणीका पुत्र 'सूत' कहा गया है और वैश्यके वीर्यसे उत्पन्न होनेपर उसकी 'वैदेहक' संज्ञा होती है। क्षत्रिय जातिकी स्त्रीके पेटसे शूद्रके द्वारा उत्पन्न हुआ विलोमज पुत्र 'पुक्कस' कहलाता है। वैश्य और शूद्रके वीर्यसे उत्पन्न होनेपर क्षत्रियाके पुत्रकी क्रमशः 'मागध' और 'अयोगव' संज्ञा होती है। वैश्य जातिकी स्त्रीके गर्भसे शूद्र एवं विलोमज जातियोंद्वारा उत्पन्न विलोमज संतानोंके हजारों भेद हैं। इन सबका परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध समान जातिवालोंके साथ ही होना चाहिये; अपनेसे ऊँची और नीची जातिके लोगोंके साथ नहीं॥ ११—१३॥

वधके योग्य प्राणियोंका वध करना—यह चाण्डालका कर्म बताया गया है। स्त्रियोंके उपयोगमें आनेवाली वस्तुओंके निर्माणसे जीविका चलाना तथा स्त्रियोंकी रक्षा करना—यह 'वैदेहक' का कार्य है। सूतोंका कार्य है—घोड़ोंका सारथिपना, 'पुक्कस' व्याध-वृत्तिसे रहते हैं तथा 'मागध' का कार्य है—स्तुति करना, प्रशंसाके गीत गाना। 'अयोगव'का कर्म है—रङ्गभूमिमें उतरना और शिल्पके द्वारा जीविका चलाना। 'चाण्डाल'को गाँवके बाहर रहना और मुर्देसे उतारे हुए वस्त्रको धारण करना चाहिये। चाण्डालको दूसरे वर्णके लोगोंका स्पर्श नहीं करना चाहिये। ब्राह्मणों तथा गौओंकी रक्षाके लिये प्राण त्यागना अथवा

स्त्रियों एवं बालकोंकी रक्षाके लिये देह-त्याग करना वर्ण-बाह्य चाण्डाल आदि जातियोंकी सिद्धिका (उनकी आध्यात्मिक उन्नति)-का कारण माना गया है। वर्णसंकर व्यक्तियोंकी जाति उनके पिता-माता तथा जातिसिद्ध कर्मोंसे जाननी चाहिये॥ १४—१८॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'वर्णान्तर-धर्मोंका वर्णन' नामक एक सौ इक्यावनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १५१॥

एक सौ बावनवाँ अध्याय

गृहस्थकी जीविका

पुष्कर कहते हैं—परशुरामजी! ब्राह्मण अपने शास्त्रोक्त कर्मसे ही जीविका चलावे; क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रके धर्मसे जीवन-निर्वाह न करे। आपत्तिकालमें क्षत्रिय और वैश्यकी वृत्ति ग्रहण कर ले; किंतु शूद्र-वृत्तिसे कभी गुजारा न करे। द्विज खेती, व्यापार, गोपालन तथा कुसीद (सूद लेना)—इन वृत्तियोंका अनुष्ठान करे; परंतु वह गोरस, गुड़, नमक, लाक्षा और मांस न बेचे। किसान लोग धरतीको कोड़ने-जोतनेके द्वारा जो कीड़े और चींटी आदिकी हत्या कर डालते हैं और सोहनीके द्वारा जो पौधोंको नष्ट कर डालते हैं, उससे यज्ञ और देवपूजा करके मुक्त होते हैं॥ १—३॥

आठ बैलोंका हल धर्मानुकूल माना गया है। जीविका चलानेवालोंका हल छः बैलोंका, निर्दयी हत्यारोंका हल चार बैलोंका तथा धर्मका नाश करनेवाले मनुष्योंका हल दो बैलोंका माना गया है। ब्राह्मण ऋत[1] और अमृतसे[2] अथवा मृत[3] और प्रमृतसे[4] या सत्यानृत[5] वृत्तिसे जीविका चलावे। श्वान-वृत्तिसे[6] कभी जीवन-निर्वाह न करे॥ ४-५॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'गृहस्थ-जीविकाका वर्णन' नामक एक सौ बावनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १५२॥

एक सौ तिरपनवाँ अध्याय

संस्कारोंका वर्णन और ब्रह्मचारीके धर्म

पुष्कर कहते हैं—परशुरामजी! अब मैं आश्रमी पुरुषोंके धर्मका वर्णन करूँगा; सुनो! यह भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है। स्त्रियोंके ऋतुधर्मकी सोलह रात्रियाँ होती हैं, उनमें पहलेकी तीन रातें निन्दित हैं। शेष रातोंमें जो युग्म अर्थात् चौथी, छठी, आठवीं और दसवीं आदि रात्रियाँ हैं, उनमें ही पुत्रकी इच्छा रखनेवाला पुरुष स्त्री-समागम करे। यह 'गर्भाधान-संस्कार' कहलाता है। 'गर्भ' रह गया—इस बातका स्पष्टरूपसे ज्ञान हो जानेपर गर्भस्थ शिशुके हिलने-डुलनेसे पहले ही 'पुंसवन-संस्कार' होता है। तत्पश्चात् छठे या आठवें मासमें 'सीमन्तोन्नयन' किया जाता है। उस दिन पुँल्लिङ्ग नामवाले नक्षत्रका होना शुभ है। बालकका जन्म होनेपर नाल काटनेके पहले

१. खेत कट जानेपर बाल बीनना अथवा अनाजके एक-एक दानेको चुन-चुनकर लाना और उसीसे जीविका चलाना 'ऋत' कहलाता है। २. बिना माँगे जो कुछ मिल जाय, वह 'अमृत' है। ३. माँगी हुई भीखको 'मृत' कहते हैं। ४. खेतीका नाम 'प्रमृत' है। ५. व्यापारको 'सत्यानृत' कहते हैं। ६. नौकरीका नाम 'श्वान-वृत्ति' है।

ही विद्वान् पुरुषोंको उसका 'जातकर्म-संस्कार' करना चाहिये। सूतक निवृत्त होनेपर 'नामकरण-संस्कार' का विधान है। ब्राह्मणके नामके अन्तमें 'शर्मा' और क्षत्रियके नामके अन्तमें 'वर्मा' होना चाहिये। वैश्य और शूद्रके नामोंके अन्तमें क्रमशः 'गुप्त' और 'दास' पदका होना उत्तम माना गया है। उक्त संस्कारके समय पत्नी स्वामीकी गोदमें पुत्रको दे और कहे—'यह आपका पुत्र है'॥ १—५॥

फिर कुलाचारके अनुरूप 'चूडाकरण' करे। ब्राह्मण-बालकका 'उपनयन-संस्कार' गर्भ अथवा जन्मसे आठवें वर्षमें होना चाहिये। गर्भसे ग्यारहवें वर्षमें क्षत्रिय बालकका तथा गर्भसे बारहवें वर्षमें वैश्य-बालकका उपनयन करना चाहिये। ब्राह्मण-बालकका उपनयन सोलहवें, क्षत्रिय-बालकका बाईसवें और वैश्य-बालकका चौबीसवें वर्षसे आगे नहीं जाना चाहिये। तीनों वर्णोंके लिये क्रमशः मूँज, प्रत्यञ्चा तथा वल्कलकी मेखला बतायी गयी है। इसी प्रकार तीनों वर्णोंके ब्रह्मचारियोंके लिये क्रमशः मृग, व्याघ्र तथा बकरेके चर्म और पलाश, पीपल तथा बेलके दण्ड धारण करने योग्य बताये गये हैं। ब्राह्मणका दण्ड उसके केशतक, क्षत्रियका ललाटतक और वैश्यका मुखतक लंबा होना चाहिये। इस प्रकार क्रमशः दण्डोंकी लंबाई बतायी गयी है। ये दण्ड टेढ़े-मेढ़े न हों। इनके छिलके मौजूद हों तथा ये आगमें जलाये न गये हों॥ ६—९॥

उक्त तीनों वर्णोंके लिये वस्त्र और यज्ञोपवीत क्रमशः कपास (रुई), रेशम तथा ऊनके होने चाहिये। ब्राह्मण ब्रह्मचारी भिक्षा माँगते समय वाक्यके आदिमें 'भवत्' शब्दका प्रयोग करे। [जैसे माताके पास जाकर कहे—'**भवति भिक्षां मे देहि मातः।**' पूज्य माताजी! मुझे भिक्षा दें।] इसी प्रकार क्षत्रिय ब्रह्मचारी वाक्यके मध्यमें तथा वैश्य ब्रह्मचारी वाक्यके अन्तमें '**भवत्**' शब्दका प्रयोग करे। (यथा—**क्षत्रिय—भिक्षां भवति मे देहि।** वैश्य—**भिक्षां मे देहि भवति।**) पहले वहीं भिक्षा माँगे, जहाँ भिक्षा अवश्य प्राप्त होनेकी सम्भावना हो। स्त्रियोंके अन्य सभी संस्कार बिना मन्त्रके होने चाहिये; केवल विवाह-संस्कार ही मन्त्रोच्चारणपूर्वक होता है। गुरुको चाहिये कि वह शिष्यका उपनयन (यज्ञोपवीत) संस्कार करके पहले शौचाचार, सदाचार, अग्निहोत्र तथा संध्योपासनाकी शिक्षा दे॥ १०—१२॥

जो पूर्वकी ओर मुँह करके भोजन करता है, वह आयुष्य भोगता है, दक्षिणकी ओर मुँह करके खानेवाला यशका, पश्चिमाभिमुख होकर भोजन करनेवाला लक्ष्मी (धन)-का तथा उत्तरकी ओर मुँह करके अन्न ग्रहण करनेवाला पुरुष सत्यका उपभोग करता है। ब्रह्मचारी प्रतिदिन सायंकाल और प्रातःकाल अग्निहोत्र करे। अपवित्र वस्तुका होम निषिद्ध है। होमके समय हाथकी अङ्गुलियोंको परस्पर सटाये रहे। मधु, मांस, मनुष्योंके साथ विवाद, गाना और नाचना आदि छोड़ दे। हिंसा, परायी निन्दा तथा विशेषतः अश्लील-चर्चा (गाली-गलौज आदि)-का त्याग करे। दण्ड आदि धारण किये रहे। यदि वह टूट जाय तो जलमें उसका विसर्जन कर दे और नवीन दण्ड धारण करे। वेदोंका अध्ययन पूरा करके गुरुको दक्षिणा देनेके पश्चात् व्रतान्त-स्नान करे; अथवा नैष्ठिक ब्रह्मचारी होकर जीवनभर गुरुकुलमें ही निवास करता रहे॥ १३—१६॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'ब्रह्मचर्याश्रम-वर्णन' नामक एक सौ तिरपनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १५३॥

एक सौ चौवनवाँ अध्याय

विवाहविषयक बातें

पुष्कर कहते हैं— परशुरामजी! ब्राह्मण अपनी कामनाके अनुसार चारों वर्णोंकी कन्याओंसे विवाह कर सकता है, क्षत्रिय तीनसे, वैश्य दोसे तथा शूद्र एक ही स्त्रीसे विवाहका अधिकारी है। जो अपने समान वर्णकी न हो, ऐसी स्त्रीके साथ किसी भी धार्मिक कृत्यका अनुष्ठान नहीं करना चाहिये। अपने समान वर्णकी कन्याओंसे विवाह करते समय पतिको उनका हाथ पकड़ना चाहिये। यदि क्षत्रिय-कन्याका विवाह ब्राह्मणसे होता हो तो वह ब्राह्मणके हाथमें हाथ न देकर उसके द्वारा पकड़े हुए बाणका अग्रभाग अपने हाथसे पकड़े। इसी प्रकार वैश्य-कन्या यदि ब्राह्मण अथवा क्षत्रियसे ब्याही जाती हो तो वह वरके हाथमें रखा हुआ चाबुक पकड़े और शूद्र-कन्या वस्त्रका छोर ग्रहण करे। एक ही बार कन्याका दान देना चाहिये। जो उसका अपहरण करता है, वह चोरके समान दण्ड पानेका अधिकारी है॥ १—३॥

जो संतान बेचनेमें आसक्त हो जाता है, उसका पापसे कभी उद्धार नहीं होता। कन्यादान, शचीयोग (शचीकी पूजा), विवाह और चतुर्थीकर्म—इन चार कर्मोंका नाम 'विवाह' है। (मनोनीत) पतिके लापता होने, मरने तथा संन्यासी, नपुंसक और पतित होनेपर—इन पाँच प्रकारकी आपत्तियोंके समय (वाग्दत्ता) स्त्रियोंके लिये दूसरा पति करनेका विधान है। पतिके मरनेपर देवरको कन्या देनी चाहिये। वह न हो तो किसी दूसरेको इच्छानुसार देनी चाहिये। वर अथवा कन्याका वरण करनेके लिये तीनों पूर्वा, कृत्तिका, स्वाती, तीनों उत्तरा और रोहिणी—ये नक्षत्र सदा शुभ माने गये हैं॥ ४—७॥

परशुराम! अपने समान गोत्र तथा समान प्रवरमें उत्पन्न हुई कन्याका वरण न करे। पितासे ऊपरकी सात पीढ़ियोंके पहले तथा मातासे पाँच पीढ़ियोंके बादकी ही परम्परामें उसका जन्म होना चाहिये। उत्तम कुल तथा अच्छे स्वभावके सदाचारी वरको घरपर बुलाकर उसे कन्याका दान देना 'ब्राह्मविवाह' कहलाता है। उससे उत्पन्न हुआ बालक उक्त कन्यादानजनित पुण्यके प्रभावसे अपने पूर्वजोंका सदाके लिये उद्धार कर देता है। वरसे एक गाय और एक बैल लेकर जो कन्यादान किया जाता है, उसे 'आर्ष-विवाह' कहते हैं। जब किसीके माँगनेपर उसे कन्या दी जाती है तो वह 'प्राजापत्य-विवाह' कहलाता है; इससे धर्मकी सिद्धि होती है। कीमत लेकर कन्या देना 'आसुर-विवाह' है; यह नीच श्रेणीका कृत्य है। वर और कन्या जब स्वेच्छापूर्वक एक-दूसरेको स्वीकार करते हैं तो उसे 'गान्धर्व-विवाह' कहते हैं। युद्धके द्वारा कन्याके हर लेनेसे 'राक्षस-विवाह' कहलाता है तथा कन्याको धोखा देकर उड़ा लेना 'पैशाच-विवाह' माना गया है॥। ८—११॥

विवाहके दिन कुम्हारकी मिट्टीसे शचीकी प्रतिमा बनाये और जलाशयके तटपर उसकी गाजे-बाजेके साथ पूजा कराकर कन्याको घर ले जाना चाहिये। आषाढ़से कार्तिकतक, जब भगवान् विष्णु शयन करते हों, विवाह नहीं करना चाहिये। पौष और चैत्रमासमें भी विवाह निषिद्ध है। मङ्गलके दिन तथा रिक्ता एवं भद्रा तिथियोंमें भी विवाह मना है। जब बृहस्पति और शुक्र अस्त हों, चन्द्रमापर ग्रहण लगनेवाला हो, लग्न-स्थानमें सूर्य, शनैश्चर तथा मङ्गल हों और व्यतीपात दोष आ पड़ा हो तो उस समय भी विवाह नहीं करना चाहिये। मृगशिरा, मघा, स्वाती, हस्त, रोहिणी, तीनों उत्तरा, मूल, अनुराधा तथा

रेवती—ये विवाहके नक्षत्र हैं॥ १२—१५॥

पुरुषवाची लग्न तथा उसका नवमांश शुभ होता है। लग्नसे तीसरे, छठे, दसवें, ग्यारहवें तथा आठवें स्थानमें सूर्य, शनैश्चर और बुध हों तो शुभ है। आठवें स्थानमें मङ्गलका होना अशुभ है। शेष ग्रह सातवें, बारहवें तथा आठवें घरमें हों तो शुभकारक होते हैं। इनमें भी छठे स्थानका शुक्र उत्तम नहीं होता। चतुर्थी-कर्म भी वैवाहिक नक्षत्रमें ही करना चाहिये। उसमें लग्न तथा चौथे आदि स्थानोंमें ग्रह न रहें तो उत्तम है। पर्वका दिन छोड़कर अन्य समयमें ही स्त्री-समागम करे। इससे सती (या शची) देवीके आशीर्वादसे सदा प्रसन्नता प्राप्त होती है॥ १६—१९॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'विवाहभेद-कथन' नामक एक सौ चौवनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १५४॥

एक सौ पचपनवाँ अध्याय

आचारका वर्णन

पुष्कर कहते हैं—परशुरामजी! प्रतिदिन प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर श्रीविष्णु आदि देवताओंका स्मरण करे। दिनमें उत्तरकी ओर मुख करके मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये, रातमें दक्षिणाभिमुख होकर करना उचित है और दोनों संध्याओंमें दिनकी ही भाँति उत्तराभिमुख होकर मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये। मार्ग आदिपर, जलमें तथा गलीमें भी कभी मलादिका त्याग न करे। सदा तिनकोंसे पृथ्वीको ढककर उसके ऊपर मल-त्याग करे। मिट्टीसे हाथ-पैर आदिकी भलीभाँति शुद्धि करके, कुल्ला करनेके पश्चात्, दन्तधावन करे। नित्य, नैमित्तिक, काम्य, क्रियाङ्ग, मलकर्षण तथा क्रिया-स्नान—ये छः प्रकारके स्नान बताये गये हैं। जो स्नान नहीं करता, उसके सब कर्म निष्फल होते हैं; इसलिये प्रतिदिन प्रातःकाल स्नान करना चाहिये॥ १—४॥

कुएँसे निकाले हुए जलकी अपेक्षा भूमिपर स्थित जल पवित्र होता है। उससे पवित्र झरनेका जल, उससे भी पवित्र सरोवरका जल तथा उससे भी पवित्र नदीका जल बताया जाता है। तीर्थका जल उससे भी पवित्र होता है और गङ्गाका जल तो सबसे पवित्र माना गया है। पहले जलाशयमें गोता लगाकर शरीरका मैल धो डाले। फिर आचमन करके जलसे मार्जन करे। **'हिरण्यवर्णाः०'** आदि तीन ऋचाएँ, **'शं नो देवीरभिष्टये०'** (यजु० ३६। १२) यह मन्त्र, **'आपो हि ष्ठा०'** (यजु० ३६। १४—१६) आदि तीन ऋचाएँ तथा **'इदमापः०'** (यजु० ६। १७) यह मन्त्र—इन सबसे मार्जन किया जाता है। तत्पश्चात् जलाशयमें डुबकी लगाकर जलके भीतर ही जप करे। उसमें अघमर्षण सूक्त अथवा **'द्रुपदादिव०'** (यजु० २०। २०) मन्त्र, या **'युञ्जते मनः०'** (यजु० ५। १४) आदि सूक्त अथवा **'सहस्रशीर्षा०'** (यजु० अ० ३१) आदि पुरुष-सूक्तका जप करना चाहिये। विशेषतः गायत्रीका जप करना उचित है। अघमर्षणसूक्तमें भाववृत्त देवता और अघमर्षण ऋषि हैं। उसका छन्द अनुष्टुप् है। उसके द्वारा भाववृत्त (भक्तिपूर्वक वरण किये हुए) श्रीहरिका स्मरण होता है। तदनन्तर वस्त्र बदलकर भीगी धोती निचोड़नेके पहले ही देवता और पितरोंका तर्पण करे॥ ५—११॥

फिर पुरुषसूक्त (यजु० अ० ३१)-के द्वारा जलाञ्जलि दे। उसके बाद अग्निहोत्र करे। तत्पश्चात् अपनी शक्तिके अनुसार दान देकर

योगक्षेमकी सिद्धिके लिये परमेश्वरकी शरण जाय। आसन, शय्या, सवारी, स्त्री, संतान और कमण्डलु—ये वस्तुएँ अपनी ही हों, तभी अपने लिये शुद्ध मानी गयी हैं; दूसरोंकी उपर्युक्त वस्तुएँ अपने लिये शुद्ध नहीं होतीं। राह चलते समय यदि सामनेसे कोई ऐसा पुरुष आ जाय, जो भारसे लदा हुआ कष्ट पा रहा हो, तो स्वयं हटकर उसे जानेके लिये मार्ग दे देना चाहिये। इसी प्रकार गर्भिणी स्त्री तथा गुरुजनोंको भी मार्ग देना चाहिये॥ १२—१४॥

उदय और अस्तके समय सूर्यकी ओर न देखे। जलमें भी उनके प्रतिबिम्बकी ओर दृष्टिपात न करे। नंगी स्त्री, कुआँ, हत्याके स्थान और पापियोंको न देखे। कपास (रुई), हड्डी, भस्म तथा घृणित वस्तुओंको न लाँघे। दूसरेके अन्त:पुर और खजानाघरमें प्रवेश न करे। दूसरेके दूतका काम न करे। टूटी-फूटी नाव, वृक्ष और पर्वतपर न चढ़े। अर्थ, गृह और शास्त्रोंके विषयमें कौतूहल रखे। ढेला फोड़ने, तिनके तोड़ने और नख चबानेवाला मनुष्य नष्ट हो जाता है। मुख आदि अङ्गोंको न बजावे। रातको दीपक लिये बिना कहीं न जाय। दरवाजेके सिवा और किसी मार्गसे घरमें प्रवेश न करे। मुँहका रंग न बिगाड़े। किसीकी बातचीतमें बाधा न डाले तथा अपने वस्त्रको दूसरेके वस्त्रसे न बदले। 'कल्याण हो, कल्याण हो'—यही बात मुँहसे निकाले; कभी किसीके अनिष्ट होनेकी बात न कहे। पलाशके आसनको व्यवहारमें न लावे। देवता आदिकी छायासे हटकर चले॥ १५—२०॥

दो पूज्य पुरुषोंके बीचसे होकर न निकले। जूठे मुँह रहकर तारा आदिकी ओर दृष्टि न डाले। एक नदीमें जाकर दूसरी नदीका नाम न ले। दोनों हाथोंसे शरीर न खुजलावे। किसी नदीपर पहुँचनेके बाद देवता और पितरोंका तर्पण किये बिना उसे पार न करे। जलमें मल आदि न फेंके। नंगा होकर न नहाये। योगक्षेमके लिये परमात्माकी शरणमें जाय। मालाको अपने हाथसे न हटाये। गदहे आदिकी धूलसे बचे। नीच पुरुषोंको कष्टमें देखकर कभी उनका उपहास न करे। उनके साथ अनुपयुक्त स्थानपर निवास न करे। वैद्य, राजा और नदीसे हीन देशमें न रहे। जहाँके स्वामी म्लेच्छ, स्त्री तथा बहुत-से मनुष्य हों, उस देशमें भी न निवास करे। रजस्वला आदि तथा पतितोंके साथ बात न करे। सदा भगवान् विष्णुका स्मरण करे। मुँहके ढके बिना न जोरसे हँसे, न जँभाई ले और न छींके ही॥ २१—२५॥

विद्वान् पुरुष स्वामीके तथा अपने अपमानकी बातको गुप्त रखे। इन्द्रियोंके सर्वथा अनुकूल न चले—उन्हें अपने वशमें किये रहे। मल-मूत्रके वेगको न रोके। परशुरामजी! छोटे-से भी रोग या शत्रुकी उपेक्षा न करे। सड़क लाँघकर आनेके बाद सदा आचमन करे। जल और अग्निको धारण न करे। कल्याणमय पूज्य पुरुषके प्रति कभी हुंकार न करे। पैरको पैरसे न दबावे। प्रत्यक्ष या परोक्षमें किसीकी निन्दा न करे। वेद, शास्त्र, राजा, ऋषि और देवताकी निन्दा करना छोड़ दे। स्त्रियोंके प्रति ईर्ष्या न रखे तथा उनका कभी विश्वास भी न करे। धर्मका श्रवण तथा देवताओंसे प्रेम करे। प्रतिदिन धर्म आदिका अनुष्ठान करे। जन्म-नक्षत्रके दिन चन्द्रमा, ब्राह्मण तथा देवता आदिकी पूजा करे। षष्ठी, अष्टमी और चतुर्दशीको तेल या उबटन न लगावे। घरसे दूर जाकर मल-मूत्रका त्याग करे। उत्तम पुरुषोंके साथ कभी वैर-विरोध न करे॥ २६—३१॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'आचारका वर्णन' नामक एक सौ पचपनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १५५॥

एक सौ छप्पनवाँ अध्याय

द्रव्य-शुद्धि

पुष्कर कहते हैं—परशुरामजी! अब द्रव्योंकी शुद्धि बतलाऊँगा। मिट्टीका बर्तन पुनः पकानेसे शुद्ध होता है। किंतु मल-मूत्र आदिसे स्पर्श हो जानेपर वह पुनः पकानेसे भी शुद्ध नहीं होता। सोनेका पात्र यदि अपवित्र वस्तुओंसे छू जाय तो जलसे धोनेपर पवित्र होता है। ताँबेका बर्तन खटाई और जलसे शुद्ध होता है। काँसे और लोहेका बर्तन राखसे मलनेपर पवित्र होता है। मोती आदिकी शुद्धि केवल जलसे धोनेपर ही हो जाती है। जलसे उत्पन्न शङ्ख आदिके बने बर्तनोंकी, सब प्रकारके पत्थरके बने हुए पात्रकी तथा साग, रस्सी, फल एवं मूलकी और बाँस आदिके दलोंसे बनी हुई वस्तुओंकी शुद्धि भी इसी प्रकार जलसे धोनेमात्रसे हो जाती है। यज्ञकर्ममें यज्ञपात्रोंकी शुद्धि केवल दाहिने हाथसे कुशद्वारा मार्जन करनेपर ही हो जाती है। घी या तेलसे चिकने हुए पात्रोंकी शुद्धि गरम जलसे होती है। घरकी शुद्धि झाड़ने-बुहारने और लीपनेसे होती है। शोधन और प्रोक्षण करने (सींचने)-से वस्त्र शुद्ध होता है। रेहकी मिट्टी और जलसे उसका शोधन होता है। यदि बहुत-से वस्त्रोंकी ढेरी ही किसी अस्पृश्य वस्तुसे छू जाय तो उसपर जल छिड़क देनेमात्रसे उसकी शुद्धि मानी गयी है। काठके बने हुए पात्रोंकी शुद्धि काटकर छील देनेसे होती है॥ १—५॥

शय्या आदि संहत वस्तुओंके उच्छिष्ट आदिसे दूषित होनेपर प्रोक्षण (सींचने) मात्रसे उनकी शुद्धि होती है। घी-तेल आदिकी शुद्धि दो कुश-पत्रोंसे उत्पवन करने (उछालने) मात्रसे हो जाती है। शय्या, आसन, सवारी, सूप, छकड़ा, पुआल और लकड़ीकी शुद्धि भी सींचनेसे ही जाननी चाहिये। सींग और दाँतकी बनी हुई वस्तुओंकी शुद्धि पीली सरसों पीसकर लगानेसे होती है। नारियल और तूँबी आदि फलनिर्मित पात्रोंकी शुद्धि गोपुच्छके बालोंद्वारा रगड़नेसे होती है। शङ्ख आदि हड्डीके पात्रोंकी शुद्धि सींगके समान ही पीली सरसोंके लेपसे होती है। गोंद, गुड, नमक, कुसुम्भके फूल, ऊन और कपासकी शुद्धि धूपमें सुखानेसे होती है। नदीका जल सदा शुद्ध रहता है। बाजारमें बेचनेके लिये फैलायी हुई वस्तु भी शुद्ध मानी गयी है॥ ६—९॥

गौके मुँहको छोड़कर अन्य सभी अङ्ग शुद्ध हैं। घोड़े और बकरेके मुँह शुद्ध माने गये हैं। स्त्रियोंका मुख सदा शुद्ध है। दूध दुहनेके समय बछड़ोंका, पेड़से फल गिराते समय पक्षियोंका और शिकार खेलते समय कुत्तोंका मुँह भी शुद्ध माना गया है। भोजन करने, थूकने, सोने, पानी पीने, नहाने, सड़कपर घूमने और वस्त्र पहननेके बाद अवश्य आचमन करना चाहिये। बिलाव घूमने-फिरनेसे ही शुद्ध होता है। रजस्वला स्त्री चौथे दिन शुद्ध होती है। ऋतुस्नाता स्त्री पाँचवें दिन देवता और पितरोंके पूजनकार्यमें सम्मिलित होने योग्य होती है। शौचके बाद पाँच बार गुदामें, दस बार बायें हाथमें, फिर सात बार दोनों हाथोंमें, एक बार लिङ्गमें तथा पुनः दो-तीन बार हाथोंमें मिट्टी लगाकर धोना चाहिये। यह गृहस्थोंके लिये शौचका विधान है। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी और संन्यासियोंके लिये गृहस्थकी अपेक्षा चौगुने शौचका विधान किया गया है॥ १०—१४॥

टसरके कपड़ोंकी शुद्धि बेलके फलके गूदेसे होती है। अर्थात् उसे पानीमें घोलकर उसमें वस्त्रको डुबो दे और फिर साफ पानीसे धो दे। तीसी एवं सन आदिके सूतसे बने हुए कपड़ोंकी शुद्धिके लिये अर्थात् उनमें लगे हुए तेल आदिके

दागको छुड़ानेके लिये पीली सरसोंके चूर्ण या उबटनसे मिश्रित जलके द्वारा धोना चाहिये। मृगचर्म या मृगके रोमोंसे बने हुए आसन आदिकी शुद्धि उसपर जलका छींटा देने मात्रसे बतायी गयी है। फूलों और फलोंकी भी उनपर जल छिड़कने मात्रसे पूर्णतः शुद्धि हो जाती है॥ १५-१६॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'द्रव्य-शुद्धिका वर्णन' नामक एक सौ छप्पनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १५६॥

एक सौ सत्तावनवाँ अध्याय

मरणाशौच तथा पिण्डदान एवं दाह-संस्कारकालिक कर्तव्यका कथन

पुष्कर कहते हैं— अब मैं 'प्रेतशुद्धि' तथा 'सूतिकाशुद्धि'का वर्णन करूँगा। सपिण्डोंमें अर्थात् मूल पुरुषकी सातवीं पीढ़ीतककी संतानोंमें मरणाशौच दस दिनतक रहता है। जननाशौच भी इतने ही दिनतक रहता है। परशुरामजी! यह ब्राह्मणोंके लिये अशौचकी बात बतलायी गयी। क्षत्रिय बारह दिनोंमें, वैश्य पंद्रह दिनोंमें तथा शूद्र एक मासमें शुद्ध होता है। यहाँ उस शूद्रके लिये कहा गया है, जो अनुलोमज हो अर्थात् जिसका जन्म उच्च जातीय अथवा सजातीय पितासे हुआ हो। स्वामीको अपने घरमें जितने दिनका अशौच लगता है, सेवकको भी उतने ही दिनोंका लगता है। क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रोंका भी जननाशौच दस दिनका ही होता है॥ १—३॥

परशुरामजी! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र इसी क्रमसे शुद्ध होते हैं। (किसी-किसीके मतमें) वैश्य तथा शूद्रके जननाशौचकी निवृत्ति पंद्रह दिनोंमें होती है। यदि बालक दाँत निकलनेके पहले ही मर जाय तो उसके जननाशौचकी सद्यःशुद्धि मानी गयी है। दाँत निकलनेके बाद चूडाकरणसे पहलेतककी मृत्युमें एक रातका अशौच होता है, यज्ञोपवीतके पहलेतक तीन रातका तथा उसके बाद दस रातका अशौच बताया गया है। तीन वर्षसे कमका शूद्र-बालक यदि मृत्युको प्राप्त हो तो पाँच दिनोंके बाद उसके अशौचकी निवृत्ति होती है। तीन वर्षके बाद मृत्यु होनेपर बारह दिन बाद शुद्धि होती है तथा छः वर्ष व्यतीत होनेके पश्चात् उसके मरणका अशौच एक मासके बाद निवृत्त होता है। कन्याओंमें जिनका मुण्डन नहीं हुआ है, उनके मरणाशौचकी शुद्धि एक रातमें होनेवाली मानी गयी है और जिनका मुण्डन हो चुका है, उनकी मृत्यु होनेपर उनके बन्धु-बान्धव तीन दिन बाद शुद्ध होते हैं॥ ४—८॥

जिन कन्याओंका विवाह हो चुका है, उनकी मृत्युका अशौच पितृकुलको नहीं प्राप्त होता। जो स्त्रियाँ पिताके घरमें संतानको जन्म देती हैं, उनके उस जननाशौचकी शुद्धि एक रातमें होती है। किंतु स्वयं सूतिका दस रातमें ही शुद्ध होती है, इसके पहले नहीं। यदि विवाहित कन्या पिताके घरमें मृत्युको प्राप्त हो जाय तो उसके बन्धु-बान्धव निश्चय ही तीन रातमें शुद्ध हो जाते हैं। समान अशौचको पहले निवृत्त करना चाहिये और असमान अशौचको बादमें। ऐसा ही धर्मराजका वचन है। परदेशमें रहनेवाला पुरुष यदि अपने कुलमें किसीके जन्म या मरण होनेका समाचार सुने तो दस रातमें जितना समय शेष हो, उतने ही समयतक उसे अशौच लगता है। यदि दस दिन व्यतीत होनेपर उसे उक्त समाचारका ज्ञान हो, तो वह तीन राततक अशौचयुक्त रहता है तथा यदि एक वर्ष व्यतीत होनेके बाद उपर्युक्त बातोंकी जानकारी हो तो केवल स्नानमात्रसे

शुद्धि हो जाती है। नाना और आचार्यके मरनेपर भी तीन राततक अशौच रहता है॥ ९—१४॥

परशुरामजी! यदि स्त्रीका गर्भ गिर जाय तो जितने मासका गर्भ गिरा हो, उतनी रातें बीतनेपर उस स्त्रीकी शुद्धि होती है। सपिण्ड ब्राह्मण-कुलमें मरणाशौच होनेपर उस कुलके सभी लोग सामान्यरूपसे दस दिनमें शुद्ध हो जाते हैं। क्षत्रिय बारह दिनमें, वैश्य पंद्रह दिनमें और शूद्र एक मासमें शुद्ध होते हैं। (प्रेत या पितरोंके श्राद्धमें उन्हें आसन देनेसे लेकर अर्घ्यदानतकके कर्म करके उनके पूजनके पश्चात् जब परिवेषण होता है, तब सपात्रक कर्ममें वहाँ ब्राह्मण भोजन कराया जाता है। ये ब्राह्मण पितरोंके प्रतिनिधि होते हैं। अपात्रक कर्ममें ब्राह्मणोंका प्रत्यक्ष भोजन नहीं होता तो भी पितर सूक्ष्मरूपसे उस अन्नको ग्रहण करते हैं। उनके भोजनके बाद वह स्थान उच्छिष्ट समझा जाता है;) उस उच्छिष्टके निकट ही वेदी बनाकर, उसका संस्कार करके, उसके ऊपर कुश बिछाकर उन कुशोंपर ही पिण्ड निवेदन करे। उस समय एकाग्रचित्त हो, प्रेत अथवा पितरके नाम-गोत्रका उच्चारण करके ही उनके लिये पिण्ड अर्पित करे॥ १५—१७॥

जब ब्राह्मण लोग भोजन कर लें और धनसे उनका सत्कार या पूजन कर दिया जाय, तब नाम-गोत्रके उच्चारणपूर्वक उनके लिये अक्षत-जल छोड़े जायँ। तदनन्तर चार अङ्गुल चौड़ा, उतना ही गहरा तथा एक बित्तेका लंबा एक गड्ढा खोदा जाय। परशुराम! वहाँ तीन 'विकर्षु' (सूखे कंडोंके रखनेके स्थान) बनाये जायँ और उनके समीप तीन जगह अग्नि प्रज्वलित की जाय। उनमें क्रमशः **'सोमाय स्वाहा'**, **'वह्नये स्वाहा'** तथा **'यमाय स्वाहा'** मन्त्र बोलकर सोम, अग्नि तथा यमके लिये संक्षेपसे चार-चार या तीन-तीन आहुतियाँ दे। सभी वेदियोंपर सम्यग् विधिसे आहुति देनी चाहिये। फिर वहाँ पहलेकी ही भाँति पृथक्-पृथक् पिण्ड-दान करे॥ १८—२१॥

अन्न, दही, मधु तथा उड़दसे पिण्डकी पूर्ति करनी चाहिये। यदि वर्षके भीतर अधिक मास हो जाय तो उसके लिये एक पिण्ड अधिक देना चाहिये। अथवा बारहों मासके सारे मासिक श्राद्ध द्वादशाहके दिन ही पूरे कर दिये जायँ। यदि वर्षके भीतर अधिक मासकी सम्भावना हो तो द्वादशाह श्राद्धके दिन ही उस अधिमासके निमित्त एक पिण्ड अधिक दे दिया जाय। संवत्सर पूर्ण हो जानेपर श्राद्धको सामान्य श्राद्धकी ही भाँति सम्पादित करे॥ २२—२४॥

सपिण्डीकरण श्राद्धमें प्रेतको अलग पिण्ड देकर बादमें उसीकी तीन पीढ़ियोंके पितरोंको तीन पिण्ड प्रदान करने चाहिये। इस तरह इन चारों पिण्डोंको बड़ी एकाग्रताके साथ अर्पित करना चाहिये। भृगुनन्दन! पिण्डोंका पूजन और दान करके **'पृथिवी ते पात्रम्०'**, **'ये समानाः०'** इत्यादि मन्त्रोंके पाठपूर्वक यथोचित कार्य सम्पादन करते हुए प्रेत-पिण्डके तीन टुकड़ोंको क्रमशः पिता, पितामह और प्रपितामहके पिण्डोंमें जोड़ दे। इससे पहले इसी तरह प्रेतके अर्घ्यपात्रका पिता आदिके अर्घ्यपात्रोंमें मेलन करना चाहिये। पिण्डमेलन और पात्रमेलनका यह कर्म पृथक्-पृथक् करना उचित है। शूद्रका यह श्राद्धकर्म मन्त्ररहित करनेका विधान है। स्त्रियोंका सपिण्डीकरण श्राद्ध भी उस समय इसी प्रकार (पूर्वोक्त रीतिसे) करना चाहिये॥ २५—२८॥

पितरोंका श्राद्ध प्रतिवर्ष करना चाहिये; किंतु प्रेतके लिये सान्नोदक कुम्भदान एक वर्षतक करे। वर्षाकालमें गङ्गाजीकी सिकताधाराकी सम्भव है गणना हो जाय, किंतु अतीत पितरोंकी गणना कदापि सम्भव नहीं है। काल निरन्तर गतिशील है, उसमें कभी स्थिरता नहीं आती; इसलिये कर्म अवश्य करे। प्रेत पुरुष देवत्वको प्राप्त हुआ हो या यातनास्थान (नरक)-में पड़ा हो, वह किये गये

श्राद्धको वहाँ अवश्य पाता है। इसलिये मनुष्य प्रेतके लिये अथवा अपने लिये शोक न करते हुए ही उपकार (श्राद्धादि कर्म) करे॥ २९—३१॥

जो लोग पर्वतसे कूदकर, आगमें जलकर, गलेमें फाँसी लगाकर या पानीमें डूबकर मरते हैं, ऐसे आत्मघाती और पतित मनुष्योंके मरनेका अशौच नहीं लगता है। जो बिजली गिरनेसे या युद्धमें अस्त्रोंके आघातसे मरते हैं, उनके लिये भी यही बात है। यति (संन्यासी), व्रती, ब्रह्मचारी, राजा, कारीगर और यज्ञदीक्षित पुरुष तथा जो राजाकी आज्ञाका पालन करनेवाले हैं; ऐसे लोगोंको भी अशौच नहीं प्राप्त होता है। ये यदि प्रेतकी शवयात्रामें गये हों तो भी स्नानमात्र कर लें। इतनेसे ही उनकी शुद्धि हो जाती है। मैथुन करनेपर और जलते हुए शवका धुआँ लग जानेपर तत्काल स्नानका विधान है। मरे हुए ब्राह्मणके शवको शूद्रद्वारा किसी तरह भी न उठवाया जाय। इसी तरह शूद्रके शवको भी ब्राह्मणद्वारा कदापि न उठवाये; क्योंकि वैसा करनेपर दोनोंको ही दोष लगता है। अनाथ ब्राह्मणके शवको ढोकर अन्त्येष्टिकर्मके लिये ले जानेपर मनुष्य स्वर्गलोकका भागी होता है॥ ३२—३५॥

अनाथ प्रेतका दाह करनेके लिये काष्ठ या लकड़ी देनेवाला मानव संग्राममें विजय पाता है। अपने प्रेत-बन्धुको चितापर स्थापित एवं दग्ध कर उस चिताकी अपसव्य परिक्रमा करके समस्त भाई-बन्धु सवस्त्र स्नान करें और प्रेतके निमित्त तीन-तीन बार जलाञ्जलि दें। घरके दरवाजेपर जाकर पत्थरपर पैर रखकर (हाथ-पैर धो लें), अग्निमें अक्षत छोड़ें तथा नीमकी पत्ती चबाकर घरके भीतर प्रवेश करें। वहाँ उस दिन सबसे अलग पृथ्वीपर चटाई आदि बिछाकर सोवें। जिस घरका शव जलाया गया हो, उस घरके लोग उस दिन खरीदकर मँगाया हुआ या स्वतः प्राप्त हुआ आहार ग्रहण करें। दस दिनोंतक प्रतिदिन एक-एकके हिसाबसे पिण्डदान करे। दसवें दिन एक पिण्ड देकर बाल बनवाकर मनुष्य शुद्ध होता है। दसवें दिन विद्वान् पुरुष सरसों और तिलका अनुलेप लगाकर जलाशयमें गोता लगाये और स्नानके पश्चात् दूसरा नूतन वस्त्र-धारण करे। जिस बालकके दाँत न निकले हों, उसके मरनेपर या गर्भस्राव होनेपर उसके लिये न तो दाह-संस्कार करे और न जलाञ्जलि दे। शवदाहके पश्चात् चौथे दिन अस्थिसंचय करे। अस्थिसंचयके पश्चात् अङ्गस्पर्शका विधान है॥ ३६—४२॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'मरणाशौचका वर्णन' नामक एक सौ सत्तावनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १५७॥

एक सौ अट्ठावनवाँ अध्याय

गर्भस्राव आदि सम्बन्धी अशौच

पुष्कर कहते हैं— अब मैं मनु आदि महर्षियोंके मतके अनुसार गर्भस्राव-जनित अशौचका वर्णन करूँगा। चौथे मासके स्राव तथा पाँचवें, छठे मासके गर्भपाततक यह नियम है कि जितने महीनेपर गर्भस्खलन हो, उतनी ही रात्रियोंके द्वारा अथवा तीन रात्रियोंके द्वारा स्त्रियोंकी शुद्धि होती है*। सातवें माससे दस दिनका अशौच होता है। (प्रथमसे तीसरे मासतकके गर्भस्रावमें

* मनुस्मृतिमें लिखा है—'रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्रावे विशुद्ध्यति।' (५। ६६) इसकी टीकामें कुल्लूकभट्टने कहा है—'तृतीयमासात्प्रभृति गर्भस्रावे गर्भमासतुल्याहोरात्रैश्चातुर्वर्ण्यस्त्री विशुद्ध्यति।—अर्थात् तीसरे महीनेसे लेकर गर्भस्राव होनेपर जितने महीनेका गर्भ हो, उतने

ब्राह्मणके लिये तीन राततक अशुद्धि रहती है।[१]) क्षत्रियके लिये चार रात्रि, वैश्यके लिये पाँच दिन तथा शूद्रके लिये आठ दिनतक अशौचका समय है। सातवें माससे अधिक होनेपर सबके लिये बारह दिनोंकी अशुद्धि होती है। यह अशौच केवल स्त्रियोंके लिये कहा गया है। तात्पर्य यह कि माता ही इतने दिनोंतक अशुद्ध रहती है। पिताकी शुद्धि तो स्नानमात्रसे हो जाती है[२] ॥ १—३ ॥

जो सपिण्ड पुरुष हैं, उन्हें छः मासतक सद्यः-शौच (तत्काल-शुद्धि) रहता है। उनके लिये स्नान भी आवश्यक नहीं है। किंतु सातवें और आठवें मासके गर्भपातमें सपिण्ड पुरुषोंको भी त्रिरात्र अशौच लगता है। जितने समयमें दाँत निकलते हैं, उतने मासतक यदि बालककी मृत्यु हो जाय तो सपिण्ड पुरुषोंको तत्काल शुद्धि प्राप्त होती है। चूडाकरणके पहले मृत्यु होनेपर उन्हें एक रातका अशौच लगता है। यज्ञोपवीतके पूर्व बालकका देहावसान होनेपर सपिण्डोंको तीन राततक अशौच प्राप्त होता है। इसके बाद मृत्यु होनेपर सपिण्ड पुरुषोंको दस रातका अशौच लगता है। दाँत निकलनेके पूर्व बालककी मृत्यु होनेपर माता-पिताको तीन रातका अशौच प्राप्त होता है। जिसका चूडाकरण न हुआ हो, उस बालककी मृत्यु होनेपर भी माता-पिताको उतने ही दिनोंका अशौच प्राप्त होता है। तीन वर्षसे कमकी आयुमें ब्राह्मण-बालककी मृत्यु हो (और चूडाकरण न हुआ हो) तो सपिण्डोंकी शुद्धि एक रातमें होती है[३] ॥ ४—६ ॥

क्षत्रिय-बालकके मरनेपर उसके सपिण्डोंकी शुद्धि दो दिनपर, वैश्य-बालकके मरनेसे उसके सपिण्डोंकी तीन दिनपर और शूद्र-बालककी मृत्यु हो तो उसके सपिण्डोंकी पाँच दिनपर शुद्धि होती है। शूद्र बालक यदि विवाहके पहले मृत्युको प्राप्त हो तो उसे बारह दिनका अशौच लगता है। जिस अवस्थामें ब्राह्मणको तीन रातका अशौच देखा जाता है, उसीमें शूद्रके लिये बारह दिनका अशौच लगता है; क्षत्रियके लिये छः दिन और वैश्यके लिये नौ दिनोंका अशौच लगता है। दो वर्षके बालकका अग्निद्वारा दाहसंस्कार नहीं होता। उसकी मृत्यु होनेपर उसे धरतीमें गाड़ देना चाहिये। उसके लिये बान्धवोंको उदक-क्रिया (जलाञ्जलि-दान) नहीं करनी चाहिये। अथवा जिसका नामकरण हो गया हो या जिसके

दिन-रातमें चारों वर्णोंकी स्त्रियाँ शुद्ध होती हैं।' कुल्लूकभट्टने यह नियम छः महीनेतकके लिये बताया है और इसकी पुष्टिमें आदिपुराणका निम्नाङ्कित श्लोक उद्धृत किया है—'षण्मासाभ्यन्तरं यावद् गर्भस्रावो भवेद् यदि। तदा माससमैस्तासां दिवसैः शुद्धिरिष्यते॥' मिताक्षराकारने स्मृतिवचनका उल्लेख करते हुए यह कहा है कि 'चौथे मासतक जो गर्भस्खलन होता है, वह 'स्राव' है और पाँचवें, छठे मासमें जो स्राव होता है, उसे 'पात' कहते हैं; इसके ऊपर 'प्रसव' कहलाता है। यथा—'आ चतुर्थाद् भवेत्स्रावः पातः पञ्चमषष्ठयोः। अत ऊर्ध्वं प्रसूतिः स्यात्।' गर्भस्रावे मासतुल्या निशाः' इत्यादि वचनद्वारा याज्ञवल्क्यजीने भी उपर्युक्त मतको ही व्यक्त किया है। त्रिरात्रका नियम तीन मासतक ही लागू होता है।

१. 'अत ऊर्ध्वं तु जात्युक्तमाशौचं तासु विद्यते।' (आदिपुराण) छठे मासके बादसे अर्थात् सातवें माससे स्त्रियोंको पूर्णजननाशौच (दस या बारह दिनका) लगता है। तीन मासके अंदर जो स्राव होता है, उसको 'अचिरस्राव' कहा गया है; उसमें मरीचिका मत इस प्रकार है—'गर्भस्रुत्यां यथामासमचिरे तूत्तमे त्रयः। राजन्ये तु चतू रात्रं वैश्ये पञ्चाहमेव च। अष्टाहेन तु शूद्रस्य शुद्धिरेषा प्रकीर्तिता।' इन श्लोकोंका भाव मूलके अनुवादमें आ गया है।

२. मरीचिके मतमें माताको मास-संख्याके अनुसार और पिता आदिको तीन दिनका अशौच होता है। यह अशौच केवल गर्भपातको लक्ष्य करके कहा गया है। जन्मसम्बन्धी सूतक तो पूरा ही लगता है। इसमें 'जातमृते मृतजाते वा सपिण्डानां दशाहम्।' यह 'हारीत-स्मृति' का वचन प्रमाण है।

३. 'नृणामकृतचूडानां विशुद्धिर्नैशिकी स्मृता।' (मनु० ५।६७)

दाँत निकल आये हों; उसका दाह-संस्कार तथा उसके निमित्त जलाञ्जलि-दान करना चाहिये।[१] उपनयनके पश्चात् बालककी मृत्यु हो तो दस दिनका अशौच लगता है। जो प्रतिदिन अग्निहोत्र तथा तीनों वेदोंका स्वाध्याय करता है, ऐसा ब्राह्मण एक दिनमें ही शुद्ध हो जाता है[२]। जो उससे हीन और हीनतर है, अर्थात् जो दो अथवा एक वेदका स्वाध्याय करनेवाला है, उसके लिये तीन एवं चार दिनमें शुद्ध होनेका विधान है। जो अग्निहोत्रकर्मसे रहित है, वह पाँच दिनमें शुद्ध होता है। जो केवल 'ब्राह्मण' नामधारी है (वेदाध्ययन या अग्निहोत्र नहीं करता), वह दस दिनमें शुद्ध होता है॥ ७—११॥

गुणवान् ब्राह्मण सात दिनपर शुद्ध होता है, गुणवान् क्षत्रिय नौ दिनमें, गुणवान् वैश्य दस दिनमें और गुणवान् शूद्र बीस दिनमें शुद्ध होता है। साधारण ब्राह्मण दस दिनमें, साधारण क्षत्रिय बारह दिनमें, साधारण वैश्य पंद्रह दिनमें और साधारण शूद्र एक मासमें शुद्ध होता है। गुणोंकी अधिकता होनेपर, यदि दस दिनका अशौच प्राप्त हो तो वह तीन ही दिनतक रहता है, तीन दिनोंतकका अशौच प्राप्त हो तो वह एक ही दिन रहता है तथा एक दिनका अशौच प्राप्त हो तो उसमें तत्काल ही शुद्धिका विधान है। इसी प्रकार सर्वत्र ऊहा कर लेनी चाहिये। दास, छात्र, भृत्य और शिष्य—ये यदि अपने स्वामी अथवा गुरुके साथ रहते हों तो गुरु अथवा स्वामीकी मृत्यु होनेपर इन सबको स्वामी एवं गुरुके कुटुम्बी-जनोंके समान ही पृथक्-पृथक् अशौच लगता है। जिसका अग्निसे संयोग न हो अर्थात् जो अग्निहोत्र न करता हो, उसे सपिण्ड पुरुषोंकी मृत्यु होनेके बाद ही तुरंत अशौच लगता है; परंतु जिसके द्वारा नित्य अग्निहोत्रका अनुष्ठान होता हो, उस पुरुषको किसी कुटुम्बी या जाति-बन्धुकी मृत्यु होनेपर जब उसका दाह-संस्कार सम्पन्न हो जाता है, उसके बाद अशौच प्राप्त होता है॥ १२—१६॥

सभी वर्णके लोगोंको अशौचका एक तिहाई समय बीत जानेपर शारीरिक स्पर्शका अधिकार प्राप्त हो जाता है। इस नियमके अनुसार ब्राह्मण आदि वर्ण क्रमशः तीन, चार, पाँच तथा दस दिनके अनन्तर स्पर्श करनेके योग्य हो जाते हैं। ब्राह्मण आदि वर्णोंका अस्थिसंचय क्रमशः चार, पाँच, सात तथा नौ दिनोंपर करना चाहिये॥ १७-१८॥

जिस कन्याका वाग्दान नहीं किया गया है (और चूडाकरण हो गया है), उसकी यदि वाग्दानसे पूर्व मृत्यु हो जाय तो बन्धु-बान्धवोंको एक दिनका अशौच लगता है। जिसका वाग्दान तो हो गया है, किंतु विवाह-संस्कार नहीं हुआ है, उस कन्याके मरनेपर तीन दिनका अशौच लगता है। यदि ब्याही हुई बहिन या पुत्री आदिकी मृत्यु हो तो दो दिन एक रातका अशौच लगता है। कुमारी कन्याओंका वही गोत्र है, जो पिताका है। जिनका विवाह हो गया है, उन कन्याओंका गोत्र वह है, जो उनके पतिका है। विवाह हो जानेपर कन्याकी मृत्यु हो तो उसके लिये जलाञ्जलि-दानका कर्तव्य पितापर भी लागू होता है; पतिपर तो है ही। तात्पर्य यह

१. यहाँ दो वर्षकी आयुवाले बालकके दाहसंस्कार तथा उसके निमित्त जलाञ्जलि-दानका निषेध भी मिलता है और विधान भी। अत: यह समझना चाहिये कि किया जाय तो उससे मृत जीवका उपकार होता है और न किया जाय तो भी बान्धवोंको कोई दोष नहीं लगता। (मनु० ५।७० की 'मन्वर्थ-मुक्तावली' टीका देखें।)

२. मनुकी प्राचीन पोथियोंमें इसी आशयका श्लोक था, जिसका उल्लेख प्रायश्चित्ताध्यायके आशौच-प्रकरणमें २८-२९ श्लोकोंकी मिताक्षरामें किया गया है। यह विधान केवल स्वाध्याय और अग्निहोत्रकी सिद्धिके लिये है। संध्यावन्दन और अन्न-भोजन आदिके योग्य शुद्धि तो दस दिनके बाद ही होती है। जैसा कि यम आदिका वचन है—'उभयत्र दशाहानि कुलस्यान्नं न भुज्यते।' इत्यादि।

कि विवाह होनेपर पिता और पति—दोनों कुलोंमें जलदानकी क्रिया प्राप्त होती है। यदि दस दिनोंके बाद और चूडाकरणके पहले कन्याकी मृत्यु हो तो माता-पिताको तीन दिनका अशौच लगता है और सपिण्ड पुरुषोंकी तत्काल ही शुद्धि होती है। चूडाकरणके बाद वाग्दानके पहलेतक उसकी मृत्यु होनेपर बन्धु-बान्धवोंको एक दिनका अशौच लगता है। वाग्दानके बाद विवाहके पहलेतक उन्हें तीन दिनका अशौच प्राप्त होता है। तत्पश्चात् उस कन्याके भतीजोंको दो दिन एक रातका अशौच लगता है; किंतु अन्य सपिण्ड पुरुषोंकी तत्काल शुद्धि हो जाती है। ब्राह्मण सजातीय पुरुषोंके यहाँ जन्म-मरणमें सम्मिलित हो तो दस दिनमें शुद्ध होता है और क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रके यहाँ जन्म-मृत्युमें सम्मिलित होनेपर क्रमशः छः, तीन तथा एक दिनमें शुद्ध होता है॥ १९—२३॥

यह जो अशौच-सम्बन्धी नियम निश्चित किया गया है, वह सपिण्ड पुरुषोंसे ही सम्बन्ध रखता है, ऐसा जानना चाहिये। अब जो औरस नहीं हैं, ऐसे पुत्र आदिके विषयमें बताऊँगा। औरस-भिन्न क्षेत्रज, दत्तक आदि पुत्रोंके मरनेपर तथा जिसने अपनेको छोड़कर दूसरे पुरुषसे सम्बन्ध जोड़ लिया हो अथवा जो दूसरे पतिको छोड़कर आयी हो और अपनी भार्या बनकर रहती रही हो, ऐसी स्त्रीके मरनेपर तीन रातमें अशौचकी निवृत्ति होती है। स्वधर्मका त्याग करनेके कारण जिनका जन्म व्यर्थ हो गया हो, जो वर्णसंकर संतान हो अर्थात् नीचवर्णके पुरुष और उच्चवर्णकी स्त्रीसे जिसका जन्म हुआ हो, जो संन्यासी बनकर इधर-उधर घूमते-फिरते रहे हों और जो अशास्त्रीय विधिसे विष-बन्धन आदिके द्वारा प्राणत्याग कर चुके हों, ऐसे लोगोंके निमित्त बान्धवोंको जलाञ्जलि-दान नहीं करना चाहिये; उनके लिये उदक-क्रिया निवृत्त हो जाती है। एक ही माताद्वारा दो पिताओंसे उत्पन्न जो दो भाई हों, उनके जन्ममें सपिण्ड पुरुषोंको एक दिनका अशौच लगता है और मरनेपर दो दिनका। यहाँतक सपिण्डोंका अशौच बताया गया। अब 'समानोदक'का बता रहा हूँ॥ २४—२७॥

दाँत निकलनेसे पहले बालककी मृत्यु हो जाय, कोई सपिण्ड पुरुष देशान्तरमें रहकर मरा हो और उसका समाचार सुना जाय तथा किसी असपिण्ड पुरुषकी मृत्यु हो जाय—तो इन सब अवस्थाओंमें (नियत अशौचका काल बिताकर) वस्त्रसहित जलमें डुबकी लगानेपर तत्काल ही शुद्धि हो जाती है। मृत्यु तथा जन्मके अवसरपर सपिण्ड पुरुष दस दिनोंमें शुद्ध होते हैं, एक कुलके असपिण्ड पुरुष तीन रातमें शुद्ध होते हैं और एक गोत्रवाले पुरुष स्नान करनेमात्रसे शुद्ध हो जाते हैं। सातवीं पीढ़ीमें सपिण्डभावकी निवृत्ति हो जाती है और चौदहवीं पीढ़ीतक समानोदक सम्बन्ध भी समाप्त हो जाता है। किसीके मतमें जन्म और नामका स्मरण न रहनेपर अर्थात् हमारे कुलमें अमुक पुरुष हुए थे, इस प्रकार जन्म और नाम दोनोंका ज्ञान न रहनेपर—समानोदकभाव निवृत्त हो जाता है। इसके बाद केवल गोत्रका सम्बन्ध रह जाता है। जो दशाह बीतनेके पहले परदेशमें रहनेवाले किसी जाति-बन्धुकी मृत्युका समाचार सुन लेता है, उसे दशाहमें जितने दिन शेष रहते हैं, उतने ही दिनका अशौच लगता है। दशाह बीत जानेपर उक्त समाचार सुने तो तीन रातका अशौच प्राप्त होता है॥ २८—३२॥

वर्ष बीत जानेपर उक्त समाचार ज्ञात हो तो जलका स्पर्श करके ही मनुष्य शुद्ध हो जाता है। मामा, शिष्य, ऋत्विक् तथा बान्धवजनोंके मरनेपर

एक दिन, एक रात और एक दिनका अशौच लगता है। मित्र, दामाद, पुत्रीके पुत्र, भानजे, साले और सालेके पुत्रके मरनेपर स्नानमात्र करनेका विधान है। नानी, आचार्य तथा नानाकी मृत्यु होनेपर तीन दिनका अशौच लगता है। दुर्भिक्ष (अकाल) पड़नेपर, समूचे राष्ट्रके ऊपर संकट आनेपर, आपत्ति-विपत्ति पड़नेपर तत्काल शुद्धि कही गयी है। यज्ञकर्ता, व्रतपरायण, ब्रह्मचारी, दाता तथा ब्रह्मवेत्ताकी तत्काल ही शुद्धि होती है। दान, यज्ञ, विवाह, युद्ध तथा देशव्यापी विप्लवके समय भी सद्यःशुद्धि ही बतायी गयी है। महामारी आदि उपद्रवमें मरे हुएका अशौच भी तत्काल ही निवृत्त हो जाता है। राजा, गौ तथा ब्राह्मणद्वारा मारे गये मनुष्योंकी और आत्मघाती पुरुषोंकी मृत्यु होनेपर भी तत्काल ही शुद्धि कही गयी है॥ ३३—३७॥

जो असाध्य रोगसे युक्त एवं स्वाध्यायमें भी असमर्थ है, उसके लिये भी तत्काल शुद्धिका ही विधान है। जिन महापापियोंके लिये अग्नि और जलमें प्रवेश कर जाना प्रायश्चित्त बताया गया है (उनका वह मरण आत्मघात नहीं है)। जो स्त्री अथवा पुरुष अपमान, क्रोध, स्नेह, तिरस्कार या भयके कारण गलेमें बन्धन (फाँसी) लगाकर किसी तरह प्राण त्याग देते हैं, उन्हें 'आत्मघाती' कहते हैं। वह आत्मघाती मनुष्य एक लाख वर्षतक अपवित्र नरकमें निवास करता है। जो अत्यन्त वृद्ध है, जिसे शौचाशौचका भी ज्ञान नहीं रह गया है, वह यदि प्राण त्याग करता है तो उसका अशौच तीन दिनतक ही रहता है। उसमें (प्रथम दिन दाह), दूसरे दिन अस्थिसंचय, तीसरे दिन जलदान तथा चौथे दिन श्राद्ध करना चाहिये। जो बिजली अथवा अग्निसे मरते हैं, उनके अशौचसे सपिण्ड पुरुषोंकी तीन दिनमें शुद्धि होती है। जो स्त्रियाँ पाखण्डका आश्रय लेनेवाली तथा पतिघातिनी हैं, उनकी मृत्युपर अशौच नहीं लगता और न उन्हें जलाञ्जलि पानेका ही अधिकार होता है। पिता-माता आदिकी मृत्यु होनेका समाचार एक वर्ष बीत जानेपर भी प्राप्त हो तो सवस्त्र स्नान करके उपवास करे और विधिपूर्वक प्रेतकार्य (जलदान आदि) सम्पन्न करे॥ ३८—४३॥

जो कोई पुरुष जिस किसी तरह भी असपिण्ड शवको उठाकर ले जाय, वह वस्त्रसहित स्नान करके अग्निका स्पर्श करे और घी खा ले, इससे उसकी शुद्धि हो जाती है। यदि उस कुटुम्बका वह अन्न खाता है तो दस दिनमें ही उसकी शुद्धि होती है। यदि मृतकके घरवालोंका अन्न न खाकर उनके घरमें निवास भी न करे तो उसकी एक ही दिनमें शुद्धि हो जायगी। जो द्विज अनाथ ब्राह्मणके शवको ढोते हैं, उन्हें पग-पगपर अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है और स्नान करनेमात्रसे उनकी शुद्धि हो जाती है। शूद्रके शवका अनुगमन करनेवाला ब्राह्मण तीन दिनपर शुद्ध होता है। मृतक व्यक्तिके बन्धु-बान्धवोंके साथ बैठकर शोक-प्रकाश या विलाप करनेवाला द्विज उस एक दिन और एक रातमें स्वेच्छासे दान और श्राद्ध आदिका त्याग करे। यदि अपने घरपर किसी शूद्रा स्त्रीके बालक पैदा हो या शूद्रका मरण हो जाय तो तीन दिनपर घरके बर्तन-भाँड़े निकाल फेंके और सारी भूमि लीप दे, तब शुद्धि होती है। सजातीय व्यक्तियोंके रहते हुए ब्राह्मण-शवको शूद्रके द्वारा न उठवाये। मुर्देको नहलाकर नूतन वस्त्रसे ढक दे और फूलोंसे उसका पूजन करके श्मशानकी ओर ले जाय। मुर्देको नंगे शरीर न जलाये। कफनका कुछ हिस्सा फाड़कर श्मशानवासीको दे देना चाहिये॥ ४४—५०॥

उस समय सगोत्र पुरुष शवको उठाकर

चितापर चढ़ावे। जो अग्निहोत्री हो, उसे विधिपूर्वक तीन अग्नियों (आहवनीय, गार्हपत्य और दाक्षिणाग्नि) द्वारा दग्ध करना चाहिये। जिसने अग्निकी स्थापना नहीं की हो, परंतु उपनयन-संस्कारसे युक्त हो, उसका एक अग्नि (आहवनीय) द्वारा दाह करना चाहिये तथा अन्य साधारण मनुष्योंका दाह लौकिक अग्निसे करना चाहिये।* **'अस्मात् त्वमभिजातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः। असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा।'** इस मन्त्रको पढ़कर पुत्र अपने पिताके शवके मुखमें अग्नि प्रदान करे। फिर प्रेतके नाम और गोत्रका उच्चारण करके बान्धवजन एक-एक बार जल-दान करें। इसी प्रकार नाना तथा आचार्यके मरनेपर भी उनके उद्देश्यसे जलाञ्जलिदान करना अनिवार्य है। परंतु मित्र, ब्याही हुई बेटी-बहन आदि, भानजे, श्वशुर तथा ऋत्विज्के लिये भी जलदान करना अपनी इच्छापर निर्भर है। पुत्र अपने पिताके लिये दस दिनोंतक प्रतिदिन **'अपो नः शोशुचद् अयम्'** इत्यादि पढ़कर जलाञ्जलि दे। ब्राह्मणको दस पिण्ड, क्षत्रियको बारह पिण्ड, वैश्यको पंद्रह पिण्ड और शूद्रको तीस पिण्ड देनेका विधान है। पुत्र हो या पुत्री अथवा और कोई, वह पुत्रकी भाँति मृत व्यक्तिको पिण्ड दे॥ ५१—५६॥

शवका दाह-संस्कार करके जब घर लौटे तो मनको वशमें रखकर द्वारपर खड़ा हो दाँतसे नीमकी पत्तियाँ चबाये। फिर आचमन करके अग्नि, जल, गोबर और पीली सरसोंका स्पर्श करे। तत्पश्चात् पहले पत्थरपर पैर रखकर धीरे-धीरे घरमें प्रवेश करे। उस दिनसे बन्धु-बान्धवोंको क्षार नमक नहीं खाना चाहिये, मांस त्याग देना चाहिये। सबको भूमिपर शयन करना चाहिये। वे स्नान करके खरीदनेसे प्राप्त हुए अन्नको खाकर रहें। जो प्रारम्भमें दाह-संस्कार करे, उसे दस दिनोंतक सब कार्य करना चाहिये। अन्य अधिकारी पुरुषोंके अभावमें ब्रह्मचारी ही पिण्डदान और जलाञ्जलि-दान करे। जैसे सपिण्डोंके लिये यह मरणाशौचकी प्राप्ति बतायी गयी है, उसी प्रकार जन्मके समय भी पूर्ण शुद्धिकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको अशौचकी प्राप्ति होती है। मरणाशौच तो सभी सपिण्ड पुरुषोंको समानरूपसे प्राप्त होता है; किंतु जननाशौचकी अस्पृश्यता विशेषतः माता-पिताको ही लगती है। इनमें भी माताको ही जन्मका विशेष अशौच लगता है, वही स्पर्शके अधिकारसे वञ्चित होती है। पिता तो स्नान करनेमात्रसे शुद्ध (स्पर्श करने योग्य) हो जाता है॥ ५७—६१॥

पुत्रका जन्म होनेके दिन निश्चय ही श्राद्ध करना चाहिये। वह दिन श्राद्ध-दान तथा गौ, सुवर्ण आदि और वस्त्रका दान करनेके लिये उपयुक्त माना गया है। मरणका अशौच मरणके साथ और सूतकका सूतकके साथ निवृत्त होता है। दोनोंमें जो पहला अशौच है, उसीके साथ दूसरेकी भी शुद्धि होती है। जन्माशौचमें मरणाशौच हो अथवा मरणाशौचमें जन्माशौच हो जाय तो मरणाशौचके अधिकारमें जन्माशौचको भी निवृत्त मानकर अपनी शुद्धिका कार्य करना चाहिये। जन्माशौचके साथ मरणाशौचकी निवृत्ति नहीं होती। यदि एक समान दो अशौच हों (अर्थात् जन्म-सूतकमें जन्म-सूतक और मरणाशौचमें मरणाशौच पड़ जाय) तो प्रथम अशौचके साथ दूसरेको भी समाप्त कर देना चाहिये और यदि असमान अशौच हो (अर्थात् जन्माशौचमें मरणाशौच और मरणाशौचमें जन्माशौच हो) तो द्वितीय

* देवल-स्मृतिमें लिखा है कि 'चाण्डालकी अग्नि, अपवित्र अग्नि, सूतिका-गृहकी अग्नि, पतितके घरकी अग्नि तथा चिताकी अग्नि—इन्हें शिष्ट पुरुषको नहीं ग्रहण करना चाहिये।' अतः लौकिक अग्नि लेते समय उपर्युक्त अग्नियोंको त्याग देना चाहिये। 'चाण्डालाग्निरमेध्याग्निः सूतिकाग्निश्च कर्हिचित्। पतिताग्निश्चिताग्निश्च न शिष्टग्रहणोचिताः॥'

अशौचके साथ प्रथमको निवृत्त करना चाहिये — ऐसा धर्मराजका कथन है। मरणाशौचके भीतर दूसरा मरणाशौच आनेपर वह पहले अशौचके साथ निवृत्त हो जाता है। गुरु अशौचसे लघु अशौच बाधित होता है; लघुसे गुरु अशौचका बाध नहीं होता। मृतक अथवा सूतकमें यदि अन्तिम रात्रिके मध्यभागमें दूसरा अशौच आ पड़े तो उस शेष समयमें ही उसकी भी निवृत्ति हो जानेके कारण सभी सपिण्ड पुरुष शुद्ध हो जाते हैं। यदि रात्रिके अन्तिम भागमें दूसरा अशौच आवे तो दो दिन अधिक बीतनेपर अशौचकी निवृत्ति होती है तथा यदि अन्तिम रात्रि बिताकर अन्तिम दिनके प्रात:काल अशौचान्तर प्राप्त हो तो तीन दिन और अधिक बीतनेपर सपिण्डोंकी शुद्धि होती है। दोनों ही प्रकारके अशौचोंमें दस दिनोंतक उस कुलका अन्न नहीं खाया जाता है। अशौचमें दान आदिका भी अधिकार नहीं रहता। अशौचमें किसीके यहाँ भोजन करनेपर प्रायश्चित्त करना चाहिये। अनजानमें भोजन करनेपर पातक नहीं लगता, जान-बूझकर खानेवालेको एक दिनका अशौच प्राप्त होता है॥ ६२—६९ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'जनन-मरणके अशौचका वर्णन' नामक एक सौ अट्ठावनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १५८ ॥

एक सौ उनसठवाँ अध्याय

असंस्कृत आदिकी शुद्धि

पुष्कर कहते हैं— मृतकका दाह-संस्कार हुआ हो या नहीं, यदि श्रीहरिका स्मरण किया जाय तो उससे उसको स्वर्ग और मोक्ष— दोनोंकी प्राप्ति हो सकती है।[1] मृतककी हड्डियोंको गङ्गाजीके जलमें डालनेसे उस प्रेत (मृत व्यक्ति)-का अभ्युदय होता है। मनुष्यकी हड्डी जबतक गङ्गाजीके जलमें स्थित रहती है, तबतक उसका स्वर्गलोकमें निवास होता है।[2] आत्मत्यागी तथा पतित मनुष्योंके लिये यद्यपि पिण्डोदक-क्रियाका विधान नहीं है तथापि गङ्गाजीके जलमें उनकी हड्डियोंका डालना भी उनके लिये हितकारक ही है। उनके उद्देश्यसे दिया हुआ अन्न और जल आकाशमें लीन हो जाता है। पतित प्रेतके प्रति महान् अनुग्रह करके उसके लिये 'नारायण-बलि' करनी चाहिये। इससे वह उस अनुग्रहका फल भोगता है। कमलके सदृश नेत्रवाले भगवान् नारायण अविनाशी हैं, अत: उन्हें जो कुछ अर्पण किया जाता है, उसका नाश नहीं होता। भगवान् जनार्दन जीवका पतनसे त्राण (उद्धार) करते हैं, इसलिये वे ही दानके सर्वोत्तम पात्र हैं॥ १—५ ॥

निश्चय ही नीचे गिरनेवाले जीवोंको भी भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले एकमात्र श्रीहरि ही हैं। 'सम्पूर्ण जगत्के लोग एक-न-एक दिन मरनेवाले हैं'—यह विचारकर सदा अपने सच्चे सहायक धर्मका अनुष्ठान करना चाहिये। पतिव्रता पत्नीको छोड़कर दूसरा कोई बन्धु-बान्धव मरकर भी मरे हुए मनुष्यके साथ नहीं जा सकता; क्योंकि यमलोकका मार्ग सबके लिये अलग-अलग है। जीव कहीं भी क्यों न जाय, एकमात्र धर्म ही उसके साथ जाता है। जो काम कल

---

१. 'संस्कृतस्यासंस्कृतस्य स्वर्गो मोक्षो हरिस्मृतेः।' (अग्नि० १५९।१)

'मरनेवाला मनुष्य मरनेके समय यदि भगवन्नामका उच्चारण या भगवत्स्मरण कर ले, तब तो उसे भगवत्प्राप्ति अवश्य होती है; परंतु यदि उसके उद्देश्यसे भगवत्स्मरण किया जाय तो उससे भी उसको स्वर्ग और मोक्ष सुलभ हो सकते हैं।'

२. 'गङ्गातोये नरस्यास्थि यावत्तावद् दिवि स्थितिः। ' (अग्नि० १५९।२)

करना है, उसे आज ही कर ले; जिसे दोपहर बाद करना है, उसे पहले ही पहरमें कर ले; क्योंकि मृत्यु इस बातकी प्रतीक्षा नहीं करती कि इसका कार्य पूरा हो गया है या नहीं? मनुष्य खेत-बारी, बाजार-हाट तथा घर-द्वारमें फँसा होता है, उसका मन अन्यत्र लगा होता है; इसी दशामें जैसे असावधान भेड़को सहसा भेड़िया आकर उठा ले जाय, वैसे ही मृत्यु उसे लेकर चल देती है। कालके लिये न तो कोई प्रिय है, न द्वेषका पात्र* ॥ ६—१० ॥

आयुष्य तथा प्रारब्धकर्म क्षीण होनेपर वह हठात् जीवको हर ले जाता है। जिसका काल नहीं आया है, वह सैकड़ों बाणोंसे घायल होनेपर भी नहीं मरता तथा जिसका काल आ पहुँचा है, वह कुशके अग्रभागसे ही छू जाय तो भी जीवित नहीं रहता। जो मृत्युसे ग्रस्त है, उसे औषध और मन्त्र आदि नहीं बचा सकते। जैसे बछड़ा गौओंके झुंडमें भी अपनी माँके पास पहुँच जाता है, उसी प्रकार पूर्वजन्मका किया हुआ कर्म जन्मान्तरमें भी कर्ताको अवश्य ही प्राप्त होता है। इस जगत्का आदि और अन्त अव्यक्त है, केवल मध्यकी अवस्था ही व्यक्त होती है। जैसे जीवके इस शरीरमें कुमार तथा यौवन आदि अवस्थाएँ क्रमशः आती रहती हैं, उसी प्रकार मृत्युके पश्चात् उसे दूसरे शरीरकी भी प्राप्ति होती है। जैसे मनुष्य (पुराने वस्त्रको त्यागकर) दूसरे नूतन वस्त्रको धारण करता है, उसी प्रकार जीव एक शरीरको छोड़कर दूसरेको ग्रहण करता है। देहधारी जीवात्मा सदा अवध्य है, वह कभी मरता नहीं; अतः मृत्युके लिये शोक त्याग देना चाहिये ॥ ११—१४ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'असंस्कृत आदिकी शुद्धिका वर्णन' नामक एक सौ उनसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५९ ॥

एक सौ साठवाँ अध्याय

वानप्रस्थ-आश्रम

पुष्कर कहते हैं— अब मैं वानप्रस्थ और संन्यासियोंके धर्मका जैसा वर्णन करता हूँ, सुनो। सिरपर जटा रखना, प्रतिदिन अग्निहोत्र करना, धरतीपर सोना और मृगचर्म धारण करना, वनमें रहना, फल, मूल, नीवार (तिन्नी) आदिसे जीवन-निर्वाह करना, कभी किसीसे कुछ भी दान न लेना, तीनों समय स्नान करना, ब्रह्मचर्यव्रतके पालनमें तत्पर रहना तथा देवता और अतिथियोंकी पूजा करना—यह सब वानप्रस्थीका धर्म है। गृहस्थ पुरुषको उचित है कि अपनी संतानकी संतान देखकर वनका आश्रय ले और आयुका तृतीय भाग वनवासमें ही बितावे। उस आश्रममें वह अकेला रहे या पत्नीके साथ भी रह सकता है। (परंतु दोनों ब्रह्मचर्यका पालन करें।) गर्मीके दिनोंमें पञ्चाग्निसेवन करे। वर्षाकालमें खुले आकाशके नीचे रहे। हेमन्त-ऋतुमें रातभर भीगे कपड़े ओढ़कर रहे। (अथवा जलमें रहे।) शक्ति रहते हुए वानप्रस्थीको इसी प्रकार उग्र तपस्या

---

* पततां भुक्तिमुक्त्यादिप्रद एको हरिर्ध्रुवम्। दृष्ट्वा लोकान् म्रियमाणान् सहायं धर्ममाचरेत्॥
मृतोऽपि बान्धवः शक्तो नानुगन्तुं नरं मृतम्। जायावर्जं हि सर्वस्य याम्यः पन्था विभिद्यते॥
धर्म एको व्रजत्येनं यत्रक्वचनगामिनम्। श्वःकार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चाऽऽपराह्णिकम्॥
न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतं वाऽस्य न वा कृतम्। क्षेत्रापणगृहासक्तमन्यत्रगतमानसम्॥
वृकीवोरणमासाद्य मृत्युरादाय गच्छति। न कालस्य प्रियः कश्चिद् द्वेष्यश्चास्य न विद्यते॥
(अग्नि० १५९। ६—१०)

करनी चाहिये। वानप्रस्थसे फिर गृहस्थ-आश्रममें न लौटे। विपरीत या कुटिल गतिका आश्रय न लेकर सामनेकी दिशाकी ओर जाय अर्थात् पीछे न लौटकर आगे बढ़ता रहे*॥ १—५॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'वानप्रस्थाश्रमका वर्णन' नामक एक सौ साठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १६०॥

एक सौ इकसठवाँ अध्याय

संन्यासीके धर्म

पुष्कर कहते हैं— अब मैं ज्ञान और मोक्ष आदिका साक्षात्कार करानेवाले संन्यास-धर्मका वर्णन करूँगा। आयुके चौथे भागमें पहुँचकर, सब प्रकारके सङ्गसे दूर हो संन्यासी हो जाय। जिस दिन वैराग्य हो, उसी दिन घर छोड़कर चल दे—संन्यास ले ले। प्राजापत्य इष्टि (यज्ञ) करके सर्वस्वकी दक्षिणा दे दे तथा आहवनीयादि अग्नियोंको अपने-आपमें आरोपित करके ब्राह्मण घरसे निकल जाय। संन्यासी सदा अकेला ही विचरे। भोजनके लिये ही गाँवमें जाय। शरीरके प्रति उपेक्षाभाव रखे। अन्न आदिका संग्रह न करे। मननशील रहे। ज्ञान-सम्पन्न होवे। कपाल (मिट्टी आदिका खप्पर) ही भोजनपात्र हो, वृक्षकी जड़ ही निवास-स्थान हो, लँगोटीके लिये मैला-कुचैला वस्त्र हो, साथमें कोई सहायक न हो तथा सबके प्रति समताका भाव हो—यह जीवन्मुक्त पुरुषका लक्षण है। न तो मरनेकी इच्छा करे, न जीनेकी—जीवन और मृत्युमेंसे किसीका अभिनन्दन न करे॥ १—५॥

जैसे सेवक अपने स्वामीकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करता है, उसी प्रकार वह प्रारब्धवश प्राप्त होनेवाले काल (अन्तसमय)-की प्रतीक्षा करता रहे। मार्गपर दृष्टिपात करके पाँव रखे अर्थात् रास्तेमें कोई कीड़ा-मकोड़ा, हड्डी, केश आदि तो नहीं है, यह भलीभाँति देखकर पैर रखे। पानीको कपड़ेसे छानकर पीये। सत्यसे पवित्र की हुई वाणी बोले। मनसे दोष-गुणका विचार करके कोई कार्य करे। लौकी, काठ, मिट्टी तथा बाँस—ये ही संन्यासीके पात्र हैं। जब गृहस्थके घरसे धूआँ निकलना बंद हो गया हो, मुसल रख दिया गया हो, आग बुझ गयी हो, घरके सब लोग भोजन कर चुके हों और जूँठे शराव (मिट्टीके प्याले) फेंक दिये गये हों, ऐसे समयमें संन्यासी प्रतिदिन भिक्षाके लिये जाय। भिक्षा पाँच प्रकारकी मानी गयी है—मधुकरी (अनेक घरोंसे थोड़ा-थोड़ा अन्न माँग लाना), असंक्लृप्त (जिसके विषयमें पहलेसे कोई संकल्प या निश्चय न हो, ऐसी भिक्षा), प्राक्प्रणीत (पहलेसे तैयार रखी हुई भिक्षा), अयाचित (बिना माँगे जो अन्न प्राप्त हो जाय, वह) और तत्काल उपलब्ध (भोजनके समय स्वतःप्राप्त)। अथवा करपात्री होकर रहे—अर्थात् हाथहीमें लेकर भोजन करे और हाथमें ही पानी पीये। दूसरे किसी पात्रका उपयोग न करे। पात्रसे अपने हाथरूपी पात्रमें भिक्षा लेकर उसका उपयोग करे। मनुष्योंकी कर्मदोषसे प्राप्त होनेवाली यमयातना और नरकपात आदि गतिका चिन्तन करे॥ ६—१०॥

जिस किसी भी आश्रममें स्थित रहकर मनुष्यको शुद्धभावसे आश्रमोचित धर्मका पालन करना चाहिये। सब भूतोंमें समान भाव रखे। केवल आश्रम-चिह्न धारण कर लेना ही धर्मका हेतु नहीं है (उस आश्रमके लिये विहित कर्तव्यका

* तात्पर्य यह कि पीछे गृहस्थकी ओर न लौटकर आगे संन्यासकी दिशामें बढ़ता चले।

पालन करनेसे ही धर्मका अनुष्ठान होता है)। निर्मलीका फल यद्यपि पानीमें पड़नेपर उसे स्वच्छ बनानेवाला है, तथापि केवल उसका नाम लेनेमात्रसे जल स्वच्छ नहीं हो जाता। इसी प्रकार आश्रमके लिङ्ग धारणमात्रसे लाभ नहीं होता, विहित धर्मका अनुष्ठान करना चाहिये। अज्ञानवश संसार-बन्धनमें बँधा हुआ द्विज लँगड़ा, लूला, अंधा और बहरा क्यों न हो, यदि कुटिलतारहित संन्यासी हो जाय तो वह सत् और असत्—सबसे मुक्त हो जाता है। संन्यासी दिन या रातमें बिना जाने जिन जीवोंकी हिंसा करता है, उनके वधरूप पापसे शुद्ध होनेके लिये वह स्नान करके छः बार प्राणायाम करे। यह शरीररूपी गृह हड्डीरूपी खंभोंसे युक्त है, नाडीरूप रस्सियोंसे बँधा हुआ है, मांस तथा रक्तसे लिपा हुआ और चमड़ेसे छाया गया है। यह मल और मूत्रसे भरा हुआ होनेके कारण अत्यन्त दुर्गन्धपूर्ण है। इसमें बुढ़ापा तथा शोक व्याप्त हैं। यह अनेक रोगोंका घर और भूख-प्याससे आतुर रहनेवाला है। इसमें रजोगुणका प्रभाव अधिक है। यह अनित्य—विनाशशील एवं पृथिवी आदि पाँच भूतोंका निवास-स्थान है; विद्वान् पुरुष इसे त्याग दे—अर्थात् ऐसा प्रयत्न करे, जिससे फिर देहके बन्धनमें न आना पड़े॥ ११—१६॥

धृति, क्षमा, दम (मनोनिग्रह), चोरी न करना, बाहर-भीतरसे पवित्र रहना, इन्द्रियोंको वशमें रखना, लज्जा*, विद्या, सत्य तथा अक्रोध (क्रोध न करना)—ये धर्मके दस लक्षण हैं। संन्यासी चार प्रकारके होते हैं—कुटीचक, बहूदक, हंस और परमहंस। इनमें जो-जो पिछला है, वह पहलेकी अपेक्षा उत्तम है। योगयुक्त संन्यासी पुरुष एकदण्डी हो या त्रिदण्डी, वह बन्धनसे मुक्त हो जाता है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरीका अभाव), ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह (संग्रह न रखना)—ये पाँच 'यम' हैं। शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरकी आराधना—ये पाँच 'नियम' हैं। योगयुक्त संन्यासीके लिये इन सबका पालन आवश्यक है। पद्मासन आदि आसनोंसे उसको बैठना चाहिये॥ १७—२०॥

प्राणायाम दो प्रकारका है—एक 'सगर्भ' और दूसरा 'अगर्भ'। मन्त्रजप और ध्यानसे युक्त प्राणायाम 'सगर्भ' कहलाता है और इसके विपरीत जप-ध्यानरहित प्राणायामको 'अगर्भ' कहते हैं। पूरक, कुम्भक तथा रेचकके भेदसे प्राणायाम तीन प्रकारका होता है। वायुको भीतर भरनेसे 'पूरक' प्राणायाम होता है, उसे स्थिरतापूर्वक रोकनेसे 'कुम्भक' होता है और फिर उस वायुको बाहर निकालनेसे 'रेचक' प्राणायाम कहा गया है। मात्राभेदसे भी वह तीन प्रकारका है—बारह मात्राका, चौबीस मात्राका तथा छत्तीस मात्राका। इसमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ है। ताल या ह्रस्व अक्षरको 'मात्रा' कहते हैं। प्राणायाममें 'प्रणव' आदि मन्त्रका धीरे-धीरे जप करे। इन्द्रियोंके संयमको 'प्रत्याहार' कहा गया है। जप करनेवाले साधकोंद्वारा जो ईश्वरका चिन्तन किया जाता है, उसे 'ध्यान' कहते हैं; मनको धारण करनेका नाम 'धारणा' है; ब्रह्ममें स्थितिको 'समाधि' कहते हैं॥ २१—२४॥

'यह आत्मा परब्रह्म है; ब्रह्म—सत्य, ज्ञान और अनन्त है; ब्रह्म विज्ञानमय तथा आनन्दस्वरूप है; वह ब्रह्म तू है; वह ब्रह्म मैं हूँ; परब्रह्म परमात्मा प्रकाशस्वरूप है; वही आत्मा है, वासुदेव है, नित्यमुक्त है; वही 'ओ३म्' शब्दवाच्य सच्चिदानन्दघन ब्रह्म है; देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण और अहंकारसे रहित तथा जाग्रत्, स्वप्न एवं सुषुप्ति आदिसे मुक्त जो तुरीय तत्त्व है, वही

* मनुस्मृतिमें 'ह्रीः' के स्थानमें 'धीः' पाठ है। 'धी' का अर्थ है—शास्त्र आदिके तत्त्वका ज्ञान।

ब्रह्म है; वह नित्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वरूप है; सत्य, आनन्दमय तथा अद्वैतरूप है; सर्वत्र व्यापक, अविनाशी ज्योति:स्वरूप परब्रह्म ही श्रीहरि है और वह मैं हूँ; आदित्यमण्डलमें जो वह ज्योतिर्मय पुरुष है, वह अखण्ड प्रणववाच्य परमेश्वर मैं हूँ'—इस प्रकारका सहज बोध ही ब्रह्ममें स्थितिका सूचक है॥ २५—२८ $\frac{1}{2}$ ॥

जो सब प्रकारके आरम्भका त्यागी है—अर्थात् जो फलासक्ति एवं अहंकारपूर्वक किसी कर्मका आरम्भ नहीं करता—कर्तृत्वाभिमानसे शून्य होता है, दु:ख-सुखमें समान रहता है, सबके प्रति क्षमाभाव रखनेवाला एवं सहनशील होता है, वह भावशुद्ध ज्ञानी मनुष्य ब्रह्माण्डका भेदन करके साक्षात् ब्रह्म हो जाता है। यतिको चाहिये कि वह आषाढ़की पूर्णिमाको चातुर्मास्यव्रत प्रारम्भ करे। फिर कार्तिक शुक्ला नवमी आदि तिथियोंसे विचरण करे। ऋतुओंकी संधिके दिन मुण्डन करावे। संन्यासियोंके लिये ध्यान तथा प्राणायाम ही प्रायश्चित्त है॥ २९—३१ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'यतिधर्मका वर्णन' नामक एक सौ इकसठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १६१ ॥

एक सौ बासठवाँ अध्याय

धर्मशास्त्रका उपदेश

पुष्कर कहते हैं—मनु, विष्णु, याज्ञवल्क्य, हारीत, अत्रि, यम, अङ्गिरा, वसिष्ठ, दक्ष, संवर्त, शातातप, पराशर, आपस्तम्ब, उशना, व्यास, कात्यायन, बृहस्पति, गौतम, शङ्ख और लिखित—इन सबने धर्मका जैसा उपदेश किया है, वैसा ही मैं भी संक्षेपसे कहूँगा, सुनो। यह धर्म भोग और मोक्ष देनेवाला है। वैदिक कर्म दो प्रकारका है—एक 'प्रवृत्त' और दूसरा 'निवृत्त'। कामनायुक्त कर्मको 'प्रवृत्तकर्म' कहते हैं। ज्ञानपूर्वक निष्कामभावसे जो कर्म किया जाता है, उसका नाम 'निवृत्तकर्म' है। वेदाभ्यास, तप, ज्ञान, इन्द्रियसंयम, अहिंसा तथा गुरुसेवा—ये परम उत्तम कर्म नि:श्रेयस (मोक्षरूप कल्याण)-के साधक हैं। इन सबमें भी आत्मज्ञान सबसे उत्तम बताया गया है॥ १—५ ॥

वह सम्पूर्ण विद्याओंमें श्रेष्ठ है। उससे अमृतत्वकी प्राप्ति होती है। सम्पूर्ण भूतोंमें आत्माको और आत्मामें सम्पूर्ण भूतोंको समानभावसे देखते हुए जो आत्माका ही यजन (आराधन) करता है, वह स्वाराज्य—अर्थात् मोक्षको प्राप्त होता है। आत्मज्ञान तथा शम (मनोनिग्रह)-के लिये सदा यत्नशील रहना चाहिये। यह सामर्थ्य या अधिकार द्विजमात्रको—विशेषत: ब्राह्मणको प्राप्त है। जो वेद-शास्त्रके अर्थका तत्त्वज्ञ होकर जिस-किसी भी आश्रममें निवास करता है, वह इसी लोकमें रहते हुए ब्रह्मभावको प्राप्त हो जाता है। (यदि नया अन्न तैयार हो गया हो तो) श्रावण मासकी पूर्णिमाको अथवा श्रवणनक्षत्रसे युक्त दिनको अथवा हस्तनक्षत्रसे युक्त श्रावण शुक्ला पञ्चमीको अपनी शाखाके अनुकूल प्रचलित गृह्यसूत्रकी विधिके अनुसार वेदोंका नियमपूर्वक अध्ययन प्रारम्भ करे। यदि श्रावणमासमें नयी फसल तैयार न हो तो जब वह तैयार हो जाय तभी भाद्रपदमासमें श्रवणनक्षत्रयुक्त दिनको वेदोंका उपाकर्म करे। (और उस समयसे लेकर लगातार साढ़े चार मासतक वेदोंका अध्ययन चालू

रखे*।) फिर पौषमासमें रोहिणीनक्षत्रके दिन अथवा अष्टका तिथिको नगर या गाँवके बाहर जलके समीप अपने गृह्योक्त विधानसे वेदाध्ययनका उत्सर्ग (त्याग) करे। (यदि भाद्रपदमासमें वेदाध्ययन प्रारम्भ किया गया हो तो माघ शुक्ला प्रतिपदाको उत्सर्जन करना चाहिये—ऐसा मनुका (४।९७) कथन है।)॥ ६—१० $\frac{1}{2}$॥

शिष्य, ऋत्विज्, गुरु और बन्धुजन—इनकी मृत्यु होनेपर तीन दिनतक अध्ययन बंद रखना चाहिये। उपाकर्म (वेदाध्ययनका प्रारम्भ) और उत्सर्जन (अध्ययनकी समाप्ति) जिस दिन हो, उससे तीन दिनतक अध्ययन बंद रखना चाहिये। अपनी शाखाका अध्ययन करनेवाले विद्वान्की मृत्यु होनेपर भी तीन दिनोंतक अनध्याय रखना उचित है। संध्याकालमें, मेघकी गर्जना होनेपर, आकाशमें उत्पात-सूचक शब्द होनेपर, भूकम्प और उल्कापात होनेपर, मन्त्र-ब्राह्मणात्मक वेदकी समाप्ति होनेपर तथा आरण्यकका अध्ययन करनेपर एक दिन और एक रात अध्ययन बंद रखना चाहिये। पूर्णिमा, चतुर्दशी, अष्टमी तथा चन्द्रग्रहण-सूर्यग्रहणके दिन भी एक दिन-रातका अनध्याय रखना उचित है। दो ऋतुओंकी संधिमें आयी हुई प्रतिपदा तिथिको तथा श्राद्ध-भोजन एवं श्राद्धका प्रतिग्रह स्वीकार करनेपर भी एक दिन-रात अध्ययन बंद रखे। यदि स्वाध्याय करनेवालोंके बीचमें कोई पशु, मेढक, नेवला, कुत्ता, सर्प, बिलाव और चूहा आ जाय तो एक दिन-रातका अनध्याय होता है॥ ११—१४॥

जब इन्द्रध्वजकी पताका उतारी जाय, उस दिन तथा जब इन्द्रध्वज फहराया जाय, उस दिन भी पूरे दिन-रातका अनध्याय होना चाहिये। कुत्ता, सियार, गदहा, उल्लू, सामगान, बाँस तथा आर्त प्राणीका शब्द सुनायी देनेपर, अपवित्र वस्तु, मुर्दा, शूद्र, अन्त्यज, श्मशान और पतित मनुष्य—इनका सांनिध्य होनेपर, अशुभ ताराओंमें, बारंबार बिजली चमकने तथा बारंबार मेघ-गर्जना होनेपर तात्कालिक अनध्याय होता है। भोजन करके तथा गीले हाथ अध्ययन न करे। जलके भीतर, आधी रातके समय, अधिक आँधी चलनेपर भी अध्ययन बंद कर देना चाहिये। धूलकी वर्षा होनेपर, दिशाओंमें दाह होनेपर, दोनों संध्याओंके समय कुहासा पड़नेपर, चोर या राजा आदिका भय प्राप्त होनेपर तत्काल स्वाध्याय बंद कर देना चाहिये। दौड़ते समय अध्ययन न करे। किसी प्राणीपर प्राणबाधा उपस्थित होनेपर और अपने घर किसी श्रेष्ठ पुरुषके पधारनेपर भी अनध्याय रखना उचित है। गदहा, ऊँट, रथ आदि सवारी, हाथी, घोड़ा, नौका तथा वृक्ष आदिपर चढ़नेके समय और ऊसर या मरुभूमिमें स्थित होकर भी अध्ययन बंद रखना चाहिये। इन सैंतीस प्रकारके अनध्यायोंको तात्कालिक (केवल उसी समयके लिये आवश्यक) माना गया है॥ १५—१८॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'धर्मशास्त्रका वर्णन' नामक एक सौ बासठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १६२॥

एक सौ तिरसठवाँ अध्याय

श्राद्धकल्पका वर्णन

पुष्कर कहते हैं—परशुराम! अब मैं भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले श्राद्धकल्पका वर्णन करता हूँ, सावधान होकर श्रवण कीजिये। श्राद्धकर्ता पुरुष मन और इन्द्रियोंको वशमें रखकर, पवित्र हो, श्राद्धसे एक दिन पहले ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे। उन ब्राह्मणोंको भी

* मनुजीका कथन है—'युक्तश्छन्दांस्यधीयीत मासान् विप्रोऽर्धपञ्चमान्।' (मनु० ४।९५)

उसी समयसे मन, वाणी, शरीर तथा क्रियाद्वारा पूर्ण संयमशील रहना चाहिये। श्राद्धके दिन अपराह्णकालमें आये हुए ब्राह्मणोंका स्वागतपूर्वक पूजन करे। स्वयं हाथमें कुशकी पवित्री धारण किये रहे। जब ब्राह्मणलोग आचमन कर लें, तब उन्हें आसनपर बिठाये। देवकार्यमें अपनी शक्तिके अनुसार युग्म (दो, चार, छः आदि संख्यावाले) और श्राद्धमें अयुग्म (एक, तीन, पाँच आदि संख्यावाले) ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे। सब ओरसे घिरे हुए गोबर आदिसे लिपे-पुते पवित्र स्थानमें, जहाँ दक्षिण दिशाकी ओर भूमि कुछ नीची हो, श्राद्ध करना चाहिये। वैश्वदेव-श्राद्धमें दो ब्राह्मणोंको पूर्वाभिमुख बिठाये और पितृकार्यमें तीन ब्राह्मणोंको उत्तराभिमुख। अथवा दोनोंमें एक-एक ब्राह्मणको ही सम्मिलित करे। मातामहोंके श्राद्धमें भी ऐसा ही करना चाहिये। अर्थात् दो वैश्वदेव-श्राद्धमें और तीन मातामहादि-श्राद्धमें अथवा उभय पक्षमें एक-ही-एक ब्राह्मण रखे। वैश्वदेव-श्राद्धके लिये ब्राह्मणका हाथ धुलानेके निमित्त उसके हाथमें जल दे और आसनके लिये कुश दे। फिर ब्राह्मणसे पूछे—'मैं विश्वेदेवोंका आवाहन करना चाहता हूँ।' तब ब्राह्मण आज्ञा दें—'आवाहन करो।' इस प्रकार उनकी आज्ञा पाकर '**विश्वेदेवास आगत०**' (यजु० ७।३४) इत्यादि ऋचा पढ़कर विश्वेदेवोंका आवाहन करे। तब ब्राह्मणके समीपकी भूमिपर जौ बिखेरे। फिर पवित्रीयुक्त अर्घ्यपात्रमें '**शं नो देवी०**' (यजु० ३६।१२)—इस मन्त्रसे जल छोड़े। '**यवोऽसि०**'—इत्यादिसे जौ डाले। फिर बिना मन्त्रके ही गन्ध और पुष्प भी छोड़ दे। तत्पश्चात् '**या दिव्या आपः०**'—इस मन्त्रसे अर्घ्यको अभिमन्त्रित करके ब्राह्मणके हाथमें संकल्पपूर्वक अर्घ्य दे और कहे—'**अमुकश्राद्धे विश्वेदेवाः इदं वो हस्तार्घ्यं नमः।**'—यों कहकर वह अर्घ्यजल कुशयुक्त ब्राह्मणके हाथमें या कुशापर गिरा दे। तत्पश्चात् हाथ धोनेके लिये जल देकर क्रमशः गन्ध, पुष्प, धूप, दीप तथा आच्छादन-वस्त्र अर्पण करे। पुनः हस्त-शुद्धिके लिये जल दे। (विश्वेदेवोंको जो कुछ भी देना हो, वह सव्यभावसे उत्तराभिमुख होकर दे और पितरोंको प्रत्येक वस्तु अपसव्यभावसे दक्षिणाभिमुख होकर देनी चाहिये।) ॥ १—५½ ॥

वैश्वदेव-काण्डके अनन्तर यज्ञोपवीत अपसव्य करके पिता आदि तीनों पितरोंके लिये तीन द्विगुणभुग्न कुशोंको उनके आसनके लिये अप्रदक्षिण-क्रमसे दे। फिर पूर्ववत् ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर '**उशन्तस्त्वा०**' (यजु० १९।७०) इत्यादि मन्त्रसे पितरोंका आवाहन करके, '**आयन्तु नः०**' (यजु० १९।५८) इत्यादिका जप करे। '**अपहता असुरा रक्षाꣳसि वेदिषदः०**'—(यजु० २।२।८)'—यह मन्त्र पढ़कर सब ओर तिल बिखेरे। वैश्वदेवश्राद्धमें जो कार्य जौसे किया जाता है, वही पितृ-श्राद्धमें तिलसे करना चाहिये। अर्घ्य आदि पूर्ववत् करे। संस्रव (ब्राह्मणके हाथसे चूये हुए जल) पितृपात्रमें ग्रहण करके, भूमिपर दक्षिणाग्र कुश रखकर, उसके ऊपर उस पात्रको अधोमुख करके ढुलका दे और कहे—'**पितृभ्यः स्थानमसि।**' फिर उसके ऊपर अर्घ्यपात्र और पवित्र आदि रखकर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदि पितरोंको निवेदित करे। इसके बाद '**अग्नौकरण**' कर्म करे। घीसे तर किया हुआ अन्न लेकर ब्राह्मणोंसे पूछे—'**अग्नौ करिष्ये।**' (मैं अग्निमें इसकी आहुति दूँगा।) तब ब्राह्मण इसके लिये आज्ञा दें। इस प्रकार आज्ञा लेकर पितृ-यज्ञकी भाँति उस अन्नकी दो आहुति दे। [उस समय ये दो मन्त्र क्रमशः पढ़े—'**अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा नमः। सोमाय पितृमते स्वाहा नमः।**' (यजु० २।२९)] फिर होमशेष अन्नको एकाग्रचित्त

होकर यथाप्राप्त पात्रोंमें—विशेषतः चाँदीके पात्रोंमें परोसे। इस प्रकार अन्न परोसकर, **'पृथिवी ते पात्रं द्यौरपिधानं ब्राह्मणस्य मुखे०'** इत्यादि मन्त्र पढ़कर पात्रको अभिमन्त्रित करे। फिर **'इदं विष्णुः०'** (यजु० ५। १५) इत्यादि मन्त्रका उच्चारण करके अन्नमें ब्राह्मणके अँगूठेका स्पर्श कराये। तदनन्तर तीनों व्याहृतियोंसहित गायत्री-मन्त्र तथा **'मधुवाता०'** (यजु० १३। २७—२९)—इत्यादि तीन ऋचाओंका जप करे और ब्राह्मणोंसे कहे—'आप सुखपूर्वक अन्न ग्रहण करें।' फिर वे ब्राह्मण भी मौन होकर प्रसन्नतापूर्वक भोजन करें। (उस समय यजमान क्रोध और उतावलीको त्याग दे और) जबतक ब्राह्मणलोग पूर्णतया तृप्त न हो जायँ, तबतक पूछ-पूछकर प्रिय अन्न और हविष्य उन्हें परोसता रहे। उस समय पूर्वोक्त मन्त्रोंका तथा **'पावमानी'** आदि ऋचाओंका जप या पाठ करते रहना चाहिये। तत्पश्चात् अन्न लेकर ब्राह्मणोंसे पूछे—'क्या आप पूर्ण तृप्त हो गये?' ब्राह्मण कहें—'हाँ, हम तृप्त हो गये।' यजमान फिर पूछे 'शेष अन्नका क्या किया जाय?' ब्राह्मण कहें—'इष्टजनोंके साथ भोजन करो।' उनकी इस आज्ञाको 'बहुत अच्छा' कहकर स्वीकार करे। फिर हाथमें लिये हुए अन्नको ब्राह्मणोंके आगे उनकी जूठनके पास ही दक्षिणाग्र-कुश भूमिपर रखकर उन कुशोंपर तिल-जल छोड़कर रख दे। उस समय **'अग्निदग्धाश्च ये०'** इत्यादि मन्त्रका पाठ करे। फिर ब्राह्मणोंके हाथमें कुल्ला करनेके लिये एक-एक बार जल दे। फिर पिण्डके लिये तैयार किया हुआ सारा अन्न लेकर, दक्षिणाभिमुख हो, पितृयज्ञ-कल्पके अनुसार तिलसहित पिण्डदान करे। इसी प्रकार मातामह आदिके लिये पिण्ड दे। फिर ब्राह्मणोंके आचमनार्थ जल दे। तदनन्तर ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराये और उनके हाथमें जल देकर उनसे प्रार्थनापूर्वक कहे—"आपलोग **'अक्षय्यमस्तु'** कहें।" तब ब्राह्मण **'अक्षय्यम् अस्तु'** बोलें। इसके बाद उन्हें यथाशक्ति दक्षिणा देकर कहे—'अब मैं स्वधा-वाचन कराऊँगा।' ब्राह्मण कहें—'स्वधा-वाचन कराओ।' इस प्रकार उनकी आज्ञा पाकर 'पितरों और मातामहादिके लिये आप यह स्वधा-वाचन करें'—ऐसा कहे। तब ब्राह्मण बोलें—**'अस्तु स्वधा।'** इसके अनन्तर पृथ्वीपर जल सींचे और **'विश्वेदेवाः प्रीयन्ताम्।'**— यों कहे। ब्राह्मण भी इस वाक्यको दुहरायें—**'प्रीयन्तां विश्वेदेवाः'।** तदनन्तर ब्राह्मणोंकी आज्ञासे श्राद्धकर्ता निम्नाङ्कित मन्त्रका जप करे—

दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः संततिरेव च।
श्रद्धा च नो मा व्यगमद् बहुदेयं च नोऽस्त्विति॥

'मेरे दाता बढ़ें। वेद और संतति बढ़े। हमारी श्रद्धा कम न हो और हमारे पास दानके लिये बहुत धन हो।'

—यह कहकर ब्राह्मणोंसे नम्रतापूर्वक प्रियवचन बोले और उन्हें प्रणाम करके विसर्जन करे—**'वाजे वाजे०'** (यजु० ९। १८) इत्यादि ऋचाओंको पढ़कर प्रसन्नतापूर्वक पितरोंका विसर्जन करे। पहले पितरोंका, फिर विश्वेदेवोंका विसर्जन करना चाहिये। पहले जिस अर्घ्यपात्रमें संस्रवका जल डाला गया था, उस पितृ-पात्रको उतान करके ब्राह्मणोंको बिदा करना चाहिये। ग्रामकी सीमातक ब्राह्मणोंके पीछे-पीछे जाकर, उनके कहनेपर उनकी परिक्रमा करके लौटे और पितृसेवित श्राद्धान्नको इष्टजनोंके साथ भोजन करे। उस रात्रिमें यजमान और ब्राह्मण—दोनोंको ब्रह्मचारी रहना चाहिये॥ ६—२२॥

इसी प्रकार पुत्रजन्म और विवाहादि वृद्धिके अवसरोंपर प्रदक्षिणावृत्तिसे नान्दीमुख-पितरोंका यजन करे। दही और बेर मिले हुए अन्नका पिण्ड दे और तिलसे किये जानेवाले सब कार्य

जौसे करे। एकोद्दिष्टश्राद्ध बिना वैश्वदेवके होता है। उसमें एक ही अर्घ्यपात्र तथा एक ही पवित्रक दिया जाता है। इसमें आवाहन और अग्नौकरणकी क्रिया नहीं होती। सब कार्य जनेऊको अपसव्य रखकर किये जाते हैं। '**अक्षय्यमस्तु**' के स्थानमें '**उपतिष्ठताम्**' का प्रयोग करे। '**वाजे वाजे०**' इस मन्त्रसे ब्राह्मणका विसर्जन करते समय '**अभिरम्यताम्।**' कहे और ब्राह्मणलोग '**अभिरताः स्मः।**'— ऐसा उत्तर दें। सपिण्डीकरण-श्राद्धमें पूर्वोक्त विधिसे अर्घ्यसिद्धिके लिये गन्ध, जल और तिलसे युक्त चार अर्घ्यपात्र तैयार करे। (इनमेंसे तीन तो पितरोंके पात्र हैं और एक प्रेतका पात्र होता है।) इनमें प्रेतके पात्रका जल पितरोंके पात्रोंमें डाले। उस समय '**ये समाना०**' इत्यादि दो मन्त्रोंका उच्चारण करे। शेष क्रिया पूर्ववत् करे। यह सपिण्डीकरण और एकोद्दिष्टश्राद्ध माताके लिये भी करना चाहिये। जिसका सपिण्डीकरण-श्राद्ध वर्ष पूर्ण होनेसे पहले हो जाता है, उसके लिये एक वर्षतक ब्राह्मणको सान्नोदक कुम्भदान देते रहना चाहिये। एक वर्षतक प्रतिमास मृत्यु-तिथिको एकोद्दिष्ट करना चाहिये। फिर प्रत्येक वर्षमें एक बार क्षयाहतिथिको एकोद्दिष्ट करना उचित है। प्रथम एकोद्दिष्ट तो मरनेके बाद ग्यारहवें दिन किया जाता है। सभी श्राद्धोंमें पिण्डोंको गाय, बकरे अथवा लेनेकी इच्छावाले ब्राह्मणको दे देना चाहिये। अथवा उन्हें अग्निमें या अगाध जलमें डाल देना चाहिये। जबतक ब्राह्मणलोग भोजन करके वहाँसे उठ न जायँ, तबतक उच्छिष्ट स्थानपर झाड़ू न लगाये। श्राद्धमें हविष्यान्नके दानसे एक मासतक और खीर देनेसे एक वर्षतक पितरोंकी तृप्ति बनी रहती है। भाद्रपद कृष्णा त्रयोदशीको, विशेषतः मघा नक्षत्रका योग होनेपर जो कुछ पितरोंके निमित्त दिया जाता है, वह अक्षय होता है। एक चतुर्दशीको छोड़कर प्रतिपदासे अमावास्यातककी चौदह तिथियोंमें श्राद्धदान करनेवाला पुरुष क्रमशः इन चौदह फलोंको पाता है—रूपशीलयुक्त कन्या, बुद्धिमान् तथा रूपवान् दामाद, पशु, श्रेष्ठ पुत्र, द्यूत-विजय, खेतीमें लाभ, व्यापारमें लाभ, दो खुर और एक खुरवाले पशु, ब्रह्मतेजसे सम्पन्न पुत्र, सुवर्ण, रजत, कुप्यक (त्रपु-सीसा आदि), जातियोंमें श्रेष्ठता और सम्पूर्ण मनोरथ। जो लोग शस्त्रद्वारा मारे गये हों, उन्हींके लिये उस चतुर्दशी तिथिको श्राद्ध प्रदान किया जाता है। स्वर्ग, संतान, ओज, शौर्य, क्षेत्र, बल, पुत्र, श्रेष्ठता, सौभाग्य, समृद्धि, प्रधानता, शुभ, प्रवृत्त-चक्रता (अप्रतिहत शासन), वाणिज्य आदि, नीरोगता, यश, शोकहीनता, परम गति, धन, विद्या, चिकित्सामें सफलता, कुप्य (त्रपु-सीसा आदि), गौ, बकरी, भेड़, अश्व तथा आयु—इन सत्ताईस प्रकारके काम्य पदार्थोंको क्रमशः वही पाता है, जो कृत्तिकासे लेकर भरणीपर्यन्त प्रत्येक नक्षत्रमें विधिपूर्वक श्राद्ध करता है तथा आस्तिक, श्रद्धालु एवं मद-मात्सर्य आदि दोषोंसे रहित होता है। वसु, रुद्र और आदित्य—ये तीन प्रकारके पितर श्राद्धके देवता हैं। ये श्राद्धसे संतुष्ट किये जानेपर मनुष्योंके पितरोंको तृप्त करते हैं। जब पितर तृप्त होते हैं, तब वे मनुष्योंको आयु, प्रजा, धन, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष, सुख तथा राज्य प्रदान करते हैं॥ २३—४२॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'श्राद्धकल्पका वर्णन' नामक
एक सौ तिरसठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १६३॥

एक सौ चौंसठवाँ अध्याय

नवग्रह-सम्बन्धी हवनका वर्णन

पुष्कर कहते हैं— परशुरामजी! लक्ष्मी, शान्ति, पुष्टि, वृद्धि तथा आयुकी इच्छा रखनेवाले वीर्यवान् पुरुषको ग्रहोंकी भी पूजा करनी चाहिये। सूर्य, सोम, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु तथा केतु—इन नवग्रहोंकी क्रमशः स्थापना करनी चाहिये। सूर्यकी प्रतिमा ताँबेसे, चन्द्रमाकी रजत (या स्फटिकसे), मङ्गलकी लाल चन्दनसे, बुधकी सुवर्णसे, गुरुकी सुवर्णसे, शुक्रकी रजतसे, शनिकी लोहेसे तथा राहु-केतुकी सीसेसे बनाये; इससे शुभकी प्राप्ति होती है। अथवा वस्त्रपर उन-उनके रंगके अनुसार वर्णकसे उनका चित्र अङ्कित कर लेना चाहिये। अथवा मण्डल बनाकर उनमें गन्ध (चन्दन-कुङ्कुम आदि)-से ग्रहोंकी आकृति बना ले। ग्रहोंके रंगके अनुसार ही उन्हें फूल और वस्त्र भी देने चाहिये। सबके लिये गन्ध, बलि, धूप और गुग्गुल देना चाहिये। प्रत्येक ग्रहके लिये (अग्निस्थापनपूर्वक) समन्त्रक चरुका होम करना चाहिये। '**आकृष्णेन रजसा०**' (यजु० ३३।४३) इत्यादि सूर्य देवताके, '**इमं देवाः०**' (यजु० ९।४०; १०।१८) इत्यादि चन्द्रमाके, '**अग्निमूर्धा दिवः ककुत्०**' (यजु० १३।१४) इत्यादि मङ्गलके, **उद्बुध्यस्व०** (यजु० १५।५४; १८।६१) इत्यादि बुधके, '**बृहस्पते अदित यदिर्यः०**' (यजु० २६।३) इत्यादि बृहस्पतिके, '**अन्नात्परिश्रुतो०**' (यजु० १९।७५) इत्यादि शुक्रके, '**शं नो देवीः०**' (यजु० ३६।१२) इत्यादि शनैश्चरके, '**काण्डात् काण्डात्०**' (यजु० १३।२०) इत्यादि राहुके और '**केतुं कृण्वन्नकेतवे०**' (यजु० २९।३७) इत्यादि केतुके मन्त्र हैं। आक, पलास, खैर, अपामार्ग, पीपल, गूलर, शमी, दूर्वा और कुशा—ये क्रमशः सूर्य आदि ग्रहोंकी समिधाएँ हैं। सूर्य आदि ग्रहोंमेंसे प्रत्येकके लिये एक सौ आठ या अट्ठाईस बार मधु, घी, दही अथवा खीरकी आहुति देनी चाहिये। गुड़ मिलाया हुआ भात, खीर, हविष्य (मुनि-अन्न), दूध मिलाया हुआ साठीके चावलका भात, दही-भात, घी-भात, तिलचूर्णमिश्रित भात, माष (उड़द) मिलाया हुआ भात और खिचड़ी—इनका ग्रहके क्रमानुसार विद्वान् पुरुष ब्राह्मणके लिये भोजन दे। अपनी शक्तिके अनुसार यथाप्राप्त वस्तुओंसे ब्राह्मणका विधिपूर्वक सत्कार करके उनके लिये क्रमशः धेनु, शङ्ख, बैल, सुवर्ण, वस्त्र, अश्व, काली गौ, लोहा और बकरा—ये वस्तुएँ दक्षिणामें दे। ये ग्रहोंकी दक्षिणाएँ बतायी गयी हैं। जिस-जिस पुरुषके लिये जो ग्रह अष्टम आदि दुष्ट स्थानोंमें स्थित हों, वह पुरुष उस ग्रहकी उस समय विशेष यत्नपूर्वक पूजा करे। ब्रह्माजीने इन ग्रहोंको वर दिया है कि जो तुम्हारी पूजा करें, उनकी तुम भी पूजा (मनोरथपूर्तिपूर्वक सम्मान) करना। राजाओंके धन और जातिका उत्कर्ष तथा जगत्की जन्म-मृत्यु भी ग्रहोंके ही अधीन है; अतः ग्रह सभीके लिये पूजनीय हैं॥ १—१४॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'नवग्रह-सम्बन्धी हवनका वर्णन' नामक एक सौ चौंसठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १६४॥

एक सौ पैंसठवाँ अध्याय
विभिन्न धर्मोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! हृदयमें जो सर्वसमर्थ परमात्मा दीपकके समान प्रकाशित होते हैं, मन, बुद्धि और स्मृतिसे अन्य समस्त विषयोंका अभाव करके उनका ध्यान करना चाहिये। उनका ध्यान करनेवाले ब्राह्मणको ही श्राद्धके निमित्त दही, घी और दूध आदि गव्य पदार्थ प्रदान करे। प्रियङ्गु, मसूर, बैगन और कोदोका भोजन न करावे। जब पर्व-संधिके समय राहु सूर्यको ग्रसता है, उस समय 'हस्तिच्छाया-योग' होता है, जिसमें किये हुए श्राद्ध और दान आदि शुभकर्म अक्षय होते हैं। जब चन्द्रमा मघा, हंस अथवा हस्त नक्षत्रपर स्थित हो, उसे 'वैवस्वती तिथि' कहते हैं। यह भी 'हस्तिच्छाया-योग' है। बलिवैश्वदेवमें अग्निमें होम करनेसे बचा हुआ अन्न बलिवैश्वदेवके मण्डलमें न डाले। अग्निके अभावमें वह अन्न ब्राह्मणके दाहिने हाथमें रखे। ब्राह्मण वेदोक्त कर्मसे तथा स्त्री व्यभिचारी पुरुषसे कभी दूषित नहीं होती। बलात्कारसे उपभोग की हुई और शत्रुके हाथमें पड़कर दूषित हुई स्त्रीका (ऋतुकाल-पर्यन्त) परित्याग करे। नारी ऋतु-दर्शन होनेपर शुद्ध हो जाती है। जो सम्पूर्ण विश्वमें व्याप्त एक आत्माके व्यतिरेकसे विश्वमें अभेदका दर्शन करता है, वही योगी, ब्रह्मके साथ एकीभावको प्राप्त, आत्मामें रमण करनेवाला और निष्पाप है। कुछ लोग इन्द्रियोंके विषयोंसे संयोगको ही 'योग' कहते हैं। उन मूर्खोंने तो अधर्मको ही धर्म मानकर ग्रहण कर रखा है। दूसरे लोग मन और आत्माके संयोगको ही 'योग' मानते हैं। मनको संसारके सब विषयोंसे हटाकर, क्षेत्रज्ञ परमात्मामें एकाकार करके योगी संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है। यह उत्तम 'योग' है। पाँच इन्द्रियरूपी कुटुम्बोंसे 'ग्राम' होता है। छठा मन उसका 'मुखिया' है। वह देवता, असुर और मनुष्योंसे नहीं जीता जा सकता। पाँचों इन्द्रियाँ बहिर्मुख हैं। उन्हें आभ्यन्तरमुखी बनाकर इन्द्रियोंको मनमें और मनको आत्मामें निरुद्ध करे। फिर समस्त भावनाओंसे शून्य क्षेत्रज्ञ आत्माको परब्रह्म परमात्मामें लगावे। यही ज्ञान और ध्यान है। इसके विषयमें और जो कुछ भी कहा गया है, वह तो ग्रन्थका विस्तार-मात्र है॥ १—१३॥

'जो सब लोगोंके अनुभवमें नहीं है, वह है'—यों कहनेपर विरुद्ध (असंगत)-सा प्रतीत होता है और कहनेपर वह अन्य मनुष्योंके हृदयमें नहीं बैठता। जिस प्रकार कुमारी स्त्री-सुखको स्वयं अनुभव करनेपर ही जान सकती है, उसी प्रकार वह ब्रह्म स्वतः अनुभव करनेयोग्य है। योगरहित पुरुष उसे उसी प्रकार नहीं जानता, जैसे जन्मान्ध मनुष्य घड़ेको। ब्राह्मणको संन्यास-ग्रहण करते देख सूर्य यह सोचकर अपने स्थानसे विचलित हो जाता है कि 'यह मेरे मण्डलका भेदन करके परब्रह्मको प्राप्त होगा।' उपवास, व्रत, स्नान, तीर्थ और तप—ये फलप्रद होते हैं, परंतु ये ब्राह्मणके द्वारा सम्पादित होनेपर सम्पन्न होते हैं और विहित फलकी प्राप्ति कराते हैं। 'प्रणव' परब्रह्म परमात्मा है, 'प्राणायाम' ही परम तप है और 'सावित्री'से बढ़कर कोई मन्त्र नहीं है। वह परम पावन माना गया है। पहले क्रमशः सोम, गन्धर्व और अग्नि—ये तीन देवता समस्त स्त्रियोंका उपभोग करते हैं। फिर मनुष्य उनका उपभोग करते हैं। इससे स्त्रियाँ किसीसे दूषित नहीं होती हैं। यदि असवर्ण पुरुष नारीकी योनिमें गर्भाधान करता है, तो जबतक नारी गर्भका प्रसव नहीं करती, तबतक अशुद्ध मानी

जाती है। गर्भका प्रसव होनेके बाद रजोदर्शन होनेपर नारी शुद्ध हो जाती है। श्रीहरिके ध्यानके समान पापियोंकी शुद्धि करनेवाला कोई प्रायश्चित्त नहीं है। चण्डालके यहाँ भोजन करके भी ध्यान करनेसे शुद्धि हो जाती है। जो ब्राह्मण ऐसी भावना करता है कि "आत्मा 'ध्याता' है, मन 'ध्यान' है, विष्णु 'ध्येय' हैं, श्रीहरि उससे प्राप्त होनेवाले 'फल' हैं और अक्षयत्वकी प्राप्तिके लिये उसका 'विसर्जन' है", वह श्राद्धमें पङ्क्ति-पावनोंको भी पवित्र करनेवाला है। जो द्विज नैष्ठिक धर्ममें आरूढ़ होकर उससे च्युत हो जाता है, उस आत्मघातीके लिये मैं ऐसा कोई प्रायश्चित्त नहीं देखता, जिससे कि वह शुद्ध हो सके। जो अपनी पत्नी और पुत्रोंका (असहायावस्थामें) परित्याग करके संन्यास ग्रहण करते हैं, वे दूसरे जन्ममें 'विदुर'-संज्ञक चण्डाल होते हैं, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। तदनन्तर वह क्रमशः सौ वर्षतक गीध, बारह वर्षतक कुत्ता, बीस वर्षतक जलपक्षी और दस वर्षतक शूकरयोनिका भोग करता है। फिर वह पुष्प और फलोंसे रहित कँटीला वृक्ष होता है और दावाग्निसे दग्ध होकर अपना अनुगमन करनेवालोंके साथ ठूँठ होता है और इस अवस्थामें एक हजार वर्षतक चेतनारहित होकर पड़ा रहता है। एक हजार वर्ष बीतनेके बाद वह ब्रह्मराक्षस होता है। तदनन्तर योगरूपी नौकाका आश्रय लेनेसे अथवा कुलके उत्सादनद्वारा उसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। इसलिये योगका ही सेवन करे; क्योंकि पापोंसे छुटकारा दिलानेके लिये दूसरा कोई भी मार्ग नहीं है॥ १४—२८॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'विभिन्न धर्मोंका वर्णन' नामक एक सौ पैंसठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १६५॥

एक सौ छाछठवाँ अध्याय

वर्णाश्रम-धर्म आदिका वर्णन

पुष्कर कहते हैं— अब मैं श्रौत और स्मार्त-धर्मका वर्णन करता हूँ। वह पाँच प्रकारका माना गया है। वर्णमात्रका आश्रय लेकर जो अधिकार प्रवृत्त होता है, उसे 'वर्ण-धर्म' जानना चाहिये। जैसे कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—इन तीनों वर्णोंके लिये उपनयन-संस्कार आवश्यक है। यह 'वर्ण-धर्म' कहलाता है। आश्रमका अवलम्बन लेकर जिस पदार्थका संविधान होता है, वह 'आश्रम-धर्म' कहा गया है। जैसे भिन्न-पिण्डादिकका विधान होता है। जो विधि दोनोंके निमित्तसे प्रवर्तित होती है, उसको 'नैमित्तिक' मानना चाहिये। जैसे प्रायश्चित्तका विधान होता है॥ १—३$\frac{1}{2}$॥

राजन्! ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी—इनसे सम्बन्धित धर्म 'आश्रम-धर्म' माना गया है। दूसरे प्रकारसे भी धर्मके पाँच भेद होते हैं। षाड्गुण्य (संधि-विग्रह आदि)-के अभिधानमें जिसकी प्रवृत्ति होती है, वह 'दृष्टार्थ' बतलाया गया है। उसके तीन भेद होते हैं। मन्त्र-यश-प्रभृति 'अदृष्टार्थ' हैं, ऐसा मनु आदि कहते हैं। इसके सिवा 'उभयार्थक व्यवहार', 'दण्डधारण' और 'तुल्यार्थ-विकल्प'—ये भी यज्ञमूलक धर्मके अङ्ग कहे गये हैं। वेदमें धर्मका जिस प्रकार प्रतिपादन किया गया है, स्मृतिमें भी वैसे ही है। कार्यके लिये स्मृति वेदोक्त धर्मका अनुवाद करती है—ऐसा मनु आदिका मत है। इसलिये स्मृतियोंमें उक्त धर्म वेदोक्त धर्मका

गुणार्थ, परिसंख्या, विशेषतः अनुवाद, विशेष दृष्टार्थ अथवा फलार्थ है, यह राजर्षि मनुका सिद्धान्त है॥ ४—८$\frac{१}{२}$॥

निम्नलिखित अड़तालीस संस्कारोंसे सम्पन्न मनुष्य ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है—(१) गर्भाधान, (२) पुंसवन, (३) सीमन्तोन्नयन, (४) जातकर्म, (५) नामकरण, (६) अन्नप्राशन, (७) चूडाकर्म, (८) उपनयन-संस्कार, (९—१२) चार वेदव्रत (वेदाध्ययन), (१३) स्नान (समावर्तन), (१४) सहधर्मिणी-संयोग (विवाह), (१५—१९) पञ्चयज्ञ—देवयज्ञ, पितृयज्ञ, मनुष्ययज्ञ, भूतयज्ञ तथा ब्रह्मयज्ञ, (२०—२६) सात पाक-यज्ञ-संस्था, (२७—३४) अष्टका—अष्टकासहित तीन पार्वण श्राद्ध, श्रावणी, आग्रहायणी, चैत्री और आश्वयुजी, (३५—४१) सात हविर्यज्ञ-संस्था—अग्न्याधेय, अग्निहोत्र, दर्श-पौर्णमास, चातुर्मास्य, आग्रहायणेष्टि, निरूढपशुबन्ध एवं सौत्रामणि, (४२—४८) सात सोम-संस्था—अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और आप्तोर्याम। आठ आत्मगुण हैं—दया, क्षमा, अनसूया, अनायास, माङ्गल्य, अकार्पण्य, अस्पृहा तथा शौच। जो इन गुणोंसे युक्त होता है, वह परमधाम (स्वर्ग)-को प्राप्त करता है॥ ९—१७$\frac{१}{२}$॥

मार्गगमन, मैथुन, मल-मूत्रोत्सर्ग, दन्तधावन, स्नान और भोजन—इन छः कार्योंको करते समय मौन धारण करना चाहिये। दान की हुई वस्तुका पुनः दान, पृथक्पाक, घृतके साथ जल पीना, दूधके साथ जल पीना, रात्रिमें जल पीना, दाँतसे नख आदि काटना एवं बहुत गरम जल पीना—इन सात बातोंका परित्याग कर देना चाहिये। स्नानके पश्चात् पुष्पचयन न करे; क्योंकि वे पुष्प देवताके चढ़ानेयोग्य नहीं माने गये हैं। यदि कोई अन्यगोत्रीय असम्बन्धी पुरुष किसी मृतकका अग्नि-संस्कार करता है तो उसे दस दिनतक पिण्ड तथा उदक-दानका कार्य भी पूर्ण करना चाहिये। जल, तृण, भस्म, द्वार एवं मार्ग—इनको बीचमें रखकर जानेसे पङ्क्तिदोष नहीं माना जाता। भोजनके पूर्व अनामिका और अङ्गुष्ठके संयोगसे पञ्चप्राणोंको आहुतियाँ देनी चाहिये॥ १८—२२॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'वर्णाश्रमधर्म आदिका वर्णन' नामक एक सौ छाछठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १६६॥

एक सौ सड़सठवाँ अध्याय
ग्रहोंके अयुत-लक्ष-कोटि हवनोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं— वसिष्ठ! अब मैं शान्ति, समृद्धि एवं विजय आदिकी प्राप्तिके निमित्त ग्रहयज्ञका पुनः वर्णन करता हूँ। ग्रहयज्ञ 'अयुतहोमात्मक', 'लक्षहोमात्मक' और 'कोटिहोमात्मक'के भेदसे तीन प्रकारका होता है। अग्निकुण्डसे ईशानकोणमें निर्मित वेदिकापर मण्डल (अष्टदलपद्म) बनाकर उसमें ग्रहोंका आवाहन करे। उत्तर दिशामें गुरु, ईशानकोणमें बुध, पूर्वदलमें शुक्र, आग्नेयमें चन्द्रमा, दक्षिणमें भौम, मध्यभागमें सूर्य, पश्चिममें शनि, नैर्ऋत्यमें राहु और वायव्यमें केतुको अङ्कित करे। शिव, पार्वती, कार्तिकेय, विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, यम, काल और चित्रगुप्त—ये 'अधिदेवता' कहे गये हैं। अग्नि, वरुण, भूमि, विष्णु, इन्द्र, शचीदेवी, प्रजापति, सर्प और ब्रह्मा—ये क्रमशः 'प्रत्यधिदेवता' हैं।* गणेश, दुर्गा, वायु, आकाश

* विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें शिव आदिको 'प्रत्यधिदेवता' और अरुण आदिको 'अधिदेवता' माना गया है। उक्त पुराणमें अग्निके स्थानपर अरुण 'अधिदेवता' माने गये हैं।

तथा अश्विनीकुमार—ये 'कर्म-साद्गुण्य-देवता' हैं। इन सबका वैदिक बीज-मन्त्रोंसे यजन करे। आक, पलाश, खदिर, अपामार्ग, पीपल, गूलर, शमी, दूर्वा तथा कुशा—ये क्रमशः नवग्रहोंकी समिधाएँ हैं। इनको मधु, घृत एवं दधिसे संयुक्त करके शतसंख्यामें आठ बार होम करना चाहिये। एक, आठ और चार कुम्भ पूर्ण करके पूर्णाहुति एवं वसुधारा दे। फिर ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे। यजमानका चार कलशोंके जलसे मन्त्रोच्चारणपूर्वक अभिषेक करे। (अभिषेकके समय यों कहना चाहिये—) 'ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर आदि देवता तुम्हारा अभिषेक करें। वासुदेव, जगन्नाथ, भगवान् संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध तुम्हें विजय प्रदान करें। देवराज इन्द्र, भगवान् अग्नि, यमराज, निर्ऋति, वरुण, पवन, धनाध्यक्ष कुबेर, शिव, ब्रह्मा, शेषनाग एवं समस्त दिक्पाल सदा तुम्हारी रक्षा करें। कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, मेधा, पुष्टि श्रद्धा, क्रिया, मति, बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, तुष्टि और कान्ति—ये लोक-जननी धर्मकी पत्नियाँ तुम्हारा अभिषेक करें। आदित्य, चन्द्रमा, भौम, बुध, बृहस्पति, शुक्र, सूर्यपुत्र शनि, राहु तथा केतु—ये ग्रह परितृप्त होकर तुम्हारा अभिषेक करें। देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प, ऋषि, मनु, गौएँ, देवमाताएँ, देवाङ्गनाएँ, वृक्ष, नाग, दैत्य, अप्सराओंके समूह, अस्त्र-शस्त्र, राजा, वाहन, ओषधियाँ, रत्न, काल-विभाग, नदी-नद, समुद्र, पर्वत, तीर्थ और मेघ—ये सब सम्पूर्ण अभीष्ट कामनाओंकी सिद्धिके लिये तुम्हारा अभिषेक करें'॥ १—१७ $\frac{१}{२}$ ॥

तदनन्तर यजमान अलंकृत होकर सुवर्ण, गौ, अन्न और भूमि आदिका निम्नाङ्कित मन्त्रोंसे दान करे—'कपिले रोहिणि! तुम समस्त देवताओंकी पूजनीया, तीर्थमयी तथा देवमयी हो; अतः मुझे शान्ति प्रदान करो।[१] शङ्ख! तुम पुण्यमय पदार्थोंमें पुण्यस्वरूप हो, मङ्गलोंके भी मङ्गल हो, तुम सदा विष्णुके द्वारा धारण किये जाते हो, अतएव मुझे शान्ति दो[२]। धर्म! आप वृषरूपसे स्थित होकर जगत्को आनन्द प्रदान करते हैं। आप अष्टमूर्ति शिवके अधिष्ठान हैं, अतः मुझे शान्ति दीजिये[३] ॥ १८—२१ ॥

'सुवर्ण! हिरण्यगर्भके गर्भमें तुम्हारी स्थिति है। तुम अग्निदेवके वीर्यसे उत्पन्न तथा अनन्त पुण्यफल वितरण करनेवाले हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो[४]। पीताम्बर-युगल भगवान् वासुदेवको अत्यन्त प्रिय है; अतः इसके प्रदानसे भगवान् श्रीहरि मुझे शान्ति दें[५]। अश्व! तुम स्वरूपसे विष्णु हो; क्योंकि तुम अमृतके साथ उत्पन्न हुए हो। तुम सूर्य-चन्द्रका सदा संवहन करते हो; अतः मुझे शान्ति दो[६]। पृथिवी! तुम समग्ररूपमें धेनुरूपिणी हो। तुम केशवके समान समस्त पापोंका सदा अपहरण करती हो। इसलिये मुझे शान्ति प्रदान करो[७]। लौह! हल और आयुध आदि कार्य सर्वदा तुम्हारे अधीन हैं, अतः मुझे शान्ति दो[८] ॥ २२—२६ ॥

'छाग! तुम यज्ञोंके अङ्गरूप होकर स्थित हो। तुम अग्निदेवके नित्य वाहन हो; अतएव

---

१. कपिले सर्वदेवानां पूजनीयासि रोहिणि। तीर्थदेवमयी यस्मादतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥ १९॥
२. पुण्यस्त्वं शङ्ख पुण्यानां मङ्गलानां च मङ्गलम्। विष्णुना विधृतो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥ २०॥
३. धर्म त्वं वृषरूपेण जगदानन्दकारकः। अष्टमूर्तेरधिष्ठानमतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥ २१॥
४. हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेमबीजं विभावसोः। अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥ २२॥
५. पीतवस्त्रयुगं यस्माद्वासुदेवस्य वल्लभम्। प्रदानात्तस्य वै विष्णुरतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥ २३॥
६. विष्णुस्त्वं अश्वरूपेण यस्मादमृतसम्भवः। चन्द्रार्कवाहनो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥ २४॥
७. यस्मात्त्वं पृथिवी सर्वा धेनुः केशवसंनिभा। सर्वपापहरा नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥ २५॥
८. यस्मादायस कर्माणि तवाधीनानि सर्वदा। लाङ्गलाद्यायुधादीनि अतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥ २६॥

मुझे शान्तिसे संयुक्त करो[१]। चौदहों भुवन गौओंके अङ्गोंमें अधिष्ठित हैं। इसलिये मेरा इहलोक और परलोकमें भी मङ्गल हो[२]। जैसे केशव और शिवकी शय्या अशून्य है, उसी प्रकार शय्यादानके प्रभावसे जन्म-जन्ममें मेरी शय्या भी अशून्य रहे[३]। जैसे सभी रत्नोंमें समस्त देवता प्रतिष्ठित हैं, उसी प्रकार वे देवता रत्नदानके उपलक्ष्यमें मुझे शान्ति प्रदान करें[४]। अन्य दान भूमिदानकी सोलहवीं कलाके समान भी नहीं हैं, इसलिये भूमिदानके प्रभावसे मेरे पाप शान्त हो जायँ'[५]॥ २७—३१॥

दक्षिणायुक्त अयुतहोमात्मक ग्रहयज्ञ युद्धमें विजय प्राप्त करानेवाला है। विवाह, उत्सव, यज्ञ, प्रतिष्ठादि कर्ममें इसका प्रयोग होता है। लक्षहोमात्मक और कोटिहोमात्मक—ये दोनों ग्रहयज्ञ सम्पूर्ण कामनाओंकी प्राप्ति करानेवाले हैं। अयुतहोमात्मक यज्ञके लिये गृहदेशमें यज्ञमण्डपका निर्माण करके उसमें हाथभर गहरा मेखलायोनियुक्त कुण्ड बनावे और चार ऋत्विजोंका वरण करे अथवा स्वयं अकेला सम्पूर्ण कार्य करे। लक्षहोमात्मक यज्ञमें पूर्वकी अपेक्षा सभी दसगुना होता है। इसमें चार हाथ या दो हाथ प्रमाणका कुण्ड बनाये। इसमें तार्क्ष्यका पूजन विशेष होता है। (तार्क्ष्य-पूजनका मन्त्र यह है—) 'तार्क्ष्य! सामध्वनि तुम्हारा शरीर है। तुम श्रीहरिके वाहन हो। विष-रोगको सदा दूर करनेवाले हो। अतएव मुझे शान्ति प्रदान करो'॥ ३२—३५ $\frac{1}{2}$॥

तदनन्तर कलशोंको पूर्ववत् अभिमन्त्रित करके लक्षहोमका अनुष्ठान करे। फिर 'वसुधारा' देकर शय्या एवं आभूषण आदिका दान करे। लक्षहोममें दस या आठ ऋत्विज् होने चाहिये। दक्षिणायुक्त लक्षहोमसे साधक पुत्र, अन्न, राज्य, विजय, भोग एवं मोक्ष आदि प्राप्त करता है। कोटि-होमात्मक ग्रहयज्ञ पूर्वोक्त फलोंके अतिरिक्त शत्रुओंका विनाश करनेवाला है। इसके लिये चार हाथ या आठ हाथ गहरा कुण्ड बनाये और बारह ऋत्विजोंका वरण करे। पटपर पच्चीस या सोलह तथा द्वारपर चार कलशोंकी स्थापना करे। कोटिहोम करनेवाला सम्पूर्ण कामनाओंसे संयुक्त होकर विष्णुलोकको प्राप्त होता है। ग्रह-मन्त्र, वैष्णव-मन्त्र, गायत्री मन्त्र, आग्नेय-मन्त्र, शैव-मन्त्र एवं प्रसिद्ध वैदिक-मन्त्रोंसे हवन करे। तिल, यव, घृत और धान्यका हवन करनेवाला अश्वमेधयज्ञके फलको प्राप्त करता है। विद्वेषण आदि अभिचार-कर्मोंमें त्रिकोण कुण्ड विहित है। इनमें रक्तवस्त्रधारी और उन्मुक्तकेश मन्त्रसाधकको शत्रुके विनाशका चिन्तन करते हुए, बाँयें हाथसे श्येन पक्षीकी लक्ष अस्थियोंसे युक्त समिधाओंका हवन करना चाहिये।[६] (हवनका मन्त्र इस प्रकार है—)

'दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु यो द्वेष्टि हुं फट्।'

फिर छुरेसे शत्रुकी प्रतिमाको काट डाले और पिष्टमय शत्रुका अग्निमें हवन करे। इस प्रकार जो अत्याचारी शत्रुके विनाशके लिये यज्ञ करता है, वह स्वर्गलोकको प्राप्त करता है॥ ३६—४४॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'ग्रहोंके अयुत-लक्ष-कोटि हवनोंका वर्णन' नामक एक सौ सड़सठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १६७॥

---

१. यस्मात्त्वं सर्वयज्ञानामङ्गत्वेन व्यवस्थितः। योनिर्विभावसोर्नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥ २७॥
२. गवामङ्गेषु तिष्ठन्ति भुवनानि चतुर्दश। यस्मात्तस्माच्छिवं मे स्यादिह लोके परत्र च॥ २८॥
३. यस्मादशून्यं शयनं केशवस्य शिवस्य च। शय्या ममाप्यशून्यास्तु दत्ता जन्मनि जन्मनि॥ २९॥
४. यथा रत्नेषु सर्वेषु सर्वे देवाः प्रतिष्ठिताः। तथा शान्तिं प्रयच्छन्तु रत्नदानेन मे सुराः॥ ३०॥
५. यथा भूमिप्रदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्। दानान्यन्यानि मे शान्तिर्भूमिदानाद् भवत्विह॥ ३१॥
६. यह 'विद्वेषण' तामस अभिचार-कर्म है। इसे तामस लोग ही किया करते हैं।

एक सौ अड़सठवाँ अध्याय

महापातकोंका वर्णन

पुष्कर कहते हैं— जो मनुष्य पापोंका प्रायश्चित्त न करें, राजा उन्हें दण्ड दे। मनुष्यको अपने पापोंका इच्छासे अथवा अनिच्छासे भी प्रायश्चित्त करना चाहिये। उन्मत्त, क्रोधी और दु:खसे आतुर मनुष्यका अन्न कभी भोजन नहीं करना चाहिये। जिस अन्नका महापातकी ने स्पर्श कर लिया हो, जो रजस्वला स्त्रीद्वारा छूआ गया हो, उस अन्नका भी परित्याग कर देना चाहिये। ज्यौतिषी, गणिका, अधिक मुनाफा करनेवाले ब्राह्मण और क्षत्रिय, गायक, अभिशप्त, नपुंसक, घरमें उपपतिको रखनेवाली स्त्री, धोबी, नृशंस, भाट, जुआरी, तपका आडम्बर करनेवाले, चोर, जल्लाद, कुण्डगोलक, स्त्रियोंद्वारा पराजित, वेदोंका विक्रय करनेवाले, नट, जुलाहे, कृतघ्न, लोहार, निषाद, रँगरेज, ढोंगी संन्यासी, कुलटा स्त्री, तेली, आरूढ-पतित और शत्रुके अन्नका सदैव परित्याग करे। इसी प्रकार ब्राह्मणके बिना बुलाये ब्राह्मणका अन्न भोजन न करे। शूद्रको तो निमन्त्रित होनेपर भी ब्राह्मणके अन्नका भोजन नहीं करना चाहिये। इनमेंसे बिना जाने किसीका अन्न खानेपर तीन दिनतक उपवास करे। जान-बूझकर खा लेनेपर 'कृच्छ्रव्रत' करे। वीर्य, मल, मूत्र तथा श्वपाक चाण्डालका अन्न खाकर 'चान्द्रायणव्रत' करे। मृत व्यक्तिके उद्देश्यसे प्रदत्त, गायका सूँघा हुआ, शूद्र अथवा कुत्तेके द्वारा उच्छिष्ट किया हुआ तथा पतितका अन्न भक्षण करके 'तप्तकृच्छ्र' करे। किसीके यहाँ सूतक होनेपर जो उसका अन्न खाता है, वह भी अशुद्ध हो जाता है। इसलिये अशौचयुक्त मनुष्यका अन्न भक्षण करनेपर 'कृच्छ्रव्रत' करे। जिस कुएँमें पाँच नखोंवाला पशु मरा पड़ा हो, जो एक बार अपवित्र वस्तुसे युक्त हो चुका हो, उसका जल पीनेपर श्रेष्ठ ब्राह्मणको तीन दिनतक उपवास रखना चाहिये। शूद्रको सभी प्रायश्चित्त एक चौथाई, वैश्यको दो चौथाई और क्षत्रियको तीन चौथाई करने चाहिये। ग्रामसूकर, गर्दभ, उष्ट्र, श्रृगाल, वानर और काक—इनके मल-मूत्रका भक्षण करनेपर ब्राह्मण 'चान्द्रायण-व्रत' करे। सूखा मांस, मृतक व्यक्तिके उद्देश्यसे दिया हुआ अन्न, करक तथा कच्चा मांस खानेवाले जीव, शूकर, उष्ट्र, श्रृगाल, वानर, काक, गौ, मनुष्य, अश्व, गर्दभ, छत्ता शाक, मुर्गे और हाथीका मांस खानेपर 'तप्तकृच्छ्र'से शुद्धि होती है। ब्रह्मचारी अमाश्राद्धमें भोजन, मधुपान अथवा लहसुन और गाजरका भक्षण करनेपर 'प्राजापत्यकृच्छ्र' से पवित्र होता है। अपने लिये पकाया हुआ मांस, पेलुगव्य (अण्डकोषका मांस), पेयूष (ब्यायी हुई गौ आदि पशुओंका सात दिनके अंदरका दूध), श्लेष्मातक (बहुवार), मिट्टी एवं दूषित खिचड़ी, लप्सी, खीर, पूआ और पूरी, यज्ञ-सम्बन्धी संस्कार-रहित मांस, देवताके निमित्त रखा हुआ अन्न और हवि—इनका भक्षण करनेपर 'चान्द्रायण-व्रत' करनेसे शुद्धि होती है। गाय, भैंस और बकरीके दूधके सिवा अन्य पशुओंके दुग्धका परित्याग करना चाहिये। इनके भी ब्यानेके दस दिनके अंदरका दूध काममें नहीं लेना चाहिये। अग्निहोत्रकी प्रज्वलित अग्निमें हवन करनेवाला ब्राह्मण यदि स्वेच्छापूर्वक जौ और गेहूँसे तैयार की हुई वस्तुओं, दूधके विकारों, वागषाड्गवचक्र आदि तथा तैल-घी आदि चिकने पदार्थोंसे संस्कृत बासी अन्नको खा ले तो उसे एक मासतक 'चान्द्रायणव्रत' करना चाहिये; क्योंकि वह दोष वीरहत्याके समान माना जाता है॥ १—२३॥

ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी, गुरुतल्पगमन—ये 'महापातक' कहे गये हैं। इन पापोंके करनेवाले मनुष्योंका संसर्ग भी 'महापातक' माना गया है। झूठको बढ़ावा देना, राजाके समीप किसीकी चुगली करना, गुरुपर झूठा दोषारोपण—ये 'ब्रह्महत्या'के समान हैं। अध्ययन किये हुए वेदका विस्मरण, वेदनिन्दा, झूठी गवाही, सुहृद्का वध, निन्दित अन्न एवं घृतका भक्षण—ये छः पाप सुरापानके समान माने गये हैं। धरोहरका अपहरण, मनुष्य, घोड़े, चाँदी, भूमि और हीरे आदि रत्नोंकी चोरी सुवर्णकी चोरीके समान मानी गयी है। सगोत्रा स्त्री, कुमारी कन्या, चाण्डाली, मित्रपत्नी और पुत्रवधू—इनमें वीर्यपात करना 'गुरुपत्नीगमन'के समान माना गया है। गोवध, अयोग्य व्यक्तिसे यज्ञ कराना, परस्त्रीगमन, अपनेको बेचना तथा गुरु, माता, पिता, पुत्र, स्वाध्याय एवं अग्निका परित्याग, परिवेत्ता अथवा परिवित्ति होना—इन दोनोंमेंसे किसीको कन्यादान करना और इनका यज्ञ कराना, कन्याको दूषित करना, ब्याजसे जीविका-निर्वाह, व्रतभङ्ग, सरोवर, उद्यान, स्त्री एवं पुत्रको बेचना, समयपर यज्ञोपवीत ग्रहण न करना, बान्धवोंका त्याग, वेतन लेकर अध्यापन-कार्य करना, वेतनभोगी गुरुसे पढ़ना, न बेचनेयोग्य वस्तुको बेचना, सुवर्ण आदिकी खानका काम करना, विशाल यन्त्र चलाना, लता, गुल्म आदि ओषधियोंका नाश, स्त्रियोंके द्वारा जीविका उपार्जित करना, नित्य-नैमित्तिक कर्मका उल्लङ्घन, लकड़ीके लिये हरे-भरे वृक्षको काटना, अनेक स्त्रियोंका संग्रह, स्त्री-निन्दकोंका संसर्ग, केवल अपने स्वार्थके लिये सम्पूर्ण-कर्मोंका आरम्भ करना, निन्दित अन्नका भोजन, अग्निहोत्रका परित्याग, देवता, ऋषि और पितरोंका ऋण न चुकाना, असत् शास्त्रोंको पढ़ना, दुःशीलपरायण होना, व्यसनमें आसक्ति, धान्य, धातु और पशुओंकी चोरी, मद्यपान करनेवाली नारीसे समागम, स्त्री, शूद्र, वैश्य अथवा क्षत्रियका वध करना एवं नास्तिकता—ये सब 'उपपातक' हैं। ब्राह्मणको प्रहार करके रोगी बनाना, लहसुन और मद्य आदिको सूँघना, भिक्षासे निर्वाह करना, गुदामैथुन—ये सब 'जाति-भ्रंशकर पातक' बतलाये गये हैं। गर्दभ, घोड़ा, ऊँट, मृग, हाथी, भेंड़, बकरी, मछली, सर्प और नेवला—इनमेंसे किसीका वध 'संकरीकरण' कहलाता है। निन्दित मनुष्योंसे धनग्रहण, वाणिज्यवृत्ति, शूद्रकी सेवा एवं असत्य-भाषण—ये 'अपात्रीकरण पातक' माने जाते हैं। कृमि और कीटोंका वध, मद्ययुक्त भोजन, फल, काष्ठ और पुष्पकी चोरी तथा धैर्यका परित्याग—ये 'मलिनीकरण पातक' कहलाते हैं॥ २४—४०॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'महापातक आदिका वर्णन' नामक एक सौ अड़सठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १६८॥

एक सौ उनहत्तरवाँ अध्याय

ब्रह्महत्या आदि विविध पापोंके प्रायश्चित्त

पुष्कर कहते हैं— अब मैं आपको इन सब पापोंके प्रायश्चित्त बतलाता हूँ। ब्रह्महत्या करनेवाला अपनी शुद्धिके लिये भिक्षाका अन्न भोजन करते हुए एवं मृतकके सिरकी ध्वजा धारण करके, वनमें कुटी बनाकर, बारह वर्षतक निवास करे। अथवा नीचे मुख करके धधकती हुई आगमें तीन बार गिरे। अथवा अश्वमेधयज्ञ या स्वर्गपर विजय प्राप्त करानेवाले गोमेध यज्ञका अनुष्ठान करे। अथवा किसी एक वेदका पाठ करता हुआ सौ योजनतक जाय या अपना सर्वस्व वेदवेत्ता

ब्राह्मणको दान कर दे। महापातकी मनुष्य इन व्रतोंसे अपना पाप नष्ट कर डालते हैं॥ १—४॥

गोवध करनेवाला एवं उपपातकी एक मासतक यवपान करके रहे। वह सिरका मुण्डन कराकर उस गौका चर्म ओढ़े हुए गोशालामें निवास करे। दिनके चतुर्थ प्रहरमें लवणहीन अन्नका नियमित भोजन करे। फिर दो महीनोंतक इन्द्रियोंको वशमें करके नित्य गोमूत्रसे स्नान करे। दिनमें गौओंके पीछे-पीछे चले और खड़े होकर उनके खुरोंसे उड़ती हुई धूलिका पान करे। व्रतका पूर्णरूपसे अनुष्ठान करके एक बैलके साथ दस गौओंका दान करे। यदि इतना न दे सके तो वेदवेत्ता ब्राह्मणोंको अपना सर्वस्व-दान कर दे। यदि रोकनेसे गौ मर जाय तो एक चौथाई प्रायश्चित्त, बाँधनेके कारण मर जाय तो आधा प्रायश्चित्त, जोतनेके कारण मर जाय तो तीन पाद प्रायश्चित्त और मारनेपर मर जाय तो पूरा प्रायश्चित्त करना चाहिये। वन, दुर्गम स्थान, ऊबड़-खाबड़ भूमि और भयप्रद स्थानमें गौकी मृत्यु हो जाय तो चौथाई प्रायश्चित्तका विधान है। आभूषणके लिये गलेमें घण्टा बाँधनेसे गौकी मृत्यु हो तो आधा प्रायश्चित्त करे। दमन करने, बाँधने, रोकने, गाड़ीमें जोतने, खूँटे, रस्सी अथवा फंदेमें बाँधनेपर यदि गौकी मृत्यु हो जाय तो तीन चरण प्रायश्चित्त करे। यदि गौका सींग अथवा हड्डी टूट जाय या पूँछ कट जाय तो जबतक गौ स्वस्थ न हो जाय, तबतक जौकी लप्सी खाकर रहे और गोमती विद्याका जप करे, गौकी स्तुति एवं गोमतीका स्मरण करे। यदि बहुत-से मनुष्योंके द्वारा एक गौ मारी जाय तो वे सब लोग अलग-अलग गोहत्याका एक-एक पाद प्रायश्चित्त करें। उपकार करते हुए यदि गौ मर जाय तो पाप नहीं लगता है॥ ५—१४॥

उपपातक करनेवालोंको भी इसी व्रतका आचरण करना चाहिये। 'अवकीर्णी*' को अपनी शुद्धिके लिये चान्द्रायण-व्रत करना चाहिये। अथवा अवकीर्णी रातके समय चौराहेपर जाकर पाकयज्ञके विधानसे निर्ऋतिके उद्देश्यसे काले गदहेका पूजन करे। तदनन्तर वह बुद्धिमान् ब्रह्मचारी अग्नि-संचयन करके अन्तमें '**समासिञ्चन्तु मरुतः**'— इस ऋचासे चन्द्रमा, इन्द्र, बृहस्पति और अग्निके उद्देश्यसे घृतकी आहुति दे। अथवा गर्दभका चर्म धारण करके एक वर्षतक पृथ्वीपर विचरण करे॥ १५—१७ $\frac{१}{२}$ ॥

अज्ञानसे भ्रूण-हत्या करनेपर ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त करे। मोहवश सुरापान करनेवाला द्विज अग्निके समान जलती हुई सुराका पान करे। अथवा तपाकर अग्निके समान रंगवाले गोमूत्र या जलका पान करे। सुवर्णकी चोरी करनेवाला ब्राह्मण राजाके पास जाकर अपने चौर्य-कर्मके विषयमें बतलाता हुआ कहे—'आप मुझे दण्ड दीजिये।' तब राजा मूसल लेकर अपने-आप आये हुए उस ब्राह्मणको एक बार मारे। इस प्रकार वध होनेसे अथवा तपस्या करनेसे सुवर्णकी चोरी करनेवाले ब्राह्मणकी शुद्धि होती है। गुरु-पत्नी-गमन करनेवाला स्वयं अपने लिङ्ग और अण्डकोषको काटकर उसे अञ्जलिमें ले, मरनेतक नैर्ऋत्यकोणकी ओर चलता जाय। अथवा इन्द्रियोंको संयममें रखकर तीन मासतक 'चान्द्रायण' व्रत करे। जान-बूझकर कोई-सा भी जाति-भ्रंशकर पातक करके 'सांतपनकृच्छ्र' और अज्ञानवश हो जानेपर 'प्राजापत्यकृच्छ्र' करे। संकरीकरण अथवा

*कामतो रेतसः सेकं व्रतस्थस्य द्विजन्मनः। अतिक्रमं व्रतस्याहुर्धर्मज्ञा ब्रह्मवादिनः॥ (मनु० ११। १२१)

'ब्रह्मचारि-व्रतमें स्थित द्विजका इच्छापूर्वक किसी स्त्रीमें वीर्यपात करना धर्मको जाननेवाले ब्रह्मवादियोंद्वारा व्रतका अतिक्रमण बताया गया है। ऐसा करनेवाले ब्रह्मचारीको ही 'अवकीर्णी' कहते हैं।'

अपात्रीकरण पातक करनेपर एक मासतक चान्द्रायणव्रत करनेसे शुद्धि होती है। मलिनीकरण पातक होनेपर तीन दिनतक तप्तयावकका पान करे। क्षत्रियका वध करनेपर ब्रह्महत्याका चौथाई प्रायश्चित्त विहित है। वैश्यका वध करनेपर अष्टमांश, सदाचारी शूद्रका वध करनेपर षोडशांश प्रायश्चित्त करे। बिल्ली, नेवला, नीलकण्ठ, मेढक, कुत्ता, गोह, उलूक, काक अथवा चारोंमेंसे किसी वर्णकी स्त्रीकी हत्या होनेपर शूद्रहत्याका प्रायश्चित्त करे। स्त्रीकी अज्ञानवश हत्या करके भी शूद्रहत्याका प्रायश्चित्त करे। सर्पादिका वध होनेपर 'नक्तव्रत' और अस्थिहीन जीवोंकी हत्या होनेपर 'प्राणायाम' करे॥ १८—२८॥

दूसरेके घरसे अल्पमूल्यवाली वस्तुकी चोरी करके 'सांतपनकृच्छ्र' करे। व्रतके पूर्ण होनेपर शुद्धि होती है। भक्ष्य और भोज्य वस्तु, यान, शय्या, आसन, पुष्प, मूल और फलोंकी चोरीमें पञ्चगव्यके पानसे शुद्धि होती है। तृण, काष्ठ, वृक्ष, सूखे अनाज, गुड़, वस्त्र, चर्म और मांसकी चोरी करनेपर तीन दिनतक भोजनका परित्याग करे। मणि, मोती, मूँगा, ताँबा, चाँदी, लोहा, काँसा अथवा पत्थरकी चोरी करनेवाला बारह दिनतक अन्नका कणमात्र खाकर रहे। कपास, रेशम, ऊन तथा दो खुरवाले बैल आदि, एक खुरवाले घोड़े आदि पशु, पक्षी, सुगन्धित द्रव्य, औषध अथवा रस्सी चुरानेवाला तीन दिनतक दूध पीकर रहे॥ २९—३३॥

मित्रपत्नी, पुत्रवधू, कुमारी और चाण्डालीमें वीर्यपात करके गुरुपत्नी-गमनका प्रायश्चित्त करे। फुफेरी बहन, मौसेरी बहन और सगी ममेरी बहनसे गमन करनेवाला चान्द्रायण-व्रत करे। मनुष्येतर योनिमें, रजस्वला स्त्रीमें, योनिके सिवा अन्य स्थानमें अथवा जलमें वीर्यपात करनेवाला मनुष्य 'कृच्छ्रसांतपन-व्रत' करे। पुरुष अथवा स्त्रीके साथ बैलगाड़ीपर, जलमें या दिनके समय मैथुन करके ब्राह्मण वस्त्रोंसहित स्नान करे। चाण्डाल और अन्त्यज जातिकी स्त्रियोंसे अज्ञानवश समागम करके, उनका अन्न खाकर या उनका प्रतिग्रह स्वीकार करके ब्राह्मण पतित हो जाता है। जान-बूझकर ऐसा करनेसे वह उन्हींके समान हो जाता है। व्यभिचारिणी स्त्रीका पति उसे एक घरमें बंद करके रखे और परस्त्रीगामी पुरुषके लिये जो प्रायश्चित्त विहित है, वह उससे करावे। यदि वह स्त्री अपने समान जातिवाले पुरुषके द्वारा पुन: दूषित हो तो उसकी शुद्धि 'कृच्छ्र' और 'चान्द्रायण-व्रत' से बतलायी गयी है। जो ब्राह्मण एक रात वृषलीका सेवन करता है, वह तीन वर्षतक नित्य भिक्षान्नका भोजन और गायत्री-जप करनेपर शुद्ध होता है॥ ३४—४१॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'प्रायश्चित्तोंका वर्णन' नामक एक सौ उनहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १६९॥

एक सौ सत्तरवाँ अध्याय

विभिन्न प्रायश्चित्तोंका वर्णन

पुष्कर कहते हैं— अब मैं महापातकियोंका संसर्ग करनेवाले मनुष्योंके लिये प्रायश्चित्त बतलाता हूँ। पतितके साथ एक सवारीमें चलने, एक आसनपर बैठने, एक साथ भोजन करनेसे मनुष्य एक वर्षके बाद पतित होता है, परंतु उनको यज्ञ कराने, पढ़ाने एवं उनसे यौन-सम्बन्ध स्थापित करनेवाला तो तत्काल ही पतित हो जाता है। जो मनुष्य जिस पतितका संसर्ग करता है, वह उसके

संसर्गजनित दोषकी शुद्धिके लिये, उस पतितके लिये विहित प्रायश्चित्त करे। पतितके सपिण्ड और बान्धवोंको एक साथ निन्दित दिनमें, संध्याके समय, जाति-भाई, ऋत्विक् और गुरुजनोंके निकट, पतित पुरुषकी जीवितावस्थामें ही उसकी उदक-क्रिया करनी चाहिये। तदनन्तर जलसे भरे हुए घड़ेको दासीद्वारा लातसे फेंकवा दे और पतितके सपिण्ड एवं बान्धव एक दिन-रात अशौच मानें। उसके बाद वे पतितके साथ सम्भाषण न करें और धनमें उसे ज्येष्ठांश भी न दें। पतितका छोटा भाई गुणोंमें श्रेष्ठ होनेके कारण ज्येष्ठांशका अधिकारी होता है। यदि पतित बादमें प्रायश्चित्त कर ले, तो उसके सपिण्ड और बान्धव उसके साथ पवित्र जलाशयमें स्नान करके जलसे भरे हुए नवीन कुम्भको जलमें फेंके। पतित स्त्रियोंके सम्बन्धमें भी यही कार्य करे; परंतु उसको अन्न, वस्त्र और घरके समीप रहनेका स्थान देना चाहिये॥ १—७ $\frac{१}{२}$ ॥

जिन ब्राह्मणोंको समयपर विधिके अनुसार गायत्रीका उपदेश प्राप्त नहीं हुआ है, उनसे तीन प्राजापत्य कराकर उनका विधिवत् उपनयन-संस्कार करावे। निषिद्ध कर्मोंका आचरण करनेसे जिन ब्राह्मणोंका परित्याग कर दिया गया हो, उनके लिये भी इसी प्रायश्चित्तका उपदेश करे। ब्राह्मण संयतचित्त होकर तीन सहस्र गायत्रीका जप करके गोशालामें एक मासतक दूध पीकर निन्दित प्रतिग्रहके पापसे छूट जाता है। संस्कारहीन मनुष्योंका यज्ञ कराकर, गुरुजनोंके सिवा दूसरोंका अन्त्येष्टिकर्म, अभिचारकर्म अथवा अहीन यज्ञ कराकर ब्राह्मण तीन प्राजापत्य-व्रत करनेपर शुद्ध होता है। जो द्विज शरणागतका परित्याग करता है और अनधिकारीको वेदका उपदेश करता है, वह एक वर्षतक नियमित आहार करके उस पापसे मुक्त होता है॥ ८—१२॥

कुत्ता, सियार, गर्दभ, बिल्ली, नेवला, मनुष्य, घोड़ा, ऊँट और सूअरके द्वारा काटे जानेपर प्राणायाम करनेसे शुद्धि होती है। स्नातकके व्रतका लोप और नित्यकर्मका उल्लङ्घन होनेपर निराहार रहना चाहिये। यदि ब्राह्मणके लिये 'हुं' कार और अपनेसे श्रेष्ठके लिये 'तूं' का प्रयोग हो जाय, तो स्नान करके दिनके शेष भागमें उपवास रखे और अभिवादन करके उन्हें प्रसन्न करे। ब्राह्मणपर प्रहार करनेके लिये डंडा उठानेपर 'प्राजापत्य-व्रत' करे। यदि डंडेसे प्रहार कर दिया हो तो 'अतिकृच्छ्र' और यदि प्रहारसे ब्राह्मणके खून निकल आया हो तो 'कृच्छ्र' एवं 'अतिकृच्छ्रव्रत' करे। जिसके घरमें अनजानमें चाण्डाल आकर टिक गया हो तो भलीभाँति जाननेपर यथासमय उसका प्रायश्चित्त करे। 'चान्द्रायण' अथवा 'पराकव्रत' करनेसे द्विजोंकी शुद्धि होती है। शूद्रोंकी शुद्धि 'प्राजापत्य-व्रत'से हो जाती है, शेष कर्म उन्हें द्विजोंकी भाँति करने चाहिये। घरमें जो गुड़, कुसुम्भ, लवण एवं धान्य आदि पदार्थ हों, उन्हें द्वारपर एकत्रित करके अग्निदेवको समर्पित करे। मिट्टीके पात्रोंका त्याग कर देना चाहिये। शेष द्रव्योंकी शास्त्रीय विधिके अनुसार द्रव्यशुद्धि विहित है॥ १३—१९ $\frac{१}{२}$ ॥

चाण्डालके स्पर्शसे दूषित एक कूएँका जल पीनेवाले जो ब्राह्मण हैं, वे उपवास अथवा पञ्चगव्यके पानसे शुद्ध हो जाते हैं। जो द्विज इच्छानुसार चाण्डालका स्पर्श करके भोजन कर लेता है, उसे 'चान्द्रायण' अथवा 'तप्तकृच्छ्र' करना चाहिये। चाण्डाल आदि घृणित जातियोंके स्पर्शसे जिनके पात्र अपवित्र हो गये हैं, वे द्विज (उन पात्रोंमें भोजन एवं पान करके) 'षड्रात्रव्रत' करनेसे शुद्ध होते हैं। अन्त्यजका उच्छिष्ट खाकर द्विज 'चान्द्रायणव्रत' करे और शूद्र 'त्रिरात्र-व्रत'

करे। जो द्विज चाण्डालोंके कूएँ या पात्रका जल बिना जाने पी लेता है, वह 'सांतपनकृच्छ्र' करे एवं शूद्र ऐसा करनेपर एक दिन उपवास करे। जो द्विज चाण्डालका स्पर्श करके जल पी लेता है, उसे 'त्रिरात्र-व्रत' करना चाहिये और ऐसा करनेवाले शूद्रको एक दिनका उपवास करना चाहिये॥ २०—२५ $\frac{1}{2}$ ॥

ब्राह्मण यदि उच्छिष्ट, कुत्ता अथवा शूद्रका स्पर्श कर दे, तो एक रात उपवास करके पञ्चगव्य पीनेसे शुद्ध होता है। वैश्य अथवा क्षत्रियका स्पर्श होनेपर स्नान और 'नक्तव्रत' करे। मार्गमें चलता हुआ ब्राह्मण यदि वन अथवा जलरहित प्रदेशमें पक्वान्न हाथमें लिये मल-मूत्रका त्याग कर देता है, तो उस द्रव्यको अलग न रखकर अपने अङ्कमें रखे हुए ही आचमन आदिसे पवित्र होकर अन्नका प्रोक्षण करके उसे सूर्य एवं अग्निको प्रदर्शित करे॥ २६—२९॥

जो प्रवासी मनुष्य म्लेच्छों, चोरोंके निवासभूत देश अथवा वनमें भोजन कर लेते हैं, अब मैं वर्णक्रमसे उनकी भक्ष्याभक्ष्यविषयक शुद्धिका उपाय बतलाता हूँ। ऐसा करनेवाले ब्राह्मणको अपने गाँवमें आकर 'पूर्णकृच्छ्र', क्षत्रियको तीन चरण और वैश्यको आधा व्रत करके पुनः अपना संस्कार कराना चाहिये। एक चौथाई व्रत करके दान देनेसे शूद्रकी भी शुद्धि होती है॥ ३०—३२॥

यदि किसी स्त्रीका समान वर्णवाली रजस्वला स्त्रीसे स्पर्श हो जाय तो वह उसी दिन स्नान करके शुद्ध हो जाती है, इसमें कोई संशय नहीं है। अपनेसे निकृष्ट जातिवाली रजस्वलाका स्पर्श करके रजस्वला स्त्रीको तबतक भोजन नहीं करना चाहिये, जबतक कि वह शुद्ध नहीं हो जाती। उसकी शुद्धि चौथे दिनके शुद्ध स्नानसे ही होती है। यदि कोई द्विज मूत्रत्याग करके मार्गमें चलता हुआ भूलकर जल पी ले, तो वह एक दिन-रात उपवास रखकर पञ्चगव्यके पानसे शुद्ध होता है। जो मूत्र त्याग करनेके पश्चात् आचमनादि शौच न करके मोहवश भोजन कर लेता है, वह तीन दिनतक यवपान करनेसे शुद्ध होता है॥ ३३—३६॥

जो ब्राह्मण संन्यास आदिकी दीक्षा लेकर गृहस्थाश्रमका परित्याग कर चुके हों और पुनः संन्यासाश्रमसे गृहस्थाश्रममें लौटना चाहते हों, अब मैं उनकी शुद्धिके विषयमें कहता हूँ। उनसे तीन 'प्राजापत्य' अथवा 'चान्द्रायण-व्रत' कराने चाहिये। फिर उनके जातकर्म आदि संस्कार पुनः कराने चाहिये॥ ३७-३८॥

जिसके मुखसे जूते या किसी अपवित्र वस्तुका स्पर्श हो जाय, उसकी मिट्टी और गोबरके लेपन तथा पञ्चगव्यके पानसे शुद्धि होती है। नीलकी खेती, विक्रय और नीले वस्त्र आदिका धारण—ये ब्राह्मणका पतन करनेवाले हैं। इन दोषोंसे युक्त ब्राह्मणकी तीन 'प्राजापत्यव्रत' करनेसे शुद्धि होती है। यदि रजस्वला स्त्रीको अन्त्यज या चाण्डाल छू जाय तो 'त्रिरात्र-व्रत' करनेसे चौथे दिन उसकी शुद्धि होती है। चाण्डाल, श्वपाक, मज्जा, सूतिका स्त्री, शव और शवका स्पर्श करनेवाले मनुष्यको छूनेपर तत्काल स्नान करनेसे शुद्धि होती है। मनुष्यकी अस्थिका स्पर्श होनेपर तैल लगाकर स्नान करनेसे ब्राह्मण विशुद्ध हो जाता है। गलीके कीचड़के छींटे लग जानेपर नाभिके नीचेका भाग मिट्टी और जलसे धोकर स्नान करनेसे शुद्धि होती है। वमन अथवा विरेचनके बाद स्नान करके घृतका प्राशन करनेसे शुद्धि होती है। स्नानके बाद क्षौरकर्म करनेवाला और ग्रहणके समय भोजन करनेवाला 'प्राजापत्यव्रत' करनेसे शुद्ध होता है। पङ्क्तिदूषक मनुष्योंके साथ पङ्क्तिमें बैठकर भोजन करनेवाला, कुत्ते अथवा कीटसे दंशित मनुष्य पञ्चगव्यके पानसे शुद्धि

प्राप्त करता है। आत्महत्याकी चेष्टा करनेवाले मनुष्यकी 'प्राजापत्यव्रत', जप एवं होमसे शुद्धि होती है। होमादिके अनुष्ठान एवं पश्चात्तापसे सभी प्रकारके पापियोंकी शुद्धि होती है॥ ३९—४६॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'प्रायश्चित्तोंका वर्णन' नामक एक सौ सत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १७०॥

एक सौ इकहत्तरवाँ अध्याय

गुप्त पापोंके प्रायश्चित्तका वर्णन

पुष्कर कहते हैं—अब मैं गुप्त पापोंके प्रायश्चित्तोंका वर्णन करता हूँ, जो परम शुद्धिप्रद हैं। एक मासतक पुरुषसूक्तका जप पापोंका नाश करनेवाला है। अघमर्षण-मन्त्रका तीन बार जप करनेसे मनुष्य सभी प्रकारके पापोंसे मुक्त हो जाता है। वेदमन्त्र, वायुसूक्त और यमसूक्तके जप एवं गायत्रीका जप करनेसे मनुष्य अपने सब पापोंको नष्ट कर डालता है। समस्त कृच्छ्रोंमें मुण्डन, स्नान, हवन और श्रीहरिका पूजन विहित है। 'कृच्छ्रव्रत' करनेवाला दिनमें खड़ा रहे और रातमें बैठा रहे, इसे 'वीरासन' कहा गया है। इससे मनुष्य निष्पाप हो जाता है। एक महीनेतक प्रतिदिन आठ ग्रास भोजन करे, इसे 'यतिचान्द्रायण' कहते हैं। एक मासतक नित्य प्रात:काल चार ग्रास और सायंकाल चार ग्रास भोजन करनेसे 'शिशुचान्द्रायण' होता है। एक मासमें किसी भी प्रकार दो सौ चालीस पिण्ड भोजन करे, यह 'सुरचान्द्रायण' की विधि है। तीन दिन गरम जल, तीन दिन गरम दूध, तीन दिन गरम घी और तीन दिन वायु पीकर रहे, इसे 'तप्तकृच्छ्र' कहा गया है। और इसी क्रमसे तीन दिन ठंढा जल, तीन दिन ठंढा दूध, तीन दिन ठंढा घी और तीन दिन वायु पीनेपर 'शीतकृच्छ्र' होता है। इक्कीस दिनतक केवल दूध पीकर रहनेसे 'कृच्छ्रातिकृच्छ्र' होता है। एक दिन गोमूत्र, गोबर, दूध, दही, घी और कुश-जलका भक्षण करके रहे तथा एक दिन उपवास करे, इसे 'कृच्छ्रसांतपन-व्रत' माना गया है। 'सांतपनकृच्छ्र'की वस्तुओंको एक-एक दिनके क्रमसे लेनेपर 'महासांतपन' व्रत माना जाता है। इन्हीं वस्तुओंको तीन-तीन दिनके क्रमसे ग्रहण करनेपर 'अतिसांतपन' माना जाता है। बारह दिन निराहार रहनेसे 'पराककृच्छ्र' होता है। तीन दिन प्रात:काल, तीन दिन सायंकाल और तीन दिन बिना माँगे मिली हुई वस्तुका भोजन करे और अन्तमें तीन दिन उपवास रखे, इसे 'प्राजापत्यव्रत' कहा गया है। इसीके एक चरणका अनुष्ठान 'कृच्छ्रपाद' कहलाता है। एक मासतक फल खाकर रहनेसे 'फलकृच्छ्र' और बेल खाकर रहनेसे 'श्रीकृच्छ्र' होता है। इसी प्रकार पद्माक्ष (कमलगट्टा) खाकर रहनेसे 'पद्माक्षकृच्छ्र', आँवले खाकर रहनेसे 'आमलककृच्छ्र' और पुष्प खाकर रहनेसे पुष्पकृच्छ्र होता है। पूर्वोक्त क्रमसे केवल पत्ते खाकर रहनेसे 'पत्रकृच्छ्र', जल पीकर रहनेसे 'जलकृच्छ्र', केवल मूलका भोजन करनेसे 'मूलकृच्छ्र' और दधि, दुग्ध अथवा तक्रपर निर्भर रहनेसे क्रमश: 'दधिकृच्छ्र', 'दुग्धकृच्छ्र' और 'तक्रकृच्छ्र' होते हैं। एक मासतक अञ्जलिभर अन्नके भोजनसे 'वायव्यकृच्छ्र' होता है। बारह दिन केवल तिलका भोजन करके रहनेसे 'आग्नेयकृच्छ्र' माना जाता है, जो दु:खोंका विनाश करनेवाला है। एक पक्षतक एक पसर लाज (खील)-का भोजन करे। चतुर्दशी एवं पञ्चदशी (अमावास्या एवं पूर्णिमा)-

को उपवास रखे। फिर पञ्चगव्यपान करके हविष्यान्नका भोजन करे। यह 'ब्रह्मकूर्च-व्रत' होता है। इस व्रतको एक मासमें दो बार करनेसे मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो मनुष्य धन, पुष्टि, स्वर्ग एवं पापनाशकी कामनासे देवताओंका आराधन और कृच्छ्रव्रत करता है, वह सब कुछ प्राप्त कर लेता है॥ १—१७॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'गुप्त पापोंके प्रायश्चित्तका वर्णन' नामक एक सौ इकहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १७१॥

एक सौ बहत्तरवाँ अध्याय

समस्त पापनाशक स्तोत्र

पुष्कर कहते हैं— जब मनुष्योंका चित्त परस्त्रीगमन, परस्वापहरण एवं जीवहिंसा आदि पापोंमें प्रवृत्त होता है, तो स्तुति करनेसे उसका प्रायश्चित्त होता है। (उस समय निम्नलिखित प्रकारसे भगवान् श्रीविष्णुकी स्तुति करे—) ''सर्वव्यापी विष्णुको सदा नमस्कार है। श्रीहरि विष्णुको नमस्कार है। मैं अपने चित्तमें स्थित सर्वव्यापी, अहंकारशून्य श्रीहरिको नमस्कार करता हूँ। मैं अपने मानसमें विराजमान अव्यक्त, अनन्त और अपराजित परमेश्वरको नमस्कार करता हूँ। सबके पूजनीय, जन्म और मरणसे रहित, प्रभावशाली श्रीविष्णुको नमस्कार है। विष्णु मेरे चित्तमें निवास करते हैं, विष्णु मेरी बुद्धिमें विराजमान हैं, विष्णु मेरे अहंकारमें प्रतिष्ठित हैं और विष्णु मुझमें भी स्थित हैं। वे श्रीविष्णु ही चराचर प्राणियोंके कर्मोंके रूपमें स्थित हैं, उनके चिन्तनसे मेरे पापका विनाश हो। जो ध्यान करनेपर पापोंका हरण करते हैं और भावना करनेसे स्वप्नमें दर्शन देते हैं, इन्द्रके अनुज, शरणागतजनोंका दुःख दूर करनेवाले उन पापापहारी श्रीविष्णुको मैं नमस्कार करता हूँ। मैं इस निराधार जगत्में अज्ञानान्धकारमें डूबते हुएको हाथका सहारा देनेवाले परात्परस्वरूप श्रीविष्णुके सम्मुख प्रणत होता हूँ। सर्वेश्वरेश्वर प्रभो! कमलनयन परमात्मन्! हृषीकेश! आपको नमस्कार है। इन्द्रियोंके स्वामी श्रीविष्णो! आपको नमस्कार है। नृसिंह! अनन्तस्वरूप गोविन्द! समस्त भूत-प्राणियोंकी सृष्टि करनेवाले केशव! मेरे द्वारा जो दुर्वचन कहा गया हो अथवा पापपूर्ण चिन्तन किया गया हो, मेरे उस पापका प्रशमन कीजिये; आपको नमस्कार है। केशव! अपने मनके वशमें होकर मैंने जो न करनेयोग्य अत्यन्त उग्र पापपूर्ण चिन्तन किया है, उसे शान्त कीजिये। परमार्थपरायण ब्राह्मणप्रिय गोविन्द! अपनी मर्यादासे कभी च्युत न होनेवाले जगन्नाथ! जगत्का भरण-पोषण करनेवाले देवेश्वर! मेरे पापका विनाश कीजिये। मैंने मध्याह्न, अपराह्न, सायंकाल एवं रात्रिके समय, जानते हुए अथवा अनजाने, शरीर, मन एवं वाणीके द्वारा जो पाप किया हो, '**पुण्डरीकाक्ष**', '**हृषीकेश**', '**माधव**'— आपके इन तीन नामोंके उच्चारणसे मेरे वे सब पाप क्षीण हो जायँ। कमलनयन लक्ष्मीपते! इन्द्रियोंके स्वामी माधव! आज आप मेरे शरीर एवं वाणीद्वारा किये हुए पापोंका हनन कीजिये। आज मैंने खाते, सोते, खड़े, चलते अथवा जागते हुए मन, वाणी और शरीरसे जो भी नीच योनि एवं नरककी प्राप्ति करानेवाला सूक्ष्म अथवा स्थूल पाप किया हो, भगवान् वासुदेवके नामोच्चारणसे वे सब विनष्ट हो जायँ। जो परब्रह्म, परमधाम और परम पवित्र हैं, उन श्रीविष्णुके संकीर्तनसे मेरे पाप लुप्त हो जायँ। जिसको प्राप्त होकर ज्ञानीजन पुनः लौटकर नहीं आते, जो गन्ध, स्पर्श आदि तन्मात्राओंसे रहित

है; श्रीविष्णुका वह परमपद मेरे पापोंका शमन करे"[१] ॥ १—१८ ॥

जो मनुष्य पापोंका विनाश करनेवाले इस स्तोत्रका पठन अथवा श्रवण करता है, वह शरीर, मन और वाणीजनित समस्त पापोंसे छूट जाता है एवं समस्त पापग्रहोंसे मुक्त होकर श्रीविष्णुके परमपदको प्राप्त होता है। इसलिये किसी भी पापके हो जानेपर इस स्तोत्रका जप करे। यह स्तोत्र पापसमूहोंके प्रायश्चित्तके समान है। कृच्छ्र आदि व्रत करनेवालेके लिये भी यह श्रेष्ठ है। स्तोत्र-जप और व्रतरूप प्रायश्चित्तसे सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। इसलिये भोग और मोक्षकी सिद्धिके लिये इनका अनुष्ठान करना चाहिये[२] ॥ १९—२१ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'समस्तपापनाशक स्तोत्रका वर्णन' नामक एक सौ बहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७२ ॥

एक सौ तिहत्तरवाँ अध्याय

अनेकविध प्रायश्चित्तोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं— वसिष्ठ! अब मैं ब्रह्माके द्वारा वर्णित पापोंका नाश करनेवाले प्रायश्चित्त बतलाता हूँ। जिससे प्राणोंका शरीरसे वियोग हो जाय, उस कार्यको 'हनन' कहते हैं। जो राग, द्वेष अथवा प्रमादवश दूसरेके द्वारा या स्वयं ब्राह्मणका वध करता है, वह 'ब्रह्मघाती' होता है। यदि एक कार्यमें तत्पर बहुत-से शस्त्रधारी मनुष्योंमें कोई एक ब्राह्मणका वध करता है, तो वे सब-के-सब 'घातक' माने जाते हैं। ब्राह्मण किसीके द्वारा निन्दित होनेपर, मारा

---

१. विष्णवे विष्णवे नित्यं विष्णवे विष्णवे नमः। नमामि विष्णुं चित्तस्थमहंकारगतिं हरिम् ॥
चित्तस्थमीशमव्यक्तमनन्तमपराजितम् । विष्णुमीड्यमशेषेण अनादिनिधनं विभुम् ॥
विष्णुश्चित्तगतो यन्मे विष्णुर्बुद्धिगतश्च यत्। यच्चाहंकारगो विष्णुर्यद्विष्णुर्मयि संस्थितः ॥
करोति कर्मभूतोऽसौ स्थावरस्य चरस्य च। तत् पापं नाशमायातु तस्मिन्नेव हि चिन्तिते ॥
ध्यातो हरति यत् पापं स्वप्ने दृष्टस्तु भावनात्। तमुपेन्द्रमहं विष्णुं प्रणतार्तिहरं हरिम् ॥
जगत्यस्मिन्निराधारे मज्जमाने तमस्यधः। हस्तावलम्बनं विष्णुं प्रणमामि परात्परम् ॥
सर्वेश्वरेश्वर विभो परमात्मन्नधोक्षज। हृषीकेश हृषीकेश हृषीकेश नमोऽस्तु ते ॥
नृसिंहानन्त गोविन्द भूतभावन केशव। दुरुक्तं दुष्कृतं ध्यातं शमयाघं नमोऽस्तु ते ॥
यन्मया चिन्तितं दुष्टं स्वचित्तवशवर्तिना। अकार्यं महदत्युग्रं तच्छमं नय केशव ॥
ब्रह्मण्यदेव गोविन्द परमार्थपरायण। जगन्नाथ जगद्धातः पापं प्रशमयाच्युत ॥
यथापराह्णे सायाह्ने मध्याह्ने च तथा निशि। कायेन मनसा वाचा कृतं पापमजानता ॥
जानता च हृषीकेश पुण्डरीकाक्ष माधव। नामत्रयोच्चारणतः पापं यातु मम क्षयम् ॥
शरीरं मे हृषीकेश पुण्डरीकाक्ष माधव। पापं प्रशमयाद्य त्वं वाक्कृतं मम माधव ॥
यद् भुञ्जन् यत् स्वपंस्तिष्ठन् गच्छन् जाग्रद् यदास्थितः। कृतवान् पापमद्याहं कायेन मनसा गिरा ॥
यत् स्वल्पमपि यत् स्थूलं कुयोनिनरकावहम्। तद् यातु प्रशमं सर्वं वासुदेवानुकीर्तनात् ॥
परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं च यत्। तस्मिन् प्रकीर्तिते विष्णौ यत् पापं तत् प्रणश्यतु ॥
यत् प्राप्य न निवर्तन्ते गन्धस्पर्शादिवर्जितम्। सूरयस्तत् पदं विष्णोस्तत् सर्वं शमयत्वघम् ॥
(अग्निपुराण १७२। २—१८)

२. पापप्रणाशनं स्तोत्रं यः पठेच्छृणुयादपि। शारीरैर्मानसैर्वाग्जैः कृतैः पापैः प्रमुच्यते ॥
सर्वपापग्रहादिभ्यो याति विष्णोः परं पदम्। तस्मात् पापे कृते जप्यं स्तोत्रं सर्वाघमर्दनम् ॥
प्रायश्चित्तमघौघानां स्तोत्रं व्रतकृते वरम्। प्रायश्चित्तैः स्तोत्रजपैर्व्रतैर्नश्यति पातकम् ॥
(अग्निपुराण १७२। १९—२१)

जानेपर या बन्धनसे पीड़ित होनेपर जिसके उद्देश्यसे प्राणोंका परित्याग कर देता है, उसे 'ब्रह्महत्यारा' माना गया है। औषधोपचार आदि उपकार करनेपर किसीकी मृत्यु हो जाय तो उसे पाप नहीं होता। पुत्र, शिष्य अथवा पत्नीको दण्ड देनेपर उनकी मृत्यु हो जाय, उस दशामें भी दोष नहीं होता। जिन पापोंसे मुक्त होनेका उपाय नहीं बतलाया गया है, देश, काल, अवस्था, शक्ति और पापका विचार करके यत्नपूर्वक प्रायश्चित्तकी व्यवस्था देनी चाहिये। गौ अथवा ब्राह्मणके लिये तत्काल अपने प्राणोंका परित्याग कर दे, अथवा अग्निमें अपने शरीरकी आहुति दे डाले तो मनुष्य ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त हो जाता है। ब्रह्महत्यारा मृतकके सिरका कपाल और ध्वज लेकर भिक्षान्नका भोजन करता हुआ 'मैंने ब्राह्मणका वध किया है'—इस प्रकार अपने पापकर्मको प्रकाशित करे। वह बारह वर्षतक नियमित भोजन करके शुद्ध होता है। अथवा शुद्धिके लिये प्रयत्न करनेवाला ब्रह्मघाती मनुष्य छः वर्षोंमें ही पवित्र हो जाता है। अज्ञानवश पापकर्म करनेवालोंकी अपेक्षा जान-बूझकर पाप करनेवालेके लिये दुगुना प्रायश्चित्त विहित है। ब्राह्मणके वधमें प्रवृत्त होनेपर तीन वर्षतक प्रायश्चित्त करे। ब्रह्मघाती क्षत्रियको दुगुना तथा वैश्य एवं शूद्रको छ:गुना प्रायश्चित्त करना चाहिये। अन्य पापोंका ब्राह्मणको सम्पूर्ण, क्षत्रियको तीन चरण, वैश्यको आधा और शूद्र, वृद्ध, स्त्री, बालक एवं रोगीको एक चरण प्रायश्चित्त करना चाहिये॥ १—११ ॥

क्षत्रियका वध करनेपर ब्रह्महत्याका एकपाद, वैश्यका वध करनेपर अष्टमांश और सदाचारपरायण शूद्रका वध करनेपर षोडशांश प्रायश्चित्त माना गया है। सदाचारिणी स्त्रीकी हत्या करके शूद्रहत्याका प्रायश्चित्त करे। गोहत्यारा संयतचित्त होकर एक मासतक गोशालामें शयन करे, गौओंका अनुगमन करे और पञ्चगव्य पीकर रहे। फिर गोदान करनेसे वह शुद्ध हो जाता है। 'कृच्छ्र' अथवा 'अतिकृच्छ्र' कोई भी व्रत हो, क्षत्रियोंको उसके तीन चरणोंका अनुष्ठान करना चाहिये। अत्यन्त बूढ़ी, अत्यन्त कृश, बहुत छोटी उम्रवाली अथवा रोगिणी स्त्रीकी हत्या करके द्विज पूर्वोक्त विधिके अनुसार ब्रह्महत्याका आधा प्रायश्चित्त करे। फिर ब्राह्मणोंको भोजन कराये और यथाशक्ति तिल एवं सुवर्णका दान करे। मुक्के या थप्पड़के प्रहारसे, सींग तोड़नेसे और लाठी आदिसे मारनेपर यदि गौ मर जाय तो उसे 'गोवध' कहा जाता है। मारने, बाँधने, गाड़ी आदिमें जोतने, रोकने अथवा रस्सीका फंदा लगानेसे गौकी मृत्यु हो जाय तो तीन चरण प्रायश्चित्त करे। काठसे गोवध करनेवाला 'सांतपनव्रत', ढेलेसे मारनेवाला 'प्राजापत्य', पत्थरसे हत्या करनेवाला 'तप्तकृच्छ्र' और शस्त्रसे वध करनेवाला 'अतिकृच्छ्र' करे। बिल्ली, गोह, नेवला, मेढक, कुत्ता अथवा पक्षीकी हत्या करके तीन दिन दूध पीकर रहे; अथवा 'प्राजापत्य' या 'चान्द्रायण' व्रत करे॥ १२—१९$\frac{1}{2}$ ॥

गुप्त पाप होनेपर गुप्त और प्रकट पाप होनेपर प्रकट प्रायश्चित्त करे। समस्त पापोंके विनाशके लिये सौ प्राणायाम करे। कटहल, द्राक्षा, महुआ, खजूर, ताड़, ईख और मुनक्केका रस तथा टंकमाध्वीक, मैरेय और नारियलका रस—ये मादक होते हुए भी मद्य नहीं हैं। पैटी ही मुख्य सुरा मानी गयी है। ये सब मदिराएँ द्विजोंके लिये निषिद्ध हैं। सुरापान करनेवाला खौलता हुआ जल पीकर शुद्ध होता है। अथवा सुरापानके पापसे मुक्त होनेके लिये एक वर्षतक जटा एवं ध्वजा धारण किये हुए वनमें निवास करे। नित्य रात्रिके समय एक बार चावलके कण या तिलकी खलीका भोजन करे। अज्ञानवश मल-



श्रीलक्ष्मीजी [अग्नि० अ० ५०]



श्रीसरस्वतीजी [अग्नि० अ० ५०]



श्रीगङ्गाजी [अग्नि० अ० ५०]



श्रीयमुनाजी [अग्नि० अ० ५०]

मूत्र अथवा मदिरासे छूये हुए पदार्थका भक्षण करके ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—तीनों वर्णोंके लोग पुनः संस्कारके योग्य हो जाते हैं। सुरापात्रमें रखा हुआ जल पीकर सात दिन व्रत करे। चाण्डालका जल पीकर छः दिन उपवास रखे तथा चाण्डालोंके कूएँ अथवा पात्रका पानी पीकर 'सांतपन-व्रत' करे। अन्त्यजका जल पीकर द्विज तीन रात उपवास रखकर पञ्चगव्यका पान करे। नवीन जल या जलके साथ मत्स्य, कण्टक, शम्बूक, शङ्ख, सीप और कौड़ी पीनेपर पञ्चगव्यका आचमन करनेसे शुद्धि होती है। शवयुक्त कूपका जल पीनेपर मनुष्य 'त्रिरात्रव्रत' करनेसे शुद्ध होता है। चाण्डालका अन्न खाकर 'चान्द्रायणव्रत' करे। आपत्कालमें शूद्रके घर भोजन करनेपर पश्चात्तापसे शुद्धि हो जाती है। शूद्रके पात्रमें भोजन करनेवाला ब्राह्मण उपवास करके पञ्चगव्य पीनेसे शुद्ध होता है। कन्दुपक्व (भूजा), स्नेहपक्व (घी-तैलमें पके पदार्थ), घी-तैल, दही, सत्तू, गुड़, दूध और रस आदि—ये वस्तुएँ शूद्रके घरसे ली जानेपर भी निन्दित नहीं हैं। बिना स्नान किये भोजन करनेवाला एक दिन उपवास रखकर दिनभर जप करनेसे पवित्र होता है। मूत्र-त्याग करके अशौचावस्थामें भोजन करनेपर 'त्रिरात्रव्रतसे' शुद्धि होती है। केश एवं कीटसे युक्त, जान-बूझकर पैरसे छूआ हुआ, भ्रूणघातीका देखा हुआ, रजस्वला स्त्रीका छूआ हुआ, कौए आदि पक्षियोंका जूठा किया हुआ, कुत्तेका स्पर्श किया हुआ अथवा गौका सूँघा हुआ अन्न खाकर तीन दिन उपवास करे। वीर्य, मल या मूत्रका भक्षण करनेपर 'प्राजापत्य-व्रत' करे। नवश्राद्धमें 'चान्द्रायण', मासिक श्राद्धमें 'पराकव्रत', त्रिपाक्षिक श्राद्धमें 'अतिकृच्छ्र', षाण्मासिक श्राद्धमें 'प्राजापत्य' और वार्षिक श्राद्धमें 'एकपाद प्राजापत्य-व्रत' करे। पहले और दूसरे दोनों दिन वार्षिक श्राद्ध हो तो दूसरे वार्षिक श्राद्धमें एक दिनका उपवास करे। निषिद्ध वस्तुका भक्षण करनेपर उपवास करके प्रायश्चित्त करे। भूतृण (छत्राक), लहसुन और शिग्रुक् (श्वेत मरिच) खा लेनेपर 'एकपाद प्राजापत्य' करे। अभोज्यान्न, शूद्रका अन्न, स्त्री एवं शूद्रका उच्छिष्ट या अभक्ष्य मांसका भक्षण करके सात दिन केवल दूध पीकर रहे। जो ब्रह्मचारी, संन्यासी अथवा व्रतस्थ द्विज मधु, मांस या जननाशौच एवं मरणाशौचका अन्न भोजन कर लेता है, वह 'प्राजापत्य-कृच्छ्र' करे॥ २०—३९॥

अन्यायपूर्वक दूसरेका धन हड़प लेनेको 'चोरी' कहते हैं। सुवर्णकी चोरी करनेवाला राजाके द्वारा मूसलसे मारे जानेपर शुद्ध होता है। सुवर्णकी चोरी करनेवाला, सुरापान करनेवाला, ब्रह्मघाती और गुरुपत्नीगामी बारह वर्षतक भूमिपर शयन और जटा धारण करे। वह एक समय केवल पत्ते और फल-मूलका भोजन करनेसे शुद्ध होता है। चोरी अथवा सुरापान करके एक वर्षतक 'प्राजापत्य-व्रत' करे। मणि, मोती, मूँगा, ताँबा, चाँदी, लोहा, काँसा और पत्थरकी चोरी करनेवाला बारह दिन चावलके कण खाकर रहे। मनुष्य, स्त्री, क्षेत्र, गृह, बावली, कूप और तालाबका अपहरण करनेपर 'चान्द्रायण-व्रत'से शुद्धि मानी गयी है। भक्ष्य एवं भोज्य पदार्थ, सवारी, शय्या, आसन, पुष्प, मूल अथवा फलकी चोरी करनेवाला पञ्चगव्य पीकर शुद्ध होता है। तृण, काष्ठ, वृक्ष, सूखा अन्न, गुड़, वस्त्र, चर्म या मांस चुरानेवाला तीन दिन निराहार रहे। सौतेली माँ, बहन, गुरुपुत्री, गुरुपत्नी और अपनी पुत्रीसे समागम करनेवाला 'गुरुपत्नीगामी' माना गया है। गुरुपत्नीगमन करनेपर अपने पापकी घोषणा करके जलते हुए लोहेकी शय्यापर तप्त-लौहमयी

स्त्रीका आलिङ्गन करके प्राणत्याग करनेसे शुद्ध होता है। अथवा गुरुपत्नीगामी तीन मासतक 'चान्द्रायण-व्रत' करे। पतित स्त्रियोंके लिये भी इसी प्रायश्चित्तका विधान करे। पुरुषको परस्त्रीगमन करनेपर जो प्रायश्चित्त बतलाया गया है, वही उनसे करावे। कुमारी कन्या, चाण्डाली, पुत्री और अपने सपिण्ड तथा पुत्रकी पत्नीमें वीर्यसेचन करनेवालेको प्राणत्याग कर देना चाहिये। द्विज एक रात शूद्राका सेवन करके जो पाप संचित करता है, वह तीन वर्षतक नित्य गायत्री-जप एवं भिक्षान्नका भोजन करनेसे नष्ट होता है। चाची, भाभी, चाण्डाली, पुक्कसी, पुत्रवधू, बहन, सखी, मौसी, बुआ, निक्षिप्ता (धरोहरके रूपमें रखी हुई), शरणागता, मामी, सगोत्रा बहिन, दूसरेको चाहनेवाली स्त्री, शिष्यपत्नी अथवा गुरुपत्नीसे गमन करके, 'चान्द्रायण-व्रत' करे॥ ४०—५४॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'अनेकविध प्रायश्चित्तोंका वर्णन' नामक एक सौ तिहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १७३॥

एक सौ चौहत्तरवाँ अध्याय

प्रायश्चित्तोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं— देव-मन्दिरके पूजन आदिका लोप करनेपर प्रायश्चित्त करना चाहिये। पूजाका लोप करनेपर एक सौ आठ बार जप करे और दुगुनी पूजाकी व्यवस्था करके पञ्चोपनिषद्-मन्त्रोंसे हवन कर ब्राह्मण-भोजन करावे। सूतिका स्त्री, अन्त्यज अथवा रजस्वलाके द्वारा देवमूर्तिका स्पर्श होनेपर सौ बार गायत्री-जप करे। दुगुना स्नान करके पञ्चोपनिषद्-मन्त्रोंसे पूजन एवं ब्राह्मण-भोजन कराये। होमका नियम भङ्ग होनेपर होम, स्नान और पूजन करे। होम-द्रव्यको चूहे आदि खा लें या वह कीटयुक्त हो जाय, तो उतना अंश छोड़कर तथा शेष द्रव्यका जलसे प्रोक्षण करके देवताओंका पूजन करे। भले ही अङ्कुरमात्र अर्पण करे, परंतु छिन्न-भिन्न द्रव्यका बहिष्कार कर दे। अस्पृश्य मनुष्योंका स्पर्श हो जानेपर पूजा-द्रव्यको दूसरे पात्रमें रख दे। पूजाके समय मन्त्र अथवा द्रव्यकी त्रुटि होनेपर दैव एवं मानुष विघ्नोंका विनाश करनेवाले गणपतिके बीज-मन्त्रका जप करके पुनः पूजन करे। देव-मन्दिरका कलश नष्ट हो जानेपर सौ बार मन्त्र-जप करे। देवमूर्तिके हाथसे गिरने एवं नष्ट हो जानेपर उपवासपूर्वक अग्निमें सौ आहुतियाँ देनेसे शुभ होता है। जिस पुरुषके मनमें पाप करनेपर पश्चात्ताप होता है, उसके लिये श्रीहरिका स्मरण ही परम प्रायश्चित्त है। चान्द्रायण, पराक एवं प्राजापत्य-व्रत पापसमूहोंका विनाश करनेवाले हैं। सूर्य, शिव, शक्ति और विष्णुके मन्त्रका जप भी पापोंका प्रशमन करता है। गायत्री, प्रणव, पापप्रणाशनस्तोत्र एवं मन्त्रका जप पापोंका अन्त करनेवाला है। सूर्य, शिव, शक्ति और विष्णुके 'क' से प्रारम्भ होनेवाले, 'रा' बीजसे संयुक्त, रादि आदि और रान्त मन्त्र करोड़गुना फल देनेवाले हैं। इनके सिवा '**ॐ क्लीं**' से प्रारम्भ होनेवाले चतुर्थ्यन्त एवं अन्तमें '**नमः**' संयुक्त मन्त्र सम्पूर्ण कामनाओंको सिद्ध करनेवाले हैं। नृसिंह भगवान्के द्वादशाक्षर एवं अष्टाक्षर मन्त्रका जप पापसमूहोंका विनाश करता है। अग्निपुराणका पठन एवं श्रवण करनेसे भी मनुष्य समस्त पापसमूहोंसे छूट जाता है। इस पुराणमें अग्निदेवका माहात्म्य भी वर्णित है। परमात्मा श्रीविष्णु ही मुखस्वरूप अग्निदेव हैं, जिनका सम्पूर्ण वेदोंमें गान किया गया है।

भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले उन परमेश्वरका प्रवृत्ति और निवृत्ति-मार्गसे भी पूजन किया जाता है। अग्निरूपमें स्थित श्रीविष्णुके उद्देश्यसे हवन, जप, ध्यान, पूजन, स्तवन एवं नमस्कार शरीर-सम्बन्धी सभी पापोंका विध्वंस करनेवाला है। दस प्रकारके स्वर्णदान, बारह प्रकारके धान्यदान, तुलापुरुष आदि सोलह महादान एवं सर्वश्रेष्ठ अन्नदान—ये सब महापापोंका अपहरण करनेवाले हैं। तिथि, वार, नक्षत्र, संक्रान्ति, योग, मन्वन्तरारम्भ आदिके समय सूर्य, शिव, शक्ति तथा विष्णुके उद्देश्यसे किये जानेवाले व्रत आदि पापोंका प्रशमन करते हैं। गङ्गा, गया, प्रयाग, अयोध्या, उज्जैन, कुरुक्षेत्र, पुष्कर, नैमिषारण्य, पुरुषोत्तमक्षेत्र, शालग्राम, प्रभासक्षेत्र आदि तीर्थ पापसमूहोंको विनष्ट करते हैं। 'मैं परम प्रकाशस्वरूप बल हूँ।'—इस प्रकारकी धारणा भी पापोंका विनाश करनेवाली है। ब्रह्मपुराण, अग्निपुराण, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, भगवान्‌के अवतार, समस्त देवताओंकी प्रतिमा-प्रतिष्ठा एवं पूजन, ज्यौतिष, पुराण, स्मृतियाँ, तप, व्रत, अर्थशास्त्र, सृष्टिके आदितत्त्व, आयुर्वेद, धनुर्वेद, शिक्षा, छन्दः-शास्त्र, व्याकरण, निरुक्त, कोष, कल्प, न्याय, मीमांसा-शास्त्र एवं अन्य सब कुछ भी भगवान् श्रीविष्णुकी विभूतियाँ हैं। वे श्रीहरि एक होते हुए भी सगुण-निर्गुण दो रूपोंमें विभक्त एवं सम्पूर्ण संसारमें संनिहित हैं। जो ऐसा जानता है, श्रीहरि-स्वरूप उन महापुरुषका दर्शन करनेसे दूसरोंके पाप विनष्ट हो जाते हैं। भगवान् श्रीहरि ही अष्टादश विद्यारूप, सूक्ष्म, स्थूल, सच्चित्-स्वरूप, अविनाशी परब्रह्म एवं निष्पाप विष्णु हैं॥ १—२४॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'प्रायश्चित्त-वर्णन' नामक एक सौ चौहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १७४॥

एक सौ पचहत्तरवाँ अध्याय

व्रतके विषयमें अनेक ज्ञातव्य बातें

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठजी! अब मैं तिथि, वार, नक्षत्र, दिवस, मास, ऋतु, वर्ष तथा सूर्य-संक्रान्तिके अवसरपर होनेवाले स्त्री-पुरुष-सम्बन्धी व्रत आदिका क्रमशः वर्णन करूँगा, ध्यान देकर सुनिये—॥ १॥

शास्त्रोक्त नियमको ही 'व्रत' कहते हैं, वही 'तप' माना गया है। 'दम' (इन्द्रियसंयम) और 'शम' (मनोनिग्रह) आदि विशेष नियम भी व्रतके ही अङ्ग हैं। व्रत करनेवाले पुरुषको शारीरिक संताप सहन करना पड़ता है, इसलिये व्रतको 'तप' नाम दिया गया है। इसी प्रकार व्रतमें इन्द्रियसमुदायका नियमन (संयम) करना होता है, इसलिये उसे 'नियम' भी कहते हैं। जो ब्राह्मण या द्विज (क्षत्रिय-वैश्य) अग्निहोत्री नहीं हैं, उनके लिये व्रत, उपवास, नियम तथा नाना प्रकारके दानोंसे कल्याणकी प्राप्ति बतायी गयी है॥ २—४॥

उक्त व्रत-उपवास आदिके पालनसे प्रसन्न होकर देवता एवं भगवान् भोग तथा मोक्ष प्रदान करते हैं। पापोंसे उपावृत (निवृत्त) होकर सब प्रकारके भोगोंका त्याग करते हुए जो सद्गुणोंके साथ वास करता है, उसीको 'उपवास' समझना चाहिये। उपवास करनेवाले पुरुषको काँसेके बर्तन, मांस, मसूर, चना, कोदो, साग, मधु, पराये अन्न तथा स्त्री-सम्भोगका त्याग करना चाहिये। उपवासकालमें फूल, अलंकार, सुन्दर

वस्त्र, धूप, सुगन्ध, अङ्गराग, दाँत धोनेके लिये मञ्जन तथा दाँतौन—इन सब वस्तुओंका सेवन अच्छा नहीं माना गया है। प्रात:काल जलसे मुँह धो, कुल्ला करके, पञ्चगव्य लेकर व्रत प्रारम्भ कर देना चाहिये॥ ५—९॥

अनेक बार जल पीने, पान खाने, दिनमें सोने तथा मैथुन करनेसे उपवास (व्रत) दूषित हो जाता है। क्षमा, सत्य, दया, दान, शौच, इन्द्रियसंयम, देवपूजा, अग्निहोत्र, संतोष तथा चोरीका अभाव—ये दस नियम सामान्यत: सम्पूर्ण व्रतोंमें आवश्यक माने गये हैं। व्रतमें पवित्र ऋचाओंको जपे और अपनी शक्तिके अनुसार हवन करे। व्रती पुरुष प्रतिदिन स्नान तथा परिमित भोजन करे। गुरु, देवता तथा ब्राह्मणोंका पूजन किया करे। क्षार, शहद, नमक, शराब और मांसको त्याग दे। तिल-मूँग आदिके अतिरिक्त धान्य भी त्याज्य हैं। धान्य (अन्न)-में उड़द, कोदो, चीना, देवधान्य, शमीधान्य, गुड़, शितधान्य, पय तथा मूली—ये क्षारगण माने गये हैं। व्रतमें इनका त्याग कर देना चाहिये। धान, साठीका चावल, मूँग, मटर, तिल, जौ, साँवाँ, तिन्नीका चावल और गेहूँ आदि अन्न व्रतमें उपयोगी हैं। कुम्हड़ा, लौकी, बैंगन, पालक तथा पूतिकाको त्याग दे। चरु, भिक्षामें प्राप्त अन्न, सत्तूके दाने, साग, दही, घी, दूध, साँवाँ, अगहनीका चावल, तिन्नीका चावल, जौका हलुवा तथा मूल तण्डुल—ये 'हविष्य' माने गये हैं। इन्हें व्रतमें, नक्तव्रतमें तथा अग्निहोत्रमें भी उपयोगी बताया गया है। अथवा मांस, मदिरा आदि अपवित्र वस्तुओंको छोड़कर सभी उत्तम वस्तुएँ व्रतमें हितकर हैं॥ १०—१७॥

'प्राजापत्यव्रत'का अनुष्ठान करनेवाला द्विज तीन दिन केवल प्रात:काल और तीन दिन केवल संध्याकालमें भोजन करे। फिर तीन दिन केवल बिना माँगे जो कुछ मिल जाय, उसीका दिनमें एक समय भोजन करे; उसके बाद तीन दिनोंतक उपवास करके रहे। (इस प्रकार यह बारह दिनोंका व्रत है।) इसी प्रकार 'अतिकृच्छ्र-व्रत'का अनुष्ठान करनेवाला द्विज पूर्ववत् तीन दिन प्रात:काल, तीन दिन सायंकाल और तीन दिनोंतक बिना माँगे प्राप्त हुए अन्नका एक-एक ग्रास भोजन करे तथा अन्तिम दिनोंमें उपवास करे। गायका मूत्र, गोबर, दूध, दही, घी तथा कुशका जल—इन सबको मिलाकर प्रथम दिन पीये। फिर दूसरे दिन उपवास करे—यह 'सांतपनकृच्छ्र' नामक व्रत है। उपर्युक्त द्रव्योंका पृथक्-पृथक् एक-एक दिनके क्रमसे छ: दिनोंतक सेवन करके सातवें दिन उपवास करे—इस प्रकार यह एक सप्ताहका व्रत 'महासांतपन-कृच्छ्र' कहलाता है, जो पापोंका नाश करनेवाला है। लगातार बारह दिनोंके उपवाससे सम्पन्न होनेवाले व्रतको 'पराक' कहते हैं। यह सब पापोंका नाश करनेवाला है। इससे तिगुने अर्थात् छत्तीस दिनोंतक उपवास करनेपर यही व्रत 'महापराक' कहलाता है। पूर्णिमाको पंद्रह ग्रास भोजन करके प्रतिदिन एक-एक ग्रास घटाता रहे; अमावास्याको उपवास करे तथा प्रतिपदाको एक ग्रास भोजन आरम्भ करके नित्य एक-एक ग्रास बढ़ाता रहे, इसे 'चान्द्रायण' कहते हैं। इसके विपरीतक्रमसे भी यह व्रत किया जाता है। (जैसे शुक्ल प्रतिपदाको एक ग्रास भोजन करे; फिर एक-एक ग्रास बढ़ाते हुए पूर्णिमाको पंद्रह ग्रास भोजन करे। तत्पश्चात् कृष्ण प्रतिपदासे एक-एक ग्रास घटाकर अमावास्याको उपवास करे)॥ १८—२३॥

कपिला गायका मूत्र एक पल, गोबर अँगूठेके आधे हिस्सेके बराबर, दूध सात पल, दही दो पल, घी एक पल तथा कुशका जल एक पल

एकमें मिला दे। इनका मिश्रण करते समय गायत्री-मन्त्रसे गोमूत्र डाले। **'गन्धद्वारां दुराधर्षां०'** (श्रीसूक्त) इस मन्त्रसे गोबर मिलाये। **'आप्यायस्व०'** (यजु० १२।११२) इस मन्त्रसे दूध डाल दे। **'दधि क्राव्णो०'** (यजु० २३।३२) इस मन्त्रसे दही मिलाये। **'तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि०'** (यजु० २२।१) इस मन्त्रसे घी डाले तथा **'देवस्य०'** (यजु० २०।३) इस मन्त्रसे कुशोदक मिलाये। इस प्रकार जो वस्तु तैयार होती है, उसका नाम 'ब्रह्मकूर्च' है। ब्रह्मकूर्च तैयार होनेपर दिनभर भूखा रहकर सायंकालमें अघमर्षण-मन्त्र अथवा प्रणवके साथ **'आपो हि ष्ठा०'** (यजु० ११।५०) इत्यादि ऋचाओंका जप करके उसे पी डाले। ऐसा करनेवाला सब पापोंसे मुक्त हो विष्णुलोकमें जाता है। दिनभर उपवास करके केवल सायंकालमें भोजन करनेवाला, दिनके आठ भागोंमेंसे केवल छठे भागमें आहार ग्रहण करनेवाला संन्यासी, मांसत्यागी, अश्वमेधयज्ञ करनेवाला तथा सत्यवादी पुरुष स्वर्गको जाते हैं। अग्न्याधान, प्रतिष्ठा, यज्ञ, दान, व्रत, देवव्रत, वृषोत्सर्ग, चूडाकरण, मेखलाबन्ध (यज्ञोपवीत), विवाह आदि माङ्गलिक कार्य तथा अभिषेक—ये सब कार्य मलमासमें नहीं करने चाहिये॥ २४—३०॥

अमावास्यासे अमावास्यातकका समय 'चान्द्रमास' कहलाता है। तीस दिनोंका 'सावन मास' माना गया है। संक्रान्तिसे संक्रान्तिकालतक 'सौरमास' कहलाता है तथा क्रमशः सम्पूर्ण नक्षत्रोंके परिवर्तनसे 'नाक्षत्रमास' होता है। विवाह आदिमें 'सौरमास', यज्ञ आदिमें 'सावन मास' और वार्षिक श्राद्ध तथा पितृकार्यमें 'चान्द्रमास' उत्तम माना गया है। आषाढ़की पूर्णिमाके बाद जो पाँचवाँ पक्ष आता है, उसमें पितरोंका श्राद्ध अवश्य करना चाहिये। उस समय सूर्य कन्याराशिपर गये हैं या नहीं, इसका विचार श्राद्धके लिये अनावश्यक है॥ ३१—३३॥

मासिक तथा वार्षिक व्रतमें जब कोई तिथि दो दिनकी हो जाय तो उसमें दूसरे दिनवाली तिथि उत्तम जाननी चाहिये और पहलीको मलिन। 'नक्षत्रव्रत'में उसी नक्षत्रको उपवास करना चाहिये, जिसमें सूर्य अस्त होते हों। 'दिवसव्रत'में दिनव्यापिनी तथा 'नक्तव्रत'में रात्रिव्यापिनी तिथियाँ पुण्य एवं शुभ मानी गयी हैं। द्वितीयाके साथ तृतीयाका, चतुर्थी-पञ्चमीका, षष्ठीके साथ सप्तमीका, अष्टमी-नवमीका, एकादशीके साथ द्वादशीका, चतुर्दशीके साथ पूर्णिमाका तथा अमावास्याके साथ प्रतिपदाका वेध उत्तम है। इसी प्रकार षष्ठी-सप्तमी आदिमें भी समझना चाहिये। इन तिथियोंका मेल महान् फल देनेवाला है। इसके विपरीत, अर्थात् प्रतिपदासे द्वितीयाका, तृतीयासे चतुर्थी आदिका जो युग्मभाव है, वह बड़ा भयानक होता है, वह पहलेके किये हुए समस्त पुण्यको नष्ट कर देता है॥ ३४—३७॥

राजा, मन्त्री तथा व्रतधारी पुरुषोंके लिये विवाहमें, उपद्रव आदिमें, दुर्गम स्थानोंमें, संकटके समय तथा युद्धके अवसरपर तत्काल शुद्धि बतायी गयी है। जिसने दीर्घकालमें समाप्त होनेवाले व्रतको आरम्भ किया है, वह स्त्री यदि बीचमें रजस्वला हो जाय तो वह रज उसके व्रतमें बाधक नहीं होता। गर्भवती स्त्री, प्रसव-गृहमें पड़ी हुई स्त्री अथवा रजस्वला कन्या जब अशुद्ध होकर व्रत करनेयोग्य न रह जाय तो सदा दूसरेसे उस शुभ कार्यका सम्पादन कराये। यदि क्रोधसे, प्रमादसे अथवा लोभसे व्रत-भङ्ग हो जाय तो तीन दिनोंतक भोजन न करे अथवा मूँड़ मुँड़ा ले। यदि व्रत करनेमें असमर्थता हो तो पत्नी या पुत्रसे उस व्रतको करावे। आरम्भ किये हुए व्रतका पालन जननाशौच तथा मरणाशौचमें भी करना चाहिये। केवल पूजनका कार्य बंद कर देना चाहिये। यदि व्रती पुरुष उपवासके कारण मूर्च्छित हो जाय तो गुरु दूध पिलाकर या और किसी उत्तम उपायसे उसे होशमें लाये। जल, फल, मूल, दूध, हविष्य (घी), ब्राह्मणकी

इच्छापूर्ति, गुरुका वचन तथा औषध—ये आठ व्रतके नाशक नहीं हैं* ॥ ३८—४३ ॥

(व्रती मनुष्य व्रतके स्वामी देवतासे इस प्रकार प्रार्थना करे—) 'व्रतपते! मैं कीर्ति, संतान विद्या आदि, सौभाग्य, आरोग्य, अभिवृद्धि, निर्मलता तथा भोग एवं मोक्षके लिये इस व्रतका अनुष्ठान करता हूँ। यह श्रेष्ठ व्रत मैंने आपके समक्ष ग्रहण किया है। जगत्पते! आपके प्रसादसे इसमें निर्विघ्न सिद्धि प्राप्त हो। संतोंके पालक! इस श्रेष्ठ व्रतको ग्रहण करनेके पश्चात् यदि इसकी पूर्ति हुए बिना ही मेरी मृत्यु हो जाय तो भी आपके प्रसन्न होनेसे वह अवश्य ही पूर्ण हो जाय। केशव! आप व्रतस्वरूप हैं, संसारकी उत्पत्तिके स्थान एवं जगत्को कल्याण प्रदान करनेवाले हैं; मैं सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धिके लिये इस मण्डलमें आपका आवाहन करता हूँ। आप मेरे समीप उपस्थित हों। मनके द्वारा प्रस्तुत किये हुए पञ्चगव्य, पञ्चामृत तथा उत्तम जलके द्वारा मैं भक्तिपूर्वक आपको स्नान कराता हूँ। आप मेरे पापोंके नाशक हों। अर्घ्यपते! गन्ध, पुष्प और जलसे युक्त उत्तम अर्घ्य एवं पाद्य ग्रहण कीजिये, आचमन कीजिये तथा मुझे सदा अर्घ (सम्मान) पानेके योग्य बनाइये। वस्त्रपते! व्रतोंके स्वामी! यह पवित्र वस्त्र ग्रहण कीजिये और मुझे सदा सुन्दर वस्त्र एवं आभूषणों आदिसे आच्छादित किये रहिये। गन्धस्वरूप परमात्मन्! यह परम निर्मल उत्तम सुगन्धसे युक्त चन्दन लीजिये तथा मुझे पापकी दुर्गन्धसे रहित और पुण्यकी सुगन्धसे युक्त कीजिये। भगवन्! यह पुष्प लीजिये और मुझे सदा फल-फूल आदिसे परिपूर्ण बनाइये। यह फूलकी निर्मल सुगन्ध आयु तथा आरोग्यकी वृद्धि करनेवाली हो। संतोंके स्वामी! गुग्गुल और घी मिलाये हुए इस दशाङ्ग धूपको ग्रहण कीजिये। धूपद्वारा पूजित परमेश्वर! आप मुझे उत्तम धूपकी सुगन्धसे सम्पन्न कीजिये। दीपस्वरूप देव! सबको प्रकाशित करनेवाले इस प्रकाशपूर्ण दीपको, जिसकी शिखा ऊपरकी ओर उठ रही है, ग्रहण कीजिये और मुझे भी प्रकाशयुक्त एवं ऊर्ध्वगति (उन्नतिशील एवं ऊपरके लोकोंमें जानेवाला) बनाइये। अन्न आदि उत्तम वस्तुओंके अधीश्वर! इस अन्न आदि नैवेद्यको ग्रहण कीजिये और मुझे ऐसा बनाइये, जिससे मैं अन्न आदि वैभवसे सम्पन्न, अन्नदाता एवं सर्वस्वदान करनेवाला हो सकूँ। प्रभो! व्रतके द्वारा आराध्य देव! मैंने मन्त्र, विधि तथा भक्तिके बिना ही जो आपका पूजन किया है, वह आपकी कृपासे परिपूर्ण—सफल हो जाय। आप मुझे धर्म, धन, सौभाग्य, गुण, संतति, कीर्ति, विद्या, आयु, स्वर्ग एवं मोक्ष प्रदान करें। व्रतपते! प्रभो! आप इस समय मेरे द्वारा की हुई इस पूजाको स्वीकार करके पुनः यहाँ पधारने और वरदान देनेके लिये अपने स्थानको जायँ' ॥ ४४—५८ ॥

सब प्रकारके व्रतोंमें व्रतधारी पुरुषको उचित है कि वह स्नान करके व्रत-सम्बन्धी देवताकी स्वर्णमयी प्रतिमाका यथाशक्ति पूजन करे तथा रातको भूमिपर सोये। व्रतके अन्तमें जप, होम और दान सामान्य कर्तव्य है। साथ ही अपनी शक्तिके अनुसार चौबीस, बारह, पाँच, तीन अथवा एक ब्राह्मणकी एवं गुरुजनोंकी पूजा करके उन्हें भोजन करावे और यथाशक्ति सबको पृथक्-पृथक् गौ, सुवर्ण आदि; खड़ाऊँ, जूता, जलपात्र, अन्नपात्र, मृत्तिका, छत्र, आसन, शय्या, दो वस्त्र और कलश आदि वस्तुएँ दक्षिणामें दे। इस प्रकार यहाँ 'व्रत'की परिभाषा बतायी गयी है॥ ५९—६२ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'व्रत-परिभाषाका वर्णन' नामक एक सौ पचहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १७५ ॥

---

* अष्टौ तान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः। हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम्॥ (अग्नि० १७५। ४३)

एक सौ छिहत्तरवाँ अध्याय

प्रतिपदा तिथिके व्रत

अग्निदेव कहते हैं— अब मैं आपसे प्रतिपद् आदि तिथियोंके व्रतोंका वर्णन करूँगा, जो सम्पूर्ण मनोरथोंको देनेवाले हैं। कार्तिक, आश्विन और चैत्र मासमें कृष्णपक्षकी प्रतिपद् ब्रह्माजीकी तिथि है। पूर्णिमाको उपवास करके प्रतिपद्को ब्रह्माजीका पूजन करे। पूजा '**ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः।**'— इस मन्त्रसे अथवा गायत्री-मन्त्रसे करनी चाहिये। यह व्रत एक वर्षतक करे। ब्रह्माजीके सुवर्णमय विग्रहका पूजन करे, जिसके दाहिने हाथोंमें स्फटिकाक्षकी माला और स्रुवा हों तथा बायें हाथोंमें स्रुक् एवं कमण्डलु हों। साथ ही लंबी दाढ़ी और सिरपर जटा भी हो। यथाशक्ति दूध चढ़ावे और मनमें यह उद्देश्य रखे कि 'ब्रह्माजी मुझपर प्रसन्न हों।' यों करनेवाला मनुष्य निष्पाप होकर स्वर्गमें उत्तम भोग भोगता है और पृथ्वीपर धनवान् ब्राह्मणके रूपमें जन्म लेता है॥ १—४॥

अब 'धन्यव्रत'का वर्णन करता हूँ। इसका अनुष्ठान करनेसे अधन्य भी धन्य हो जाता है। पहले मार्गशीर्ष-मासकी प्रतिपद्को उपवास करके रातमें '**अग्नये नमः।**'— इस मन्त्रसे होम और अग्निकी पूजा करे। इसी प्रकार एक वर्षतक प्रत्येक मासकी प्रतिपद्को अग्निकी आराधना करनेसे मनुष्य सब सुखोंका भागी होता है।

प्रत्येक प्रतिपदाको एकभुक्त (दिनमें एक समय भोजन करके) रहे। सालभरमें व्रतकी समाप्ति होनेपर ब्राह्मण कपिला गौ दान करे। ऐसा करनेवाला मनुष्य 'वैश्वानर'-पदको प्राप्त होता है। यह 'शिखिव्रत' कहलाता है॥ ५—७॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'प्रतिपद्-व्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ छिहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १७६॥

एक सौ सतहत्तरवाँ अध्याय

द्वितीया तिथिके व्रत

अग्निदेव कहते हैं— अब मैं द्वितीयाके व्रतोंका वर्णन करूँगा, जो भोग और मोक्ष आदि देनेवाले हैं। प्रत्येक मासकी द्वितीयाको फूल खाकर रहे और दोनों अश्विनीकुमार नामक देवताओंकी पूजा करे। एक वर्षतक इस व्रतके अनुष्ठानसे सुन्दर स्वरूप एवं सौभाग्यकी प्राप्ति होती है और अन्तमें व्रती पुरुष स्वर्गलोकका भागी होता है। कार्तिकमें शुक्लपक्षकी द्वितीयाको यमकी पूजा करे। फिर एक वर्षतक प्रत्येक शुक्ल-द्वितीयाको उपवासपूर्वक व्रत रखे। ऐसा करनेवाला पुरुष स्वर्गमें जाता है, नरकमें नहीं पड़ता॥ १-२$\frac{1}{2}$॥

अब 'अशून्य-शयन' नामक व्रत बतलाता हूँ, जो स्त्रियोंको अवैधव्य (सदा सुहाग) और पुरुषोंको पत्नी-सुख आदि देनेवाला है। श्रावण मासके कृष्णपक्षकी द्वितीयाको इस व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। (इस व्रतमें भगवान्से इस प्रकार प्रार्थना की जाती है—) 'वक्षःस्थलमें श्रीवत्सचिह्न धारण करनेवाले श्रीकान्त! आप लक्ष्मीजीके धाम और स्वामी हैं; अविनाशी एवं सनातन परमेश्वर हैं। आपकी कृपासे धर्म, अर्थ और काम प्रदान करनेवाला मेरा गार्हस्थ्य-आश्रम नष्ट न हो। मेरे घरके अग्निहोत्रकी आग कभी न बुझे, गृहदेवता कभी अदृश्य न हों। मेरे पितर

नाशसे बचे रहें और मुझसे दाम्पत्य-भेद न हो। जैसे आप कभी लक्ष्मीजीसे विलग नहीं होते, उसी प्रकार मेरा भी पत्नीके साथका सम्बन्ध कभी टूटने या छूटने न पावे। वरदानी प्रभो! जैसे आपकी शय्या कभी लक्ष्मीजीसे सूनी नहीं होती, मधुसूदन! उसी प्रकार मेरी शय्या भी पत्नीसे सूनी न हो।' इस प्रकार व्रत आरम्भ करके एक वर्षतक प्रतिमासकी द्वितीयाको श्रीलक्ष्मी और विष्णुका विधिवत् पूजन करे। शय्या और फलका दान भी करे। साथ ही प्रत्येक मासमें उसी तिथिको चन्द्रमाके लिये मन्त्रोच्चारणपूर्वक अर्घ्य दे। (अर्घ्यका मन्त्र—) 'भगवान् चन्द्रदेव! आप गगन-प्राङ्गणके दीपक हैं। क्षीरसागरके मन्थनसे आपका आविर्भाव हुआ है। आप अपनी प्रभासे सम्पूर्ण दिङ्मण्डलको प्रकाशित करते हैं। भगवती लक्ष्मीके छोटे भाई! आपको नमस्कार है।'* तत्पश्चात् '**ॐ श्रं श्रीधराय नमः।**'— इस मन्त्रसे सोमस्वरूप श्रीहरिका पूजन करे। '**घं टं हं सं श्रियै नमः।**'— इस मन्त्रसे लक्ष्मीजीकी तथा '**दशरूपमहात्मने नमः।**'— इस मन्त्रसे श्रीविष्णुकी पूजा करे। रातमें घीसे हवन करके ब्राह्मणको शय्या-दान करे। उसके साथ दीप, अन्नसे भरे हुए पात्र, छाता, जूता, आसन, जलसे भरा कलश, श्रीहरिकी प्रतिमा तथा पात्र भी ब्राह्मणको दे। जो इस प्रकार उक्त व्रतका पालन करता है, वह भोग और मोक्षका भागी होता है॥ ३—१२½॥

अब 'कान्तिव्रत' का वर्णन करता हूँ। इसका प्रारम्भ कार्तिक शुक्ला द्वितीयाको करना चाहिये। दिनमें उपवास और रातमें भोजन करे। इसमें बलराम तथा भगवान् श्रीकृष्णका पूजन करे। एक वर्षतक ऐसा करनेसे व्रती पुरुष कान्ति, आयु और आरोग्य आदि प्राप्त करता है॥ १३-१४॥

अब मैं 'विष्णुव्रत' का वर्णन करूँगा, जो मनोवाञ्छित फलको देनेवाला है। पौष मासके शुक्लपक्षकी द्वितीयासे आरम्भ करके लगातार चार दिनोंतक इस व्रतका अनुष्ठान किया जाता है। पहले दिन सरसों-मिश्रित जलसे स्नानका विधान है। दूसरे दिन काले तिल मिलाये हुए जलसे स्नान बताया गया है। तीसरे दिन वचा या वच नामक ओषधिसे युक्त जलके द्वारा तथा चौथे दिन सर्वौषधि-मिश्रित जलके द्वारा स्नान करना चाहिये। मुरा (कपूर-कचरी), वचा (वच), कुष्ठ (कूठ), शैलेय (शिलाजीत या भूरिछरीला), दो प्रकारकी हल्दी (गाँठ हल्दी और दारुहल्दी), कचूर, चम्पा और मोथा—यह 'सर्वौषधि-समुदाय' कहा गया है। पहले दिन '**श्रीकृष्णाय नमः।**', दूसरे दिन '**अच्युताय नमः।**', तीसरे दिन '**अनन्ताय नमः।**' और चौथे दिन '**हृषीकेशाय नमः।**' इस नाम-मन्त्रसे क्रमशः भगवान्‌के चरण, नाभि, नेत्र एवं मस्तकपर पुष्प समर्पित करते हुए पूजन करना चाहिये। प्रतिदिन प्रदोषकालमें चन्द्रमाको अर्घ्य देना चाहिये। पहले दिनके अर्घ्यमें '**शशिने नमः।**', दूसरे दिनके अर्घ्यमें '**चन्द्राय नमः।**', तीसरे दिन '**शशाङ्काय नमः।**' और चौथे दिन '**इन्दवे नमः।**' का उच्चारण करना चाहिये। रातमें जबतक चन्द्रमा दिखायी देते हों, तभीतक मनुष्यको भोजन कर लेना चाहिये। व्रती पुरुष छः मास या एक सालतक इस व्रतका पालन करके सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलको प्राप्त कर लेता है। पूर्वकालमें राजाओंने, स्त्रियोंने और देवता आदिने भी इस व्रतका अनुष्ठान किया था॥ १५—२०॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'द्वितीया-सम्बन्धी व्रतका वर्णन' नामक एक सौ सतहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १७७॥

---

* गगनाङ्गणसंदीप दुग्धाब्धिमथनोद्भव॥ भाभासितदिगाभोग रमानुज नमोऽस्तु ते। (अग्नि० १७७। ९-१०)

एक सौ अठहत्तरवाँ अध्याय

तृतीया तिथिके व्रत

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं आपके सम्मुख तृतीया तिथिको किये जानेवाले व्रतोंका वर्णन करूँगा, जो भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। ललितातृतीयाको किये जानेवाले मूलगौरी-सम्बन्धी (सौभाग्यशयन) व्रतको सुनिये॥ १॥

चैत्रके शुक्लपक्षकी तृतीयाको ही पार्वतीका भगवान् शिवके साथ विवाह हुआ था। इसलिये इस दिन तिलमिश्रित जलसे स्नान करके पार्वतीसहित भगवान् शंकरकी स्वर्णाभूषण और फल आदिसे पूजा करनी चाहिये॥ २॥

'**नमोऽस्तु पाटलायै**' (पाटला देवीको नमस्कार)—यह कहकर पार्वतीदेवी और भगवान् शंकरके चरणोंका पूजन करे। '**शिवाय नमः**' (भगवान् शिवको नमस्कार)—यह कहकर शिवकी और '**जयायै नमः**' (जयाको नमस्कार)—यों कहकर गौरी देवीकी अर्चना करे। '**त्रिपुरघ्नाय रुद्राय नमः**' (त्रिपुरविनाशक रुद्रदेवको नमस्कार) तथा '**भवान्यै नमः**' (भवानीको नमस्कार)—यह कहकर क्रमशः शिव-पार्वतीकी दोनों जङ्घाओंका और '**रुद्रायेश्वराय नमः**' (सबके ईश्वर रुद्रदेवको नमस्कार है) एवं '**विजयायै नमः**' (विजयाको नमस्कार)—यह कहकर क्रमशः शंकर और पार्वतीके घुटनोंका पूजन करे। '**ईशायै नमः**' (सर्वेश्वरीको नमस्कार)—यह कहकर देवीके और '**शंकराय नमः**'—ऐसा कहकर शंकरके कटिभागकी पूजा करे। '**कोटव्यै नमः**' (कोटवीदेवीको नमस्कार) और '**शूलपाणये नमः**' (त्रिशूलधारीको नमस्कार)—यों कहकर क्रमशः गौरीशंकरके कुक्षिदेशका पूजन करे। '**मङ्गलायै नमः**' (मङ्गलादेवीको नमस्कार) कहकर भवानीके और '**तुभ्यं नमः**' (आपको नमस्कार)—यह कहकर शंकरके उदरका पूजन करे। '**सर्वात्मने नमः**' (सम्पूर्ण प्राणियोंके आत्मभूत शिवको नमस्कार)—यों कहकर रुद्रके और '**ईशान्यै नमः**' (ईशानीको नमस्कार) कहकर पार्वतीके स्तनयुगलका पूजन करे। '**देवात्मने नमः**' (देवताओंके आत्मभूत शंकरको नमस्कार)—कहकर शिवके और उसी प्रकार '**ह्लादिन्यै नमः**' (सबको आह्लाद प्रदान करनेवाली गौरीको नमस्कार) कहकर पार्वतीके कण्ठप्रदेशकी अर्चना करे। '**महादेवाय नमः**' (महादेवको नमस्कार) और '**अनन्तायै नमः**' (अनन्ताको नमस्कार) कहकर क्रमशः शिव-पार्वतीके दोनों हाथोंका पूजन करे। '**त्रिलोचनाय नमः**' (त्रिलोचनको नमस्कार) और '**कालानलप्रियायै नमः**' (कालाग्निस्वरूप शिवकी प्रियतमाको नमस्कार) कहकर भुजाओंका तथा '**महेशाय नमः**' (महेश्वरको नमस्कार) एवं '**सौभाग्यायै नमः**' (सौभाग्यवतीको नमस्कार) कहकर शिव-पार्वतीके आभूषणोंकी पूजा करे। तदनन्तर '**अशोकमधुवासिन्यै नमः**' (अशोक-पुष्पके मधुसे सुवासित पार्वतीको नमस्कार) और '**ईश्वराय नमः**' (ईश्वरको नमस्कार) कहकर दोनोंके ओष्ठभागका तथा '**चतुर्मुखप्रियायै नमः**' (चतुर्मुख ब्रह्माकी प्रिय पुत्रवधूको नमस्कार) और '**हराय स्थाणवे नमः**' (पापहारी स्थाणुस्वरूप शिवको नमस्कार) कहकर क्रमशः गौरीशंकरके मुखका पूजन करे। '**अर्धनारीशाय नमः**' (अर्धनारीश्वरको नमस्कार) कहकर शिवकी और '**अमिताङ्गायै नमः**' (अपरिमित अङ्गोंवाली देवीको नमस्कार) कहकर पार्वतीकी नासिकाका पूजन करे। '**उग्राय नमः**' (उग्रस्वरूप शिवको नमस्कार) कहकर लोकेश्वर शिवका और '**ललितायै नमः**' (ललिताको नमस्कार) कहकर पार्वतीकी भौंहोंका

पूजन करे। '**शर्वाय नमः**' (शर्वको नमस्कार) कहकर त्रिपुरारि शिवके और '**वासन्त्यै नमः**' (वासन्तीदेवीको नमस्कार) कहकर पार्वतीके तालुप्रदेशका पूजन करे। '**श्रीकण्ठनाथायै नमः**' (श्रीकण्ठ शिवकी पत्नी उमाको नमस्कार) और '**शितिकण्ठाय नमः**' (नीलकण्ठको नमस्कार) कहकर गौरी-शंकरके केशपाशका पूजन करे। '**भीमोग्राय नमः**' (भयंकर एवं उग्रस्वरूप धारण करनेवाले शिवको नमस्कार) कहकर शंकरके और '**सुरूपिण्यै नमः**' (सुन्दर रूपवतीको नमस्कार) कहकर भगवती उमाके शिरोभागकी अर्चना करे। '**सर्वात्मने नमः**' (सर्वात्मा शिवको नमस्कार) कहकर पूजाका उपसंहार करे॥ ३—११ १/२ ॥

शिवकी पूजाके लिये ये पुष्प क्रमशः चैत्रादि मासोंमें ग्रहण करनेयोग्य बताये गये हैं—मल्लिका, अशोक, कमल, कुन्द, तगर, मालती, कदम्ब, कनेर, नीले रंगका सदाबहार, अम्लान (आँबोली), कुङ्कुम और सेंधुवार॥ १२-१३ ॥

उमा-महेश्वरका पूजन करके उनके सम्मुख अष्ट सौभाग्य-द्रव्य रख दे। घृतमिश्रित निष्पाव (एक द्विदल), कुसुम्भ (केसर), दुग्ध, जीवक (एक ओषधिविशेष), दूर्वा, ईख, नमक और कुस्तुम्बुरु (धनियाँ)—ये अष्ट सौभाग्य-द्रव्य हैं। चैत्रमासमें पहाड़ोंके शिखरोंका (गङ्गा आदिका) जल पान करके रुद्रदेव और पार्वतीदेवीके आगे शयन करे।* प्रातःकाल स्नान करके गौरी-शंकरका पूजन कर ब्राह्मण-दम्पतिकी अर्चना करे और वह अष्ट सौभाग्य-द्रव्य '**ललिता प्रीयतां मम।**' (ललिता मुझपर प्रसन्न हों)—ऐसा कहकर ब्राह्मणको दे॥ १४—१६ ॥

व्रत करनेवालेको चैत्रादि मासोंमें व्रतके दिन क्रमशः यह आहार करना चाहिये—चैत्रमें शृङ्गजल (झरनेका जल), वैशाखमें गोबर, ज्येष्ठमें मन्दार (आक)-का पुष्प, आषाढ़में बिल्वपत्र, श्रावणमें कुशजल, भाद्रपदमें दही, आश्विनमें दुग्ध, कार्तिकमें घृतमिश्रित दधि, मार्गशीर्षमें गोमूत्र, पौषमें घृत, माघमें काले तिल और फाल्गुनमें पञ्चगव्य। ललिता, विजया, भद्रा, भवानी, कुमुदा, शिवा, वासुदेवी, गौरी, मङ्गला, कमला और सती—चैत्रादि मासोंमें सौभाग्याष्टकके दानके समय उपर्युक्त नामोंका '**प्रीयतां मम**' से संयुक्त करके उच्चारण करे। व्रतके पूर्ण होनेपर किसी एक फलका सदाके लिये त्याग कर दे तथा गुरुदेवको तकियोंसे युक्त शय्या, उमा-महेश्वरकी स्वर्णनिर्मित प्रतिमा एवं गौसहित वृषभका दान करे। गुरु और ब्राह्मण-दम्पतिका वस्त्र आदिसे सत्कार करके साधक भोग और मोक्ष—दोनोंको प्राप्त कर लेता है। इस 'सौभाग्यशयन' नामक व्रतके अनुष्ठानसे मनुष्य सौभाग्य, आरोग्य, रूप और दीर्घायु प्राप्त करता है॥ १७—२१ ॥

यह व्रत भाद्रपद, वैशाख और मार्गशीर्षके शुक्लपक्षकी तृतीयाको भी किया जा सकता है। इसमें '**ललितायै नमः**' (ललिताको नमस्कार)—इस प्रकार कहकर पार्वतीका पूजन करे। तदनन्तर व्रतकी समाप्तिके समय प्रत्येक पक्षमें ब्राह्मण-दम्पतिकी पूजा करनी चाहिये। उनकी चौबीस वस्त्र आदिसे अर्चना करके मनुष्य भोग और मोक्ष—दोनोंको प्राप्त कर लेता है। 'सौभाग्यशयन'की यह दूसरी विधि बतायी गयी। अब मैं 'सौभाग्यव्रत'के विषयमें कहता हूँ। फाल्गुन आदि मासोंमें शुक्लपक्षकी तृतीयाको व्रत करनेवाला नमकका परित्याग करे। व्रत समाप्त होनेपर ब्राह्मण-दम्पतिका पूजन करके '**भवानी प्रीयताम्।**' (भवानी प्रसन्न हों) कहकर शय्या और सम्पूर्ण सामग्रियोंसे युक्त गृहका दान

---

* उमामहेश्वरौ पूज्य सौभाग्याष्टकमग्रतः। स्थापयेद् घृतनिष्पावकुसुम्भक्षीरजीवकम्॥
तृणराजेक्षुलवणं कुस्तुम्बुरुमथाष्टकम्। चैत्रे शृङ्गोदकं प्राश्य देवदेव्यग्रतः स्वपेत्॥ (अग्नि० १७८। १४-१५)

करे। यह 'सौभाग्य-तृतीया' व्रत कहा गया, जो पार्वती आदिके लोकोंको प्रदान करनेवाला है। इसी प्रकार माघ, भाद्रपद और वैशाखकी तृतीयाको व्रत करना चाहिये॥ २२—२६॥

चैत्रमें 'दमनक-तृतीया'का व्रत करके पार्वतीकी 'दमनक' नामक पुष्पोंसे पूजन करनी चाहिये। मार्गशीर्षमें 'आत्म-तृतीया' का व्रत किया जाता है। इसमें पार्वतीका पूजन करके ब्राह्मणको इच्छानुसार भोजन करावे। मार्गशीर्षकी तृतीयासे आरम्भ करके, क्रमशः पौष आदि मासोंमें उपर्युक्त व्रतका अनुष्ठान करके निम्नलिखित नामोंको **'प्रीयताम्'** से संयुक्त करके, कहे— गौरी, काली, उमा, भद्रा, दुर्गा, कान्ति, सरस्वती, वैष्णवी, लक्ष्मी, प्रकृति, शिवा और नारायणी। इस प्रकार व्रत करनेवाला सौभाग्य और स्वर्गको प्राप्त करता है॥ २७-२८॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'तृतीयाके व्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ अठहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १७८॥

एक सौ उनासीवाँ अध्याय
चतुर्थी तिथिके व्रत

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं आपके सम्मुख भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले चतुर्थी-सम्बन्धी व्रतोंका वर्णन करता हूँ। माघके शुक्लपक्षकी चतुर्थीको उपवास करके गणेशका पूजन करे। तदनन्तर पञ्चमीको तिलका भोजन करे। ऐसा करनेसे मनुष्य बहुत वर्षोंतक विघ्नरहित होकर सुखी रहता है। **'गं स्वाहा।'**—यह मूलमन्त्र है। **'गां नमः।'** आदिसे हृदयादिका न्यास करे*॥ १-२॥

'आगच्छोल्काय' कहकर गणेशका आवाहन और **'गच्छोल्काय'** कहकर विसर्जन करे। इस प्रकार आदिमें गकारयुक्त और अन्तमें 'उल्का' शब्दयुक्त मन्त्रसे उनके आवाहनादि कार्य करे। गन्धादि उपचारों एवं लड्डुओं आदिद्वारा गणपतिका पूजन करे॥ ३॥ (तदनन्तर निम्नलिखित गणेश-गायत्रीका जप करे—)

ॐ महोल्काय विद्महे वक्रतुण्डायधीमहि।
तन्नो दन्ती प्रचोदयात्॥

भाद्रपदके शुक्लपक्षकी चतुर्थीको व्रत करनेवाला शिवलोकको प्राप्त करता है। 'अङ्गारक-चतुर्थी' (मङ्गलवारसे युक्त चतुर्थी)-को गणेशका पूजन करके मनुष्य सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको प्राप्त कर लेता है। फाल्गुनकी चतुर्थीको रात्रिमें ही भोजन करे। यह 'अविघ्ना चतुर्थी'के नामसे प्रसिद्ध है। चैत्र मासकी चतुर्थीको 'दमनक' नामक पुष्पोंसे गणेशका पूजन करके मनुष्य सुख-भोग प्राप्त करता है॥ ४—६॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'चतुर्थीके व्रतोंका कथन' नामक एक सौ उनासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १७९॥

---

* निम्नलिखित विधिसे हृदयादि षडङ्गोंका न्यास करे—
'गां हृदयाय नमः। गीं शिरसे स्वाहा। गूं शिखायै वषट्। गैं नेत्रत्रयाय वौषट्॥ गौं कवचाय हुम्। गः अस्त्राय फट्।'

एक सौ अस्सीवाँ अध्याय

पञ्चमी तिथिके व्रत

अग्निदेव कहते हैं— वसिष्ठ! अब मैं आरोग्य, स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करनेवाले पञ्चमी-व्रतका वर्णन करता हूँ। श्रावण, भाद्रपद, आश्विन और कार्तिकके शुक्लपक्षकी पञ्चमीको वासुकि, तक्षक, कालिय, मणिभद्र, ऐरावत, धृतराष्ट्र, कर्कोटक और धनंजय नामक नागोंका पूजन करना चाहिये॥ १-२॥

ये सभी नाग अभय, आयु, विद्या, यश और लक्ष्मी प्रदान करनेवाले हैं॥ ३॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'पञ्चमीके व्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ अस्सीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १८०॥

एक सौ इक्यासीवाँ अध्याय

षष्ठी तिथिके व्रत

अग्निदेव कहते हैं— अब मैं षष्ठी-सम्बन्धी व्रतोंको कहता हूँ। कार्तिकके कृष्णपक्षकी षष्ठीको फलमात्रका भोजन करके कार्तिकेयके लिये अर्घ्यदान करना चाहिये। इससे मनुष्य भोग और मोक्ष प्राप्त करता है। इसे 'स्कन्दषष्ठी-व्रत' कहते हैं। भाद्रपदके कृष्णपक्षकी षष्ठी तिथिमें 'अक्षयषष्ठी व्रत' करना चाहिये। इसे मार्गशीर्षमें भी करना चाहिये। इस अक्षयषष्ठीके दिन किसी भी एक वर्ष निराहार रहनेसे मानव भोग और मोक्ष प्राप्त कर लेता है॥ १-२॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'षष्ठीके व्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ इक्यासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १८१॥

एक सौ बयासीवाँ अध्याय

सप्तमी तिथिके व्रत

अग्निदेव कहते हैं— वसिष्ठ! अब मैं सप्तमी तिथिके व्रत कहूँगा। यह सबको भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है। माघ मासके शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिको (अष्टदल अथवा द्वादशदल) कमलका निर्माण करके उसमें भगवान् सूर्यका पूजन करना चाहिये। इससे मनुष्य शोकरहित हो जाता है॥ १॥

भाद्रपद मासमें शुक्लपक्षकी सप्तमीको भगवान् आदित्यका पूजन करनेसे समस्त अभीष्ट वस्तुओंकी प्राप्ति होती है। पौषमासमें शुक्लपक्षकी सप्तमीको निराहार रहकर सूर्यदेवका पूजन करनेसे सारे पापोंका विनाश होता है॥ २॥

माघके कृष्णपक्षमें 'सर्वाप्ति-सप्तमी'का व्रत करना चाहिये। इससे सभी अभीष्ट वस्तुओंकी प्राप्ति होती है। फाल्गुनके कृष्णपक्षमें 'नन्द-सप्तमी'का व्रत करना चाहिये। मार्गशीर्षके शुक्ल-पक्षमें 'अपराजिता सप्तमी'को भगवान् सूर्यका पूजन और व्रत करना चाहिये। एक वर्षतक मार्गशीर्षके शुक्लपक्षका 'पुत्रीया सप्तमी' व्रत स्त्रियोंको पुत्र प्रदान करनेवाला है॥ ३-४॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'सप्तमीके व्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ बयासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १८२॥

एक सौ तिरासीवाँ अध्याय

अष्टमी तिथिके व्रत

अग्निदेव कहते हैं— वसिष्ठ! अब मैं अष्टमीको किये जानेवाले व्रतोंका वर्णन करूँगा। उनमें पहला रोहिणी नक्षत्रयुक्त अष्टमीका व्रत है। भाद्रपद मासके कृष्णपक्षकी रोहिणी नक्षत्रसे युक्त अष्टमी तिथिको ही अर्धरात्रिके समय भगवान् श्रीकृष्णका प्राकट्य हुआ था, इसलिये इसी अष्टमीको उनकी जयन्ती मनायी जाती है। इस तिथिको उपवास करनेसे मनुष्य सात जन्मोंके किये हुए पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ १-२॥

अतएव भाद्रपदके कृष्णपक्षकी रोहिणीनक्षत्रयुक्त अष्टमीको उपवास रखकर भगवान् श्रीकृष्णका पूजन करना चाहिये। यह भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है॥ ३॥

(पूजनकी विधि इस प्रकार है—)

आवाहन-मन्त्र और नमस्कार

आवाहयाम्यहं कृष्णं बलभद्रं च देवकीम्।
वसुदेवं यशोदां गाः पूजयामि नमोऽस्तु ते॥
योगाय योगपतये योगेशाय नमो नमः।
योगादिसम्भवायैव गोविन्दाय नमो नमः॥

'मैं श्रीकृष्ण, बलभद्र, देवकी, वसुदेव, यशोदादेवी और गौओंका आवाहन एवं पूजन करता हूँ; आप सबको नमस्कार है। योगस्वरूप, योगपति एवं योगेश्वर श्रीकृष्णके लिये नमस्कार है। योगके आदिकारण, उत्पत्तिस्थान श्रीगोविन्दके लिये बारंबार नमस्कार है'॥ ४-५॥

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णको स्नान कराये और इस मन्त्रसे उन्हें अर्घ्यदान करे—

यज्ञेश्वराय यज्ञाय यज्ञानां पतये नमः॥
यज्ञादिसम्भवायैव गोविन्दाय नमो नमः।

'यज्ञेश्वर, यज्ञस्वरूप, यज्ञोंके अधिपति एवं यज्ञके आदि कारण श्रीगोविन्दको बारंबार नमस्कार है।'

पुष्प-धूप

गृहाण देव पुष्पाणि सुगन्धीनि प्रियाणि ते॥
सर्वकामप्रदो देव भव मे देववन्दित।
धूपधूपित धूपं त्वं धूपितैस्त्वं गृहाण मे॥
सुगन्धिधूपगन्धाढ्यं कुरु मां सर्वदा हरे।

'देव! आपके प्रिय ये सुगन्धयुक्त पुष्प ग्रहण कीजिये। देवताओंद्वारा पूजित भगवन्! मेरी सारी कामनाएँ सिद्ध कीजिये। आप धूपसे सदा धूपित हैं, मेरे द्वारा अर्पित धूप-दानसे आप धूपकी सुगन्ध ग्रहण कीजिये। श्रीहरे! मुझे सदा सुगन्धित पुष्पों, धूप एवं गन्धसे सम्पन्न कीजिये।'

दीप-दान

दीपदीप्त महादीपं दीपदीप्तिद सर्वदा॥
मया दत्तं गृहाण त्वं कुरु चोर्ध्वगतिं च माम्।
विश्वाय विश्वपतये विश्वेशाय नमो नमः॥
विश्वादिसम्भवायैव गोविन्दाय निवेदितम्।

'प्रभो! आप सर्वदा दीपके समान देदीप्यमान एवं दीपको दीप्ति प्रदान करनेवाले हैं। मेरे द्वारा दिया गया यह महादीप ग्रहण कीजिये और मुझे भी (दीपके समान) ऊर्ध्वगतिसे युक्त कीजिये। विश्वरूप, विश्वपति, विश्वेश्वर श्रीकृष्णके लिये नमस्कार है, नमस्कार है। विश्वके आदिकारण श्रीगोविन्दको मैं यह दीप निवेदन करता हूँ।'

शयन-मन्त्र

धर्माय धर्मपतये धर्मेशाय नमो नमः॥
धर्मादिसम्भवायैव गोविन्द शयनं कुरु।
सर्वाय सर्वपतये सर्वेशाय नमो नमः॥
सर्वादिसम्भवायैव गोविन्दाय नमो नमः।

'धर्मस्वरूप, धर्मके अधिपति, धर्मेश्वर एवं धर्मके आदिस्थान श्रीवासुदेवको नमस्कार है। गोविन्द! अब आप शयन कीजिये। सर्वरूप, सबके अधिपति, सर्वेश्वर, सबके आदिकारण

श्रीगोविन्दको बारंबार नमस्कार है।'

(तदनन्तर रोहिणीसहित चन्द्रमाको निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़कर अर्घ्यदान दे—)

क्षीरोदार्णवसम्भूत अत्रिनेत्रसमुद्भव॥
गृहाणार्घ्यं शशाङ्केदं रोहिण्या सहितो मम।

'क्षीरसमुद्रसे प्रकट एवं अत्रिके नेत्रसे उद्भूत तेज:स्वरूप शशाङ्क! रोहिणीके साथ मेरा अर्घ्य स्वीकार कीजिये।'

फिर भगवद्विग्रहको वेदिकापर स्थापित करे और चन्द्रमासहित रोहिणीका पूजन करे। तदनन्तर अर्धरात्रिके समय वसुदेव, देवकी, नन्द-यशोदा और बलरामका गुड़ और घृतमिश्रित दुग्ध-धारासे अभिषेक करे॥ ६—१५॥

तत्पश्चात् व्रत करनेवाला मनुष्य ब्राह्मणोंको भोजन करावे और दक्षिणामें उन्हें वस्त्र और सुवर्ण आदि दे। जन्माष्टमीका व्रत करनेवाला पुत्रयुक्त होकर विष्णुलोकका भागी होता है। जो मनुष्य पुत्रप्राप्तिकी इच्छासे प्रतिवर्ष इस व्रतका अनुष्ठान करता है, वह 'पुम्' नामक नरकके भयसे मुक्त हो जाता है। (सकाम व्रत करनेवाला भगवान् गोविन्दसे प्रार्थना करे—) 'प्रभो! मुझे पुत्र, धन, आयु, आरोग्य और संतति दीजिये। गोविन्द! मुझे धर्म, काम, सौभाग्य, स्वर्ग और मोक्ष प्रदान कीजिये'॥ १६—१८॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'अष्टमीके व्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ तिरासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १८३॥

एक सौ चौरासीवाँ अध्याय
अष्टमी-सम्बन्धी विविध व्रत

अग्निदेव कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ! चैत्र मासके शुक्लपक्षकी अष्टमीको व्रत करे और उस दिन ब्रह्मा आदि देवताओं तथा मातृगणोंका जप-पूजन करे। कृष्णपक्षकी अष्टमीको एक वर्ष श्रीकृष्णकी पूजा करके मनुष्य संतानरूप अर्थकी प्राप्ति कर लेता है॥ १॥

अब मैं 'कालाष्टमी'का वर्णन करता हूँ। यह व्रत मार्गशीर्ष मासके कृष्णपक्षकी अष्टमीको करना चाहिये। रात्रि होनेपर व्रत करनेवाला स्नानादिसे पवित्र हो, भगवान् 'शंकर'का पूजन करके गोमूत्रसे व्रतका पारण करे। रात्रिको भूमिपर शयन करे। पौष मासमें 'शम्भु'का पूजन करके घृतका आहार तथा माघमें 'महेश्वर'की अर्चना करके दुग्धका पान करे। फाल्गुनमें 'महादेव'की पूजा करके अच्छी प्रकार उपवास करनेके बाद तिलका भोजन करे। चैत्रमें 'स्थाणु'का पूजन करके जौका भोजन करे। वैशाखमें 'शिव'की पूजा करे और कुशजलसे पारण करे। ज्येष्ठमें 'पशुपति'का पूजन करके शृङ्गजल (झरनेके जल)-का पान करे। आषाढ़में 'उग्र'की अर्चना करके गोमयका भक्षण और श्रावणमें 'शर्व'का पूजन करके मन्दारके पुष्पका भक्षण करे। भाद्रपदमें रात्रिके समय 'त्र्यम्बक'का पूजन करके बिल्वपत्रका भक्षण करे। आश्विनमें 'ईश'की अर्चना करके चावल और कार्तिकमें 'रुद्र'का पूजन करके दधिका भोजन करे। वर्षकी समाप्ति होनेपर होम करे और सर्वतो (लिङ्गतो)-भद्रका निर्माण करके उसमें भगवान् शंकरका पूजन करे। तदनन्तर आचार्यको गौ, वस्त्र और सुवर्णका दान करे। अन्य ब्राह्मणोंको भी उन्हीं वस्तुओंका दान करे। ब्राह्मणोंको आमन्त्रित करके भोजन कराकर मनुष्य भोग और मोक्ष प्राप्त कर लेता है॥ २—७ $\frac{1}{2}$॥

प्रत्येक मासके दोनों पक्षोंकी अष्टमी तिथियोंको रात्रिमें भोजन करे और वर्षके पूर्ण होनेपर गोदान करे। इससे मनुष्य इन्द्रपदको प्राप्त कर लेता है। यह 'स्वर्गति-व्रत' कहा जाता है। कृष्ण अथवा शुक्ल—किसी भी पक्षमें अष्टमीको बुधवारका योग हो, उस दिन व्रत रखे और एक समय भोजन करे। जो मनुष्य अष्टमीका व्रत करते हैं, उनके घरमें कभी सम्पत्तिका अभाव नहीं होता। दो अँगुलियाँ छोड़कर आठ मुट्ठी चावल ले और उसका भात बनाकर कुशयुक्त आम्रपत्रके दोनेमें रखे। कुलाम्बिकासहित बुधका पूजन करना चाहिये और 'बुधाष्टमी-व्रत'की कथा सुनकर भोजन करे। तदनन्तर ब्राह्मणको ककड़ी और चावलसहित यथाशक्ति दक्षिणा दे॥ ८—१२॥

('बुधाष्टमी-व्रत'की कथा निम्नलिखित है—) धीर नामक एक ब्राह्मण था। उसकी पत्नीका नाम था रम्भा और पुत्रका नाम कौशिक था। उसके एक पुत्री भी थी, जिसका नाम विजया था। उस ब्राह्मणके धनद नामका एक बैल था। कौशिक उस बैलको ग्वालोंके साथ चरानेको ले गया। कौशिक गङ्गामें स्नानादि कर्म करने लगा, उस समय चोर बैलको चुरा ले गये। कौशिक जब नदीसे नहाकर निकला, तब बैलको वहाँ न पाकर अपनी बहिन विजयाके साथ उसकी खोजमें चल पड़ा। उसने एक सरोवरमें देवलोककी स्त्रियोंका समूह देखा और उनसे भोजन माँगा। इसपर उन स्त्रियोंने कहा—'आप आज हमारे अतिथि हुए हैं, इसलिये व्रत करके भोजन कीजिये।' तदनन्तर कौशिकने 'बुधाष्टमी'का व्रत करके भोजन किया। उधर धीर वनरक्षकके पास पहुँचा और अपना बैल लेकर विजयाके साथ लौट आया। धीर ब्राह्मणने यथासमय विजयाका विवाह कर दिया और स्वयं मृत्युके पश्चात् यमलोकको प्राप्त हुआ। परंतु कौशिक व्रतके प्रभावसे अयोध्याका राजा हुआ। विजया अपने माता-पिताको नरककी यातना भोगते देख यमराजके शरणापन्न हुई। कौशिक जब मृगयाके उद्देश्यसे वनमें आया, तब उसने पूछा—'मेरे माता-पिता नरकसे मुक्त कैसे हो सकते हैं?' उस समय यमराजने वहाँ प्रकट होकर कहा—'बुधाष्टमीके दो व्रतोंके फलसे।' तब कौशिकने अपने माता-पिताके उद्देश्यसे दो बुधाष्टमी-व्रतोंका फल दिया। इससे उसके माता-पिता स्वर्गमें चले गये। तदनन्तर विजयाने भी हर्षित होकर भोग-मोक्षादिकी सिद्धिके लिये इस व्रतका अनुष्ठान किया॥ १३—२० $\frac{१}{२}$॥

वसिष्ठ! चैत्र मासके शुक्लपक्षकी अष्टमीको जब पुनर्वसु नक्षत्रका योग हो, उस समय जो मनुष्य अशोक-पुष्पकी आठ कलिकाओंका रस-पान करते हैं, वे कभी शोकको प्राप्त नहीं होते। (कलिकाओंका रसपान निम्नलिखित मन्त्रसे करना चाहिये—)

त्वामशोक हराभीष्टं मधुमाससमुद्भव।
पिबामि शोकसंतप्तो मामशोकं सदा कुरु॥

'चैत्र मासमें विकसित होनेवाले अशोक! तुम भगवान् शंकरके प्रिय हो। मैं शोकसे संतप्त होकर तुम्हारी कलिकाओंका पान करता हूँ। अपनी ही तरह मुझे भी सदाके लिये शोकरहित कर दो।' चैत्रादि मासोंकी अष्टमीको मातृगणकी पूजा करनेवाला मनुष्य शत्रुओंपर विजय प्राप्त कर लेता है॥ २१—२३॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'अष्टमीके विविध व्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ चौरासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १८४॥

एक सौ पचासीवाँ अध्याय

नवमी तिथिके व्रत

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं भोग और मोक्ष आदिकी सिद्धि प्रदान करनेवाले नवमी-सम्बन्धी व्रतोंका वर्णन करता हूँ। आश्विनके शुक्लपक्षमें 'गौरी-नवमी'का व्रत करके देवीका पूजन करना चाहिये। इस नवमीको 'पिष्टका-नवमी' होती है। उसका व्रत करनेवाले मनुष्यको देवीका पूजन करके पिष्टान्नका भोजन करना चाहिये। आश्विनके शुक्लपक्षकी जिस नवमीको अष्टमी और मूलनक्षत्रका योग हो एवं सूर्य कन्या-राशिपर स्थित हों, उसे 'महानवमी' कहा गया है। वह सदा पापोंका विनाश करनेवाली है। इस दिन नवदुर्गाओंको नौ स्थानोंमें अथवा एक स्थानमें स्थित करके उनका पूजन करना चाहिये। मध्यमें अष्टादशभुजा महालक्ष्मी एवं दोनों पार्श्व-भागोंमें शेष दुर्गाओंका पूजन करना चाहिये। अञ्जन और डमरूके साथ निम्नलिखित क्रमसे नवदुर्गाओंकी स्थापना करनी चाहिये—रुद्रचण्डा, प्रचण्डा, चण्डोग्रा, चण्डनायिका, चण्डा, चण्डवती, पूज्या, चण्डरूपा और अतिचण्डिका। इन सबके मध्यभागमें अष्टादशभुजा उग्रचण्डा महिषमर्दिनी दुर्गाका पूजन करना चाहिये। '**ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षसि स्वाहा।**'—यह दशाक्षर-मन्त्र है—॥ १—६ ॥

जो मनुष्य इस विधिसे पूर्वोक्त दशाक्षर-मन्त्रका जप करता है, वह किसीसे भी बाधा नहीं प्राप्त करता। भगवती दुर्गा अपने वाम करोंमें कपाल, खेटक, घण्टा, दर्पण, तर्जनी-मुद्रा, धनुष, ध्वजा, डमरू और पाश एवं दक्षिण करोंमें शक्ति, मुद्गर, त्रिशूल, वज्र, खड्ग, भाला, अङ्कुश, चक्र तथा शलाका लिये हुए हैं। उनके इन आयुधोंकी भी अर्चना करे॥ ७—१०॥

फिर '**कालि कालि**' आदि मन्त्रका जप करके खड्गसे पशुका वध करे। (पशुबलिका मन्त्र इस प्रकार है—) '**कालि कालि वज्रेश्वरि लोहदण्डायै नमः।**' बलि-पशुका रुधिर और मांस, '**पूतनाय नमः।**' कहकर नैर्ऋत्यकोणमें, '**पापराक्षस्यै नमः।**' कहकर वायव्यकोणमें, '**चरक्यै नमः।**' कहकर ईशानकोणमें एवं '**विदारिकायै नमः।**' कहकर अग्निकोणमें उनके उद्देश्यसे समर्पित करे। राजा उसके सम्मुख स्नान करे और स्कन्द एवं विशाखके निमित्त पिष्टनिर्मित शत्रुकी बलि दे। रात्रिमें ब्राह्मी आदि शक्तियोंका पूजन करे—

जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी।
दुर्गा शिवा क्षमा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तुते॥

'जयन्ती, मङ्गला, काली, भद्रकाली, कपालिनी, दुर्गा, शिवा, क्षमा, धात्री, स्वाहा और स्वधा—इन नामोंसे प्रसिद्ध जगदम्बिके! तुम्हें मेरा नमस्कार हो।' आदि मन्त्रोंसे देवीकी स्तुति करे और देवीको पञ्चामृतसे स्नान कराके उनकी विविध उपचारोंसे पूजा करे। देवीके उद्देश्यसे किया हुआ ध्वजदान, रथयात्रा एवं बलिदान-कर्म अभीष्ट वस्तुओंकी प्राप्ति करानेवाला है॥ ११—१५॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'नवमीके व्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ पचासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १८५॥

एक सौ छियासीवाँ अध्याय
दशमी तिथिके व्रत

अग्निदेव कहते हैं— वसिष्ठ! अब मैं दशमी-सम्बन्धी व्रतके विषयमें कहता हूँ, जो धर्म-कामादिकी सिद्धि करनेवाला है। दशमीको एक समय भोजन करे और व्रतके समाप्त होनेपर दस गौओं और स्वर्णमयी प्रतिमाओंका दान करे। ऐसा करनेसे मनुष्य ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंका अधिपति होता है॥ १॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'दशमीके व्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ छियासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १८६॥

एक सौ सतासीवाँ अध्याय
एकादशी तिथिके व्रत

अग्निदेव कहते हैं— वसिष्ठ! अब मैं भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले एकादशी-व्रतका वर्णन करूँगा। व्रत करनेवाला दशमीको मांस और मैथुनका परित्याग कर दे एवं भजन भी नियमित करे। दोनों पक्षोंकी एकादशीको भोजन न करे॥ १$\frac{1}{2}$॥

द्वादशी-विद्धा एकादशीमें स्वयं श्रीहरि स्थित होते हैं, इसलिये द्वादशी-विद्धा एकादशीके व्रतका त्रयोदशीको पारण करनेसे मनुष्य सौ यज्ञोंका पुण्यफल प्राप्त करता है। जिस दिनके पूर्वभागमें एकादशी कलामात्र अवशिष्ट हो और शेषभागमें द्वादशी व्याप्त हो, उस दिन एकादशीका व्रत करके त्रयोदशीमें पारण करनेसे सौ यज्ञोंका पुण्य प्राप्त होता है। दशमी-विद्धा एकादशीको कभी उपवास नहीं करना चाहिये; क्योंकि वह नरककी प्राप्ति करानेवाली है। एकादशीको निराहार रहकर, दूसरे दिन यह कहकर भोजन करे—'पुण्डरीकाक्ष! मैं आपकी शरण ग्रहण करता हूँ। अच्युत! अब मैं भोजन करूँगा।' शुक्लपक्षकी एकादशीको जब पुष्यनक्षत्रका योग हो, उस दिन उपवास करना चाहिये। वह अक्षयफल प्रदान करनेवाली है और 'पापनाशिनी' कही जाती है। श्रवणनक्षत्रसे युक्त द्वादशीविद्धा एकादशी 'विजया' नामसे प्रसिद्ध है और भक्तोंको विजय देनेवाली है। फाल्गुन मासमें पुष्यनक्षत्रसे युक्त एकादशीको भी सत्पुरुषोंने 'विजया' कहा है। वह गुणोंमें कई करोड़गुना अधिक मानी जाती है। एकादशीको सबका उपकार करनेवाली विष्णुपूजा अवश्य करनी चाहिये। इससे मनुष्य इस लोकमें धन और पुत्रोंसे युक्त हो (मृत्युके पश्चात्) विष्णुलोकमें पूजित होता है॥ २—९॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'एकादशीके व्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ सतासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १८७॥

एक सौ अठासीवाँ अध्याय

द्वादशी तिथिके व्रत

अग्निदेव कहते हैं— मुनिश्रेष्ठ! अब मैं भोग एवं मोक्षप्रद द्वादशी-सम्बन्धी व्रत कहता हूँ। द्वादशी तिथिको मनुष्य रात्रिको एक समय भोजन करे और किसीसे कुछ नहीं माँगे। उपवास करके भी भिक्षा-ग्रहण करनेवाले मनुष्यका द्वादशीव्रत सफल नहीं हो सकता। चैत्र मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिको 'मदनद्वादशी' का व्रत करनेवाला भोग और मोक्षकी इच्छासे कामदेव-रूपी श्रीहरिका अर्चन करे। माघके शुक्लपक्षकी द्वादशीको 'भीमद्वादशी'का व्रत करना चाहिये और '**नमो नारायणाय।**' मन्त्रसे श्रीविष्णुका पूजन करना चाहिये। ऐसा करनेवाला मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर लेता है। फाल्गुनके शुक्लपक्षमें 'गोविन्दद्वादशी'का व्रत होता है। आश्विनमें 'विशोकद्वादशी'का व्रत करनेवालेको श्रीहरिका पूजन करना चाहिये। मार्गशीर्षके शुक्लपक्षकी द्वादशीको श्रीकृष्णका पूजन करके जो मनुष्य लवणका दान करता है, वह सम्पूर्ण रसोंके दानका फल प्राप्त करता है। भाद्रपदमें 'गोवत्सद्वादशी'का व्रत करनेवाला गोवत्सका पूजन करे। माघ मासके व्यतीत हो जानेपर फाल्गुनके कृष्णपक्षकी द्वादशी, जो श्रवणनक्षत्रसे संयुक्त हो, उसे 'तिलद्वादशी' कहा गया है। इस दिन तिलोंसे ही स्नान और होम करना चाहिये तथा तिलके लड्डुओंका भोग लगाना चाहिये। मन्दिरमें तिलके तेलसे युक्त दीपक समर्पित करना चाहिये तथा पितरोंको तिलाञ्जलि देनी चाहिये। ब्राह्मणोंको तिलदान करे। होम और उपवाससे ही 'तिलद्वादशी'का फल प्राप्त होता है। '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।**' मन्त्रसे श्रीविष्णुकी पूजा करनी चाहिये। उपर्युक्त विधिसे छः बार 'तिलद्वादशी'का व्रत करनेवाला कुलसहित स्वर्गको प्राप्त करता है। फाल्गुनके शुक्लपक्षमें 'मनोरथद्वादशी'का व्रत करनेवाला श्रीहरिका पूजन करे। इसी दिन 'नामद्वादशी'का व्रत करनेवाला 'केशव' आदि नामोंसे श्रीहरिका एक वर्षतक पूजन करे। वह मनुष्य मृत्युके पश्चात् स्वर्गमें ही जाता है। वह कभी नरकगामी नहीं हो सकता। फाल्गुनके शुक्लपक्षमें 'सुमतिद्वादशी'का व्रत करके विष्णुका पूजन करे। भाद्रपद मासके शुक्लपक्षमें 'अनन्तद्वादशी'का व्रत करे। माघके शुक्लपक्षमें आश्लेषा अथवा मूलनक्षत्रसे युक्त 'तिलद्वादशी' करनेवाला मनुष्य '**कृष्णाय नमः।**' मन्त्रसे श्रीकृष्णका पूजन करे और तिलोंका होम करे। फाल्गुनके शुक्लपक्षमें 'सुगतिद्वादशी'का व्रत करनेवाला '**जय कृष्ण नमस्तुभ्यम्**' मन्त्रसे एक वर्षतक श्रीकृष्णकी पूजा करे। ऐसा करनेसे मनुष्य भोग और मोक्ष—दोनों प्राप्त कर लेता है। पौषके शुक्लपक्षकी द्वादशीको 'सम्प्राप्ति-द्वादशी'का व्रत करे॥ १—१४॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'द्वादशीके व्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ अठासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १८८॥

एक सौ नवासीवाँ अध्याय

श्रवण-द्वादशी-व्रतका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं— अब मैं भाद्रपदमासके शुक्लपक्षमें किये जानेवाले 'श्रवणद्वादशी' व्रतके विषयमें कहता हूँ। यह श्रवण नक्षत्रसे संयुक्त होनेपर श्रेष्ठ मानी जाती है एवं उपवास करनेपर

महान् फल प्रदान करनेवाली है। श्रवण-द्वादशीके दिन नदियोंके संगमपर स्नान करनेसे विशेष फल प्राप्त होता है तथा बुधवार और श्रवणनक्षत्रसे युक्त द्वादशी दान आदि कर्मोंमें महान् फलदायिनी होती है॥ १-२॥

त्रयोदशीके निषिद्ध होनेपर भी इस व्रतका पारण त्रयोदशीको करना चाहिये—

संकल्प-मन्त्र

द्वादश्यां च निराहारो वामनं पूजयाम्यहम्॥
उदकुम्भे स्वर्णमयं त्रयोदश्यां तु पारणम्।

'मैं द्वादशीको निराहार रहकर जलपूर्ण कलशपर स्थित स्वर्णनिर्मित वामन-मूर्तिका पूजन करता हूँ एवं मैं व्रतका पारण त्रयोदशीको करूँगा।'

आवाहन-मन्त्र

आवाहयाम्यहं विष्णुं वामनं शङ्खचक्रिणम्॥
सितवस्त्रयुगच्छन्ने घटे सच्छत्रपादुके।

'मैं दो श्वेतवस्त्रोंसे आच्छादित एवं छत्र-पादुकाओंसे युक्त कलशपर शङ्ख-चक्रधारी वामनावतार विष्णुका आवाहन करता हूँ।'

स्नानार्पण-मन्त्र

स्नापयामि जलैः शुद्धैर्विष्णुं पञ्चामृतादिभिः॥
छत्रदण्डधरं विष्णुं वामनाय नमो नमः।

'मैं छत्र एवं दण्डसे विभूषित सर्वव्यापी श्रीविष्णुको पञ्चामृत आदि एवं विशुद्ध जलका स्नान समर्पित करता हूँ। भगवान् वामनको नमस्कार है।'

अर्घ्यदान-मन्त्र

अर्घ्यं ददामि देवेश अर्घ्यार्हाद्यैः सदार्चितः॥
भुक्तिमुक्तिप्रजाकीर्तिसर्वैश्वर्ययुतं कुरु।

'देवेश्वर! आप अर्घ्यके अधिकारी पुरुषों तथा दूसरे लोगोंद्वारा भी सदैव पूजित हैं। मैं आपको अर्घ्यदान करता हूँ। मुझे भोग, मोक्ष, संतान, यश और सभी प्रकारके ऐश्वर्योंसे युक्त कीजिये।'

फिर '**वामनाय नमः**' इस मन्त्रसे गन्धद्रव्य समर्पित करे और इसी मन्त्रद्वारा श्रीहरिके उद्देश्यसे एक सौ आठ आहुतियाँ दे॥ ३—७॥

'**ॐ नमो वासुदेवाय।**' मन्त्रसे श्रीहरिके शिरोभागकी अर्चना करे। '**श्रीधराय नमः।**' से मुखका, '**कृष्णाय नमः।**' से कण्ठ-देशका, '**श्रीपतये नमः।**' कहकर वक्षःस्थलका, '**सर्वास्त्रधारिणे नमः।**' कहकर दोनों भुजाओंका, '**व्यापकाय नमः।**' से नाभि और '**वामनाय नमः।**' बोलकर कटिप्रदेशका पूजन करे। '**त्रैलोक्यजननाय नमः।**' मन्त्रसे भगवान् वामनके उपस्थकी, '**सर्वाधिपतये नमः।**' से दोनों जङ्घाओंकी एवं '**सर्वात्मने नमः।**' कहकर श्रीविष्णुके चरणोंकी पूजा करे॥ ८—१०॥

तदनन्तर वामन भगवान्को घृतसिद्ध नैवेद्य और दही-भातसे परिपूर्ण कुम्भ समर्पित करे। रात्रिमें जागरण करके प्रातःकाल संगममें स्नान करे। फिर गन्ध-पुष्पादिसे भगवान्का पूजन करके निम्नाङ्कित मन्त्रसे पुष्पाञ्जलि समर्पित करे—

नमो नमस्ते गोविन्द बुधश्रवणसंज्ञित॥
अघौघसंक्षयं कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव।
प्रीयतां देवदेवेश मम नित्यं जनार्दन॥

'बुध एवं श्रवणसंज्ञक गोविन्द! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। मेरे पापसमूहका विनाश करके समस्त सौख्य प्रदान कीजिये। देवदेवेश्वर जनार्दन! आप मेरी इस पुष्पाञ्जलिसे नित्य प्रसन्न हों'॥ ११—१३॥

(तत्पश्चात् सम्पूर्ण पूजन-द्रव्य इस मन्त्रसे किसी विद्वान् ब्राह्मणको दे—)

वामनो बुद्धिदो दाता द्रव्यस्थो वामनः स्वयम्।
वामनः प्रतिगृह्णाति वामनो मे ददाति च॥
द्रव्यस्थो वामनो नित्यं वामनाय नमो नमः।

'भगवान् वामनने मुझे दानकी बुद्धि प्रदान की है। वे ही दाता हैं। देय-द्रव्यमें भी स्वयं वामन स्थित हैं। वामन भगवान् ही इसे ग्रहण कर रहे हैं और वामन ही मुझे प्रदान करते

हैं। भगवान् वामन नित्य सभी द्रव्योंमें स्थित हैं। उन श्रीवामनावतार विष्णुको नमस्कार है, नमस्कार है।'

इस प्रकार ब्राह्मणको दक्षिणासहित पूजन-द्रव्य देकर ब्राह्मणोंको भोजन कराके स्वयं भोजन करे॥ १४-१५॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'श्रवणद्वादशी व्रतका वर्णन' नामक एक सौ नवासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १८९॥

एक सौ नब्बेवाँ अध्याय

अखण्डद्वादशी-व्रतका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं— अब मैं 'अखण्डद्वादशी'-व्रतके विषयमें कहता हूँ, जो समस्त व्रतोंकी सम्पूर्णताका सम्पादन करनेवाली है। मार्गशीर्षके शुक्लपक्षकी द्वादशीको उपवास करके भगवान् श्रीविष्णुका पूजन करे। व्रत करनेवाला मनुष्य पञ्चगव्य-मिश्रित जलसे स्नान करे और उसीका पारण करे। इस द्वादशीको ब्राह्मणको जौ और धानसे भरा हुआ पात्र दान दे। भगवान् श्रीविष्णुके सम्मुख इस प्रकार प्रार्थना करे—'भगवन्! सात जन्मोंमें मेरे द्वारा जो व्रत खण्डित हुआ हो, आपकी कृपासे वह मेरे लिये अखण्ड फलदायक हो जाय। पुरुषोत्तम! जैसे आप इस अखण्ड चराचर विश्वके रूपमें स्थित हैं, उसी प्रकार मेरे किये हुए समस्त व्रत अखण्ड हो जायँ।' इस प्रकार (मार्गशीर्षसे आरम्भ करके फाल्गुनतक) प्रत्येक मासमें करना चाहिये। इस व्रतको चार महीनेतक करनेका विधान है। चैत्रसे आषाढ़पर्यन्त यह व्रत करनेपर सत्तूसे भरा हुआ पात्र दान करे। श्रावणसे प्रारम्भ करके इस व्रतको कार्तिकमें समाप्त करना चाहिये। उपर्युक्त विधिसे 'अखण्डद्वादशी' का व्रत करनेपर सात जन्मोंके खण्डित व्रतोंको यह सफल बना देता है। इसके करनेसे मनुष्य दीर्घ आयु, आरोग्य, सौभाग्य, राज्य और विविध भोग आदि प्राप्त करता है॥ १—६॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'अखण्डद्वादशी-व्रतका वर्णन' नामक एक सौ नब्बेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १९०॥

एक सौ इक्यानबेवाँ अध्याय

त्रयोदशी तिथिके व्रत

अग्निदेव कहते हैं— अब मैं त्रयोदशी तिथिके व्रत कहता हूँ, जो सब कुछ देनेवाले हैं। पहले मैं 'अनङ्गत्रयोदशी'के विषयमें बतलाता हूँ। पूर्वकालमें अनङ्ग (कामदेव)-ने इसका व्रत किया था। मार्गशीर्ष शुक्ला त्रयोदशीको कामदेवस्वरूप 'हर' की पूजा करे। रात्रिमें मधुका भोजन करे तथा तिल और अक्षत-मिश्रित घृतका होम करे। पौषमें 'योगेश्वर'का पूजन एवं होम करके चन्दनका प्राशन करे। माघमें 'महेश्वर'की अर्चना करके मौक्तिक (रास्ना नामक पौधेके) जलका आहार करे। इससे मनुष्य स्वर्गलोकको प्राप्त करता है। व्रत करनेवाला फाल्गुनमें 'वीरभद्र' का पूजन करके कङ्कोलका प्राशन करे। चैत्रमें 'सुरूप' नामक शिवकी अर्चना करके कर्पूरका आहार करनेवाला मनुष्य सौभाग्ययुक्त होता है। वैशाखमें 'महारूप' की

पूजा करके जायफलका भोजन करे। व्रत करनेवाला मनुष्य ज्येष्ठ मासमें 'प्रद्युम्न' का पूजन करे और लौंग चबाकर रहे। आषाढ़में 'उमापति' की अर्चना करके तिलमिश्रित जलका पान करे। श्रावणमें 'शूलपाणि' का पूजन करके सुगन्धित जलका पान करे। भाद्रपदमें अगुरुका प्राशन करे और 'सद्योजात' का पूजन करे। आश्विनमें 'त्रिदशाधिप शंकर' के पूजनपूर्वक स्वर्णजलका पान करे। व्रती पुरुष कार्तिकमें 'विश्वेश्वर'की अर्चनाके अनन्तर लवणका भक्षण करे। इस प्रकार वर्षके समाप्त होनेपर स्वर्णनिर्मित शिवलिङ्गको आमके पत्तों और वस्त्रसे ढककर ब्राह्मणको सत्कारपूर्वक दान दे। साथ ही गौ, शय्या, छत्र, कलश, पादुका तथा रसपूर्ण पात्र भी दे॥ १—९॥

चैत्रके शुक्लपक्षकी त्रयोदशीको सिन्दूर और काजलसे अशोकवृक्षको अङ्कित करके उसके नीचे रति और प्रीति (कामकी पत्नियों)-से युक्त कामदेवका स्मरण करे। इस प्रकार कामनायुक्त साधक एक वर्षतक कामदेवका पूजन करे। यह 'कामत्रयोदशी व्रत' कहलाता है॥ १०-११॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'त्रयोदशीके व्रतका वर्णन' नामक एक सौ इक्यानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १९१॥

एक सौ बानबेवाँ अध्याय

चतुर्दशी-सम्बन्धी व्रत

अग्निदेव कहते हैं— वसिष्ठ! अब मैं चतुर्दशी तिथिको किये जानेवाले व्रतका वर्णन करूँगा। वह व्रत भोग और मोक्ष देनेवाला है। कार्तिककी चतुर्दशीको निराहार रहकर भगवान् शिवका पूजन करे और वहींसे आरम्भ करके प्रत्येक मासकी शिव-चतुर्दशीको व्रत और शिवपूजनका क्रम चलाते हुए एक वर्षतक इस नियमको निभावे। ऐसा करनेवाला पुरुष भोग, धन और दीर्घायुसे सम्पन्न होता है॥ १$\frac{१}{२}$॥

मार्गशीर्ष मासके शुक्लपक्षमें अष्टमी, तृतीया, द्वादशी अथवा चतुर्दशीको मौन धारण करके फलाहारपर रहे और देवताका पूजन करे तथा कुछ फलोंका सदाके लिये त्याग करके उन्हींका दान करे। इस प्रकार 'फलचतुर्दशी' का व्रत करनेवाला पुरुष शुक्ल और कृष्ण—दोनों पक्षोंकी चतुर्दशी एवं अष्टमीको उपवासपूर्वक भगवान् शिवकी पूजा करे। इस विधिसे दोनों पक्षोंकी चतुर्दशीका व्रत करनेवाला मनुष्य स्वर्गलोकका भागी होता है। कृष्णपक्षकी अष्टमी तथा चतुर्दशीको नक्तव्रत (केवल रातमें भोजन) करनेसे साधक इहलोकमें अभीष्ट भोग तथा परलोकमें शुभ गति पाता है। कार्तिककी कृष्णा चतुर्दशीको स्नान करके ध्वजके आकारवाले बाँसके डंडोंपर देवराज इन्द्रकी आराधना करनेसे मनुष्य सुखी होता है॥ २—६॥

तदनन्तर प्रत्येक मासकी शुक्ल चतुर्दशीको श्रीहरिके कुशमय विग्रहका निर्माण करके उसे जलसे भरे पात्रके ऊपर पधरावे और उसका पूजन करे। उस दिन अगहनी धानके एक सेर चावलके आटेका पूआ बनवा ले। उसमेंसे आधा ब्राह्मणको दे दे और आधा अपने उपयोगमें लावे॥ ७-८॥

नदियोंके तटपर इस व्रत और पूजनका आयोजन करके वहीं श्रीहरिके 'अनन्तव्रत'की कथाका भी श्रवण या कीर्तन करना चाहिये। उस समय चतुर्दश ग्रन्थियोंसे युक्त अनन्तसूत्रका निर्माण करके अनन्तकी भावनासे ही उसका पूजन करे। फिर निम्नाङ्कित मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके उसे

अपने हाथ या कण्ठमें बाँध ले। मन्त्र इस प्रकार है—

अनन्तसंसारमहासमुद्रे मग्नान् समभ्युद्धर वासुदेव॥
अनन्तरूपे विनियोजयस्व ह्यनन्तरूपाय नमो नमस्ते।

"हे वासुदेव! संसाररूपी अपार पारावारमें डूबे हुए हम-जैसे प्राणियोंका आप उद्धार करें। आपके स्वरूपका कहीं अन्त नहीं है। आप हमें अपने उसी 'अनन्त' स्वरूपमें मिला लें। आप अनन्तरूप परमेश्वरको बारंबार नमस्कार है।" इस प्रकार अनन्तव्रतका अनुष्ठान करनेवाला मनुष्य परमानन्दका भागी होता है॥ ९-१०॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'अनेक प्रकारके चतुर्दशी-व्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ बानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १९२॥

एक सौ तिरानबेवाँ अध्याय
शिवरात्रि-व्रत

अग्निदेव कहते हैं— वसिष्ठ! अब मैं भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले 'शिवरात्रि-व्रत' का वर्णन करता हूँ; एकाग्रचित्तसे उसका श्रवण करो। फाल्गुनके कृष्ण-पक्षकी चतुर्दशीको मनुष्य कामनासहित उपवास करे। व्रत करनेवाला रात्रिको जागरण करे और यह कहे—'मैं चतुर्दशीको भोजनका परित्याग करके शिवरात्रिका व्रत करता हूँ। मैं व्रतयुक्त होकर रात्रि-जागरणके द्वारा शिवका पूजन करता हूँ। मैं भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले शंकरका आवाहन करता हूँ। शिव! आप नरक-समुद्रसे पार करानेवाली नौकाके समान हैं; आपको नमस्कार है। आप प्रजा और राज्यादि प्रदान करनेवाले, मङ्गलमय एवं शान्तस्वरूप हैं; आपको नमस्कार है। आप सौभाग्य, आरोग्य, विद्या, धन और स्वर्ग-मार्गकी प्राप्ति करानेवाले हैं। मुझे धर्म दीजिये, धन दीजिये और कामभोगादि प्रदान कीजिये। मुझे गुण, कीर्ति और सुखसे सम्पन्न कीजिये तथा स्वर्ग और मोक्ष प्रदान कीजिये।' इस शिवरात्रि-व्रतके प्रभावसे पापात्मा सुन्दरसेन व्याधने भी पुण्य प्राप्त किया॥ १—६॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'शिवरात्रि-व्रतका वर्णन' नामक एक सौ तिरानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १९३॥

एक सौ चौरानबेवाँ अध्याय
अशोकपूर्णिमा आदि व्रतोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं— अब मैं 'अशोकपूर्णिमा' के विषयमें कहता हूँ। फाल्गुनके शुक्लपक्षकी पूर्णिमाको भगवान् वराह और भूदेवीका पूजन करे। एक वर्ष ऐसा करनेसे मनुष्य भोग और मोक्ष—दोनोंको प्राप्त कर लेता है। कार्तिककी पूर्णिमाको वृषोत्सर्ग करके रात्रिव्रतका अनुष्ठान करे। इससे मनुष्य शिवलोकको प्राप्त होता है। यह उत्तम व्रत 'वृषोत्सर्गव्रत' के नामसे प्रसिद्ध है। आश्विनके पितृपक्षकी अमावास्याको पितरोंके उद्देश्यसे जो कुछ दिया जाता है, वह अक्षय होता है। मनुष्य किसी वर्ष इस अमावास्याको उपवासपूर्वक पितरोंका पूजन करके पापरहित होकर स्वर्गको प्राप्त कर लेता है। माघ मासकी अमावास्याको (सावित्रीसहित) ब्रह्माका पूजन करके मनुष्य

सम्पूर्ण अभीष्ट कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। अब मैं 'वटसावित्री'-सम्बन्धी अमावास्याके विषयमें कहता हूँ, जो पुण्यमयी एवं भोग और मोक्षकी प्राप्ति करानेवाली है। व्रत करनेवाली नारी (त्रयोदशीसे अमावास्यातक) 'त्रिरात्रव्रत' करे और ज्येष्ठकी अमावास्याको वटवृक्षके मूलभागमें महासती सावित्रीका सप्तधान्यसे पूजन करे। जब रात्रि कुछ शेष हो, उसी समय वटके कण्ठ-सूत्र लपेटकर कुङ्कुमादिसे उसका पूजन करे। प्रभातकालमें वटके समीप नृत्य करे और गीत गाये। '**नमः सावित्र्यै सत्यवते**।' (सत्यवान्-सावित्रीको नमस्कार है)—ऐसा कहकर सत्यवान्-सावित्रीको नमस्कार करे और उनको समर्पित किया हुआ नैवेद्य ब्राह्मणको दे। फिर अपने घर आकर ब्राह्मणोंको भोजन कराके स्वयं भी भोजन करे। '**सावित्रीदेवी प्रीयताम्**।' (सावित्रीदेवी प्रसन्न हों)—ऐसा कहकर व्रतका विसर्जन करे। इससे नारी सौभाग्य आदिको प्राप्त करती है॥ १—८॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'तिथि-व्रतका वर्णन' नामक एक सौ चौरानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १९४॥

एक सौ पंचानबेवाँ अध्याय

वार-सम्बन्धी व्रतोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले वार-सम्बन्धी व्रतोंका वर्णन करता हूँ। जब रविवारको हस्त अथवा पुनर्वसु नक्षत्रका योग हो, तब पवित्र सर्वौषधिमिश्रित जलसे स्नान करना चाहिये। इस प्रकार रविवारको श्राद्ध करनेवाला सात जन्मोंमें रोगसे पीड़ित नहीं होता। संक्रान्तिके दिन यदि रविवार हो, तो उसे पवित्र 'आदित्य-हृदय' माना गया है। उस दिन अथवा हस्तनक्षत्रयुक्त रविवारको एक वर्षतक नक्तव्रत करके मनुष्य सब कुछ पा लेता है। चित्रानक्षत्रयुक्त सोमवारके सात व्रत करके मनुष्य सुख प्राप्त करता है। स्वातीनक्षत्रसे युक्त मङ्गलवारका व्रत आरम्भ करे। इस प्रकार मङ्गलवारके सात नक्तव्रत करके मनुष्य दु:ख-बाधाओंसे छुटकारा पाता है। बुध-सम्बन्धी व्रतमें विशाखा नक्षत्रयुक्त बुधवारको ग्रहण करे। उससे आरम्भ करके बुधवारके सात नक्तव्रत करनेवाला बुधग्रहजनित पीड़ासे मुक्त हो जाता है। अनुराधानक्षत्रयुक्त गुरुवारसे आरम्भ करके सात नक्तव्रत करनेवाला बृहस्पति-ग्रहकी पीड़ासे, ज्येष्ठानक्षत्रयुक्त शुक्रवारको व्रत ग्रहण करके सात नक्तव्रत करनेवाला शुक्रग्रहकी पीड़ासे और मूलनक्षत्रयुक्त शनिवारसे आरम्भ करके सात नक्तव्रत करनेवाला शनिग्रहकी पीड़ासे निवृत्त हो जाता है॥ १—५॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'वार-सम्बन्धी व्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ पंचानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १९५॥

एक सौ छियानबेवाँ अध्याय

नक्षत्र-सम्बन्धी व्रत

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं नक्षत्र-सम्बन्धी व्रतोंका वर्णन करता हूँ। नक्षत्र-विशेषमें पूजन करनेपर श्रीहरि अभीष्ट मनोरथकी पूर्ति करते हैं। सर्वप्रथम नक्षत्र-पुरुष श्रीहरिका चैत्र मासमें पूजन करे। मूल नक्षत्रमें श्रीहरिके चरण-कमलोंकी और रोहिणी नक्षत्रमें उनकी जङ्घाओंकी

अर्चना करे। अश्विनी नक्षत्रके प्राप्त होनेपर जानुयुग्मका, पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ामें इनकी दोनों ऊरुओंका, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनीमें उपस्थका, कृत्तिका नक्षत्रमें कटिप्रदेशका, पूर्वाभाद्रपदा और उत्तराभाद्रपदामें पार्श्वभागका, रेवती नक्षत्रमें कुक्षिदेशका, अनुराधामें स्तनयुगलका, धनिष्ठामें पृष्ठभागका, विशाखामें दोनों भुजाओंका एवं पुनर्वसु नक्षत्रमें अँगुलियोंका पूजन करे। आश्लेषामें नखोंका पूजन करके ज्येष्ठामें कण्ठका यजन करे। श्रवण नक्षत्रमें सर्वव्यापी श्रीहरिके कर्णद्वयका और पुष्य नक्षत्रमें वदन-मण्डलका पूजन करे। स्वाती नक्षत्रमें उनके दाँतोंके अग्रभागकी, शतभिषा नक्षत्रमें मुखकी अर्चना करे। मघा नक्षत्रमें नासिकाकी,मृगशिरा नक्षत्रमें नेत्रोंकी, चित्रा नक्षत्रमें ललाटकी एवं आर्द्रा नक्षत्रमें केशसमूहकी पूजा करे। वर्षके समाप्त होनेपर गुड़से परिपूर्ण कलशपर श्रीहरिकी स्वर्णमयी मूर्तिकी पूजा करके ब्राह्मणको दक्षिणासहित शय्या, गौ और धनादिका दान दे॥ १—७॥

सबके पूजनीय नक्षत्रपुरुष श्रीविष्णु शिवसे अभिन्न हैं, इसलिये शाम्भवायनीय (शिव-सम्बन्धी) व्रत करनेवालेको कृत्तिका-नक्षत्र-सम्बन्धी कार्तिक मासमें और मृगशिरा-नक्षत्र-सम्बन्धी मार्गशीर्ष मासमें केशव आदि नामों एवं '**अच्युताय नमः।**' आदि मन्त्रोंद्वारा श्रीहरिका पूजन करना चाहिये—

संकल्प-मन्त्र

कार्तिके कृत्तिकाभेऽह्नि मासनक्षत्रगं हरिम्।
शाम्भवायनीयव्रतकं करिष्ये भुक्तिमुक्तिदम्॥

'मैं कार्तिक मासकी कृत्तिकानक्षत्रसे युक्त पूर्णिमा तिथिको मास एवं नक्षत्रमें स्थित श्रीहरिका पूजन करूँगा तथा भोग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाले शाम्भवायनीय व्रतका अनुष्ठान करूँगा।'

आवाहन-मन्त्र

केशवादिमहामूर्तिमच्युतं सर्वदायकम्।
आवाहयाम्यहं देवमायुरारोग्यवृद्धिदम्॥

'जो केशव आदि महामूर्तियोंके रूपमें स्थित हैं और आयु एवं आरोग्यकी वृद्धि करनेवाले हैं, मैं उन सर्वप्रद भगवान् अच्युतका आवाहन करता हूँ।'

व्रतकर्ता कार्तिकसे माघतक चार मासोंमें सदा अन्न-दान करे। फाल्गुनसे ज्येष्ठतक खिचड़ीका और आषाढ़से आश्विनतक खीरका दान करे। भगवान् श्रीहरि एवं ब्राह्मणोंको रात्रिके समय नैवेद्य समर्पित करे। पञ्चगव्यके जलसे स्नान एवं उसका आचमन करनेसे मनुष्य पवित्र हो जाता है। मूर्तिके विसर्जनके पूर्व भगवान्‌को समर्पित किये हुए समस्त पदार्थोंको 'नैवेद्य' कहा जाता है, परंतु जगदीश्वर श्रीहरिके विसर्जनके अनन्तर वह तत्काल ही 'निर्माल्य' हो जाता है। (तदनन्तर भगवान्‌से निम्नलिखित प्रार्थना करे—) 'अच्युत! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। मेरे पापोंका विनाश हो और पुण्योंकी वृद्धि हो। मेरे ऐश्वर्य और धनादि सदा अक्षय हों एवं मेरी संतान-परम्परा कभी उच्छिन्न न हो। परात्परस्वरूप! अप्रमेय परमेश्वर! जिस प्रकार आप परसे भी परे एवं ब्रह्मभावमें स्थित होकर अपनी मर्यादासे कभी च्युत नहीं होते हैं, उसी प्रकार आप मेरे मनोवाञ्छित कार्यको सिद्ध कीजिये। पापापहारी भगवन्! मेरे द्वारा किये गये पापोंका अपहरण कीजिये। अच्युत! अनन्त! गोविन्द! अप्रमेयस्वरूप पुरुषोत्तम! मुझपर प्रसन्न होइये और मेरे मनोभिलषित पदार्थको अक्षय कीजिये।' इस प्रकार सात वर्षोंतक श्रीहरिका पूजन करके मनुष्य भोग और मोक्षको सिद्ध कर लेता है॥ ८—१७ $\frac{१}{२}$ ॥

अब मैं नक्षत्र-सम्बन्धी व्रतोंके प्रकरणमें अभीष्ट वस्तुकी प्राप्ति करानेवाले 'अनन्तव्रत'का वर्णन करूँगा। मार्गशीर्ष मासमें जब मृगशिरा नक्षत्र प्राप्त हो, तब गोमूत्रका प्राशन करके श्रीहरिका यजन करे। वे भगवान् अनन्त समस्त कामनाओंका अनन्त फल प्रदान करते हैं। इतना ही नहीं, वे पुनर्जन्ममें भी व्रतकर्ताको अनन्त पुण्यफलसे संयुक्त करते हैं। यह

महाव्रत अनन्त पुण्यका संचय करनेवाला है। यह अभिलषित वस्तुकी प्राप्ति कराके उसे अक्षय बनाता है। भगवान् अनन्तके चरणकमल आदिका पूजन करके रात्रिके समय तैलरहित भोजन करे। भगवान् अनन्तके उद्देश्यसे मार्गशीर्षसे फाल्गुनतक घृतका, चैत्रसे आषाढ़तक अगहनीके चावलका और श्रावणसे कार्तिकतक दुग्धका हवन करे। इस 'अनन्त' व्रतके प्रभावसे ही युवनाश्वको मान्धाता पुत्ररूपमें प्राप्त हुए थे॥ १८—२३॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'नक्षत्र-व्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ छियानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १९६॥

एक सौ सत्तानबेवाँ अध्याय

दिन-सम्बन्धी व्रत

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं दिवस-सम्बन्धी व्रतोंका वर्णन करता हूँ। सबसे पहले 'धेनुव्रत'के विषयमें बतलाता हूँ। जो मनुष्य विपुल स्वर्णराशिके साथ उभयमुखी गौका दान करता है और एक दिनतक पयोव्रतका आचरण करता है, वह परमपदको प्राप्त होता है। स्वर्णमय कल्पवृक्षका दान देकर तीन दिनतक 'पयोव्रत' करनेवाला ब्रह्मपदको प्राप्त कर लेता है। इसे 'कल्पवृक्ष-व्रत' कहा गया है। बीस पलसे अधिक स्वर्णकी पृथ्वीका निर्माण कराके दान दे और एक दिन पयोव्रतका अनुष्ठान करे। केवल दिनमें व्रत रखनेसे मनुष्य रुद्रलोकको प्राप्त होता है। जो प्रत्येक पक्षकी तीन रात्रियोंमें 'एकभुक्त-व्रत' रखता है, वह दिनमें निराहार रहकर 'त्रिरात्रव्रत' करनेवाला मनुष्य विपुल धन प्राप्त करता है। प्रत्येक मासमें तीन एकभुक्त नक्तव्रत करनेवाला गणपतिके सायुज्यको प्राप्त होता है। जो भगवान् जनार्दनके उद्देश्यसे 'त्रिरात्रव्रत'का अनुष्ठान करता है, वह अपने सौ कुलोंके साथ भगवान् श्रीहरिके वैकुण्ठधामको जाता है। व्रतानुरागी मनुष्य मार्गशीर्षके शुक्लपक्षकी नवमीसे विधिपूर्वक त्रिरात्रव्रत प्रारम्भ करे। '**नमो भगवते वासुदेवाय**' मन्त्रका सहस्र अथवा सौ बार जप करे। अष्टमीको एकभुक्त (दिनमें एक बार भोजन करना) व्रत और नवमी, दशमी, एकादशीको उपवास करे। द्वादशीको भगवान् श्रीविष्णुका पूजन करे। यह व्रत कार्तिकमें करना चाहिये। व्रतकी समाप्तिपर ब्राह्मणोंको भोजन कराके, उन्हें वस्त्र, शय्या, आसन, छत्र, यज्ञोपवीत और पात्र दान करे। देते समय ब्राह्मणोंसे यह प्रार्थना करे—'इस दुष्कर व्रतके अनुष्ठानमें मेरे द्वारा जो त्रुटि हुई हो, आप लोगोंकी आज्ञासे वह परिपूर्ण हो जाय।' यह 'त्रिरात्रव्रत' करनेवाला इस लोकमें भोगोंका उपभोग करके मृत्युके पश्चात् भगवान् श्रीविष्णुके सांनिध्यको प्राप्त करता है॥ १—११॥

अब मैं भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले कार्तिकव्रतके विषयमें कहता हूँ। दशमीको पञ्चगव्यका प्राशन करके एकादशीको उपवास करे। इस व्रतके पालनमें कार्तिकके शुक्लपक्षकी द्वादशीको श्रीविष्णुका पूजन करनेवाला मनुष्य विमानचारी देवता होता है। चैत्रमें त्रिरात्रव्रत करके केवल रात्रिके समय भोजन करनेवाला एवं व्रतकी समाप्तिमें पाँच बकरियोंका दान देनेवाला सुखी होता है। कार्तिकके शुक्लपक्षकी षष्ठीसे आरम्भ करके तीन दिनतक केवल दुग्ध पीकर रहे। फिर तीन दिनतक उपवास करे। इसे 'माहेन्द्रकृच्छ्र' कहा जाता है। कार्तिकके शुक्लपक्षकी एकादशीको आरम्भ करके 'पञ्चरात्रव्रत' करे। प्रथम दिन दुग्धपान

करे, दूसरे दिन दधिका आहार करे, फिर तीन दिन उपवास करे। यह अर्थप्रद 'भास्करकृच्छ्र' कहलाता है। शुक्लपक्षकी पञ्चमीसे आरम्भ करके छ: दिनतक क्रमश: यवकी लपसी, शाक, दधि, दुग्ध, घृत और जल—इन वस्तुओंका आहार करे। इसे 'सांतपनकृच्छ्र' कहा गया है॥ १२—१६॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'दिवस-सम्बन्धी व्रतका वर्णन' नामक एक सौ सत्तानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १९७॥

एक सौ अट्ठानबेवाँ अध्याय

मास-सम्बन्धी व्रत

अग्निदेव कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ! अब मैं मास-व्रतोंका वर्णन करूँगा, जो भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। आषाढ़से प्रारम्भ होनेवाले चातुर्मास्यमें अभ्यङ्ग (मालिश और उबटन)-का त्याग करे। इससे मनुष्य उत्तम बुद्धि प्राप्त करता है। वैशाखमें पुष्परेणुतकका परित्याग करके गोदान करनेवाला राज्य प्राप्त करता है। एक मास उपवास रखकर गोदान करनेवाला इस भीमव्रतके प्रभावसे श्रीहरिस्वरूप हो जाता है। आषाढ़से प्रारम्भ होनेवाले चातुर्मास्यमें नियमपूर्वक प्रात:स्नान करनेवाला विष्णुलोकको जाता है। माघ अथवा चैत्र मासकी तृतीयाको गुड़-धेनुका दान दे, इसे 'गुड़व्रत' कहा गया है। इस महान् व्रतका अनुष्ठान करनेवाला शिवस्वरूप हो जाता है। मार्गशीर्ष आदि मासोंमें 'नक्तव्रत' (रात्रिमें एक बार भोजन) करनेवाला विष्णुलोकका अधिकारी होता है। 'एकभुक्त व्रत'का पालन करनेवाला उसी प्रकार पृथक् रूपसे द्वादशीव्रतका भी पालन करे। 'फलव्रत' करनेवाला चातुर्मास्यमें फलोंका त्याग करके उनका दान करे॥ १—५॥

श्रावणसे प्रारम्भ होनेवाले चातुर्मास्यमें व्रतोंके अनुष्ठानसे व्रतकर्ता सब कुछ प्राप्त कर लेता है। चातुर्मास्य-व्रतोंका इस प्रकार विधान करे—आषाढ़के शुक्लपक्षकी एकादशीको उपवास रखे। प्राय: आषाढ़में प्राप्त होनेवाली कर्क-संक्रान्तिमें श्रीहरिका पूजन करे और कहे—'भगवन्! मैंने आपके सम्मुख यह व्रत ग्रहण किया है। केशव! आपकी प्रसन्नतासे इसकी निर्विघ्न सिद्धि हो। देवाधिदेव जनार्दन! यदि इस व्रतके ग्रहणके अनन्तर इसकी अपूर्णतामें ही मेरी मृत्यु हो जाय, तो आपके कृपा-प्रसादसे यह व्रत सम्पूर्ण हो।' व्रत करनेवाला द्विज मांस आदि निषिद्ध वस्तुओं और तेलका त्याग करके श्रीहरिका यजन करे। एक दिनके अन्तरसे उपवास रखकर त्रिरात्रव्रत करनेवाला विष्णुलोकको प्राप्त होता है। 'चान्द्रायण व्रत' करनेवाला विष्णुलोकका और 'मौन व्रत' करनेवाला मोक्षका अधिकारी होता है। 'प्राजापत्य व्रत' करनेवाला स्वर्गलोकको जाता है। सत्तू और यवका भक्षण करके, दुग्ध आदिका आहार करके, अथवा पञ्चगव्य एवं जल पीकर कृच्छ्रव्रतोंका अनुष्ठान करनेवाला स्वर्गको प्राप्त होता है। शाक, मूल और फलके आहारपूर्वक कृच्छ्रव्रत करनेवाला मनुष्य वैकुण्ठको जाता है। मांस और रसका परित्याग करके जौका भोजन करनेवाला श्रीहरिके सांनिध्यको प्राप्त करता है॥ ६—१२ १/२॥

अब मैं 'कौमुदव्रत'का वर्णन करूँगा। आश्विनके शुक्लपक्षकी एकादशीको उपवास रखे। द्वादशीको श्रीविष्णुके अङ्गोंमें चन्दनादिका अनुलेपन करके कमल और उत्पल आदि पुष्पोंसे उनका पूजन करे। तदनन्तर तिल-तैलसे परिपूर्ण दीपक और घृतसिद्ध पक्वान्नका नैवेद्य समर्पित करे। श्रीविष्णुको मालतीपुष्पोंकी माला भी निवेदन करे। **'ॐ नमो वासुदेवाय'**—इस मन्त्रसे व्रतका विसर्जन करे। इस प्रकार 'कौमुदव्रत'का अनुष्ठान करनेवाला

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंको हस्तगत कर लेता है। मासोपवास व्रत करनेवाला श्रीविष्णुका पूजन करके सब कुछ प्राप्त कर लेता है॥ १३—१६॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'मास-सम्बन्धी व्रतका वर्णन' नामक एक सौ अट्ठानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १९८॥

एक सौ निन्यानबेवाँ अध्याय

ऋतु, वर्ष, मास, संक्रान्ति आदि विभिन्न व्रतोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं आपके सम्मुख ऋतु-सम्बन्धी व्रतोंका वर्णन करता हूँ, जो भोग और मोक्षको सुलभ करनेवाले हैं। जो वर्षा, शरद्, हेमन्त और शिशिर ऋतुमें इन्धनका दान करता है एवं व्रतान्तमें घृत-धेनुका दान करता है, वह 'अग्निव्रत'का पालन करनेवाला मनुष्य दूसरे जन्ममें ब्राह्मण होता है। जो एक मासतक संध्याके समय मौन रहकर मासान्तमें ब्राह्मणको घृतकुम्भ, तिल, घण्टा और वस्त्र देता है, वह 'सारस्वतव्रत' करनेवाला मनुष्य सुखका उपभोग करता है। एक वर्षतक पञ्चामृतसे स्नान करके गोदान करनेवाला राजा होता है॥ १—३॥

चैत्रकी एकादशीको नक्तभुक्तव्रत करके चैत्रके समाप्त होनेपर विष्णुभक्त ब्राह्मणको स्वर्णमयी विष्णु-प्रतिमाका दान करे। इस विष्णु-सम्बन्धी उत्तम व्रतका पालन करनेवाला विष्णुपदको प्राप्त करता है। (एक वर्षतक) खीरका भोजन करके गोयुग्मका दान करनेवाला इस 'देवीव्रत'के पालनके प्रभावसे श्रीसम्पन्न होता है। जो (एक वर्षतक) पितृदेवोंको समर्पित करके भोजन करता है, वह राज्य प्राप्त करता है। ये वर्ष-सम्बन्धी व्रत कहे गये। अब मैं संक्रान्ति-सम्बन्धी व्रतोंका वर्णन करता हूँ। मनुष्य संक्रान्तिकी रात्रिको जागरण करनेसे स्वर्गलोकको प्राप्त होता है। जब संक्रान्ति अमावास्या तिथिमें हो तो शिव और सूर्यका पूजन करनेसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है। उत्तरायण-सम्बन्धिनी मकर-संक्रान्तिमें प्रातःकाल स्नान करके भगवान् श्रीकेशवकी अर्चना करनी चाहिये। उद्यापनमें बत्तीस पल स्वर्णका दान देकर वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है। विषुव आदि योगोंमें भगवान् श्रीहरिको घृतमिश्रित दुग्ध आदिसे स्नान कराके मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर लेता है॥ ४—८॥

स्त्रियोंके लिये 'उमाव्रत' लक्ष्मी प्रदान करनेवाला है। उन्हें तृतीया और अष्टमी तिथिको गौरीशंकरकी पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार शिव-पार्वतीकी अर्चना करके नारी अखण्ड सौभाग्य प्राप्त करती है और उसे कभी पतिका वियोग नहीं होता। 'मूलव्रत' एवं 'उमेश-व्रत' करनेवाली तथा सूर्यमें भक्ति रखनेवाली स्त्री दूसरे जन्ममें अवश्य पुरुषत्व प्राप्त करती है॥ ९—११॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'विभिन्न व्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ निन्यानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १९९॥

दो सौवाँ अध्याय

दीपदान-व्रतकी महिमा एवं विदर्भराजकुमारी ललिताका उपाख्यान

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले 'दीपदान-व्रत'का वर्णन करता हूँ। जो मनुष्य देवमन्दिर अथवा ब्राह्मणके गृहमें एक वर्षतक दीपदान करता है,

वह सब कुछ प्राप्त कर लेता है। चातुर्मास्यमें दीपदान करनेवाला विष्णुलोकको और कार्तिकमें दीपदान करनेवाला स्वर्गलोकको प्राप्त होता है। दीपदानसे बढ़कर न कोई व्रत है, न था और न होगा ही। दीपदानसे आयु और नेत्रज्योतिकी प्राप्ति होती है। दीपदानसे धन और पुत्रादिकी भी प्राप्ति होती है। दीपदान करनेवाला सौभाग्ययुक्त होकर स्वर्गलोकमें देवताओंद्वारा पूजित होता है। विदर्भराजकुमारी ललिता दीपदानके पुण्यसे ही राजा चारुधर्माकी पत्नी हुई और उसकी सौ रानियोंमें प्रमुख हुई। उस साध्वीने एक बार विष्णुमन्दिरमें सहस्र दीपोंका दान किया। इसपर उसकी सपत्नियोंने उससे दीपदानका माहात्म्य पूछा। उनके पूछनेपर उसने इस प्रकार कहा— ॥ १—५ ॥

ललिता बोली— पहलेकी बात है, सौवीरराजके यहाँ मैलेय नामक पुरोहित थे। उन्होंने देविका नदीके तटपर भगवान् श्रीविष्णुका मन्दिर बनवाया। कार्तिक मासमें उन्होंने दीपदान किया। बिलावके डरसे भागती हुई एक चुहियाने अकस्मात् अपने मुखके अग्रभागसे उस दीपककी बत्तीको बढ़ा दिया। बत्तीके बढ़नेसे वह बुझता हुआ दीपक प्रज्वलित हो उठा। मृत्युके पश्चात् वही चुहिया राजकुमारी हुई और राजा चारुधर्माकी सौ रानियोंमें पटरानी हुई। इस प्रकार मेरे द्वारा बिना सोचे-समझे जो विष्णुमन्दिरके दीपककी वर्तिका बढ़ा दी गयी, उसी पुण्यका मैं फल भोग रही हूँ। इसीसे मुझे अपने पूर्वजन्मका स्मरण भी है। इसलिये मैं सदा दीपदान किया करती हूँ। एकादशीको दीपदान करनेवाला स्वर्गलोकमें विमानपर आरूढ़ होकर प्रमुदित होता है। मन्दिरका दीपक हरण करनेवाला गूँगा अथवा मूर्ख हो जाता है। वह निश्चय ही 'अन्धतामिस्र' नामक नरकमें गिरता है, जिसे पार करना दुष्कर है। वहाँ रुदन करते हुए मनुष्योंसे यमदूत कहता है—"अरे! अब यहाँ विलाप क्यों करते हो? यहाँ विलाप करनेसे क्या लाभ है? पहले तुमलोगोंने प्रमादवश सहस्रों जन्मोंके बाद प्राप्त होनेवाले मनुष्य-जन्मकी उपेक्षा की थी। वहाँ तो अत्यन्त मोहयुक्त चित्तसे तुमने भोगोंके पीछे दौड़ लगायी। पहले तो विषयोंका आस्वादन करके खूब हँसे थे, अब यहाँ क्यों रो रहे हो? तुमने पहले ही यह क्यों नहीं सोचा कि किये हुए कुकर्मोंका फल भोगना पड़ता है। पहले जो परनारीका कुचमर्दन तुम्हें प्रीतिकर प्रतीत होता था, वही अब तुम्हारे दुःखका कारण हुआ है। मुहूर्तभरका विषयोंका आस्वादन अनेक करोड़ वर्षोंतक दुःख देनेवाला होता है। तुमने परस्त्रीका अपहरण करके जो कुकर्म किया, वह मैंने बतलाया। अब '**हा! मातः**' कहकर विलाप क्यों करते हो? भगवान् श्रीहरिके नामका जिह्वासे उच्चारण करनेमें कौन-सा बड़ा भार है? बत्ती और तेल अल्प मूल्यकी वस्तुएँ हैं और अग्नि तो वैसे ही सदा सुलभ है। इसपर भी तुमने दीपदान न करके विष्णु-मन्दिरके दीपकका हरण किया, वही तुम्हारे लिये दुःखदायी हो रहा है। विलाप करनेसे क्या लाभ? अब तो जो यातना मिल रही है, उसे सहन करो"॥ ६—१८॥

अग्निदेव कहते हैं— ललिताकी सौतें उसके द्वारा कहे हुए इस उपाख्यानको सुनकर दीपदानके प्रभावसे स्वर्गको प्राप्त हो गयीं। इसलिये दीपदान सभी व्रतोंसे विशेष फलदायक है॥ १९॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'दीपदानकी महिमाका वर्णन' नामक दो सौवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २००॥

दो सौ एकवाँ अध्याय
नवव्यूहार्चन

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं नवव्यूहार्चनकी विधि बताऊँगा, जिसका उपदेश भगवान् श्रीहरिने नारदजीके प्रति किया था। पद्ममय मण्डलके बीचमें '**अं**' बीजसे युक्त वासुदेवकी पूजा करे (यथा—**अं वासुदेवाय नमः**)। '**आं**' बीजसे युक्त संकर्षणका अग्निकोणमें, '**अं**' बीजसे युक्त प्रद्युम्नका दक्षिणमें, '**अः**' बीजवाले अनिरुद्धका नैर्ऋत्यकोणमें, प्रणवयुक्त नारायणका पश्चिममें, तत्सद् ब्रह्मका वायव्यकोणमें, '**ह्रुं**' बीजसे युक्त विष्णुका और '**क्ष्रौं**' बीजसे युक्त नृसिंहका उत्तर दिशामें, पृथ्वी और वराहका ईशानकोणमें तथा पश्चिम द्वारमें पूजन करे॥ १—३॥

'**कं टं शं सं**'—इन बीजोंसे युक्त पूर्वाभिमुख गरुड़का दक्षिण दिशामें पूजन करे। '**खं छं बं हुं फट्**' तथा '**खं ठं फं शं**'—इन बीजोंसे युक्त गदाकी चन्द्रमण्डलमें पूजा करे। '**बं णं मं क्षं**' तथा '**शं धं दं भं हं**'—इन बीजोंसे युक्त श्रीदेवीका कोणभागमें पूजन करे। दक्षिण तथा उत्तर दिशामें '**गं डं बं शं**'—इन बीजोंसे युक्त पुष्टिदेवीकी अर्चना करे। पीठके पश्चिम भागमें '**धं वं**'—इन बीजोंसे युक्त वनमालाका पूजन करे। '**सं हं लं**'—इन बीजोंसे युक्त श्रीवत्सकी पश्चिम दिशामें पूजा करे और '**छं तं यं**'—इन बीजोंसे युक्त कौस्तुभका जलमें पूजन करे॥ ४—६॥

फिर दशमाङ्ग-क्रमसे विष्णुका और उनके अधोभागमें भगवान् अनन्तका उनके नामके साथ '**नमः**' पद जोड़कर पूजन करे। दस* अङ्गादिका तथा महेन्द्र आदि दस दिक्पालोंका पूर्वादि दिशाओंमें पूजन करे। पूर्वादि दिशाओंमें चार कलशोंका भी पूजन करे। तोरण, वितान (चँदोवा) तथा अग्नि, वायु और चन्द्रमाके बीजोंसे युक्त मण्डलोंका क्रमशः ध्यान करके अपने शरीरको वन्दनापूर्वक अमृतसे प्लावित करे। आकाशमें स्थित आत्माके सूक्ष्मरूपका ध्यान करके यह भावना करे कि वह चन्द्रमण्डलसे झरे हुए श्वेत अमृतकी धारामें निमग्न है। प्लवनसे जिसका संस्कार किया गया है, वह अमृत ही आत्माका बीज है। उस अमृतसे उत्पन्न होनेवाले पुरुषको आत्मा (अपना स्वरूप) माने। यह भावना करे कि 'मैं स्वयं ही विष्णुरूपसे प्रकट हुआ हूँ।' इसके बाद द्वादश बीजोंका न्यास करे। क्रमशः वक्षःस्थल, मस्तक, शिखा, पृष्ठभाग, नेत्र तथा दोनों हाथोंमें हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्रत्रय और अस्त्र—इन अंगोंका न्यास करे। दोनों हाथोंमें अस्त्रका न्यास करनेके पश्चात् साधकके शरीरमें दिव्यता आ जाती है॥ ७—१२॥

जैसे अपने शरीरमें न्यास करे, वैसे ही देवताके विग्रहमें भी करे तथा शिष्यके शरीरमें भी उसी तरह न्यास करे। हृदयमें जो श्रीहरिका पूजन किया जाता है, उसे 'निर्माल्यरहित पूजा' कहा गया है। मण्डल आदिमें निर्माल्यसहित पूजा की जाती है। दीक्षाकालमें शिष्योंके नेत्र बँधे रहते हैं। उस अवस्थामें इष्टदेवके विग्रहपर वे जिस फूलको फेंकें, तदनुसार ही उनका नामकरण करना चाहिये। शिष्योंको वामभागमें बैठाकर अग्निमें तिल, चावल और घीकी आहुति दे। एक सौ आठ आहुतियाँ देनेके पश्चात् कायशुद्धिके लिये एक सहस्र आहुतियोंका हवन करे। नवव्यूहकी मूर्तियों तथा अंगोंके लिये सौसे अधिक आहुतियाँ देनी चाहिये। तदनन्तर पूर्णाहुति देकर गुरु उन शिष्योंको दीक्षा दे तथा शिष्योंको चाहिये कि वे धनसे गुरुकी पूजा करें॥ १३—१६॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'नवव्यूहार्चनवर्णन' नामक दो सौ एकवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २०१॥

---

* पाँच अङ्गन्यास तथा पाँच करन्यास।

दो सौ दोवाँ अध्याय

देवपूजाके योग्य और अयोग्य पुष्प

अग्निदेव कहते हैं— वसिष्ठ! भगवान् श्रीहरि पुष्प, गन्ध, धूप, दीप और नैवेद्यके समर्पणसे ही प्रसन्न हो जाते हैं। मैं तुम्हारे सम्मुख देवताओंके योग्य एवं अयोग्य पुष्पोंका वर्णन करता हूँ। पूजनमें मालती-पुष्प उत्तम है। तमाल-पुष्प भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है। मल्लिका (मोतिया) समस्त पापोंका नाश करती है तथा यूथिका (जूही) विष्णुलोक प्रदान करनेवाली है। अतिमुक्तक (मोगरा) और लोध्रपुष्प विष्णुलोककी प्राप्ति करानेवाले हैं। करवीर-कुसुमोंसे पूजन करनेवाला वैकुण्ठको प्राप्त होता है तथा जपा-पुष्पोंसे मनुष्य पुण्य उपलब्ध करता है। पावन्ती, कुब्जक और तगर-पुष्पोंसे पूजन करनेवाला विष्णुलोकका अधिकारी होता है। कर्णिकार (कनेर)-द्वारा पूजन करनेसे वैकुण्ठकी प्राप्ति होती है एवं कुरुण्ट (पीली कटसरैया)-के पुष्पोंसे किया हुआ पूजन पापोंका नाश करनेवाला होता है। कमल, कुन्द एवं केतकीके पुष्पोंसे परमगतिकी प्राप्ति होती है। बाणपुष्प, बर्बर-पुष्प और कृष्ण तुलसीके पत्तोंसे पूजन करनेवाला श्रीहरिके लोकमें जाता है। अशोक, तिलक तथा आटरूष (अड़ूसे)-के फूलोंका पूजनमें उपयोग करनेसे मनुष्य मोक्षका भागी होता है। बिल्वपत्रों एवं शमीपत्रोंसे परमगति सुलभ होती है। तमालदल तथा भृङ्गराज-कुसुमोंसे पूजन करनेवाला विष्णुलोकमें निवास करता है। कृष्ण तुलसी, शुक्ल तुलसी, कल्हार, उत्पल, पद्म एवं कोकनद—ये पुष्प पुण्यप्रद माने गये हैं॥ १—७॥

भगवान् श्रीहरि सौ कमलोंकी माला समर्पण करनेसे परम प्रसन्न होते हैं। नीप, अर्जुन, कदम्ब, सुगन्धित बकुल (मौलसिरी), किंशुक (पलाश), मुनि (अगस्त्यपुष्प), गोकर्ण, नागकर्ण (रक्त एरण्ड), संध्यापुष्पी (चमेली), बिल्वातक, रञ्जनी एवं केतकी तथा कूष्माण्ड, ग्रामकर्कटी, कुश, कास, सरपत, विभीतक, मरुआ तथा अन्य सुगन्धित पत्रोंद्वारा भक्तिपूर्वक पूजन करनेसे भगवान् श्रीहरि प्रसन्न हो जाते हैं। इनसे पूजन करनेवालेके पाप नाश होकर उसको भोग-मोक्षकी प्राप्ति होती है। लक्ष स्वर्णभारसे पुष्प उत्तम है, पुष्पमाला उससे भी करोड़गुनी श्रेष्ठ है, अपने तथा दूसरोंके उद्यानके पुष्पोंकी अपेक्षा वन्य पुष्पोंका तिगुना फल माना गया है॥ ८—११ $\frac{१}{२}$॥

झड़कर गिरे, अधिकाङ्ग एवं मसले हुए पुष्पोंसे श्रीहरिका पूजन न करे। इसी प्रकार कचनार, धत्तूर, गिरिकर्णिका (सफेद किणही), कुटज, शाल्मलि (सेमर) एवं शिरीष (सिरस) वृक्षके पुष्पोंसे भी श्रीविष्णुकी अर्चना न करे। इससे पूजा करनेवालेका नरक आदिमें पतन होता है। विष्णुभगवान्का सुगन्धित रक्तकमल तथा नीलकमल-कुसुमोंसे पूजन होता है। भगवान् शिवका आक, मदार, धत्तूर-पुष्पोंसे पूजन किया जाता है; किंतु कुटज, कर्कटी एवं केतकी (केवड़े)-के फूल शिवके ऊपर नहीं चढ़ाने चाहिये। कूष्माण्ड एवं निम्बके पुष्प तथा अन्य गन्धहीन पुष्प 'पैशाच' माने गये हैं॥ १२—१५॥

अहिंसा, इन्द्रियसंयम, क्षमा, ज्ञान, दया एवं स्वाध्याय आदि आठ भावपुष्पोंसे देवताओंका यजन करके मनुष्य भोग-मोक्षका भागी होता है। इनमें अहिंसा प्रथम पुष्प है, इन्द्रिय-निग्रह द्वितीय पुष्प है, सम्पूर्ण भूत-प्राणियोंपर दया तृतीय पुष्प है, क्षमा चौथा विशिष्ट पुष्प है। इसी प्रकार क्रमशः शम, तप एवं ध्यान पाँचवें, छठे और सातवें पुष्प हैं। सत्य आठवाँ पुष्प है। इनसे पूजित होनेपर भगवान् केशव प्रसन्न हो जाते हैं। इन आठ भावपुष्पोंसे पूजा करनेपर ही भगवान् केशव संतुष्ट होते हैं। नरश्रेष्ठ! अन्य पुष्प तो

पूजाके बाह्य उपकरण हैं, श्रीविष्णु तो भक्ति एवं दयासे समन्वित भाव-पुष्पोंद्वारा पूजित होनेपर परितुष्ट होते हैं॥ १६—१९॥

जल वारुण पुष्प है; घृत, दुग्ध, दधि सौम्य पुष्प हैं; अन्नादि प्राजापत्य पुष्प हैं, धूप-दीप आग्नेय पुष्प हैं, फल-पुष्पादि पञ्चम वानस्पत्य पुष्प हैं, कुशमूल आदि पार्थिव पुष्प हैं; गन्ध-चन्दन वायव्य कुसुम हैं, श्रद्धादि भाव वैष्णव प्रसून हैं। ये आठ पुष्पिकाएँ हैं, जो सब कुछ देनेवाली हैं। आसन (योगपीठ), मूर्ति-निर्माण, पञ्चाङ्गन्यास तथा अष्टपुष्पिकाएँ—ये विष्णुरूप हैं। भगवान् श्रीहरि पूर्वोक्त अष्टपुष्पिकाद्वारा पूजन करनेसे प्रसन्न होते हैं। इसके अतिरिक्त भगवान् श्रीविष्णुका 'वासुदेव' आदि नामोंसे एवं श्रीशिवका 'ईशान' आदि नाम-पुष्पोंसे भी पूजन किया जाता है॥ २०—२३॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'पुष्पाध्याय' नामक दो सौ दोवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २०२॥

दो सौ तीनवाँ अध्याय
नरकोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं— वसिष्ठ! अब मैं नरकोंका वर्णन करता हूँ। भगवान् श्रीविष्णुका पुष्पादि उपचारोंसे पूजन करनेवाले नरकको नहीं प्राप्त होते। आयुके समाप्त होनेपर मनुष्य न चाहता हुआ भी प्राणोंसे बिछुड़ जाता है। देहधारी जीव जल, अग्नि, विष, शस्त्राघात, भूख, व्याधि या पर्वतसे पतन—किसी-न-किसी निमित्तको पाकर प्राणोंसे हाथ धो बैठता है। वह अपने कर्मोंके अनुसार यातनाएँ भोगनेके लिये दूसरा शरीर ग्रहण करता है। इस प्रकार पापकर्म करनेवाला दु:ख भोगता है, परंतु धर्मात्मा पुरुष सुखका भोग करता है। मृत्युके पश्चात् पापी जीवको यमदूत बड़े दुर्गम मार्गसे ले जाते हैं और वह यमपुरीके दक्षिण द्वारसे यमराजके पास पहुँचाया जाता है। वे यमदूत बड़े डरावने होते हैं। परंतु धर्मात्मा मनुष्य पश्चिम आदि द्वारोंसे ले जाये जाते हैं। वहाँ पापी जीव यमराजकी आज्ञासे यमदूतोंद्वारा नरकोंमें गिराये जाते हैं, किंतु वसिष्ठ आदि ऋषियोंद्वारा प्रतिपादित धर्मका आचरण करनेवाले स्वर्गमें ले जाये जाते हैं। गोहत्यारा 'महावीचि' नामक नरकमें एक लाख वर्षतक पीड़ित किया जाता है। ब्रह्मघाती अत्यन्त दहकते हुए 'ताम्रकुम्भ' नामक नरकमें गिराये जाते हैं और भूमिका अपहरण करनेवाले पापीको महाप्रलय कालतक 'रौरव-नरक'में धीरे-धीरे दु:सह पीड़ा दी जाती है। स्त्री, बालक अथवा वृद्धोंका वध करनेवाले पापी चौदह इन्द्रोंके राज्यकालपर्यन्त 'महारौरव' नामक रौद्र नरकमें क्लेश भोगते हैं। दूसरोंके घर और खेतको जलानेवाले अत्यन्त भयंकर 'महारौरव' नरकमें एक कल्पपर्यन्त पकाये जाते हैं। चोरी करनेवालेको 'तामिस्त्र' नामक नरकमें गिराया जाता है। इसके बाद उसे अनेक कल्पोंतक यमराजके अनुचर भालोंसे बींधते रहते हैं और फिर 'महातामिस्त्र' नरकमें जाकर वह पापी सर्पों और जोकोंद्वारा पीड़ित किया जाता है। मातृघाती आदि मनुष्य 'असिपत्रवन' नामक नरकमें गिराये जाते हैं। वहाँ तलवारोंसे उनके अङ्ग तबतक काटे जाते हैं, जबतक यह पृथ्वी स्थित रहती है। जो इस लोकमें दूसरे प्राणियोंके हृदयको जलाते हैं, वे अनेक कल्पोंतक 'करम्भवालुका' नरकमें जलती हुई रेतमें भुने जाते हैं। दूसरोंको बिना दिये अकेले मिष्टान्न भोजन करनेवाला 'काकोल'

नामक नरकमें कीड़ा और विष्ठाका भक्षण करता है। पञ्चमहायज्ञ और नित्यकर्मका परित्याग करनेवाला 'कुट्टल' नामक नरकमें जाकर मूत्र और रक्तका पान करता है। अभक्ष्य वस्तुका भक्षण करनेवालेको महादुर्गन्धमय नरकमें गिरकर रक्तका आहार करना पड़ता है॥ १—१२॥

दूसरोंको कष्ट देनेवाला 'तैलपाक' नामक नरकमें तिलोंकी भाँति पेरा जाता है। शरणागतका वध करनेवालेको भी 'तैलपाक'में पकाया जाता है। यज्ञमें कोई चीज देनेकी प्रतिज्ञा करके न देनेवाला 'निरुच्छ्वास'में, रस-विक्रय करनेवाला 'वज्रकटाह' नामक नरकमें और असत्यभाषण करनेवाला 'महापात' नामक नरकमें गिराया जाता है॥ १३-१४॥

पापपूर्ण विचार रखनेवाला 'महाज्वाल'में, अगम्या स्त्रीके साथ गमन करनेवाला 'क्रकच'में, वर्णसंकर संतान उत्पन्न करनेवाला 'गुडपाक'में, दूसरोंके मर्मस्थानोंमें पीड़ा पहुँचानेवाला 'प्रतुद'में, प्राणिहिंसा करनेवाला 'क्षारह्रद'में, भूमिका अपहरण करनेवाला 'क्षुरधार'में, गौ और स्वर्णकी चोरी करनेवाला 'अम्बरीष'में, वृक्ष काटनेवाला 'वज्रशस्त्र'में, मधु चुरानेवाला 'परीताप'में, दूसरोंका धन अपहरण करनेवाला 'कालसूत्र'में, अधिक मांस खानेवाला 'कश्मल'में और पितरोंको पिण्ड न देनेवाला 'उग्रगन्ध' नामक नरकमें यमदूतोंद्वारा ले जाया जाता है। घूस खानेवाले 'दुर्धर' नामक नरकमें और निरपराध मनुष्योंको कैद करनेवाले 'लौहमय मंजूष' नामक नरकमें यमदूतोंद्वारा ले जाकर कैद किये जाते हैं। वेदनिन्दक मनुष्य 'अप्रतिष्ठ' नामक नरकमें गिराया जाता है। झूठी गवाही देनेवाला 'पूतिवक्त्र'में, धनका अपहरण करनेवाला 'परिलुण्ठ'में, बालक, स्त्री और वृद्धकी हत्या करनेवाला तथा ब्राह्मणको पीड़ा देनेवाला 'कराल'में, मद्यपान करनेवाला ब्राह्मण 'विलेप'में और मित्रोंमें परस्पर भेदभाव करानेवाला 'महाप्रेत' नरकको प्राप्त होता है। परायी स्त्रीका उपभोग करनेवाले पुरुष और अनेक पुरुषोंसे सम्भोग करनेवाली नारीको 'शाल्मल' नामक नरकमें जलती हुई लौहमयी शिलाके रूपमें अपनी उस प्रिया अथवा प्रियका आलिङ्गन करना पड़ता है॥ १५—२१॥

नरकोंमें चुगली करनेवालोंकी जीभ खींचकर निकाल ली जाती है, परायी स्त्रियोंको कुदृष्टिसे देखनेवालोंकी आँखें फोड़ी जाती हैं, माता और पुत्रीके साथ व्यभिचार करनेवाले धधकते हुए अंगारोंपर फेंक दिये जाते हैं, चोरोंको छुरोंसे काटा जाता है और मांस-भक्षण करनेवाले नरपिशाचोंको उन्हींका मांस काटकर खिलाया जाता है। मासोपवास, एकादशीव्रत अथवा भीष्मपञ्चकव्रत करनेवाला मनुष्य नरकोंमें नहीं जाता॥ २२-२३॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'एक सौ नवासी नरकोंके स्वरूपका वर्णन' नामक दो सौ तीनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २०३॥

दो सौ चारवाँ अध्याय

मासोपवास-व्रत

अग्निदेव कहते हैं— मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ! अब मैं तुम्हारे सम्मुख सबसे उत्तम मासोपवास-व्रतका वर्णन करता हूँ। वैष्णव-यज्ञका अनुष्ठान करके, आचार्यकी आज्ञा लेकर, कृच्छ्र आदि व्रतोंसे अपनी शक्तिका अनुमान करके मासोपवासव्रत करना चाहिये। वानप्रस्थ, संन्यासी एवं विधवा स्त्री—इनके लिये मासोपवास-व्रतका विधान है॥ १-२॥

आश्विनके शुक्ल पक्षकी एकादशीको उपवास रखकर तीस दिनोंके लिये निम्नलिखित संकल्प करके मासोपवास-व्रत ग्रहण करे—'श्रीविष्णो! मैं आजसे लेकर तीस दिनतक आपके उत्थानकालपर्यन्त निराहार रहकर आपका पूजन करूँगा। सर्वव्यापी श्रीहरे! आश्विन शुक्ल एकादशीसे आपके उत्थानकाल कार्तिक शुक्ल एकादशीके मध्यमें यदि मेरी मृत्यु हो जाय तो (आपकी कृपासे) मेरा व्रत भङ्ग न हो*।' व्रत करनेवाला दिनमें तीन बार स्नान करके सुगन्धित द्रव्य और पुष्पोंद्वारा प्रातः, मध्याह्न एवं सायंकाल श्रीविष्णुका पूजन करे तथा विष्णु-सम्बन्धी गान, जप और ध्यान करे। व्रती पुरुष वकवादका परित्याग करे और धनकी इच्छा भी न करे। वह किसी भी व्रतहीन मनुष्यका स्पर्श न करे और शास्त्रनिषिद्ध कर्मोंमें लगे हुए लोगोंका चालक—प्रेरक न बने। उसे तीस दिनतक देवमन्दिरमें ही निवास करना चाहिये। व्रत करनेवाला मनुष्य कार्तिकके शुक्लपक्षकी द्वादशीको भगवान् श्रीविष्णुकी पूजा करके ब्राह्मणोंको भोजन करावे। तदनन्तर उन्हें दक्षिणा देकर और स्वयं पारण करके व्रतका विसर्जन करे। इस प्रकार तेरह पूर्ण मासोपवास-व्रतोंका अनुष्ठान करनेवाला भोग और मोक्ष—दोनोंको प्राप्त कर लेता है॥ ३—९॥

(उपर्युक्त विधिसे तेरह मासोपवास-व्रतोंका अनुष्ठान करनेके बाद व्रत करनेवाला व्रतका उद्यापन करे।) वह वैष्णवयज्ञ करावे, अर्थात् तेरह ब्राह्मणोंका पूजन करे। तदनन्तर उनसे आज्ञा लेकर किसी ब्राह्मणको तेरह ऊर्ध्ववस्त्र, अधोवस्त्र, पात्र, आसन, छत्र, पवित्री, पादुका, योगपट्ट और यज्ञोपवीतोंका दान करे॥ १०—१२॥

तत्पश्चात् शय्यापर अपनी और श्रीविष्णुकी स्वर्णमयी प्रतिमाका पूजन करके उसे किसी दूसरे ब्राह्मणको दान करे एवं उस ब्राह्मणका वस्त्र आदिसे सत्कार करे। तदनन्तर व्रत करनेवाला यह कहे—'मैं सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर ब्राह्मणों और श्रीविष्णुभगवान्‌के कृपा-प्रसादसे विष्णुलोकको जाऊँगा। अब मैं विष्णुस्वरूप होता हूँ।' इसके उत्तरमें ब्राह्मणोंको कहना चाहिये—'देवात्मन्! तुम विष्णुके उस रोग-शोकरहित परमपदको जाओ-जाओ और वहाँ विष्णुका स्वरूप धारण करके विमानमें प्रकाशित होते हुए स्थित होओ।' फिर व्रत करनेवाला द्विजोंको प्रणाम करके वह शय्या आचार्यको दान करे। इस विधिसे व्रत करनेवाला अपने सौ कुलोंका उद्धार करके उन्हें विष्णुलोकमें ले जाता है। जिस देशमें मासोपवास-व्रत करनेवाला रहता है, वह देश पापरहित हो जाता है। फिर उस सम्पूर्ण कुलकी तो बात ही क्या है, जिसमें मासोपवास-व्रतका अनुष्ठान करनेवाला उत्पन्न हुआ होता है। व्रतयुक्त मनुष्यको मूर्च्छित देखकर उसे घृतमिश्रित दुग्धको पान कराये। निम्नलिखित वस्तुएँ व्रतको नष्ट नहीं करतीं—ब्राह्मणकी अनुमतिसे ग्रहण किया हुआ हविष्य, दुग्ध, आचार्यकी आज्ञासे ली हुई ओषधि, जल, मूल और फल। 'इस व्रतमें भगवान् श्रीविष्णु ही महान् ओषधिरूप हैं'—इसी विश्वाससे व्रत करनेवाला इस व्रतसे उद्धार पाता है॥ १३—१८॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'मासोपवास-व्रतका वर्णन' नामक दो सौ चारवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २०४॥

---

* अद्यप्रभृत्यहं विष्णो यावदुत्थानकं तव। अर्चये त्वामनश्नन् हि यावत्त्रिंशद्दिनानि तु॥
कार्तिकाश्विनयोर्विष्णो यावदुत्थानकं तव। म्रिये यद्यन्तरालेऽहं व्रतभङ्गो न मे भवेत्॥
(अग्नि० २०४। ४-५)

दो सौ पाँचवाँ अध्याय

भीष्मपञ्चकव्रत

अग्निदेव कहते हैं—अब मैं सब कुछ देनेवाले व्रतराज 'भीष्मपञ्चक' के विषयमें कहता हूँ। कार्तिकके शुक्लपक्षकी एकादशीको यह व्रत ग्रहण करे। पाँच दिनोंतक तीनों समय स्नान करके पाँच तिल और यवोंके द्वारा देवता तथा पितरोंका तर्पण करे। फिर मौन रहकर भगवान् श्रीहरिका पूजन करे। देवाधिदेव श्रीविष्णुको पञ्चगव्य और पञ्चामृतसे स्नान करावे और उनके श्रीअङ्गोंमें चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्योंका आलेपन करके उनके सम्मुख घृतयुक्त गुग्गुल जलावे॥ १—३॥

प्रातःकाल और रात्रिके समय भगवान् श्रीविष्णुको दीपदान करे और उत्तम भोज्य-पदार्थका नैवेद्य समर्पित करे। व्रती पुरुष '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**' इस द्वादशाक्षर-मन्त्रका एक सौ आठ बार जप करे। तदनन्तर घृतसिक्त तिल और जौका अन्तमें 'स्वाहा'से संयुक्त '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**'—इस द्वादशाक्षर-मन्त्रसे हवन करे। पहले दिन भगवान्के चरणोंका कमलके पुष्पोंसे, दूसरे दिन घुटनों और सक्थिभाग (दोनों ऊरुओं)-का बिल्वपत्रोंसे, तीसरे दिन नाभिका भृङ्गराजसे, चौथे दिन बाणपुष्प, बिल्वपत्र और जपापुष्पोंद्वारा एवं पाँचवें दिन मालती-पुष्पोंसे सर्वाङ्गका पूजन करे। व्रत करनेवालेको भूमिपर शयन करना चाहिये। एकादशीको गोमय, द्वादशीको गोमूत्र, त्रयोदशीको दधि, चतुर्दशीको दुग्ध और अन्तिम दिन पञ्चगव्यका आहार करे। पौर्णमासीको 'नक्तव्रत' करना चाहिये। इस प्रकार व्रत करनेवाला भोग और मोक्ष—दोनोंको प्राप्त कर लेता है। भीष्मपितामह इसी व्रतका अनुष्ठान करके भगवान् श्रीहरिको प्राप्त हुए थे, इसीसे यह 'भीष्मपञ्चक'के नामसे प्रसिद्ध है। ब्रह्माजीने भी इस व्रतका अनुष्ठान करके श्रीहरिका पूजन किया था। इसलिये यह व्रत पाँच उपवास आदिसे युक्त है॥ ४—९॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'भीष्मपञ्चक-व्रतका कथन' नामक दो सौ पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २०५॥

दो सौ छठा अध्याय

अगस्त्यके उद्देश्यसे अर्घ्यदान एवं उनके पूजनका कथन

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! महर्षि अगस्त्य साक्षात् भगवान् विष्णुके स्वरूप हैं। उनका पूजन करके मनुष्य श्रीहरिको प्राप्त कर लेता है। जब सूर्य कन्या-राशिको प्राप्त न हुए हों (किंतु उसके निकट हों) तब ३ $\frac{१}{२}$ दिनतक उपवास रखकर अगस्त्यका पूजन करके उन्हें अर्घ्यदान दे। पहले दिन जब चार घंटा दिन बाकी रहे, तब व्रत आरम्भ करके प्रदोषकालमें अगस्त्य मुनिकी काश-पुष्पमयी मूर्तिको कलशपर स्थापित करे और उस कलशस्थित मूर्तिका पूजन करे। अर्घ्य देनेवालेको रात्रिमें जागरण भी करना चाहिये॥ १-२ $\frac{१}{२}$॥

(अगस्त्यके आवाहनका मन्त्र यह है—)

अगस्त्य मुनिशार्दूल तेजोराशे महामते॥
इमां मम कृतां पूजां गृह्णीष्व प्रियया सह।

मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य! आप तेजःपुञ्जमय और महाबुद्धिमान् हैं। अपनी प्रियतमा पत्नी लोपामुद्राके साथ मेरे द्वारा की गयी इस पूजाको ग्रहण कीजिये॥ ३ $\frac{१}{२}$॥

इस प्रकार अगस्त्यका आवाहन करे और उन्हें गन्ध, पुष्प, फल, जल आदिसे अर्घ्यदान दे। तदनन्तर मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यकी ओर मुख करके चन्दनादि उपचारोंद्वारा उनका पूजन करे। दूसरे दिन प्रात:काल कलशस्थित अगस्त्यकी मूर्तिको किसी जलाशयके समीप ले जाकर निम्नलिखित मन्त्रसे उन्हें अर्घ्य समर्पित करे॥ ४ १/२ ॥

काशपुष्पप्रतीकाश अग्निमारुतसम्भव॥
मित्रावरुणयो: पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते।
आतापिर्भक्षितो येन वातापिश्च महासुर:॥
समुद्र: शोषितो येन सोऽगस्त्य: सम्मुखोऽस्तु मे।
अगस्तिं प्रार्थयिष्यामि कर्मणा मनसा गिरा॥
अर्चयिष्याम्यहं मैत्रं परलोकाभिकाङ्क्षया।

काशपुष्पके समान उज्ज्वल, अग्नि और वायुसे प्रादुर्भूत, मित्रावरुणके पुत्र, कुम्भसे प्रकट होनेवाले अगस्त्य! आपको नमस्कार है। जिन्होंने राक्षसराज आतापी और वातापीका भक्षण कर लिया था तथा समुद्रको सुखा डाला था, वे अगस्त्य मेरे सम्मुख प्रकट हों। मैं मन, कर्म और वचनसे अगस्त्यकी प्रार्थना करता हूँ। मैं उत्तम लोकोंकी आकाङ्क्षासे अगस्त्यका पूजन करता हूँ॥ ५—७ १/२ ॥

चन्दन-दान-मन्त्र

द्वीपान्तरसमुत्पन्नं देवानां परमं प्रियम्॥
राजानं सर्ववृक्षाणां चन्दनं प्रतिगृह्यताम्।

जम्बूद्वीपके बाहर उत्पन्न, देवताओंके परमप्रिय, समस्त वृक्षोंके राजा चन्दनको ग्रहण कीजिये॥ ८ १/२ ॥

पुष्पमाला-अर्पण

धर्मार्थकाममोक्षाणां भाजनी पापनाशनी॥
सौभाग्यारोग्यलक्ष्मीदा पुष्पमाला प्रगृह्यताम्।

महर्षि अगस्त्य! यह पुष्पमाला धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंको देनेवाली एवं पापोंका नाश करनेवाली है। सौभाग्य, आरोग्य और लक्ष्मीकी प्राप्ति करानेवाली इस पुष्पमालाको आप ग्रहण कीजिये॥ ९ १/२ ॥

धूपदान-मन्त्र

धूपोऽयं गृह्यतां देव! भक्तिं मे ह्यचलां कुरु॥
ईप्सितं मे वरं देहि परमां च शुभां गतिम्।

भगवन्! अब यह धूप ग्रहण कीजिये और आपमें मेरी भक्तिको अविचल कीजिये। मुझे इस लोकमें मनोवाञ्छित वस्तुएँ और परलोकमें शुभगति प्रदान कीजिये॥ १० १/२ ॥

वस्त्र, धान्य, फल, सुवर्णसे युक्त अर्घ्य-दान-मन्त्र

सुरासुरैर्मुनिश्रेष्ठ सर्वकामफलप्रद॥
वस्त्रव्रीहिफलैर्हेम्ना दत्तस्त्वर्घ्यो ह्ययं मया।

देवताओं तथा असुरोंसे भी समादृत मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य! आप सम्पूर्ण अभीष्ट फल प्रदान करनेवाले हैं। मैं आपको वस्त्र, धान्य, फल और सुवर्णसे युक्त यह अर्घ्य प्रदान करता हूँ॥ ११ १/२ ॥

फलार्घ्यदान-मन्त्र

अगस्त्यं बोधयिष्यामि यन्मया मनसोद्धृतम्।
फलैरर्घ्यं प्रदास्यामि गृहाणार्घ्यं महामुने॥

महामुने! मैंने मनमें जो अभिलाषा कर रखी थी, तदनुसार मैं अगस्त्यजीको जगाऊँगा। आपको फलार्घ्य अर्पित करता हूँ, इसे ग्रहण कीजिये॥ १२॥

(केवल द्विजोंके लिये उच्चारणीय अर्घ्यदानका वैदिक मन्त्र)

अगस्त्य एवं खनमानो धरित्रीं प्रजामपत्यं बलमीहमान:।
उभौ कर्णावृषिरुग्रतेजा: पुपोष सत्या देवेष्वाशिषो जगाम॥

महर्षि अगस्त्य इस प्रकार प्रजा-संतति तथा बल एवं पुष्टिके लिये सचेष्ट हो कुदाल या खनित्रसे धरतीको खोदते रहे। उन उग्रतेजस्वी ऋषिने दोनों कर्णों (सम्पूर्ण इन्द्रियोंकी शक्ति)-का पोषण किया। देवताओंके प्रति उनकी सारी आशी:प्रार्थना सत्य हुई॥ १३॥

(तदनन्तर निम्नलिखित मन्त्रसे लोपामुद्राको अर्घ्यदान दे)

राजपुत्रि नमस्तुभ्यं मुनिपत्नि महाव्रते।

अर्घ्यं गृह्णीष्व देवेशि लोपामुद्रे यशस्विनि॥

महान् व्रतका पालन करनेवाली राजपुत्री अगस्त्यपत्नी देवेश्वरी लोपामुद्रे! आपको नमस्कार है। यशस्विनि! इस अर्घ्यको ग्रहण कीजिये॥ १४॥

अगस्त्यके लिये पञ्चरत्न, सुवर्ण और रजतसे युक्त एवं सप्तधान्यसे पूर्ण पात्र तथा दधि-चन्दनसे समन्वित अर्घ्य प्रदान करे। स्त्रियों और शूद्रोंको 'काशपुष्पप्रतीकाश' आदि पौराणिक मन्त्रसे अर्घ्य देना चाहिये॥ १५ $\frac{1}{2}$ ॥

विसर्जन-मन्त्र

अगस्त्य मुनिशार्दूल तेजोराशे च सर्वदा॥
इमां मम कृतां पूजां गृहीत्वा व्रज शान्तये।

मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य! आप तेज:पुञ्जसे प्रकाशित और सब कुछ देनेवाले हैं। मेरे द्वारा की गयी इस पूजाको ग्रहणकर शान्तिपूर्वक पधारिये॥ १६ $\frac{1}{2}$ ॥

इस प्रकार अगस्त्यका विसर्जन करके उनके उद्देश्यसे किसी एक धान्य, फल और रसका त्याग करे। तदनन्तर ब्राह्मणोंको घृतमिश्रित खीर और लड्डू आदि पदार्थोंका भोजन करावे और उन्हें गौ, वस्त्र, सुवर्ण एवं दक्षिणा दे। इसके बाद उस कुम्भका मुख घृतमिश्रित खीरयुक्त पात्रसे ढककर, उसमें सुवर्ण रखकर वह कलश ब्राह्मणको दान दे। इस प्रकार सात वर्षोंतक अगस्त्यको अर्घ्य देकर सभी लोग सब कुछ प्राप्त कर सकते हैं। इससे स्त्री सौभाग्य और पुत्रोंको, कन्या पतिको और राजा पृथ्वीको प्राप्त करता है॥ १७—२०॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'अगस्त्यके लिये अर्घ्यदानका वर्णन' नामक दो सौ छठा अध्याय पूरा हुआ॥ २०६॥

दो सौ सातवाँ अध्याय

कौमुद-व्रत

अग्निदेव कहते हैं— वसिष्ठ! अब मैं 'कौमुद'-व्रतके विषयमें कहता हूँ। इसे आश्विनके शुक्लपक्षमें आरम्भ करना चाहिये। व्रत करनेवाला एकादशीको उपवास करके एकमासपर्यन्त भगवान् श्रीहरिका पूजन करे॥ १॥

व्रती निम्नलिखित मन्त्रसे संकल्प करे—

आश्विने शुक्लपक्षेऽहमेकाहारो हरिं जपन्।
मासमेकं भुक्तिमुक्त्यै करिष्ये कौमुदं व्रतम्॥

मैं आश्विनके शुक्ल पक्षमें एक समय भोजन करके भगवान् श्रीहरिके मन्त्रका जप करता हुआ भोग और मोक्षकी प्राप्तिके लिये एक मासपर्यन्त कौमुद-व्रतका अनुष्ठान करूँगा॥ २॥

तदनन्तर व्रतके समाप्त होनेपर एकादशीको उपवास करे और द्वादशीको भगवान् श्रीविष्णुका पूजन करे। उनके श्रीविग्रहमें चन्दन, अगर और केसरका अनुलेपन करके कमल, उत्पल, कह्लार एवं मालती पुष्पोंसे विष्णुकी पूजा करे। व्रत करनेवाला वाणीको संयममें रखकर तैलपूर्ण दीपक प्रज्वलित करे और दोनों समय खीर, मालपूए तथा लड्डुओंका नैवेद्य समर्पित करे। व्रती पुरुष **'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'**—इस द्वादशाक्षर-मन्त्रका निरन्तर जप करे। अन्तमें ब्राह्मण-भोजन कराके क्षमा-प्रार्थनापूर्वक व्रतका विसर्जन करे। 'देवजागरणी' या 'हरिप्रबोधिनी' एकादशीतक एक मासपर्यन्त उपवास करनेसे 'कौमुद-व्रत' पूर्ण होता है। इतने ही दिनोंका पूर्वोक्त मासोपवास भी होता है। किंतु इस कौमुद-व्रतसे उसकी अपेक्षा अधिक फल भी प्राप्त होता है॥ ३—६॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'कौमुद-व्रतका वर्णन' नामक दो सौ सातवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २०७॥

दो सौ आठवाँ अध्याय

व्रतदानसमुच्चय

अग्निदेव कहते हैं— वसिष्ठ! अब मैं सामान्य व्रतों और दानोंके विषयमें संक्षेपपूर्वक कहता हूँ। प्रतिपदा आदि तिथियों, सूर्य आदि वारों, कृत्तिका आदि नक्षत्रों, विष्कुम्भ आदि योगों, मेष आदि राशियों और ग्रहण आदिके समय उस कालमें जो व्रत, दान एवं तत्सम्बन्धी द्रव्य एवं नियमादि आवश्यक हैं, उनका भी वर्णन करूँगा। व्रतदानोपयोगी द्रव्य और काल सबके अधिष्ठातृ देवता भगवान् श्रीविष्णु हैं। सूर्य, शिव, ब्रह्मा, लक्ष्मी आदि सभी देव-देवियाँ श्रीहरिकी ही विभूति हैं। इसलिये उनके उद्देश्यसे किया गया व्रत, दान और पूजन आदि सब कुछ देनेवाला होता है॥ १—३॥

श्रीविष्णु-पूजन-मन्त्र

जगत्पते समागच्छ आसनं पाद्यमर्घ्यकम्॥
मधुपर्कं तथाऽऽचामं स्नानं वस्त्रं च गन्धकम्।
पुष्पं धूपं च दीपं च नैवेद्यादि नमोऽस्तु ते॥

जगत्पते! आपको नमस्कार है। आइये और आसन, पाद्य, अर्घ्य, मधुपर्क, आचमन, स्नान, वस्त्र, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप एवं नैवेद्य ग्रहण कीजिये॥ ४-५॥

पूजा, व्रत और दानमें उपर्युक्त मन्त्रसे श्रीविष्णुकी अर्चना करनी चाहिये। अब दानका सामान्य संकल्प भी सुनो—'आज मैं अमुक गोत्रवाले अमुक शर्मा आप ब्राह्मण देवताको समस्त पापोंकी शान्ति, आयु और आरोग्यकी वृद्धि, सौभाग्यके उदय, गोत्र और संततिके विस्तार, विजय एवं धनकी प्राप्ति, धर्म, अर्थ और कामके सम्पादन तथा पापनाशपूर्वक संसारसे मोक्ष पानेके लिये विष्णुदेवता-सम्बन्धी इस द्रव्यका दान करता हूँ। मैं इस दानकी प्रतिष्ठा (स्थिरता)-के लिये आपको यह अतिरिक्त सुवर्णादि द्रव्य समर्पित करता हूँ। मेरे इस दानसे सर्वलोकेश्वर भगवान् श्रीहरि सदा प्रसन्न हों। यज्ञ, दान और व्रतोंके स्वामी! मुझे विद्या तथा यश आदि प्रदान कीजिये। मुझे धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप चारों पुरुषार्थ तथा मनोऽभिलषित वस्तुसे सम्पन्न कीजिये'॥ ६—१० $\frac{१}{२}$ ॥

जो मनुष्य प्रतिदिन इस व्रत-दान-समुच्चयका पठन अथवा श्रवण करता है, वह अभीष्ट वस्तुसे युक्त एवं पापरहित होकर भोग और मोक्ष दोनोंको प्राप्त करता है। इस प्रकार भगवान् वासुदेव आदिसे सम्बन्धित नियम और पूजनसे अनेक प्रकारके तिथि, वार, नक्षत्र, संक्रान्ति, योग और मन्वादिसम्बन्धी व्रतोंका अनुष्ठान सिद्ध होता है॥ ११-१२॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'व्रतदानसमुच्चयका वर्णन' नामक दो सौ आठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २०८॥

दो सौ नवाँ अध्याय

धनके प्रकार; देश-काल और पात्रका विचार; पात्रभेदसे दानके फल-भेद; द्रव्य-देवताओं तथा दान-विधिका कथन

अग्निदेव कहते हैं— मुनिश्रेष्ठ! अब मैं भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले दानधर्मोंका वर्णन करता हूँ, सुनो। दानके 'इष्ट' और 'पूर्त' दो भेद हैं। दानधर्मका आचरण करनेवाला सब कुछ प्राप्त

कर लेता है। बावड़ी, कुआँ, तालाब, देव-मन्दिर, अन्नका सदावर्त तथा बगीचे आदि बनवाना 'पूर्तधर्म' कहा गया है, जो मुक्ति प्रदान करनेवाला है। अग्निहोत्र तथा सत्यभाषण, वेदोंका स्वाध्याय, अतिथि-सत्कार और बलिवैश्वदेव—इन्हें 'इष्टधर्म' कहा गया है। यह स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाला है। ग्रहणकालमें, सूर्यकी संक्रान्तिमें और द्वादशी आदि तिथियोंमें जो दान दिया जाता है, वह 'पूर्त' है। वह भी स्वर्ग प्रदान करनेवाला है। देश, काल और पात्रमें दिया हुआ दान करोड़गुना फल देता है। सूर्यके उत्तरायण और दक्षिणायन प्रवेशके समय, पुण्यमय विषुवकालमें, व्यतीपात, तिथिक्षय, युगारम्भ, संक्रान्ति, चतुर्दशी, अष्टमी, पूर्णिमा, द्वादशी, अष्टकाश्राद्ध, यज्ञ, उत्सव, विवाह, मन्वन्तरारम्भ, वैधृतियोग, दुःस्वप्नदर्शन, धन एवं ब्राह्मणकी प्राप्तिमें दान दिया जाता है। अथवा जिस दिन श्रद्धा हो उस दिन या सदैव दान दिया जा सकता है। दोनों अयन और दोनों विषुव—ये चार संक्रान्तियाँ, 'षडशीतिमुखा' नामसे प्रसिद्ध चार संक्रान्तियाँ तथा 'विष्णुपदा' नामसे विख्यात चार संक्रान्तियाँ—ये बारहों संक्रान्तियाँ ही दानके लिये उत्तम मानी गयी हैं। कन्या, मिथुन, मीन और धनु राशियोंमें जो सूर्यकी संक्रान्तियाँ होती हैं वे 'षडशीतिमुखा' कही जाती हैं, वे छियासीगुना फल देनेवाली हैं। उत्तरायण और दक्षिणायन-सम्बन्धिनी (मकर एवं कर्ककी) संक्रान्तियोंके अतीत और अनागत (पूर्व तथा पर) घटिकाएँ पुण्य मानी गयी हैं। कर्क-संक्रान्तिकी तीस-तीस घड़ी और मकर-संक्रान्तिकी बीस-बीस घड़ी पूर्व और परकी भी पुण्यकार्यके लिये विहित हैं। तुला और मेषकी संक्रान्ति वर्तमान होनेपर उसके पूर्वापरकी दस-दस घड़ीका समय पुण्यकाल है। 'षडशीतिमुखा' संक्रान्तियोंके व्यतीत होनेपर साठ घड़ीका समय पुण्यकालमें ग्राह्य है। 'विष्णुपदा' नामसे प्रसिद्ध संक्रान्तियोंके पूर्वापरकी सोलह-सोलह घड़ियोंको पुण्यकाल माना गया है। श्रवण, अश्विनी और धनिष्ठाको एवं आश्लेषाके मस्तकभाग अर्थात् प्रथम चरणमें जब रविवारका योग हो, तब यह 'व्यतीपातयोग' कहलाता है॥ १—१३॥

कार्तिकके शुक्लपक्षकी नवमीको कृतयुग और वैशाखके शुक्लपक्षकी तृतीयाको त्रेता प्रारम्भ हुआ। अब द्वापरके विषयमें सुनो—माघमासकी पूर्णिमाको द्वापरयुग और भाद्रपदके कृष्णपक्षकी त्रयोदशीको कलियुगकी उत्पत्ति जाननी चाहिये। मन्वन्तरोंका आरम्भकाल या मन्वादि तिथियाँ इस प्रकार जाननी चाहिये—आश्विनके शुक्लपक्षकी नवमी, कार्तिककी द्वादशी, माघ एवं भाद्रपदकी तृतीया, फाल्गुनकी अमावास्या, पौषकी एकादशी, आषाढ़की दशमी, माघमासकी सप्तमी, श्रावणके कृष्णपक्षकी अष्टमी, आषाढ़की पूर्णिमा, कार्तिक, फाल्गुन एवं ज्येष्ठकी पूर्णिमा॥ १४—१८॥

मार्गशीर्षमासकी पूर्णिमाके बाद जो तीन अष्टमी तिथियाँ आती हैं, उन्हें तीन 'अष्टका' कहा गया है। अष्टमीका 'अष्टका' नाम है। इन अष्टकाओंमें दिया हुआ दान अक्षय होता है। गया, गङ्गा और प्रयाग आदि तीर्थोंमें तथा मन्दिरोंमें किसीके बिना माँगे दिया हुआ दान उत्तम जाने। किंतु कन्यादानके लिये यह नियम लागू नहीं है। दाता पूर्वाभिमुख होकर दान दे और लेनेवाला उत्तराभिमुख होकर उसे ग्रहण करे। दान देनेवालेकी आयु बढ़ती है, किंतु लेनेवालेकी भी आयु क्षीण नहीं होती। अपने और प्रतिगृहीताके नाम एवं गोत्रका उच्चारण करके देय वस्तुका दान किया जाता है। कन्यादानमें इसकी तीन आवृत्तियाँ की जाती हैं। स्नान और पूजन करके हाथमें जल लेकर उपर्युक्त संकल्पपूर्वक दान दे। सुवर्ण, अश्व, तिल, हाथी, दासी, रथ,

भूमि, गृह, कन्या और कपिला गौका दान—ये दस 'महादान' हैं। विद्या, पराक्रम, तपस्या, कन्या, यजमान और शिष्यसे मिला हुआ सम्पूर्ण धन दान नहीं, शुल्करूप है। शिल्पकलासे प्राप्त धन भी शुल्क ही है। व्याज, खेती, वाणिज्य और दूसरेका उपकार करके प्राप्त किया हुआ धन, पासे, जूए, चोरी आदि प्रतिरूपक (स्वाँग बनाने) और साहसपूर्ण कर्मसे उपार्जित किया हुआ धन तथा छल-कपटसे पाया हुआ धन—ये तीन प्रकारके धन क्रमशः सात्त्विक, राजस एवं तामस—तीन प्रकारके फल देते हैं। विवाहके समय मिला हुआ, ससुरालको विदा होते समय प्रीतिके निमित्त प्राप्त हुआ, पतिद्वारा दिया गया, भाईसे मिला हुआ, मातासे प्राप्त हुआ तथा पितासे मिला हुआ—ये छः प्रकारके धन 'स्त्री-धन' माने गये हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंके अनुग्रहसे प्राप्त हुआ धन शूद्रका होता है। गौ, गृह, शय्या और स्त्री—ये अनेक व्यक्तियोंको नहीं दी जानी चाहिये। इनको अनेक व्यक्तियोंके साझेमें देना पाप है। प्रतिज्ञा करके फिर न देनेसे प्रतिज्ञाकर्ताके सौ कुलोंका विनाश हो जाता है। किसी भी स्थानपर उपार्जित किया हुआ पुण्य देवता, आचार्य एवं माता-पिताको प्रयत्नपूर्वक समर्पित करना चाहिये। दूसरेसे लाभकी इच्छा रखकर दिया हुआ धन निष्फल होता है। धर्मकी सिद्धि श्रद्धासे होती है; श्रद्धापूर्वक दिया हुआ जल भी अक्षय होता है। जो ज्ञान, शील और सद्गुणोंसे सम्पन्न हो एवं दूसरोंको कभी पीड़ा न पहुँचाता हो, वह दानका उत्तम पात्र माना गया है। अज्ञानी मनुष्योंका पालन एवं त्राण करनेसे वह 'पात्र' कहलाता है। माताको दिया गया दान सौगुना और पिताको दिया हुआ हजार गुना होता है। पुत्री और सहोदर भाईको दिया हुआ दान अनन्त एवं अक्षय होता है। मनुष्येतर प्राणियोंको दिया गया दान सम होता है, न्यून या अधिक नहीं। पापात्मा मनुष्यको दिया गया दान अत्यन्त निष्फल जानना चाहिये। वर्णसंकरको दिया हुआ दान दुगुना, शूद्रको दिया हुआ दान चौगुना, वैश्य अथवा क्षत्रियको दिया हुआ आठगुना, ब्राह्मणब्रुव* (नाममात्रके ब्राह्मण)-को दिया हुआ दान सोलहगुना और वेदपाठी ब्राह्मणको दिया हुआ दान सौगुना फल देता है। वेदोंके अभिप्रायका बोध करानेवाले आचार्यको दिया हुआ दान अनन्त होता है। पुरोहित एवं याजक आदिको दिया हुआ दान अक्षय कहा गया है। धनहीन ब्राह्मणोंको और यज्ञकर्ता ब्राह्मणको दिया हुआ दान अनन्त फलदायक होता है। तपोहीन, स्वाध्यायरहित और प्रतिग्रहमें रुचि रखनेवाला ब्राह्मण जलमें पत्थरकी नौकापर बैठे हुएके समान है; वह उस प्रस्तरमयी नौकाके साथ ही डूब जाता है। ब्राह्मणको स्नान एवं जलका उपस्पर्शन करके प्रयत्नपूर्वक पवित्र हो दान ग्रहण करना चाहिये। प्रतिग्रह लेनेवालेको सदैव गायत्रीका जप करना चाहिये एवं उसके साथ-ही-साथ प्रतिगृहीत द्रव्य और देवताका उच्चारण करना चाहिये। प्रतिग्रह लेनेवाले श्रेष्ठ ब्राह्मणसे दान ग्रहण करके उच्चस्वरमें, क्षत्रियसे दान लेकर मन्दस्वरमें तथा वैश्यका प्रतिग्रह स्वीकार करके उपांशु (ओठोंको बिना हिलाये) जप करे। शूद्रसे प्रतिग्रह लेकर मानसिक जप और स्वस्तिवाचन करे॥ १९—३९ $\frac{1}{2}$ ॥

मुनिश्रेष्ठ! अभयके सर्वदेवगण देवता हैं,

* गर्भाधानादिभिर्मन्त्रैर्वेदोपनयनेन च। नाध्यापयति नाधीते स भवेद्ब्राह्मणब्रुवः॥ (व्यासस्मृति ४। ४२)

'जिसके गर्भाधानके संस्कार और वेदोक्त यज्ञोपवीत-संस्कार हुए हैं, परंतु जो अध्ययन-अध्यापनका कार्य नहीं करता, वह 'ब्राह्मणब्रुव' कहलाता है।'

भूमिके विष्णु देवता हैं, कन्या और दास-दासीके देवता प्रजापति कहे गये हैं, गजके देवता भी प्रजापति ही हैं। अश्वके यम, एक खुरवाले पशुओंके सर्वदेवगण, महिषके यम, उष्ट्रके निर्ऋति, धेनुके रुद्र, बकरेके अग्नि, भेड़, सिंह एवं वराहके जलदेवता, वन्य-पशुओंके वायु, जलपात्र और कलश आदि जलाशयोंके वरुण, समुद्रसे उत्पन्न होनेवाले रत्नों तथा स्वर्ण-लौहादि धातुओंके अग्नि, पक्वान्न और धान्योंके प्रजापति, सुगन्धके गन्धर्व, वस्त्रके बृहस्पति, सभी पक्षियोंके वायु, विद्या एवं विद्याङ्गोंके ब्रह्मा, पुस्तक आदिकी सरस्वती देवी, शिल्पके विश्वकर्मा एवं वृक्षोंके वनस्पति देवता हैं। ये समस्त द्रव्य-देवता भगवान् श्रीहरिके अङ्गभूत हैं॥ ४०—४६॥

छत्र, कृष्णमृगचर्म, शय्या, रथ, आसन, पादुका तथा वाहन—इनके देवता 'ऊर्ध्वाङ्गिरा' (उत्तानाङ्गिरा) कहे गये हैं। युद्धोपयोगी सामग्री, शस्त्र और ध्वज आदिके सर्वदेवगण देवता हैं। गृहके भी देवता सर्वदेवगण ही हैं। सम्पूर्ण पदार्थोंके देवता विष्णु अथवा शिव हैं; क्योंकि कोई भी वस्तु उनसे भिन्न नहीं है। दान देते समय पहले द्रव्यका नाम ले। फिर '**ददामि**' (देता हूँ) ऐसा कहे। फिर संकल्पका जल दान लेनेवालेके हाथमें दे। दानमें यही विधि बतलायी गयी है। प्रतिग्रह लेनेवाला यह कहे—'विष्णु दाता हैं, विष्णु ही द्रव्य हैं और मैं इस दानको ग्रहण करता हूँ; यह धर्मानुकूल प्रतिग्रह कल्याणकारी हो। दाताको इससे भोग और मोक्षरूप फलोंकी प्राप्ति हो।' गुरुजनों (माता-पिता) और सेवकोंके उद्धारके लिये देवताओं और पितरोंका पूजन करना हो तो उसके लिये सबसे प्रतिग्रह ले; परंतु उसे अपने उपयोगमें न लावे। शूद्रका धन यज्ञकार्यमें ग्रहण न करे; क्योंकि उसका फल शूद्रको ही प्राप्त होता है॥ ४७—५२॥

वृत्तिरहित ब्राह्मण शूद्रसे गुड़, तक्र, रस आदि पदार्थ ग्रहण कर सकता है। जीविकाविहीन द्विज सबका दान ले सकता है; क्योंकि ब्राह्मण स्वभावसे ही अग्नि और सूर्यके समान पवित्र है। इसलिये आपत्तिकालमें निन्दित पुरुषोंको पढ़ाने, यज्ञ कराने और उनसे दान लेनेसे उसको पाप नहीं लगता। कृतयुगमें ब्राह्मणके घर जाकर दान दिया जाता है, त्रेतामें अपने घर बुलाकर, द्वापरमें माँगनेपर और कलियुगमें अनुगमन करनेपर दिया जाता है। समुद्रका पार मिल सकता है, किंतु दानका अन्त नहीं मिल सकता। दाता मन-ही-मन सत्पात्रके उद्देश्यसे निम्नलिखित संकल्प करके भूमिपर जल छोड़े—'आज मैं चन्द्रमा अथवा सूर्यके ग्रहण या संक्रान्तिके समय गङ्गा, गया अथवा प्रयाग आदि अनन्तगुणसम्पन्न तीर्थदेशमें अमुक गोत्रवाले वेद-वेदाङ्गवेत्ता महात्मा एवं सत्पात्र अमुक शर्माको विष्णु, रुद्र अथवा जो देवता हों, उन देवता-सम्बन्धी अमुक महाद्रव्य कीर्ति, विद्या, महती कामना, सौभाग्य और आरोग्यके उदयके लिये, समस्त पापोंकी शान्ति एवं स्वर्गके लिये, भोग और मोक्षके प्राप्त्यर्थ आपको दान करता हूँ। इससे देवलोक, अन्तरिक्ष और भूमि-सम्बन्धी समस्त उत्पातोंका विनाश करनेवाले मङ्गलमय श्रीहरि मुझपर प्रसन्न हों और मुझे धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षकी प्राप्ति कराकर ब्रह्मलोक प्रदान करें।'

(तदनन्तर यह संकल्प पढ़े) 'अमुक नाम और गोत्रवाले ब्राह्मण अमुक शर्माको मैं इस दानकी प्रतिष्ठाके निमित्त सुवर्णकी दक्षिणा देता हूँ।' इस दान-वाक्यसे समस्त दान दे॥ ५३—६३॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'दान-परिभाषा आदिका वर्णन' नामक दो सौ नवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २०९॥

दो सौ दसवाँ अध्याय

सोलह महादानोंके नाम; दस मेरुदान, दस धेनुदान और विविध गोदानोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं सभी प्रकारके दानोंका वर्णन करता हूँ। सोलह महादान होते हैं। सर्वप्रथम तुलापुरुषदान, फिर हिरण्यगर्भदान, ब्रह्माण्डदान, कल्पवृक्षदान, पाँचवाँ सहस्र गोदान, स्वर्णमयी कामधेनुका दान, सातवाँ स्वर्णनिर्मित अश्वका दान, स्वर्णमय अश्वयुक्त रथका दान, स्वर्णरचित हस्तिरथका दान, पाँच हलोंका दान, भूमिदान, विश्वचक्रदान, कल्पलतादान, उत्तम सप्त-समुद्रदान, रत्नधेनुदान और जलपूर्ण कुम्भदान। ये दान शुभ दिनमें मण्डलाकार मण्डपमें देवताओंका पूजन करके ब्राह्मणको देने चाहिये। मेरुदान भी पुण्यप्रद है। 'मेरु' दस माने गये हैं, उन्हें सुनो—धान्यमेरु एक हजार द्रोण धान्यका उत्तम माना गया है, पाँच सौ द्रोणका मध्यम और ढाई सौ द्रोणका अधम माना गया है। लवणाचल सोलह द्रोणका बनाना चाहिये, वही उत्तम माना गया है। गुड़-पर्वत दस भारका उत्तम माना गया है, पाँच भारका मध्यम और ढाई भारका निकृष्ट कहा जाता है। स्वर्णमेरु सहस्र पलका उत्तम, पाँच सौ पलका मध्यम और ढाई सौ पलका निकृष्ट माना गया है। तिलपर्वत क्रमशः दस द्रोणका उत्तम, पाँच द्रोणका मध्यम और तीन द्रोणका निकृष्ट कहा गया है। कार्पास (रूई) पर्वत बीस भारका उत्तम, दस भारका मध्यम तथा पाँच भारका निकृष्ट है। बीस घृतपूर्ण कुम्भोंका उत्तम घृताचल होता है। रजत-पर्वत दस हजार पलका उत्तम माना गया है। शर्कराचल आठ भारका उत्तम, चार भारका मध्यम और दो भारका मन्द माना गया है॥ १—९ $\frac{1}{2}$ ॥

अब मैं दस धेनुओंका वर्णन करता हूँ, जिनका दान करके मनुष्य भोग और मोक्षको प्राप्त कर लेता है। पहली गुड़धेनु होती है, दूसरी घृतधेनु, तीसरी तिलधेनु, चौथी जलधेनु, पाँचवीं क्षीरधेनु, छठी मधुधेनु, सातवीं शर्कराधेनु, आठवीं दधिधेनु, नवीं रसधेनु और दसवीं गोरूपेण कल्पित कृष्णाजिनधेनु। इनके दानकी विधि यह बतलायी जाती है कि तरल पदार्थ-सम्बन्धी धेनुओंके प्रतिनिधिरूपसे घड़ोंमें उन पदार्थोंको भरकर कुम्भदान करने चाहिये और अन्य धातुओंके रूपमें उन-उन द्रव्योंकी राशिका दान करना चाहिये॥ १०—१२ $\frac{1}{2}$ ॥

(कृष्णाजिनधेनुके दानकी विधि यह है—) गोबरसे लिपी-पुती भूमिपर सब ओर दर्भ बिछाकर उसके ऊपर चार हाथका कृष्णमृगचर्म रखे। उसकी ग्रीवा पूर्व दिशाकी ओर होनी चाहिये। इसी प्रकार गोवत्सके स्थानपर छोटे आकारका कृष्णमृगचर्म स्थापित करे। वत्ससहित धेनुका मुख पूर्वकी ओर और पैर उत्तर दिशाकी ओर समझे। चार भार गुड़की गुड़धेनु सदा ही उत्तम मानी गयी है। एक भार गुड़का गोवत्स बनावे। दो भारकी गौ मध्यम होती है। उसके साथ आधे भारका बछड़ा होना चाहिये। एक भारकी गौ कनिष्ठ कही जाती है। इसके चतुर्थांशका वत्स इसके साथ देना चाहिये। गुड़धेनु अपने गुड़संग्रहके अनुसार बना लेनी चाहिये॥ १३—१६ $\frac{1}{2}$ ॥

पाँच गुञ्जाका एक 'माशा' होता है, सोलह माशेका एक 'सुवर्ण' होता है, चार सुवर्णका 'पल' और सौ पलकी 'तुला' मानी गयी है। बीस तुलाका एक 'भार' होता है एवं चार आढक (चौंसठ पल)-का एक 'द्रोण' होता है॥ १७-१८ ॥

गुड़निर्मित धेनु और वत्सको श्वेत एवं सूक्ष्म

वस्त्रसे ढकना चाहिये। उनके कानोंके स्थानमें सीप, चरणस्थानमें ईख, नेत्रस्थानमें पवित्र मौक्तिक, अलकोंके स्थानपर श्वेतसूत्र, गलकम्बलके स्थानपर सफेद कम्बल, पृष्ठभागके स्थानपर ताम्र, रोमस्थानपर श्वेत चँवर, भौंहोंके स्थानपर विद्रुममणि, स्तनोंके स्थानपर नवनीत, पुच्छस्थानपर रेशमी वस्त्र, अक्षि-गोलकोंके स्थानपर नीलमणि, शृङ्ग और शृङ्गाभरणोंके स्थानपर सुवर्ण एवं खुरोंकी जगह चाँदी रखे। दन्तस्थानपर विविध फल और नासिका-स्थानपर सुगन्धित द्रव्य स्थापित करे—साथमें काँसेकी दोहनी भी रखे। द्विजश्रेष्ठ! इस प्रकार धेनुकी रचना करके निम्नलिखित मन्त्रोंसे उसकी पूजा करे—"जो समस्त भूतप्राणियोंकी लक्ष्मी हैं, जो देवताओंमें भी स्थित हैं, वे धेनुरूपिणी देवी मुझे शान्ति प्रदान करें। जो अपने शरीरमें स्थित होकर 'रुद्राणी'के नामसे प्रसिद्ध हैं और शंकरकी सदा प्रियतमा पत्नी हैं, वे धेनुरूपधारिणी देवी मेरे पापोंका विनाश करें। जो विष्णुके वक्ष:स्थलपर लक्ष्मीके रूपसे सुशोभित होती हैं, जो अग्निकी स्वाहा और चन्द्रमा, सूर्य एवं नक्षत्र-देवताओंकी शक्तिके रूपमें स्थित हैं, वे धेनुरूपिणी देवी मुझे लक्ष्मी प्रदान करें। जो चतुर्मुख ब्रह्माकी सावित्री, धनाध्यक्ष कुबेरकी निधि और लोकपालोंकी लक्ष्मी हैं, वे धेनुदेवी मुझे अभीष्ट वस्तु प्रदान करें। देवि! आप पितरोंकी 'स्वधा' एवं यज्ञभोक्ता अग्निकी 'स्वाहा' हैं। आप समस्त पापोंका हरण करनेवाली एवं धेनुरूपसे स्थित हैं, इसलिये मुझे शान्ति प्रदान करें।" इस प्रकार अभिमन्त्रित की हुई धेनु ब्राह्मणको दान दे। अन्य सब धेनुदानोंकी भी साधारणतया यही विधि है। इससे मनुष्य सम्पूर्ण यज्ञोंका फल प्राप्त कर पापरहित हुआ भोग और मोक्ष—दोनोंको सिद्ध कर लेता है॥ १९—२९॥

सोनेके सींगोंसे युक्त चाँदीके खुरोंवाली सीधी-सादी दुधारू गौ, काँसेकी दोहनी, वस्त्र एवं दक्षिणाके साथ देनी चाहिये। ऐसी गौका दान करनेवाला उस गौके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने वर्षोंतक स्वर्गमें निवास करता है। यदि कपिलाका दान किया जाय तो वह सात पीढ़ियोंका उद्धार कर देती है॥ ३०-३१॥

स्वर्णमय शृङ्गोंसे युक्त, रजतमण्डित खुरोंवाली कपिला गौका काँसेके दोहनपात्र और यथाशक्ति दक्षिणाके साथ दान करके मनुष्य भोग और मोक्ष प्राप्त कर लेता है। 'उभयतोमुखी'* गौका दान करके दाता बछड़ेसहित गौके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने युगोंतक स्वर्गमें जाकर सुख भोगता है। उभयतोमुखी गौका भी दान पूर्वोक्त विधिसे ही करना चाहिये॥ ३२-३३॥

मरणासन्न मनुष्यको भी पूर्वोक्त विधिसे ही बछड़ेसहित गौका दान करना चाहिये। (और यह संकल्प करना चाहिये—) 'अत्यन्त भयंकर यमलोकके प्रवेशद्वारपर तप्तजलसे युक्त वैतरणी नदी प्रवाहित होती है। उसको पार करनेके लिये मैं इस कृष्णवर्णा वैतरणी गौका दान करता हूँ'॥ ३४॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'महादानोंका वर्णन' नामक दो सौ दसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २१०॥

---

* पादद्वयं मुखं योन्यां प्रसवन्त्या: प्रदृश्यते। तदा च द्विमुखी गौ: स्याद्देया यावन्न सूयते॥ (बृहत्पराशरसंहिता १०। ४४)

"जब प्रसव करती हुई गौकी योनिमें प्रसव होते हुए वत्सके दो पैर और मुख दिखायी देते हैं, उस समय वह 'उभयतोमुखी' कही जाती है; उसका तभीतक दान करना चाहिये, जबतक पूर्ण प्रसव नहीं हो जाता।"

दो सौ ग्यारहवाँ अध्याय
नाना प्रकारके दानोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं— वसिष्ठ! जिसके पास दस गौएँ हों, वह एक गौ; जिसके पास सौ गौएँ हों, वह दस गौएँ; जिसके पास एक हजार गौएँ हों, वह सौ गौओंका दान करे तो उन सबको समान फल प्राप्त होता है। कुबेरकी राजधानी अलकापुरी, जहाँ स्वर्णनिर्मित भवन हैं एवं जहाँ गन्धर्व और अप्सराएँ विहार करती हैं, सहस्र गौओंका दान करनेवाले वहीं जाते हैं। मनुष्य सौ गौओंका दान करके नरक-समुद्रसे मुक्त हो जाता है और बछियाका दान करके स्वर्गलोकमें पूजित होता है। गोदानसे दीर्घायु, आरोग्य, सौभाग्य और स्वर्गकी प्राप्ति होती है। 'जो इन्द्र आदि लोकपालोंकी मङ्गलमयी राजमहिषी हैं, वे देवी इस महिषीदानके माहात्म्यसे मुझे सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुएँ प्रदान करें। जिनका पुत्र धर्मराजकी सहायतामें नियुक्त है एवं जो महिषासुरकी जननी हैं, वे देवी मुझे वर प्रदान करें।' उपर्युक्त मन्त्र पढ़कर महिषीदान करनेसे सौभाग्यकी प्राप्ति होती है। वृषदानसे मनुष्य स्वर्गलोकमें जाता है॥ १—६॥

'संयुक्त हलपङ्क्ति' नामक दान समस्त फलोंको प्रदान करता है। काठके बने हुए दस हलोंकी पङ्क्ति, जो सुवर्णमय पट्टसे परस्पर जुड़ी हो और प्रत्येक हलके साथ आवश्यक संख्यामें बैल भी हों तो उसका दान 'संयुक्त हलपङ्क्ति' नामक दान कहा गया है। वह दान करके मनुष्य स्वर्गलोकमें पूजित होता है। ज्येष्ठपुष्कर-तीर्थमें दस कपिला गौओंका दान किया जाय तो उसका फल अक्षय बतलाया गया है। वृषोत्सर्ग करनेसे भी अक्षय फलकी प्राप्ति होती है। साँड़को चक्र और त्रिशूलसे अङ्कित करके यह मन्त्र पढ़कर छोड़े— 'देवेश्वर! तुम चार चरणोंसे युक्त साक्षात् धर्म हो। ये तुम्हारी चार प्रियतमाएँ हैं। पितरों, मनुष्यों और ऋषियोंका पोषण करनेवाले वेदमूर्ति वृष! तुम्हारे मोचनसे मुझे अमृतमय शाश्वत लोकोंकी प्राप्ति हो। मैं देवऋण, भूतऋण, पितृऋण एवं मनुष्यऋणसे मुक्त हो जाऊँ। तुम साक्षात् धर्म हो; तुम्हारा आश्रय ग्रहण करनेवालोंको जो गति प्राप्त होती हो, वह नित्य गति मुझे भी प्राप्त हो'॥ ७—११ $\frac{१}{२}$ ॥

जिस मृत व्यक्तिके एकादशाह, षाण्मासिक अथवा वार्षिक श्राद्धमें वृषोत्सर्ग किया जाता है, वह प्रेतलोकसे मुक्त हो जाता है। दस हाथके डंडेसे तीस डंडेके बराबरकी भूमिको 'निवर्तन' कहते हैं। दस निवर्तन भूमिकी 'गोचर्म' संज्ञा है। इतनी भूमिका दान करनेवाला मनुष्य अपने समस्त पापोंका नाश कर देता है। जो गौ, भूमि और सुवर्णयुक्त कृष्णमृगचर्मका दान करता है, वह सम्पूर्ण पापोंके करनेपर भी ब्रह्माका सायुज्य प्राप्त कर लेता है। तिल एवं मधुसे भरा पात्र मगधदेशीय मानके अनुसार एक प्रस्थ (चौसठ पल) कृष्णतिलका दान करे। इसके साथ उत्तम गुणोंसे युक्त शय्या देनेसे दाताको भोग और मोक्षकी प्राप्ति होती है॥ १२—१६॥

अपनी स्वर्णमयी प्रतिमा बनवाकर दान करनेवाला स्वर्गमें जाता है। विशाल गृहका निर्माण कराके उसका दान देनेवाला भोग एवं मोक्ष—दोनोंको प्राप्त करता है। गृह, मठ, सभाभवन (धर्मशाला) एवं आवासस्थानका दान करके मनुष्य स्वर्गलोकमें जाकर सुख भोगता है। गोशाला बनवाकर दान करनेवाला पापरहित होकर स्वर्गको प्राप्त होता है। यम-देवता-सम्बन्धी महिषदान करनेसे मनुष्य निष्पाप होकर स्वर्गलोकको जाता है। देवताओंसहित ब्रह्मा,